

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्त्वः ।

दशमो भागः ।

आख्यातिकः ॥

श्रीसत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।

पाणिनिसुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां सप्तमो भागः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां दशमसंस्कृतम् ।

मुनशी समर्थदान के प्रबन्धने
वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में सुद्रित हुआ ।

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि

इस की रजिस्टरी कराई गई है ।

संवत् १९६६ पीप. क्रमां ८

पहिली बार १००० पुस्तक छपे

विषयसूचीपत्रम्

सं०	विषय	पृष्ठ से	पृष्ठ तक
१	भ्वादिगण	१ —	११४
२	अदादिगण	११५ —	१३८
३	जुहोत्यादिगण	१३८ —	१४६
४	दिवादिगण	१४६ —	१५८
५	स्वादिगण	१५८ —	१६२
६	तुदादिगण	१६२ —	१७१
७	रुधादिगण	१७१ —	१७४
८	तनादिगण	१७४ —	१७६
९	क्रादिगण	१७७ —	१८१
१०	चुरादिगण	१८१ —	१८२
११	णिजन्तप्रक्रिया	१८३ —	१८८
१२	सञ्जन्तप्रक्रिया	१८८ —	२०२
१३	यङन्तप्रक्रिया	२०२ —	२०६
१३	यङलुगन्तप्रक्रिया	२०६ —	२११
१४	नामधातुप्रक्रिया	२११ —	२२२
१५	कण्ठादिप्रक्रिया	२२२ —	२२३
१६	प्रत्ययमालाप्रक्रिया	२२३ —	२२४
१७	आत्मनेपदप्रक्रिया	२२५ —	२३७
१८	परस्मैपदप्रक्रिया	२३७ —	२३८
१९	भावकर्मप्रक्रिया	२३८ —	२४३
२०	कर्मकर्तृप्रक्रिया	२४३ —	२४७
२१	लकारार्थप्रक्रिया	२४७ —	२५८
२२	षत्वप्रक्रिया	२५८ —	२६८
२३	णत्वप्रक्रिया	२७० —	२७७
२४	कुत्वप्रक्रिया	२७७ —	२८८
२५	कदन्तप्रक्रिया	२८८ —	३८२

अथ भूमिका

— ३ * ६ —

यह अष्टाध्यायी का छठा भाग और पठन पाठन व्यवस्था में आठवां पुस्तक है। आख्यात उस को कहते हैं कि जो समग्र प्रकृति प्रत्ययों के संयोग से भाव, कर्म, कर्त्ता, भूत, भविष्यत्, वर्तमान काल, एक, द्वि, और बहुत अर्थों के वाचक हैं। इस ग्रन्थ में मुख्य करके आख्यातशब्दों ही का व्याख्यान किया है इस से इस को आख्यातिक कहते हैं (प्रश्न) धातु किन को कहते हैं (उत्तर) जो सत्ता आदि विविध प्रकार के अर्थों को धारण करें (प्र०) वे कौन हैं (उ०) भू आदि शब्द (प्र०) भू आदि शब्द के प्रकार के होते हैं (उ०) दो प्रकार के एक सामान्यार्थ वाची और दूसरे विशेषार्थ वाची। सामान्यार्थ वाची उन को कहते हैं कि जिन का योग सब विशेषार्थ वाचकों के साथ रहे जैसे (योऽस्ति स भवति । यो भवति स करोति) जो है सो होता और जो होता है सो ही करता है और जो नहीं है उस का होना क्या और जो नहीं होता उस के करने का तो क्या ही सम्भव है। दूसरे विशेषार्थ वाचक उन को कहते हैं कि जिन का प्रयोग विशेष व्यवहारों में किया जावे जैसे (देवदत्तः किं करोति । स ब्रूते पचति भुंक्ते पठति ददाति वा इत्यादि) जैसे किसी से किसी ने पूछा कि देवदत्त क्या करता है वह उत्तर देवे कि पकाता भोजन करता पढ़ता अथवा दान देता है (प्र०) आख्यात का क्या लक्षण है (उ०) (भावप्रधानमाख्यातम्) जो धातु से परे लकारों के स्थान में तिङ् आदि आदेश किये जाते हैं वे भावप्रधान अर्थात् भू आदि धातुओं के सत्ता आदि अर्थों के वाचक होते हैं उन्हीं को आख्यात कहते हैं (प्र०) कितने अर्थों में लकारों के स्थान में तिङ् आदि आदेश होते हैं (उ०) तीन अर्थात् भाव कर्म और कर्त्ता अर्थों में। भाव दो प्रकार का होता है एक आभ्यन्तर दूसरा बाह्य। आभ्यन्तर भाव उस को कहते हैं कि जो धात्वर्थ मात्र में स्थित होकर सामान्य अर्थ का वाचक होता है। जिस के एक होने से एक ही वचन होता है जैसे (आस्यते भवता भवद्भ्यां भवद्भिर्वा । आसितव्यम् । भवितव्यम् । इत्यादि) इस में कदापि द्विवचन और बहुवचन का प्रयोग नहीं होसकता। और बाह्य भाव उस को कहते हैं कि जिस में एक द्वि और बहुवचन के प्रयोग होवे जैसे (पच्यते ओदनः । पच्येते ओदनी । पच्यन्ते ओदना इति । क्वद्विहितौ भावौ द्रव्यवद्भवति । महाभाष्य । अ० । ३ । पा० । १ । सू० । ६७ ॥) द्रव्यों के समान इस के अनेक प्रकार होने से एक द्वि और बहुवचनांत प्रयोग होते हैं जैसे (भावः । भावौ । भावाः । पाकः । पाकौ । पाकाः । इत्यादि) कर्म उस को कहते

हैं कि जो कर्त्ता के करने में ही किया जाय जैसे (देवदत्तः कटं करोतीत्यादि) यहां कर्त्ता के किये बिना चटाई कदापि नहीं बन सकती । कर्त्ता उस को कहते हैं कि जो स्वाधीन साधनों से युक्त होकर क्रिया करने में स्वतन्त्र होवे जैसे देवदत्त कर्त्ता चटाई कर्म और करना क्रिया है इस में विशेष यह है कि (इदं विचार्यते । भावकर्मकर्त्तारः सार्वधातुकार्या वा स्युर्विकरणार्था वेति । एवंतर्हीदं स्यात् । यदा भावकर्मणोर्लस्तदाकर्त्तरि विकरणाः । यदा कर्त्तरिलस्तदा भावकर्मणोर्विकरणाः) महाभाष्य । अ० ३ । पा० १ । सू० ६७ ॥ यह विचारना चाहिये कि भाव, कर्म, और कर्त्ता अर्थों में तिङ् प्रत्यय हैं वा विकरण गप् आदि होंगे । इस को व्यवस्था इस प्रकार समझनी चाहिये कि जब भाव कर्म अर्थों में लकार हैं तब तो कर्त्ता में विकरण और जब कर्त्ता में लकार हैं तब भाव कर्म अर्थों में विकरण होंगे । अर्थात् एक तिङन्त क्रिया में दोनों अर्थ रहें जैसे । ग्रामं गच्छति । यहां कर्त्ता में लकार और कर्म में द्वितीया और कर्म के साथ गप् प्रत्यय का एकाधिकरण समझना चाहिये । इसी प्रकार सर्वत्र जानी (प्र०) किन धातुओं में लकार किन अर्थों में होते हैं (उ०) अकर्मक धातुओं में भाव और कर्त्ता अर्थ में तथा सकर्मक धातुओं में कर्म और कर्त्ता अर्थ में होते हैं (प्र०) अकर्मक और सकर्मक धातुओं का क्या लक्षण है (उ०) (कर्मस्थभावकानां कर्मस्थ-क्रियाणां च कर्त्ता कर्मवद्भवतीति वक्तव्यम् । कर्तृस्थभावकानां कर्तृस्थक्रियाणां च कर्त्ताकर्मवन्माभूदिति । कर्मस्थभावकानां । आसयति देवदत्तं शाययति देवदत्तं स्थापयति देवदत्तम् । कर्मस्थक्रियाणाम् । गामवरुणद्वि । करोति कटम् । पचत्योदनम् । कर्तृस्थभावकानाम् । चिन्तयति मन्त्रयते । कर्तृस्थक्रियाणाम् । गच्छति धावति हसति) महाभाष्य । अ० ३ । पा० १ । सू० ८७ आ० ५ । धातु दो प्रकार के होते हैं एक सकर्मक दूसरे अकर्मक । सकर्मक उन को कहते हैं कि जिनका भाव और क्रिया कर्त्ता से भिन्न के लिये हैं और जिन का भाव और क्रिया कर्त्ता ही के लिये हैं वे अकर्मक कहाते हैं । सकर्मकभावयुक्त धातुओं के उदाहरण (आसयति देवदत्तं शाययति देवदत्तं स्थापयति देवदत्तम् । इत्यादि) यहां देवदत्त संज्ञक कर्म ही में बैठना सोना और स्थित होना रूप भाव है । कर्मस्थ क्रियधातुओं के उदाहरण (गामवरुणद्वि करोति कटं पचत्योदनम् । इत्यादि) यहां गौ चटाई और ओदन रूप कर्म ही में रोकना बनना और पकना रूप क्रिया हैं इस से इस प्रकार के धातु सकर्मक कहाते हैं । अकर्मकों में कर्तृस्थभावक धातुओं के उदाहरण (देवदत्तश्चिन्तयति, मन्त्रयते, अस्ति, भवति, तिष्ठति, आस्ते, चेत्यादि) यहां चिन्तन विचारना होना ठहरना और बैठना आदि भाव

कर्त्ता ही में हैं। कर्तृस्थक्रियधातुओं के उदाहरण (गच्छति, धावति, हसति, क्रुध्यति, शस्यति, इत्यादि) यहां चलना दौड़ना हसना क्रोध और शान्ति आदि क्रिया कर्त्ता ही में रहती है इसलिये इस प्रकार के धातु अकर्मक कहते हैं। * क्रिया का लक्षण (का पुनः क्रिया । ईहा । का पुनरीहा । चेष्टा । का पुनश्चेष्टा । व्यापारः । सर्वथा भवाच्छब्दैरेव शब्दान् व्याचष्टे न किञ्चिदर्शजातं निदर्शयत्येवं जातीयका क्रियेति । क्रिया नामेयमत्यन्ता परिदृष्टा अशक्या पिण्डी भूता निदर्शयितुम् । यथा गर्भो निर्लुठितः । साऽसावनुमानगम्या कोऽसावनुमानः । इह सर्वेषु साधनेषु सन्निहितेषु यदा पचतीत्येतद्भवति सा नूनं क्रिया । अथवा यथा देवदत्त इह भूत्वा पाटलिपुत्रे भवति सा नूनं क्रिया) महाभाष्य । अ० १ । पा० ३ । सू० १ आ० १ । क्रिया उस को कहते हैं कि जो कुछ आत्मा मन प्राण इन्द्रिय और शरीर में चेष्टा होती है जैसे कोई मनुष्य चलते हुए हाथ को देख कर अनुमान करता है कि जिस से यह हाथ चलता है वही क्रिया है। जो अनुमान से जानने योग्य है वह आंख आदि इन्द्रियों से ग्रहण करने में कैसे आ सकती है किन्तु विज्ञान ही से दिखलाई देती है। धातु और प्रत्ययस्थ अनुबन्धों के प्रयोजन । जिन धातुओं के उदात्त अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, और ओ, ये अनुबन्ध इत् संज्ञक होते हैं उन से परस्मैपद और जिन के पूर्वोक्त ही अनुदात्त अकारादि स्वर इत् संज्ञक हैं उन और व्यञ्जनो में उकार जिन का इत् संज्ञक होता है उन से भी आत्मनेपद होता है। जिस का स्वरित अकारादि तथा उकार इत् संज्ञक हों उन से आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों होते हैं। जिन का आकार इत् जाता है उन और जिन का ईकार इत् जाता है उन से परे निष्ठा संज्ञक प्रत्ययों का इट् का आगम नहीं होता। जिनका ऋस्व इकार इत् जाता है उन को तुम् का आगम होता है। जिन का उकार इत् जाता है उन से परे क्ता प्रत्यय का इट् का आगम विकल्प करके और निष्ठा प्रत्यय को इडागम नहीं होता। जिन का उकार इत् जाता है उन से परे सामान्य आर्द्धधातुक प्रत्यय का इट् का आगम विकल्प करके और निष्ठा प्रत्यय को इट् का आगम नहीं होता।

* सकर्मक और अकर्मक धातुओं की व्यवस्था कई प्रकार से समझी जाती है। मुख्य तो यही है कि जिस प्रकरण में प्रयुक्त क्रिया ही उस का अर्थ किसी कर्म के साथ सम्भवित होवे तो सकर्मक नहीं तो अकर्मक। और जो धातु सकर्मक हैं वे ही कभी देश काल और वस्तु के भेद से अकर्मक और अकर्मक सकर्मक भी हो जाते हैं। और जितने धातु अकर्मक हैं वे सब किसी पदार्थ के आश्रय से सकर्मक ही जाते हैं जैसे। अध्वानमासे। यह आस धातु अकर्मक है इस का मार्ग ही कर्म ही जाता है। इस प्रकरण की कारकीय गत्य के कर्मकारक प्रकरण में भी लिख चुके हैं। अर्थात् जिस २ की कर्म संज्ञा वहां कर दी है उस २ अर्थ का जिस २ धातु के साथ सम्भव ही उस २ को सकर्मक अन्य संघ अकर्मक जानने चाहिये ॥

जिन का ऋस्व ऋकार इत् जाता है चङ् परक णिच् परे होता उन के उपधा को ऋस्व
 नहीं होता । जिन का लृकार इत् जाता है उन से परे च्लि प्रत्यय के स्थान में अङ्
 आदेश होता है । जिन का एकार इत् जाता है उन से परे च्लि प्रत्यय के स्थान में अङ्
 परस्मैपद में वृद्धि नहीं होती है । जिन का ओकार इत् जाता है उन से परे निष्ठा
 के तकार को नकार आदेश होता है । जिन का जि इत् जाता है उन से परे
 वर्तमान काल में क्त प्रत्यय होता है । जिन का टु इत् जाता है उन से परे अशुच्
 प्रत्यय होता है । जिन का डु इत् जाता है उन से क्ति प्रत्यय होता है । और
 जिन का प इत् जाता है उन से स्त्री लिङ्ग में अङ् प्रत्यय होता है । इत्यादि प्रयोजन
 जानो । अब संक्षेप से प्रत्ययस्थ अनुबन्धी के प्रयोजन कहते हैं । जिन का ककार
 और ङकार इत् जाता है वे प्रत्यय परे होते हैं । अङ्ग को गुण और वृद्धि नहीं
 होती । वचि खपि आदि धातुओं को संप्रसारण और अन्तोदात्त स्वर भी होता
 है । और कित्, ङित्, के परे ग्रह आदि धातुओं को संप्रसारण भी होता है ।
 और जित्, णित्, प्रत्यय के परे अजन्त अङ्ग तथा उपधाभूत अकार को वृद्धि होती
 और प्रकृति को आद्युदात्त स्वर भी होता है । चित्, का अन्तोदात्त स्वर प्रयोजन
 है टित्, का प्रयोजन ङीप् प्रत्यय । ङित्, का प्रयोजन टिलोप । तित्, का प्रयोजन
 स्वरित स्वर होता है । आगमों के प्रयोजन । टित्, कित्, और मित्, ये तीन
 प्रकार के आगम होते हैं । इन के नियम ये हैं कि प्रकृति और प्रत्यय के समु-
 दाय में टित् आगम जिस को विधान करें उस के आदि का अवयव कित्
 आगम जिस को विधान करें उस के अन्त का अवयव और मित्, आगम
 जिस को विधान करें उस के अन्त अच् से परे होता है (प्र०) आदि और
 अन्त का क्या लक्षण है (उ०) (यस्मात् पूर्व नास्ति परमस्ति स आदिरित्युच्यते ।
 यस्मात् पूर्वमस्ति परं च नास्ति सोऽन्तरित्युच्यते) महाभाष्य । अ० । १ ।
 पा० । १ । सू० । २१ । जिस के पूर्व कुछ न हो और पर हो वह
 आदि कहाता है । और जिस के पूर्व कुछ है और पर नहीं है उस को अन्त
 कहते हैं (प्र०) कौन २ धातु सेट् और कौन २ अनिट् होते हैं (उ०) (अथ के
 पुनरनुदात्ताः । आदन्ता अदरिद्राः । इवर्णान्ताद्यानि णि ङी श्री दीधीवेवीङा ।
 उकारान्ताः । यु रु णु चु ङ्गूर्णवर्जम् । ऋदन्ताद्यानाम् वङ्, वज्रः ।
 शक्तिः कवर्णान्तानाम् । पचि वचि सिचि मुचि रिचि विचि प्रक्छि यजि भञ्जि
 भञ्जि रञ्जि सृजि त्वजि भुजि स्त्रिजि मस्त्रिजि रुजि युजि णिजि विजि सञ्जि
 खञ्जयश्चवर्णान्तानाम् । अदि सदि शदि हदि छिदि तुदि नुदि चिदि भिदि स्तदि
 क्षुदि खिद्यति पद्यति विन्ति विद्यति राधि युधि वुधि शुधि क्रुधि रुधि साधि

व्यधि बन्धि सिध्यति हनि मन्यतयस्तवर्गान्तानाम् । तपि तिपि वपि शपि क्षुपि लुपि
 लिपि स्वप्यापि क्षिपि मृपि ढपि दृपि यभि रभि लभि यमि रमि नमि गमयः
 पवर्गान्तानाम् । रुशि रिशि दिशि विशि लिशि स्पृशि दृशि क्रुशि मृशि दंशि
 पुष्यति त्विषि कृषि श्लिषि विषि पिषि शिषि शुषि तुषि दुषि हिषि घसि वसि
 दहि दिहि वहि दुहि नहि रुहि लिहि मिहयश्चोभान्तानाम् । वसिः प्रसारणी)
 महा० अ० १-७ । पा० १-२ । सू० १-१० । आकारान्तो' में एक दरिद्रा धातु को
 छोड़ के शेष सब अनिट् हैं इवर्णान्तो' में श्रि श्रि डी शी दीधी वेवी इन छः
 धातुओं को छोड़ के शेष अनिट् उवर्णान्तो' में यु रु णु लु क्षु जणु इन छः
 धातुओं को छोड़ के शेष अनिट् । ऋवर्णान्तो' में जाण्ट वृङ् और वृज धातुओं को
 छोड़ के बाकी अनिट् कवर्गान्तो' में एक शकि धातु अनिट् बाकी सब सेट् । चवर्गान्तो'
 में यथाक्रम से पठित पचि आदि बाईस २२ धातु अनिट् बाकी सब सेट् । तवर्गान्तो'
 में यथा पठित अदि आदि २७ सत्ताईस धातु अनिट् अन्य सब सेट् । पवर्गान्तो' में
 तिपि आदि यथा पठित २० बीस धातु अनिट् । अन्य सब सेट् । और जभान्त अर्थात्
 शषस और ह जिन के अन्त में हैं उनमें रुशि आदि ३१ इकत्तीस धातु अनिट् ।
 अन्य सब सेट् हैं इन में वस धातु वह समझना चाहिये कि जिस को सम्प्रसारण
 होता है अर्थात् आच्छादनार्थवाची का ग्रहण नहीं समझना । पूर्वोक्त सेट्
 अनिट् धातुओं की व्यवस्था महाभाष्यकार ने इस प्रकार लिखी है परन्तु उस
 में सब धातुओं का इक्क प्रत्ययान्त निर्देश किया है इस से कौन धातु कौन गण
 का सेट् अनिट् व्यवस्था में समझना चाहिये इस बात का बोध ठीक २ नहीं
 होता सो इस के विशेष व्याख्यान गणस्थ धातुओं में देखने से विदित होगा ।
 और इस विषय में किन्ही प्राचीन शिष्ट वैयाकरणों की बनाई कारिका भी हैं
 सो आगे लिखते हैं ॥

अनिट् स्वरान्तो भवतीति दृश्यतामिमांस्तु सेटः प्रवदन्ति तद्विदः ।
 अदन्तमृदन्तमृताञ्चट्टड्ठजौ श्विडीडिवर्णव्यथशीङ्श्चिञ्जावपि ॥ १ ॥

गणस्थमृदन्तसुतां च रुस्तुवौ क्षुवन्तयोगौ तिमथो युगुक्ष्णवः ।
 इति स्वरान्ता निपुणं समुच्चितास्ततो हलन्तानपि सन्निबोधत ॥ २ ॥

धातु दो प्रकार के होते हैं एक स्वरान्त दूसरे व्यंजनान्त उन में स्वरान्त एकाच्
 धातु सब अनिट् होते हैं । परन्तु अकारान्त, दीर्घ ऋकारान्त, ऋस्व ऋकारान्तों
 में वृङ् वृज् इवर्णान्तों श्रि, डीङ्, शीङ्, और श्रिज्, गणों में पढ़े जकारान्त सब

तथा उवर्णान्तीं में रु, स्तु, च्चु, ऊर्णु, यु, णु, और च्छु, इन सब को छोड़ के अर्थात् ये अकारान्त आदि जो गिनाये हैं सब सेट् हैं । इस के आगे हलन्त । *

शक्तिस्तु कान्तेष्वनिडेक दृष्यते षसिश्च सास्तेषु वसिः प्रसारणी ।
रभिस्तु भान्तेष्वय मैथुने यभिस्ततस्तृतीयो लभिरेव नेतरे ॥३॥
ककारान्तीं में एक शक, सकारान्तीं में षस, और निवासाय वाला वस, तथा
भकारान्तीं में रभ, लभ, और मैथुन अर्थ में यभ, ये तीन धातु अनिट् हैं बाकी
सब सेट् समझने चाहिये ।

यमिर्यमन्तष्वनिडेक दृष्यते रमिश्च यश्च श्यनि पठ्यते मनिः ।
नमिश्चतुर्थी हनिरेव पंचमो गमिश्च षष्ठः प्रतिषेधवाचिनाम् ॥४॥
मकारान्तीं में यम, रम, नम, गम, ये चार और नकारान्तीं में हन् तथा दिवादि
गण में पढ़ा मन, ये दो धातु अनिट् हैं ॥

पचिं वचिं विचिरिचिरञ्जिष्टच्छतीन्, निजिं सिचिं मुचिभजि-
भञ्जिभृज्जतीन् । त्यजिं यजिं युजि रुजिसञ्जिमज्जतीन्,
भुजिं स्त्रजिं सृजिविजौ विह्वानिट् स्वरान् ॥ ५ ॥
चकारान्तीं में पच, वच, रिच, सिच, मुचि, ये छः । छकारान्तीं में एक पृच्छ
जकारान्तीं में रंज, निज, भज, भञ्ज, भ्रस्ज, त्यज, यज, युज, रुज, सञ्ज, मस्ज,
भुज, खञ्ज, सृज, विज, ये पन्द्रह धातु अनिट् हैं बाकी सब सेट् समझना चाहिये ।

अदिं हदिं स्कन्दिभिदिच्छिदिक्ष्णदीन्, शदिं सदिं सिद्यति-
प्रद्यती खिदिम् । तुदिं नुदिं विद्यति विन्तइत्यपि,
प्रतीहि दान्तान्दश पञ्च चानिटः ॥ ६ ॥
दकारान्तीं में अद, हद, स्कन्द, भिद, छिद, क्षुद, शद, सद, सिद, पद, विद,
ये तीनों दिवादि गण के तथा विद, रुधादि गण का भी खिद, तुद, नुद, ये
पन्द्रह धातु अनिट् हैं

रुधिस्सराधिर्युधिवन्धिसाधयः क्रुधिक्षुधी शुध्यतिबुध्यती व्यधिः ।
इमे तु धान्ता दश येऽनिटो मतास्ततः परं सिध्यतिरेव नेतरे ॥ ७ ॥

* स्वरान्तीं में महाभाष्यकारने एकाच् की अपेक्षा छोड़ के आकारान्तीं में दरिद्रा और उवर्णान्तीं में दीधीङ् वेवीङ् धातु गिनाये हैं और कारिका बनाने वालों का अभिप्राय यह है कि (एकाच् उपदेशेऽनु०) सूत्र
जो एकाच् ग्रहण है उस का आशय लेकर ये धातु सेट् और ये अनिट् हैं अर्थात् दोनों प्रकार का व्याख्यान
ठीक है इस महाभाष्य और कारिकाओं में परस्पर कुछ विरोध नहीं आसकता ॥

धकारान्तों में रुध, राध, युध, बन्ध, साध, क्रुध, लुध, दिवादि गण का शुध, बुध, तथा सिध और व्यध, ये ग्यारह धातु अनिट् हैं ॥

तपिं तिपिं चापिमथो वपिं स्वपिं लिपिं लुपिं तृप्यतिदृप्यतौ सृपिम् ।
स्वरेण नीचेन शपिंकुपिं क्षिपिं प्रतीहि पान्तान्पठितांस्त्रयोदश ॥८॥

पकारान्तों में तप, तिप, आप, वप, स्वप, लिप, लुप, दिवादि गण के तृप, दृप, ये दो । सृप, शप, कुप, क्षिप, ये तेरह धातु अनिट् हैं ॥

दिशिं दृशिं दंशिमथो मृशिं स्पृशिं रिशिं रुशिं क्रोशतिमष्टमं विशिम् ।
लिशिं च शान्ताननिटःपुराणगाः पठन्ति पाठेषु दशैव नेतरान् ॥९॥

शकारान्तों में दश, दृश, दंश, स्पृश, स्पृश, रिश, रुश, क्रुश, विश, लिश, ये दश धातु अनिट् हैं ॥

शिषिंप्रिषिंशुष्यतिपुष्यतौ त्विषिं विषिं श्लिषिंतुष्यतिदुष्यतौ द्विषिम् ।
इमान्दशैवोपदिशन्त्यनिड्विधौ गणेषुपान्तान्कृषिकर्षतौ तथा ॥१०॥

षकारान्तों में शिष, पिष, त्विष, विष, श्लिष, द्विष, दिवादि गण के शुष, पुष, तुष, दुष, ये चार और तुदादि और भ्वादि दोनां गण का कृष ये ग्यारह धातु अनिट् हैं ॥

दिहिदुहिमैहतिरोहती बहिर्नहिस्तु षष्ठो दहतिस्तथा लिहिः ।
इमेऽनिटोऽष्टाविहमुक्तसंशया गणेषुहान्ताःप्रविभज्यकीर्त्तिताः ॥११॥

हकारान्तों में दिह, दुह, मिह, रुह, वह, नह, दह, लिह, ये आठ धातु अनिट् हैं । जहां सेट्, गिनाये हैं वहां वाकी अनिट्, और जहां अनिट्, गिनाये हैं वहां वाकी सेट्, समझ लेना चाहिये । इस ग्रन्थ में जितने सेट्, अनिट्, धातु हैं उन सब की व्यवस्था मुख्य तो यही समझनी चाहिये और उदात्तोपदेश से सेट्, और अनुदात्तोपदेश से अनिट्, समझते हैं । जो धातु उपदेश में उदात्त हैं उन पर कोई चिह्न नहीं होता और जो उपदेश में अनुदात्त होते हैं उन के आदि वर्ण के नीचे अनुदात्त की तिर्की रेखा कर देते थे और परस्मैपद आत्मने पद के लिये यह संकेत था कि जिन का अन्त्य वर्ण अनुदात्त चिह्नित इत् हो और जो उपदेश में ङित् हैं उन से आत्मनेपद शेषों से परस्मैपद और जिन के अन्त्य वर्ण स्वरित्, संज्ञक इत् हैं उन तथा जो उपदेश में जित् हैं उन से उभयपद समझते थे । इस से बहुत लाघव के साथ सब बोध होजाता था

अवविद्या की प्रवृत्ति कम ही जानी के कारण यह परम्परा विगड़ गई है । अब इस ग्रन्थ में । अनुदात्त से अनिट्, अनुदात्तित् से आत्मनेपद और उदात्त से सेट्, उदात्तित् से परस्मैपद समझते हैं फिर भी आत्मनेपदी और परस्मैपदी शब्द भी सर्वत्र अत्यन्त सुगम होने के लिये लिख दिये हैं कि जिस से किसी को भ्रम न पड़ सके । इन सब प्रकारों से इत् संज्ञक वर्णों और सेट्, अनिट्, की व्यवस्था को ठीक २ जान के पढ़ने पढ़ानेवाले सब लोग शुद्ध प्रयोगों से व्यवहार और अर्थज्ञान से उपयुक्त हों । जो धातु उपदेश में उदात्त (सेट्,) हैं उन से परे आर्द्धधातुक प्रत्ययों को इडागम होजाता और जो उपदेश में अनुदात्त (अनिट्,) हैं उन से परे आर्द्धधातुक संज्ञक प्रत्ययों को इडागम नहीं होता है । इस ग्रन्थ में ग्यारह लकार अर्थात् लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्, क्रम से लिखे हैं अन्य ग्रन्थों में लेट् लकार केवल वैदिक प्रयोग विषयक है सो नहीं लिखा है यहां विस्तार पूर्वक इस के प्रयोग लिखेंगे लिङ्, दोवार इस लिये लिखा है कि इस के दो प्रकार के अर्थों में दो प्रकार के प्रयोग होते हैं । और दशगण अर्थात् भ्रादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि, और चुरादि, क्रमसे लिखे हैं । इस के पीछे बारह प्रक्रिया अर्थात् णिजन्त, सन्नन्त, यङन्त, यङ्लुगन्त, नामधातु, कण्वादि, प्रत्ययमाला, आत्मनेपद, परस्मैपद, भावकर्म, कर्मकर्त्ता, और लकारार्थ, ये भी क्रम से विस्तारपूर्वक लिखे जावेंगे । और इतना ही तिङन्त का विषय है इसी को आख्यात भी कहते हैं । और जो सूत्र सामान्य करके सब धातुओं में लगते हैं उन को प्रथम २ एक ही वार लिखेंगे और जो किसी विशेष धातुओं में लगते हैं उन को एक वार लिख कर पीछे जहां उन का सम्बन्ध होगा वहां २ इस ग्रन्थ की सूत्र संख्या जो उन के आगे लिखी होगी व्याख्या में रख दिया करेंगे उस के अनुसार उन सूत्रों का सम्बन्ध सब लोग वहां २ देख लेंगे ॥

इति भूमिका ॥

अथाख्यातिकः

— ३ * ६ —

[भू] सत्तायाम् (होना) उदात्त उदात्तेत् परस्मैभाषः । यह धातु परस्मैपदी है । भू शब्द सत्ता (होने) अर्थ का वाचक है । इस अर्थ को कहने के योग्य होने से भू शब्द समर्थ है जो इस से किसी अर्थ का बोध न होता तो असमर्थ समझा जाता फिर असमर्थ से कोई कार्य भी नहीं होसकता इस विषय की परिभाषा (समर्थः पदविधिः) सन्धिविषय में लिख चुके हैं । और शब्द का लक्षण भी नामिक की भूमिका में लिखा है भू शब्द सत्ता अर्थ के साथ समर्थ हुआ तो इस की धातुसंज्ञा हो कर क्त प्रत्ययों की उत्पत्ति आदि कार्य्य होते हैं ॥

१—भूवादयो धातवः ॥ अ० ॥ १ । ३ । १ ॥

यह सूत्र प्रातिपदिक संज्ञा का अपवाद है क्यों कि सामान्य अर्थवान् शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा कही है उस में यह धातु संज्ञा विशेष है । भू शब्द से लेके जो दश गणों में शब्द पड़े हैं उन सब की धातु संज्ञा होती है इस से भू शब्द की धातु संज्ञा होकर ॥ १ ॥

२—धातोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६१ ॥

सब धातुसंज्ञक शब्दों से तव्यत् आदि प्रत्यय होते हैं ॥ २ ॥

३—छदतिङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६३ ॥

धातु से विहित जो प्रत्यय हैं वे क्तसंज्ञक हैं । यहां तिङन्त की अपेक्षा में ॥ ३ ॥

४—वर्त्तमाने लट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२३ ॥

आरम्भ से लेके जब तक क्रिया की समाप्ति न हो तब तक वर्त्तमान काल समझना चाहिये उस वर्त्तमान अर्थ के वाचक धातुओं से लट् प्रत्यय हो । अब ये क्तसंज्ञक लट् आदि प्रत्यय भाव कर्म और कर्त्ता इन तीन अर्थों में सामान्य करके होते हैं उन का विभाग ॥ ४ ॥

५—लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकैर्म्यः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६६ ॥

सकर्मक धातुओं से कर्म और कर्त्ता अर्थ में तथा अकर्मक धातुओं से भाव और कर्त्ता अर्थ में लकार होते हैं यहां भू धातु से कर्त्ता अर्थ में लट् आया भू-लट् । इस अवस्था में ॥ ५ ॥

६—हलन्त्यम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३ ॥

उपदेश में धातु आदि के समुदाय का जो अन्य वर्ण है वह इत्संज्ञक हीवे ॥ ६ ॥

७—तस्य लोपः ॥ अ० ॥ १ । ३ । १ । ६ ॥

इत् संज्ञावाले वर्ण का लोप हो जाता है । यहां टकार की इत्संज्ञा और लोप हो कर प्रत्यय के आदि लकार की भी इत्संज्ञा (लशक्तद्धिते) सूत्र से प्राप्त है सो अगले सूत्र में लकार के स्थान में आदेश विधानरूप ज्ञापक से नहीं होती ॥ ७ ॥

८—लस्य ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७७ ॥

लकार के स्थान में वक्ष्यमाण आदेश हैं ॥ ८ ॥

९—तिप् तस् भिस् सिप् थस् थस् मिप् वस् मस् त् आताम् भ्, यास्, आयाम्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ्, ये अठारह १८ आदेश लकार के स्थान में होते हैं ॥ ९ ॥

१०—लः परस्मैपदम् ॥ अ० ॥ १ । ४ । ६६ ॥

लकार के स्थान में जो अठारह १८ आदेश हैं वे परस्मैपद संज्ञक हैं । इस से सामान्य करके विधान है परन्तु इस के अपवाद (तडाना०) सूत्र से तड् आदि नव ९ की आत्मनेपद संज्ञा की है इस से तिप् पर्यन्त नव ९ की ही परस्मैपद संज्ञा जानी अब भू धातु से परस्मैपद हैं वा आत्मनेपद इस सन्देह की निवृत्ति के लिये ॥ १० ॥

११—शिषात्कर्त्तरि परस्मैपदम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७८ ॥

जिन धातुओं से आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय कहे हैं उन की छीड़ के शिष धातुओं से परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय हैं । यहां भू से तिप् आदि नव प्रत्यय प्राप्त हुए ॥ ११ ॥

१२—तिङ्स्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः ॥ अ० ॥ १ । ४ । १०१ ॥

तिङ् संवन्धी जो तिप् आदि प्रत्यय हैं वे यथाक्रम से तीन २ प्रथम मध्यम और उत्तम संज्ञक हैं अर्थात् (तिप्, तस्, भि, प्रथम) (सिप्, थस्, थ, मध्यम) और (मिप्, वस्, मस्, उत्तम) जानी ॥ १२ ॥

१३—तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः ॥ अ० ॥ १।४।१०२॥

वे ही तिङ् संबन्धी तिप् आदि के तीन २ समुदाय प्रत्येक एकवचन, द्विवचन, और बहुवचन, संज्ञक हैं अर्थात् तिप् एकवचन, तस् द्विवचन, और भि बहुवचन, इसी प्रकार सिप् आदि में जानो ॥ १३ ॥

१४—युष्मदुपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः

॥ अ० ॥ १।४।१०५ ॥

तिङन्त क्रिया का अर्थ जिस युष्मदुपपदवाच्य में रहे तो उस युष्मद् शब्द उपपद के रहत सन्ते युष्मद् शब्द का प्रयोग हो वा न हो तो भी धातु से मध्यम पुरुष हो ॥ १४ ॥

१५—अस्मादुत्तमः ॥ अ० ॥ १।४।१०७ ॥

तिङन्त के साथ एकाधिकरण अस्मात् शब्द उपपद हो उस का प्रयोग हो वा न हो तो भी धातु से उत्तम पुरुष हो ॥ १५ ॥

१६—शेषे प्रथमः ॥ अ० ॥ १।४।१०८ ॥

युष्मद् और अस्माद् से भिन्न तिङन्त के साथ एकाधिकरण नाम उपपद हो उस का प्रयोग हो वा न हो तो भी धातु से प्रथम पुरुष हो। यहां शेष कर्त्ता की विवक्षा में लकार के स्थान में जो तिबादि आदेश हैं उन में से प्रथम पुरुष का एकवचन तिप् आया (भू-तिप्) इस अवस्था में ॥ १६ ॥

१७—यस्मात्प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् ॥ अ० ॥ १।४।११३ ॥

जिस धातु वा प्रातिपदिक से जिस प्रत्यय का विधान हो वही प्रत्यय परे हो तो तदादि शब्दरूप अर्थात् जिस से परे जो प्रत्यय करें उसी प्रत्यय के परे पूर्व जो शब्दरूप है सो अङ्ग संज्ञक हो और उस प्रत्यय का आदि अर्थात् प्रकृति और प्रत्यय के बीचमें जो विकरण प्रत्यय है उस को भी अङ्ग संज्ञा हो जावे ॥ १७ ॥

१८—तिङ्शित् सार्वधातुकम् ॥ अ० ॥ ३।४।११३ ॥

धातु के अधिकार मात्र में कहे जो तिङ् और शित् प्रत्यय वे सार्वधातुक संज्ञक हैं इस से तिप् आदि को सार्वधातुक संज्ञा हुई ॥ १८ ॥

१९—कर्त्तरि शप् ॥ अ० ॥ ३।१।६८ ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक परे ही तो धातु से परे शप् प्रत्यय हो इस से भू और तिप् के बीच में शप् प्रत्यय होकर (भू-शप्-तिप्) इस अवस्था में दोनों हल् प्रकारों की (६) से इत् संज्ञा और (७) से लोप होकर (भू-श-ति) रहा ॥ १९ ॥

२०—लशक्तद्धिते ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८ ॥

प्रत्यय के आदि जो लकार शकार और कवर्ग उन की इत् संज्ञा होवे । इस से (श्) की इत् संज्ञा होकर (७) से लोप होगया (भू-अ-ति) इस अवस्था में ॥ २० ॥

२१—सार्वधातुकाऽर्द्धधातुकयोः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८४ ॥

गुण वृद्धि आदि संज्ञा और इक् ही के स्थान में नियम होना संधिविषय में लिख चुके हैं । सार्वधातुक और आर्द्धधातुक संज्ञक प्रत्यय परे हीं तो द्रगन्त अङ्ग के स्थान में गुण आदेश हो । इस से उकार का अन्तरतम ओकार गुण होकर (भो-अ-ति) इस अवस्था में ॥ २१ ॥

२२—एचोऽयवायावः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ७८ ॥

एच् प्रत्याहार के स्थान में अय्, अव्, आय्, आव्, ये चार आदेश यथासंख्य करके हीं । ओकार को अव् होकर । भवति । द्विवचन की विवक्षा में (भव-तस्) तिङ् प्रत्ययों की विभक्ति संज्ञा नामिक में हो चुकी है । इस का फल ॥ २२ ॥

२३—न विभक्तौ तुल्याः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४ ॥

यहां तुल् के सकार की इत् संज्ञा प्राप्त है उस का निषेध करते हैं । विभक्ति में जो तवर्ग सकार और मकार वे इत् संज्ञक न हीं । तिङन्त की पदसंज्ञा भी कर चुके हैं नामिक में ॥ २३ ॥

२४—ससजुषो रुः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ६६ ॥

पदान्त सकार और सजुष् शब्द के अन्त वर्ण को रूँ आदेश हो ॥ २४ ॥

२५—उपदेशेऽनुनासिकइत् ॥ अ० ॥ १ । ३ । २ ॥

उपदेश में जो अनुनासिक अच् है उस की इत् संज्ञा हो । इस से उकार की इत् संज्ञा होकर (भव-तर्) ॥ २५ ॥

२६—खरवसानयोर्विसर्जनीयः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १५ ॥

खर् प्रत्याहार के परे तथा अवसान में वर्त्तमान जो रेफ उस के स्थान में विसर्जनीय आदेश हो । इस से रेफ को विसर्ग होकर । भवतः । भव-भि । यहां ॥ २६ ॥

२७—ओऽन्तः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३ ॥

प्रत्यय के आदि अवयव भकार को अन्त आदेश होवे । तकार में अकार उच्चारणार्थ है किन्तु आदेश हलन्त ही होता है । भव-अन्त-इ । दोनों अकारों को पररूप एकादेश ही कर । भवन्ति । भव + सिप् = भवसि । भव + थस् = भवथः । भव + थ = भवथ । भव + मिप् ॥ २७ ॥

२८—अतो दीर्घो यजि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । १०१ ॥

यजादि सार्वधातुक प्रत्यय परे हीं तो अदन्त अङ्ग को दीर्घ आदेश होवे ।
यहां शप् के अकार को अङ्ग संज्ञा होकर दीर्घ होता है । भवामि । भव + वस् =
भवावः । भव + मस् = भवामः । स भवति । तौ भवतः । ते भवन्ति । त्वं भवसि ।
युवां भवथः । यूयं भवथः । अहं भवामि । आवां भवावः । वयं भवामः । इन लकारों
का क्रम वर्णक्रमसे चलाया करते हैं जैसे । अ, इ, उ, ऋ, ए, ओ, ये छः टित् और
ऐसा ही क्रम ङित् लकारों में भी जानो । इस क्रम के अनुसार लट् के आगे
लिट् प्राप्त हुआ । जितने सूत्र प्रथम लकार में लिख दिये उन को अब नहीं लिखें
गे जो २ विशेष आते जावेंगे उन को लिखेंगे ॥ २८ ॥

२९—परोक्षे लिट् ॥ अ० । ३ । २ । ११५ ॥

यहां भूत और अनद्यतन की अनुवृत्ति आती है । परोक्ष अनद्यतन भूतकाल
में हुए कार्यों के वाचक धातुओं से लिट् लकार होवे । परोक्ष शब्द का अर्थ ॥ २९ ॥

का०—परोभावः परस्याक्षे परोक्षे लिटि दृश्यताम् ।

उत्वं वाऽऽदेः परादक्ष्णः सिद्धं वाऽस्मान्निपातनात् ॥

जिस से विषयों के साथ ज्ञान की व्याप्ति हो उस को अक्षि कहते हैं अर्थात्
पांच ज्ञान इन्द्रियों का ग्रहण अक्षि शब्द से समझना चाहिये । और इन्द्रियों से
जो परे हो उस को परोक्ष कहते हैं । अक्ष शब्द के परे पर शब्द को परो आदेश
अथवा अकार को उकार वा परोक्ष शब्द को पृषोदरादि मान के इस सूत्र में
निपातन किया है ॥

भा०—कथं जातीयकं पुनः परोक्षं नाम । केचित्तावदाहुर्वर्षशतवृत्तं
परोक्षमिति । अपरआहुर्वर्षसहस्रवृत्तं परोक्षमिति । अपरआहुः
कुड्यकटान्तरितं परोक्षमिति । अपरआहुर्द्व्यहवृत्तं त्र्यहवृत्तं वेति ॥

जो अपने सामने न हुआ हो उस परोक्ष की कितनी अवधि समझनी
चाहिये इस विषय में बहुत ऋषि लोगों का भिन्न २ विचार है । कोई कहते हैं कि
जो सौ १०० वर्ष पहिले हो चुका हो कोई कहते हैं कि जो हजार १००० वर्ष
प्रथम ही गया हो कोई कहते हैं कि जो भित्ति और चटाई के आड़ में हो और
कोई कहते हैं कि दो वा तीन दिन पहिले हुआ हो उस को परोक्ष समझना
चाहिये । सो यह सब प्रकार से परोक्ष हो सकता है क्यों कि मुख्य परोक्ष के साथ

सब का सम्बन्ध होसकता है। भू- लिट् । यहां टकार डकार की इत्संज्ञा और लोप होकर लकार के स्थान में तिप् आदि नव होजाते हैं ॥

३०—लिट् च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११५ ॥

यह सूत्र सार्वधातुक संज्ञा का अपवाद है। लिट् के स्थान में जो तिप् आदि आदेश हैं वे आर्द्धधातुक संज्ञक हैं। यहां एक संज्ञा का अधिकार तो है ही नहीं इस कारण पक्ष में सार्वधातुक संज्ञा भी प्राप्त है इस लिये एव शब्द की अनुवृत्ति समझनी चाहिये कि आर्द्धधातुक संज्ञा ही ही अन्य नहीं ॥ ३० ॥

३१—परस्मैपदानां णलतुस्यलथुसणत्वमाः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८२ ॥

धातु से परे लिट् लकार के स्थान में परस्मैपदसंज्ञक जो तिप् आदि आदेश उन को णल् आदि नव आदेश यथासंख्य करके होजावें। भू- णल् ॥ ३१ ॥

३२—चुटू ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७ ॥

प्रत्यय के आदि जो चवर्ग टवर्ग उन की इत् संज्ञा हो। यहां एकार लकार की इत्संज्ञा और लोप होके। भू-अ। इस अवस्था में द्विवचन, यणादेश, गुण, वृद्धि, आदि कार्य भी प्राप्त हैं इन सब का बाधक बुक् होता है ॥ ३२ ॥

३३—भुवो वुग्लुङ्लिटोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ८८ ॥

अजादि लुङ् और लिट् लकार परे ही तो भू अङ्ग की बुक् का आगम होता है। उक् मात्र की इत् संज्ञा होकर। भूव्-अ ॥ ३३ ॥

३४—एकाचो द्वे प्रथमस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । १ ॥

यह अधिकार सूत्र है। धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व होवे ॥ ३४ ॥

३५—अजादेर्द्वितीयस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । २ ॥

यहां भी एकाच् की अनुवृत्ति आती है। अजादि धातुओं के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व होवे ॥ ३५ ॥

३६—लिटि धातोरनभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । ८ ॥

लिट् लकार परे ही तो अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् और अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्विवचन होवे। इस में विशेष यह है कि जहां धातुओं में अनेक अच् होते हैं वहां प्रथम एकाच् और द्वितीय एकाच् अवयव का कहनावन सकता है और जिन में एक ही अच् है वहां उसी एकाच् अवयव को द्वित्व होजाता है। यहां भी एकाच् अवयव भूव् मात्र की द्विवचन हो कर भूव्-भूव्-अ। यहां ॥ ३६ ॥

३७—पूर्वाभ्यासः ॥ अ० ॥ ६।१।४ ॥

द्विर्वचन का जो पूर्व भाग है वह अभ्यास संज्ञक ही । प्रथम भूव् की अभ्यास संज्ञा ही कर ॥ ३७ ॥

३८—हलादिः शेषः ॥ अ० ॥ ७।४।६० ॥

अभ्यास का आदि हल् शेष रहे अन्य हलों का लोप ही जावे इस से प्रथम भूव् के (व्) का लोप होके । भू-भूव्-अ ॥ ३८ ॥

३९—ऋस्वः ॥ अ० ॥ ७।४।५९ ॥

अभ्यास के अच् को ऋस्व आदेश हो ऋस्व उकार हुआ ॥ ३९ ॥

४०—भवतेरः ॥ अ० ॥ ७।४।७३ ॥

लिट् लकार परे ही तो भू धातु के अभ्यास का अकार आदेश हो ऋस्व उकार को प्रमाणकत आन्तर्य मान के ऋस्व अकार ही कर । भ-भूव्-अ ॥ ४० ॥

४१—अभ्यासे चर्च ॥ अ० ॥ ८।४।५४ ॥

अभ्यासमें जो भल् उन को चर् और जश् आदेश ही यहां भकार को बकार हो जाता है ॥ ४१ ॥

४२—असिद्धवदत्राभात् ॥ अ० ॥ ६।४।२२ ॥

इस सूत्र से ले कर इस पाद की समाप्ति पर्यन्त एक प्रयोग में दो कार्य प्राप्त हीं तो पर कार्य को असिद्ध मान के पूर्व विहित कार्य भी ही जावे । इस से बुक् के आगम की असिद्ध मान के उवङ् आदेश प्राप्त होता है इस लिये ॥ ४२ ॥

४३—वा०-वुग्युटावुवङ्यणोः कर्तव्ये सिद्धौ वक्तव्यौ ॥

उवङ् और यणादेश करने में बुक् और युट् का आगम यथासंख्य करके असिद्ध न माने जावे किन्तु सिद्ध ही समझने चाहिये । इस से उवङ् नहीं होता वसूव । वसूव्-अतुस् । यहां द्विर्वचन और वुगागम से प्रथम ही गुण प्राप्त है ॥ ४३ ॥

४४—इन्धिभवतिभ्यां च ॥ अ० ॥ १।२।६ ॥

इन्धि और भू धातु से परे जो अपित् लिट् वह कित् संज्ञक ही । तिप् सिप् मिप् के स्थान में जो आदेश होते हैं वे पित् अन्य सब अपित् समझे जाते हैं । पित् विषय में गुण वृद्धि के बाधक बुक् को अवकाश मिल जाने से यहां अपित् विषय में परत्व से गुण प्राप्त है ॥ ४४ ॥

४५-क्ङिति च ॥ अ० ॥ १ । १ । ५ ॥

कित् गित् और ङित् प्रत्यय परे हीं तो इक् के स्थान में गुण वृद्धि न ही इस गुण का निषेध होकर । वभूव्+अतुस्=वभूवतुः । वभूव्+उस्=वभूवुः । वभूव्-यल् ॥ ४५ ॥

४६-आर्द्धधातुकस्येड्वलादेः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३५ ॥

अङ्ग से परे जो वलादि आर्द्धधातुक उस की इट् का आगम ही यल् आदि इट् होकर । वभूविथ । वभूव्+अथुस्=वभूवथुः । वभूव्+अ=वभूव । वभूव्+णल्=वभूव । वभूव्+इट्+व=वभूविव । वभूव्+इट्+म=वभूविम । इस के पश्चात् क्रम से प्राप्त लुट् ॥ ४६ ॥

४७-अनद्यतने लुट् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५ ॥

जिस समय से विचार करने लगें तब से अर्द्धरात्रि पर्यन्त अद्यतन अर्द्धरात्रि के पश्चात् हुए कार्य को अनद्यतन कहते हैं सो भूत भविष्यत् दोनों साथ सम्बन्ध रखता है । भविष्यत् अनद्यतन अर्थ की वाचक धातु से लुट् लव होवे । भू-लुट् ॥ ४७ ॥

४८-स्यतासी लृलुटोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३३ ॥

यहां किसी अनुबन्ध विशेष की सूचना नहीं की इस से (लृ) कर के लृट् लृट् दोनों का बोध होता है । और यह सूत्र शप् आदि विकरण प्रत्ययों अपवाद है लुट् लकार परे हो तो धातु से स्य और तासि प्रत्यय यथासं करके हो । यहां लुट् के परे तासि हुआ । भू-तासि-लुट् ॥ ४८ ॥

४९-आर्द्धधातुकं शेषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११४ ॥

धात्वधिकार में कहे तिङ् और शित् प्रत्ययों से भिन्न जो प्रत्यय वे आर्द्धधातु संज्ञक होते हैं । इस से तासि प्रत्यय की आर्द्धधातुक संज्ञा और लुट् के स्थान में तिवादि आदेश होकर । भू+तासि-तिप् । यहां तासि में अनुनासिक इव की इत्संज्ञा और लोप होकर ॥ ४९ ॥

५०-लुटः प्रथमस्य डारौरसः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ८५ ॥

लुट् लकार के प्रथम पुरुष की डा, री, और रस् आदेश यथासंख्य करके तिप् के स्थान में डा आदेश होकर ड्कार की इत् संज्ञा होने से तास् प्रत्यय आस् मात्र का लोप होकर । भू-इत्-आ । यहां ॥ ५० ॥

५१-पुगन्तलघूपधस्य च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८६ ॥

सार्वधातुक और आर्द्धधातुक प्रत्यय परे ही तो पुगन्त और लघु वर्ण जिस की उपधा में ही उस को गुण हो इस से इट् के आगम को लघूपधमान की गुण प्राप्त हुआ इस लिये ॥ ५१ ॥

५२-दीधीवेवीटांस् ॥ अ० ॥ १ । १ । ६ ।

दीधी, और वेवी धातु तथा इट् का आगम इन की गुण वृद्धि नें हैं। फिर आर्द्धधातुक तास् के परे भू को गुण और अवादेश होकर। भविता ॥ ५२ ॥

५३-रिच ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५१ ॥

रेफादि प्रत्यय परे ही तो तास् अस्ति के सकार का लोप होजावे। भवितास् + री = भवितारी। भवितास् + रस् = भवितारः ॥ ५३ ॥

५४-तासस्योर्लोपः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५० ॥

सकारादि प्रत्यय परे ही तो तास् और अस्ति के सकार का लोप होजावे जैसे। भवितास् + सिप् = भवितासि। भवितास् + थस् = भवितास्यः। भवितास् + थ = भवितास्य। भवितास् + मिप् = भवितास्मि। भवितास् + वस् = भवितास्वः। भवितास् + मस् = भवितास्मः ॥ ५४ ॥

५५-लृट् जेषि च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३ ॥

क्रियार्था क्रिया उपपद हो वा नहो तो भी भविष्यत् अर्थ की वाचक धातु से लृट् लकार होवे। भू-लृट्। यहां (५०) स्य प्रत्यय, गुण, तिवादि आदेश स्य प्रत्यय को इट् का आगम और अवादेश होकर ॥ ५५ ॥

५६-आदेशप्रत्यययोः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ५६ ॥

इण् कवर्ग से परे जो आदेश और प्रत्यय का अवयव सकार उस को मूर्द्धन्य आदेश हो जावे जैसे। भवि + स्य + तिप् = भविष्यति। भविष्यतः। भविष्यन्ति। भविष्यसि। भविष्यथः। भविष्यथ। भविष्यामि। भविष्यावः। भविष्यामः ॥ ५६ ॥

५७-लिङ्गर्थे लेट् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७ ॥

यहां छन्द की अनुवृत्ति आती है। जो विधि आदि और हेतु हेतुमान् लिङ् लकार की अर्थ हैं उन में धातु मात्र से वैदिकप्रयोगविषयक लेट् लकार होवे। यहां भू धातु से लेट्, तिवादि, आदेश हो कर। भू- तिप्। इस अवस्था में शप् विकरण प्राप्त है ॥ ५७ ॥

५८-सिव्वहुलं लेटि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३४ ॥

धातु से सिप् प्रत्यय ही लेट् लकार परे ही तो बहुल करके । विकल्प का पर्याय वाची बहुल ग्रहण समझना चाहिये । इसी से पक्ष में शप् भी होता है । सिप् में से इप् मात्र की इत् संज्ञा ही जाती है ॥ ५८ ॥

५९-वा०-सिव्वहुलं णिदन्तव्यः ॥

सिप् प्रत्यय बहुल (विकल्प) से णित् समझना चाहिये सिप् की आर्द्धधातुक मान के इडागम ही जाता है ॥ ५९ ॥

६०-अचो जृगिति ॥ अ० ॥ ७ । २ । ११५ ॥

अजन्त अङ्ग की वृद्धि ही जित् णित् प्रत्यय परे ही तो जकार की औ वृद्धि होकर । भ्-औ-इ-स्-ति । यहाँ ॥ ६० ॥

६१-लेटोऽडाटौ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८४ ॥

लेट् लकार का अट् और आट् का आगम पर्याय से हीं से पित् हीं । अर्थात् अपित् प्रत्यय से पृथक् पित्व धर्म आगम में समझा जावे । टकार की इत् संज्ञा होकर । भावि+स्+अ+तिप्=भाविषति । भाविष्+आट्+ति=भाविषाति ॥ ६१ ॥

६२-इतश्च लोपः परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८७ ॥

लेट् लकार सम्बन्धी परस्मैपद विषयका इकार का लोप विकल्प करके ही अवसान में भलों के स्थान में चर् आदेश विकल्प करके होते हैं । भाविषत् । भाविषात् । भाविषद् । भाविषाद् । जिस पक्ष में णित् संज्ञा के न होने से वृद्धि नहीं होती वहाँ । भविषति । भविषाति । भविषत् । भविषात् । भविषद् । भविषाद् । और सिप् प्रत्यय के विकल्प से जिस पक्ष में शप् होता है वहाँ । भवति । भवाति । भवत् । भवात् । भवद् । भवाद । (तस्) अन्य सब कार्य पूर्व के समान । भाविषतः । भाविषातः । भविषतः । भविषातः । भवतः । भवातः । (भि) भाविषन्ति । भाविषान्ति । इकार लोप होने के पश्चात् संयोगान्त तकार का लोप होकर । भाविषन् । भाविषान् । भविषन्ति । भविषान्ति । भविषन् । भविषान् । भवन्ति । भवान्ति । भवन् । भवान् (सिप्) भाविषसि । भाविषासि । यहाँ इकार लोप के पश्चात् सकार की विसर्जनीय होजाते हैं । भाविषः । भाविषाः । भविषसि । भविषासि । भविषः । भविषाः । भवसि । भवासि । भवः । भवाः । (यस्) भाविषथः । भाविषाथः । भविषथः । भविषाथः । भवथः । भवाथः । (निप्) यहाँ अट् पक्ष में भी एकादेश का पूर्व का अन्त अवयव मानने से अदन्त

अङ्ग को दीर्घ होकर एक ही प्रकार के प्रयोग होते हैं। भाविषामि२ । भाविषाम्२ ।
भविषामि२ । भविषाम्२ । भवामि२ । भवाम्२ । (वस्) (मस्) ॥ ६२ ॥

६३—सउत्तमस्य ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६८ ॥

लोट् लकार सम्बन्धी उत्तम पुरुष के सकार का विकल्प करके लोप होवे भाविषावर२ ।
भाविषावः२ । भविषावर२ । भविषावः२ । भवावर२ । भवावः२ । भाविषामर२ ।
भाविषामः२ । भविषामर२ । भविषामः२ । भवामर२ । भवामः२ ॥ ६३ ॥

६४—लोट् च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६२ ॥

विधि आदि अर्थों में धातु से लोट् लकार हवे । और ॥ ६४ ॥

६५—आशिषि लिङ्लोटौ ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७३ ॥

आशीर्वाद अर्थ में भी लिङ् लोट् लकार हों । भव—ति । इस अवस्था में ॥ ६५ ॥

६६—एरुः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८६ ॥

लोट् लकार के इकार को उकार आदेश होजावे । भवतु ॥ ६६ ॥

६७—तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३५ ॥

आशीर्वाद अर्थ में जो तु और हि उन को तातङ् आदेश विकल्प करके
होवे । यहां तात् आदेश के कहने और तृतीयाध्याय के चतुर्थ पाद में (एरुः)
सूत्र के आगे पढ़ने से लोट् के अन्य इकार को उ आदेश विकल्प करके हो ही
जाता फिर इतने गौरव और अन्यत्र पढ़ने से ज्ञापक होता है कि तातङ् आदेश
में ङित् कारण अन्य अल् के स्थान में होने के लिये नहीं किन्तु गुण वृद्धि के
निषेध और सम्प्रसारण आदि कार्य होने के लिये है । अङ् मात्र की इत्संज्ञा
होकर । भवतात् ॥ ६७ ॥

६८—लोटो लङ्वत् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८५ ॥

लोट् लकार को लङ्वत् कार्य हो । लङ्वत् शब्द में वति प्रत्यय षष्ठी और
सप्तमी दोनों विभक्तियों के स्थान में होसकता है । सो यहां षष्ठ्यर्थ में वति समझना
चाहिये सप्तम्यर्थ में नहीं क्यों कि लङ् के परे जो अट् का आगम आदि कार्य
होते हैं वे लोट् के परे नहीं ॥ ६८ ॥

६९—तस्यस्यमिपान्तान्तन्तामः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०५ ॥

ङित् लकार के जो तस्, थस्, थ, और मिप्, उन को ताम्, तम्, त, और
अम्, आदेश यथासंख्य करके हों जैसे । भवताम् । भव—भि (६६) से उ होकर
भवन्तु । भव—सिप् ॥ ६९ ॥

७०—सैर्ह्यपिच्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८७ ॥

लोट् लकार का जो सि उस को अपित् हि आदेश होवे । पित्त धर्म का अतिदेश आदेश में प्राप्त है इस लिये अपित् कहा है (६७) तातड् होकर भवतात् । पच्च में ॥ ७० ॥

७१—अतो हेः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०५ ॥

अदन्त अङ्ग से परे जो हि उस का लुक् होजावे । भव । भव+यस्=भवतम् । भव+य=भवत ॥ ७१ ॥

७२—मेर्निः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८८ ॥

लोट् लकार का जो मि उस को नि आदेश हो । यहां इकार उच्चारण रूप ज्ञापक से ही उकारादेश नहीं होता है । भव+मिप्=भवानि ॥ ७२ ॥

७३—नित्यं डितः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८९ ॥

डित् लकार के उत्तम पुरुष का जो सकार उस का नित्य ही लोप होवे । भवाव । भवाम ॥ ७३ ॥

७४—अनद्यतने लङ् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १११ ॥

अनद्यतन भूत अर्थ के वाचक धातु से लङ् लकार होवे ॥ ७४ ॥

७५—लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७१ ॥

लुङ् लङ् और लृङ् लकार परे ही तो धातु की उदात्त अट् का आगम हो । भू के आदि में होता है ॥ ७५ ॥

७६—इतश्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०० ॥

डित् लकार का जो परस्मैपद विषयक इकार उस का लोप होवे । अभवत् । अभव+तस्=अभवताम् । (६८) से ताम् । अभवन् । अभवः । अभवतम् । अभवतम् । अभव+मिप्=अभवम् (८६) से अम् और पररूप एकादेश होता है । अभवाव । अभवाम ॥ ७६ ॥

७७—विधिनिमंत्रणाऽमंत्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्

॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६१ ॥

विधि (प्रेरणा) निमंत्रण—किसी से (प्रतिज्ञाकरना) आमंत्रण (यथेष्ट-आचरण) अधीष्ट (सत्कार पूर्वक ठहराना) संप्रश्न (सम्यक् पूछना) प्रार्थना (मांगना) इन अर्थों में धातु से लिङ् लकार होवे । भव-तिप् ॥ ७७ ॥

७८—यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङित् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०३ ॥

यह सूत्र सीयुट् का अपवाद है। परस्मैपदविषयक लिङ् लकार की यासुट् का आगम ही सो उदात्त और ङित् संज्ञक होजावे। इस आगम को उदात्त विधान करने से ज्ञापक होता है कि अन्य आगम जिनमें स्वर विशेष का विधान न किया हो वे सब अनुदात्त होते हैं। और लकार के स्थान में जो तिप् आदि आदेश होते हैं वे ङित् नहीं होते क्योंकि उन के ङित् होने से उन को हुआ आगम भी ङित् ही हो जाता फिर ङित् कहने से यही ज्ञापक होता है कि यहां स्थानिवद्भाव नहीं होता ॥ ७८ ॥

७९—सुट् तिथोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०७ ॥

लिङ् लकार के जो तकार थकार उन को सुट् का आगम हो। सुट् का आगम यासुट् का बाधक इस लिये नहीं होता कि लिङ् को यासुट् और तकार थकार को सुट् कहने से विषय भेद होजाता है। और एक विषय में उत्सर्गपवाद की प्रवृत्ति होती है ॥ ७९ ॥

८०—लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७ । ७९ ॥

सार्वधातुक विषयक अनन्त्य सकार का लोप होजावे। इस से यासुट् और सुट् दोनों के सकारों का लोप होजाता है और आशिष् लिङ् में परस्मैपद और आत्मनेपद में आर्द्धधातुक विषय के होने से ये सकार बने रहते हैं। भव-या-तिप् ॥ ८० ॥

८१—अतो येयः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८० ॥

अदन्त अङ्ग से परे जो सार्वधातुक का अवयव या उस को इय् आदेश होवे। (लोपो व्योर्वलि) सूत्र से हल् यकार का लोप होकर। भव+इ+तिप्=भवेत्। भव+इ+तस्=भवेताम् ॥ ८१ ॥

८२—भेर्जुस् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०८ ॥

लिङ् लकार का जो भि उस को जुस् आदेश होवे जकार की इत्संज्ञा ॥ ८२ ॥

८३—उस्यपदान्तात् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ९६ ॥

अपदान्त अवर्ण से उस परे ही तो पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश होजावे। इस की प्राप्ति तो है परन्तु परत्व और नित्यत्व से इय् आदेश होजाता है फिर प्राप्ति नहीं रहती। इस सूत्र का काम अदादि गण में पड़ेगा कि जहां इय् आदेश की प्राप्ति नहीं होती। भव+इय्+उस्=भवेयुः। भव+इय्+

सिप्=भवेः । भव+इय्+यस्=भवेतम् । भव+इय्+य=भवेत । भव+इय्+मिप्=भवेयम् । भव+इय्+वस्=भवेव । भव+इय्+मस्=भवेम । आशीर्वाद अर्थ में (६५) सूत्र से लिङ् आया ॥ ८३ ॥

८४—लिङाशिपि ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११६ ॥

आशीर्वाद अर्थ में जो लिङ् उस के स्थान में जो तिवादि आदेश वे आर्द्धधातुक संज्ञक हों ॥ ८४ ॥

८५—किदाशिपि ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०४ ॥

परस्मैपद विषयक लिङ् लकार को जो यासुट् का आगम डित् कहा है वह आशीर्वाद अर्थ में कित् समझना चाहिये । आर्द्धधातुक संज्ञा होने से शप् विकरण प्राप्त नहीं अन्य किसी का विधान नहीं है । यहां पदान्त में संयोग के आदि यासुट् के सकार का, लोप हो जाता है । भू+यास्+तिप्=भूयात् । भू+यास्+तस्=भूयास्ताम् । भू+यास्+भि=भूयासुः । भू+यास्+सिप्=भूयाः । भू+यास्+यस्=भूयास्तम् । भू+यास्+य=भूयास्त । भू+यास्+मिप्=भूयासम् । भू+यास्+वस्=भूयास्त । भू+यास्+मस्=भूयास्त ॥ ८५ ॥

८६—लुङ् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११० ॥

सामान्य भूत अर्थ के वाचक धातु श्री से लुङ् लकार ही । शप् विकरण की प्राप्ति में ॥ ८६ ॥

८७—लुङि लुङि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४३ ॥

लुङ् लकार परे ही तो धातु से लुङ् प्रत्यय होवे ॥ ८७ ॥

८८—लुङेः सिच् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४४ ॥

लुङ् लकार परे ही तो लुङ् के स्थान में सिच् आदेश हो जावे । इकार चकार की इत्संज्ञा हो जाती है ॥ ८८ ॥

८९—गातिस्थाघुप्राभूयः सिचः परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७७ ॥

गाति, स्था, घुसंज्ञक, पा, भू, इन धातुओं से परे जो सिच् उस का लुक् हो जावे । सिच् का लुक् होने पश्चात् उस को स्थानिवत् मान के उस से परे अष्टतु हलादि सार्वधातु क तिप् की इट् का आगम प्राप्त है इस लिये ॥ ८९ ॥

६०—व०—आहिभुवोरौट्प्रतिषेधः * ॥

आह आदेश और भू से परे जो सिच् का लुक् उस को स्थानिवद्भाव न हो । स्थानिवत् के निषेध से ईट् का आगम नहीं होता । अब भू अङ्ग की तिप् के परे गुण पाता है इस लिये ॥ ६० ॥

६१—भूसुवोस्तिङि ॥ अ० ॥ ७।३।८८ ॥

अथवहित सार्वधातुक तिङ् परे ही तो भू और सू अङ्गों को गुण न होवे । (७७) सूत्र से अडागम हो कर । अट् + भू + सिच् + तिप् = अभूत् । अभू + तस् = अभूताम् । अभू + वुक् + भि = अभूवन् । अभू + सिप् = अभूः । अभू + यस् = अभूतम् । अभू + य = अभूत । अभू + वुक् + मिप् = अभूवम् । अभू + वस् = अभूव । अभू + मस् = अभूम ॥ ६१ ॥

६२—न माङ्योगे ॥ अ० ॥ ६।४।७४ ॥

माङ् अव्यय शब्द के योग में लुङ्, लङ्, और लृङ्, लकारों को जो अट् और आट् के आगम कहे हैं वे नहीं जैसे । इह मा भूत् । मा भवान् भूत् । मा स्म भवत् । मा स्म भूत् । इत्यादि में अट् का आगम नहीं होता और आट् के आगम का निषेध आगे अजादि धातुओं में दिखाया जावेगा ॥ ६२ ॥

६३—लिङ्निमित्ते लृङ्क्रियाऽतिपत्तौ ॥ अ० ॥ ३।३।१३६ ॥

जो हेतु, हेतुमद्भाव आदि लिङ् लकार के निमित्त अर्थ हैं उन में क्रिया की असिद्धि गम्यमान हो तो धातु से लृङ् लकार ही जावे (७७) अट् और स्य प्रत्यय आदि कार्य्य होकर । अट् + भू + इट् + स्य + तिप् = अभविष्यत् । अभविष्यताम् । अभविष्यन् । अभविष्यः । अभविष्यतम् । अभविष्यत । अभविष्य + मिप् = अभविष्यम् । यहां अम् के अकार के साथ पररूप होजाता है । अभविष्याव । अभविष्याम । अथ तवर्गीयान्ताश्चतुस्सप्ततिः [एध] वृद्धौ (बढ़ना) अब यहां से आगे एध आदि तवर्गीयान्त ७४ चौहत्तर धातुओं का व्याख्यान है । भू धातु में जितने सामान्य विषयक सूत्र लिखे हैं वे यहां नहीं लिखे जावेगे । पूर्ववत् वर्तमान अर्थ में लट् आया ॥ ६३ ॥

* इस वार्तिक की सिद्धान्त कौमुदी वालों ने न समझ के (अस्तिसिचोऽष्टके) इस सूत्र का व्याख्यान मूल, महाभाष्य, और काशिका आदि से विपरीत किया है जो कदाचित् उन का व्याख्यान ठीक होवे तो वार्तिक व्यर्थ ही जावे और असम्भव अभिप्राय सूत्र से निकाला है इस लिये मान्य नहीं हो सकता क्योंकि ऋषियों के अभिप्राय से विरुद्ध इन के पाण्डित्य की कौन मान सकता है ॥

६४—तङानावात्मनेपदम् ॥ अ० ॥ १ । ४ । १०० ॥

लकार के स्थान में तङ् और आन (शानच्) आदि आत्मनेपद संज्ञक आदेश हों इस से त, मे लेकर महिङ् तक नव ए का ग्रहण है ॥ ६४ ॥

६५—अनुदात्तङित आत्मनेपदम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । १२ ॥

अनुदात्त वर्ण जिन का इत् गया हो और ङित् धातुओं से त आदि नव ए आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय हों । यहां भी एध में अनुदात्त अकार इत् जाता है इस कारण इस से आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय आये-शप् विकण होकर ॥ ६५ ॥

६६—टित आत्मनेपदानां टेरे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७६ ॥

टित् लकारों के स्थान में जो आत्मनेपद संज्ञक आदेश उन के टिभाग को ए आदेश हो जावे । यहां समुदाय को आदेश विधान नहीं इस कारण अन्य अल् के स्थान में नहीं होता । एध्+शप्+त=एधते ॥ ६६ ॥

६७—सार्वधातुकमपित् ॥ अ० ॥ १ । २ । ४ ॥

सार्वधातुक संज्ञक अपित् प्रत्ययों की ङित् संज्ञा हो ॥ ६७ ॥

६८—आतो ङितः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८१ ॥

अदन्त अङ्ग से परे जो ङित् प्रत्ययों का आकार उस को इय् आदेश हो जावे । आम् भाग को एकार होकर । एध्+शप्+आताम्=एधेते । एध्+शप्+भ्=एधन्ते ॥ ६८ ॥

६९—यासः से ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८० ॥

टित् लकार के यास् को से आदेश होवे । एध्+शप्+यास्=एधमे । एध्+शप्+आयाम्=एधेथे । एध्+शप्+ध्वम्=एधध्वे । एध्×शप्×इट्=एधे । यहां गुण एकार के परे पररूप एकादेश होजाता है । एध्+शप्+वहि=एधावहे । एध्+शप्+महिङ्=एधामहे ॥ ६९ ॥

१००—इजादिश्च गुरुमतोऽनृच्छः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३६ ॥

लिट् लकार परे हो तो इजादि और गुरुमान् धातुओं से आम् प्रत्यय हो जावे परन्तु ऋच्छ धातु से न होवे ॥ १०० ॥

१०१—आसः ॥ अ० । २ । ४ । ८१ ॥

आम् से परे जो लि उस का लुक् हो जावे । इस से लिट् का लुक् हो कर ॥ १०१ ॥

१०२—लृज्जानुप्रयुज्यते लिटि ॥ अ० ॥ ३।१।४० ॥

इस सूत्र में लिट् ग्रहण किया है इसी से यहां लृक् हुए लिट् का रूपातिदेश समझना चाहिये। आत्मन्त से लिट् लकार पर हो तो लृज्, भू, और अस् धातुओं का अनुप्रयोग अर्थात् इन सामान्य धातुओं का आम् प्रत्ययान्त एध आदि विशेष धातुओं से परे एक प्रयोग में समावेश किया जावे। आत्मनेपद प्रकरण में अनुप्रयोग शब्द के साथ लृज् धातु का ग्रहण किया है इसी ज्ञापक से (लृक्वस्तिथिर्गो०) इस सूत्र से ले के (लृजो०) इस सूत्र में लृज् के लकार पर्यन्त प्रत्याहार ग्रहण से तीनों धातुओं का अनुप्रयोग किया जाता है। और ये लृज् आदि तीनों धातु समान्यार्थवाचक और आम् प्रत्ययान्त विशेषार्थवाचक हैं इस कारण एक अर्थ के साथ दोनों धातुओं का सम्बन्ध हो जाता है। यह लृज् धातु जित् है ॥ १०२ ॥

१०३—स्वरितजितः कर्तृभिप्राये क्रियाफले ॥ अ० ॥ १।३।६२ ॥

यह सूत्र परस्मैपद का बाधक है। क्रिया का फल कर्त्ता के लिये होवे तो स्वरित और जित् धातुओं से आत्मनेपद हो अन्यत्र परस्मैपद। इस से क्रिया का फल अन्य के लिये होने में भी लृज् धातु से परस्मैपद प्राप्त है इस लिये ॥ १०३ ॥

१०४—आप्त्ययवत्लृजोऽनुप्रयोगस्य ॥ अ० ॥ १।३।६३ ॥

जिस धातु से आप्त्यय किया हो उस से जो आत्मनेपद होता हो तो अनुप्रयुक्त लृज् से भी आत्मनेपद और आम् प्रत्ययान्त धातु परस्मैपदी हो तो परस्मैपद ही जावे। यहां एध धातु आत्मनेपदी है इस लिये लृज् से भी आत्मनेपद प्रत्ययही होते हैं ॥ १०४ ॥

१०५—लिट् लकारोरेथिरेच् ॥ अ० ॥ ३।४।८१ ॥

लिट् लकार के स्थान में जो त और भू हैं उन को एष् और इरेच् आदेश यथासंख्य करके हो जावें। त संपूर्ण के स्थान में शित् आदेश हो कर। एध-आम्-लृ-ए। इस अवस्था में एकार की कृत् संज्ञा होने से गुण वृद्धि तो प्राप्त नहीं परन्तु द्विवचन का बाधक परत्व से यणादेश हो जाता है उस को स्थानिरूपवत् मान के पुनः द्विवचन ही ता है। एध-आम्-लृ लृ-ए ॥ १०५ ॥

१०६—उरत् ॥ अ० ॥ ७।४।६६ ॥

अथास के ऋकार को अत् आदेश होवे। ऋ के स्थान में रपर होने नियम से अर् हो कर रेफ का लोप (३८) हो जाता है ॥ १०६ ॥

१०७—कुहोसुः ॥ अ० ॥ ७।४।६२ ॥

अभ्यास के जो कवर्ग और हकार उन को चवर्ग आदेश होता है । एध्+आम्+चक+ए=एधाच्चक्रे । एध्+आम्+चक+आताम्=एधाच्चक्राते । एधाच्चक+इरेच्=एधाच्चक्रिरे ॥ १०७ ॥

१०८—एकाचउपदेशेऽनुदात्तात् ॥ अ० ॥ ७।२।१० ॥

उपदेश में जो एकाच् अनुदात्त धातु हो उस से परे वलादि आर्द्धधातुक प्रत्यय को इट् का आगम न हो । इस से घास् के स्थान में से के परे इडागम न हुआ । एधाच्चक+घास्=एधाच्चकृषे । एधाच्चक्राये ॥ १०८ ॥

१०९—द्वयः सीधंलुङ्लिटान्वींऽगात् ॥ अ० ॥ ८।३।७८ ॥

द्वयन्त अङ्ग से परे जो सीधम् लुङ् और लिट् का धकार उस को सूईन्त आदेश हो । धकार का अन्तरतम ढकार हो जाता है । एधाच्चक=धम्=एधाच्चकृषे । एधाच्चक+इट्=एधाच्चक्रे । एधाच्चकवहे । एधाच्चकमहे । भू का अनुप्रयोग पूर्व के समान कि जैसा साधन केवल भू का लिट् में लिख आये हैं । एधास्वभूव । एधास्वभूवतुः । एधास्वभूवुः । एधास्वभूविथ । एधास्वभूवधुः । एधास्वभूव । एधास्वभूविव । एधास्वभूविम ॥ १०९ ॥

११०—अतच्चादेः ॥ अ० ॥ ७।४।७० ॥

अभ्यास के आदि अकार को दीर्घादेश होवे । अस् धातु के अभ्यास के अकार को पररूप एकादेश प्राप्त है इस लिये दीर्घादेश कहा है । एध्+आम्+अअस्+एल्=एधामास । एधामासतुः । एधामासुः । एधामासिथ । एधामासथुः । एधामास । एधामास । एधामासिव । एधामासिम । यहां अस धातु को आर्द्धधातुक विषय में भू आदेश अस धातु के अनुप्रयोगवचनसामर्थ्य से ही नहीं होता इस के आगे लुट् प्रथम पुरुष त, आताम्, भ, के स्थान में डा आदि आदेश हो के एधिता । एधितारौ । एधितारः । एधितासे । एधितासाथे ॥ ११० ॥

१११—धिच ॥ अ० ॥ ८।२।२५ ॥

धकारादि प्रत्यय परे हो तो सकार का लोप हो जावे । यहां धम् प्रत्यय के परे तास् के सकार का लोप होजाता है एधितास्+धम्=एधिताध्वे ॥ १११ ॥

११२—हएति ॥ अ० ॥ ७।४।५२ ॥

एकार परे हो तो तास् और अस्ति के सकार को हकारादेश होवे । एधितास्+इट्=एधिताह्वे । एधितास्वहे । एधितास्वहे । इस के आगे (लृट्)स्व आदि सब

कार्य होकर । एध् + इट् + स्य + त = एधिष्यते । एधिष्येते । एधिष्यन्ते । एधिष्यसे ।
एधिष्येथे । एधिष्यध्वे । एधिष्ये । एधिष्यावहे । एधिष्यामहे । अब इस के आगे क्रम
से (लोट्) प्रथम शप् का अपवाद सिप् विकरण ॥ ११२ ॥

११३—वैतोऽन्यत्र ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६६ ॥

आकार को जहां ऐकार कहा है उस विषय को छोड़ के लोट् लकार सखन्धी
जो एकार उस को ऐकार आदेश विकल्प करके हो जावे । टिभाग को जो
एकारादेश कह चुके हैं उसी एकार को यहां ऐकार समझना चाहिये । एध् +
इट् + सिप् + अट् + त = एधिष्यते । एध् + इट् + सिप् + आट् + त = एधिष्याते । ए
धिष्यते । एधिष्याते । शप् पक्ष में । एधते । एधाते । एधते । एधाते ॥ ११३ ॥

११४—आतए ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६५ ॥

लोट् लकार सखन्धी आकार को ऐकार आदेश नित्य ही हो जावे । इस से
(आताम्, आथाम्) के आकार को ऐकार होता है । उस ऐकार के परे अट्
आट् को वृद्धि एकादेश हो जाने से रूप भेद नहीं होता । एध् + इट् + लिप् +
अट् + आताम् । एधिष्येते २ । एधेते २ (भ्) एधिष्यन्ते । एधिष्यान्ते । एधिष्यन्ते ।
एधिष्यान्ते । एधन्ते । एधान्ते । एधन्ते । एधान्ते । (थास्) । एधिष्यसे । एधिष्यासे ।
एधिष्यसे । एधिष्यासे । एधसे । एधासे । एधसे । एधासे । (आथाम्) एधिष्येथे २
एधेथे २ (ध्वम्) एधिष्यध्वे । एधिष्याध्वे । एधिष्यध्वे । एधिष्याध्वे । एधध्वे । एधाध्वे ।
एधध्वे । एधाध्वे । (इट्) एधिष्ये । एधिष्ये । एधे । एधे । यहां जिस पक्ष में इट्
प्रत्यय के एकार को ऐकार आदेश होता है वहां अट् और आट् के आगम को
वृद्धि एकादेश हो जाने से प्रयोग भिन्न नहीं होते (वृद्धि) एधिष्यावहे । एधिष्यावहे ।
एधावहे । एधावहे । (मृहृङ्) एधिष्यामहे । एधिष्यामहे । एधामहे । एधामहे ।
यहां भी जब अट् होता है तब यजादि सार्वधातुक प्रत्ययों के परे दीर्घ हो जाने
से एक ही प्रकार के प्रयोग हो जाते हैं (लोट्) ॥ ११४ ॥

११५—आसेतः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६० ॥

लोट् लकार का जो एकार उस को आम् आदेश हो जावे । टिभाग को जो
एकार कहा है उसी को यहां आम् आदेश समझना चाहिये । एध् + शप् + त +
= एधताम् । एधेताम् । एधन्ताम् ॥ ११५ ॥

११६—सवास्थ्यां वासौ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६१ ॥

सकार वकार से परे जो लोट् लकार का एकार उस को वा और अम् आदेश
यथासंख्य करके हों । एध् + शप् + थास् = एधस्व । एधेथाम् । एधध्वम् ॥ ११६ ॥

११७—एतए ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६३ ॥

लोट लकार के उत्तम पुरुष को जो एकार उस को ऐ आदेश होवे । यह आम् आदेश का बाधक है ॥ ११७ ॥

११८—आडुत्तस्य पिच्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६२ ॥

लोट लकार के उत्तम पुरुष को आट् का आगम हो वह पित् होजावे । अपित् सार्वधातुक को पित् आगम होने से गुण आदि कार्य और सम्प्रसारण का निषेध हो जाता है । परन्तु यहां स्वादिगण में इस का कुछ काम नहीं पड़ता क्योंकि यहां तो शप् प्रत्यय को मान के सब काम होते हैं किन्तु अदादि जुहोत्यादि में काम पड़ेगा । और भू धातु में भी इस आट् के आगम का सम्बन्ध होता है । यहां सर्वत्र शप् के अकार के साथ दीर्घ एकादेश होजाता है । एध् + शप् + आट् + ऐ = एधै । एधावहि । एधामहि । इस के आगे (लङ्) पूर्व के समान अन्य सब कार्य जानो ॥ ११८ ॥

११९—आडजादीनाल् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७२ ॥

लुङ् लङ् और लृङ् लकार परे ही तो अजादि धातुओं को आट् का आगम होजावे । अट् का अपवाद आट् का आगम है । वृद्धि एकादेश होकर । आट् + एध् + अ + त = एधेत । एधेताम् । एधेन्त । एधेथाः । एधेथाम् । एधेध्वम् । एधे । एधावहि । एधामहि । आगे (लिङ्) ॥ ११९ ॥

१२०—लिङ्ः सीयुट् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०२ ॥

लिङ् लकार को सीयुट् का आगम हो । सी युट् और सुट् दोनों सकारों का लोप (८०) हो कर । एध् + अ + इय् + त = एधेते । एधेयाताम् ॥ १२० ॥

१२१—अत्यरन् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०५ ॥

लिङ् लकार का जो अकार उस को रन् आदेश होजावे । एधेरन् । एधेथाः । एधेयाथाम् । एधेध्वम् ॥ १२१ ॥

१२२—इटोऽत् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०६ ॥

लिङ् लकार के स्थान में जो इट् आदेश उस को अत् आदेश होजावे । तपर करण दीर्घ की निवृत्ति के लिये है । एधेय । एधेवहि । एधेसहि । आशिप् लिङ् की आर्द्धधातुक संज्ञा होने से सकार का लोप नहीं होता । सीयुट् और सुट् दोनों सकारों को मूर्द्धन्यादेश (५६) होजाता है । एध् + इट् + सीयुट् × सुट् + त = एधिषीट् । यहां मूर्द्धन्य वकार के योग में तवर्ग को टवर्ग होजाता है । औ

आताम् में तकार को कहा सुट् का आगम आकार से परे होता है। एध् + सीयुट् + आसुट् + ताम् = एधिषीयास्ताम्। एधिषीरन्। यहां रेफादि रन् आदेश के परे सीयुट् के यकार का लोप हो जाता है। एधिषीष्ठाः। एधिषीयास्थाम्। एधिषीध्वम्। एधिषीय। एधिषीवहि। एधिषीमहि। इस के आगे (लुङ्) इस में कुछ विशेष नहीं है। आट् + एध् + सिच् + त = एधिष्ट। एधिषाताम् ॥ १२२ ॥

१२३—आत्मनेपदेष्वन्तः ॥ अ० ॥ ७। १। ५ ॥

यह सूत्र अन्त आदेश का बाधक है। अकार भिन्न से परे आत्मनेपदविषयक प्रत्यय के आदि अकार को अत् आदेश होवे। एध् + इट्स् + भ् = एधिषत। एधिष्ठाः। एधिषायाम्। ध्वम् के धकार को (१०६) सूत्र से मूर्द्धन्य नहीं होता क्यों कि (इट्) इणन्त अङ्ग नहीं है *। एध् + इट्स् + ध्वम् = एधिध्वम्। यहां (१११) सकार का लोप हो जाता है। एधिषि। एधिष्वहि। एधिषमहि (लृङ्) इस में कुछ विशेष नहीं। आट् + एध् + इट् + स्य + त = एधिष्यत। एधिष्येताम्। एधिष्यन्त। एधिष्यथाः। एधिष्येथाम्। एधिष्यध्वम्। एधिष्ये। एधिष्यावहि। एधिष्यामहि ॥ [११ स्पृह] सङ्घर्षे (घिसना) और (ईर्ष्या) इस के प्रयोग एध के समान जानने जैसे। स्पृहते। स्पृहते। इत्यादि परन्तु लिट् के रूप विशेष हैं ॥ १२३ ॥

१२४—शर्पूर्वाः खयः ॥ अ० ॥ ७। ४। ६१ ॥

अभ्यास संबन्धी शर् जिन के पूर्व हैं वे खय् बाकी रहें अन्य हलों का लोप हो जावे। स्पृह् + स्पृह् + (१०५) एश् = पस्पृहते। पस्पृहिरे। पस्पृहिषे। पस्पृहिषे। पस्पृहिध्वे। पस्पृहे। पस्पृहिवहे। पस्पृहिमहे। स्पृहिता। स्पृहिष्यते। स्पृहिषते। स्पृहिषाते। स्पृहिषते। स्पृहिषाते। इत्यादि। स्पृहिताम्। अस्पृहत।

* सिद्धान्त कीमुदी में जो (एधिद्वम्) प्रयोग लिखा है सो किसी प्रकार गृह्य नहीं हो सकता क्योंकि (इट्) इणन्त अङ्ग कैसे समझा जावे (इणः सीध्वं) सूत्र में अङ्ग ग्रहण का यही प्रयोजन है कि (एधिषीध्वं) यहां मूर्द्धन्यादेश न हो जावे और लुङ् लकार में कदाचित् सिच् की अङ्ग संज्ञा होने से इट् की भी अङ्ग संज्ञा होजावे सो भी सिच् लोप को असिद्ध वा स्थानिवत् मानें तो। सो अङ्ग की प्राप्ति ही नहीं क्योंकि लोप विधायक सूत्र से मूर्द्धन्य विधायक सूत्र त्रिपादी में भी परे है। स्थानिवत् में सिच् स्थानी है उस को कोई कार्य करना नहीं और सिच् को स्थानित् मानने से सान्त् अङ्ग होगा इणन्त नहीं फिर (एधिद्वम्) प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है।

+ एक यह नियम इस गद्य भर में पढ़ने पढ़ाने वालों को ध्यान में रखना चाहिये कि सू के तुल्य परस्मैपदी धातुओं के प्रयोग और एध के समान आत्मनेपदी धातुओं के प्रयोग संसर्ग। यहां से आगे सब धातुओं के ग्यारहों लकारों के एक २ प्रयोग लकारों के क्रमानुसार लिखेंगे। और जहां विशेष सूत्र लग के विशेष प्रयोग बनेंगे वहां सब रूप लिखदिया करेंगे और असिद्ध प्रयोग चिन्हित अवयवों के सहित रखे जाते हैं वे आगे विशेष २ धातुओं के प्रयोगों ही में रखेंगे और जो एक अर्थ में एक प्रकार के बहुत धातु होंगे उन में से एक के प्रयोग लिख दिया करेंगे। उसी के समान दूसरों के समझने होंगे ॥

स्यङित्। स्यङिषीष्ट। अस्यङिषीष्ट। अस्यङिष्यत ॥ [गाधृ] प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च (सत्कार-
प्राप्त होने की इच्छा, गांठना)। गाधते। अभ्यास के अच् को ऋस् और गकार को
जकार हो कर। जगाध्+ए=जगाधे। जगाधाते। जगाधिरे। गाधिता। गाधि-
ष्यते। गाधिषतै। गाधिषातै। गाधताम्। अगाधत। गाधेत। गाधिषीष्ट।
अगाधिष्ट। अगाधिष्यत ॥ [वाधृ] विलोडने (हठा देना) वाधते। ववाधे। वाधिता।
वाधिष्यते। वाधिषतै। वाधिषातै। वाधिषते। वाधिषाते। इत्यादि। वाधताम्
अवाधत। वाधेत। वाधिषीष्ट। अवाधिष्ट। अवाधिष्यत ॥ [नाधृ, नाधृ] याञ्चो-
पतापैश्वर्याशीः पु। याञ्चा (मांगना) उपताप (पीड़ा) ऐश्वर्य (उत्तम पदार्थ)
आशीः (इच्छा) आशीर्वाद अर्थ ही में नाथ धातु से आत्मनेपद और अर्थों में
परस्मैपद होता है जैसे। सर्पिषी नाथते। अन्यत्र। नाथति। नायतः। नाथन्ति।
इत्यादि शेष रूप वाध के समान होते हैं ॥ [दध्] धारणे (धारण करना)
दधते। दधते। दधते। इत्यादि ॥ १२४ ॥

१२५—अत एकहल्यध्वेऽनादेशादेर्लिटि ॥ अ० ॥ ६। ४। १२० ॥

जिस लिट् की आन के धातु के अभ्यास को आदेश नहीं हुआ हो उस के परे
धातु के अभ्यास का लोप हो और दो हलों के बीच में जो अकार है उस को
एकार आदेश हो जावे कि लिट् परे होता जैसे। द+दध्+ए=देधे। देधाते।
देधिरे। देधिषे। देधाथे। देधिष्ये। देधे। देधिवहे। देधिमहे। दधिता।
दधिष्यते। (लिट्) में विशेष ॥ १२५ ॥

१२६—अत उपधायाः ॥ अ० ॥ ७। २। ११६ ॥

अङ्ग के उपधा अकार को जित् णित् प्रत्ययों के परे वृद्धि हो जावे। इस से
णित् पक्ष में वृद्धि होती है। दाधिषतै। दाधिषातै। दाधिषते। दाधिषाते।
दधिषतै। दधिषातै। दधिषते। दधिषाते। दधतै। दधातै। दधते। दाधातै।
दाधिषतै २। दधिषतै २। दधतै २। इत्यादि। दधताम्। अदधत। दधेत।
दधिषीष्ट। अदधिष्ट। अदधिष्यत ॥ [स्कुदि] आप्रवणे (कूदना) ॥ १२६ ॥

१२७—इदितो नुम् धातोः ॥ अ० ॥ ७। १। ५८ ॥

जिस धातु का इ इत् गया हो उस को नुम् का आगम हो। (नुम्) मित् का
आगम अन्त्य अच् से परे हुआ। स्कुनुम्+द+शप्+त=स्कुन्दते। स्कुन्दते। स्कुन्दन्ते।
लिट् में। चुस्कुन्दे। चुस्कुन्दति। चुस्कुन्दिरे। स्कुन्दिता। स्कुन्दिष्यते। स्कुन्दिषतै।
स्कुन्दिषातै। स्कुन्दताम्। अस्कुन्दत। स्कुन्देत। स्कुन्दिषीष्ट। अस्कुन्दिष्ट।
अस्कुन्दिष्यत ॥ [श्विदि] श्वेत्ये (श्वेत होना) श्विन्दते। श्विन्दिता।

धातु के आदिप्रकार को सकारादेश होवे । खदते । खर्दते । सखदे । सखर्दे ।
खदिता । खर्दिता । खदिष्यते । खर्दिष्यते । खादिषतै । खादिषातै । खर्दिषतै ।
खर्दिषातै । खदताम् । खर्दताम् । अखदत । अखर्दत । खदेत । खर्देत । खदिषीष्ट ।
खर्दिषीष्ट । अखदिष्ट । अखर्दिष्ट । अखदिष्यत । अखर्दिष्यत ॥ [उर्द]माने क्रीडयां
च । (तोलना, खेलना) ॥ १२८ ॥

१३०—उपधायां च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ७८ ॥

धातु के उपधाभूत हल् जिन से परे हों ऐसे रेफ वकार की उपधा इक् की दीर्घ होजावे । इस से उर्द धातु के उकार की सब लकारों में दीर्घ उकार होजाता है । जर्दते । और यह धातु इजादि गुरुमान् भी है इस से एध के समान लिट् लकार में आम् प्रत्यय आदि सब कार्य होजाते हैं । जर्दाञ्चक्रे । जर्दाञ्चक्राते । जर्दाञ्चक्रिरे । जर्दाञ्चभूव । जर्दाभास । जर्दिता । जर्दिष्यते । जर्दिपते । जर्दिषाते । जर्दताम् । (११८) और्दत । और्दत । और्दिषोष्ट । और्दिष्ट । और्दिष्यत ॥ [कुर्द, खुर्द, गुर्द, गुद,] क्रीडायामेव (खेलने हो में) पूर्व के समान उपधा की दीर्घ होकर । कूर्दते । खूर्दते । गूर्दते । चुकूर्द । चुखूर्द । जुगूर्द । गोदते । जुगुदे । कूर्दिता । कूर्दिष्यते । कूर्दिपते । कूर्दिषाते । कूर्दताम् । अकूर्दत । कूर्देत । कूर्दिषोष्ट । अकूर्दिष्ट । अकूर्दिष्यत । गोदिता । गोदिष्यते । गोदिपते । गोदिषाते । गोदताम् । अगोदत । गोदेत । गोदिषोष्ट । अगोदिष्ट । अगोदिष्यत ॥ [षूद] जरणे (भरना, वा नष्ट, होना) (१२८) सूदते । सुसूदे । सूदिता । सूदिष्यते । सूदिपते । सूदिषाते । सूदताम् । असूदत । सूदेत । सूदिषोष्ट । असूदिष्ट । असूदिष्यत । जो धातु उपदेश में मूर्द्धन्य-पकारादि हैं उन की व्यवस्था इस प्रकार समझना चाहिये कि ॥

भा०—अज्दन्त्यपराः सादयः षोपदेशाः । ह्रिड्, ख्रदि, ख्रिदि, स्वंजि, ख्रपयश्च । सृपि, सृजि, लृ, ल्या, सेल, सृ, वर्जम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ६४ ॥

जिन धातुओं के सकार से अच् तथा दन्त्य अक्षर परे ही वे सब षोपदेश धातु समझने चाहिये । दन्त्य अक्षरों में दन्त्याष्ट वकार का ग्रहण नहीं होता इसी से खस् आदि धातु ष्यक् पड़े हैं । और खप् आदि धातु अज् दन्त्य पर हैं इन की षोपदेश नहीं समझना चाहिये ॥ [ज्हाद] अव्यक्ते शब्दे (खष्ट उच्चारण का न होना) ज्हादते । ज्हादे । ज्हादिता । ज्हादिष्यते । ज्हादिपते । ज्हादिषाते । ज्हादताम् । अज्हादत । ज्हादेत । ज्हादिषोष्ट । अज्हादिष्ट । अज्हादिष्यत ॥ [ह्नादी] सुखे च (सुखहीना) यहां चकार से अव्यक्त शब्द की अनुवृत्ति आती है । और इसी प्रकार जिन जिन धातुओं के अर्थ के पश्चात् चकार पड़ा हो वहां २ सर्वत्र पूर्व धातु के अर्थ का संबंध समझ लेना चाहिये । ह्नादते । ज्हादे । इत्यादि ॥ [स्वाद] आस्वादने (चाखना) स्वादते । सस्वादे [पर्द] कुक्षिते शब्दे (निन्दत शब्द करना) पर्दते । पपर्दे । पर्दिता । पर्दिष्यते । पर्दताम् । अपर्दत । पर्देत । पर्दिषोष्ट । अपर्दिष्ट । अपर्दिष्यत ॥ [यती] प्रयत्ने (पुरुषार्थ) यतते । येते । येताते ।

येतिरे । यतिता । यतिष्यते । यातिषतै । यातिषातै । यतताम् । अयतत । यतेत
यतिषीष्ट । अयतिष्ट । अयतिष्यत ॥ [युट्, जुट्] भासने (प्रकाशहीना)
योतते । युयुते । जोतते जुजुते । योतिता । जोतिता । योतिष्यते । जोतिष्यते ।
इत्यादि ॥ [विथृ, वेथृ] याचने (मांगना) वेथते । विविथे । विवेथे । अभ्यास
को झस्व इकार होजाता है । वेथिता । वेथिष्यते ॥ [अथि] ग्रैथिल्ये (शिथिलता)
इदित् को नुम् (१२७) होकर । अन्यते । शन्यते । अन्यिता । अन्यिष्यते ॥ [ग्रथि]
कौटिल्ये (टेढ़ापन) ग्रन्यते । जग्रन्ये ॥ [कथ्य] ॥ आघायाम् (प्रशंसा) कथ्यते । चकथ्ये ।
कथ्यिता । कथिष्यते । कथिषतै । कथिषातै । कथ्यताम् । अकथ्यत । कथ्येत । कथि-
षीष्ट । अकथिष्ट । अकथिष्यत । इत्येधादय उदासा उदात्तेत आत्मनेपदिनः षट्त्रिंशत् ॥

अथाऽष्टत्रिंशत् परस्मैपदिनः । अब तबर्गान्तीं में अड्तीस ३८ धातु परस्मैपदी
हैं [अतः] सातत्यगमने (निरन्तर चलना) परस्मैपद में तिप् आदि नव ट्
प्रत्यय आये । अत् + शप् + तिप् = अतति । अततः । अतन्ति । अतसि । अतथः ।
अतथ । अतामि । अतावः । अतामः । लिट् में द्विर्वचन हीने के पश्चात् अभ्यास
को दीर्घ (११०) और एकादेश होकर । आत । आततुः । आतुः । आतिथ ।
आतथुः । आता आत । आतिव । आतिमा (लुट्) अतिता । अतितारौ । अतितारः ।
अतितासि । अतितास्यः । अतितास्य । अतितास्मि । अतितास्वः । अतितास्मः ।
(लट्) अतिष्यति । अतिष्यतः । अतिष्यन्ति । अतिष्यसि । अतिष्यथः । अतिष्यथा ।
अतिष्यामि । अतिष्यावः । अतिष्यामः (लेट्) आतिषति । आतिषाति । अतिषति ।
अतिषाति । इत्यादि (लोट्) अततु । अततात् । अतताम् । अतन्तु । अत । अत-
तात् । अततम् । अतत । अतानि । अताव । अताम (लङ्) आट् (११८) और उस
के साथ वृद्धि होकर । आतत् । आतताम् । आतन् । आतः । आततम् । आतत ।
आतम् । आताव । आताम (लिङ्) अतेत् । अतेताम् । अतेयुः । अतेः । अतेतम् ।
अतेत । अतेयम् । अतेव । अतेम (आशिष्लिङ्) संयोगादि यास् के सकार का
(स्कोः संयोगा०) सूत्र से लोप । अत्यात् । अत्यास्ताम् । अत्यासुः । अत्याः ।
अत्यास्तम् । अत्यास्त । अत्यासम् । अत्यास्व । अत्यास्म (लुङ्) ॥ १३० ॥

१३१—अस्ति सचोऽष्टक्ते ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८६ ॥

अस्ति धातु और सिच् प्रत्यय से परे अपृक्त हलादि सार्वधातुक को ईट् का
आगम ही । आत् = ईट्स = ईट् = त् । इस अवस्था में ॥ १३१ ॥

१३२—इट् ईटि ॥ अ० ॥ ८ । २ । २८ ॥

इट् से परे सकार का लोप हो ईट् परे ही तो । फिर त्रिपादी में हुए सिच्
लोप को असिद्ध मान के सन्धि प्राप्त नहीं है इस लिये ॥ १३२ ॥

१३३—वा०—सिज्लोपएकादेशे सिद्धो वक्तव्यः ॥

दीर्घ एकादेश करने में सिच् के सकार का लोप सिद्ध समझना चाहिये फिर दीर्घ एकादेश होकर । आतीत् । आतिष्ठाम् ॥ १३३ ॥

१३४—सिजस्यस्तविदिस्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १०६ ॥

सिच् प्रत्यय, अभ्यस्त संज्ञक धातु और विद् धातुओं से परे जो हित् लकार का भि उस को जुस् आदेश होवे । यहां सिच् से परे भि को जुस् होता है । आट् + अत् + सिच् + जुस् = आतिषुः ॥ १३४ ॥

१३५—वद्वज्जहलन्तस्याचः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३ ॥

परस्मैपद विषय में सिच् प्रत्यय परे हो तो वद, वज, और हलन्त धातुओं के अच् की वृद्धि होवे । यहां अच् ग्रहण इक् की निवृत्ति के लिये है । वद वज धातु भी हलन्त हैं इन का पृथक् ग्रहण इस लिये है कि लघु प्रकार जिन की उपधा में ही उन को विकल्प से वृद्धि कही है सो इन दोनों की नित्य ही होगी इस से अत धातु की वृद्धि प्राप्त हुई ॥ १३५ ॥

१३६—नेटि ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४ ॥

इडादि सिच् परे हो तो पूर्वोक्त हलन्त धातुओं के अच् की वृद्धि न होवे । । अत् धातु की आट् के आगम पक्ष में तो वृद्धि होने न होने में कुछ भेद नहीं परन्तु जहां आट् का निषेध है वहां विशेष है जैसे । माभवानतीत् । अतिष्ठाम् । अतिषुः । आतीः । आतिष्ठम् । आतिष्ठ । आतिषम् । आतिष्व । आतिष । आतिष्यत् । आतिष्यताम् । आतिष्यन् । आतिष्यः । आतिष्यतम् । आतिष्यत । आतिष्यम् । आतिष्याव । आतिष्याम ॥ [चित्] संज्ञाने (ठीक २ जानना) (५१) सूत्र से लघूपध चित् धातु को गुण हांकर । चित् + शप् + तिप् = चेतति । चेततः । चेतन्ति । चिचेत ॥ १३६ ॥

१३७—असंयोगास्त्रिट् कित् ॥ अ० ॥ १ । २ । ५ ॥

असंयोगान्त धातुओं से परे जो अपित् लिट् वह कित् संज्ञक होवे तिप्, सिप्, मिप्, के स्थान में जो आदेश हैं उन को छोड़ के अन्य अपित् समझने चाहिये (४५) से गुण नहीं होता । चिचित्तुः । चिचितुः । चिचेतिथ । चिचित्युः । चिचित । चिचेत । चिचितिथ । चिचितिम । चेतिता । चेतियति । चेतियति । चेतियाति । चेतति । चेताति । चेतत् । चेतात् । इत्यादि । चेततु । चेततात् । अचेतत् । चेतत् (८५) (४५) चित्यात् । अचेतोत् । अचेतियत् ॥ [च्युतिर्] आमेचने (सींचना) (५१) गुण । च्योतति । चुच्योत । चुच्युततुः । च्योतिता ।

च्योतिष्यति । च्योतिषति । च्योतिषाति । इत्यादि । च्योततु । च्योततात् ।
अच्योतत् । च्योतेत् । च्युत्यात् । च्युत्यास्ताम् । च्युत्यासुः । इत्यादि ॥ १३७ ॥

१३८—इरितो वा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५७ ॥

जिस धातु का इर् भाग इत् संज्ञक हुआ हो उस धातु से परे च्ति के स्थान में अङ्
आदेश विकल्प करके होवे । अट् + च्युत् + अङ् + तिप् = अच्युतत् । अच्युतताम् ।
अच्युतन् । अच्युतः । अच्युततम् । अच्युतत । अच्युतम् । अच्युताव । अच्युताम् ।
जिस पक्ष में अङ् नहीं होता वहां । अच्योतीत् । अच्योतिष्टाम् । अच्योतिषुः ।
इत्यादि । अच्योतिष्यत् ॥ [अच्युतिर्] चरणे (भरना, वा नाश होना) अच्योतिष्यति ।
अच्योतिष्यत । इत्यादि च्युत् के समान जानो ॥ [मन्य] विलोडने (विलोना) मन्यति ।
मन्यतः । मन्यन्ति । मन्यन् । मन्यता । मन्यन्ति । मन्यति । मन्यति । मन्यति ।
मन्यति । मन्याति । मन्यतु । मन्यतु । मन्यतु । मन्यतु ॥ १३८ ॥

१३९—अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २४ ॥

क्वित् ङित् प्रत्यय परे हों तो जिसका क्रस्व इकार इत् न गया हो ऐसा जो हलन्त
अङ्ग उस की उपधा के नकार का लोप होवे । मन्य् + यासुट् + तिप् = मन्थात् ।
(८५) अमन्यीत् । अमन्यिष्यत् ॥ [कुथि, पुथि, लुथि, मथि] हिंसासंक्लेशनयोः
(मारना, और अति दुःख देना) (१२७) तुम् ही के । कुन्थति । कुन्थतु ।
कुन्थता । कुन्थिष्यति । कुन्थिषति । कुन्थिषाति । कुन्थतु । अकुन्थत् । कुन्थेत् ।
कुन्थात् । इदित् के होने से (कुन्थात्) में (१३९) से नकार का लोप नहीं
हुआ । अकुन्थीत् । अकुन्थिष्यत् । पुथि आदि के रूप कुथि के समान होते हैं ॥
[विधू] गत्याम् (ज्ञान, गमन, प्राप्ति) यहां धातु के आदि षकार को स होकर ।
सेधति । सेधतः । सेधन्ति । सिसेध । सिसेधतुः । सिसेधुः । सेधिता । सेधिष्यति ।
सेधिषति । सेधिषाति । सेधतु । असेधत् । सेधेत् । सिध्यात् । असेधौत् । असेधिष्यत् ॥
[विधू] शास्त्रे माङ्गल्ये च (शिक्षा और मङ्गलाचरण) इस धातु के सामान्य रूप तो
पूर्व सिध् धातु के समान हैं और दीर्घ जकार इत् गया है इस लिये विशेष है ॥ १३९ ॥

१४०—स्वरतिसूतिसूयतिधूज्जुदितो वा ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४४ ॥

स्वरति, सूति, सूयति, धूज् और जुदित धातुओं से परे वलादि आर्द्धधातुक
को विकल्प करके इट् का आगम हो (लिट्) सिषेध । सिषिधतुः । सिषिधुः ।
अनिट् पक्ष में । सिध्-थल् ॥ १४० ॥

१४१—भाषस्तयोर्धोऽधः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४० ॥

धा धातु की ङीड़ के भाष् प्रत्याहार से परे जो त और थ उन की ध आदेश
हो । यहां थल् के थकार को ध होकर । सिषिध् + ध = सिषेध । यहां पूर्व धकार

को भूष् के परे जश्त्व होजाता है। पञ्च में। सिषेधिय। सिषिधयुः। सिषिध। सिषेध। सिषिध्व। सिषिधिव। सिषिध्वा। सिषिधिम (लुट्) सिध् + तास् + डा = सेडा। यहाँ भी पूर्ववत् तास् के तकार को धकार और पूर्व को जश्त्व होता है। सेडारौ। सेडारः। सेडासि। सेडास्यः। सेडास्य। सेडाम्नि। सेडास्यः। सेडाम्नः। सेट् पञ्च में। सेधिता। सेधितारौ। सेधितारः। इत्यादि (लट्) सिध् + स्य + तिप् = सेत्स्यति। यहाँ खर् के परे (भल्) धकार को (खरिच) सूत्रसे (घर्) तकार होजाता है। सेत्स्यतः। सेत्स्यन्ति। सेधिष्यति। सेधिष्यतः। सेधिष्यन्ति (लेट्) सेत्सति। सेत्साति। सेधिषति। सेधिषाति। सेत्सत्। सेत्सात्। सेत्सद्। सेत्साद्। सेधति। सेधाति। इत्यादि। सेधतु। असेधत्। सेधेत्। सिध्यात्। सिध्यास्ताम्। सिध्यासुः (लुङ्) अनिट् पञ्च में। अट् + सिध् + सिच् + तिप् = असेत्सीत् (१३५) (१३२) ॥ १४१ ॥

१४२—भालो भालि ॥ अ० ॥ ८। २। २६ ॥

भल् से परे जो सकार उस का लोप हो भल् परे हो तो। असिध् + स् + ताम् = असैडाम्। यहाँ सलोप होने के पश्चात्। ताम् के तकार को ध और पूर्व को जश्त्व होजाता है। असिध् + स् + भि = असैत्सुः। असिध् + स् + इट् + सिप् = असैत्सीः। असिध् + स् + थस् = असैडम्। असैड। असैत्सम्। असैत्स। असैत्सम्। सेट् पञ्च में। असेधीत्। असेधिष्टाम्। असेधिषुः। इत्यादि (लृङ्) अट् + सिध् + इट् + स्य + तिप् = असेत्स्यत्। असेत्स्यताम्। असेत्स्यन्। असेत्स्यः। असेत्स्यतम्। असेत्स्यत। असेत्स्यम्। असेत्स्याव। असेत्स्याम। सेट् पञ्च में। असेधिष्यत्। असेधिष्यताम्। असेधिष्यन् ॥ [खाट्] भक्षणे (खाना) इस धातु का ऋकार इत् जाता है। खादति। चखाद। खादिता। खादिष्यति। खादिषति। खादिषाति। खादतु। अखादत्। खादेत्। खाद्यात्। अखादीत्। अखादिष्यत् ॥ [खद] खैर्ये हिंसायां च (स्थिरहोना, मारना) और चकार से भक्षण अर्थ का भी समुच्चय होता है। खदति। खदु + खदु + णल् = चखाद (१२६)। चखदतुः। चखदुः। चखदिथ। चखदयुः। चखद ॥ १४२ ॥

१४३—खलुत्तमो वा ॥ अ० ॥ ७। १। ६१ ॥

उत्तम पुरुष का णल् आदेश विकल्प करके णित् संज्ञक होवे। स्वाभाविक णित् को विकल्प करने से प्राप्तविभाषा है। चखाद। चखद। णित् पञ्च में वृद्धि होती है अन्यत्र नहीं। खदिता। खदिष्यति। खदिषति। खदिषाति। खदतु। अखदत्। खदेत्। खद्यात् ॥ १४३ ॥

१४४—अतो हलादेर्लघोः ॥ अ० ॥ ७।२।७ ॥

परस्मैपद विषयक इडादि सिच् परे हो तो हलादि अङ्ग के लघु अकार की विकल्प करके वृद्धि होवे। अखादीत्। अखदीत्। यहां इडादि सिच् में वृद्धि का निषेध प्राप्त है इसलिये विधान है। अखदिथत् ॥ [बद्] स्थैर्ये (स्थित होना) बदति। बबाद। बेदतुः। बेदुः ॥ १४४ ॥

१४५—थल् च सेटि ॥ अ० ॥ ६।४।१२१ ॥

सेट् थल् परे हो तो लिट् लकार को भान के जिस धातु के आदि को कोई आदेश न हुआ हो उस के अभ्यास का लोप और दो हलों के बीच में जो अकार है उस को एकारादेश हो जावे। बद् + बद् + इट् + थल् = बेदिथ। बेदथुः। बेद। बबाद। बबद्। बेदिव। बेदिम। बदिता। बदिथति। बादिषति। बादिषाति। बदिषति। बदिषाति। बदति। बदाति। बदतु। अबदत्। बदेत्। बद्यात्। अबादीत् (१४४) अबदीत् ॥ [गद्] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) गदति। जगाद्। जगदतुः। गदिता। गदिथति। अगादीत्। अगदीत्। इत्यादि ॥ [रद्] विलेखने (काटना और जोतना) रदति। रराद्। रदिता। अरादीत्। अरदीत् ॥ [णद्] अव्यक्ते शब्दे (अप्रकट शब्द होना) ॥ १४५ ॥

१४६—णो नः ॥ अ० ॥ ६।१।६५ ॥

धातु के आदि णकार को नकारादेश होवे। नदति। ननाद्। नेदतुः। नेदुः। नेदिथ। नेदथुः। नेद। ननाद्। ननद्। नेदिव। नेदिम। नदिता। नदिथति। नादिषति। नादिषाति। नदतु। अनदत्। नदेत्। नद्यात्। अनादी। अनदीत्। णोपदेश धातुओं की व्यवस्था ॥ भा०—सर्वे नादयो णोपदेशाः। नृति, नन्दि, नर्दि, नकि, नाटि, नाथृ, नाष्टृ, नृवर्जम् ॥ अ० ॥ ६।१।६५ ॥ नकारादि धातु सब णोपदेश समझने चाहिये परन्तु नृति आदि धातुओं को छोड़ के। अर्थात् नृति आदि णोपदेश नहीं क्योंकि णोपदेशों को कहा कार्य्य नृति आदिको नहीं होगा ॥ [अर्द] गती *याचने च (मांगना) अर्दति। अर्दतः। अर्दन्ति ॥ १४६ ॥

१४७—तस्मान्नुड्विहलः ॥ अ० ॥ ७।४।७१ ॥

दीर्घ किये हुए अभ्यास के आकार से परे जो द्विहल् धातु उस को नुट् का आगम होवे। नुट् टित् होने से अभ्यास से परे द्वितीय भाग के आदि में होता

(*) इस बात पर भी ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि (गति, हिंसा) आदि अर्थ जो अनेक धातुओं में बहुधा आते हैं उन के अर्थ भाषा में बार २ नहीं लिखेंगे और जिस अर्थ के साथ चकार पढ़ते हैं वहां पूर्व धातु के अर्थ का समुच्चय सर्वत्र समझना चाहिये ॥

है। आ+नुट्+अर्द+णल्=आनर्द। आनर्दतुः। आनर्दुः। आनर्दिष्य। आनर्दयुः।
 आनर्द२। आनर्दिव। आनर्दिम। अर्दिता। अर्दिष्यति। अर्दिषति। अर्दिषाति।
 अर्दतु। अर्दत्। अर्देत्। अर्द्यात्। अर्दीत्। अर्दिष्टाम्। अर्दिषुः। अर्दिष्यत्॥
 [नर्द, गर्द] शब्दे (शब्द होना) नर्दति। गर्दति। ननर्द। जगर्द। नर्दिता।
 नर्दिष्यति। नर्दिषति। नर्दिषाति। नर्दतु। अनर्दत्। नर्देत्। नर्द्यात्। अनर्दीत्।
 अनर्दिष्यत्॥ [तर्द] हिंसायाम् (मारना) तर्दति। ततर्द॥ [कर्द] कुत्सिते
 शब्दे (निन्दित शब्द करना) कर्दति। चकर्द। अकर्दीत्॥ [खर्द] दन्दशूके
 (दाँतों से काटना) खर्दति। चखर्द। अखर्दीत्। अखर्दिष्यत्॥ [अति, अदि]
 वन्धने (बांधना) (१२७) अन्तति। अन्दति। आ+अन्त्+णल् (१४७)
 =आनन्त। आनन्द। अन्तिता। अन्तिष्यति। अन्तिषति। अन्तिषाति। अन्ततु।
 आन्तत्। अन्तेत्। अन्त्यात्। आन्तीत्। आन्तिष्यत्॥ [इदि] परमैश्वर्ये (विद्या,
 धन, पुत्रादि की प्राप्ति) इद्+अप्+तिप् (इन्दति। यह धातु नुमागम होने
 के पश्चात् इजादि गुरुमान हो जाता है। फिर (१००) (१०१) (१०२)
 (१०३) इत्यादि सूत्रों से। इन्द्+आम्+क्त+णल्=इन्दाञ्चकार। इन्दाञ्चक्रतुः।
 इन्दाञ्चक्रुः॥ १४७ ॥

१४८—कृष्टभृवृस्तुद्रुसुश्रुवो लिटि ॥ अ० ॥ ७।२।१३ ॥

क, स्र, भृ, वृ, स्तु, द्रु, सु, श्रु, इन धातुओं से परे जो लिट् वलादि आर्द्ध-
 धातुक उस को इट् का आगम न होवे। क आदि सब धातु अनिट् हैं इन से
 परे सामान्य आर्द्धधातुक को इट् का निषेध हो ही जाता फिर यह सूत्र निय-
 मार्थ है कि जितने अनिट् धातु हैं उन सब से परे लिट् का इडागम होजावे
 इन क आदि से परे न हो। इसी नियम से। एधाञ्चकृषे। एधाञ्चकृषहे। एधा-
 ञ्चमहे। जर्दाञ्चकृषे। इत्यादि में इट् नहीं होता और यल् में विशेष है॥ १४८ ॥

१४९—ऋतो भारद्वाजस्य ॥ अ० ॥ ७।२।६३ ॥

तास् प्रत्यय के परे नित्य अनिट् जो ऋकारान्त धातु उस से परे यल् वलादि
 आर्द्धधातुक को भारद्वाज आचार्य के मत में इट् का आगम न होवे। इन्दाञ्चक
 +यल्=इन्दाञ्चकर्ष। यल् के पितृ होने से गुण होजाता है। इन्दाञ्चक्रयुः।
 इन्दाञ्चक्र। इन्दाञ्चकार (१४३) इन्दाञ्चकर। इन्दाञ्चकृष। इन्दाञ्चकृम। इन्दिता।
 इन्दिष्यति। इन्दिषति। इन्दिषाति। इन्दतु। ऐन्दत्। इन्देत्। इन्द्यात्। ऐन्दीत्।
 ऐन्दिष्यत्॥ [विदि, भिदि] अवयवे (अवयव करना) विन्दति। भिन्दति।
 विविन्द। विभिन्द। विन्दिता। विन्दिष्यति। विन्दिषति। विन्दिषाति। विन्दतु।

अबिन्दत् । बिन्देत् । बिन्द्यात् । अबिन्दीत् । अबिन्दिष्यत् ॥ [गडि] बदनैकदेशे (मुख का अवयव) गण्डति । जगण्ड । गण्डिता । गण्डिष्यति ॥ [णिदि] कुत्सा-
याम् (निन्दा) निन्दति । निनिन्द ॥ [टुनदि] समृद्धौ (सम्पत् का होना)
नन्दति । ननन्द । नन्दिता । नन्दिष्यति ॥ १४६ ॥

१५०—आदिर्जिटुडवः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५ ॥

धातु के आदि जो जि, टु, और डु इन की इत् संज्ञा हो । यहां टुनदि धातु
के टु की इत्संज्ञा हो कर लोप हो जाता है ॥ [चदि] आह्लादने दीप्ती च
(आनन्द और प्रकाश का होना) चन्दति । चचन्द ॥ [त्रदि] चेष्टायाम् (अ-
वयवों का चलाना) चन्दति । तचन्द । चन्दिता ॥ [कदि, क्रदि, क्लदि] आह्वाने
रोदने च (बुलाना, रोना) कन्दति । क्रन्दति । क्लन्दति । चकन्द । चक्रन्द ।
चक्लन्द । कन्दिता । कन्दिष्यति । कन्दिषति । कन्दिषाति । कन्दतु । अकन्दत् ।
कन्देत् । कन्द्यात् । अकन्दीत् । अकन्दिष्यत् ॥ [क्लिदि] परिदेवने (क्लेश होना)
क्लिन्दति । चिक्लिन्द । क्लिन्दिता ॥ [शुन्ध] शुद्धौ (पवित्र करना) शुन्धति । शुशुन्ध
शुन्धिता । शुन्धिष्यति । शुन्धिषति । शुन्धिषाति । शुन्धतु । अशुन्धत् । शुन्धेत् ।
शुन्ध् + यासुट् + तिप् = शुध्यात् (१३८) । अशुन्धीत् । अशुन्धिष्यत् ॥ अतादय
उदात्ता उदान्ततोऽष्टत्रिंशत् परस्मैपदिनः समाप्ताः ॥

अथ हानवतिः कवर्गीयान्ताः । अब आगे कवर्गीयान्त ६२ धातुओं का व्याख्यान
है उन में प्रथम शीक आदि ४२ वयालीस आत्मनेपदी हैं ॥ [शीक] सेचने
(सींचना) ऋकार की इत् संज्ञा । एध् के समान प्रयोग सिद्धि जानो । शीकते ।
शिशीके । शीकिता । शीकिष्यते । शीकिषते । शीकिषाते । शकीताम् । अशी-
कत । शीकेत । शीकिषीष्ट । अशीकिष्ट । अशीकिष्यत ॥ [लोक] दर्शने (देखना)
लोकते । लोकेते । लोकन्ते । लोकसे । लोकथे । लोकध्वे । लोके । लोकावहे ।
लोकामहे । लुलोके । लुलोकाते । लुलोकिरे । लुलोकिषे । लुलोकाथे । लुलोकिध्वे ।
लुलोके । लुलोकिवहे । लुलोकिमहे । लोकिता । लोकितारौ । लोकितारः ।
लोकितासे । लोकितासाथे । लोकिताध्वे । लोकिताहे । लोकितास्वहे । लोकि-
तास्महे । लोकिष्यते । लोकिष्येते । लोकिष्यन्ते । लोकिष्यसे । लोकिष्यथे । लोकि-
ष्यध्वे । लोकिष्ये । लोकिष्यावहे । लोकिष्यामहे । लोकिषते । लोकिषाते ।
लोकिषते । लोकिषाते । लोकतै । लोकातै । लोकते । लोकाते ।
लोकिषैते २ । लोकैते २ । लोकिषन्ते । लोकिषान्ते । लोकिषन्ते । लोकिषान्ते ।
लोकन्तै । लोकान्तै । लोकन्ते । लोकान्ते । लोकिषसै । लोकिषासै । लोकिषसे ।

लोकिषासे । लोकसै । लोकासै । लोकसे । लोकासे । लोकिषैथे २ । लोकैथे २ ।
लोकिषध्वै । लोकिषाध्वै । लोकिषध्वे । लोकिषाध्वे । लोकध्वै । लोकाध्वै । लोकध्वे ।
लोकाध्वे । लोकिषैर । लोकिषेर । लोकैर । लोकेर । लोकिषावहैर । लोकिषावहैर ।
लोकावहैर । लोकावहैर । लोकिषामहैर । लोकिषामहैर । लोकामहैर । लोकामहैर ।
लोकताम् । लोकेताम् । लोकन्ताम् । लोकस्व । लोकेयाम् । लोकध्वम् । लोकै ।
लोकावहै । लोकामहै ॥ अलोकत । अलोकेताम् । अलोकन्त । अलोकथाः । अ-
लोकेयाम् । अलोकध्वम् । अलोके । अलोकावहि । अलोकामहि ॥ लोकेत । लो-
केयाताम् । लोकेरन् । लोकेथाः । लोकेथायाम् । लोकेध्वम् । लोकेय । लोकेवहि ।
लोकेमहि ॥ लोकिषीष्ट । लोकिषीयास्ताम् । लोकिषीरन् । लोकिषीठाः । लो-
किषीयास्थाम् । लोकिषीध्वम् । लोकिषीय । लोकिषीवहि । लोकिषीमहि । अलो-
किष्ट । अलोकिषाताम् । अलोकिषत । अलोकिष्ठाः । अलोकिषायाम् । अलोकि-
ध्वम् । अलोकिषि । अलोकिष्वहि । अलोकिषहि ॥ अलोकिष्यत । अलोकिष्येताम् ।
अलोकिष्यन्त । अलोकिष्यथाः । अलोकिष्येयाम् । अलोकिष्यध्वम् । अलोकिष्ये ।
अलोकिष्यावहि । अलोकिष्यामहि ॥ [श्लोक्] शङ्कते (डकड़ा करना) इस धातु का
अर्थ योगरूढ़ होने से धर्म का सञ्चय (कीर्ति) और पद वाक्यों का संचय (श्लोक)
कहाता है । श्लोकते । श्लोके । श्लोकिता । श्लोकिष्यते । श्लोकिषतै । श्लोकिषातै ।
श्लोकतम् । अश्लोकता । श्लोकेत । श्लोकिषीष्ट । अश्लोकिष्ट । अश्लोकिष्यत ॥ [ट्रेक्, प्रेक्]
शब्दोत्साहयोः (शब्दकरना, और उत्साह होना) ट्रेकते । दिट्रेके । ट्रेकिता । ट्रेकिष्यते ।
ट्रेकिषतै । ट्रेकिषातै । ट्रेकताम् । अट्रेकत । ट्रेकेत । ट्रेकिषीष्ट । अट्रेकिष्ट ।
अट्रेकिष्यत । प्रेकते । दिप्रेके ॥ [रेक्] शङ्कायाम् । (मन्देह करना) रेकते । रिरिके ।
रेकिता । रेकिष्यते ॥ [सेक्, स्नेक्, स्त्रकि, अकि, सकि] गत्यर्थाः । इन तीनों का गति
अर्थ है । सेकते । सिसेके । स्नेकते । सिस्नेके । सङ्कते । सस्त्रङ्के । अङ्कते । शशङ्के ।
सङ्कते । शसङ्के ॥ [शकि] शङ्कायाम् (संशय होना) शङ्कते । शशङ्के ॥
[अकि] लक्षणे (चिन्ह) अङ्कते । अङ्क् + अङ्क् + एश् = आनङ्के (११०)
(१४७) । आनङ्काते । आनङ्किरे । अङ्किता । अङ्किष्यते ॥ [वकि] कौटिल्ये
(टेढ़ाहोना) वङ्कते । ववङ्के । वङ्किता । वङ्किष्यते । वङ्किषतै । वङ्किषातै ।
वङ्कताम् । अवङ्कत । वङ्केत । वङ्किषीष्ट । अवङ्किष्ट । अवङ्किष्यत ॥ [मकि] मण्डने
(भूषण) मङ्कते । ममङ्के ॥ [ककि] लील्ये (चलितहोना) कङ्कते । चकङ्के ।
[कुक्, वक्,] आदाने (लेना) कीकते । चुकुके । वक्कते । वक्के ॥ १५० ॥

१५१—वा०—ऋटुपधेभ्यो लिटः कित्त्वं गुणात्पूर्वविप्रतिषेधेन ॥
जिन की उपधा में ऋकार हो उन धातुओं से परे लिट् प्रत्यय गुण होने से पूर्व

(मन्द २ चलना, वा अयोग्य व्यवहार करना) फक्कति । पफक्क । फक्किता । फक्किथति । फक्किषति । फक्किषाति । फक्कतु । अफक्कत । फक्केत । फक्कयात् । अफक्कीत् । अफक्किथत् ॥ [तक] सहने (हसना) तकति । तताक । तेकतुः । तेकुः । तेकिथ । तेकथुः । तेक । तताक । ततक । तेकिव । तेकिम । तकिता । तकिथति । ताकिषति । ताकिषाति । तकिषति । तकिषाति । तकति । तकाति । तकतु । अतकतु । तकेत् । तक्यात् । अताकीत् । अतकीत् । अताकिष्टाम् । अतकिष्टाम् । अतकिथत् ॥ [तकि] कृच्छ्र जीवने (कठिनता से जीवना) तद्धति । ततद्ध । तद्धिता ॥ [वुक्क] भूषणे (भूंसना) वुक्कति । वुवुक्क । वुक्किता । वुक्किथति ॥ [कख] हसने । कखति । चकाख । कखिता । अकाखीत् । अकखीत् ॥ [ओखू, राखू, लाखू, द्राखू, धाखू,] शोषणालमर्थयोः (सूखना, भूषण, पर्याप्त, और निषेध) ऋकार कौ इत्संज्ञा । ओखति । राखति । ओखाञ्चकार (१००) इत्यादि सूत्र लगते हैं । ओखिता । ओखिथति । ओखिषति । ओखिषाति । ओखतु । ओखत् । ओखेत् । ओख्यात् । ओखीत् । ओखिथत् ॥ [उख, उखि, वख, वखि, मख, मखि, णख, णखि, रख, रखि, लख, लखि, इख, इखि, ईखि, वलु, रगि, लगि, अगि, वगि, मगि, तगि, त्वगि, अगि, श्लगि, इगि, रिगि, लिगि,] गत्यर्थाः । ओखति । उ-ओखू-णल् । इस अवस्था में ॥ १५२ ॥

१५३ — अस्थायसस्याऽसवर्णं ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७८ ॥

असवर्ण अच् परे हो तो अभ्यास के इवर्ण उवर्ण को इयङ् उवङ् आदेश ही यह सूत्र यणादेश का बाधक है । और गुण हो जाने से यह धातु इजादि गुरुमान् तो हो जाता है । परन्तु सन्निपात परिभाषा अर्थात् जो जिस के आश्रय से समर्थ होता है वह उस का विरोधी न होना चाहिये । यहां लिडादेश (एल्) प्रत्यय को मान के गुण होता है । आम् प्रत्यय के होने से उसी लिडादेश एल् का लुक् हो जावे । इस लिये आम् नहीं होता । उ+ओखू+णल्=उवोख । जखतुः । यहां सवर्ण अच् के परे उवङ् नहीं होता सवर्णदीर्घ एकादेश ही जाता है । जखुः । उवोखिथ । जखथुः । जख । उवोख । जखिव । जखिम । ओखिता । ओखिथति । ओखिषति । ओखिषाति । ओखतु । ओखतात् । ओखत् । ओखेत् । उख्यात् । ओखीत् । ओखिथत् । उद्धति । उद्धाञ्चकार । उद्धाञ्चक्रतुः । उद्धाञ्चक्रुः । उद्धाम्बभूव । उद्धामास । ववाख । ववतुः (१२८) वद्धति । ववद्ध । मखति । ममाख । मेखतुः । मेखुः । मखिता । मखिथति । माखिषति । माखिषाति । मखिषति । मखिषाति । मखति । मखाति । माखिषत् । माखिषात् । माखिषद् । माखिषाद् । मखिषत् । मखिषात् । मखिषद् । मखिषाद् । मखत् । मखात् । मखद् । मखाद् ।

इत्यादि । अमाखीत् । अमखीत् । नखति । ननाख । नेखतुः । नहति । ननह ।
 एखति । इयेख (१५३) एखिता । एखिष्यति । ऐखिषति । ऐखिषाति । एखतु ।
 एखतात् । ऐखत् । एखेत् । इख्यात् । ऐखीत् । ऐखिष्यत् । इहति । इह्वाञ्चकार ।
 ऐह्वीत् । इह्वाञ्चकार । बल्गति । बबल्ग । रङ्गति । ररङ्ग । लङ्गति । ललङ्ग ।
 अङ्गति । आनङ्ग (१४७) वङ्गति । ववङ्ग । इङ्गति । इङ्गाञ्चकार । इङ्गामास ।
 इङ्गाञ्चभूव । इङ्गिता । इङ्गिष्यति । इत्यादि ॥ [रिख, त्रख, त्रिखि, शिखि]
 इत्यपि केचित् । रिख आदि चार धातु किङ्की आचर्यों के मत में पूर्व उख आदि
 धातुओं के समान गत्यर्थ हैं । रेखति । ररेख । रिरिखतुः । रेखिता । रेखिष्यति ।
 रेखिषति । रेखिषाति । रेखतु । अरेखत् । रेखेत् । रिख्यात् । अरेखीत् । अरे-
 खिष्यत् । त्रखति । तत्राख । त्रहति । तत्रह । शिङ्गति । शिशिङ्ग ॥ [त्वगि]
 कम्पने च (कांपना) त्वङ्गति । तत्वङ्ग ॥ [युगि, जुगि, वुगि] वर्जने (वर्ज-
 देना) युङ्गति । युयुङ्ग ॥ (घघ) हसने (हंसना) घघति । जघाघ । जघघ ।
 घाघिषति । घाघिषाति । घघिषति । घघिषाति । अघाघीत् । अघघीत् । अघ-
 घिष्यत् ॥ [मघि] मण्डने (समाधान करना) मङ्गति । ममङ्ग ॥ [लघि] शोषणे ।
 लङ्गति । ललङ्ग ॥ [शिघि] आम्राणे (सूधना) शिङ्गति । शिशिङ्ग । शिङ्घिता ।
 शिङ्घिष्यति । शिङ्घिषति । शिङ्घिषाति । शिङ्गतु । अशिङ्घत् । शिङ्घेत् ।
 शिङ्घ्यात् । अशिङ्घीत् । अशिङ्घिष्यत् ॥ इति फक्कादय उदात्ता उदात्तेतो
 द्विपंचाशत् समाप्ताः ॥ फक्क आदि ५२ धातु समाप्त हुए ॥

अथ चवर्गीयान्तास्त्रिनवतिः । अब यहां से आगे ९३ चानवे धातुओं का
 व्याख्यान है ॥ [वर्च] दीप्तौ (प्रकाशहोना) वर्चते । वर्चिता । वर्चिष्यते । वर्चिषतै ।
 वर्चिषातै । वर्चताम् । अवर्चत । वर्चत । वर्चिषीष्ट । अवर्चिष्ट । अवर्चिष्यत ॥
 [घच] सेचने सेवने च (सींचना, सेवाकरना) सचते । सेचे । सेचाते । सेचिरे ।
 सचिता । सचिष्यते । साचिषतै । साचिषातै । साचिषते । साचिषाते । सचिषतै ।
 सचिषातै । सचिषते । सचिषाते । सचतै । सचातै । सचते । सचाते । सचताम् ।
 असचत । सचेत । सचिषीष्ट । असचिष्ट । असचिष्यत ॥ [लोच] दर्शने (देखना)
 लोचते । लुलोचे । लोचिषतै । लोचिषातै ॥ [शच] व्यक्तायां वाचि (स्पष्टबोलना)
 शचते । शेचे । शाचिषतै । शाचिषातै । अशचिष्ट ॥ [श्वच, श्वचि] गती । श्वचते ।
 श्वच्यते । शश्वचे । शश्वचे । श्वाचिषतै ॥ [कच] बन्धने (बांधना) कचते । चकचे ।
 कचिता । कचिष्यते । काचिषतै । काचिषातै । कचताम् । अकचत । कचेत ।
 कचिषीष्ट । अकचिष्ट । अकचिष्यत ॥ [कचि, काचि] दौष्टिबन्धनयोः (प्रकाश-
 और बांधना) कच्चते । काच्चते । चकच्चे । चकाच्चे ॥ [मच, मुचि] कलकने

(अभिमानकरना) सचते । सुचते । मेचे । सुमुञ्चे । मचिता । मचिष्यते । माचिषतै ।
 माचिषातै । मचताम् । अमचत । मचेत । मचिषीष्ट । अमचिष्ट । अमचिष्यत ॥
 [मचि] धारणोक्तायपूजनेषु (धारणा, बढ़ना, सत्कार करना) मञ्चते । ममञ्चे ।
 मञ्चिषतै । मञ्चिषातै ॥ [पचि] व्यक्तीकरणे (प्रकट करना) पञ्चते । पपञ्चे ।
 पञ्चिषतै । पञ्चिषातै ॥ [छुच] प्रसादे (प्रसन्न होना) स्तोचते । तुष्टुचे । स्तोचिषतै ।
 स्तोचिषातै । स्तोचताम् । अस्तोचत । स्तोचेत । स्तोचिषीष्ट । अस्तोचिष्ट । अस्तो-
 चिष्यत ॥ [ऋज] गति स्थानार्जनोपार्जनेषु । (गति) ज्ञान, गमन, प्राप्ति, स्थिति,
 सञ्चय, संमीप में वस्तु जोड़ना) अर्जते । ऋज् + ऋज् + एश् = आनृजे । (१०६)
 (३८) (११०) (१४७) आनृजाते । आनृजिरे । अर्जिता । अर्जिष्यते । अर्जिषतै ।
 अर्जिषातै । अर्जताम् । अर्जत । अर्जेत । अर्जिषीष्ट । अर्जिष्ट । अर्जिष्यत ॥
 [ऋजि, भृजी] भर्जने (भूजना) ऋञ्जते । भर्जते । ऋञ्जाञ्चक्रे । वभृजे । ऋञ्जिता ।
 भर्जिता । ऋञ्जिष्यते । आर्जिष्ट । अभर्जिष्ट ॥ [एज, भ्रेज, भ्राज] दीप्ती (प्रकाश
 होना) एजते । एजाञ्चक्रे । एजाम्बमूव । एजामास । एजिता । एजिष्यते । एजिषतै ।
 एजिषातै । एजताम् । एजत । एजेत । एजिषीष्ट । एजिष्ट । एजिष्यत । भ्रेजते ।
 विभ्रेजे । भ्राजते । वभ्राजे । इत्यादि ॥ [ईज] गतिकुत्सनयोः (गति, निन्दा)
 ईजते । ईजाञ्चक्रे । ईजाम्बमूव । ईजामास । ईजिता । ईजिष्यते । ईजिषतै ।
 ईजिषातै । ईजताम् । ऐजत । ईजेत । ईजिषीष्ट । ऐजिष्ट । ऐजिष्यत । इति
 वर्चादयउदात्ता अनुदात्तेत एकविंशतिः समाप्ताः ॥

अथ द्विसप्ततिर्नञ्यन्ताः परस्मैपदिनः । अब यहां से आगे परस्मैपदी ७२
 वहस्तर धातुओं का व्याख्यान है ॥ [शुच] शोके (शोचना) शोचति । शुशोच ।
 शुशुचतुः । शोचिता शोचिष्यति । शोचिषति । शोचिषाति । शोचिषत् ।
 शोचिषात् । शोचिषद् । शोचति । शोचाति । शोचतु । अशोचत् । शोचेत् । शुच्यात् ।
 अशोचीत् । अशोचिष्यत् ॥ [कुच] शब्देतारे (एकरस शब्द होना) कोचति ।
 चुकोच । कोचिषति । कोचिषाति ॥ [कुञ्च, क्रुञ्च] गतिकीटिल्याल्पीभावयोः
 (टेढ़ा चलना, थोड़ा होना) कुञ्चति । क्रुञ्चति । चुकुञ्च । चुक्रुञ्च । कुच्यात्
 (१३८) क्रुच्यत् ॥ [लुञ्च] अपनयने (दूर करना) लुञ्चति । लुलुञ्च । लुञ्चिता ।
 लुच्यात् (१३८) अलुञ्चत् । अलुञ्चिष्यत् ॥ [अञ्चु] गतिपूजनयोः (पूजा)
 अञ्चति । अञ्चिषति । अञ्चिषाति । अच्यात् * ॥ वञ्चु, चञ्चु, तञ्चु, त्वञ्चु, म्रुञ्चु,

* अञ्चुधातु के नकार का लीप गति अर्थ में ही होता है और (नाञ्चिः पूजायाम् । अ० । ६ । ४ । ३० ।)
 इस सूत्र से पूजा अर्थ में नकार का लीप नहीं होता वहां (अञ्चयात्) प्रयोग होता है ॥

ग्लुचु, मुचु, ग्लुचु] गत्यर्थाः । वञ्चति । वच्यात् । चच्यात् । तच्यात् । त्वच्यात् । मुच्यात् । ग्लुच्यात् ॥ १५३ ॥

१५४—जृस्तम्भुमुचुमुचुगुचुग्लुचुग्लुञ्चुश्चिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५८ ॥

जृ, स्तम्भु, मुचु, ग्लुचु, गुचु, ग्लुचु, और चि धातुओं से परे जो चि प्रत्यय उस के स्थान में अङ् आदेश विकल्प करके होते हैं । अमुचत् । अम्नीचीत् । अग्लुचत् । अग्लोचीत् ॥ [गुचु, ग्लुचु, कुजु, खुजु,] स्तियकरणे (चोरी करना) गोचति । जुगोच । जुगुचतुः । गोचिता । गोचिष्यति । गोचिषति । गोचिषाति । गोचतु । अगोचत् । गोचेत् । गुच्यात् । अगुचत् । अगोचीत् । ग्लोचति । ग्लुच्यात् । अग्लुचत् । अग्लोचीत् । कोजति । चुकोज । कुज्यात् । अकोजीत् । खुज्यात् । अखोजीत् । [ग्लुञ्चु, षञ्ज] गतौ । ग्लुञ्चति । जुग्लुञ्च । ग्लुच्यात् (१३६) अग्लुचत् । अग्लोचीत् । सञ्जति * ससञ्ज । सञ्जिता । सञ्जिष्यति । सञ्जिषति । सञ्जिषाति । सञ्जतु । असञ्जत् । सञ्जेत् । सञ्ज्यात् । असञ्जीत् । असञ्जिषत् ॥ सञ्जतिः स्वरितेदित्येके । किङ्की आचार्यों के मत में यह सञ्ज धातु स्वरितेत् अर्थात् आत्मनेपदी भी है इस से । सञ्जते । ससञ्जे । इत्यादि प्रयोग भी होते हैं ॥ [गुञ्जि] अव्यक्ते शब्दे (अप्रकट शब्द का होना) गुञ्जति । जुगुञ्ज । गुञ्ज्यात् । अगुञ्जीत् । अगुञ्जिष्यत् ॥ [अर्च] पूजायाम् । अर्चति । आनर्च (११०) (१४७) अर्चिता । अर्चिष्यति । अर्चिषति । अर्चिषाति । अर्चतु । आर्चत् । अर्चेत् । अर्चात् । आर्चीत् । आर्चिष्यत् ॥ [ल्लेच्छ] अव्यक्ते शब्दे । ल्लेच्छति । मिस्लेच्छ ॥ [लक्, लाक्] लक्षणे (चिह्न) लक्कति । ललक्छ । लक्छिता । लक्छिष्यति । लक्छिषति । लक्छिषाति । लक्छतु । अलक्छत् । लक्छेत् । लक्छ्यात् । अलक्छीत् । अलक्छिष्यत् । लाक्कति । ललाक्क ॥ [वाक्] इच्छायाम् । वाक्कति । ववाक्क ॥ [आक्] आयामे (विस्तार) आज्कति । आक्क । आक्किता । आक्किष्यति । आक्किषति । आक्किषाति । आक्कतु । आक्कत् । आक्केत् । आज्क्यात् । आक्कीत् । आक्किष्यत् ॥ [क्लीक्] लज्जायाम् । क्लीक्कति । जिक्कीक्क ॥ [हुर्क] कौटिल्ये (कुटिलपन) (१३०) इस सूत्र से रेफ की उपधा को दीर्घ होकर । हर्क्कति । जुहर्क्क । हर्क्किता । हर्क्किष्यति । हर्क्किषति । हर्क्किषाति । हर्क्कतु । अहर्क्कत् । हर्क्केत् । हर्क्क्यात् । अहर्क्कीत् । अहर्क्किष्यत् ॥ [सुर्क] मोहसमुच्छाययोः (अज्ञान, बड़ना) मूर्क्कति । सुमूर्क्क ॥ [स्फूर्क] विस्तृतौ (विस्तार) स्फूर्क्कति । पुस्फूर्क्क (१२४) अस्फूर्क्कीत् ॥ [युक्] प्रमादे । युक्कति ।

* ससञ्ज धातु के हल् सकार की (स्त्री: युना यु:) इस सूत्र से शकार और उस शकार की भलां जश् भंशि, इस सूत्र से जकार होजाता है ॥

चिच्चिथि (१५८) (१४६) चिच्चेथ । चिच्चिथयुः । चिच्चिथ । चिच्चाय । चिच्चय । चिच्चिविथ । चिच्चिथिम । चेता । चेतारौ । चेतारः । चेषति । चैषति । चैषाति । चेषति । चेषाति । चयतु । अचयत् । चयेत् ॥ १५६ ॥

१६०—अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २५ ॥

कृत-संज्ञक प्रत्यय और सार्वधातुक विषय को छोड़ के यकारादिकित्, डित्, प्रत्यय परे ही तो अजन्त अङ्ग को दीर्घ आदेश हो । चि + यासृट् + तिप् = चीयात् । चीयास्ताम् । चीयासुः । चीयाः । अचैषीत् । अचैषाम् । अचैषुः । अचैषीः । अचैष्टम् । अचैष्ट । अचैषम् । अचैष्व । अचैष्म । अचैष्यत् ॥ [चीज] अव्यक्ते शब्दे चीजति । चिच्चीज । अचौजीत् । अचौजिष्यत् ॥ [लज, लजि] भर्जने (भूजना) लजति । ललाज । ललज । लाजिषति । लाजिषाति । अलाजीत् । अलजीत् । लज्जति । ललज्ज ॥ [लाज, लाजि] भर्जने च (धमकाना) लाजति । ललाज । ललाजतुः । लाज्जति ॥ [जज, जजि] युद्धे (लड़ाई) जजति । जजाज । जजज । जाजिषति । जाजिषाति । अजाजीत् । अजजीत् । जज्जति । जजज्ज ॥ [तुज] हिंसायाम् । तोजति । तुतोज । तुतुजतुः । तोजिता ॥ [तुजि] पालने च । चकार से हिंसा अर्थ भी जानो । तुज्जति । तुतुज्ज ॥ [गज, गजि, गृज, गृजि, मुज, मुजि] शब्दार्थाः (शब्द होना) गजति । गज्जति । गर्जति । गृज्जति । मोजति । मुज्जति । जगाज । जगज्ज । जगर्ज । जगृज्ज । मुमोज । मुमुज्ज । अगाजीत् । अगजीत् ॥ [गज] मदे च (अहंकार) चकार से शब्दार्थ भी है ॥ [वज, व्रज] गतौ । वजति । ववाज । ववजतुः । ववजुः । ववाज । ववज । वाजिषति । वाजिषाति । वजतु । अवजत् । वजेत् । वज्यात् । अवाजीत् । अवजीत् । अवजिष्यत् । व्रजति । वव्राज । अव्राजीत् (१३५) नित्य वृद्धि होती है ॥ १६० ॥

१६१—तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । ७ ॥

तुज आदि जिन धातुओं के अभ्यास को वेद में दीर्घादेश आवे उस की सिद्धि इस सूत्र से समझनी चाहिये । तूतुजानः । जागाज । मूमोज । वावाज । वाव्राज । दाधार । मामहानः । इत्यादि । यह सूत्र सामान्य करके प्रवृत्त होता है

इति शुवादेय उदाप्ता उदाप्तेतः क्षि वर्जं परस्मैपदिनः समाप्ताः ॥

अथ टवर्गीयान्ता हाविंशल्यधिकं शतम् । अव टवर्गान्त १२२ एकसौ बाईस धातुओं का व्याख्यान है उन में से प्रथम ३६ धातु आत्मनेपदी हैं ॥ [अट] अतिक्रमण हिंसनयोः (उल्लंघना, मारना) अटते । आनट्टे । अट्टिता । अट्टिष्यते । अट्टिपते । अट्टिषाते । अट्टताम् । आट्टत । अट्टेत । अट्टिषीष्ट । आट्टिट । आट्टिष्यत ॥

[वेष्ट] वेष्टने (लपेटना) वेष्टते । विवेष्टे । अवेष्टिष्ट ॥ [चेष्ट] चेष्टायाम् (क्रिया) चेष्टते । चिचेष्टे । अचेष्टिष्ट ॥ [गोष्ट, लोष्ट] सङ्घाते (समुदाय) गोष्टते । जुगोष्टे । गोष्टिता । गोष्टिष्यते । गोष्टिषतै । गोष्टिषातै । गोष्टताम् । अगोष्टत । गोष्टेत । गोष्टिषीष्ट । अगोष्टिष्ट । अगोष्टिष्यत । लोष्टते । लुलोष्टे ॥ [घष्ट] चलने । घष्टते । जघष्टे । घष्टिता ॥ [स्फुट] विकसने (फैलना) स्फोटते । पुस्फुटे । स्फोटिता । स्फोटिष्यते । स्फोटिषतै । स्फोटिषातै । स्फोटताम् । अस्फोटत । स्फोटेत । स्फोटिषीष्ट । अस्फोटिष्ट । अस्फोटिष्यत ॥ [अठि] गती । अगठते । आनगठे ॥ [वठि] एकचर्यायाम् (एक का सेवन) वगठते । ववगठे ॥ [मठि, कठि] शोके (शोचना) मगठते । ममगठे । कगठते । चकगठे । कगठिता । कगठिष्यते । कगठिषतै । कगठिषातै । कगठताम् । अकगठत । कगठेत । कगठिषीष्ट । अकगठिष्ट । अकगठिष्यत ॥ [सुठि] पालने (रक्षा) सुगठते । सुमुगठे ॥ [हेठ] विवाधायाम् (मूर्खता) हेठते । जिहेठे ॥ [एठ] च । एठते । एठाञ्चक्रे । एठाञ्चभूष । एठामास ॥ [हिडि] गत्यनादरयोः (चलना, तिरस्कार) हिण्डते । जिहिण्डे । हिण्डिता । हिण्डिष्यते । हिण्डिषतै । हिण्डिषातै । हिण्डताम् । अहिण्डत । हिण्डेत । हिण्डिषीष्ट । अहिण्डिष्ट । अहिण्डिष्यत ॥ [हुडि] सङ्घाते । हुण्डते । जुहुण्डे ॥ [कुडि] दाहे (जलना) कुण्डते । चुकुण्डे ॥ [वडि] विभाजने (विभाग करना) वण्डते । ववण्डे ॥ [मडि] च । मण्डते ॥ [भडि] परिभाषणे (बहुत बोलना) भण्डते । वभण्डे । भण्डिता । भण्डिष्यते । भण्डिषतै । भण्डिषातै । भण्डताम् । अभण्डत । भण्डेत । भण्डिषीष्ट । अभण्डिष्ट । अभण्डिष्यत ॥ [पिडि] सङ्घाते । पिण्डते । पिपिण्डे ॥ [मुडि] मार्जने (शोधना) मुण्डते । सुमुण्डे ॥ [तुडि] तोडने (तोड़ना) तुण्डते ॥ [हुडि] वरणे (ग्रहण करना) हरण इत्येके । किन्हीं आचार्यों के मत में यह धातु हरने अर्थ में है । हुण्डते । जुहुण्डे ॥ [चडि] कोपे (क्रोध) चण्डते । चचण्डे । चण्डिता । चण्डिष्यते । चण्डिषतै । चण्डिषातै । चण्डताम् । अचण्डत । चण्डेत । चण्डिषीष्ट । अचण्डिष्ट । अचण्डिष्यत ॥ [शडि] रुजायां सङ्घाते च (रोग, समुदाय) शण्डते । शशण्डे ॥ [तडि] ताडने (ताड़ना) तण्डते । ततण्डे ॥ [पडि] गती । पण्डते । पपण्डे ॥ [कडि] मदे (अहंकार) कण्डते । चकण्डे ॥ [खडि] मत्थे । खण्डते । चखण्डे ॥ [ह्रीड, होड] अनादरे (तिरस्कार) ह्रीडते । होडते । जिह्रीडे । जुह्रीडे ॥ [वाडू] आप्लाव्ये (सब प्रकार चलना) वाडते । ववाडे ॥ [द्राडू, ध्राडू] विशरणे (मारना) द्राडते । दद्राडे । ध्राडते । दध्राडे ॥ [शाडू] श्लाघायाम् (अपनी प्रशंसा) शाडते । शशाडे ॥ इत्यष्टादय उदात्ता उदात्तितः षट्त्रिंशत् समाप्ताः । ये अष्ट आदि ३६ धातु समाप्त इए ॥

अथ परस्मैपदिनः षडशीतिः । अब ८६ व्याशी धातु परस्मैपदी कहते हैं ॥
 [श्रीट्] गर्वे (अभिमान) श्रीटति । शुश्रीट । श्रीटिता । श्रीटिष्यति । श्रीटिषति ।
 श्रीटिषाति । श्रीटतु । अश्रीटत् । श्रीटेत् । श्रीय्यात् । अश्रीटीत् । अश्रीटिष्यत् ॥
 [यौट्] बन्धने (बांधना) यौटति ॥ [स्लेट्, स्नेड्] उन्मादे (उन्मत्त होना)
 स्लेटति । मिस्लेट । स्नेडति । मिस्नेड ॥ [कटे] वर्षावरणयोः (वर्षना, ढांकना)
 इस धातु का एकार इत्संज्ञक होता है प्रयोजन आगे लिखा है । कटति । चकाट ।
 चकटतुः । चकटुः । कटिता । कटिष्यति । काटिषति । काटिषाति । कटिषति ।
 कटिषाति । कटति । कटाति । कटतु । अकटत् । कटेत् । कव्यात् । विकल्प
 करके वृद्धि (१४४) प्राप्त है इस लिये ॥ १६१ ॥

१६२—ह्यन्तक्षणाश्वसजागृणिश्वेदिताम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५ ॥

हकारान्त, संकारान्त, यकारान्त, क्षण, श्वस, जागृ, ण्यन्त, श्वि, और एकार
 जिन का इत् गया हो उन धातुओं को वृद्धि न हो इडादि सिच् परे हो तो ।
 अकटीत् । अकटिष्यत् ॥ [चटे] इत्येके । किङ्की आचार्यों के मत में कटे धातु
 के अर्थ में चटे भी है । चटति । अचटीत् ॥ [अट, पट] गतौ । अटति । आट ।
 आटतुः । आटुः । औटीत् । आटिष्यत् । पटति । पपाट । पेटतुः । पेटुः । पेटिष्य ।
 पेटिषुः । पेट । पपाट । पपट । पेटिष । पेटिम । पटिता । पटिष्यति । पाटिषति ।
 पाटिषाति । पटतु । अपटत् । पटेत् । पव्यात् । अपाटीत् । अपटीत् । अपटि-
 ष्यत् ॥ [रट] परिभाषणे (बहुत बोलना) रटति । रराट । रेटतुः । रेटुः ।
 अराटीत् । अरटीत् । अरटिष्यत् ॥ [लट] बाल्ये (बालकपन) लटति ।
 ललाट । लेटतुः । लाटिषति । लाटिषाति । लटतु । अलटत् । लटेत् । लव्यात् ।
 अलाटीत् । अलटीत् । अलटिष्यत् ॥ [शट] रुजाविशरणगत्यवसादनेषु ।
 (रोग, हिंसा, गति, पीड़ा) शटति । शशाट । शटिता । शटिष्यति । अशाटीत् ।
 अशटीत् । अशटिष्यत् ॥ [वट] वेष्टने (लपेटना) वटति । ववाट । ववटतुः
 (१२८) अवाटीत् । अवटीत् ॥ [किट, खिट] चासे (भय) केटति । खेटति ।
 चिकेट । चिकिटतुः । चिखिटुः । अकेटीत् । अखेटीत् ॥ [शिट, षिट,] अना-
 दरे (तिरस्कार) शेटति । सेटति । सिपेट ॥ [जट, भट] सङ्घाते (समुदाय)
 जटति । जजाट । जेटतुः । अजाटीत् । अजटीत् । जभाट । जभटतुः ॥ [भट]
 भृतौ (सेवा) भटति । बभाट ॥ [तट] उच्छ्राये (उंचाई) ॥ [खट] काङ्-
 चायाम् (इच्छा) खखाट । अखाटीत् ॥ [णट] नृती (नाचना) नटति ।
 ननाट । नेटतुः ॥ [पिट] शब्दसङ्घातयोः (शब्द, समूह) पेटति । पिपेट ।
 अपेटीत् ॥ [हट] दीप्तौ च (प्रकाश) हटति । जहाट । अहाटीत् । अहटीत् ॥

[षट्] अवयवे (विभाग करना) सटति । ससाट । सेटतुः । असाटीत् । अस-
टीत् ॥ [लुट्] विलोडने (विलोना) लोटति । लुलोट ॥ [चिट्] परप्रेष्ये
(दूसरे की सेवा करना) चेटति । चिचेट । चेटिता । चेटिष्यति । चेटिषति ।
चेटिषाति । चेटतु । अचेटत् । चेटेत् । चिव्यात् । अचेटीत् । अचेटिष्यत् ॥ [बिट्]
शब्दे । वेटति । विवेट ॥ [विट्] आक्रोशे (कोशना) वेटति । विवेट ॥ [हिट्]
इत्येके । किन्हीं आचार्यों के मत में विट् के स्थान में हिट् धातु आक्रोश अर्थ में
है । हेटति । जिहेट ॥ [इट्, किट्, कटी] गतौ । एटति । केटति । कटति ।
इयेट (१५३) चिकेट । चकाट । कटिता । कटिष्यति । काटिषति । काटिषाति ।
कटतु । अकटत् । कटेत् । कव्यात् । अकाटीत् । अकटीत् । अकटिष्यत् ॥ [मडि]
भूषायाम् (शोभा) मण्डति । ममण्ड ॥ [कुडि] वैकल्ये (व्याकुलता) कुण्डति ।
चुकुण्ड ॥ [सुट्, पुट्,] मर्दने (मलना) मोटति । पोटति । सुमोट । पुपोट ।
मोटिता । मोटिष्यति । मोटिषति । मोटिषाति । मोटतु । अमोटत् । मोटेत् ।
मुव्यात् । अमोटीत् । अमोटिष्यत् ॥ [चुडि] अल्योभावे (थोड़ा होना) चुण्डति ।
चुचुण्ड ॥ [मुडि] खण्डने (काटना) मुण्डति । मुमुण्ड । मुण्डिता । मुण्डिष्यति ।
मुण्डिषति । मुण्डिषाति । मुण्डतु । अमुण्डत् । मुण्डेत् । मुण्ड्यात् । अमुण्डीत् । अमु
ण्डिष्यत् ॥ [पुडि] चेत्येके । किन्हीं ऋषियों के मत में पुडि धातु भी मुडि के समान
खण्डन अर्थ में है ॥ [रुटि, लुटि] स्तेये (चोरी) रुण्टति । लुण्टति । रुरुण्ट ।
लुलुण्ट । लुण्टिता । लुण्टिष्यति । लुण्टिषति । लुण्टिषाति । लुण्टतु । अलुण्टत् ।
लुण्टेत् । लुण्ट्यात् । अलुण्टीत् । अलुण्टिष्यत् ॥ [रुठि, लुठि] इत्येके । किन्हीं
आचार्यों के मत में रुठि लुठि धातु भी चोरी अर्थ में हैं । रुण्टति । लुण्टति ।
रुलुण्ट । लुलुण्ट ॥ [स्फुटिर्] विशरणे (मारना) स्फोटति । पुस्फोट । स्फोटिता ।
स्फोटिष्यति । स्फोटिषति । स्फोटिषाति । स्फोटतु । अस्फोटत् । स्फोटेत् ।
स्फुट्यात् । अस्फुटत् । अस्फोटीत् (१३८) अस्फोटिष्यत् ॥ [पठ्] व्यक्तायां वाचि
(स्फुट बोलना) पठति । पपाठ । पेठतुः । पेठुः । पेठिष्यति । पठिता । पठिष्यति ।
पाठिषति । पाठिषाति । पठिषति । पठिषाति । पठतु । अपठत् । पठेत् । पठ्यात् ।
अपाठीत् । अपठीत् । अपठिष्यत् ॥ [वठ्] स्थूल्ये (मोटा होना) वठति । ववाठ ।
ववठतुः । ववठुः । वठिता । वठिष्यति । वाठिषति । वाठिषाति । वठतु ।
अवठत् । वठेत् । वठ्यात् । अवाठीत् । अवठीत् । अवठिष्यत् ॥ [मठ्]
मद् निवासयोः (अभिमान, वसना) मठति । ममाठ । मेठतुः । अमाठीत् ।
अमठीत् ॥ [कठ्] क्लृप्तजीवने (दुःख में जीवना) कठति । चकाठ । चकठतुः ।
अकाठीत् । अकठीत् ॥ [हठ्] पुतिशठत्वयोः (कूदना, मूर्खपन) हठति । जहाठ ।

जहठतुः । अहाठीत् । अहठीत् । अहठिष्यत् ॥ बलात्कार इत्येके । किङ्की आचार्यों के मत में हठ धातु बल से करने अर्थ में है । [रुठ, लुठ, उठ,] उपधाते (समीप-से मारना) रोठति । लोठति । रुरोठ । लुलोठ । रोठिता । रोठिष्यति । रोठिषति । रोठिषाति । रोठतु । अरोठत् । रोठेत् । रुठ्यात् । अरोठीत् । अरोठिष्यत् । ओठति । उवोठ (१५३) जठतुः । जठः । उवोठिष्यत् । ओठीत् । ओठिष्यत् ॥ [जठ] इत्येके । किङ्की आचार्यों के मत में यह जठ दीर्घ ऊकारान्त धातु है ऋष नही । जठति । जठाञ्चकार । जठाम्बभूव । जठामास ॥ [पिठ] हिंसासंक्ले-शनयोः (हिंसा, अतिदुःख) पेठति । पिपेठ । पेठिता । पेठिष्यति । पेठिषति । पेठिषाति । पेठतु । अपेठत् । पेठेत् । पिठ्यात् । अपेठीत् । अपेठिष्यत् । [शठ] कैतवे च (चुगली) चकार से हिंसा और संक्लेशन अर्थ भी जानो । शठति । शशठ । शैठतुः । शठिता । शठिष्यति । शाठिषति । शाठिषाति । शठतु । अशठत् । शठेत् । शठ्यात् । अशठीत् । अशठीत् । अशठिष्यत् ॥ [शुठ] प्रतिघाते (मारते हुए को मारना) शोठति । शुशोठ ॥ [शुठि] इत्येके । किङ्की लीगों के मत में शुठि (इदित्) धातु भी प्रतिघात अर्थ में है । शुषठति । शुशुषठ ॥ [कुठि] च । यहां चकार से प्रतिघात अर्थ का सम्बन्ध होता है । कुण्ठति । चुकुण्ठ ॥ [लुठि] आलस्ये प्रतिघाते च । यहां पूर्वोक्त प्रतिघात अर्थ का समुच्चय चकार से किया और अतिस्मृत होने के लिये प्रतिघात शब्द पढ़ भी दिया है । लुण्ठति । लुलुण्ठ ॥ [शुठि] शोषणे (सोखना) शुण्ठति ॥ [रुठि, लुठि] गती । रुण्ठति । लुण्ठति । [चुड्ड] भावकरणे (अभिप्राय जताना) चुड्डति । चुचुड्ड ॥ [अड्ड] अभियोगे (सर्वथा योग हीना) अड्डति । आनड्ड ॥ [कड्ड] कार्कश्ये (कठोरपन) कड्डति । चकड्ड । अकड्डीत् ॥ [क्रीडृ] विहारे (खेलना) क्रीडति । चिक्रीड । क्रीडिता । क्रीडिष्यति । क्रीडिषति । क्रीडिषाति । क्रीडतु । अक्रीडत् । क्रीडेत् । क्रीड्यात् । अक्रीडीत् । अक्रीडिष्यत् ॥ [तुडृ] तोड़ने (तोड़ना) तोडति । तुतोड । [तूडृ] इत्येके । तूडति । तुतूड । तूडिता । तूडिष्यति । तूडिषति । तूडिषाति । तूडतु । अतूडत् । तूडेत् । तूड्यात् । अतूडीत् । अतूडिष्यत् ॥ [हुडृ, झडृ, होडृ,] गती । होडति । जुहोड । जुहुडतुः । होडिता । होडिष्यति । होडिषति । होडिषाति । होडतु । अहोडत् । होडेत् । हुड्यात् । अहोडीत् । अहोडिष्यत् । झडति । जुहूड । जुहोड । जुहोडतुः । जुहोडुः ॥ [रौडृ] अनादरे (तिरस्कार) रौडति । रुरौड ॥ [रौडृ, लौडृ] उन्मादे (उन्मत्तपन) रौडति । रुरौड । लौडति । लुलौड ॥ [अड] उद्यमने (उद्यम) अडति । आड । आडतुः । आडुः ॥ [लड] विलासे । लडति । ललाड । लैडतुः । लडिता । लडिष्यति । लाडिषति । लाडिषाति ।

लडत् । अलडत् । लडेत् । लाडत् । अलाडीत् । अलडीत् । अलडिष्यत् ॥ [कडि]
मदे (अहंकार) कडति । चकाड । चकडतुः ॥ [कडि] इत्येके । कण्डति ।
चकण्ड ॥ [गडि] वदनैकदेशे (मुख का अवयव) गण्डति । जगण्ड । गण्डिता ।
गण्डिष्यति । गण्डिषति । गण्डिषाति । गण्डतु । अगण्डत् । गण्डेत् । गण्ड्यात् ।
अगण्डीत् । अगण्डिष्यत् । इति शीटादय उदात्ता उदात्तेतो हाशीतिः परस्मै-
पदिनः समाप्ताः । ये ८२ बयासी परस्मैपदी धातु समाप्त हुए ॥

अथ पवर्गीयान्ता हाशीतिः । तत्रानुदात्तेतः स्तोभत्यन्ताश्चतुस्त्रिंशत् । अब पवर्गान्त
८२ बयासी धातुओं का व्याख्यान है उन में पहिले ३४ चौतीस धातु आत्मने-
पदी हैं [तिप्, तेप्, षिट्, ष्टेप्,] चरणार्थाः (भरना) इन में प्रथम तिप्
धातु अनिट् है सो भूमिका में सेट् अनिट् व्यवस्था की देखो । तेपते । तेपेते ।
तेपन्ते । तितिपे । तितिपाते । तितिपिरे । और लिट् बलादि आर्द्धधातुक में
(१४८) सूत्र के नियम से इडागम होजाता है । तितिपिषे । तितिपाथे ।
तितिपिष्वे । तितिपे । तितिपिवहे । तितिपिमहे । तिप् + तास् + लुट् (१०८)
सूत्र से इडागम का निषेध होकर । तेप्ता । तेप्तारौ । तेप्तारः । तेप्तामे । तेप्तासाथे ।
तेप्ताध्वे । तेप्ताहे । तेप्तास्वहे । तेप्तास्महे । तेप्स्यते । तेप्स्येते । तेप्स्यन्ते । तेप्सतै ।
तेप्सातै । तेप्साते । तेपतै । तेपातै । तेपते । तेपाते । तेपताम् । अतेपत ।
तेपेत । १६२ ॥

१६३—लिङ्सिचावात्मनेपदेषु ॥ अ० ॥ १ । २ । ११ ॥

इग्वान् हलन्त धातु से परे जो भलादी लिङ् और सिच् सो कित्वत् हों
आत्मनेपद विषय में । यहाँ कित् संज्ञा होने से (४५) गुण नहीं होता । तिप्सीष्ट ।
तिप्सीयास्ताम् । तिप्सीरन् । लुङ् में । अट् + तिप् + सिच् + त (१४२) = अतिस ।
अतिप्साताम् । अतिप्सत । अतिप्थाः । अतिप्साथाम् । अतिबुध्म (१११)
अतिप्सि । अतिप्स्वहि । अतिप्स्महि । अतेप्स्यत । अतेप्स्येताम् । अतेप्स्यन्त ।
तितेपे । तिष्ट और तेष्ट धातु में लिट् में ही रूप भेद होता है । तेपिता । तेपिष्यते ।
तेपिषतै । तेपिषातै । तेपताम् । अतेपत । तेपेत । तेपिषीष्ट । अतेपिष्ट । अतेपिष्यत ।
स्तेपते । तिष्टिपे । तिष्टिपाते । तिष्टिपिरे । स्तेपिता । स्तेपिष्यते । स्तेपिषतै ।
स्तेपिषातै । स्तेपताम् । अस्तेपत । स्तेपेत । स्तेपिषीष्ट । अस्तेपिष्ट । अस्तेपिष्यत ।
तिष्टेपे । तिष्टेपाते । तिष्टेपिरे [थिष्ट, थेष्ट,] इत्यन्ये । थेपते । तिथिपे । तिथेपे ।
[तेष्ट] कम्पने (कांपना) [ग्लेष्ट] दैन्ये (दौनता) ग्लेपते । जिग्लेपे [टुवेष्ट]
कम्पने । टु की इसंज्ञा । वेपते । विवेपे । वेपिता । वेपिष्यते । वेपिषतै । वेपिषातै ।
वेपताम् । अवेपत । वेपेत । वेपिषीष्ट । अवेपिष्ट । अवेपिष्यत [केष्ट, गेष्ट, ग्लेष्ट,]

यहां चकार से कम्पन अर्थ का समुच्चय होता है। केषते। गेषते। ग्लेषते।
[मेषु, रेपु, लेपु] गतौ। मेषते। रेपते। लेपते। [हेपु, धेपु,] च। गति अर्थ में
हैं। हेपते। जिहेपे। धेपते। दिधेपे। धेपिता। धेपिष्यते। धेपिषतै। धेपिषातै।
धेपताम्। अधेपत। धेपेत। धेपिषीष्ट। अधेपिष्ट। अधेपिष्यत॥ [त्रपूष्]
लज्जायाम्। त्रपते। त्रपेते। त्रपन्ते॥ १६३॥

१६४—तृफलभजत्रपञ्च ॥ अ० ॥ ६। ४। १२२॥

तृ, फल, भज, और त्रप धातुओं के अकार को एकारादेश और अभ्यास
का लोप होवे। त्रप् + त्रप् + एण = त्रेपे। त्रेपाते। त्रेपिरे। त्रेपिषे। त्रेपाथे। त्रेपिध्वे।
त्रेपे। त्रेपिवहे। त्रेपिमहे। इस धातु का षकार इत् जाता है उस का तो प्रयोजन
कृदन्त में आवेगा। और ऊकार इत् जाने से ऊदित होकर (१४०) सूत्र से वलादि
आर्द्धधातुक की विकल्प से इडागम होता है। त्रपिता। त्रप्ता। त्रप्सारी। त्रप्सारः।
त्रपिष्यते। त्रप्स्यते। त्रापिषतै। त्रापिषातै। त्रपिषतै। त्रपिषातै। त्रापिषते।
त्रापिषाते। त्रपिषते। त्रपिषाते। त्राप्सतै। त्राप्सातै। त्राप्सते। त्राप्साते।
त्रप्सतै। त्रप्सातै। त्रप्सते। त्रप्साते। त्रपतै। त्रपातै। त्रपते। त्रपाते। इसी
प्रकार बीस २ प्रयोग आतां आदि सब प्रत्ययों में जानो। त्रपताम्। अत्रपत।
त्रपेत। त्रपिषीष्ट। त्रप्सीष्ट। अत्रपिष्ट। अत्रप्स (१४२) अत्रप्साताम्। अत्रप्सत।
अत्रपिष्यत। अत्रप्स्यत [कपि] चलने (चलना) कम्पते। चकम्पे। कम्पिता।
कम्पिष्यते। कम्पिषतै। कम्पिषातै। कम्पताम्। अकम्पत। कम्पेत। कम्पिषीष्ट।
अकम्पिष्ट। अकम्पिष्यत [रवि, लवि, अवि] शब्दे। रस्वते। ररस्वे। लस्वते।
ललस्वे। अस्वते। आनस्वे। [लवि] अवस्संसने च (लटकना) चकार से शब्द
[कवृ] वर्णे (रंग) कवते। चकवे। कविता। कविष्यते। काविषतै। काविषातै।
कवताम्। अकवत। कवेत। कविषीष्ट। अकविष्ट। अकविष्यत [क्लीवृ] अधाष्ठी
(भोलापन) क्लीवते। चिक्लीवे [चीवृ] मदे (अहङ्कार) चीवते। चिचीवे [शीभृ] कथने
(कहना) शीभते। शिशीमे [चौभृ] च। यहां चकार से कथन अर्थ का समुच्चय
होता है [रेभृ] शब्दे। रेभते। ररेभे [अभि, रभि,] इत्येके। अम्भते। आनम्भे।
रम्भते। ररम्भे [ष्मि, स्तम्भि] प्रतिबन्धे (बांधना) स्तम्भते। तस्तम्भे। स्तम्भिता।
स्तम्भिष्यते। स्तम्भिषतै। स्तम्भिषातै। स्तम्भताम्। अस्तम्भत। स्तम्भेत। स्तम्भिषीष्ट।
अस्तम्भिष्ट। अस्तम्भिष्यत। स्तम्भते। चस्तम्भे। स्तम्भ धातु में इतना विशेष है
कि जो उट् उपसर्ग इस के पूर्व हो तो उस के सकार को पूर्वसवर्ण (उट्ः स्यास्तम्भोः
पूर्वस्य) सूत्र से तकार होजाता है। उत्तम्भते। उत्तम्भेते। इत्यादि [जभी, जृभि,]
गात्रविनामि (शरीर का मरोरना) जभी धातु का दीर्घ ईकार इत् जाता है॥ १६४॥

१६५—रधिजभोरचि ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६१ ॥

अजादि प्रत्यय परे हो तो रध और जभ धातु की रुम् का आगम हो ।
जम्भते । जजम्भे । जम्भता । जम्भिष्यते । जम्भिषते । जम्भिषाते । जम्भताम् ।
अजम्भत । जम्भेत । जम्भिषीष्ट । अजम्भिष्ट । अजम्भिष्यत । जम्भते । जजम्भे ।
[शल्भ] कलने । शल्भते । शशल्भे । [वल्भ] भोजने । वल्भते । ववल्भे ।
[गल्भ] धार्य्ये (धीटता) गल्भते । जगल्भे । [स्त्रम्भु] प्रमादे (प्रमत्तपन)
स्त्रम्भते । सस्त्रम्भे । यह स्त्रम्भ धातु तालव्यादि भी है । अम्भते [ष्टुभु]
स्तम्भे (रोकना) स्तोभते । तुष्टुभे । स्तोभिष्यते । स्तोभिषते ।
स्तोभिषाते । स्तोभताम् । अस्तोभत । स्तोभेत । स्तोभिषीष्ट । अस्तोभिष्ट ।
अस्तोभिष्यत । इति तिपादय उदात्ता अनुदत्तेतस्तिपिवर्जमात्मनेभाषा अष्टचिं-
शत् समाप्ताः । ये पवर्गान्तीं में तिपआदि ३८ धातु समाप्त हुए ॥

अथ हाचत्वारिंशत्परस्मैपदिनः । अब बयालीस ४२ धातु परस्मैपदी कहते हैं
[गुप्] रक्षणे (रक्षा करना) ॥ १६५ ॥

१६६—गुपधूपविच्छिपणिपनिभ्य आयः ॥ अ० ॥ ३ । १ । २८ ॥

गुप्, धूप, विच्छि, पण, और पन धातुओं से स्वार्य में आय प्रत्यय हो ।
यहां जदित, गुप् धातु से आय प्रत्यय होकर । गुप्-आय । यहाँ आय प्रत्यय
की (४६) आर्द्धधातुक संज्ञा और (५१) गुण होके । गोपाय ॥ १६६ ॥

१६७—सनाद्यन्ता धातवः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३२ ॥

सन् आदि प्रत्यय जिन के अन्त में हों ऐसे प्रकृति प्रत्यय समुदायी की धातु संज्ञा
हो । सन्, क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष्, आचार अर्थ का क्तिप्, णिच्, यङ्, यक्, आय,
ईयङ्, णिङ्, ये सब सनादि प्रत्यय कहाते हैं । यहाँ गोपाय की धातु संज्ञा होकर
इस से लिट् आदि लकारों की उत्पत्ति और भू आदि धातुओं के समान इस
की भी धातु संज्ञा के सब कार्य होते हैं । गोपाय + शप् + तिप् + गोपायति ।
गोपायतः । गोपायन्ति । गोपायसि । गोपायथः । गोपायथ । गोपायामि ।
गोपायावः । गोपायामः । यहाँ शप् के अकार के साथ गोपाय के अकार की
पररूप एकादेश होजाता है ॥ १६७ ॥

१६८—आयादय आर्द्धधातुके वा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३१ ॥

आर्द्धधातुक प्रत्ययों की विवक्षा में गोपाय आदि धातुओं से आय आदि
प्रत्यय विकल्प करके हों । गोपाय—लिट् । यहाँ ॥ १६८ ॥

१६८—कास्प्रत्ययाद्राममन्त्रे लिटि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३५ ॥

लिट् लकार परे हो तो कास् धातु और प्रत्ययान्त धातुओं से आम् प्रत्यय हो, वेद विषय में न हो ॥ १६८ ॥

१७०—वा०—कास्यनेकाजग्रहणं कर्त्तव्यम्

(कास्प्र०) इस सूत्र पर वार्तिक कार प्रत्यय ग्रहण के स्थान में अनेकाच् ग्रहण करते हैं अर्थात् (कासनेकाज आममन्त्रे लिटि) ऐसा सूत्र करना चाहिये इस का प्रयोजन आगे । आवेगा अनेकाच् कहने से प्रत्ययान्त धातुओं का भी ग्रहण हो जाता है । यहां गोपाय प्रत्ययान्त धातु से आम् प्रत्यय होकर । गोपाय-आम्-लिट् । यहां ॥ १७० ॥

१७१—आर्द्धधातुके ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४६ ॥

यह अधिकार सूत्र है ॥ १७१ ॥

१७२—अतो लोपः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४८ ॥

आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हो तो अदन्त अङ्ग का लोप हो यहां गोपाय के अन्य अकार का लोप होकर । गोपाय+आम्+क+क+णल्=गोपायाञ्चकार (१०२) इत्यादि सूत्र लगते हैं । गोपायाञ्चक्रुः । गोपायाञ्चक्रुः । गोपायाञ्चभूव । गोपायामास । और जिस पक्ष में (१६८) सूत्र से आय प्रत्यय नहीं होता वहां । जुगोप । जुगुपतुः । जुगुपुः । यह धातु ऊदित है इस कारण वलादि आर्द्धधातुक में (१४०) सूत्र से विकल्प करके इडागम होता है । जुगोपिथ । जुगोप्थ । जुगुपथुः । जुगुप । जुगोप । जुगुपिव । जुगुव्व । जुगुपिम । जुगुम् । (लुट्) गोपायिता । गोपायितारौ । गोपायितारः । आय प्रत्यय के अभाव पक्ष में । गोपिता । गोपितारौ । गोपितारः । अनिट् पक्ष में गोप्ता । गोप्तारौ । गोप्तारः । गोपायिषति । गोपिषति । गोप्सति । गोपायिषति । गोपायिषति । गोपिषति । गोपिषति । गोप्सति । गोप्सति । गोपायति । गोपायति । गोपायतु । अगोपायत् । गोपायेत् । गोपाय्यात् (१०२) । गोपाय्यास्ताम् । गोपाय्यासुः । गुप्यात् । अगोपायीत् । अगोपीत् । अगोप्सीत् । अगोप्ताम् (१४२) अगोप्सुः । अगोप्सीः । अगोप्ताम् । अगोप्ताम् । अगोप्सम् । अगोप्सुः । अगोप्सुः । अगोपायिषत् । अगोपिषत् । अगोप्सत् । [धूप] सक्तापे (दुःख-हीना) धूपायति । धूपायतः । धूपायाञ्चकार । धूपायाञ्चभूव । धूपायामास (१६८) इत्यादि सूत्र लगते हैं । दुधूप (१६८) दुधूपतुः । धूपायिता । धूपिता । धूपायिषति । धूपिषति । धूपायिषति । धूपायिषति । धूपिषति । धूपिषति । धूपायतु

अधूपायत् । धूपायेत् । धूपाय्यात् । धूप्यात् । अधूपायीत् । अधूपीत् । अधूपा-
यिष्यत् । अधूपिष्यत् [जप, जल्प] व्यक्तायां वाचि (सष्ट बोलना) जपति ।
जल्पति । जजाप । जपतुः । जेषुः । जपिता । जपिष्यति । जापषति । जापि-
षाति । जपतु । अजपत् । जपेत् । जप्यात् । अजापीत् । अजपीत् । अजपिष्यत् ।
[जप] मानसे च (विचार पूर्वक मन में जपना) [चप] साम्बन्धे (शान्त होना) चपति
[षप] संमवाये (सम्बन्ध होना) सपति [रप, लप] व्यक्तायां वाचि । रपति । लपति ।
प्रलपति [चुप] मन्दायां गतौ (धीरे २ चलना) चोपति । चुचोप । चोपिता ।
चोपिष्यति । चोपिषति । चोपिषाति । चोपतु । अचोपत् । चोपेत् । चुप्यात् ।
अचोपीत् । अचोपिष्यत् [तुप, तुम्प, चुप, चुम्प, तुफ, तुम्फ, चुफ, चुम्फ] हिंसार्थाः
तोपति । तुतोप । तोपिता । तोपिष्यति । तोपिषति । तोपिषाति । तोपतु ।
अतोपत् । तोपेत् । तुप्यात् । अतोपीत् । अतोपिष्यत् । तुम्पति । तुतुम्प ।
तुतुम्पतुः । यहां संयोगान्त तुम्प धातु से परे लिट् (१३०) कित्त्वत् नहीं होता
इस से न लोप भी नहीं हुआ और प्र उपसर्ग से परे (प्रात्तुम्पतौ गवि कर्त्तरि)
यह पारस्कर प्रभृति गण का सूत्र है । गौ कर्त्ता है तो प्र उपसर्ग से परे तुम्प
धातु को सुट् का आगम होजाता है । प्रतुम्पति । और गण सूत्र में शिप् का
निर्देश करने से । प्रतोतुम्पति । यहां यङ्लुक् में सुट् नहीं होता । तुप्यात् ।
चुप्यात् । तुफ्यात् । चुफ्यात् (१३६) अतुम्पीत् । अतुम्पिष्यत् ॥ [पर्य, रफ, रफि,
अर्व, पर्व, लर्व, बर्व, मर्व, कर्व, खर्व, गर्व, शर्व, षर्व, चर्व] गतौ [चर्व] अर्द्धने च । चर्व
धातु (खाने) और गति दोनों अर्थ में है । पर्यति । पपर्य । रफति । रम्फति ।
अर्वति । आनर्व । अर्विता । अर्विष्यति । अर्विषति । अर्विषाति । अर्वतु । आर्वत् ।
अर्वेत् । अर्व्यात् । आर्वीत् । आर्विष्यत् । पर्वति । लर्वति । बर्वति । मर्वति ।
कर्वति । खर्वति । गर्वति । शर्वति । सर्वति । चर्वति । चचर्व । चर्विता । चर्वि
ष्यति । चर्विषति । चर्विषाति । चर्वतु । अचर्वत् । चर्वेत् । चर्व्यात् । अचर्वीत् ।
अचर्विष्यत् ॥ [कुवि] आच्छादने (ढांकना) कुम्बति । चुकुम्ब ॥ [लुवि, तुवि]
अर्द्धने (गति और मांगना) लुम्बति । तुम्बति । लुलुम्ब । तुतुम्ब ॥ [चुवि]
वक्त संयोगे । चुम्बति । चुचुम्ब ॥ [षृभु, षृम्भु] हिंसार्थाः । सभति । ससभ ।
सभिता । सभिष्यति । सभिषति । सभिषाति । सभतु । असभत् । सभेत् । सभ्यात् ।
असभीत् । असभिष्यत् । सभति । ससभ । सभ्यात् ॥ [षिभु, षिम्भु] इत्येके ।
किन्ही लोगों के मत में ये दोनों धातु भी हिंसार्थक हैं । सेभति । सिम्भति ।
सिम्भ्यात् ॥ [शुभ, शुम्भ] भाषणे (बोलना) भासने, इत्येके (प्रकाश)

हिंसायामित्यन्ये * । शोभति । शुशोभ । शोभिता । शोभिष्यति । शोभि
शोभिषाति । शोभतु । अशोभत् । शोभेत् । शुभ्यात् । अशोभीत् । अशोभि
शुभति । शुशुभ । शुभ्यात् ॥ इति गुपादय उद्गता उदात्तेत एकचत्वारिंशत्सम
ये गुप आदि ४१ इकतालीस धातु समाप्त हुए ॥

अथानुनासिकान्ता द्विचत्वारिंशत् । ततानुदात्तेतो दश । अब अर
कान्त ४२ वयालीस धातु कहते हैं उन में प्रथम धिणि आदि दश आत्मने
[धिणि, घुणि, घृणि,] ग्रहणे (ग्रहण करना) धिण्यते । यहाँ
आयस होकर (टुना घट्टः) सूत्र से नुम् के (तवर्ग) नकार को (
णकार हो जाता है । धिस्स्यते । धिस्सन्ते । जिधिस्से । धिष्णिता । धि
धिष्णिष्यते । धिष्णिषाते । धिष्णिताम् । अधिण्यत । धिण्येत । धिष्णिषीष्ट । अधि
अधिधिष्यत । धिस्स्यते । घृण्यते [घुण, घूर्ण] भ्रमणे (विचरना) घोण्यते ।
घोणिता घोणिष्यते । घोणिष्यते । घोणिषाते । घोणताम् । अधोण्यत । अध
घोणिषीष्ट । अधोणिष्ट । अधोणिष्यत । घूर्ण्यते । जुघूर्णे [पण] व्यवहा
च (लेना, देना और प्रशंसा) [पन] च । यहाँ चकार से स्तुति अर्थ
सम्बन्ध होता है व्यवहार का नहीं इसी लिये पन धातु पृथक् पड़ा है न
इकट्ठा ही पढ़ते । पण तथा पन धातु अनुदात्तेत् हैं सो पन धातु से स्तु
में ही आय प्रत्यय (१६६) सूत्र से होता है इस के साहचर्य से पण धातु
आय प्रत्यय स्तुति अर्थ में ही होता है और व्यवहार अर्थ में इस को आ
होने का अवकाश मिलने से आय प्रत्ययान्त पण धातु से आत्मनेपद
होता । पण + आय + शप् + तिप् = पणायति । पणायतः । पणायन्ति ।
ञकार । पणायाञ्चभूव । पणायामास (१६८) पेणे । पेणाते । पेणिरि ।
यितासि । पणितासे । पणायिष्यति । पणिष्यते । पणायतु । अपणायत्
येत् । पणायात् । पणिषीष्ट । अपणायीत् । अपणिष्ट । अपणायिष्यत् ।
प्यत । व्यवहार अर्थ में । पण्यते । पण्येते । पण्यन्ते । पन धातु स्तुति अर्थ में
पनायति । पनायाञ्चकार । पनायाञ्चभूव । पनायामास । पेने । पेनाते ।
पनायितासि । पनितासे । पनायिष्यति । पनिष्यते । पनायिषति । पनायि
पानिष्यते । पानिषाते । पनायतु । अपनायत् । पनायेत् । पनायात् । प
अपनायीत् । अपनिष्ट । अपनायिष्यत् । अपनिष्यत । [भाम] क्रोधे ।
वभासे । भामितासे । भामिष्यते । भामिष्यते । भामिषाते । भामताम् । अ
भासित । भामिषीष्ट । अभामिष्ट । अभामिष्यत । [चमूष्] सहने (न

* (इत्येके) और (इत्यन्ये) इत्यादि शब्द धातु पाठ में बहुधा आया करते हैं । उन क
वार लिख दिया है अब आगे वार २ नहीं लिखेंगे ॥

चमते । यह भी धातु ऊदित है । चक्षमे । चक्षमाते । चक्षमिरे । चक्षमिषे । चक्षंसे (१४०) इट् का आगम विकल्प करके होता है । चक्षमाथे । चक्षमिध्वे । चक्षन्ध्वे । चक्षमे ॥ १७२ ॥

१७३—म्वोश्च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ६५ ॥

म और व परे हों तो मकारान्त धातु के मकार को नकारादेश होवे । यहाँ व, म के परे क्षम् धातु के मकार को न ही कर मूर्धन्य षकार से परे णत्व हो जाता है । चक्षण्वहे । चक्षमिवहे । चक्षण्महे । चक्षमिमहे । क्षमिता । क्षन्ता । क्षन्तारौ । क्षन्तारः । क्षन्तासे । क्षमिष्यते । क्षंस्यते । क्षामिषतै । क्षामिषातै । क्षमिषतै । क्षमिषातै । क्षामिषते । क्षामिषाते । क्षमिषते । क्षमिषाते । क्षांसतै । क्षांसातै । क्षांसते । क्षांसाते । क्षंसतै । क्षंसातै । क्षंसते । क्षंसाते । क्षमतै । क्षमातै । क्षमते । क्षमाते । इसी प्रकार बीस२ प्रयोग (आताम्) आदि सब प्रत्ययों में जानो । क्षमताम् । अक्षमत । क्षमेत । क्षमिषीष्ट । क्षंसीष्ट । अक्षमिष्ट । अक्षंस्त । अक्षमिष्यत । अक्षंस्यत । यहाँ सर्वत्र अनिट् पक्ष में क्षम धातु के मकार को अनुस्वार हो जाता है ॥ [कमु] कान्ती (इच्छा) ॥ १७३ ॥

१७४—कमेर्णिङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३० ॥

कम धातु से णिङ् प्रत्यय हो स्वार्थ में । पश्चात् (१६७) धातुसंज्ञा और णिङ् प्रत्यय के परे (१२६) कम के अकार को वृद्धि होके कामि धातु से णिङ् प्रत्यय के डित् होने से आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं । कम् + णिङ् + शप् + त = कामयते । कामयते । कामयन्ते । कामि-आम्-लिट् ॥ १७४ ॥

१७५—अयामन्तात्वाय्येत्न्विष्णुषु ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५५ ॥

आम्, अन्त, आलु, आय्य, इलु और इष्णु प्रत्यय परे हों तो णि के स्थान में अय् आदेश हो (१७७) सूत्र से लोप पाया था सो न हो । अर्थात् लोप का अपवाद यह सूत्र है । कामयाच्चक्रे (१६८) कामयाच्चक्राते । कामयाच्चक्रिरे । कामयाच्चभूव । कामयामास (१६८) सूत्र से णिङ् प्रत्यय के अभाव पक्ष में । चकमे । चकमाते । चकमिरे । कामयिता । कामयितारौ । कामयितारः । कामयितासे । कामितासे । कामयिष्यते । कमिष्यते । कामयिषतै । कामयिषातै । कामिषतै । कामिषातै । कामयताम् । अकामयत । कामयेत । कामयिषीष्ट । कामिषीष्ट । कामि-च्लि-लुङ् । यहाँ च्लि प्रत्यय के स्थान में सिच् प्रत्यय प्राप्त है उस का अपवाद ॥ १७५ ॥

१७६—णिश्चिद्रुस्तुभ्यः कर्त्तरि चङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४८ ॥

ख्यन्त, चि, द्रु और स्तु धातुओं से परे च्चि प्रत्यय के स्थान में चङ् आदेश हो कर्त्ता में लुङ् परे हो तो । अट्-काम्-इ-चङ्-त । इस अवस्था में ॥ १७६ ॥

१७७—णेरनिटि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५१ ॥

अनिडादि आर्द्धधातुक प्रत्यय परे हों तो णि का लोप हो जावे । इसी विषय में (१५६) सूत्र से यण् आदेश पर त्व से प्राप्त है ॥ १७७ ॥

१७८—वा०-ण्यल्लोपावियङ्यण्गुणवृद्धिदीर्घभ्यः
पूर्वविप्रतिषेधेन भवतः ॥

णिलोप और (१७२) सूत्र से अकार का लोप ये दोनों कार्य, इयङ्, यण्, गुण, वृद्धि और दीर्घ से पूर्वविप्रतिषेध करके हो जाते हैं । णिलोप को (कार्यते) यहां अवकाश है । क्योंकि कारि धातु से यक् प्रत्यय के परे भावकर्म प्रक्रिया में णि का लोप हो जाता है और (चियौ) यहां इयङ् आदेश को (विव्यतुः । विव्युः) यहां यण् आदेश को, (चेता, स्तोता) यहां गुण को; (सखायौ) यहां वृद्धि को और (चीयते, स्तूयते) यहां दीर्घादेश को अवकाश है और (णेरनिटि) सूत्र से ये सब इयङ् आदि कार्य परे हैं । इन सब कार्यों का और णिलोप का जहां एक प्रयोग में आकर भगड़ा पड़ता है वहां परविप्रतिषेध मानने से इयङ् आदि कार्य प्राप्त हैं वार्त्तिक कार के प्रमाण से पूर्वविप्रतिषेध मान के णिलोप होजाता है इयङ् आदि नहीं होते । जैसे । अट्+तच्चि+चङ्+तिप् =अततच्चत् । यहां (१५६) सूत्र से इयङ् आदेश प्राप्त है उस को बाध के णिलोप होता है । आट्+आटि+चङ्+तिप्=आटिटत् । यहां (१५६) से यणादेश प्राप्त है उस से पूर्वविप्रतिषेध करके णिलोप होजाता है । कारि+युच्+टाप्=कारणा । यहां (२१) सूत्र से परत्व से गुण पाता है उस का अपवाद होकर णिलोप होता है । कारि+एवुल्+सु=कारकः । यहां (६०) सूत्र से वृद्धि प्राप्त है उस से पूर्वविप्रतिषेध करके णिलोप होजाता है और । कारि+यक्+त=कार्यते । यहां (१६०) सूत्र से परत्व से दीर्घ प्राप्त है उस से भी पूर्व विप्रतिषेध कर के णिलोप होजावे इस लिये (ण्यल्लोपावि०) यह वार्त्तिक है । और (कामि-चङ्-त) यहां तो (१५६) सूत्र से यणादेश परत्व से प्राप्त है उस से पूर्वविप्रतिषेध करके (१७७) सूत्र से णिलोप हो जाता है । फिर । अट्-काम्-चङ्-त । इस अवस्था में ॥ १७८ ॥

१७६—णौ चङ्युपधाया ऋस्वः ॥ अ० ॥ ७।४।१ ॥

चङ्परक णि के परे जिस की अङ्ग संज्ञा है उस की उपधा की ऋस्वादेष होजावे। यहां (काम्) की ऋस्व होकर। अट्-कम्-चङ्-त। इस अवस्था में १७६ ॥

१८०—चङि ॥ अ० ॥ ६।१।११ ॥

चङ् प्रत्यय परे हो तो अभ्यास धातु के प्रथम एकाच् अवयव की और अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व होजावे। अट्-कम्-कम्-चङ्-त। यहां (कम्) भाग को द्वित्व हुआ ॥ १८० ॥

१८१—सन्वल्घुनि चङ्परङ्गलोपे ॥ अ० ॥ ७।४।६३ ॥

धातु का लघु अक्षर जिस से परे हो ऐसा जो अभ्यास उस की जिस चङ् के परे अक् प्रत्याहार में किसी वर्ण का लोप न हुआ हो ऐसा णि परे हो तो सन्वत् कार्य हो अर्थात् सन् प्रत्यय के परे जो कार्य होता है सो अभ्यास को भी होजावे। चङ् प्रत्यय के परे जो णि का लोप होता है वह भी अक् लोप है परन्तु इसी सूत्र में चङ् जिस से परे हो ऐसे णि की अपेक्षा होने से णिलोप से अन्य अङ्गलोप समझा जाता है। और णिलोप को स्थानिवत् मान के इस सूत्र के अर्थ की प्रवृत्ति होती है ॥ १८१ ॥

१८२—सन्त्यतः ॥ अ० ॥ ७।४।७६ ॥

सन् प्रत्यय परे हो तो अभ्यास के अकार की इकार आदेश हो। अट्-किम् कम्-चङ्-त। इस अवस्था में ॥ १८२ ॥

१८३—दीर्घो लघोः ॥ अ० ॥ ७।४।८४ ॥

धातु के लघु अभ्यास को दीर्घ आदेश हो अङ्गलोपी चङ्परक णि परे हो तो। यहां (कि) को दीर्घ और (१०७) से ककार को चकार तथा (३८) से अभ्यास के हल् मकार का लोप और चङ् में (च,ङ्) का लोप होकर। अट् + ची + कम् + अ + त = अचीकमत। अचीकमेताम्। अचीकमन्त। अचीकमथाः। अचीकमेथाम्। अचीकमध्वम्। अचीकमे। अचीकमावहि। अचीकमामहि। और जिस पक्ष में आयादि णिङ् प्रत्यय (१६८) नहीं होता वहां ॥ १८३ ॥

१८४—वा०—कमेरुपसङ्ख्यानम् ॥ ६।१।४८ ॥

केवल कम धातु से परे जो चि उस के स्थान में चङ् आदेश होवे। अट् + कम् + कम् + चङ् + त = अचकमत (१८०) अचकमेताम्। अचकमन्त। अचकमथाः। अचकमेथाम्। अचकमध्वम्। अचकमे। अचकमावहि। अचकमामहि। इति घिण्यादय उदात्ता अनुदत्तेत आत्मनेभाषा दश समाप्ताः। ये घिणि आदि दश धातु समाप्त हुए ॥

अथ द्वात्रिंशत् परस्मैपदिनः । अव ३२ धातु अनुनासिकान्त परस्मैपदी कहते हैं [अण, रण, वण, भण, मण, कण, कण, व्रण, भ्रण, ध्वण] शब्दार्थाः । अणति । रणति । वणति । आण । आणतुः । आणुः । अणिता । अणिष्यति । आणिषति । आणिषाति । अणतु । आणत् । अणेत् । अण्यात् । आणीत् । आणिष्यत् । ववाण । ववणतुः (१२८) ववणुः । वणिता । वणिष्यति । वाणिषति । वाणिषाति । वणतु । अवणत् । वणेत् । वण्यात् । अवाणीत् । अवणीत् । अवणिष्यत् । भणति । वभाण । वभणतुः । अभाणीत् । अभणीत् । मणति । कणति । कणति । व्रणति । भ्रणति । ध्वणति ॥ [धण] इत्येके । धणति । दधाण । दधणतुः । धणिता । धणिष्यति । धाणिषति । धाणिषाति । धणतु । अधणत् । धणेत् । धण्यात् । अधाणीत् । अधणीत् । अधणिष्यत् ॥ [ओणृ] अपनयने (हठाना) ओणति । ओणाञ्चकार । ओणास्वभूव । ओणामास । ओणिता । ओणिष्यति । ओणिषति । ओणिषाति । ओणतु । ओणत् । ओणेत् । ओण्यात् । ओणीत् । ओणिष्यत् ॥ [ओणृ] वर्णगत्वोः (रंग और गति) ओणति । शुओण ॥ [ओणृ] सङ्घाते (समुदाय) ओणति । शुओण ॥ [लोणृ] च । सङ्घात अर्थ में । लोणति । शुलोण । [पैणृ] गतिप्रेरणश्लेषणेषु (गति, प्रेरणा और मिलाव) पैणति । पिपैण । पिपैणतुः । पिपैणुः । पैणिता । पैणिष्यति । पैणिषति । पैणिषाति । पैणतु । अपैणत् । पैणेत् । पैण्यात् । अपैणीत् । अपैणिष्यत् ॥ [धण, वण] शब्दे । यहाँ ध्रन धातु उपदेश में नान्त है पीछे रेफ से परे एत्व होजाता है । ध्रणति । वणति । ववाय । वेणतुः ॥ [कनी] दीप्तिकान्तिगतिषु (प्रकाश, इच्छा और गति) कनति । चकान । चकनतुः । कनिता । कनिष्यति । कानिषति । कानिषाति । कनतु । अकनत् । कनेत् । कन्यात् । अकानीत् । अकनीत् । अकनिष्यत् । [टन, वन] शब्दे । स्तनति । तस्तान । तस्तनतुः । स्तनिता । स्तनिष्यति । स्तानिषति । स्तानिषाति । स्तनतु । अस्तनत् । स्तनेत् । स्तन्यात् । अस्तानीत् । अस्तनीत् । अस्तनिष्यत् । वनति ॥ [वन, पण] संभक्तौ (भक्ति) वन धातु का दूसरा अर्थ होने से फिर पढ़ा है । सनति । ससान । सेनतुः । सेनुः । यह बात सब धातुओं में समझना चाहिये कि जहाँ लिट् लकार को मान के अभ्यास की कुछ आदेश होता है वहीं (१२५) सूत्र से (अनादेशादि) निषेध लगता है कि जैसे । वभणतुः । वभणुः । और जहाँ धातु के आदि प्रकार की स और णकार को न होजाता है वहाँ निषेध नहीं लगता इसी से । सेनतुः । सेनुः । यहाँ एत्वाभ्यसलोप (१२५) होता है । सनिता । सनिष्यति । सानिषति । सानिषाति । सनतु । असनत् । सनेत् ॥ १८४ ॥

॥ आख्यातिकः ॥

१८५—ये विभाषा ॥ अ० ॥ ६। ४। ४३ ॥

यकारादि कित् डित् प्रत्यय परे हो तो जन, सन, और खन आकार आदेश विकल्प करके हो। अलोन्त्य परिभाषा के आश्रय से नकार के स्थान में होता है (८५) से यासुट् कित् होता है। सन् + यात् तिप् = सायात्। सन्यात्। असानीत्। असनीत्। असनिष्यत् [अम गति आदि (गति, शब्द और सम्भक्ति) अर्थों में अम् धातु है। अमि आमतुः। आमुः। अमिता। अमिष्यति। आमिषति। आमिषाति। आमत्। अमेत्। अम्यात्। आमीत्। आमिष्यत् [द्रम, हम्, मी द्रमति। दद्राम। हम्सति। जहम्। मीमति। मिमीम। द्रम धातु अकारोपध है। इस में विकल्प से वृद्धि (१४४) प्राप्त है सो (१६२) होती। अद्रमीत्। अद्रमिष्यत् (मीम्) शब्दे च। यहां चकार गति दोनों अर्थ का बोध होने के लिये है [चमु, छमु, जमु, भमु] अदने (खान

१८६—ष्ठिबुक्तसुचमां शिति ॥ अ० ॥ ७। ३। ७५

ष्ठिवु, लसु, और चमु धातुओं के अच् को दीर्घ आदेश हो शित् हीं तो। इस सूत्र से इन धातुओं को सामान्य करके दीर्घ प्राप्त है ॥

१८७—वा०—दीर्घत्वमाङि चमइति वक्तव्यम्।

आङ् पूर्वक ही चम धातु को दीर्घ हो सर्वत्र नहीं। आचामति। आचामन्ति। आङ् का नियम इस लिये किया है कि। उच्चमति। यहां दीर्घ न हो। चचाम। चेमतुः। चेमुः। आचचाम। आचेमतुः। चमिता। चमिष्यति। चामिषति। चामिषाति। चमतु। आचामतु। आचामत्। चमेत्। आचामेत्। चम्यात्। आचमीत् (१६२) आ क्कमति। चच्छाम। चच्छमतुः। अच्छमीत्। जमति। जजाम। जेमत्। जमिता। जमिष्यति। जामिषति। जामिषाति। जमतु। अजमतु। जम्यात्। अजमीत्। भमति। जभाम। जभमतुः [जिमु] इत्येके जिजिम [क्रमु] पादविच्छेपे (पग फेंकना) ॥ १८७ ॥

१८८—वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्रमुक्तसुचसितुटिलषः ॥ अ० ॥

भ्राश, भ्लाश, भ्रमु, क्रमु, लसु, चसि, चुटि और लष धातुओं के श्यन् प्रत्यय हो कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हीं तो। और प होजाता है। इस सूत्र में प्राप्ताप्राप्तविभाषा है क्योंकि इन में जो धातु

अप्राप्त है। और श्यन् प्रत्यय तथा अन्य सब विकरण प्रत्यय (स्य, तास्, सिप्) आदि शप् प्रत्यय के अपवाद हैं ॥ १८८ ॥

१८९—क्रमः परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ७।३।७६ ॥

परस्मैपद संज्ञक शित् प्रत्यय परे हों तो क्रम धातु के अच् को दीर्घ होवे। क्रम् + श्यन् + तिप् = क्राम्यति। क्रम् + शप् + तिप् = क्रामति। और परस्मैपद का ग्रहण इस लिये है कि। आक्रमते आदित्यः। यहां पदव्यवस्था से आत्मनेपद में दीर्घ न होवे। चक्राम। चक्रमतुः। चक्रमुः। क्रमिता। क्रमिष्यति। क्रामिषति। क्रामिषाति। क्राम्यतु। क्रामतु। अक्राम्यत्। अक्रामत्। क्रामित्। क्राम्येत्। क्रम्यात्। अक्रमीत्। अक्रमिष्यत् ॥ इत्यणादय उदात्ता उदात्तेतो द्वाविंशत् परस्मैभाषाः समाप्ताः। ये ३२ वत्तीस धातु परस्मैपदी समाप्त हुए ॥

अथ यवर्गीयान्ता अष्टाविंशत्यधिकं शतम्। अब एकसौ अष्टाईस १२८ धातु यवर्गीयान्त कहते हैं [अय, वय, पय, मय, चय, तय, णय] गतों। अय् + शप् + त = अयते ॥ १८९ ॥

१९०—दयायासश्च ॥ अ० ॥ ३।१।३७ ॥

दय, अय और आस धातुओं से आम् प्रत्यय हो लिट् लकार परे हो तो। अय् + आम् + क्त + क्त + एश् = अयाञ्चक्रे। अयाञ्चक्राते। अयाञ्चकिरे। अयितासे। अयिष्यते। आयिषतै। आयिषातै। अयताम्। आयत। अयेत ॥ १९० ॥

१९१—विभाषिटः ॥ अ० ॥ ८।३।७६ ॥

इष् से परे जो इट् उस से परे जो सौध्वं, लुङ् और लिट् का धकार उस को मूर्धन्य आदेश विकल्प करके होजावे। धकार के स्थान में अन्तरतम आदेश ढकार होजाता है। अयिषीष्ट। अयिषीयास्ताम्। अयिषीरन्। अयिषीष्ठाः। अयिषीयास्याम्। अयिषीद्वम्। अयिषीध्वम्। अयिषीय। अयिषीवहि। अयिषीमहि। आयिष्ट। आयिषाताम्। आयिषत। आयिष्ठाः। आयिषाथाम्। आयिद्वम्। आयिध्वम्। आयिषि। आयिष्वहि। आयिषमहि। आयिष्यत ॥ १९१ ॥

१९२—उपसर्गस्यायतौ ॥ अ० ॥ ८।२।१६ ॥

अय धातु के परे पूर्व जो उपसर्ग उस के रेफ को लकार आदेश हो। जैसे प्र + अयते। प्लायते। पलायते। पलायाञ्चक्रे। निस् और दुस् उपसर्गों के सकार को स्त्व त्रिपादी में होता है उस को असिद्ध मानने से। निरयते। दुरयते। प्रयोग होते हैं। और जहां निर्, दुर् उपसर्ग हों वहां। निलयते। दुलयते। रूप वनते हैं। वयते। ववये (१२८) वयिता। वयिष्यते। वायिषतै। वायिषातै। वयताम्। अवयत। वयेत। वयिषीष्ट। वयिषीद्वम्। वयिषीध्वम्। अवयिद्वम्।

अवयिध्वम् । अवयिष्यत । पयते । पेये । पेयाते । पेयिरे । पयिषीद्वम् । पयिषीध्वम् ।
अपयिद्वम् । अपयिध्वम् । इसी प्रकार मय आदि के जानो [ण्य] रक्षणे च । ण्य
धातु के गति और रक्षा दोनों अर्थ हैं । नयते । नेये । नयिता । नायिषतै ।
नायिषातै । नयताम् । अनयत । नयेत । नयिषीष्ट । नयिषीद्वम् । नयिषीध्वम् ।
अनयिद्वम् । अनयिध्वम् । अनयिष्यत [द्य] दानगतिरक्षणहिंसादानेषु
(देना, गति, रक्षा और लेना) दयते । दयाञ्चक्रे (१८०) दयिता । दयिष्यते ।
[रय] गतौ रयते । रेये [जयी] तन्तु सन्ताने (सूतका फैलाना) जयते । जयाञ्चक्रे ।
[पूयी] विशरणे दुर्गन्धे च (मारना और दुर्गन्ध करना) पूयते । पुपूये । पूयिता ।
[क्यूयी] शब्दे उन्दे च (शब्द और गीलापन) क्यूयते । चुक्यूये [क्षायी] विधूनने
(कम्पाना) क्षायते । चक्षाये ॥ [स्फायी, ओप्यायी] वृद्धौ (बढ़ना) स्फायते ।
पस्फाये । जयी आदि धातुओं में दीर्घ ईकार इत् जाता है और प्यायी धातु में
ओकार और ईकार दोनों की इत्संज्ञा होती है । प्यायते ॥ १८२ ॥

१८३—लिङ्यङोश्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । २६ ॥

लिट् लकार और यङ् प्रत्यय परे हों तो प्यायी धातु को पी आदेश हो ।
प्याय-लिट् । इस अवस्था में प्रथम द्विवचन प्राप्त है उस को बाध के पी आदेश
हो जाता है । पीछे इस की प्राप्ति बनी रहने से द्वित्व होता है । पी+पी+
एश्=पिप्ये (१५६) से यणादेश होता है । पिप्याते । पिप्यिरे । पिप्यिषे ।
प्यायिता । प्यायिष्यते । प्यायिषतै । प्यायिषातै । प्यायताम् । अप्यायत । प्यायेत ।
प्यायिषीष्ट । प्यायिषीद्वम् । प्यायिषीध्वम् (१८१) ॥ १८३ ॥

१८४—दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्य-

तरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६१ ॥

दीपी, जनी, बुध, पूरी, तायू और प्यायी धातुओं से परे जो च्चि प्रत्यय उस
के स्थान में विकल्प करके चिण् आदेश होवे त शब्द परे ही तो । यहां प्यायी
धातु से परे होता है अन्य धातु आगे आवेंगे । अट्-प्याय्-चिण्-त । इस
अवस्था में ॥ १८४ ॥

१८५—चिणो लुक् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०४ ॥

चिण् से परे जो प्रत्यय उस का लुक् हो । यहां चिण् से परे (त) का लुक्
होता है । अट् + प्याय् + चिण् = अप्यायि । यहां (च्, ण्) की इत्संज्ञा और
लोप हो जाता है । और जिस पक्ष में च्चि के स्थान में चिण् नहीं होता वहां ।
अप्यायिष्ट । अप्यायिषाताम् । अप्यायिषत । अप्यायिषाः । अप्यायिषाथाम् ।

अप्यायिद्वम् । अप्यायिध्वम् (१८१) अप्यायिषि । अप्यायिष्वहि । अप्यायिष्वहि । अप्यायिष्वहि ।
 अप्यायिष्यत ॥ [तायृ] सन्तान पालनयोः (अपत्य, और रक्षा) तायते । तायेते ।
 तायन्ते । तताये । ततायिद्वे । ततायिध्वे । तताये । ततायावहे । ततायामहे ।
 तायितासे । तायिष्यते । तायिषतै । तायिषातै । तायताम् । अतायत । तायेत ।
 तायिषीष्ट । अतायिष्ट । अतायिष्यत [शल] चलनसंवरणयोः (चलना और
 ढांकना) शलते । श्ले । श्लेलाते । श्लेतिरे । शलितासे । शलिष्यते । शलिषतै ।
 शालिषातै । शलताम् । अशलत । शलेत । शलिषीष्ट । शलिषीद्वम् । शलिषीध्वम् ।
 अशलिष्ट । अशलिद्वम् । अशलिध्वम् । अशलिष्यत [वल, वल्ल] संवरणे संचरणे च
 (संवरण और सम्यक् विचरना) वलते । वल्लते । ववले (१२८) ववल्ले । वलिता ।
 वलिष्यते । वालिषतै । वालिषातै । वल्लताम् । अवलत । वलेत । वलिषीष्ट ।
 अवलिष्ट । अवलिष्यत [मल, मल्ल] धारणे (पदार्थों का धारण करना) मलते ।
 मल्लते । मेले । मेलीते । मेलिरे । ममल्ले । मलिता । मलिष्यते । मालिषतै । मालिषातै ।
 मलताम् । अमलत । मलेत । मलिषीष्ट । अमलिष्ट । अमलिष्यत [भल, भल्ल]
 परिभाषणहिंसादानेषु (बहुतबोलना, मारना और देना) भलते । भल्लते । वभल्ले ।
 वभल्ले । भलितासे । भलिष्यते । भालिषतै । भालिषातै । भलताम् । अभलत । भलेत ।
 भलिषीष्ट । अभलिष्ट । अभलिष्यत [कल] शब्दसंख्यानयोः (शब्द और गणना)
 कलते । चकले । चकलिद्वे । चकलिध्वे । कलितासे । कलिष्यते । कालिषतै ।
 कालिषातै । कलताम् । अकलत । कलेत । कलिषीष्ट । कलिषीद्वम् । कलि-
 षीध्वम् । अकलिष्ट । अकलिद्वम् । अकलिध्वम् । अकलिष्यत [कल्ल] अव्यक्ते शब्दे
 (अप्रकट बोलना) कल्लते । चकल्ले [तेह, देह] देवने (खिलना) तेवते । देवते ।
 तितेवे । दिदेवे । तितेविद्वे (१८१) तितेविध्वे । तेवितासे । तेविष्यते । तेविषतै ।
 तेविषातै । तेवताम् । अतेवत । तेवेत । तेविषीष्ट । तेविषीद्वम् । तेविषीध्वम् ।
 अतेविष्ट । अतेविद्वम् । अतेविध्वम् [पेह, गेह, ग्लेह, पेह, मेह, स्नेह] सेवने (सेवन)
 सेवते । सिपेवे । गेवते । जिगेवे । ग्लेवते । जिग्लेवे । पेवते । पिपेवे । मेवते ।
 मिमेवे । स्नेवते । मिस्नेवे [शेह, खेह, केह] इत्येके । शेवते । शिशेवे । खेवते ।
 चिखेवे । केवते । चिकेवे [रेह] प्लवगती (शीघ्र चलना) रेवते । रिरेवे । रेवितासे ।
 रेविष्यते । रेविषतै । रेविषातै । रेवताम् । अरेवत । रेवेत । रेविषीष्ट । अरेविष्ट ।
 अरेविष्यत ॥ इत्ययादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः सप्तत्रिंशत्समाप्ताः ।
 ये अय आदि ३७ (सैंतीस) धातु समाप्त हुए ॥

अथ परस्मैपदिन, एकनवतिः । अब यवर्गान्तीं में ८१ (इक्कानवे) धातु
 परस्मैपदी कहते हैं [मव्य] बन्धने (बांधना) मव्यति । ममव्य । ममव्यतुः ।

मव्यिता । मव्यिषति । मव्यिषति । मव्यिषाति । मव्यतु । अमव्यत् । मव्येत् ।
मव्यात् । अमव्यीत् । अमव्यिषत् [सूच्य, ईर्ष्य, ईर्ष्य] ईर्ष्यार्थाः (ईर्षा) सूच्यति ।
ईर्ष्यति । ईर्ष्यति । ईर्ष्याञ्चकार । ईर्ष्याञ्चकार । ईर्ष्यास्वभूव । ईर्ष्यामास । ईर्ष्यता ।
ईर्ष्यिषति । ईर्ष्यिषति । ईर्ष्यिषाति । ईर्ष्यतु । ऐर्ष्यत् । ईर्ष्येत् । ईर्ष्यात् । ऐर्ष्यीत् ।
ऐर्ष्यिषत् [हय] गतौ । हयति । जहाय । जहयतुः । हयिता । हयिषति ।
हायिषति । हायिषाति । हयतु । अहयत् । हयेत् । हय्यात् । अहयीत् (१६२)
वृद्धि नहीं होती [शुच्य, चुच्य] अभिषवे (यंत्र से सार रूप रस खींचना) शुच्यति ।
चुच्यति [हर्य] गतिकान्त्योः (गति और इच्छा) हर्यति । जहर्य [अल]
भूषणपर्याप्तिवारणेषु (भूषण, सामर्थ्य और निषेध) अलति । अल । अलतुः ।
आलुः । अलिता । अलिषति । आलिषति । आलिषाति । अलतु । आलत् ।
अलेत् । अल्यात् ॥ १६५ ॥

१६६—अतो लान्तस्य ॥ अ० ॥ ७ । २ । २ ॥

अकार के समीप जो रेफ और लकार तदन्त अङ्ग के अकार को वृद्धि हो
परस्मैपद विषय में सिच् प्रत्यय परे होती (१४४) सूत्र से विकल्प करके वृद्धि प्राप्त
है उस का यह अपवाद है । मा भवानालीत् । आलिष्टाम् । आलिषुः । अकार के
समीप रेफ लकार इस लिये कहे हैं कि । अवभ्रीत् । यहां अकार के समीप
भकार है रेफ नहीं [जिफला] विशरणे (मारना) इस धातु में (जि) और (आ)
दो वर्ण इत् जाते हैं । फलति । पफाल । फेलतुः । फेलुः । यहां अभ्यास के भल,
फकार को चर् पकार होता है इस कारण अनादेशादि के न होने से (१२५)
एत्वाभ्यासलोप नहीं प्राप्त है सो (१६४) सूत्र से हो जाता है । फलिता ।
फलिषति । फालिषति । फालिषाति । फलतु । अफलत् । फलेत् । फल्यात् ।
अफालीत् (१६६) अफलिषत् [मील, श्मील, स्मील, क्षील,] निषेधे (नेत्रों
को शीघ्र खोलना मींचना) मीलति । मिमील । मीलिता । मीलिषति ।
मीलिषति । मीलिषाति । मीलतु । अमीलत् । मीलेत् । मील्यात् । अमीलीत् ।
अमीलिषत् । श्मीलति । शिश्मील । स्मीलति । सिस्मील । क्षीलति । चिक्षील ।
[पील] प्रतिष्ठम्भे (रोकना) पीलति । पिपील [नील] वर्णे (नीला रंग)
नीलति । निनील [शील] समाधौ (निरन्तर योगाभ्यास करना) शीलति ।
शिशील [कील] बन्धने (बांधना) कीलति । चिकील [कूल] आवरणे
(ढांकना) कूलति । चुकूल । कूलिता । कूलिषति । कूलिषति । कूलिषाति ।
कूलतु । अकूलत् । कूलेत् । कूल्यात् । अकूलीत् । अकूलिषत् [शूल] रुजायां

सङ्घाते च (पीड़ा और समूह) शूलति [तूल] निष्कर्षे (बाहर निकालना)
तूलति । तुतूल [पूल] सङ्घाते । पूलति । पुपूल [मूल] प्रतिष्ठायाम् । मूलति ।
[फल] निष्पत्तौ (सिद्ध होना) फलति । पफाल । फेलतुः । फेलुः (१६४)
अफालीत् (१८६) [चुल्ल] भावकरणे (अभिप्राय जनाना) चुल्लति । चुचुल्ल
[फुल्ल] विकसने (फूलना) फुल्लति । पुफुल्ल [चिल्ल] शैथिल्ये भावकरणे च
(शिथिलता और अभिप्रायजनाना) चिल्लति । चिचिल्ल । चिल्लिता । चिल्लिष्यति ।
चिल्लिषति । चिल्लिषाति । चिल्लतु । अचिल्लत् । चिल्लेत् । चिल्ल्यात् ।
अचिल्लीत् । अचिल्लिष्यत् [तिल] गतौ । तेलति । तितेल । तितिलतुः । तेलिता ।
तेलिष्यति । तेलिषति । तेलिषाति । तेलतु । अतेलत् । तेलेत् । तेल्यात् । अतेलीत् ।
अतेलिष्यत् [तिल्ल] इत्यन्ये । तिल्लति [वेल्ल, चेल्, केल्, खेल्, च्चेल्, वेल्]
चलने (चलना) वेलति । विवेल । विवेलतुः । वेलिता । वेलिष्यति । वेलिषति ।
वेलिषाति । वेलतु । अवेलत् । वेलेत् । वेल्त्यात् । अवेलीत् । अवेलिष्यत् ।
चेलति । चिचेल । केलति । चिकेल । खेलति । चिखेल । च्छेलति । चिच्चे ल ।
वेल्लति । विवेल्ल [पेल्, फेल्, खेल्, शेल्, पेल्] गतौ । खेल् धातु दूसरी बार
अर्थ भिन्न होने से पड़ा है । पेल्ति । पिपेल । फेलति । पिफेल । शेल्ति ।
शिशेल । सेलति । सिषेल [स्खल] सञ्चलने (चलायमान होना) स्खलति ।
चस्खाल (१२४) स्खलिता । स्खलिष्यति । स्खलिषति । स्खलिषाति । स्खलतु ।
अस्खलत् । स्खलेत् । स्खल्यात् । अस्खालीत् (१८६) अस्खलिष्यत् [खल]
संचये । खलति । चखाल । अखालीत् [गल] अदने (खाना) गलति । जगाल ।
अगालीत् [षल] गतौ । सलति । ससाल । सेलतुः । सेलुः । असालीत् [दल]
विशरणे (मारना) दलति । ददाल । देलतुः । दलिता । दलिष्यति ।
दालिषति । दालिषाति । दलतु । अदलत् । दलेत् । दल्यात् । अदालीत् ।
अदलिष्यत् [खल, खल्ल] आशुगमने (शीघ्रचलना) खलति । शखाल ।
अखालीत् । खल्लति । शखल्ल [खोल्ल, खोर्ल] गति प्रतिघाते (चलते से
रुक जाना) खोलति । खुखोल । खोरति । खुखोर । अखोलीत् । अखोरीत्
[धोर्ल] गतिचातुर्ये (चतुराई से चलना) धोरति । दुधोर । अधोरीत् [लर]
कृशगतौ (टेढ़ा चलना) लरति । तल्लार । तल्लरतुः । लरिता । लरिष्यति ।
ल्लारिषति । ल्लारिषाति । ल्लरतु । अत्सरत् । त्सरेत् । त्सर्यात् । अत्सारीत् (१८६)
अत्सरिष्यत् [क्मर] हर्षणे (कुटिलता) क्मरति । चक्मार । चक्मरतुः ।
अक्मारीत् [अभ्र, वभ्र, मभ्र, चर] गत्यर्थः । अभ्रति । वभ्रति । मभ्रति ।
चरति । आचरति । प्रचरति । विचरति । आनभ्र । (१४७) यहाँ अभ्यास की

दीर्घ और उस से परे द्विहल् धातु की नुट् का आगम (११०) इन सूत्रों से होता है। ववभ्र । आभ्रीत् । अबभ्रीत् । अमभौत् । यहां अकार के समीप रेफ के न होने से (१८६) सूत्र से वृद्धि नहीं होती। चचार । चेरतुः । चरिता । चरिष्यति । चारिषति । चारिषति । चरतु । अचरत् । चरेत् । चर्यात् । अचारौत् (१८६) अचरिष्यत् [चर] भक्षणे च । चर धातु का यह दूसरा अर्थ होने से पुनः पढ़ा है [छिषु] निरससे (धूकना) इस धातु के आदि षकार को (१५२) वार्त्तिक से सकार नहीं होता और (१८६) सूत्र से इकार को दीर्घ होकर । छीवति । तिष्ठेव । तिष्ठिवतुः । तिष्ठिवुः । और इस धातु का दूसरा वर्ण किन्ही आचार्यों के मत में ठकार ही है अर्थात् जब ठकार है तो षोपदेश नहीं और जब थकार है तब षोपदेश है ठकार पक्ष में । टिष्ठेव । टिष्ठिवतुः । टिष्ठिवुः । इत्यादि प्रयोग अभ्यास ही में विशेष होंगे । टिष्ठेविथ । टिष्ठिवथुः । टिष्ठिव । टिष्ठेव । टिष्ठिविव । टिष्ठिविम । छेविता । छेविष्यति । छेविषति । छेविषति । छीवति । छीवाति । छीवतु । अछीवत् । छीवेत् ॥ १८६ ॥

१८७—हलि च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ७७ ॥

हल् प्रत्याहार में कोई वर्ण परे हो तो रेफान्त और वकारान्त धातु की उपधा जो इक् उस को दीर्घ आदेश होवे । छिठ्व् + यासुट् + सुट् + तिप् = छीव्यात् । यहां यासुट् का यकार हल् प्रत्याहार में है । अष्ठेवौत् । अष्ठेविष्टाम् । अष्ठेविष्यत् [जि] जये (उन्नति को प्राप्त होना) यह धातु अनिट् और अकर्मक है । क्योंकि इवर्णान्तों में जो सेट् पड़े हैं उन में इस का पाठ नहीं । और इस धातु का स्वार्थ कर्त्ता से भिन्न अन्य किसी में नहीं घटता इस कारण अकर्मक है । जि + शप् + तिप् = जयति (२१) सूत्र से गुण और अय् आदेश होता है । जयतः । जयन्ति ॥ १८७ ॥

१८८—सन्लिटोर्जः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५७ ॥

सन् और लिट् प्रत्यय परे हों तो जि धातु के अभ्यास से परे उत्तरभाग की कब-गादेश हो । जि-णल् । इस अवस्था में प्रथम (६०) सूत्र से वृद्धि हो कर द्वित्व होता है । जै + जै + णल् = जिगाय । यहां परभाग के जकार को गकार हो जाता है । जिग्यतुः । जिग्युः (१५६) सूत्र से यणादेश होता है । जिगीथ (१५७) सूत्र से थल् में इट् का निषेध और । जिगयिथ (१४८) सूत्र से भारद्वाज के मत में ऋकारान्तों के निषेध का नियम होने से इडागम हो जाता है । जिग्यथुः । जिग्य । जिगाय (१४३) जिगय । जिग्यिव । जिग्यिम । (लुट्) जेता जेतारौ । जेतारः । जेतासि । जेतास्यः । जेतास्य । जेतास्मि । जेतास्वः । जेतास्वः । (लृट्) जेष्यति । जेष्यतः । जेष्यन्ति । जेष्यसि । जेष्यथः । जेष्यथ । जेष्यामि ।

जेष्यावः । जेष्यामः । (लेट्) जेषति । जेषाति । जेषत् । जेषात् । जेषद् । जेषाद् । जेषति । जेषाति । जेषत् । जेषात् । जेषद् । जेषाद् । जयति । जयाति । जयत् । जयात् । जयद् । जयाद् । इत्यादि । इसी प्रकार तस् आदि में जाना । जयतु । जयतात् । जयताम् । जयन्तु । जय । जयतात् । जयतम् । जयत । जयानि । जयाव । जयाम । अजयत् । अजयताम् । अजयन् । अजयः । अजयतम् । अजयत । अजयम् । अजयाव । अजयाम । जयेत् । जयेताम् । जयेयुः । जयेः । जयेतम् । जयेता । जयेयम् । जयेव । जयेम । (१६०) सूत्र से दीर्घ हो कर । जीयात् । जीयास्ताम् । जीयासुः । जीयाः । जीयास्तम् । जीयास्त । जीयासम् । जीयास्व । जीयास्व । अट् + जि + सिच् + तिप् = अजैषीत् (१५८) सूत्र से इकार को वृद्धि हो जाती है । अजैषाम् । अजैषुः । अजैषीः । अजैष्टम् । अजैष्ट । अजैषम् । अजैष्व । अजैष्म । अजैष्यत् । अजैष्यताम् । अजैष्यन् [जीव] प्राणधारणे (प्राणी का धारण करना) जीवति । जिजीव । जीविता । जीव्यति । जीविषति । जीविषाति । जीवतु । अजीवत् । जीवित् । जीव्यात् । अजीवौत् । अजीवियत् । जीव धातु के गुरुपध होने से (५१) सूत्र से गुण नहीं होता [पीव, मीव, तीव, शीव,] स्थोत्ये (मोटापन) पीवति । मीवति । तीवति । नीवति ॥ [चिबु, जेबु,] निरसने (फेंकना) जेवति । चिजेव । चिजिवतुः । चिजिबुः । जेविता । जेवियति । जेविषति । जेविषाति । जेवतु । अजेवत् । जेवेत् । जीव्यात् (१६७) सूत्र से वकार की उपधा को दीर्घ होता है । जेव्यात् । अजेवौत् । अजेवियत् [उर्वी, तुर्वी, शुर्वी, दुर्वी, धुर्वी,] हिंसार्थाः (१३०) सूत्र से रेफ की उपधा उकारों को दीर्घ आदेश हो जाता है । जर्वति । जर्वाञ्चकार । जर्वाञ्चक्रतुः । जर्वाञ्चक्रुः । जर्वाञ्चकथ । जर्वाञ्चभूव । जर्वामास । जर्विता । जर्वियति । जर्विषति । जर्विषाति । जर्वतु । और्वत् । जर्वेत् । जर्व्यात् । और्वौत् । और्वियत् । तूर्वति । तुतूर्व । तुथूर्व । दूर्वति । दुदूर्व । धूर्वति । दुधूर्व । [गुर्वी] उद्यमने (उद्यम) गूर्वति । जुगूर्व । [मुर्वी] बन्धने (बांधना) मूर्वति । मुमूर्व [पुर्व, पर्व, मर्व] पूरणे (पूराहोना) पूर्वति । पुपूर्व । पर्वपि । पपूर्व । पर्विता । पर्वियति । पर्विषति । पर्विषाति । पर्वतु । अपर्वत् । पर्वेत् । अपर्वौत् । अपर्वियत् [चर्व] अदने (खाना) चर्वति । चचर्व [भर्व] हिंसायाम् । भर्वति । वभर्व [कर्व, खर्व, गर्व] दर्पे (अहंकार करना) कर्वति । चकर्व । खर्वति । चखर्व । गर्वति । जगर्व । [अर्व, शर्व, पर्व] हिंसायाम् । अर्वति । आनर्व । आनर्वतुः । शर्वति । सर्वति । [इवि] व्याप्ती (व्याप्त होना) इन्वति । इस धातु में नुम् के नकार को परसवर्ण की प्राप्ति न होने से वकार में मिलजाता है । इन्वाञ्चकार । इन्वाञ्चभूव ।

इन्वामास । इन्विता । इन्विष्यति । इन्विषति । इन्विषाति । इन्वतु । ऐन्वत् ।
इन्वेत् । इन्व्यात् । ऐन्वीत् । ऐन्विष्यत् [पिवि, मिवि, णिवि] सेवने सेचने च
(सेवनकरना और सींचना) पिन्वति । पिपिन्व । मिन्वति । मिमिन्व । निन्वति ।
निनिन्व [हिवि, दिवि, धिवि, जिवि] प्रीणनार्थाः (लम्बि होना) हिन्वति ।
जिहिन्व । दिन्वति । दिदिन्व । दिन्विता । दिन्विष्यति । दिन्विषति । दिन्विषाति ।
दिन्वतु । अदिन्वत् । दिन्वेत् । दिन्व्यात् । अदिन्वीत् । अदिन्विष्यत् ॥ १८८ ॥

१८८—धिन्विक्लृण्वोर च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८० ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक प्रत्यय परे हों तो धिन्वि और क्लृण्वि धातु से उप्रत्यय
और इन धातुओं की अकार आदेश हो जावे । अकार आदेश सामान्य विधान
होने से अल्लोन्त्य परिभाषा के बल से अन्त्य अल् वकार के स्थान में होता है
और यह उ प्रत्यय शप् का अपवाद है । उ प्रत्यय की तिङ् और शित् से भिन्न
होने के कारण (४८) आर्द्धधातुक संज्ञा होती है । धि-न्-अ-उ (१७२)
सूत्र से अकार का लोप हो कर । धिन्-उ-तिप् । इस अवस्था में उ (आर्द्धधा-
तुक) प्रत्यय को मान के धि के इकार को (५१) गुण प्राप्त है सो (अचः पर-
स्मिन् पूर्वविधौ) इस परिभाषा सूत्र से अकारलोप के स्थानिवत् होने से गुण नहीं
होता फिर उप्रत्यय को (२१) सूत्र से गुण हो कर । धिन्+उ+तिप्=धिनीति ।
धिन्+उ+तस्=धिनुतः । यहां (८७) सूत्र से तस् की डित् संज्ञा हो कर
(४५) से गुण का निषेध होता है । धिन्वन्ति । धिनीषि । धिनुथः । धिनुथ ।
धिनीमि ॥ १८८ ॥

२००—लोपश्चान्यतरस्यां भवोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०७ ॥

संयोग जिस के पूर्व न हो ऐसा जो प्रत्यय का उकार उस का विकल्प करके
लोप हो व और म परे हों तो । धिनु+वस्=धिन्वः । धिन्सः । धिनुवः ।
धिनुमः । दिधिन्व । दिधिन्वतुः । धिन्विता । धिन्विष्यति । धिन्विषति ।
धिन्विषाति । धिनवति । धिनवाति । यहां (२१) गुण हो कर ओकार को
अट्, आट्, निमित्त अव् आदेश होता है । धिनीतु । धिनुतात् । धिनुताम् ।
धिन्वन्तु ॥ २०० ॥

२०१—उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०६ ॥

संयोगी अक्षर जिस के पूर्व न हों ऐसा जो प्रत्यय का उकार तदन्त अङ्ग से
परे जो हि उस का लुक् होवे । धिनु+हि=धिनु । धिनुतात् । धिनुतम् ।
धिनुत । धिनु+मिप्=धिनवानि । यहां (७२) से (नि) आदेश और (११८)
से आट् का आगम पित् होकर वस्, मस् में भी गुण होजाता है । धिनवाव ।

धिनवाम । अधिनीत् । अधिनुताम् । अधिन्वन् । अधिनोः । अधिनुतम् । अधिनुत । अधिनवम् । अधिन्व । अधिनुव । अधिन्म । अधिनुम् । विधिलिङ् में अदन्त अङ्ग से परे यासुट् के न होने से (८१) से इय् आदेश नहीं होता । धिनुयात् । धिनुयाताम् । धिनुयुः । धिनुयाः । धिनुयातम् । धिनुयात । धिनुयाम् । धिनुयाव । धिनुयाम । और यहां (७८) से यासुट् के छित् होने से (४५) से गुण का निषेध होता है और आशिष्लिङ् की (८४) आर्द्धधातुक संज्ञा होने से उ प्रत्यय नहीं होता । धिन्व्यात् । धिन्व्यास्ताम् । धिन्व्यासुः । अधिन्वीत् । अधिन्विष्टाम् । अधिन्विषुः । अधिन्विष्यत् । जिन्वति । जिजिन्व । जिन्विता । जिन्विष्यति । जिन्विषति । जिन्विषाति । जिन्वतु । अजिन्वत् । जिन्वेत् । जिन्व्यात् । अजिन्वीत् । अजिन्विष्यत् [रिवि, रवि, धवि] गत्यर्थाः । रिण्वति । रिरिण्व । रण्वति । ररण्व । यहां नुम् के नकार को णत्व होता है । धन्वति । दधन्व [कृवि] हिंसाकरणयोश्च (हिंसा और करना) चकार से यह धातु गत्यर्थ भी है । और धिवि धातु में जो सूच लगते हैं वे सब इस में भी जानो परन्तु ॥ २०१ ॥

२०२—वा०—ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम् ॥ ८ । ४ । १ ॥

ऋवर्ण से परे जो नकार उस को णकार आदेश सामान्य से अट् कवर्ग, पवर्ग, आङ् और नुम् के व्यवधान में भी हो । इस वार्त्तिक से नुम् के नकार को सर्वत्र ऋकार से परे णत्व होता है । कृ + नुम् + व् + उ + तिप् = कृणीति । कृणुतः । कृण्वन्ति । कृणोषि । कृणुथः । कृणुथ । कृणोमि । कृण्वः । कृणुवः । कृण्वः । कृणुमः । चकृण्व । चकृण्वतुः । कृण्विता । कृण्विष्यति । कृण्विषति । कृण्विषाति । कृण्वति । कृणवाति । कृणीतु । अकृणीत् । अकृण्व । अकृणुव । अकृण्व । अकृणुम् । कृणुयात् । कृण्व्यात् । अकृण्वीत् । अकृण्विष्यत् [मव] (वन्धने) बांधना मवति । ममाव । मेवतुः । मेवुः । मविता । मविष्यति । माविषति । माविषाति । मवतु । अमवत् । मवेत् । मव्यात् । अमावीत् । अमवीत् । अमविष्यत् । [अव] रक्षणगतिकान्तिप्रीतिहृत्पत्यवगमप्रवेशश्रवणस्त्रास्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्तप्रवाप्तप्रा-लिङ्गनहिंसादानभागवृद्धिषु (गति, रक्षा, शोभा, प्रीति, हृत्ति, बोधहीना, प्रवेश करना, सुनना, अध्यक्षका कार्य साधना, मांगना, चेष्टा, इच्छा, प्रकाश, प्राप्ति, लिपटना, हिंसा, देना, विभाग करना और बढ़ाना) अवति । आव । आवतुः । आवुः । अविष्यति । आविषति । आविषाति । अवतु । आवत् । अवेत् । अव्यात् । आवीत् । आविष्यत् ॥ इति मव्यादाय उदात्ता उदात्तेतो जयति वर्ज परस्मैभाषाः षस्ववतिः । ये ८६ मव्य आदि धातु समाप्त हुए ॥

[धावु] गतिशुद्धोः (गति और शुद्धि) यह धातु स्वरितेत् है अर्थात् इस का अन्त्य वर्ण स्वरित इत्संज्ञक होता है (१०३) सूत्र से क्रिया का फल कर्त्ता के लिये ही तो आत्मनेपद अन्त्य परस्मैपद होता है । इस लिये उभयपद के प्रयोग होते हैं । धावते । धावते । धावन्ते । धावति । धावतः । धावन्ति । दधावे । दधाव । धावितामे । धावितासि । धाविष्यते । धाविष्यति । धाविषतै । धाविषातै । धाविषति । धाविषाति । धावताम् । धावतु । अधावत । अधावत् । धावित । धावेत् । धाविषीष्ट । धाव्यात् । अधाविष्ट । अधावीत् । अधाविष्यत । अधाविष्यत् ॥

अथोषान्ता आत्मनेपदिनी द्विपञ्चाशत् । अब उपान्त अर्थात् ग, घ, ङ, च, ये वर्ण जिन के अन्त में हों ऐसे ५२ (बावन) धातु कहते हैं [धुच्, धिच्] सन्दीपनक्लेशनजीवनेषु (प्रकाश, दुःख और जीवन) धुजते । धुज्ते । धिजते । दिधिज्ते । धुजितामे । धुजिष्यते । धुजिषतै । धुजिषातै । धुजताम् । अधुजत । धुजते । धुजिषीष्ट । अधुजिष्ट । अधुजिष्यत [वृच्] वरणे (ग्रहण करना) वृजते । वृज्ते । [शिच्] विद्योपादाने (विद्या का ग्रहण करना) शिजते । शिशिज्ते [भिच्] भिक्षायामलाभे लाभे च (भौख मांगना मिले वा न मिले) भिजते । बिभिज्ते । [क्लेश] अयत्नायां वाचि बाधन इत्यन्ये (अस्यष्ट बोलना) और किसी २ के मत में दुःख देने अर्थ में भी है । क्लेशते । चिक्लेशे । क्लेशितासे । क्लेशिष्यते । क्लेशिषतै । क्लेशिषातै । क्लेशताम् । अक्लेशत । क्लेशेत । क्लेशिषीष्ट । अक्लेशिष्ट । अक्लेशिष्यत [दच्] वृद्धौ शीघ्राय च (बढ़ना और शीघ्रता करना) दजते । ददच्ते [दीच्] मौण्डेज्योपनयननियमव्रतादेशेषु (मुण्डन, यज्ञ, यज्ञोपवीत धारण, नियम, सत्य भाषण आदि वा चान्द्रायण आदि तथा ब्रह्मचर्यादि का उपदेश) दीजते । दिदीच्ते [ईच्] दर्शने (विचार पूर्वक देखना) ईजते । ईजाच्क्ते । ईचास्वभूव । ईचामास [ईष] गतिहिंसादर्शनेषु (गति, हिंसा, और देखना) ईषते । ईषाच्क्ते । ईषास्वभूव । ईषामास । ईषितासे । ईषिष्यते । ईषिषतै । ईषिषातै । ईषताम् । ऐषत । ईषेत । ईषिषीष्ट । ऐषिष्ट । ऐषिष्यत [भाष] व्यक्तायां वाचि (स्यष्ट बोलना) भाषते । बभाषे । भाषिता । भाषिष्यते । भाषिषतै । भाषिषातै । भाषताम् । अभषत । भाषेत । भाषिषीष्ट । अभषिष्ट । अभषिष्यत [वर्ष] स्नेहने (चिकनाई) वर्षते । ववर्षे [गिषृ] अन्विच्छायाम् (खीजना) गिषते । जिगीषे [ग्लेपृ] इत्येके । ग्लेपते । जिग्लेपे [पेपृ] प्रयत्ने । पेपते । पिपेपे । पेपिता । पेपिष्यते । पेपिषतै । पेपिषातै । पेपताम् । अपेपत । पेपेत । पेपिषीष्ट । अपेपिष्ट । अपेपिष्यत [जेषृ, खेषृ, एषृ, प्रेषृ,] गतौ । जेषते । नेषते । एषते । एषाच्क्ते । एषास्वभूव एषामास । प्रेषते [रेपृ, हेषृ, क्लेषृ] अव्यक्ते शब्दे (गड़बड़ शब्द होना) रेपते ।

रिरेपे । हिषते । जिहिपे । झेपते । जिझेपे [कास] शब्दकुत्सायाम् (निन्दित-
 शब्द का होना) कासते । कासाञ्चक्रे । कासाञ्चभूव । कासामास (१६८) (१७०)
 लून वार्त्तिकों से यहाँ आम् प्रत्यय होता है । कासितासे । कासिष्यते । कासिष्यते ।
 कासिष्यते । कासताम् । अकासत । कामेत । कारुषीष्ट । अकासिष्ट । अका-
 सिष्यत [भास] दौगौ । भासते । वभासे [णास, रास] शब्दे । नासते । रासते ।
 रराने । रासितासे । रासिष्यते । रासिष्यते । रासिष्यते । रासिष्यते । रासताम् । अरासत ।
 रामेत । रासिषीष्ट । अरासिष्ट । अरासिष्यत [णस] कौटिल्ये (कुटिलता)
 नसते । नेसे । नेसाते [भ्यस] भये (डरना) भ्यसते । वभ्यसे [आङःशसि] इच्छायाम् ।
 इस धातु के पूर्व आङ् उपसर्ग इस लिये पढ़ा है कि इसी आङ् उपसर्ग का
 नियम रहे अन्य उपसर्ग इस के पूर्व न लगे । आशंसते । आशशंसते । आशंसिता ।
 आशंसिष्ट [गस, ग्लस] अदने (खाना) असते । ग्लसते । जग्रसे । जग्लसे । असिता ।
 असिष्यते । आसिष्यते । आसिष्यते । असताम् । अग्रसत । असेत । असिषीष्ट । अग्र-
 सिष्ट । अग्रसिष्यत [ईह] चेष्टायाम् (क्रिया) ईहते । ईहाञ्चक्रे । ईहाञ्चभूव । ईहामास ।
 ईहितासे । ईहिष्यते । ईहिष्यते । ईहिष्यते । ईहिष्यते । ईहिष्यते । ईहिष्यते । ईहिष्यते ।
 ऐहिष्ट । ऐहिष्यत [वहि, महि] वृद्धौ (बढ़ना) वंहते । मंहते । ववंहते । वंहिता ।
 वंहिष्यते । वंहिष्यते । वंहिष्यते । वंहिताम् । अवंहत । वंहेत । वंहिषीष्ट । अव-
 हिष्ट । अवंहिष्यत [अहि] गतौ । अंहते । आनंहते । आनंहते । अंहिता । अंहिष्यते
 अंहिष्यते । अंहिष्यते । अंहिताम् । आंहत । अंहेत । अंहिषीष्ट । आंहिष्ट
 आंहिष्यत [गर्ह, गल्ह] कुत्सायाम् (निन्दा) गर्हते । गल्हते । जगर्हे । जगल्हे
 [वर्ह, वल्ह] प्राधान्ये (श्रेष्ठता) वर्हते । ववर्हे । वल्हते । ववल्हे [वर्ह, वल्ह]
 परिभाषणहिंसाच्छादनेषु (बहुत बोलना, हिंसा, और दवाना) वर्हते । वल्हते
 पूर्व दोनों धातुओं और इन दोनों में इतना ही भेद है कि पहिले दोनों में पवर्ग
 बकार और इन दोनों में यवर्गी है [झिह] गतौ (चलना) झेहते । पिप्पिहे
 झेहिता । झेहिष्यते । झेहिष्यते । झेहिष्यते । झेहिष्यते । झेहिष्यते । झेहिष्यते । झेहिष्यते ।
 अझेहिष्ट । अझेहिष्यत [वेह, जेह, वाह] प्रयत्ने (पुरुषार्थ) वेहते । विवेहे
 विवेहिद्वे । विवेहिष्यते । वेहिता । वेहिष्यते । वेहिष्यते । वेहिष्यते । वेहिष्यते । वेहिष्यते ।
 अवेहत । वेहेत । वेहिषीष्ट । वेहिषीद्वम् । वेहिषीध्वम् । अवेहिष्ट । अवेहिद्वम्
 अवेहिध्वम् । अवेहिष्यत । जेहते । जिजेहे । अजेहिष्ट । वाहते । ववाहे [द्राह]
 निद्रालये (जागना) द्राहते । दद्राहे । दद्राहिद्वे । दद्राहिध्वे । द्राहितासे
 द्राहिष्यते । द्राहिष्यते । द्राहिष्यते । द्राहिष्यते । द्राहिष्यते । द्राहिष्यते । द्राहिष्यते ।
 अद्राहिष्ट । अद्राहिद्वम् । अद्राहिध्वम् । अद्राहिष्यत । निक्षेपइत्यन्ये । किञ्च

गों के मत में यह धातु किसी के निकट धन रखने अर्थ में है [काश्] दीप्ती प्रकाश होना) काशते । चकाशे । काशितासे । काशिष्यते । काशिषते । काशिषाते । काशताम् । अकाशत । काशित । काशिषीष्ट । अकाशिष्ट । अकाशिष्यत । जह] वितर्के (अनेक प्रकार के तर्क उठाना) जहते । जहाष्वक्ते । जहाष्वभूव । जहासास । जहिता । जहिष्यते । जहिषते । जहिषाते । जहताम् । औहत । औहित । जहिषीष्ट । औहिष्ट । औहिद्वम् । औहिध्वम् । औहिष्यत [गाह] गलोडने (विलोना) यह भी धातु ऊदित् है । गाहते । गाहिते । गाहन्ते । गाहसे । गाहिथे । गाहध्वि । गाहे । गाहावहे । गाहासहे । जगाहे । जगाहाते । जगाहिरे । गाहिषे । और जिस पक्ष में (१४०) इट् नहीं होता वहां । जगाह्-से । इस अवस्था में ॥ २०२ ॥

२०३—हो ढः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३१ ॥

भल् जिस से परे हो वां पदान्त में जो हकार उस को ढकार आदेश हो । यहां गाह धातु के हकार को ढकार होकर ॥ २०३ ॥

२०४—एकाचो वशो भष् भषन्तस्य सूध्वोः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३७ ॥

भलादि स और ध्व परे ही तो वा पदान्त में धातु का अवयव जो भषन्त काच् वश् प्रत्याहार में कोई वर्ण ही उस को भष् आदेश हो । यहां गाह् धातु (वश्) गकार को (भष्) घकार होजाता है । वश् प्रत्याहार में (व, ग, ड, द) चार वर्ण हैं और भष् प्रत्याहार में भी (भ, घ, ढ, ध) चार वर्ण हैं इन का यथास्थ क्रम तो लगता है परन्तु (ढ) स्थानी के न होने से ढ आदेश कहीं नहीं जाता । अब । जघाढ्-से । इस अवस्था में ॥ २०४ ॥

२०५—षढोः कः सि ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४१ ॥

सकारादि प्रत्यय परे हो तो षकार और ढकार को ककार आदेश हो जावे यहां ढकार होकर । जघाक्+से=जघाक्षे (५६) से षत्व होजाता है और दीप्ती ककार षकार के संयोग को (क्ष) बोलते हैं । परन्तु यह लिखने और बोलने की परिपाटी यथार्थ नहीं । ठीक तो यही है कि लिखने और बोलने में क्-ष् के स्वरूप स्पष्ट विदित हों । जगाहाथे । जगाहिद्वे (१८१) जगाहिध्वे । और जिस पक्ष में (१४०) से इट् का आगम नहीं होता वहां । जघाढ्-ध्वे । इस अवस्था में तवर्ग ध्वे के धकार को ढकार होजाता है पीछे ॥ २०५ ॥

ककार की इत्संज्ञा हो कर । अट्+गृह्+स+त=अष्टक्षत । अट्-गृह्-स-आताम् । इस अवस्था में ॥ २०७ ॥

२०८ - कृत्स्याचि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७२ ॥

क्स प्रत्यय का लोप हो अजादि प्रत्यय पर हो तो । यहाँ लोप रूप आदेश अनत्य अल् के स्थान में होता है । अट्+गृह्+स्+आताम्=अष्टक्षाताम् । अष्टक्षन्त । अष्टक्षयाः । अष्टक्षाथाम् । अगर्हिद्वम् । अगर्हिधम् । अष्टक्षधम् । अट्+गृह्+क्स+इट्=अष्टक्षि । यहाँ भी अजादि इट् प्रत्यय के परे क्स के अकार का लोप होजाता है । अष्टक्षावहि । अष्टक्षामहि । अगर्हिष्यत । अष्टक्ष्यत [ग्लह] च । यह धातु भी ग्रहण अर्थ में ही है । ग्लहते । जग्लहे । ग्लहिता । ग्लहिष्यते । ग्लाहिष्यतै । ग्लाहिष्यतै । ग्लहताम् । अग्लहत । ग्लहेत । ग्लहिषीष्ट । अग्लहिष्ट । अग्लहिष्यत [बुवि] कान्ति करणे (इच्छा करना) घुंषते । जुघुंषे । घुंषिता । घुंषिष्यते । घुंषिष्यतै । घुंषिष्यतै । घुंषताम् । अघुंषत । घुंषेत । घुंषिषीष्ट । अघुंषिष्ट । अघुंषिष्यत । इति ध्रुवादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषा द्विपंचाशत् समाप्ताः । ये ध्रुव आदि आत्मनेपदी ५२ (बावन) धातु समाप्त हुए ॥

अथ परस्मैपदिनः पञ्चनवतिः । अब ८५ (पचानवे) धातु परस्मैपदी कहते हैं [घुंषिर्] अविशब्दने । इस शब्द में से तीन प्रकार का अर्थ होता है एक तो विशब्दन (प्रतिज्ञा) उस का निषेध, दूसरा अवि (भेड़) का शब्द होना और तीसरा वि (पत्नी) के शब्द का निषेध अर्थात् अन्य प्राणी का शब्द होना । घोषति । जुघोष । घोषितासि । घोषिष्यति । घोषिष्यति । घोषिष्यति । घोषितु । अघोषत् । घोषेत् । घुष्यात् । और इस धातु में इर् भाग की इत्संज्ञा होती है । इस कारण (१२८) से च्लि के स्थान में अङ् विकल्प करके होता है । अघुष्+अङ्+तिप्=अघुषत् । अघुषताम् । अघुषन् । अघुषः । अघुषतम् । अघुषत । अघुषम् । अघुषाव । अघुषाम । सिच् पक्ष में । अघोषीत् । अघोषिष्टाम् । अघोषिषुः । अघोषिष्यत् [अच्] व्याप्तौ (व्यापकता) ॥ २०८ ॥

२०९ - अक्षोऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७५ ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो अच् धातु से शु प्रत्यय विकल्प करके होवे । यह सूत्र (१८) का अपवाद है । इस कारण पक्ष में अप् ही होता है । शु प्रत्यय के शकार की इत्संज्ञा हो के । अच्+नु+तिप्=अक्ष्णोति । यहाँ नु के उकार की (२१) गुण होता है । अक्षुतः । अक्षुवन्ति । यहाँ (१५८) से

श्रु प्रत्यय को उवङ् आदेश होता है। अक्षोषि। अक्षुधः। अक्षुध। अक्षोमि।
अक्षुवः। अक्षुमः (२००) संयोग पूर्व होने से उकार का लोप विकल्प से नहीं
होता। जिस पक्ष में श्रु प्रत्यय नहीं होता वहां शप्। अक्षति। अक्षतः। अक्षन्ति।
आनक्ष। आनक्षतुः। आनक्षुः। यह भी धातु ऊदित् है इस कारण इट् का विकल्प
होता है। आनक्षिथ। अनिट् पक्ष में। आनक्ष्-थल्। इस अवस्था में ॥ २०८ ॥

२१०—स्त्रोः संयोगाद्योरन्ते च ॥ अ० ॥ ८।२।२६ ॥

पदान्त में वा अल् जिस से परे हो ऐसा जो संयोग उसकी आदि के जो स,
और क हैं उन का लोप होवे यहां संयोग की आदि ककार है और अल् यकार
पर है उस (क्) का लोप हो कर थल् के यकार को (ष्टुना ष्टुः) सूत्र से ठकार
हो जाता है। आनष्ट। आनक्षयुः। आनक्ष। आनक्षिथ। आनक्ष। आनक्षिथ।
आनक्ष। अक्षिता। अक्षितारौ। अनिट् पक्ष में। अक्ष्+तास्+डा=अष्टा।
अष्टारौ। अष्टारः। अक्षिषति। अक्ष्-त्य-तिप्। यहां (२१०) संयोगादि
ककार का लोप, सूदन्य ष् को (२०५) क् और षत्व होकर। अक्ष्यति। अक्ष्यतः।
अक्ष्यन्ति। अक्षिषति। अक्षिषाति। अक्ष्यति। अक्ष्याति। अक्ष्यवति।
अक्ष्यवाति। इत्यादि। अक्षीतु। अक्षुतात्। अक्षुताम्। अक्षुवन्तु (१५८)
अक्षुहि। यहां संयोग पूर्वक उकार के होने से हि का लुक् (२०१) नहीं होता।
अक्षुतात्। अक्षुतम्। अक्षुत। अक्षवानि। अक्षवाव। अक्षवाम। यहां आट्
के आगम के पित् (११८) होने से श्रु को गुण हो जाता है। अक्षतु। अक्षीत्।
अक्षुताम्। अक्षुवन्। अक्षोः। अक्षुतम्। अक्षुत। अक्षवम्। अक्षुव
अक्षुम। अक्षत्। अक्ष्यात्। अक्ष्याताम्। अक्षु+यासुट्+जुस्=अक्षुयुः।
यहां (८१) इय् आदेश की प्राप्ति न होने से (८३) सूत्र से पररूप एकादेश
हो जाता है। अक्षुयाः। अक्षुयातम्। अक्षुयात। अक्षुयाम्। अक्षुयाव।
अक्षुयाम। अक्षेत्। अक्षेताम्। अक्षेयुः। अक्ष्यात्। अक्ष्यास्ताम्। अक्ष्यासुः। माभ-
वानक्षीत्। अक्षिष्टाम्। अक्षिषुः (१३६) से वृद्धि नहीं होती और अनिट् पक्ष में तो
वृद्धि (१३५) हो जाती है। आक्ष्+सिच्+ईट्+तिप्=आक्षीत्। आक्ष्+
सिच्+तस्=आक्ष्टाम्। यहां संयोगादि ककार का लोप (२१०) और सिच् के
सकार का लोप (१४२) होता है। अक्ष्+सिच्+जुस्=आक्षुः। यहां केवल
संयोगादि ककार का लोप ही होता है। आक्ष्+सिच्+ईट्+सिप्=आक्षीः
आक्ष्टम्। आक्ष्ट। आक्षम्। आक्ष। आक्ष। आक्षिष्यत्। आक्ष्यत्। आक्ष्यताम्।
आक्ष्यन् [तक्षू, त्वक्षू] तनूकरणे (सूक्ष्मकरणे) ॥ २१० ॥

२११—तनूकरणे तच्ञः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७६ ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हीं तो तनू करण अर्थ में वर्त्तमान तच्च धातु से शु प्रत्यय विकल्प करके हो । यह सूत्र भी शप् का ही अपवाद है । और यह धातु भी ऊदित् है इस लिये सब लकारों में इस का साधुत्व अच् धातु के समान जानना चाहिये । तच्णोति । तच्णुतः । तच्णुवन्ति । तच्चति । ततच्च । ततच्चतुः । ततच्चुः । ततच्चिथ । ततच्छ । तच्चिता । तष्टा । तष्टारी । तष्टारः । तच्चिथति । तच्च्यति । तच्चिषति । तच्चिषाति । तच्चति । तच्चाति । तच्चावति । तच्चावाति । तच्णोतु । तच्चतु । अतच्णोत् । अतच्चत् । तच्णुयात् । तच्चेत् । तच्च्यात् । अतच्चीत् । अतच्चिष्टाम् । अतच्चिषुः । अताच्चीत् । अताष्टाम् । अताच्चुः । अतच्चिथत् । अतच्च्यत् । त्वच् धातु के प्रयोग आर्द्धधातुक विषय में ऊदित् के होने से तच् धातु के तुल्य होते हैं और सार्वधातुक में कुछ विशेष नहीं । त्वच्चति । त्वच्च । त्वच्चिथ । त्वच्च । त्वच्चिता । त्वष्टा । त्वच्चिथति । त्वच्च्यति । त्वच्चिषति । त्वच्चिषाति । त्वच्चति । त्वच्चाति । त्वच्चतु । अत्वच्चत् । त्वच्चेत् । त्वच्च्यात् । अत्वच्चीत् । अत्वाच्चीत् । अत्वाष्टाम् । अत्वाच्चुः । अत्वच्चिथत् । अत्वच्च्यत् [उच्च] मेचने (सींचना) उच्चति । उच्चाञ्चकार । उच्चाञ्चभूव । उच्चामास । उच्चिता । उच्चिथति । उच्चिषति । उच्चिषाति । उच्चतु । औच्चत् । उच्चेत् । उच्च्यात् । औच्चीत् । औच्चिथत् [रच्च] पालने । रच्चति । ररच्च । रच्चिता । रच्चिथति । रच्चिषति । रच्चिषाति । रच्चतु । अरच्चत् । रच्चेत् । रच्च्यात् । अरच्चीत् । अरच्चिथत् । [णिच्च] चुम्बने (चूबना) निच्चति । निनिच्च । [टच्च, षट्च, णच्च] गती । टच्चति । तटच्च । षट्चति । सष्टच्च । नच्चति । ननच्च । [वच्च] रोषे (रिषाना) वच्चति । ववच्च । वच्चिता । वच्चिथति । वच्चिषति । वच्चिषाति । वच्चतु । अवच्चत् । वच्चेत् । वच्च्यात् । अवच्चीत् । अवच्चिथत् । सङ्घातइत्यन्ये । किन्हीं लोगों के मत में यह धातु संघात अर्थ में है [सृच्च] सङ्घाते सृच्चति । मसृच्च [अच्च] इत्येके । किन्हीं के मत में यह धातु रेफवान् है ऋकारवान् नहीं [तच्च] त्वचने (टापना) तच्चति [पच्च] परिग्रह इत्येके (हठकरना) किन्हीं का मत है । पच्चति । पपच्च [सृच्च] आदरे (मान्यकरना) सृच्चति । सुसृच्च्य । [काच्चि, वाच्चि, माच्चि] काङ्क्षायां (अभिलाषा) काङ्चति । वाङ्चति । माङ्चति [द्राच्चि, ध्राच्चि, ध्वाच्चि] धोरवाप्तये च (पाप में वसना) द्राङ्चति । दद्राङ्च । ध्राङ्चति । दध्राङ्च । ध्वाङ्चति । दध्वाङ्च [चूष] पाने (चूषना) चूषति । चुचूष । चूषिता । चूषिथति । चूषिषति । चूषिषाति । चूषतु । अचूषत् । चूषेत् । चूष्यात् । अचूषीत् । अचूषिथत् [तूष] तुष्टौ (सन्तोष करना) तूषति । तुतूष [पूष] वृद्धौ (बढ़ना) पूषति । पुपूष [मूष] स्तेये (चोरी)

सूषति । सुसूष [लूष, रूष,] भूषायाम् । (शोभा) लूषति । रूषति । लुलूष ।
 रूरूष [शूष] प्रसवे (उत्पत्ति) शूषति । शूष [यूष] हिंसायाम् । यूषति ।
 युयूष [जूष] च । जूषति । जुजूष [भूष] अलङ्कारे (गहना) भूषति । बुभूष ।
 भूषिता । भूषिष्यति । भूषिषति । भूषिषाति । भूषतु । अभूषत् । भूषेत् ।
 भूष्यात् । अभूषीत् । अभूषिष्यत् [जष] कजायाम् (रोग) जषति । जषाञ्च-
 कार । जषाञ्चभूष । जषामास [ईष] उज्ज्ये (जंझना) ईषति । ईषाञ्चकार ।
 ईषाञ्चभूष । ईषामास [कष, खष, शिष, जष, भष, शष, वष, मष, रुष, रिष]
 हिंसार्याः । इन सब में शिष धातु अनिट् है । कषति । चकाष । चकषतुः ।
 कषिता । कषिष्यति । काषिषति । काषिषाति । कषतु । अकषत् । कषेत् ।
 कष्यात् । अकाषीत् । अकषीत् । अकषिष्यत् । खषति । चखाष । शेषति । शिशेप ।
 शिशिषतुः । शिशेविश । यहाँ (१४८) चूच के नियम से इट् हो जाता है नहीं तो प्राप्ति
 नहीं थी । शिष्टा । शिष्टारौ । शिष्टारः । शिष्यति । शिष्यति । शिष्याति । शिषति ।
 शिषाति । शिषतु । अशिषत् । शिषेत् । शिष्यात् । अट् + शिष् + क्स + तिप् = अ-
 शिक्षत् । अशिक्तम् । अशिक्तम् । अशिक्तः । अशिक्तम् । अशिक्तम् । अशिक्तम् ।
 अशिक्ताव । अशिक्ताम् । यहाँ च्लि के स्थान में क्स आदेश (२०७) से हो जाता है ।
 अशिष्यत् । जषति । जजाष । जषतुः । जेषुः । जषिता । जषिष्यति । जाषिषति ।
 जाषिषाति । जषतु । अजषत् । जषेत् । जष्यात् । अजाषीत् । अजषीत् ।
 भषति । जभाष । शषति । शशाष । शेषतुः । वषति । ववाष । ववषतुः (१२८)
 से एत्वाभ्यासलोप का निषेध होता है । मषति । समाष । मेषतुः । रोषति ।
 रूरोष । रेषति । रिरिष । ये दोनों धातु सेट् ही हैं परन्तु तकारादि आर्द्धधातुक
 में विशेष है ॥ २११ ॥

२१२—तौषसहलुभरुषरिषः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४८ ॥

इषु, सह, लुभ, रुष, और रिष धातुओं से परे जो तादि आर्द्धधातुक उस को
 इट् का आगम विकल्प कर के हो । इस सूत्र में प्राप्तविभाषा इस लिये है कि
 सर्वत्र नित्य इट् प्राप्त है उस का विकल्प विशेष विषय में किया है । रोषिता ।
 रोषटा । रोषटारौ । रोषटारः । रेषिता । रेषटा । रेषिष्यति । रेषिषति । रेषिषाति ।
 रेषत् । अरेषत् । रेषेत् । रेष्यात् । अरेषीत् । अरेषिष्यत् । [भष] भर्त्सने (धमकाना)
 भषति । वभाष । [उष] दाहे (जलन) ओषति । ओषतः । ओषन्ति ॥ २१२ ॥

२१३—उषविद्जागृथ्योऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३७ ।

उष, विद्, और जागृ धातुओं से आम्प्रत्यय विकल्प करके हो लिट् लकार
 परे हो तो वेद विषय को छोड़ के । यह बात सर्वत्र के लिये ध्यान में रखनी

चाहिये कि जिन २ एध आदि धातुओं से आम् प्रत्यय किया है वहां २ सर्वत्र वेद में आम् प्रत्यय का निषेध है जैसे । एध+एध+एश् । इयेधे (१५२) इत्यादि प्रयोगों की योजना वैदिक प्रयोगों में समझ लेनी चाहिये । ओषाञ्चकार । उषोष । जषतुः । और वेद में भी । उषोष । ही होगा । ओषिता । ओषिष्यति । ओषिषति । ओषिषाति । ओषतु । ओषत् । ओषेत् । उष्यात् । ओषीत् । ओषिष्यत् [जिषु, विषु, मिषु] सेचने (सींचना) जेषति । जिजेष । विष धातु अनिट् है । विषति । विवेष । विवेषिष्य । विवेषिव । विवेषिम । वेष्टा । वेक्षति । वेक्षति । वेक्षति । वेषति । वेषाति । वेषतु । अवेषत् । वेषेत् । विष्यात् । अविष् + क् + तिप् = अविक्षत् । अविक्षताम् । अविक्षन् । अवेक्ष्यत् [पुष] पुष्टौ । पुषधातु अनिट् कारिका में दिवादि गण का निर्देश किया है इस कारण यह सेट् है । पोषति । पुपोष । पोषिता । पोषिष्यति । पोषिषति । पोषिषाति । पोषतु । अपोषत् । पोषेत् । पुष्यात् । अपोषीत् । अपोषिष्यत् [श्रिषु, श्रिलषु, प्रुषु, प्लुषु] दाहे । श्रेषति । श्लेषति । श्रिश्रेष । श्रिश्लेष । प्रोषति । पुप्रोष । प्रोषति । पुप्रोष । प्रिलष धातु भी अनिट् व्यवस्था में दिवादि गण का ही पढ़ा है [पृषु, वृषु, सृषु,] सेचने । पर्षति । वर्षति । मर्षति । पपर्ष । पपृषतुः । पपृषुः । पर्षिता । पर्षिष्यति । पर्षिषति । पर्षिषाति । पर्षति । पर्षाति । पर्षतु । अपर्षत् । पर्षेत् । पर्ष्यात् । अपर्षीत् । अपर्षिष्यत् [सृषु] सहने च । इतरौ हिंसासंश्लेशनयोश्च । सृषुधातु के सहना और सींचना तथा पृषु, वृषु, धातुओं के सींचना, हिंसा और संश्लेशन तीनों अर्थ हैं [पृषु] संघर्षे (विसना) घर्षति । जघर्ष [हृषु] अलीके (झूठ) हर्षति । जहर्ष [तुस, ऋस, हलस, रस] शब्दे । तोसति । तुतोस । तोसिता । तोसिष्यति । तोसिषति । तोसिषाति । तोसतु । अतोसत् । तोसेत् । तुस्यात् । अतोसीत् । अतोसिष्यत् । ऋसति । जऋस । हलसति । जह्लास । रसति । ररास । रसतुः । रसुः । रसिता । रसिष्यति । रासिषति । रासिषाति । रसतु । अरसत् । रसेत् । रस्यात् । अरसीत् । अरासीत् । अरसिष्यत् [लस] श्लेषणक्रीडनयोः (मिलना और खेलना) लसति । ललास । लेसतुः [घसृ] अदने (खाना) घसति । जघास । जघस्-अतुस् । इस अवस्था में ॥ २१३ ॥

२१४—गमहनजनखनघसां लोपः कङित्यनङि ॥ अ० ॥ ६।४।६८॥

गम, हन, जन, खन, और घस धातुओं के उपधा अकार का लोप हो अङ्भिन्न अजादि कित् डित् प्रत्यय परे हों तो । यहां घकारस्थ अकार का लोप होकर (खरि च) सूत्र से घ् को (क्) करते समय (अचःपरस्मिन् पूर्वविधौ)

सूत्र मे अकार को स्थानिवत् होने से चर् आदेश न हो सके सो (न पदान्त०)
सूत्र मे चर् विधि में स्थानिवत् का निषेध होकर चर् होता है । पीछे प्ल
होकर । जक्पतुः । जक्पुः । जघस्-थल् । इस अवस्था में ॥ २१४ ॥

२१५-उपदेशेऽन्वतः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६२ ॥

ताम् प्रत्यय के परे नित्य अनिट् उपदेश में जो अकारवान् धातु है उस मे
परे जो थल् उस को इट् का आगम न हो (१४८) सूत्र के नियम मे लिट् मात्र
में इट् प्राप्त है उस का विशेष विषय में यह अपवाद है । जघस्य । और
भारद्वाज के मत में ऋकारान्तों का तास्त्वार्थ के नियम (१४८) से उपदेश
में अकारवान् और अजन्तों को इडागम हो जाता है । जघसिथ । जघथुः ।
जघ् । जघास । जघस । जघ्वि । जघ्विम । घस्ता । घस्तारौ । घस्तारः ।
घस्-स्य-तिप् । इस अवस्था में ॥ २१५ ॥

२१६-सः स्याद्धातुके ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४६ ॥

सकारादि आर्द्धधातुक प्रत्यय परे ही तो सकार को तकार आदेश हो । यहां
घस् के सकार को तकार होकर । घत्स्यति । घत्स्यतः । घत्स्यन्ति । घत्स्यसि ।
घात्सति । घात्साति । घत्सति । घत्साति । घसति । घसाति । घसतु । अघसत् ।
घसेत् । घस्यात् ॥ २१६ ॥

२१७-पुषादियुताद्वृद्धितः परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५५ ॥

* दिवादि गण के पुष आदि, युतादि और लृ जिन का इत् गया हो उन
धातुओं मे परे जो च् प्रत्यय उस के स्थान में अङ् आदेश हो परस्मैपद विषय
में कर्त्ता विषय में लुङ् लकार परे हो तो । यहां वृद्धित् घस् धातु मे अङ् हो
कर । अट् + घस् + अङ् + तिप् = अघसत् । अघसताम् । अघसन् । अघसः ।
अघसतम् । अघसत । अघसम् । अघसाव । अघसाम । अघत्स्यत् । अघत्स्यताम् ।
अघत्स्यन् [जर्ज, चर्च, भर्भ,] परिभाषणहिंसातर्जनेषु (अधिक बोलना,
हिंसा और धमकाना) जर्जति । जर्जर्ज । जर्जिता । जर्जिष्यति । जर्जिषति ।
जर्जिषाति । जर्जतु । अजर्जत् । जर्जेत् । जर्ज्यात् । अजर्जीत् । अजर्जिष्यत् ।
चर्चति । भर्भति । जभर्भ [पिष्ट, पेष्ट] गतौ । पेसति । पिपेस । पिपिसतुः ।
पिपेसतुः । पेसिता । पेसिष्यति । पेसिषति । पेसिषाति । पेसतु । अपेसत् ।
पेसेत् । पिष्यात् । अपेसीत् । अपेसिष्यत् [हसे] हसने (हसना) इस धातु

* इस सूत्र में उस स्वादिगण के पुषादि धातुओं का ग्रहण इस कारण नहीं होता कि पुषादि के अन्त-
गत युतादि धातु भी आजाते फिर युतादि ग्रहण ज्ञापक से दिवादि गण के पुषादिकों का ग्रहण होता है ॥

एकार इत् जाता है । हसति । जहास । जहसतुः । हसिता । हसिष्यति ।
 सषति । हासिषाति । हसतु । अहसत् । हसेत् । हस्यात् । अहसीत् (१६२)
 सिष्यत् [णिश्] समाधौ (समाहित होना) नेशति । निनेश् । नेशिता ।
 ण्यति । नेशिषति । नेशिषाति । नेशतु । अनेशत् । नेशेत् । निश्यात् ।
 शीत् । अनेशिष्यत् [मिश्, मश्] शब्दे रोषकृते च (शब्द और रिष करना)
 ति । मशति । ममाश् । मेशतुः । मशिता । मशिष्यति । माशिषति ।
 शिषाति । मशतु । अमशत् । मशेत् । मश्यात् । अमाशीत् । अमशीत् ।
 मशिष्यत् [श्व] गतौ । श्वति । शशाव । श्वेतुः । अशावीत् । अशवीत् । अश्वि-
 त् [शश्] भुतगतौ (कूद २ कर चलना) शशति । शशाश् । शेशतुः । अशाशीत् ।
 ण्यत् [शसु] हिंसायाम् । शसति । शशास । शशसतुः (१२८) एत्वाभ्यास-
 प का प्रतिषेध होजाता है । शशसुः । शशसिष्य । अशासीत् । अशसीत् [शंसु]
 तौ (गुणों का वर्णन) शंसति । शशंस । अशंसौत् [चह] परिकल्कने (सर्वथा
 खर्चन) चहति । चचाह । चेहतुः । चेहुः । चहिता । चहिष्यति । चाहिषति ।
 हिषाति । चहतु । अचहत् । चहेत् । चह्यात् । अचहीत् (१६२) अचहिष्यत् ।
 मह] पूजायाम् (सत्कार) महति । ममाह । मेहतुः । अमहीत् [रह] त्यागी
 होड़ना रहति । रराह । रेहतुः । रहिता । रहिष्यति । राहिषति । राहिषाति ।
 हतु । अरहत् । रहेत् । रह्यात् । अरहीत् (१६२) अरहिष्यत् [रहि] गतौ । रंहति ।
 रंह । रंह्यात् [टह, टहि, बह, बहि] बहौ । दर्हति । हंहति । बर्हति । हंहति । ददर्ह ।
 टहतुः । दर्हिता । दर्हिष्यति । दर्हिषति । दर्हिषाति । दर्हतु । अदर्हतु । दर्हेत् ।
 ह्यात् । अदर्हीत् । अदर्हिष्यत् [बहि] शब्दे च । बहति [बहिर्] इत्येके । बर्हति ।
 बर्ह । अबहत् (१२८) अबर्हीत् [तुहिर्, दुहिर्, उहिर्] अर्दने (गति और मांगना)
 तीहति । तुतोह । तुतुहतुः । तोहिता । तोहिष्यति । तोहिषति । तोहिषाति ।
 तोहतु । अतोहतु । तोहेत् । तुह्यात् । अतुहतु । अतोहीत् । अतोहिष्यत् । दोहति ।
 दुदोह । अदुहतु । अदोहीत् । अनिट् व्यवस्था में जो दुह धातु पड़ा है वह दिह
 धातु के साहचर्य से अदादि का समझना चाहिये । ओहति । उवोह । ऊहतुः ।
 ओहिता । माभवानुहतु । औहीत् । औहिष्यत् [अर्ह] पूजायाम् (सत्कार) अर्हति ।
 आनर्ह । आनर्हतुः । आनर्हुः । अर्हिता । अर्हिष्यति । अर्हिषति । अर्हिषाति ।
 अर्हतु । आर्हतु । अर्हेत् । अर्ह्यात् । आर्हीत् । आर्हिष्यत् । इति धुषिरादय
 उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषाः समाप्ताः । ये धुषिर् आदि ८५ धातु समाप्त हुए ॥
 अथ कृपूपर्यन्ताः षड्विंशत्यात्मनेपदिनः । अब २६ धातु आत्मनेपदी कहते
 हैं [द्युत] दीप्ती (प्रकाशहोना) द्योतते । द्युत्-द्युत्-एष् । इस अवस्था में ॥ ११७ ॥

२१८—द्युतिस्त्रायोः संप्रसारणम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६७ ॥

द्युति और स्वापि धातु के अभ्यास को संप्रसारण हो । इस सूत्र में णिच् प्रत्ययान्त स्वापि धातु का ग्रहण है । सो णिजन्त प्रक्रिया में आवेगा । द्यु-
द्युत-एश् । यहां प्रथम द्यु के यकार के स्थान में (इ) संप्रसारण हो कर । दु-
इ-उ-द्युत्-एश् ॥ २१८ ॥

२१९—संप्रसारणाच्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १०८ ॥

संप्रसारण से अच् परे हो तो पूर्व पर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होवे ।
यहां (इ) संप्रसारण से परे उकार को पूर्वरूप हो कर । दि+द्युत्+एश्=
द्विद्युते । द्विद्युताते । द्विद्युतिरे । द्योतितासे । द्योतिष्यते । द्योतिषतै । द्योतिषातै ।
द्योतताम् । अद्योतत । द्योतेत । द्योतिषीष्ट ॥ २१९ ॥

२२०—द्युहभ्यो लुङि ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८१ ॥

द्युत आदि धातुओं से परे जो लुङ् लकार उस के स्थान में परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय विकल्प करके हों । ये द्युत आदि धातु सामान्य करके आत्मनेपदी हैं लुङ् में परस्मैपद किसी से प्राप्त नहीं इस कारण इस सूत्र में अप्राप्तविभाषा है । फिर परस्मैपद विषय में अङ् हो कर । अद्युतत् । अद्युतताम् । अद्युतन् । अद्युतः । अद्युततम् । अद्युतत । अद्युतम् । अद्युताव । अद्युताम । आत्मनेपद प्रच में । अद्योतिष्ट । अद्योतिषाताम् । अद्योतिषत । अद्योतिष्यत । यहां से लेकर क्षप् धातु पर्यन्त सब धातुओं में (२२०) (२१७) ये दोनों सूत्र लुङ् लकार में लगा करेंगे [श्रिता] वर्ण (श्वेतवर्ण) इस धातु का आकार इत् संज्ञक होता है उस का फल क्तादन्त में आवेगा । श्वेतते । श्रिश्रिते । श्वेतितासे । श्वेतिष्यते । श्वेतिषतै । श्वेतिषातै । श्वेतताम् । अश्वेतत । श्वेतत । श्वेतिषीष्ट । अश्वितत् । अश्वेतिष्ट । अश्वेतिष्यत [जिमिदा] * स्नेहने (प्रीति) यहां (१५०) सूत्र से जि की इत्संज्ञा और आकार भी इस धातु का इत् जाता है । मेदते । मिमिदे । मिमिदाते । मिमिदिरे । मेदिता । मेदिष्यते । मेदिषतै । मेदिषातै । मेदताम् । अमेदत । मेदेत । मेदिषीष्ट । अमिदत् । अमेदिष्ट ।

* इस धातु पर जो भट्टोजिदीक्षित ने (मिदिगुणः) सूत्र लगाया है सो सर्वथा व्यर्थ है क्योंकि यह सूत्र दिवादि गण के निद धातु से श्रुन् प्रत्यय के अपित् होने से (५१) गुण प्राप्त नहीं होता वहां लगता है । और काशिकाकार ने भी दिवादि गण के ही उदाहरण इस सूत्र पर दिये हैं । और लिट् लकार प्रथम पुरुष एक वचन (एश्) में शित् करण सर्वादेशार्थ है गुण होने के लिये नहीं और यह बात कभी नहीं हो सकती कि जो अन्त में शित् हो उस को शित् कार्य न हो क्योंकि चानश् आदि की सर्वधातुक संज्ञा हीती ही है । इस कारण एश् में भी गुण की प्राप्ति नहीं हो सकती फिर यह सूत्र इस धातु पर लिखना अत्यन्त विरुद्ध है ॥

२२१—वृद्ध्यः स्यसनोः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६२ ॥

वतु आदि पांच धातुओं में परे स्य और सन् प्रत्यय के विषय में परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय विकल्प करके हैं। यहाँ लट्, लकार में परस्मैपद तिप् आदि हो कर । वतु-स्य-तिप् । इस अवस्था में इट् का आगम प्राप्त है इस लिये ॥२२१॥

२२२—न वृद्धम्यश्चतुर्थ्यः ॥ अ० ॥ ७।२।५८ ॥

वृत्त आदि चार धातुओं से परे जो सकारादि आर्द्धधातुक उस को इट् का
 आगम न हो परस्मैपद विषय में । फिर (५१) से गुण हो कर । वर्त्यति ।
 वर्त्यतः । वर्त्यन्ति । जिस पक्ष में परस्मैपद प्रत्यय नहीं होते वहां । वर्तिष्यते ।
 वर्तिष्येते । वर्तिष्यन्ते । वर्तिष्यतै । वर्तिष्यातै । वर्तताम् । वर्तेताम् । वर्तन्ताम् ।
 अवर्तत । वर्तेत । वर्तिषीष्ट । अवृत्तत् । अवर्तिष्ट । अवर्त्यत् । अवर्तिष्यत [वृधु]
 वृद्धौ (वढ़ना) [शृधु] शब्दकुत्सायाम् (निन्दित शब्द होना) इन दोनों धातुओं
 में वृत्त के समान साधुत्व जानो । वर्धते । वर्धेते । वर्धन्ते । ववृधे । वर्धितासे ।
 वर्त्यति । यहां दन्त्योष्ठ वकार के होने से भकार (२०४) नहीं होता । वर्धि-
 ष्यते । वर्धिष्यतै । वर्धिष्यातै । वर्धताम् । अवर्धत । वर्धेत । वर्धिषीष्ट । अवृधत् ।
 अवर्धिष्ट । अवर्त्यत् । अवर्धिष्यत । शर्धते । शृधे । शर्त्यति । शर्धिष्यते ।
 अशृधत् । अशर्धिष्ट । अशर्त्यत् । अशर्धिष्यत [स्यन्दू] प्रस्त्रवणे (भरना)
 यह धातु ऊदित है इस कारण वलादि आर्द्धधातुक विषय में इट् का आगम
 विकल्प से (१४०) होता है । स्यन्दते । स्यन्देते । स्यन्दन्ते । सस्यन्दे । सस्यन्दाते ।
 सस्यन्दिरे । सस्यन्दिषे । सस्यन्त्से । सस्यन्दाथे । सस्यन्दिधे । सस्यन्धे । यहां
 (भरौ भरि सवर्णे) इस सूत्र से न् से परे दकार का लोप विकल्प करके होता है ।
 सस्यन्दे । सस्यन्दिबहे । सस्यन्दिमहे । सस्यन्द्वहे । सस्यन्न्महे । यहां दकार का
 अनुनासिक (यरोऽनुनासिके०) सूत्र से विकल्प करके होता है । स्यन्दिता ।
 स्यन्दितारौ । स्यन्दितारः । स्यन्दितासे । स्यन्ता । यहां भी (भरौ भरि) सूत्र से
 दकार लोप होता है । और लृट् में स्य प्रत्यय के परे परस्मैपद (२२१) होके (१४०)
 सूत्र अन्तरंग भी है तो भी उस के विकल्प को बाध के (२२२) सूत्र में चतुर्थ्यण्य
 सामर्थ्य से परस्मैपद विषय में निषेध ही होता है । स्यन्त्यति । स्यन्दिष्यते ।
 स्यन्त्यते । स्यन्दिष्यतै । स्यन्दिष्यातै । स्यन्त्यतै । स्यन्त्सातै । स्यन्दताम् । अस्यन्दत ।
 स्यन्देत । स्यन्दिषीष्ट । स्यन्तीष्ट । अट् + स्यन्द् + अङ् + तिप् (२२०) (२१७)
 (१३८) = अस्यदत् । अस्यदताम् । अस्यदन् । आत्मनेपद विषय में । अस्यन्दिष्ट ।
 अस्यन्दिषाताम् । अनिट् पक्ष में । अस्यन्त । अस्यन्ताताम् । अस्यन्तत । अस्यन्थाः ।
 अस्यन्तायाम् । अस्यन्ध्वम् । अस्यन्ति । अस्यन्त्सहि । अस्यन्त्सहि ।
 अस्यन्त्यत् । अस्यन्दिष्यत । अस्यन्त्यत [कृप्] सामर्थ्य (समर्थ होना) ॥ २२२ ॥

२२३—कृपो रोलः ॥ अ० ॥ ८ । २ । १८ ॥

कप धातु के गुण हुए और ऋकार विशिष्ट जो रेफ है उन दोनों को लकार आदेश होता है। यहां ऋकार में जितना अंश रेफ का है उस को ल हीकर

कृप् धातु होता है । फिर गुण (५१) होकर । कल्पते । कल्पेते । कल्पन्ते । चकृप्ते । चकृप्ताते । चकृपिरे । यह भी धातु ऊदित् है इस कारण इडागम भी विकल्प करके होता है । चकृपिषे । चकृप्ते । चकृपिध्वे । चकृब्वहे । चकृपिवहे । चकृब्वहे । चकृपिमहे । चकृम्महे । चकृब्वम्महे ॥ २२३ ॥

२२४—लुटि च क्लृपः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६३ ॥

लुट् लकार, स्य और सन् प्रत्यय परे हों तो क्लृप् धातु से परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय विकल्प करके होंगे । यहां परस्मैपद पक्ष में ॥ २२४ ॥

२२५—तासि च क्लृपः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७२ ॥

क्लृप् धातु से परे जो तास् और सकारादि आर्द्धधातुक प्रत्यय उन को इट् का आगम न होवे परस्मैपद विषय में । कल्प्ता । कल्प्तारौ । कल्प्तारः । कल्प्तासि । कल्पितासे । कल्प्तासे । कल्पस्यति । कल्पिष्यते । कल्पस्यते । कल्पिषतै । कल्पिषातै । कल्पसतै । कल्पसातै । कल्पताम् । अकल्पत । कल्पेत । कल्पिषीष्ट । कल्पसीष्ट । अक्ल्पत् । अकल्पिष्ट । अक्लृप्त (१४२) सकार का लोप होता है । अकल्पस्यत् । अकल्पिष्यत । अकल्पस्यत (वृत्) सम्पूर्णं द्युतादि-वृतादिश्च । ये द्युत आदि और वृत् आदि धातु समाप्त हुए ॥

अथ त्वरत्यन्ता आत्मनेपदिनः । अब त्वर धातु पर्यन्त १६ धातु आत्मनेपदी कहते हैं [घट] चेष्टायाम् । घटते । जघटे । जघटाते । घटितासे । घटिष्यते । घाटिषतै । घाटिषातै । घटताम् । अघटत । घटेत । घटिषीष्ट । अघटिष्ट । अघटिष्यत [व्यथ] भयसञ्चलनयोः (डरना और चंचल होना) व्यथते । व्यथेते । व्यथन्ते ॥ २२५ ॥

२२६—व्यथो लिटि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६८ ॥

व्यथ धातु के अभ्यास की सम्प्रसारण हो लिट् लकार परे हो तो । व्यथ् के (य्) की इ सम्प्रसारण होके (२१६) से पूर्वरूप एकादेश होता है । व्यथ् + व्यथ् + एष् = विव्यथे । विव्यथाते । विव्यथिरे । व्यथितासे । व्यथिष्यते । व्याथिषतै । व्याथिषातै । व्यथताम् । अव्यथत । व्यथेत । व्यथिषीष्ट । अव्यथिष्ट । अव्यथिष्यत । [प्रथ] प्रख्याने (प्रसिद्धि) प्रथते । पप्रथे । अप्रथिष्ट [प्रस] विस्तारे । प्रसते । पप्रसे [म्रद] मर्दने (मलना) म्रदते । मम्रदे [स्खद] स्खदने (दौड़ना) स्खदते । चस्खदे [चजि] गतिदानयोः (गति और देना) चञ्जते । चच्चजे । [दक्ष] गतिहिंसनयोः (गति और मारना) दक्षते । ददक्षे । दक्षितासे । दक्षिष्यते । दक्षिषतै । दक्षिषातै । दक्षताम् । अदक्षत । दक्षेत । दक्षिषीष्ट ।

अदक्षिष्ट । अदक्षिष्यत [क्रप] कृपायां गतौ च । क्रपते । क्रपेते । क्रपन्ते । चक्रपे ।
 [कदि, क्रदि, कृदि] वैकृत्ये वैकृत्य इत्यन्ये (विविध प्रकार की गति और संख्या)
 ये तीनों धातु तवर्गान्तीं में परस्मैपदौ आह्वान और रोदन अर्थ में लिख चुके हैं
 फिर इन का यहां लिखना मित्संज्ञा, अर्थभेद, और आत्मनेपद आदि के लिये है
 और इस प्रकरण (घट धातु से ले के फण, गतौ पर्यन्त) में बहुत ऐसे धातु लिखे
 हैं जिन में से किसी को पूर्व लिख चुके कोई आगे के गणों में आवेंगे और बहु-
 तेरे ऐसे भी हैं जो कहीं नहीं आवेंगे । मित् संज्ञा का गणसूत्र इसी प्रकरण में
 आगे लिखा है । कन्दते । क्रन्दते । क्लन्दते । चकन्दे । चक्रन्दे । चक्लन्दे । कन्दितासे ।
 कन्दिष्यते । कन्दिषतै । कन्दिषातै । कन्दताम् । अकन्दत । कन्देत । कन्दिषीष्ट ।
 अकन्दिष्ट । अकन्दिष्यत [कद, क्रद, कृद] इत्यन्ये । कदते । क्रदते । क्लदते । चकदे ।
 चक्रदे । चक्लदे । कदितासे । कदिष्यते । कादिषतै । कादिषातै । कदताम् ।
 अकदत । कदेत । कदिषीष्ट । अकदिष्ट । अकदिष्यत । [जित्वरा] सम्भ्रुसे
 (सम्यक् भ्रान्ति) त्वरते । तत्वरै । त्वरिता । त्वरिष्यते । त्वारिषतै । त्वारिषातै ।
 त्वरताम् । अत्वरत । त्वरेत । त्वरिषीष्ट । अत्वरिष्ट । अत्वरिष्यत । इति घटादयः
 पित उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः षोडश समाप्ताः । ये घट आदि १६ धातु
 पित् संज्ञक समाप्त हुए पित् का प्रयोजन कदन्त में आवेगा ॥

अथ फणान्ताः परस्मैपदिनः । अब फण धातु पर्यन्त परस्मैपदौ कहते हैं
 [ज्वर] रोगे । ज्वरति । जज्वार [गड] सेचने (सींचना) गडति । जगाड ।
 जगडतुः । गडितासि । गडिष्यति । गाडिषति । गाडिषाति । गडतु । अगडत् ।
 गडेत् । गड्यात् । अगाडौत् । अगडौत् । अगडिष्यत् [हेड] वेष्टने (लपेटना)
 हेडति । जिहेड । यह धातु अनादर अर्थ में आत्मनेपद विषय में आ चुका है
 इस धातु की अनादर अर्थ में मित् संज्ञा नहीं होगी वहां । हेडयति । और मित्संज्ञा
 में ऋस्त्र होकर । हिडयति [वट, भट] परिभाषणे । वटति । ववाट । ववटतुः ।
 वटितासि । वटिष्यति । वाटिषति । वाटिषाति । वटतु । अवटत् । वटेत् ।
 वव्यात् । अवटौत् । अवाटौत् । अवटिष्यत् । भटति । बभाट [णट] नृती
 (नाचना) नटति । ननाट । यह धातु इसी अर्थ में परस्मैपदौ आ चुका है फिर
 यहां पठने से यही प्रयोजन है कि नृत्य में भी दो भेद हैं एक नाटक दूसरा
 नाचना । सो यहां नाचने अर्थ में मित् संज्ञा होती है [षक] प्रतिघाते (मारना)
 स्तकति । तस्ताक [चक] लक्ष्मी । चकति । चचाक । चेकतुः । चेकुः । अचाकीत् ।
 अचकीत् [कखे] हसने । कखति । अकखीत् (१६२) [रगे] शङ्कायाम् । रगति ।
 रराग । रेगतु । रेगुः । रगिता । रगिष्यति । रागिषति । रागिषाति । रगतु ।

अरगत् । रगेत् । रग्यात् । अरगीत् । अरगिष्यत् [लगे] सङ्गे (मिलाना) लगति । अलगतीत् [ऋगे, हलगे, षगे, ष्टगे] सम्बरणे (टांकना) ऋगति । हलगति । सगति । स्लगति । अङ्गगीत् । अहलगतीत् । असगीत् । अस्तगीत् [कगे], नोच्यते । कग धातु की विशेष अर्थ में मित्संज्ञा नहीं कहते क्योंकि यह धातु सामान्यार्थवाची है । कगति । चकाग । अकगीत् [अक, अग] कुटिलायां गतौ (टेढ़ा चलना) अकति । अगति [कण, रण] गतौ । कणति । चकाण । रणति । रराण । रेणतुः । अकाणीत् । अकणीत् । अराणीत् । अरणीत् [चण, ग्रण, अण,] दाने च [अण] गतावित्यन्ते । किन्ही के मत में ग्रण धातु केवल गत्यर्थ ही है दानार्थ नहीं । चण और अण धातुओं के दान और गति दोनों अर्थ हैं [अथ, अथ, क्रथ, क्लथ] हिंसार्थाः । अथति । प्रलथति । क्रथति । क्लथति [चन] च । चकार से हिंसा अर्थका सम्बन्ध होता है । चनति । चचान । चेतुः । चनिता । चनिष्यति । चानिषति । चानिषाति । चनतु । अचनत् । चनेत् । चन्यात् । अचानीत् । अचनीत् । अचनिष्यत् [वनु] च नोच्यते । एक वनु धातु तनादिगण में भी पढ़ा है । परन्तु उसका पाठ यहां मित्संज्ञा के लिये नहीं इसी कारण इस के अपूर्व होने से इस का विशेष अर्थ यहां मित्संज्ञा प्रकरण में नहीं कहते और तनादि गण का वनु धातु इसी प्रकरण में आगे पढ़ा है । वनति । ववान । अवानीत् । अवनीत् । [ज्वल] दीप्ती । ज्वलति । जज्वाल । जज्वलतुः । जज्वलुः । अज्वालीत् (१८६) अज्वलिष्यत् [हल, हल] सञ्चलने । हलति । हलति । जह्वाल । जह्वाल । अह्वालीत् । अह्वलीत् । अह्वालीत् [स्मृ] आध्याने (प्राप्ति की इच्छापूर्वक-स्मरण करना) यह धातु इसी गण में आगे चिन्ता अर्थ में लिखा है । इस के प्रयोग भी वहीं लिखे हैं । यहां आध्यान अर्थ में मित्संज्ञा होती है [दृ] भये (डर) [नृ] नये (नम्रता) ये दोनों धातु क्वादि गण में आवेंगे [आ] पाके (पकाना) यह अदादि गण का है । मारण तोषण निशामनेषु [ज्ञा] (मारना, सन्तोष और प्रत्यक्ष ज्ञान) इन अर्थों में ज्ञा धातु की मित्संज्ञा है अन्यत्र नहीं । और यह धातु भी क्वादि गण का है [चलिः] कम्पने (कांपना) यह धातु पीछे आचुका है [क्दिः] ऊर्जने (बल, वा प्राणपोषण) यह चुरादि गण में आवेगा । जिह्वोन्मथने [लडिः] (जीभ चलाना) यह भी चुरादि का है [मदी] हर्षग्लेपनयोः (आनन्द और दीनता) यह दिवादि गण का है [ध्वन] शब्दे । यह इसी गण में आगे लिखा है [दलि, वलि, स्खलि, रणि, ध्वनि, त्रपि, लपयश्च] इन में ध्वन और रण दोनों धातु आचुके । और दल धातु विशरण, वल सम्बरण, खल संचलन और त्रपूष लज्जा अर्थ में आचु के हैं ।

और लै धातु आगे इसी गण में आवेगा उसका पुगन्त क्षपि निर्देश किया है [खन] अवतंसने । यह धातु शब्द अर्थ में आगे लिखा है ॥ घटादयो मितः ॥ घट चेष्टायां धातु से लेकर जितने धातु लिख चुके हैं उन सब की मित्संज्ञा होवे इस मित्संज्ञा का प्रयोजन णिजन्त तथा कर्मकर्तृ प्रक्रिया और णमुल् प्रत्यय में आवेगा । [जनी, जृष्, क्लसु, रञ्जोऽमन्ताय] जनी, जृष्, और रंज ये तीनों दिवादि गण के हैं । और क्लसु धातु यहां नवीन सामान्यार्थवाची पढ़ा है । अम् जिन के अन्त में हो ऐसे क्म्, जम्, गम्, रम्, नम्, आदि सब गणों के धातु मित् संज्ञक होते हैं । क्लसति । चक्लास । क्लसिता । क्लसिष्यति । क्लसिषति । क्लसिषाति । क्लसतु । अक्लसत् । क्लसेत् । क्लस्यात् । अक्लासीत् । अक्लसीत् । अक्लसिष्यत् [ज्वल, हल, छल, नमामनुपसर्गाद्वा] इन में ज्वल, हल, और छल, धातु तो इसी मित्संज्ञा प्रकरण में लिख चुके हैं और नमधातु अमन्त है इन सब की नित्य मित्संज्ञा प्राप्त है उस का विकल्प होने से प्राप्तविभाषा है । परन्तु ये धातु उपसर्ग से परे न हों इतना विशेष है [ग्ला, स्त्रा, वनु, वमाञ्च] अनुपसर्ग पूर्वक ग्लै, स्त्रा, वनु और वम धातु की मित्संज्ञा विकल्प करके होवे इस सूत्र में प्राप्ताप्राप्त विभाषा यों है कि ग्ला वनु और स्त्रा धातु की मित् संज्ञा प्राप्त नहीं और वम धातु की अमन्त होने से प्राप्त है उन दोनों का विकल्प किया है [न कर्म्यमिचमाम्] कम्, अम्, और चम्, धातुओं की मित्संज्ञा अमन्त होने से नित्य प्राप्त है सो न होवे [समो दर्शने] यम धातु की दर्शन अर्थ में मित्संज्ञा न होवे । निशामयति [यमोऽपरिवेषणे] यम धातु की अपरिवेषण अर्थात् भोजन से अन्य अर्थ में मित्संज्ञा न होवे [स्वदिरवपरिभ्याञ्च] अव और परि उपसर्गों से परे जो स्वद धातु उस की मित्संज्ञा न होवे [फण] गती । फणति । पफाण ॥ २२६ ॥

२२७—फणां च सप्तानाम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२५ ॥

फण, राजृ, भ्राजृ, भ्राशृ, भ्लाशृ, स्यसु और खन इन सात धातुओं के अवर्ण को एकारादेश और अभ्यास का लोप विकल्प करके हो कित् संज्ञक लिट् और सेट् थल् परे होंगे । इन धातुओं की एत्वाभ्यासलोप किसी सूत्र से प्राप्त नहीं इस लिये यह अप्राप्तविभाषा है । फेणतुः । फेणुः । पफणतुः । पफणुः । फेणिय । पफणिय । फणिता । फणिष्यति । फाणिषति । फाणिषाति । फणतु । अफणत् । फणेत । फण्यात् । अफणीत् । अफाणीत् । अफणिष्यत् (वत्) घटादयः समाप्ताः । ये घट आदि मित्संज्ञक धातु समाप्त हुए ॥

[राजृ] दीप्ति । उदात्तः स्वरितेत् । यह धातु स्वरितेत् है अर्थात् क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद (१०३) होता और अन्यत्र परस्मैपद इस

प्रकार उभयपद के प्रयोग जानो । राजते । राजते । राजन्ते । राजति । राजतः । राजन्ति । रेजि (२२७) रराजि । रराज । रेजतुः । रराजतुः । राजितासे । राजितासि । राजिष्यते । राजिष्यति । राजिषते । राजिषाते । राजिषति । राजिषाति । राजतु । राजताम् । अराजत । अराजत् । राजेत । राजेत् । राजिषीष्ट । राज्यात् । अराजिष्ट । अराजीत् । अराजिष्यत । अराजिष्यत् [टुभ्राज, टुभ्राश्र, टुभ्लाश्र] दीप्तौ । उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेपदिनः । ये तीनों धातु आत्मनेपदी सेट् हैं । इन धातुओं के टु की इत्संज्ञा (१५०) भ्राजते । भ्रेजे (२२७) बभ्राजि भ्राजितासे । भ्राजिष्यते । भ्राजिषते । भ्राजिषाते । भ्राजताम् । अभ्राजत । भ्राजेत । भ्राजिषीष्ट । अभ्राजिष्ट । अभ्राजिष्यत । भ्राश्र तथा भ्लाश्र धातु से विकल्प करके श्यन् (१८८) पक्ष में शप् होता है । भ्राश्यते । भ्राश्येते । भ्राश्यन्ते । भ्राशते । भ्रेशे । बभ्राशे । भ्राशितासे । भ्राशिष्यते । भ्राशिषते । भ्राशिषाते । भ्राश्यते । भ्राश्याते । भ्राशते । भ्रशते । भ्राश्यताम् । भ्राशताम् । अभ्राश्यत । अभ्राशत । भ्राश्येत । भ्राशेत । भ्राशिषीष्ट । अभ्राशिष्ट । अभ्राशिष्यत । भ्लाश्यते । भ्लाशते । भ्लेशे । बभ्लाशे ॥

अथ स्यमादयः परस्मैपदिनः षड्विंशतिः । अब स्यम आदि २६ (छब्बीस) धातु परस्मैपदी कहते हैं [स्यमु, खन, ध्वन] शब्दे । स्यमति । सस्याम । स्येमतुः । (२२७) सस्यमतुः । स्यमितासि । स्यमिष्यति । स्यामिषति । स्यामिषाति । स्यमतु । अस्यमीत् (१६२) अस्यमिष्यत् । खनति । खेनतुः । सखनतुः । अखानीत् । अखनीत् (१४४) यहां तक फणादि सात धातु जो (२२७) सूच में कहे हैं समाप्त हुए । ध्वनति । दध्वान । दध्वनतुः । ध्वनितासि । ध्वनिष्यति । ध्वनिषति । ध्वनिषाति । ध्वनतु । अध्वनत् । ध्वनेत् । ध्वन्यात् । अध्वानीत् । अध्वनीत् । अध्वनिष्यत् [षम, षम] अवैकल्ये (सुस्थिर होना) समति । ससाम । सेमतुः । असमीत् (१६२) स्तमति । तस्ताम । तस्तमतुः । अस्तमीत् । [ज्वल] दीप्तौ । ज्वलति । जज्वाल । अज्वालीत् (१८६) [चल] कम्पने (कांपना) चलति । चचाल । चलतुः । चलितासि । चलिष्यति । चालिषति । चालिषाति । चलतु । अचलत् । चलेत् । चल्यात् । अचालीत् (१८६) अचलिष्यत् [जल] घातने (मारना) जलति । जजाल । जेलतुः । अजालीत् (१८६) [टल, टल] वैकल्ये (विरुद्ध चाल) टलति । टटाल । टेलतुः । टलति । टट्वाल । टटलतुः । अटालीत् । अटालीत् । अटलिष्यत् [ढल] स्थाने । स्थलति । तस्थाल । अस्थालीत् । [हल] विलेखने (खोदना वा जोतना) हलति । जहाल । अहालीत् [णल] गन्धे । बभ्धन इत्येके । नलति । ननाल । नेलतुः । अनालीत् [पल] गती ।

पलति । पेलतुः । अपालीत् [वल] प्राणने धान्यावरोधे च (जीवन और धानों का रोकना) वलति । ववाल । वेलतुः । वेलुः । अवालीत् [पुल] महत्त्वे (बड़ा-हीना) पीलति । पुपील । पुपुलतुः । अपीलीत् [कुल] संस्थाने वन्धुषु (भाई-वन्धुओं का समूह) कीलति । चुकील । चुकुलतुः । कीलितासि । कीलिष्यति । कीलिषति । कीलिषाति । कीलतु । अकीलत् । कीलेत् । कुल्यात् । अकीलीत् । अकीलिष्यत् [शल, हुल, पत्ल] गतौ । शलति । शशाल । शिलतुः । शिलुः । अशालीत् (१८६) होलति । जुहोल । अहोलीत् । पतति । पपात । पेततुः । पतितासि । पतिष्यति । पातिषति । पातिषाति । पततु । अपतत् । पतेत् । पत्यात् । इस पत धातु का लृट् इत् जाता है इस से अङ् (२१७) होकर ॥ २२७ ॥

२२८—पतः पुम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १८ ॥

अङ् परे हो तो पत धातु को पुम् का आगम होवे । पुम् (मित्) होने से अनृत्य अच् प्रकार से परे होता है । अट् + पपुम्त् + अङ् + तिप् = अपप्तत् । पुम् में से उम् भाग की इत्संज्ञा होती है । अपप्तताम् । अपप्तन् । अपप्तः । अपप्ततम् । अपप्तत । अपप्तम् । अपप्ताव । अपप्ताम । अपपतिष्यत् [कथे] निष्पाके (अच्छे प्रकार पकाना) कथति । चक्ताथ । एदित् होने से । अकथीत् (१६२) [मथे] विलोडने । मथति । ममाथ । मेथतुः । मथिता । मथिष्यति । माथिषति । माथिषाति । मथतु । अमथत् । मथेत् । मथ्यात् । अमथीत् । अमथिष्यत् [टुवम्] उद्गिरणे (उगिलना) टु इत् (१५०) वमति । ववाम । ववमतुः (१२८) एत्वाभ्यासलोप का निषेध । वमिता । वमिष्यति । वामिषति । वामिषाति । वमतु । अवमत् । यमेत् । वम्यात् । अवमीत् (१६२) अवमिष्यत् [भ्रमु] चलने । यहाँ (१८८) से विकल्प करके श्यन् होता है । भ्रम्यति । भ्रमति ॥ २२८ ॥

२२९—वा जृभ्रमुचसाम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२४ ॥

कित् लिट् और सेट् थल् परे हों तो जृ, भ्रमु और चस धातुओं के अभ्यास का लोप और इन को एकारादेश विकल्प करके होवे । इन धातुओं में एत्वाभ्यासलोप किसी सूत्र से प्राप्त नहीं था इस कारण यहाँ अप्राप्तविभाषा है । वभ्राम । भ्रमतुः । वभ्रमतुः । वभ्रमुः । अभ्रमीत् [चर] संचलने (अच्छे प्रकार चलना) चरति । चचार । चचरतुः । चरितासि । चरिष्यति । चारिषति । चारिषाति । चरतु । अचरत् । चरेत् । चर्यात् । अचारीत् (१८६) अचरिष्यत् ।

इति स्यमादय उदात्ता उदात्तैः समाप्ताः ॥

अथ द्वावनुदात्तेतौ । अब दो धातु आत्मनेपदी कहते हैं । उन में सह धातु सेट् और रमु अनिट् है [षह] मर्षणे (सहना) सहते । सहते । सहन्ते । सेहे । सेहाते । सहिता ॥ २२६ ॥

२३०—सहिवहोरोदवर्णस्य ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ११२ ॥

सह और वह धातु के अवर्ण को ओकार आदेश होवे ढकार का लोप हुआ हो तो । यहां (२१२) सूत्र से इट् के निषेध पक्ष में लुट् में तास् प्रत्यय के परे सह के हकार को ढ (२०३) और ढलोप (२०६) से होकर । सह्+तास्+डा=सोढा । सोढारौ । सोढारः । सोढामे । सोढासाथे । सोढाध्वे । सोढाहे । सोढास्वहे । सोढास्वहे । सहिष्यते । साहिष्यते । साहिषातै । सहताम् । असहत । सहेत । सहिषीष्ट । असहिष्ट । असहिष्यत [रमु] क्रीडायाम् (खेलना) यह धातु अनिट् है । रमते । रमेते । रमन्ते । रेमे । रेमाते । रेमिरे । रेमिषे । रन्तासे । रंस्यते । रांसते । रांसातै । रमताम् । अरमत । रमेत । रंसीष्ट । अरंस्त । अरंसाताम् । अरंस्यत ॥

अथ कसन्ताः सप्त परस्मैपदिनः [षट्ठ] विशरणगत्ववसादनेषु (मारना, गति और लेश होना) ॥ २३० ॥

२३१—पात्राधमास्याम्नादाण्डश्रुत्तिर्त्तिशदसदां

पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यच्छधौशीयसीदाः

॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७८ ॥

पा, प्रा, धा, स्था, ज्ञा, दाण्, ढृशि, ऋ, छ, श्द, और सद धातुओं को पिब, जिघ्र, धम, तिष्ठ, मन, यच्छ, पश्य, ऋच्छ, धौ, शीय, और सीद आदेश यथासंख्य करके होवें शित् प्रत्यय परे ही तो । यहां शप् के परे सद को सीद होकर । सीदति । सीदतः । सीदन्ति । ससाद । सेदतुः । सेदुः । यह भी धातु अनिट् है । सेदिय (१४८) सस्य (२१५) सेदयुः । सेद । ससाद । सेदिव । सेदिम । सत्ता । सत्तारौ । सत्तारः । सत्तासि । सत्स्यति । सात्सति । सात्साति । सत्सति । सत्साति । सीदति । सीदाति । सीदतु । असीदत् । सीदेत् । सद्यात् । लदित् होने से अङ् (२१७) असदत् । असदताम् । असदन् । असदः । असदतम् । असदत । असदम् । असदाव । असदाम् । असत्स्यत् [षट्ठ] शातने (तीक्ष्णता होनी) ॥ २३१ ॥

२३२—शदेः शितः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६० ॥

शित् प्रत्यय विषयक श्द धातु से आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय हीं (जिन लकारों में शप् होता है वहां) यह सूत्र परस्मैपद का अपवाद है । शीय (२३१)

आदेश । शीयते । शीयेते । शीयन्ते । शीयसे । शशाद् । शिदतुः । शिदुः । शिदिष्य ।
 शशत्य (१४८।२१५) शत्तासि । शत्त्यति । शत्सति । शत्साति । शत्सति । शत्साति ।
 शीयते । शीयाते । शीयते । शीयाते । शीयताम् । अशीयत । शीयेत । शयात् ।
 लृद्धिद् होने से अङ् (२१७) अशदत् । अशदताम् । अशदन् । अशत्यत् [क्रुश]
 आह्वाने रोदने च (बुलाना और रोना) क्रोशति । चुक्रोश । चुक्रुशतुः । चुक्रुशुः ।
 चुक्रोशिय (१४८) सूत्र के नियम से इट् । क्रुश-तास्-डा । यहाँ ॥ २३२ ॥

२३३—ब्रश्चभ्रस्जलृजमृजयजराजभ्राजच्छशां

षः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३६ ॥

ब्रश्च, भ्रस्ज, लृज, मृज, यज, राज, भ्राज, और छकारान्त शकारान्त धातुओं
 के अन्त्य वर्ण को ष आदेश होवे भल्ल परे हो वा पदान्त में । इस सूत्र में राज
 और भ्राज धातु का ग्रहण पदान्त में षत्व होने के लिये है क्योंकि इन दोनों
 के सेट् होने से भल्लादि आर्द्धधातुक में इट् के व्यवधान में प्राप्ति नहीं होती ।
 यहाँ प्रकृत में शान्त क्रुश धातु के शकार को मूर्धन्य और (ष्टुना ष्टुः) सूत्र से तास्
 के तकार को टकार होकर । क्रोष्टा । क्रोष्टारौ । क्रोष्टारः । क्रुश् + स्य + ति =
 क्रोक्षति (२०५) इसी प्रकार लेट् में जानी । क्रुश् + स् + अट् + तिप् = क्रोक्षति ।
 क्रोक्षति । क्रोशति । क्रोशाति । क्रोशतु । अक्रोशत् । क्रोशेत् । क्रुश्यात् । अट् +
 क्रुश् + क्त + तिप् = अक्रुक्षत् (२०७) अक्रुक्षताम् । अक्रुक्षन् । अक्रुक्षः । अक्रोक्ष्यत् ।
 ये षट् आदि तीन धातु अनिट् थे [कुच] सम्पर्चनकौटिल्यप्रतिष्ठभिलेखनेषु
 (छूना, टेढ़ाई, रोक रखना और खोदना) कोचति । चुकोच । चुकुचतुः । कोचिता ।
 कोचिष्यति । कोचिषति । कोचिषाति । कोचतु । अकोचत् । कोचेत् । कुच्यात् ।
 अकोचीत् । अकोचिष्यत् [बुध] अवगमने (ज्ञान होना) बोधति । बुबोध ।
 बुबुधतुः । बुबुधुः । बोधिता । बोधिष्यति । बोधिषति । बोधिषाति । बोधतु ।
 अबोधत् । बोधेत् । बुध्यात् । अबोधीत् । अबोधिष्यत् [रुह] बीजजन्मनि प्रादुर्भावे
 च (बीज की उत्पत्ति और प्रकट होना) रोहति । रुरोह । रुरुहतुः । यह धातु
 भी अनिट् है । रुह् + तास् + डा = रोढा (२०३) (१४१) और (ष्टुना ष्टुः) (२०६)
 रोढारौ । रोढारः । राढासि । रोह् + स्य + ति = रोह्यति (२०३) (२०५)
 रोह्यतः । रोह्यन्ति । रोहति । रोहति । रोहति । रोहति । रोहति । रोहतु । अरोहत् ।
 रोहेत् । रुह्यात् । अट् + रुह् + क्त + तिप् = अरुह्यत् (२०७) अरुह्यताम् । अरुह्यन् ।
 अरोह्यत् [कस] गतौ । कसति । चकास । चकसतुः । कसितासि । कसिष्यति ।
 कासिषति । कासिषाति । कसतु । अकसत् । कसेत् । कस्यात् । अकासीत् ।
 अकसीत् । अकसिष्यत् [वृत्] ज्वलादिगणः समाप्तः । ज्वल दीप्ती धातु से लेकर

यहांतक ज्वलादि गण कहाता है । इस का प्रयोजन कदन्त में आवेगा । और ये षट् आदि परस्मैपद सात धातु समाप्त हुए ॥

अथ गूल्यन्ताः स्वरितेतोऽष्टत्रिंशत् । अब गुह्य पर्यन्त स्वरितेत् (जिन में क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद अन्यत्र परस्मैपद होता है वे उभयपदी) ३८ (अङ्तीस) धातु कहते हैं [हिक्] अव्यक्ते शब्दे । हिक्ते । हिक्ति [अञ्चु] गतौ याचने च (गति और मांगना) अञ्चते । अञ्चति । आनञ्चे । आनञ्च । अञ्चात् । (१३८) [अञ्चु] इत्येके । अचते । अचति । आचे । आच । अचितासे । अचितासि । अचिष्यते । अचिष्यति । आचिषतै । आचिषातै । आचिषति । आचिषाति । अचताम् । अचतु । आचत । आचत् । अचेत । अचेत् । अचिषीष्ट । अञ्चात् । आचिष्ट । आचीत् । आचिष्यत । आचिष्यत् [अचि] इत्यपरे । इस में इतना ही भेद है कि इदित् होने से । अञ्चात् (१३८) नलोप नहीं होता [टुयाचृ] याच्ञायाम् (मांगना) याचते । याचति । ययाचे । ययाच । याचितासे । याचितासि । याचिष्यते । याचिष्यति । याचिषतै । याचिषातै । याचिषति । याचिषाति । याचताम् । याचतु । अयाचत । अयाचत् । याचेत । याचेत् । याचिषीष्ट । याञ्चात् । अयाचिष्ट । अयाचीत् । अयाचिष्यत । अयाचिष्यत् [रेटृ] परिभाषणे (बहुत बोलना) रेटते । रेटति । रिरेटे । रिरिट [चते, चदे] याचने । चतते । चदते । चतति । चदति । चेतै । चेदे । चचात । चेततुः । अचतीत् । (१६२) अचदौत् । [प्रीथृ] पर्याप्तौ (सामर्थ्य) प्रीथते । प्रीथति । पुप्रीथे । पुप्रीथ [मिष्ट, मेष्ट] मेधाहिंसनयोः (तौष्ण बुद्धि और मारना) मेदते । मेदति । मिमिदे । मिमेदे । मिमेद । मिमिदतुः । मिमेदतुः [मिष्ट, मेष्ट] सङ्गमे च (मेल करना) और चकार से पूर्वोक्त दोनों अर्थ का समुच्चय जानो । मेधते । मेधति । मिमिधे । मिमेधे । मिमेध । मिमिधतुः । मिमेधतुः [मिथृ, मेथृ] मेधाहिंसनयोरित्येके । मेथते । मेथति [णिष्ट, णेष्ट] कुत्सासन्निकर्षयोः (निन्दा और समीप होना) नेदते । नेदति । नेदतः । निनिदे । निनेदे । निनिदतुः । निनेदतुः [मृधु, मृधु] उन्दने (गीलापन) शर्धते । शर्धते । शर्धति । मर्धति । शश्रुधे । शश्रुधतुः [बुधिर्] बोधने (बोधहोना) बोधते । बोधति । अबोधिष्ट । यहां आत्मनेपद विषय में (१८४) सूत्र से जन धातु के साहचर्य से दिवादि के बुध का ग्रहण होता है इस लिये चिण न हुआ । अबुधत् । इरित् होने से अङ् (१३८) अबोधौत् । [उवुन्दिर्] निशामने (सुनाना) इस धातु में उ और इर् भाग की इत् संज्ञा होजाती है । वुन्दते । वुन्दति । वुवुन्दे । वुवुन्दतुः । अवुन्दिष्ट । अवुदत् (१३८) (१३८) अवुन्दीत् [वेणु] गतिज्ञानचिन्तानिशामनवादित्रयग्रहणेषु (गति, ज्ञान,

चिन्ता और वाजों (ढोलआदि) का ग्रहण करना [वेणु] इत्येके । वेणते । वेनते । वेणति । वेनति । विवेने । विवेणे । विवेणतुः । वेणितासि । वेणितासे । वेणिष्यते । वेणिष्यति । वेणिषतै । वेणिषातै । वेणिषति । वेणिषाति । वेणताम् । वेणतु । अवेणत । अवेणत् । वेणेत । वेणेतु । वेण्यात् । वेणिषीष्ट । अवेणिष्ट । अवेणीत् । अवेणिष्यत । अवेणिष्यत् [खनु] अवदारणे (खोदना) खनति । खनते । चखने । चखान । अतुस् में उपधालोप (२१४) चखनतुः । चखनुः । खनितासे । खनितासि । खनिष्यते । खनिष्यति । खानिषतै । खानिषातै । खानिषति । खानिषाति । खनताम् । खनतु । अखनत । अखनत् । खनेत । खनेत् । खनिषीष्ट । खन् + यासुट् + सुट् + तिप् (१८५) न् की आकार विकल्प से होकर = खायात् । खन्यात् । अखनीत् । अखानीत् (१४४) अखनिष्ट । अखनिष्यत । अखनिष्यत् [चीवृ] आदानसंवरणयोः (ग्रहण, आच्छादन) चीवते । चीवति । चिचीवे । चिचीव । [चायृ] पूजानिश्चामनयोः (सत्कार और सुनाना) चायते । चायति । चचाये । चचाय । यहाँ वेद में कुछ विशेष है ॥ २३३ ॥

२३४—चायः कौ ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३५ ॥

चायृ धातु को वेद में बहुल करके कौ आदेश होवे । यहाँ द्विवचन होने से प्रथम ही अनेकाल् होने से चाय्मात्र के स्थान में कौ होकर पश्चात् द्विवचन होता है । कौ + कौ + एण् = चिक्ये । चिक्यतुः । चिक्युः । चचाय । बहुल ग्रहण से कहीं होता है कहीं नहीं भी होता [व्यथ] गतौ । व्यथते । व्यथति । वव्यथे । वव्याय । यकारान्त होने से वृद्धि का निषेध (१६२) अव्ययीत् । अव्यधिष्ट । [दाशृ] दाने (देना) दाशते । दाशति । ददाशे । ददाश । दाशितासे । दाशितासि । दाशिष्यते । दाशिष्यति । दाशिषतै । दाशिषातै । दाशिषति । दाशिषाति । दाशताम् । दाशतु । अदाशत । अदाशत् । दाशेत । दाशेत् । दाशिषीष्ट । दाश्यात् । अदाशिष्ट । अदाशीत् । अदाशिष्यत । अदाशिष्यत् [मेषृ] भये (डर) गतावित्येके । मेषति । मेषते । विमेषे । विमेष [म्लेषृ, भ्लेषृ] गतौ । म्लेषते । म्लेषति । भ्लेषते । भ्लेषति [अस] गतिदीप्त्यादानेषु (गति, प्रकाश और लेना) असते । असति । आस । आसतुः । आसुः । आसे । आसाते । आसिरे [अष] इत्येके । किन्ही के मत में पूर्वोक्तदन्त्य सकारान्त धातु नहीं मूर्द्धन्य सकारान्त है । अषति । अषते । [स्पशृ] बाधनस्पर्शनयोः (दुःख देना और स्पर्श करना) स्पशति । स्पशते । पस्पशे । पस्याश (१२४) अस्पशिष्ट । अस्याशीत् । अस्पशीत् [लघृ] कान्ती (इच्छा) लप्यति । लपति । लपते । लप्यते (१८८) श्यन् । ललाष । लेषतुः । लेषुः । लेषे ।

लेषाते । लेषिरे । लषितासे । लषितासि । लषिष्यते । लषिष्यति । लाषिषतै ।
लाषिषातै । लाषिषति । लाषिषाति । लषताम् । लषतु । अलषत् । लषेत् ।
लष्यात् । लषिषीष्ट । अलषिष्ट । अलाषीत् । अलषीत् । अलषिष्यत । अलषिष्यत् ।
[चष] भक्षणे (खाना) चषति । चषते । चेषतुः । चेषे [कष] हिंसायाम् । कषति ।
कषते । चच्छषतुः । चच्छषे [भक्ष] आदानसम्बरणयोः (लेना, आच्छादन)
भक्षति । भक्षते । जभाष । जभक्षे [भक्ष, भलक्ष] अदने । भक्षति । भक्षते ।
भलक्षति । भलक्षते । बभ्रक्ष । बभ्रक्षे [भक्ष] इत्येके । भक्षति । भक्षते [दाष्ट] दाने
दासति । दासते । ददास । ददासे [माह] माने (तोलना) माहति । माहते ।
ममाह । ममाहे । अमाहिष्ट । अमाहीत् [गुह] सम्बरणे (आच्छादन करना)
गुह-अप्-तिप् । यहाँ ॥ २३४ ॥

२३५—ऊदुपधाया गोहः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ८६ ॥

गुण का निमित्त अजादि प्रत्यय परे हो तो गुह धातु को उपधा को जकार
आदेश होवे । इस सूत्र में गुण किये गुह का ग्रहण इस लिये किया है कि जहाँ
इस को गुण होता है वहीं जकार होवे अन्यत्र नहीं । जकार होने के पश्चात्
लघूपध के न होने से गुण नहीं होता । गूहति । गूहतः । गूहन्ति । गूहते । गूहते
गूहन्ते । जुगूह । जुगूहतुः । जुगूहः । जुगूहिथ । जुगूढ (२०३) (१४१) (२०६)
जुगूहथुः । जुगूह । जुगूह । जुगूहिष । जुगूह । जुगूहिम । जुगूह । जुगूहे ।
जुगूहातै । जुगूहिरे । जुगूहिषे । जुगूह+से=जुषुक्षे (२०३) (२०४) (२०५)
जुगूहाये । जुगूहिध्वे । जुगूहिद्वे । जुषुद-द्वे । यहाँ प्रथम ढकार का लोप
(२०६) होकर ॥ २३५ ॥

२३६—ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ॥ अ० ॥ ६ । ३ । १११ ॥

जहाँ रेफ और ढकार का लोप हुआ हो वहाँ पूर्व अण की दीर्घ होवे ।
यहाँ घु के उकार को दीर्घ होकर । जुषूद्वे । जुगूहे । जुगूहिषहे । जुगूहहे ।
जुगूहिमहे । जुगूहहे । गूहितासि । गूहितासे । अनिट् पक्ष में । गुह+तास्+
डा=गोडा । यहाँ अजादि प्रत्यय के न होने से उपधा को जकार (२३५) नहीं
हीता । गोडारौ । गोडारः । गोडासि । गोडासे । गूहिष्यति । गूहिष्यते । घोक्षति ।
घोक्षतः । घोक्षन्ति । घोक्षते । गूहिषति । गूहिषाति । घोक्षति । घोक्षाति ।
गूहति । गूहाति । गूहिषतै । गूहिषातै । घोक्षतै । घोक्षातै । गूहतै । गूहातै ।
गूहताम् । गूहतु । अगूहत । अगूहत् । गूहेत । गूहेत् । गूहिषीष्ट । अनिट् पक्ष
में । गुह+सीयुट्+सुट्+त (२०३ । २०४ । २०५ । ५६ । १६३ । ४५)=घुक्षीष्ट ।
घुक्षीयास्ताम् । घुक्षीरन् । गूहिषीद्वम् । गूहिषीध्वम् । घुक्षीध्वम् । गुह्यात् ।

अगूहिष्ट । अगूहिषत । अगूहीत् । और अनिट् पक्ष में । अट्-गुह्-क्त-त । इ
अवस्था में ॥ २३६ ॥

२३७—लुग्वा दुह्दिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७३

आत्मानेपद विषय में दन्त्य अक्षर पर होती दुह्, दिह्, लिह् और गुह् धा
ओं से परे जो क्त प्रत्यय उस का लुक् विकल्प करके होवे प्रत्यय मात्र का लु
और लीप अन्य अल् के स्थान में होता है । यहां दन्त्य अक्षर त, ध्वम् और था
के परे क्त का लुक् होता है । अट् + गुह् + क्त + त (२३७ । २०३ । १४१) दु
और (२३६) = अगूढ । अघुक्षत । अघुक्षाताम् (२०८) अघुक्षन्त । अगुह् + क्त + था
(२३७ । २०३ । १४१) = अगूढाः । अघुक्षयाः । अघुक्षाथाम् । अगुह् + क्त + ध
(२३७ । २०३ । २०४ । २०६ । २३६) = अघूढ्वम् । अघुक्षि । अघुक्षावहि । अघुक्षामहि
अगूहिष्यत । अगूहिष्यत् । अघोक्ष्यत् । अघोक्ष्यत् । इति हिक्कादय उदात्ताः स्वरिते
उभयतोभाषाः समाप्ताः । ये हिक्कादि अङ्गीत उभयपदी धातु समाप्त हुए ॥

अथाजन्ता उभयपदिनः पञ्च । अब अजन्त उभयपदी पांच धातु कहते
[चिञ्] सेवायाम् (सेवा करना) यह धातु सेट् है । ज् कौ इत्सञ्ज्ञा होने
(१०३) उभयपद इसी प्रकार सर्वत्र जित् धातुओं से उभयपद जानो । चिञ्
अप् + तिप् (२१) गुण = अयति । अयतः । अयन्ति । अयसि । अयते । अयेत
अयन्ते । अयिष्यति । अयिष्यति । अयिष्यति । अयिष्यति । अयिष्यति । अयिष्यति
अयिष्यते । अयिष्यति । अयिष्यति । अयति । अयाति । अयिष्यते । अयिष्यते
अयतु । अयताम् । अययत् । अययत । अयेत् । अयेत । अयात् (१६०) दीर्घ
अयिषीष्ट । अयिष्यत् (१७६) चङ् (१८०) द्वित्व (१५८) इयङ् । अयिष्यताम्
अयिष्यन् । अयिष्ययः । अयिष्ययत् । अयिष्ययेताम् । अयिष्यन्त । अयि
ष्यत् । अयिष्यत् [भञ्] भरणे (धारण और पोषण) गुण होकर । भरति
भरते । बभार । बभ्रुतुः । बभ्रुः । यहां यणदेश होता है विशेष नियम के ह
से सामान्य लिट् में इट् का निषेध (१४८) भारद्वाज के मत में थल् में इट्
निषेध (१४८) और अन्य ऋषियों के मत में थल् में इट् का निषेध (१५५)
होकर । बभ्रय । बभ्रयुः । बभ्र । बभार । बभर । बभ्रव । बभ्रम । बभ्रे । बभ्रा
बभ्रिरे । बभ्रिरे । बभ्रिरे । बभ्रिरे । बभ्रिरे । भर्त्तासि । भर्त्तासि ॥ २३७ ॥

२३८—ऋडनोः स्ये ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७० ॥

ऋक् ऋकारान्त और इन धातु से परे जो स्य वलादिआर्द्धधातुक उस
इट् का आगम होवे । भरिष्यति । भरिष्यते । भार्षति । भार्षति । भरति
भराति । भार्षते । भार्षते । भरतु । भरताम् । अभरत् । अभरत । भरत् । भरत ॥ २३८ ॥

। हस

122

10

44

11-11-11

578

1997

॥ इति ॥

下刊

५५ ५५ ५५

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

晴日

Figure 1

1994

77

१३३

100

1992

1. 53124

५३५।

५३।

२२ दिवस

321

...

三、

441

413



1

4/2/57

संज्ञा

1991

[णीञ्] प्रापणे (लेचलना) नयति । नयते । निनाय । नी + नी + अतुस् = निन्यतुः । (१५६) यण् । निन्युः । निनयिष्य (१४८) निनेष्य (१५७) निन्यथुः । निन्य । निनाय । निनय । निन्यिव । निन्यिम । निन्ये । निन्याति । निन्यिरे । नेतासि । नेतासे । नेयति । नेष्यते । नैषति । नैषाति । नयति । नयाति । नैषतै । नैषातै । नैषतै । नैषातै । नैषते । नैषाते । नयतै । नयातै । नयतु । नयताम् । अनयत् । अनयत । नयेत् । नयेत । नीयात् । नीयास्ताम् । नैषीष्ट । अनैषीत् । अनेष्ट । अनेषाताम् । अनेष्यत् । अनेष्यत । भरत्यादयश्चत्वारोऽनुदात्ताः ॥

अथाजन्ताः परस्मैपदिनः । अब अजन्त परस्मैपदी धातु कहते हैं [धेट्] घानि (घीना) ट् की इत्संज्ञा और एकार की अय् आदेश होकर । धे + शप् + तिप् = धधति । धयतः । धयन्ति ॥ २४१ ॥

२४२—आदेच उपदेशेऽशिति ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४५ ॥

अशित् अर्थात् आर्द्धधातुक विषय में उपदेश में जो एजन्त धातु उस की आकार होवे । आकारान्त धातु सब अनिट् हैं । धा = एल् । इस अवस्था में ॥ २४२ ॥

२४३—आत औ णल् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३४ ॥

आकारान्त धातु से परे जो एल् उस की औकार आदेश होवे । धा—औ । हित् हो कर । दधौ । धा—अतुस् । यहां ॥ २४३ ॥

२४४—आतो लोप इटि च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६४ ॥

अजादि कित् डित् आर्द्धधातुक और इट् परे हींतो आकारान्त अङ्ग का लोप होवे । इस लोप के पहिले हित्व की प्राप्ति तो है फिर सब विधियों से लोप विधि के अति बलवान् होने से प्रथम लोप ही होता है फिर एकाच् के न होने से हित्व (३४) नहीं प्राप्त है इस लिये ॥ २४४ ॥

२४५—द्विर्वचनेऽचि ॥ अ० ॥ १ । १ । ५६ ॥

द्विर्वचन का निमित्त अजादि प्रत्यय परे हो तो अच् के स्थान में जो आदेश है सो स्थानिरूप होजावे । यहां रूपातिदेश मानने से आकार का पुनरागमन हो कर द्विर्वचन होता है । धा + धा + अतुस् = दधतुः । यहां द्विर्वचन होने के पश्चात् दूसरे धा के आकार का लोप हुआ है । दधुः । दधा + इट् + यल् = (२४४) दधिष्य (१४८) भारद्वाज के मत में इट् का विधान और । दधाष्य (१५७) इट् का निषेध । दधथुः । दध । दधौ । दधिव । दधिम । धाता । धातारी । धातारः । धातासि । धास्यति । धास्यतः । धास्यन्ति । धासति । धासाति । धयति । धयाति । धयतु । अधयत् । धयेत् ॥ २४५ ॥

२४६—दाधा घवदाप् ॥ अ० ॥ १ । १ । २० ॥

दारूप और धारूप जो धातु तथा इन को जो प्रकृति हैं उन की घुसंज्ञा होवे । दाप् और दैप् धातु को छोड़ के । इस का फल ॥ २४६ ॥

२४७—एलिङि ॥ अ० ॥ ६ । ६ । ६७ ॥

घुसंज्ञक धातु, मा, स्था, गा, पा, ओहाक्, सा इन धातुओं के आकार की एकार आदेश होवे कित् डिच् लिङ् परे ही तो घे की आकार (२४२) होता है उसी आकार की ए होकर । घेयात् । घेयास्ताम् । घेयासुः । घेयाः । घेयास्तम् । घेयास्त । घेयासम् । घेयास्त । घेयास्त ॥ २४७ ॥

२४८—विभाषा धेट्शब्दोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४६ ॥

धेट् और श्चि धातु से परे जो च्चि प्रत्यय उस के स्थान में चङ् आदेश विकल्प करके होवे । अट् + धा + धा + चङ् + तिप् = अदधत् (१८०) हित्व और (२४४) आ का लोप । अदधताम् । अदधन् । अदधः । अदधतम् । अदधत । अदधम् । अदधाव । अदधाम । अब जिस पक्ष में चङ् न हुआ वहाँ उत्सर्ग सिच् ही कर ॥ २४८ ॥

२४९—विभाषा घ्राधेट्शाच्छासः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७८ ॥

घ्रा, धेट्, शा, छा और सा इन धातुओं से परे जो सिच् उस का विकल्प करके लुक् हो परस्मैपद विषय में । धेट् धातु की घुसंज्ञा होने से (८६) सूत्र से सिच् लुक् नित्य प्राप्त और अन्य धातुओं से अप्राप्त है इन दोनों का विकल्प होने से प्राप्ताप्राप्तविभाषा इस सूत्र में समझनी चाहिये सिच् का लुक् होकर । अट् + धा + तिप् = अधात् । अधाताम् । अधा + भि । यहाँ जुस् आदेश किसी से प्राप्त नहीं है इसलिये ॥ २४९ ॥

२५०—आतः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११० ॥

जिस में परे सिच् का लुक् हुआ हो ऐसे आकारान्त धातु से परे जो भि उस को जुस् आदेश होवे । सिच् लुक् होने के पश्चात् प्रत्ययलक्षण कार्य मान के जुस् (१३४) हो जाता फिर यह सूत्र नियमार्थ है कि सिज्लुगन्त से परे प्रत्ययलक्षण मान के आकारान्त धातुओं से परे ही जुस् हो अन्य से नहीं । अभूवन् । यहाँ भी सिच् लुक् (८६) हुआ है तो भी प्रत्ययलक्षण मान के जुस् नहीं होता । अट् + धा + जुस् = अधुः (८३) पररूप एकादेश । अधाः । अधातम् । अधात । अधाम् । अधाव । अधाम । सिच् लुक् (२४९) विकल्प से होता है जिस पक्ष में न हुआ वहाँ ॥ २५० ॥

यस्, रस्, नस् और आकारान्त धातुओं से परे जो सिच् उस को इट् का आगम और इन धातुओं को सक् का आगम होवे परस्मैपद विषय में । अट् + धा + सक् + इट् + सिच् + ईट् + तिप् = अधासीत् । सिच् के सकार का लोप (१३२) होजाता है । अधासिष्टाम् । अधासिषुः । अधासीः । अधासिष्टम् । अधासिष्ट । अधासिषम् । अधासिष्व । अधासिष । अधास्यत् । अधास्यताम् । अधास्यन् [ग्लै, ग्लै] हर्षलये (आनन्द का नाश) ग्लै + शप् + तिप् = ग्लायति । ग्लायतः । ग्लायन्ति । लिट् आदि आर्द्धधातुक लकारों में धेट् के समान साधुत्व जानो । जग्लौ । जग्लतुः । मग्लौ । मग्लतुः । जग्लिथ । जग्लाय । जग्लौ । जग्लिष्व । जग्लिम । ग्लातासि । ग्लास्यति । ग्लासति । ग्लासाति । ग्लयातु । अग्लायत् । ग्लायेत् । आशिषि लिङ् में एकारादेश (२४७) नित्य प्राप्त है ॥ २५१ ॥

(२४७) सूत्र में कहे घुसंज्ञक आदि से अन्य संयोगादि आकारान्त धातुओं के आकार को एकार विकल्प करके ही कित् डित् लिङ् परे हो तो । ग्लेयात् । ग्लायात् । स्नेयात् । स्नायात् । लुङ् में (२५१) सकृ और इट् ही कर । अग्लासीत् । अग्लासिष्टाम् । अस्नासीत् । अग्लास्यत् [द्यै] न्यकरणे (नीची का तिरस्कार करना) व्यायति । दद्यौ । ददियथ । दद्याथ । व्याता। व्यास्यति । व्यासति । व्यासाति । व्यायतु । अव्यायत् । व्यायेत् । वीयात् । व्यायात् । अव्यासीत् । अव्यासिष्टाम् । अव्यासिषुः । अव्यास्यत् [द्वै] सुप्ते (सोना) द्रायति । दद्रौ । द्राता । द्वेयात् । द्रायात् । अद्रासीत् [भ्रै] लभौ । प्रायति । दध्री । भ्रेयात् । प्रायात् । अभ्रासीत् [ध्यै] चिन्तायाम् (विचारना) ध्यायति । दध्यौ । ध्याता । ध्यास्यति । ध्यासति । ध्यासाति । ध्यायतु । अध्यायत् । ध्यायेत् । ध्वियात् । ध्यायात् । अध्यासीत् । अध्यास्यत् [रै] शब्दे । रायति । ररौ । रातासि । रायात् । अरासीत् [स्व्यै, ध्यै] शब्दसङ्घातयोः (शब्द और समुदाय) इन दोनों में एक धातु षोपदेश है उस की भी सत्व होने पश्चात् एक ही प्रकार के रूप होते हैं षोपदेश का फल णिजन्त और सन्नन्त प्रक्रिया में आवेगा । स्त्यायति । तस्त्यौ । स्त्येयात् । स्त्यायात् । अस्त्यासीत् [ख्वै] खदने (खाना) खायति । चखौ । चखतुः । चखुः । चखिथ । चखाथ । खातासि । खास्यति । खासति । खासाति । खायतु । अखायत् । खायेत् । खायात् । अखासीत् । अखास्यत् [ज्ञै, जै, पै] क्षये (नाश) जायति । चक्षौ । क्षेयात् । जायात् । अजासीत् । यहाँ भी

यै धातु को आकार हो कर सा हो जाता है परन्तु (२४७ । २४८) सूत्रों में सा धातु के ग्रहण से दिवादि गण का (वा) लिया जाता है । सायति । ससौ । सायात् । असासीत् [कै, गै] शब्दे । कायति । चकौ । कायात् । अकासीत् । गायति । जगौ । गायात् । अगासीत् [श्रै, श्रै] पाके (पकाना) शायति । शशौ । शयात् । अशासीत् । आयति । शशौ । आतासि । आस्यति । आसति । आसाति । आयति । आयाति । आयतु । अआयत् । आयेत् । अयात् (२४७) आयात् । अआसीत् । अआस्यत् [पै, ओवै] शोषणे (शोखना) पायति । पपौ । पपतुः । पपुः । पपिथ । पपाथ । पपथुः । पप । पपौ । पपिव । पपिम । पातासि । पास्यति । पासति । पासाति । पायति । पायाति । पायतु । अपायत् । पायेत् । और पा धातु से भी उपदेश में आकारान्त पा धातु का ग्रहण (२४७) सूत्र में होता है । पायात् । इस कारण एत्व न हुआ अपासीत् । अपासिष्टाम् । अपासिषुः । अपास्यत् । ओवै धातु में ओकार इत् जाता है प्रयोजन कृदन्त में आविगा । वायति । ववी । वायात् । अवासीत् [टै] वेष्टने (लपेटना) स्तायति । तस्तौ । स्तेयात् । स्तायात् । अस्तासीत् [णै] वेष्टने शोभायां चेत्येके किन्ही के मत में णै धातु का शोभा अर्थ भी है । स्नायति । सस्तौ । स्तेयात् । स्नायात् । अस्नासीत् । अस्नास्यत् [दैप्] शोनेध (शोधना) इस में प् को इत्संज्ञा होती है और घु संज्ञा का निषेध होने से एकार का निषेध (२४७) और सिच् लुक् (८८) नहीं होता । दायति । ददौ । दायात् । अदासीत् [पा] पाने (पीना) यहां पा के स्थान में पिव आदेश (२३१) पिवति । पिवतः । पिवन्ति । पपौ । पपतुः । पपुः । पपिथ । पपाथ । पातासि । पास्यति । पासति । पासाति । पिवति । पिवाति । पिवतु । अपिवत् । पिबेत् । पेयात् । पेयास्ताम् । पेयासुः । अट् + पा + तिप् = अपात् (८८) सिच् का लुक् । अपाताम् । अपुः । अपास्यत् [घ्रा] गन्धोपादाने (गन्ध का ग्रहण वा गन्ध के द्वारा किसी पदार्थ का ग्रहण करना) घ्रा के स्थान में (२३१) जिघ्र आदेश । जिघ्रति । जिघ्रतः । जिघ्रन्ति । जघ्नौ । जघ्रतुः । घ्राता । घ्रास्यति । घ्रासति । घ्रासाति । जिघ्रति । जिघ्राति । जिघ्रतु । अजिघ्रत् । जिघ्रेत् । संयोगादि होने से एकार का विकल्प (२५२) घ्रेयात् । घ्रायात् । और सिच् लुक् का विकल्प (२४८) अघ्रात् । अघ्राताम् । अघ्रुः । अघ्राः । अघ्रातम् । अघ्रात । अघ्राम् । अघ्राव । अघ्राम । अघ्रासीत् । अघ्रासिष्टाम् । अघ्रासिषुः । अघ्रास्यत् [ध्वा] शब्दाग्निसंयोगयोः (शब्द और अग्नि के साथ वायु का संयोग) ध्वा के स्थान में धम (२३१) आदेश । धमति । धमतः । धमन्ति । दधौ । दधतुः । दधुः । दधिय । दधाथ । दधथुः ।

दध् । दधौ । दधिव । दध्मिम । ध्मातासि । ध्मास्यति । ध्मासति । ध्मासाति ।
धमति । धमाति । धमतु । अधमतु । धमेत् । धीयात् । ध्यायात् । अध्यासीत् ।
अध्यास्यत् [ष्टा] गतिनिवृत्तौ (ठहर जाना) (२३१) से तिष्ठ होकर । तिष्ठति ।
तिष्ठतः । तिष्ठान्ति । तस्थौ । तस्थतुः । स्थातासि । स्थास्यति । स्थासति । स्थासाति ।
तिष्ठति । तिष्ठाति । तिष्ठतु । अतिष्ठत् । तिष्ठेत् । स्थियात् (२४७) एकारादेश
होता है । अस्थात् (८८) सिच् लुक् । अस्थाताम् । अस्थुः । अस्थास्यत् [म्ना]
अभ्यासे (अभ्यास करना) मन आदेश (२३१) मनति । मन्तौ । म्नाता ।
म्नास्यति । म्नासति । मनति । मनाति । मनतु । अमनत् । मनेत् । मनेयात् ।
मनायात् । अमनासीत् । अमनास्यत् [दाण्] दाने (देना) दाण् की यच्च्
(२३१) यच्क्कति । यच्क्कतः । यच्क्कन्ति । प्रयच्क्कति । ददौ । दातासि । दास्यति ।
दासति । दासाति । यच्क्कति । यच्क्काति । यच्क्कतु । अयच्क्कत् । यच्क्केत् । इस
धातु में णकार अनुबन्ध यच्क्क आदेश विधायक सूत्र में विशेष बोध के लिये है ।
निरनुबन्ध दारूप की घुसंज्ञा (२४६) होकर एकार (२४७) होता है । देयात् ।
देयास्ताम् । और घुसंज्ञा से ही सिच् लुक् । अदात् । अदाताम् । अदुः । अदाः ।
अदास्यत ॥ २५२ ॥

२५३—ऋतश्च संयोगादिर्गुणः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १० ॥

लिट् लकार परे होती ऋकारान्त संयोगादि धातु को गुण होवे । लिट् की कित् संज्ञा (१३७) होने से गुण (४५) नहीं प्राप्त है इस लिये यह सूत्र है । और णस् प्रत्यय में जहां वृद्धि प्राप्त है वहां इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती पूर्व-विप्रतिषेध मान कर वृद्धिही हो जाती है । जह्वार । जह्वरतुः । जह्वरः । यस् में भारद्वाज के मत में इट् का निषेध (१४६) और अन्यो के मत में इट् (१५७) नहीं होता । जह्वर्थ । जह्वरथुः । जह्वर । जह्वार । जह्वर । जह्वरिव । जह्वरिस । ह्वर्त्तासि । लिट् में गुण (२३८) ह्वरिष्यति । ह्वर्षति । ह्वर्षाति । ह्वर्षति । ह्वर्षाति । ह्वरति । ह्वराति । ह्वरतु । अह्वरत् । हरित् ॥ २५३ ॥

२५४-गुणोक्तिं संयोगाद्याः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २६ ॥

ऋधातु और संयोगादि ऋकारान्त धातु की गुण होवे यक् और कित् आर्ध-धातुक लिङ् पर होती ह्र्यात् । ह्र्यास्ताम् । ह्र्यासुः । लुङ् में वृद्धि (१५८) हो कर । अह्वार्षीत् । अह्वार्ष्टाम् । अह्वार्षुः । अह्वार्षीः । अह्वार्षम् । अह्वार्षत । अह्वार्षम् । अह्वार्ष । अह्वार्ष । अह्वारिष्यत् [स्तृ] शब्दीपतापयोः (शब्द और पीड़ा देना) स्वरति । स्वरतः । स्वरन्ति । वलादि लिट् लकार में विकल्प से इट्

(१४०) सस्वार । सस्वरतुः (२५३) गुण । सस्वरुः । सस्वरिथ । सस्वर्य । सस्वर । सस्वार । सस्वर ॥ २५४ ॥

२५५—अयुक्तः किति ॥ अ० ॥ ७ । २ । ११ ॥

अिञ् और एकाच् उगन्त धातु से परे जो कित् आर्द्धधातुक उस को इट् का आगम न होवे (१४०) सूत्र यद्यपि इस सूत्र से पर है तथापि उस विकल्प को बाध के पीछे विधान के प्रथम निषेध प्रकरण के आरम्भ सामर्थ्य से इट् का निषेध इस सूत्र से प्राप्त है फिर (१४८) सूत्र के नियमानुसार वम् मस् में नित्य इट् होता है । सस्वरिव । सस्वरिम । स्वरिता । स्कर्त्ता । स्वरिष्यति । यहां परत्व से नित्य इट् (२३८) होता है । स्वार्षति । स्वार्षाति । स्वरतु । अस्वरत् । स्वरत् । स्वर्यात् (२५४) अस्वारौत् । अस्वारिष्टाम् । अस्वार्षीत् । अस्वार्ष्टाम् । अस्वरिष्यत् । [स्मृ] चिन्तायाम् (स्मरण करना) स्मरति । सस्मार । सस्मारतुः । सस्मारुः । सस्मर्य । स्कर्त्ता । स्मरिष्यति । स्मार्षति । स्मार्षाति । स्मरतु । अस्मरत् । स्मरत् । स्मर्यात् । अस्मार्षीत् । अस्मार्षात् । अस्मरिष्यत् [वृ] संवरणे (ढांकना) वरति । वरतः । वरन्ति । ववार । वव्रतुः । वव्रुः । ववर्य । ववर्त्तासि । वरिष्यति । वार्षति । वार्षाति । वरतु । अवरत् । वरेत् । त्रियात् (२३९) रिङ् । अवार्षीत् । अवरिष्यत् । [सृ] गतौ (२३१) से सृ को धी आदेश शीघ्र चलने में हो कर । धावति । धावतः । अन्यत्र । सरति । ससार । सस्रतुः । सस्रुः । ससर्य (१४८) सूत्र के नियम से इट् का निषेध । सस्रव । सस्रम । सर्त्ता । सरिष्यति । सार्षति । सार्षाति । धावति । धावाति । धावतु । सरतु । अधावत् । असरत् । धावेत् । सरेत् । स्त्रियात् । स्त्रियास्ताम् ॥ २५५ ॥

२५६—सत्तिशस्त्यर्त्तिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५६ ॥

सृ, शासु, और ऋधातु से परे जो च्चि प्रत्यय उस के स्थान में अङ् आदेश होवे परस्मैपद विषय में । इस से अङ् ही कर । अट्-सृ-अङ्-तिप् । इस अवस्था में अङ् के छित् होने से गुण की प्राप्ति नहीं है इस लिये ॥ २५६ ॥

२५७—ऋट्शोऽङि गुणः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १६ ॥

ऋवर्णान्त और ट्श धातु की गुण होवे अङ् परे हीतो । यहां ऋवर्णान्त सृ धातु को अर् गुण हो कर । असरत् । असरताम् । असरन् । असरः । असरतम् । असरत । असरम् । असराव । असराम । असरिष्यत् । असरिष्यताम् । असरिष्यन् । [ऋ] गतिप्रापणयोः । यहां प्रापण अर्थ के पृथक् कहने से गमन और प्राप्ति दोही अर्थ इस धातु के समझे जाते हैं अर्थात् ज्ञान अर्थ नहीं (२३१) से ऋच्छ

आदेश हो कर । ऋच्छति । ऋच्छतः । ऋच्छन्ति । ऋ-णल् । यहाँ परत्व से ऋ को आर् वृद्धि हो कर आकार को द्वित्व और सवर्ण दीर्घ हो कर । आर ॥ २५० ॥

२५८—ऋच्छत्यृताम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ११ ॥

तुदादि गण का ऋच्छ, ऋ और ऋकारान्त धातुओं को गुण हो लिट् परे हो तो यहाँ भी कित् लिट् में गुण नहीं प्राप्त है इस लिये यह सूत्र है । अर् + अर् + अतुस् = आरतुः । आरुः । (१४८) सूत्र के नियम से लिट् में सर्वत्र नित्य इट् प्राप्त है । भारद्वाज के मत में थल् में इट् का निषेध (१४८) प्राप्त और अन्य लोगों के मत में थल् में इट् का निषेध (१५७) प्राप्त है इन सब का अपवाद ॥ २५८ ॥

२५९—इड्यर्त्तिव्ययतीनाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६६ ॥

अट्, ऋ और व्यञ् इन धातुओं से परे थल् को नित्य इडागम होवे आरिष्य । आरधुः । आर २ । आरिव । आरिम । यहाँ व, म में (१४८) सूत्र के नियम से ही नित्य इट् होता है । अर्त्ता । अर्त्तारौ । अर्त्तारः । अर्त्तासि । अरिष्यति (२३८) इट् । आर्षति । आर्षाति । अर्षति । अर्षाति । अर्षत् । अर्षात् । ऋच्छति । ऋच्छाति । ऋच्छतु । आर्च्छत् । ऋच्छेत् । अर्षात् (२५४) गुण । लुङ् में च्चि के स्थान में अड् (२५६) और अड् के परे गुण (२५७) होकर । आरत् । आरताम् । आरन् । आरः । आरतम् । आरत । आरम् । आराव । आराम । आरिष्यत् [ष्ट, ष्टृ] सेचने (सींचना) गरति । वरति । जगार । जयतुः । जगर्थ । जवर्य । जयिव । जयिम । गर्त्तासि । गरिष्यति । गार्षति । गार्षाति । गरतु । अगरत् । गरेत् । ग्रियात् (२३८) रिङ् । ग्रियात् । अगार्षात् (१५८) वृद्धि हो कर । अगार्ष्टाम् । अगार्षुः । अगार्षात् । अगरिष्यत् [धृ] हर्क्षने । धरति । धरतः । धरन्ति । दधार दधरतुः (२५३) गुण । दधरुः । धर्त्ता । धरिष्यति । धार्षति । धार्षाति । धरतु । अधरत् । धरेत् । धर्षात् (२५४) गुण । धर्षास्ताम् । धर्षासुः । अधार्षात् । अधार्ष्टाम् । अधरिष्यत् [सु] गतौ । स्रवति । स्रवतः । स्रवन्ति । सुस्राव सुस्रवतुः (२५८) उवङ् । सुस्रुवुः । सुस्रीय । सुस्रुवयुः । सुस्रुव । सुस्राव । सुस्रव (१४८) सूत्र के नियम से इट् का निषेध । सुस्रुव । सुस्रुम । स्रोतासि । स्रोष्यति । स्रोषति । स्रोषाति । स्रोषति । स्रोषाति । स्रवति । स्रवाति । स्रवतु । अस्रवत् । स्रवेत् । सूर्यात् (१६०) दीर्घ लुङ् में (१७८) सूत्र से च्चि के स्थान में चङ् और द्विवचन (१८०) हो कर । अट् + सु + सु + चङ् + तिप् = असु सुवत् । अस्रोष्यत् [पु] प्रसवैश्वर्ययोः (उत्पत्ति और सामर्थ्य का होना) सवति । सुषाव । सुषवतुः । सुषुवुः । सुषोय । सुषुविव । सोता । सोषाति । सौषति

॥ आख्यातिकः ॥

सौषाति । सवति । सवाति । सवतु । असवत् । सवेत् । स
असौषीत् । असौष्टाम् । असौषुः । असौष्यत् [अ] अवणे (सु
प्राप्त है उस का बाधक ॥ २५८ ॥

२६०—अवः ष्ट च ॥ अ० ॥ ३ । १ ।

अु धातु से अु प्रत्यय और अु धातु को अु आदेश होवे ।
की इत्संज्ञा होकर शित् होने से सार्वधातुक संज्ञा होजाती
णत्व (२०२) होकर । अु + णु + तिप् (२१) गुण = अुण
प्रत्यय में उवङ् (१५८) आदेश प्राप्त है इस लिये ॥ २६० ॥

२६१—हुश्रुवोः सार्वधातुके ॥ अ० ॥ ६ ।

संयोग जिस के पूर्व न हो ऐसे हु और श्रु प्रत्ययान्त अने
की यण् आदेश होवे अजादि सार्वधातुक परे हो तो । अुण्वन्ति
अुणुथ । अुणोमि । अुणु + वस् = अुण्वः (२००) उकार लोप व
अुण्वः । अुणुमः । अुश्राव । अुश्रुवतुः (१५८) उवङ् । अुश्रुवः ।
अुश्रुव । अुश्राव । अुश्रव । अुश्रुव । अुश्रुम । अुश्रुता । अुश्रुतारौ । अु
अुश्रुति । अुश्रुति । अुश्रुवति । अुश्रुवाति । अुश्रुतु । अु
अुश्रुन्तु । अुश्रु (२०१) हिलुक् । अुश्रुतात् । अुश्रुतम् । अु
अुश्रुवाव । अुश्रुवाम । अुश्रुणोत् । अुश्रुणुताम् । अुश्रुण्वन् । अु
अुश्रुणुत । अुश्रुण्वम् । अुश्रुण्व । अुश्रुणुव । अुश्रुण्वम् । अुश्रुणुम
याताम् । अुश्रुणुयुः । अुश्रुणुयाः । अुश्रुणुयातम् । अुश्रुणुयात । अु
अुश्रुणुयाम । अुश्रुयात् (१६०) दीर्घ । अुश्रुषीत् (१५८) वृद्धि अु
अुश्रुष्यत् [ध्रु] स्थैर्ये (स्थिर होना) ध्रुवति । अुध्राव । अुध्रुव
विश्र । अुध्रुविव । अुध्रुता । अुध्रुष्यति । अुध्रुषति । अुध्रुषति ।
अुध्रुवतु । अुध्रुवत् । अुध्रुवेत् । अुध्रुयात् । अुध्रुषीत् । अुध्रुष्यत् [दु
अुध्रुवति । अुद्राव । अुद्राव । अुदुवतुः । अुदुवतुः । अुदोथ । अु
अुदोथ । यहां (१४८) नियम से नित्य इट् का निषेध होजात
के मत में ऋकारान्त के निषेध का नियम होने से थल् में
भी ऋादि नियामक सूत्र अपवाद जानो । अुदोता । अुदोतासि
अुदोषाति । अुदवतु । अुद्ववत् । अुद्वेत् । अुद्वयात् । अुद्वयात् । अुदीर्घ

(१६८) जिगाय । जिग्यतुः । जिग्युः । जिगीथ । जिगीथिथ । जिज्राय । जिज्रि-
यतुः । जिज्रेथ । जिज्रियिथ । जेतासि । जेतासि । जेष्यति । जेष्यति । जेषति ।
जेषाति । जयतु । अजयत् । जयेत् । जीयात् (१६०) दीर्घ । अजैषीत् । अजि-
ष्यत् । अजैषीत् । अजिष्यत् । इति धेटादयोऽनुदात्ता उदात्तितः परस्मैपदिनः
षट्चत्वारिंशत् समाप्ताः । ये धेट् आदि ४६ धातु अनिट् परस्मैपदी समाप्त इए ॥

अथ ङीङन्ता ङितस्त्रयोविंशतिः । अव ङीङ् पर्यन्त २३ धातु आत्मनेपदी
कहते हैं [षिङ्] ईषडसने (थोड़ा हंसना) स्मयते (२१) गुण । स्ययेते ।
स्मयन्ते । सिष्मिये । सिष्मियिद्वे । सिष्मियिध्वे । स्मेतामे । स्मेयते । स्मैषतै ।
स्मैषातै । स्मयतै । स्मयातै । स्मयताम् । अस्मयत । स्मयेत । स्मेषीष्ट । स्मेषी-
द्वम् । अस्मेष्ट । अस्मेद्वम् । अस्मेयत [गुङ्] अव्यक्ते शब्दे । गवते । जुगुवे ।
जुगुविद्वे । जुगुविध्वे । गातासे । गाथते । गौषतै । गौषातै । गवतै । गवातै ।
गवताम् । अगवत । गवेत । गोषीष्ट । गोषीद्वम् । अगीष्ट । अगीद्वम् । अगी-
यत [गाङ्] गती । इस धातु के अनुबन्ध का लोप होने पश्चात् आकारान्त के
रहने में शप् के अकार के साथ सवर्णदीर्घ एकादेश होता है । गा + शप् + त =
गाते । गाते । गाते (१२३) अत् । गासे । गाथे । गाध्वे । गौ । गावहे । गामहे ।
गा + एङ् । यहाँ आकारलोप (२४४) और द्विवचन की व्यवस्था (२४५) होकर ।
जगे । जगाते । जगिरे । जगिषे । जगाथे । जगिध्वे । जगे । जगिवहे । जगि-
महे । गाता । गास्यते । गासते । गासातै । गासते । गासाते । गाते २ ।
गाताम् ३ । अगात । अगाताम् । अगात । गीत । गीयाताम् । गीरन् । गासीष्ट ।
अगास्त । अगासाताम् । अगासत । अगास्थाः । अगासाथाम् । अगाध्वम् ।
अगासि । अगास्वहि । अगास्महि । अगास्यत [उङ्, कुङ्, खुङ्, गुङ्, घुङ्, डुङ्]
शब्दे । अवते । जवे । जवाते । जविरे । जविद्वे । जविध्वे । ओतामे । ओयते ।
ओषतै । ओषातै । अवतै । अवातै । अवताम् । अवेताम् । अवन्ताम् । आवत ।
अवेत । ओषीष्ट । ओषीद्वम् । औष्ट । औषाताम् । औषत । औद्वम् । औयत ।
कवते । चुकुवे । कीतामे । कीयते । कौषतै । कौषातै । कवताम् । अकवत ।
कवेत । कौषीष्ट । अकौष्ट । अकौयत । खवते । चुखुवे । गवते । जुगुवे । घवते ।
जुघुवे । डवते । जुडुवे । डीता । डीयते । डीषतै । डीषातै । डवताम् ।
अडवत । डवेत । डीषीष्ट । अडौष्ट । अडौयत [च्युङ्, ज्युङ्, प्रुङ्, प्लुङ्,] गती
[क्लुङ्] इत्येक [रुङ्] गतिरेषणयोः (गति और हिंसा) च्यवते । ज्यवते । प्रवते ।
प्लवते । क्लवते । रवते । रुरुवे । रुरुविद्वे । रुरुविध्वे । और रु धातु सेट् अनिट्
व्यवस्था में पड़ा है वहाँ यु, रु आदि अदादि धातुओं के साहचर्य से अदादि का

ह्री रु धातु भी लिया जाता है । रोतासे । रोष्यते । रोषते । रोषाते । रवताम् ।
 अरवत । रवेत । रोषीष्ट । रोषीद्वम् । अरोष्ट । अरोद्वम् । अरोष्यत [धृङ्]
 अवध्वंसने (नाशकरना) धरते । दध्ने । धर्त्तासे । धरिष्यते (२३८) इट् । धार्षते ।
 धार्षाते । धरताम् । अधरत । धरेत । धृषीष्ट (२४०) इस से कित् वत् होकर
 (४५) गुण का निषेध होता है । अधृत (२४० । २४१) अधृषताम् । अधृषत ।
 अधरिष्यत [मेङ्] प्रणिदाने (किसी पदार्थ के बदले में दूसरा वस्तु देना)
 मयते । मयेते । मयन्ते । ममे (२४२ । २४४ । २४५) ममाते । ममिरे । मातासे ।
 मास्यते । मासते । मासाते । मयताम् । अमयत । मयेत । मासीष्ट । अमास्त ।
 अमासाताम् । अमासत । अमास्यत [देङ्] रक्षणे । दयते ॥ २६१ ॥

२६२—दयते दिङि लिटि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६ ॥

दयति धातु की दिङि आदेश होवे लिट् लकार परे होती । इस सूत्र में
 (दय, दानगतिरक्षणहिंसादानेषु) इस लिखित धातु का ग्रहण इस लिये नहीं
 होता कि दय धातु से लिट् में आम् प्रत्यय कहचुके हैं । और यह सूत्र द्विवचन
 का अपवाद है । दिङि + एङ् = दिङ्ये (१५६) यण् । दिङ्याते । दिङ्यिरे । दातासे ।
 दास्यते । दासते । दासाते । दयताम् । अदयत । दयेत । दासीष्ट । दा धातु की
 प्रकृति होने से इस की वु संज्ञा (२४६) होकर ॥ २६२ ॥

२६३—स्थाघ्वोरिञ्च ॥ अ० ॥ १ । २ । १७ ॥

स्था धातु और वु संज्ञक धातुओं की इकारादेश और इन से परे जो सिच्
 प्रत्यय सो कित्वत् ही आत्मनेपद विषय में । स्था धातु प्रथम लिख चुके हैं ।
 परन्तु वहां आत्मनेपद के न होने से इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हुई पदव्यवस्था
 प्रक्रिया में काम आवेगा । यहां दा धातु के आकार को इकार होकर । अट् +
 दि + सिच् + त = अदित (२४१) सूत्र से सिच् के सकार का लोप । अदिषाताम् ।
 अदिषत । अदिषाः । अदिषायाम् । अदिष्वम् । अदिषि । अदिष्वहि । अदिष्वहि ।
 [श्यैङ्] गती । श्यायते । शिष्ये । श्यातासे । श्यास्यते । श्यासते । श्यासाने ।
 श्यायताम् । अश्यायत । श्यायेत । श्यासीष्ट । अश्यास्त । अश्यास्यत [प्यैङ्]
 वृद्धी (बढ़ना) प्यायते । प्ये । प्यातासे । अप्यास्त । अप्यास्यत [त्रैङ्] पालने ।
 (रक्षा) त्रायते । तत्रे । त्राता । त्रास्यते । त्रासते । त्रासाते । त्रायतम् । अत्रायत ।
 त्रायेत । त्रासीष्ट । अत्रास्त । अत्रास्यत । षिङ् प्रभृतयोऽनुदात्ता आत्मनेपदिनः ।
 षिङ् से यहाँ तक सब धातु अजन्त अनिट् जानो ॥

[पूङ्] पवने (शुद्धि) पवते । पुपुवे । पुपुविद्वे । पुपुविध्वे । पवितासे ।

पविष्यते । पाविष्यते । पाविष्यते । पविष्यते । पविष्यते । पवते । पवाते । पवताम् ।
 अपवत । पवत । पविषीष्ट । अपविष्ट । अपविष्यत [मूढ्] बन्धने (बांधना) मवते ।
 [डौड्] विहायसागतौ (आकाश में उड़ना) डयते । डिड्ये । डयिता । डयिष्यते ।
 डाधिष्यते । डाधिष्यते । डाधिष्यते । डाधिष्यते । डयताम् । अडयत । डयेत । डयि-
 षीष्ट । अडयिष्ट । अडयिष्यत । ये पूङ् आदि तीन धातु सेट् हैं ॥ [तृ] लृवन-
 संतरणयोः (कूदना और तरना) उदात्तः परस्मैपदी । यह धातु सेट् परस्मैपदी
 है । तरति । तरतः । तरन्ति । ततार । यहां प्रथम वृद्धि हो कर द्वित्व होता है ।
 तृ-अतुस् । यहां अप्राप्त गुण (२५८) और एत्वाभ्यास लोप (१६४) हो कर ।
 तेरतुः । तेरुः । तेरिथ । तेरथुः । तेर । ततार । ततर । तेरिव । तेरिम ॥ २६३ ॥

२६४—वृतो वा ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३८ ॥

वृङ् वृज् और ऋकारान्त धातुओं से परे जो इट् का आगम उस को विकल्प
 करके दीर्घ होवे । परन्तु लिट् लकार परे न ही । तरीतासि । तरितासि । इस
 सूत्र में लिट् का निषेध इस लिये है कि तेरिथ । यहां दीर्घ न होवे । तरीष्यति ।
 तरिष्यति । तारीषति । तारीषति । तारिषति । तारिषति । तरीषति । तरी-
 षति । तरिषति । तरिषति । तरति । तरति । तरतु । अतरत् । तरेत् ॥ २६४ ॥

२६५—ऋत इडातोः ॥ अ० ॥ ७ । १ । १०० ॥

ऋकारान्त धातु अङ्ग की इत् आदेश होवे । इस इत् आदेश के कहने में कुछ
 विशेष नहीं है । परन्तु जहां गुण वृद्धि की प्राप्ति है वहां तो परविप्रतिषेध मान
 के गुण वृद्धि ही होते हैं और जहां गुण वृद्धि की प्राप्ति नहीं वहां इत्व होता है ।
 तिङ् + या + तिप् = तीर्यात् (१६७) दीर्घ । तीर्यास्ताम् । तीर्यासुः ॥ २६५ ॥

२६६ - सिचि च परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४० ॥

परस्मैपद विषय में सिच् परे होता वृङ् वृज् और ऋकारान्त धातुओं से परे
 इट् को दीर्घ न होवे (२६४) सूत्र से सर्वत्र दीर्घ प्राप्त है उस का विशेष विषय
 में बाधक है । अतारीत् । अतारिष्टाम् । अतारिषुः । अतरीष्यत् ॥

अथाष्टावनुदात्तैः । अब आठ ८ धातु सेट् आत्मनेपदी कहते हैं [गुप]
 गोपने । यहां गोपन धातु का स्वार्थ लिया जाता है सन् के विना इस का प्रयोग
 स्वतन्त्र कहीं नहीं आता सन्नन्त का अर्थ निन्दा होता है वही इस का स्वार्थ है ।
 [तिज] निजाने । इस धातु का स्वार्थ सहन अर्थ है ॥ २६६ ॥

२६७—गुप्तिज्किद्भ्यः सन् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५ ॥

गुप्, तिज् और कित् इन तीन धातुओं से स्वार्थ में सन् प्रत्यय हो। गुप् धातु से निन्दा और तिज से सहने अर्थ में सन् प्रत्यय जानो। गुप्+सन् ॥ २६७ ॥

२६८—सन्धोः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ६ ॥

सन् और यङ् प्रत्यय परे हों तो अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् अवयव को और अजादि के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व होवे। जुगुप्स (१०७) अभ्यास को चवर्गादेश होकर इस की धातु संज्ञा (१६७) होकर अनुदात्त अनुबन्ध के केवल गुप् आदि में चरितार्थ न होने से सन्नन्त धातुओं से भी आत्मनेपद होती हैं। जुगुप्स+शप्+त=जुजुप्सते। जुगुप्सते। जुगुप्सन्ते। जुगुप्साञ्चक्रे (१६६।१७०) जुगुप्सास्वभूव। जुगुप्सामास। जुगुप्सितासे। जुगुप्सिष्यते। जुगुप्सिषतै। जुगुप्सिषातै। जुगुप्सताम्। अजुगुप्सत। जुगुप्सेत। जुगुप्सिषीष्ट। अजुगुप्सिष्ट। अजुगुप्सिष्यत। तिज्-तिज्-सन्। यहां। द्वितीय चवर्ग जकार को (खरिच) सूत्र से क् होकर सन् के सकार को ष (२०५) होकर। तितित्च+शप्+त=तितित्चते। तितित्चाञ्चक्रे। तितित्चामास। तितित्चास्वभूव। तितित्क्षितासे। इत्यादि [मान] पूजायाम् (सत्कार) [बध] बन्धने (बांधना) ॥ २६८ ॥

२६९—मान्बध्दान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६ ॥

मान, बध, दान, और शान धातुओं से सन् प्रत्यय होवे। और सन् प्रत्यय के परे इन के अभ्यास की दीर्घ होवे मान धातु से जानने की इच्छा में और बध धातु से चित्तविकार अर्थ में सन् जानो। मान धातु के अभ्यास की प्रथम क्स्व (३६) होकर अभ्यास के अकार को इकार (१८२) होता है उसी इकार को (मानबध०) सूत्र से दीर्घ जानो। मीमांसते। मीमांसते। मीमांसन्ते। मीमांसाञ्चक्रे। मीमांसास्वभूव। मीमांसामास। बध्+बध्+सन्+शप्+त=बीभत्सते (२०४) भष् भाव अभ्यास की दीर्घ और चत्वं हो कर। बीभत्सेते। बीभत्साञ्चक्रे। बीभत्क्षितासे। बीभत्क्षिष्यते। बीभत्क्षिषतै। बीभत्क्षिषातै। बीभत्सताम्। अबीभत्सत। बीभत्सेत। बीभत्सिषीष्ट। अबीभत्सिष्ट। अबीभत्सिष्यत। गुप् आदि धातुओं से परे सन् प्रत्यय को इट् का आगम (४६) और पूर्वं की गुण प्राप्त है सो गुप् आदि धातुओं से परे सन् प्रत्यय के न कहने से सन् की आर्द्धधातुक संज्ञा नहीं होती जो धातु से विहित हैं उन्हीं प्रत्ययों की आर्द्धधातुक संज्ञा (४६) कही है। और आर्द्धधातुक संज्ञा के न होने से इट् और गुण दोनों ही नहीं होते। गुपादयश्चत्वार उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः। ये गुप् आदि ४ चार सेट्

आत्मनेपदी धातु समाप्त हुए [रभ] राभस्ये (शीघ्र करना) रभते । रभेते । रभे । रभाते । रभ् + तास् + डा = रब्धा (१४१) धत्व और भकार को जश् वकार होता है । रब्धारौ । रब्धासे । रप्स्यते (चर्) राप्सतै । राप्सतै । रभताम् । अरभत । रभेत । रप्सीष्ट । अरब्ध (१४२) स लोप । अरप्साताम् । अरब्धाः । अरप्साधाम् । अरब्धम् । अरप्सि । अरप्सहि । अरप्सहि । अरप्स्यत [लुलभष्] प्राप्ती । लु की इत्संज्ञा (१५०) और ष् की इत्संज्ञा का प्रयोजन कदन्त में आवेगा । लभते । लभेते । लभन्ते । लभसे । लेभे । लेभाते । लेभिरे । लेभिषे । लब्धासे । लप्स्यते । लाप्सतै । लाप्सतै । लभताम् । अलभत । लभेत । लप्सीष्ट । अलब्ध । अलप्साताम् । अलप्स्यत [ष्वञ्ज] परिष्वङ्गे (लपेटना) ॥ २६६ ॥

२७०—दंशसञ्जस्वञ्जां शपि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २५ ॥

दंश, सञ्ज और स्वञ्ज धातुओं के उपधा नकार का लोप हैवे शप् प्रत्यय परे हो ता । स्वजते । स्वजते । स्वजन्ते । यह धातु संयोगान्त है इस कारण इस से परे लिट् की कि संज्ञा (१३७) नहीं प्राप्त है और कित्संज्ञा के न होने से उपधा नकार का लोप भी नहीं पाता इस लिये ॥ २७० ॥

२७१—वा०—अन्यग्रन्विदस्मिस्वञ्जीनामिति वक्तव्यम् ॥

अन्य, ग्रन्थ, दम्भ, स्वञ्ज इन धातुओं से परे जो लिट् से कित्वत् हो । यहाँ स्वञ्ज धातु से परे कित्व हो कर उपधा नकार का लोप (१३६) होकर । सस्वजे । सस्वजाते । सस्वजिरे । इस धातु के अनिट् होने से । स्वञ्ज् + तास् + डा = स्वङ्क्ता । कृत्व चत्वं और परसवर्ण । स्वङ्क्तासे । स्वङ्क्ष्यते । स्वङ्क्षतै । स्वङ्क्षातै । स्वजताम् । अस्वजत । स्वजित । स्वङ्क्षीष्ट । अस्वङ्क्त । अस्वङ्क्ष्यत [हृद] पुरी-षोत्सर्गे (हगना) हृदते । जहृदे । जहृदाते । जहृदिरे । हृता । हृत्स्यते । हात्सतै । हात्सातै । हृदताम् । अहृदत । हृदेत । हृसीष्ट । अहृत् । अहृत्साताम् । अहृत्सत । अहृत्स्यत । रभाद्यश्चत्वारोऽनुदात्ता अनुदात्तै आत्मनेभाषाः । ये रभ आदि अनिट् आत्मनेपदी चार धातु समाप्त हुए ॥

अथ परस्मैपदिनः पंचदश । अब १५ पन्द्रह धातु परस्मैपदी कहते हैं [जिषिदा] अव्यक्ते शब्दे उदात्तः । परस्मैपदी । स्वेदति । सिस्वेद । सिस्विदतुः । सिस्विदुः । स्वेदिता । स्वेदिष्यति । स्वेदिषति । स्वेदिषाति । स्वेदतु । अस्वेदत् । स्वेदेत् । स्विद्यात् । अस्वेदीत् । अस्वेदिष्यत् [स्कन्दिर्] गतिशोषणयोः (गति और शोखना) स्कन्दति । चस्कन्द । चस्कन्दतुः । चस्कन्दिथ ॥ २७१ ॥

२७२—भरो भरि सवर्णं ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ६५ ॥

हल् से परे जो भर् उस का लोप हो सवर्णो भर् परे हो तो । स्कन्द् + यल् = स्कन्त्य ।
यहां नकार से परे दकार का लोप होता है । स्कन्तासि । स्कन्त्यसि । स्कन्त्यति ।
स्कन्त्यसि । स्कन्त्यतु । अस्कन्दत् । स्कन्देत् । स्कन्दात् (१३८) नकार का लोप
लुङ् में इति होने से अङ् (१३८) विकल्प । अस्कदत् (१३८) नलोप । पक्ष
में । अस्कान्त्सीत् । अस्कान्ताम् । अस्कान्तुः (१३५) वृद्धि । अस्कान्त्सीः ।
अस्कान्तम् । अस्कान्त । अस्कान्तसम् । अस्कान्त्य । अस्कान्त्य [यभ] मैथुने
(स्त्रीसंग करना) यभति । यभतः । यभन्ति । ययाभ । येभतुः । येभुः । येभिथ (२१५)
ययथ । ययसि । ययस्यति । ययसति । ययसति । यभति । यभाति । यभतु ।
अयभत् । यमेत् । यभ्यात् । अयाप्सीत् । अयाभ्याम् । अयाप्सुः । अयाप्सीः । अयाभ्यम् ।
अयाभ्य । अयाप्सम् । अयाप्स्य । अयाप्सम् । अयप्स्यत् [एभ] प्रहर्त्तवे शब्दे (नम-
के कोलना) नमति । ननाम । नेमतु । नेसुः । नेमिथ । ननत्य । नेमथुः । नेम ।
ननाम । ननम । नेमिव । नेमिम । नन्तासि । नन्त्यति । नांसति । नांसाति ।
नमति । नमाति । नमतु । अनमतु । नमेत् । नग्यात् । यङ् धातु अनिट् तो
है परन्तु लुङ् लकार में इट् और सक् का आगम (२५१) होजाता है । अनंसीत् ।
अनंसिष्टाम् । अनंसिष्ठुः । अनंस्यत् [गम्ल्, रुष्टु] गतौ ॥ २७२ ॥

२७३—इषुगमियमां छः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७७ ॥

इषु, गम और यम धातुओं की छकारादेश होवे शित् प्रत्यय परे हो तो ।
यहां अन्य अल्गम के मकार को छकार होकर । गच्छति । गच्छतः । गच्छन्ति ।
जगाम । जगमतुः । जग्सुः (२१४) उपधालोप । जगमिथ । जगम्य (२१५) गन्ता ।
गन्तारौ । गन्तारः । गन्तासि ॥ २७३ ॥

२७४—गमेरिट् परस्मैपदेषु ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५८ ॥

परस्मैपदविषय में गम धातु से परे सकागदि आर्हधातुक को इट् का आगम
होवे । गमिष्यति । गमिष्यतः । गमिष्यन्ति । गच्छति । गच्छाति । गच्छत् । गच्छात् ।
गच्छतु । अगच्छत् । गच्छेत् । गम्यात् । लुङ् लकार में (२१७) सूत्र से अङ्,
और अङ् के परे उपधालोप का निषेध (२१४) होने से उपधालोप नहीं होता ।
अगमतु । अगमताम् । अगमन् । अगमः । अगमतम् । अगमत । अगमम् । अग-
माव । अगमाम । अगमिष्यत् । सर्पति । सर्पतः । सर्पन्ति । ससर्प । ससृपतुः ।
ससर्पिथ । ससृपथुः ॥ २७४ ॥

२७५—अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५६ ॥

कित्भिन्न भलादि प्रत्यय परे हो तो ऋकार जिस की उपधा में हो ऐसा जो उपदेश में अनुदात्त (अनिट्) धातु उस की अम् का आगम होवे विकल्प करके । मित् आगम अनृत्य अच् से परे होता है । सृप्रम् + प् + तासि + डा = स्रप्ता । सर्प्ता । स्रप्तासि । सर्प्तासि । अम् के अकार की मान के यण होता और पक्ष में गुण (५१) हो जाता है । स्रप्स्यति । सर्प्स्यति । स्रप्सति । स्रप्साति । सर्प्सति । सर्प्साति । सर्पति । सर्पाति । सर्पतु । असर्पत् । सर्पेत् । स्रप्यात् । अस्त्रपत् (२१७) अङ् । अस्त्रपताम् । अस्त्रपन् । अस्त्रपः । अस्त्रपतम् । अस्त्रपत । अस्त्रपम् । अस्त्रपाव । अस्त्रपाम । अस्त्रप्स्यत् । असर्प्यत् [यम] उपरमे (शान्त-हीना) (२७३) ङकारादेश हो कर । यच्छति । यच्छतः । यच्छन्ति । ययाम । येमतुः । येमिथ । ययन्थ । येमिव । यन्तासि । यंस्यति । यांसति । यांसाति । यच्छतु । अयच्छत् । यच्छेत् । यम्यात् । लुङ् में (१५१) इट् और सक् । अयंसीत् अयंसिष्टाम् । अयंसिषुः । अयंस्यत् [तप] सन्तापे । (दुःख भोगना) तपति । तताप । तपतुः । तप्ता । तप्स्यति । ताप्सति । ताप्साति । तपति । तपाति । तपतु । अतपत् । तपेत् । तप्यात् । अताप्सीत् । अताप्ताम् । अताप्सुः । अताप्सीः । अतप्स्यत् । [त्यज] हानी (हानि होनी) त्यजति । त्यजतः । त्यजन्ति । तत्याज । तत्यजिथ । तत्यज्थ । तत्यजिव । वैदिक प्रयोग विषय में त्यज आदि निम्न लिखित धातुओं के प्रयोग कुछ विशेष होते हैं । यद्यपि प्रथम स्पर्ध धातु पर ही इस सूत्र को लिखना था जो भी सर्वत्र समझ लेना चाहिये ॥ २७५ ॥

२७६—अपस्ठधेयानानृचुरानृहुश्चिच्युषेतित्याजयाताः श्रितमा-
शीराशीर्त्तः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३६ ॥

(अपस्ठधेयान्) इस प्रयोग में लङ् लकार उत्तम पुरुष के द्विवचन में (स्पर्ध, संघर्ष) धातु की द्विवचन रेफ की सम्प्रसारण और अनभ्यास के अकार का लोप निपातन से किया है । अट् + स्पर्ध + स्पर्ध + आथाम् = अपस्ठधेयाम् । और दूसरा प्रकार यह भी है कि अप उपसर्ग पूर्वक स्पर्ध धातु के रेफ की सम्प्रसारण और अकार का लोप ही निपातन है वेद में माङ् का योग न हो तो भी अट् का निषेध है । (आनृचुः) और (आनृहुः) यहां (अर्च, पूजायाम्) और (अर्ह, पूजायाम्) इन दोनों धातुओं से लिट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन (उस्) में रेफ की सम्प्रसारण अकार का लोप तत्पश्चात् द्विव निपातन से और (१०६) सूत्र से अभ्यास के ऋकार की अकार होता है (चिच्युषे) यहां (चुङ्, गती) धातु से लिट्

लकार मध्यम पुरुष के एक वचन में अभ्यास को सम्प्रसारण और इट् का अभाव निपातन से किया है [तित्याज] यहां इसी त्यज धातु के अभ्यास को सम्प्रसारण निपातन से किया है। तित्यजतुः। इत्यादि (आताः) यहां (श्रीज् पाके) धातु की छदन्त क्त प्रत्यय के परे आ भाव निपातन किया है (व्रितम्) और यहां भी उक्त धातु को क्त के परे अभिभाव है (आशीः) (आशीर्त्तः) यहां भी आङ् पूर्वक उक्त श्रीज् धातु को क्तिप् और (क्त) प्रत्यय के परे शीर् आदेश हुआ है। त्यक्तासि। त्यक्ष्यति। त्यक्षति। त्यक्षाति। त्यजतु। अत्यजत्। त्यजेत्। त्यज्यात्। अत्याक्षीत्। अत्याक्षाम्। अत्याक्षुः। अत्याक्षीः। अत्याक्षम्। अत्याक्ष। अत्याक्षम्। अत्याक्ष्म। अत्यक्ष्यत् [षञ्ज] सङ्गे (मेल) (२७०) सूत्र से उपधान-कार का लोप होकर। सजति। सजतः। ससञ्ज। ससञ्जतुः। ससञ्जिथ। ससङ्-क्थ। सङ्क्तासि। सङ्क्ष्यति। सङ्क्षाति। सजतु। असजत्। सजेत्। सत्यात्। असाङ्क्षीत्। असाङ्क्षाम्। असाङ्क्षुः। (१३५) वृद्धि। असङ्क्ष्यत् [दृशिर्] प्रेक्षणे (अच्छे प्रकार देखना) पश्य (२३१) आदेश सूत्र से होकर। पश्यति। पश्यतः। पश्यन्ति। ददर्श। ददृशतुः। ददृशुः॥ २७६ ॥

२७७—विभाषा सृजिदृशोः॥ अ०॥ ७।२। ६५ ॥

सृज और दृश धातु से परे जो थल् उस को विकल्प करके इडागम होवे। इट् पक्ष में। ददृशिथ। अनिट् पक्ष में। ददृशु—थल्। यहां॥ २७७ ॥

२७८—सृजिदृशोर्भक्त्यसकिति॥ अ०॥ ६।१। ५८ ॥

कित् भिन्न भलादि प्रत्यय परे ही तो सृज और दृश धातुओं को अम् आगम होवे। यह सूत्र (२७५) सूत्र का अपवाद है क्योंकि (२७५) सूत्र में सामान्य ऋदुपध धातुओं को अम् आगम विकल्प से कहा है उस का यह विशेष है। ददृशम् + श् + थल् = ददृश। ऋकार को यण् और (२३३) सूत्र से अकार की षकार होता है। ददृशथुः। ददृश। ददर्श। ददृशिव। ददृशिम। दृष्टासि। द्रक्ष्यति। द्राक्षति। द्राक्षाति। पश्यति। गच्छति। यच्छतु। अपश्यत्। पश्येत्। दृश्यात् (१३८) सूत्र से अङ् का विकल्प होकर अङ् पक्ष में। अदर्शत् (२५७) गुण और जिस पक्ष में अङ् नहीं होता वहां (२०७) सूत्र से च्चि के स्थान में क्क प्राप्त है इस लिये॥ २७८ ॥

२७९—न दृशः॥ अ०॥ ३।१। ४७ ॥

दृश धातु से परे च्चि के स्थान में क्क आदेश न होवे। फिर अम् (२७८) और वृद्धि (१३५) होकर। अद्राक्षीत्। अद्राक्षाम्। अद्राक्षुः। अद्राक्षीः। अद्राक्षम्।

अद्राष्ट । अद्राक्षम् । अद्राक्ष्व । अद्राक्ष्व । अद्रक्ष्यत् [दंश्] दग्ने (काटखाना)
 नकार लोप (२००) दशति । दशतः । दशन्ति । ददंश् । ददंश्तुः । ददंश्मि ।
 ददंष्ट (२३३) श को ष । दंष्टासि । दद्व्यति । दद्व्यति । दद्व्यति । दद्व्यति । दशति ।
 दशति । दशतु । अदशत् । दशेत् । दश्यात् (१३८) अदाङ्चीत् । अदाष्टाम् ।
 अदाङ्क्षुः । अदद्व्यत् [लष] विलेखने (जोतना, खींचना, वा खोदना) कर्षति ।
 चकर्ष । चक्षपतुः । चकर्षिथ । कष्टासि । यहाँ विकल्प से अम् (२०५) और
 पक्ष में गुण होता है । कक्ष्यति । कक्ष्यति । कक्षति । कक्षाति । कर्षति । कर्षति ।
 कर्षति । कर्षति । कर्षतु । अकर्षत् । कर्षेत् । कष्ट्यात् । लुङ् में चि के स्थान में
 नित्य क् (२०७) प्राप्त है इस लिये ॥ २०८ ॥

२८०-३०-स्मृशमृशष्टपष्टपां च्चुः सिज्वा ॥

स्मृश, स्मृश, क्षप, लप और टप धातुओं से परे चि के स्थान में सिच् विकल्प
 करके है । अर्थात् एक पक्ष में क् और दूसरे पक्ष में सिच् भी रहे । जिस पक्ष में
 सिच् हुआ वहाँ वृद्धि (१३५) और अम् होकर अक्राक्षीत् । अक्राष्टाम् । अक्राक्षीत् ।
 अक्राष्टाम् । अक्राक्षुः । और जिस पक्ष में क् होता है वहाँ अक्रक्षत् । अक्रक्षताम् ।
 अक्रक्षन् । अकर्षत् [दृ] भक्षीकरणे (भक्षण कर देना) दक्षति । दक्षाइ ।
 देहत् । देहिय । दद्व्य । दद्व्यसि । दद्व्यति । दद्व्यति । दद्व्यति । दद्व्यति ।
 दद्व्यति । दद्व्यतु । अदद्व्यत् । दद्व्येत् । दद्व्यात् । अदाक्षीत् । अदाक्षाम् । अदाक्षुः ।
 अदाक्षीः । अदाक्षम् । अदाक्ष्व । अदाक्ष्व । अदाक्ष्व । अदाक्ष्व [मिह]
 सेचने (सींचना) मेहति । मिमेह । मिमेहिथ । मेदा । मेह्यति । मेचति ।
 मेचाति । मेहति । मेहाति । मेहतु । अमेहत् । मेहेत् । मिह्यात् । अमिहत् (२०७)
 क् । अमिहताम् । अमिहन् । अमेह्यत् । इति स्मृशमृशष्टपष्टपां उदासितः
 परस्मैधावाः । ये अनिट् परस्मैपदौ धातु समाप्त हुए ॥

[क्तित] निवासे रोगापनयने च (निवास और रोगों को हठाना) (२६७)
 च्चुन से सन् और द्वि (२६८) हांकर । चिकित्सति । इस धातु का सन्नत में
 केवल रोगापनयन ही अर्थ घटता है । और विपूर्वक सन्नत केवल संशय अर्थ में
 ही आता है । विचिकित्सति । सदेहं करोतीत्यर्थः । और निवास अर्थ में चुरादिस्थ
 ङोनि से णिच् होकर । कितयति । प्रयोग बनता है । चिकित्साञ्चकार । चिकित्सा
 खभूव । चिकित्सामास । चिकित्सिता । चिकित्सिषति । चिकित्सिषति । चिकित्सतु
 अचिकित्सत् । विचिक्षेत् । चिकित्स्यात् । अचिकित्सोत् । अचिकित्सिष्यत् । उदासः
 परस्मैपदौ । यह धातु सेट् परस्मैपदौ है परन्तु कोई २ लोग इस को आत्मनेपदौ
 भी कहते हैं । उन के मत में । चिकित्सते । चिकित्साञ्चके । आदि रूप होंगे ।

इतीवहत्त्यन्ताः स्वरितेः। अथ यहां से वह धातु पर्यन्त स्वरितेत् (उभयपदौ) कहते हैं क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हो तो आत्मनेपद (१०३) अन्यत्र परस्मैपद होते हैं [दान] खण्डने (काटना) [शान] तेजने (तीक्ष्ण करना) इन दोनों धातुओं से सन् और अभ्यास को दौर्घ (२६८) और द्वित्व (२६८) हो कर । दीदांसते । दीदांसति । शीशांसते । शीशांसति । दीदांसाप्सते । दीदांसाप्सकार । दीदांसितासे । दीदांसितासि । अदीदांसिष्ट । अदीदांसोत् । ये दोनों धातु सेट् हैं [डृपचष्] पाके इस धातु के डृ और ष् इत् जाते हैं । पचते । पचति । पचतः । पचन्ति । पपाच । पेचतुः । पेचिथ । पपक्थ । पेचे । पेचाते । पक्तासे । पक्तासि । पच्यते । पच्यति । पाचते । पाचाते । पचनै । पचानै । पाचति । पाचाति । पचति । पचाति । पचताम् । पचतु । अपचत । अपचत् । पचेत् । पचेत । पचोष्ट । पचात् । अपक्त । अपक्ताताम् । अपाचोत् । अपाक्ताम् । अपाचुः । अपच्यत । अपच्यत् [षच] समवाये (संबन्ध करना) यह धातु सेट् है । सचते । सचति । समाच । सेचतुः । सेचिथ । सेचे । सचितासे । सचितासि । असचिष्ट । असाचोत् । असचोत् [भज] सेवायाम् (सेवा करना) भजते । भजति । बभाज । भेजतुः (१६४) एजाभ्यामलोप । भेजिथ । बभक्थ । भेजे । भक्तासि । भक्तासे । भज्यते । भज्यति । भचोष्ट । भज्यात् । अभक्त । अभचोत् । अभक्ताम् । अभज्यत । [रञ्ज] रंगे (रंगना) ॥ २८० ॥

२८१-रञ्जेश्च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २६ ॥

रञ्ज धातु के अनुनासिक का लोप हो शप् परे होतो । रजते । रजति । ररञ्ज । ररञ्जे । रङ्क्तासे । रङ्क्यते । अरङ्क्त । अराचोत् । अराङ्क्ताम् । अरङ्क्यत् । [शप] आक्रोशे (कोशना) शपते । शपति । शशाप । शेषतुः । शेषिथ । शशप्थ । शप्तासे । शप्तासि । शप्स्यते । शप्स्यति । शाप्सते । शाप्साते । शपते । शपानै । शाप्सति । शाप्साति । शपति । शपाति । शपताम् । शपतु । अशपत । अशपत् । शपेत् । शप्सोष्ट । शप्यात् । अशप्त । अशप्ताताम् । अशप्सत । अशाप्सोत् । अशाप्ताम् । अशाप्सुः । अशप्स्यत । अशप्स्यत् [त्विष] दीप्तौ (प्रकाश) त्वेषते । त्वेषति । तित्वेष । तित्विषतुः । तित्वेषिथ । तित्विषे । त्वेषासे । त्वेषान्ति । त्वेषते । त्वेषानै । त्वेषते । त्वेषाते । त्वेषनै । त्वेषानै । त्वेषति । त्वेषति । त्वेषति । त्वेषताम् । त्वेषतु । अत्वेषत । अत्वेषत् । त्वेषेत । त्वेषेत । त्विचोष्ट (१६३) क्तिव होकर (४५) गुण का निषेध हो जाता है । त्विचोयास्ताम् । त्विचोरन् । अत्विचत (२०७) क्त्वा । अत्विचाताम् (२०८) क्त्वालोप । अत्विचत । अत्विचत् । अत्विचताम् । अत्विचन् । अत्विच्यत । अत्विच्यत् । [यज] देवपूजा

सङ्गतिकरणदानेषु (विद्वानों का सत्कार, सेल करना और दान करना) यजते ।
यजति ॥ २८१ ॥

२८२—लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७ ॥

लिट् लकार परे हो तो (२८३) सूत्र में पढ़े वचि आदि और (२८६) सूत्र में कहे ग्रहि आदि धातुओं के अभ्यास को संप्रसारण होवे । इस सूत्र में अभ्यास को सम्प्रसारण कहने से हित्व होने पश्चात् सम्प्रसारण होता है । यह सूत्र अकित् । विषय में संप्रसारण होने के लिये है । यज् + यज् + णलू = इयाज । यहां अभ्यास के यकार को इ हुआ है । और कित् विषय में ॥ २८२ ॥

२८३—वचिस्त्रपियजादीनां किति ॥ अ० ॥ ६ । १ । १५ ॥

वच, स्वप, और यजादि धातुओं को संप्रसारण होवे । यज धातु से ले कर आदि गण के अन्त पर्यन्त यजादि समझने चाहिये । यहां हित्व होने से प्रथम ही संप्रसारण होता है । इ-अज्-अतुस् (२१६) पूर्वरूप एकादेश हो कर हित्व को पुनः प्राप्ति होने से इज् मात्र को हित्व होता है । इज् + अज् + अतुस् = ईजतुः । सवर्णदीर्घ एकादेश होता है । ईजुः । इयजिथ । इयष्ठ (२३३) प अ देश । ईजथुः । ईज । इयाज । इयज । ईजिव । ईजिम । ईजे । ईजाते । ईजिरे । यष्टासे । यष्टासि । यच्यते । यच्यति । याचते । याचाते । यजते । यजाते । याचति । याचाति । यजति । यजाति । यजताम् । यजतु । अयजत । अयजत् । यजित । यजित् । यजौष्ट । इज्यात् (२८३) संप्रसारण । अयष्ट । अयजाताम् । अयचत । अयष्टाः । अयाचीत् । अयाष्टाम् । अयाचुः । अयच्यत । अयच्यत् [टुवप] बीज सन्ताने (बीज बोना खेत में वा स्त्री में) छिदने च । यह धातु काटने अर्थ में भी है । वपते । वपति । पूर्ववत् लिट् में संप्रसारण (२८२) हो कर । उवाप । ऊपतुः (२८३) ऊपुः । उवपिथ । उवपथ । ऊपे । ऊपाते । ऊपिरे । वप्तासे । वप्तासि । वप्स्यति । वप्स्यते । वाप्सते । वाप्साते । वाप्सति । वाप्साति । वपति । वपाति । वपताम् । वपतु । अवपत । अवपत् । वपेत । वपेत् । वप्सीष्ट । उप्यात् (२८३) सम्प्रसारण । अवाप्सीत् । अवाप्ताम् । अवाप्सुः । अवप्त । अवप्साताम् । अवप्सत । अवप्स्यत । अवप्स्यत् [वह] प्रापणे (पहुंचाना) वहति । वहते । उवाह (२८२) ऊहतुः । (२८३) ऊहुः । उवहिथ । उवोठ (२३०) अवर्ण को ओकार । ऊह्युः । ऊह । ऊवाह । उवह । ऊहिव । ऊहिम । ऊहे । ऊहाते । ऊहिरे । वोढासि । वोढासे । वच्यति । वच्यते । वाचते । वाचाते । वचते । वचाते । वाचते । वाचाते । वचति । वचाति । वहति ।

वहाति।वहतु । वहताम् । अवहत् । अवहत । वहेत । वहेत् । उह्यात् (२८३)
सम्प्रसारण । वचीष्ट।अवाचात् । अवोढाम् । अवाक्षुः । अवाक्षीः । अवोढम्।अवोढा
अवाक्षम् । अवाक्ष्म।अवाक्ष्म।अवोढ । अवचाताम् । अवक्षत । अवोढाः।अवचायाम् ।
अवोढ्वम् । अवक्षि । अवक्ष्वहि । अवक्ष्महि । अवक्ष्यत् । अवक्ष्यत । पचादयोऽ-
नुदात्ताः स्वरितेन उभयपदिनः सचतिवर्जम् । सच धातु को छोड़ के पच आदि सेट्
उभयपदी धातु हैं [वस] निवासे (वसना) वसति । वसतः । वसन्ति । उवास ॥२८३॥

२८४—शासिवसिषसीनां च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६० ॥

इण् और कवर्ग से परे शास, वस और घस धातु के सकार को षकार आदेश
होवे । घस धातु का । जक्षतुः । प्रयोग लिख चुके हैं वहां आदेश का सकार
न होने से (५६) सूत्र की प्राप्ति नहीं है इस लिये इस का सम्बन्ध वहां भी
समझना चाहिये यहां । जषतुः । वस के सकार को षकार होता है । जषुः ।
उवसिष । उवस्य । वस्तासि । वत्स्यति (२१६) स को त होता है । वात्सति ।
वात्साति । वसति । वसाति । वसतु । अवसत् । वसेत् । उष्यात् । अवात्सीत् ।
अवात्ताम् । अवात्सुः । अवत्स्यत् [वेज्] तन्तुसन्ताने (वस्त्र विनना) वयते ।
वयति । एकार को अय् आदेश हो जाता है ॥ २८४ ॥

२८५—वेजो वयिः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४१ ॥

वेज् धातु को वयि आदेश विकल्प करके होवे लिट् लकार परे ही तो । वयि
आदेश में इकार उच्चारणार्थ है उस को इत्संज्ञा हो कर । वय्+वय्+लण्=
उवाय (२८२) अभ्यास को संप्रसारण ॥ २८५ ॥

२८६—ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिष्टतिष्ठतिष्ठतिष्ठज्जतीनां
डिति च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६ ॥

ग्रह, ज्या, वयि, व्यध, वश, वसू, प्रच्छ, और भ्रस्ज धातुओं को संप्रसारण हो
डित् और चकार से कित् संज्ञक प्रत्यय परे ही तो । वेज् धातु को वयि आदेश
(२८५) होता है । उस में व और य दोनों संप्रसारण के स्थानी हैं । वय्-वसुस् ।
यहां परत्वसे यकार की प्राप्ति है इस लिये ॥ २८६ ॥

२८७—लिटि वयो यः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३८ ॥

लिट् लकार परे ही तो वय धातु के यकार को संप्रसारण न होवे किन्तु ॥२८७॥

२८८—वज्यास्याऽन्यतरस्यां किति ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३६ ॥

कित् लिट् परे ही तो इस वय धातु के यकार को वकार आदेश विकल्प करके
होवे । जिस पक्ष में वकार हुआ वहां प्रथम अभ्यास के वकार को संप्रसारण हो

कर । उव् + उव् + अतम् = ऊतुः । ऊवुः । तास प्रत्यय के परे वयि आदेश के न होने से (१५७) और (१४८) सूत्रों से इट् में इट् का विकल्प नहीं होता किन्तु नित्य इट् । उवयिथ । ऊवथुः । और जिस पक्ष में यकार को वकार (२८८) नहीं हुआ वहाँ । ऊयतुः । ऊयुः । ऊयथुः । ऊव । ऊय । उवाय । उवय । ऊयिव । ऊयिम । वयि आदेश को स्थानिवत् होने से जित हो कर आत्मनेपद (१०३) होते हैं । यकार को वकार पक्ष में । ऊवे । ऊवाते । ऊविरे । अब जिस पक्ष में वेज् को वयि आदेश (२८५) नहीं होता वहाँ एकार को आका-रादेश (२४२) ही कर अकित् विषय में (२८२) और कित् विषय में (२८३) से संप्रसारण प्राप्त है इस लिये ॥ २८८ ॥

२८८—वेज् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४० ॥

लिट् लकार परे हो तो वेज् धातु को संप्रसारण न होवे फिर घेट् आकारान्त के समान । ववी । ववतुः । ववुः । ववथिथ । ववाथि । ववथुः । वव । ववी । वविव । वविम । ववे । ववानि । वविरे । वातामि । वातामे । वासति । वासाति । वयति । वयाति । वामतै । वामातै । वयतु । वयताम् । अवयत् । अवयत । वयेत् । वयेत । ऊयात् । वासीष्ट । अवासीत् । अवासिष्टाम् । अवासिष्णुः (२५१) अवास्त । अवासाताम् । अवासत । अवाभ्यत् । अवाभ्यत [व्येज्] संवरणे । व्ययति । व्ययते । आर्द्धधातुक विषय में व्येज् धातु को भी आकारादेश (२४२) प्राप्त है इस लिये ॥ २८८ ॥

२८०—न व्यो लिट् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४६ ॥

व्येज् धातु को आकार आदेश न होवे लिट् लकार परे होती । व्ये + व्ये + णल् = विव्याय । यहाँ अभ्यास के यकार को संप्रसारण (२८२) परत्व से प्राप्त और उमौ का लोप (३८) सूत्र से प्राप्त है । यद्यपि लोप विधि संव विधियों से बलियो है तथापि (उभयेषाम्) ग्रहण (२८२) का यही प्रयोजन होने से कि (३८) से प्राप्त लोप को भी बाध के संप्रसारण ही होवे । अभ्यास के यकार को संप्रसारण होता है । कित् विषय में प्रथम संप्रसारण ही कर । वि + वि + अतुस् = विव्यतुः (१५६) यण् । विव्युः । विव्ययिथ (२५८) नित्य इट् । विव्यथुः । विव्य । विव्याय । विव्यय । विव्यिव । विव्यिम । विव्ये । विव्याते । विव्यिरे । व्यातामि । (२४२) आकारादेश । व्यातासे । व्यास्यति । व्यास्यते । व्यासतै । व्यासातै । व्ययतै । व्ययातै । व्यासति । व्यासाति । व्ययति । व्ययाति । व्ययतु । व्ययताम् । अव्ययत् । अव्ययत । व्ययेत् । व्ययेत । वीयात् (२८३) संप्रसारण

होकर दीर्घ (१६०) व्यासीष्ट । अव्यासीत् । अव्यासिष्टाम् । अव्यास्त । अव्यास्यत् ।
[ह्वेज्] सर्वायां शब्दे च (ईर्षा और बुलाना) ह्वयति । ह्वयते । ॥ २८० ।

२८१—अभ्यस्तस्य च ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३३ ॥

अभ्यस्त होने वाले ह्वा धातु को हित्व होने से प्रथम ही संप्रसारण होवे ।
अकित् विषय में अभ्यास ही को संप्रसारण प्राप्त है इस लिये यह सूत्र है ।
संप्रसारण ही कर हित्व होता है । जुहाव । जुहुवतुः । जुहुवुः (१५८) संप्रसारण
किये उकार को उवङ् होता है । जुहोथ । जुहविष । जुहुवथुः । जुहुव ।
जुहाव । जुहव । जुहुविव । जुहुविम । जुहुवे । जुहुवाते । ह्वातासि । ह्वातासे ।
ह्वास्यति । ह्वास्यते । ह्वासते । ह्वासाते । ह्वयते । ह्वयाते । ह्वासति । ह्वासाति ।
ह्वयति । ह्वयाति । ह्वयतु । ह्वयताम् । अह्वयत् । अह्वयत । ह्वयेत् । ह्वयेत । ह्वयात् ।
(२८३) संप्रसारण और दीर्घ (१६०) ह्वासीष्ट ॥ २८१ ।

२८२—लिपिसिचिह्वश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५३ ॥

लिप, सिच, और ह्वा धातु से परे जो चि प्रत्यय उस के स्थान में अङ् आदेश
होवे । अह्वत् (२४४) आकार लोप । अह्वताम् । अह्वन् ॥ २८२ ॥

२८३—आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५४ ॥

लिप, सिच और ह्वेज् धातु से परे चि के स्थान में अङ् विकल्प करके ही
आत्मनेपद विषय में । अह्वता । अह्वेताम् । अह्वन्त । अह्वथाः । अह्वास्त । अह्वा-
साताम् । अह्वास्यत् । अह्वास्यत । वेजादयस्त्रयोऽनुदात्ता उभयपदिनः । ये वेज्
आदि तीन धातु अनिट् उभयपदी हैं ॥

अथ ही परस्मैपदिनौ । अब दो धातु सेट् परस्मैपदी कहते हैं [वद] व्यक्ता-
यां वाचि (स्पष्ट बोलना) वदति । वदतः । वदन्ति । उवाद (२८२) ऊदतुः ।
ऊदुः । उवदिथ । वदितासि । वदिष्यति । वादिषति । वादिषाति । वदति ।
वदाति । वदतु । अवदत् । वदेत् । उद्यात् (२८३) अवादीत् (१३५) वृद्धि ।
अवादिष्टाम् । अवादिषुः । अवदिष्यत् [टुओषिव] गतिवृद्धयोः (गति और
बढ़ना) इस में से टु और ओकार की इत्संज्ञा होती है । श्वयति । श्वयतः ।
श्वयन्ति ॥ २८३ ॥

२८४—विभाषा श्वेः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३० ॥

लिट् और यङ् परे ही तो श्वि धातु को विकल्प करके संप्रसारण होवे ।
यङ् के परे संप्रसारण किसी से प्राप्त नहीं है और कित् लिट् में (२८३) से और

अकित् विषय में (२८२) संप्रसारण नित्य प्राप्त है उस का विकल्प करने से प्राप्ताप्राप्त विभाषा इस सूत्र में जानो । सो जिस पक्ष में इस सूत्र से संप्रसारण होता है वहीं अभ्यास को भी (२८२) होता है निषेध पक्ष में अभ्यास को भी नहीं होता । शुशाव । शुशुवतुः । शुशुवुः (१५८) शुशुविथ । शुशुवथुः । शुशुव । शुशाव । शुशुव । शुशुविथ । शुशुविम । सम्प्रसारण के निषेध पक्ष में । शिश्वाय । शिश्वियतुः (१५८) इयङ् । शिश्वियथ । श्वयितासि । यहां गुण होकर अयादेश होता है । श्वयिष्यति । श्वयिषति । श्वयिषाति । श्वयति । श्वयाति । श्वयतु । अश्वयत् । श्वयेत् । शूयात् (२८३) सम्प्रसारण हीकर दीर्घ (१६०) लुङ् में अङ् का विकल्प (१५४) होकर अङ् पक्ष में ॥ २८४ ॥

२८५—अश्वतेरः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १८ ॥

शिव धातु के इकार को अकार आदेश होवे अङ् परे हो तो । अट् + श्वि + अङ् + तिप् = अश्वत् । यहां अङ् के अकार के साथ पर रूप होता है । अश्वताम् । अश्वन् । अश्वः । अश्वतम् । अश्वत । अश्वम् । अशवाव । अशवाम । जिस पक्ष में अङ् (१५४) न हुआ वहां चङ् (२४८) और द्वित्व (१८०) होकर । अशिश्वियत् । (१५८) इयङ् । अशिश्वियताम् । अशिश्वयन् । अब जिस पक्ष में चङ् भी (२४८) न हुआ वहां वृद्धि का निषेध (१६२) होकर । अश्वयीत् । अश्वयिष्टाम् । अश्वयिषुः । अश्वयिष्यत् । वृत् । ये यजादि धातु समाप्त हुए । और इस भ्वादि गण की आकृतिगण मानते हैं इसी से । चुलुप्पति । आदि प्रयोग समझने चाहिये । इति शब्दविकल्पाभ्यादयः समाप्ताः । ये शप् विकरण वाले भू आदि धातु समाप्त हुए ॥

२८६—ऋतेरीयङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । २६ ॥

ऋत धातु से ईयङ् प्रत्यय ही स्वार्थ में इस धातु का स्वार्थ निन्दा वा कृपा है । और यह सौत्र धातु है अर्थात् किसी गण का नहीं । ऋत—ईय् । इस की धातु संज्ञा (१६०) होकर भ्वादि की आकृति गण मानने से शप् होता है । ऋतीयते । ऋतीयते । ऋतीयन्ते । यहां ईयङ् प्रत्यय के ङित् होने से गुण नहीं होता । और ईयङ् प्रत्यय के ङित् होने से ही ऋतीय धातु से आत्मनेपद होते हैं । ऋतीयाच्चक्रे । ऋतीयामास । ऋतीयाम्बभूव । आर्द्धधातुक की विवक्षा में ईयङ् प्रत्यय (१६८) विकल्प करके होता है । जिस पक्ष में ईयङ् न हुआ वहां । ऋत् + ऋत् + णल् = आनर्त्त । यहां । शेष होने से परस्मैपद । आनृततुः । आनृतुः (१४७) नुट् (११०) अभ्यास की दीर्घ (१०६) अकार । आनर्त्तिथ । आनृतथुः । ऋतीयितासि ।

अर्त्तितासि । ऋतीयिष्यते । अर्त्तिष्यति । ऋतीयिष्यतै । ऋतीयिष्यतै । अर्त्तिषति । अर्त्तिषाति । ऋतीयताम् । आर्त्तीयत । ऋतीयेत । ऋतीयिषीष्ट । ऋत्यात् । आर्त्तीयिष्ट । आर्त्तित् । आर्त्तिष्टाम् । आर्त्तीयिष्यत । आर्त्तिष्यत् [अद] भक्षणे (खाना) ॥ २८६ ॥

२८७—अदिप्रभृतिभ्यः शप् ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७२ ॥

अद आदि धातुओं से परे जो शप् उस का लुक् होवे । जहां २ लुक् कहते हैं वहां २ प्रत्यय मात्र का होता है । अद+शप्+तिप्=अस्ति । अस्तः । अदन्ति । अस्ति । अत्यः । अत्य । अद्भि । अद्वः । अद्वः ॥ २८७ ॥

२८८—बहुलं कृन्दसि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७३ ॥

वेदविषय में अद आदि धातुओं से परे शप् का लुक् बहुल करके होवे । बहुल के कहने से जिन से परे कहा है उन से परे नहीं भी होता । अदति । हनति । इत्यादि । और जिन से नहीं कहा वहां भी हो जाता है । चाक्षं नो देवाः । यहां चैङ् भ्वादिष्य धातु से शप् का लुक् हुआ है । त्रायध्वम् । लोकमें होता है ॥ २८८ ॥

२८९—लिङ्यन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४० ॥

लिट् लकार परे हो तो अद धातु को घस्ल आदेश विकल्प करके होवे । जघास । घस्+अतुस् (२८४) से उपधालोप हो कर । उस उपधालोप का चर् विधि के प्रति स्थानिवत् का निषेध होने से घकार को चर् क् होता है उस ककार से परे षत्व (२८४) हो कर । जक्षतुः । जक्षुः । जघसिथ । जघस्य । जक्षथुः । जक्ष । जघास । जघस । जक्षिव । जक्षिम । आद । आदतुः । आदुः । यल् में नित्य इट् (२५८) आदिथ । आदथुः । आद । आद । आदिव । आदिम । अत्ता । अत्तासि । अत्स्यति । अत्सति । अत्ताति । अदति । अदाति । अत्तु । अत्तात् । अत्ताम् । अदन्तु ॥ २८९ ॥

३००—हुभलभ्यो हेर्धिः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०१

हु और भलन्त धातुओं से परे जो हि उस का धि आदेश होवे । यहां भलन्त अद से परे धि हो कर । अद+हि=अद्धि । अत्तात् । अत्तम् । अत्त । अदानि । अदाव । अदाम ॥ ३०० ॥

३०१—अदः सर्वेषाम् ॥ अ० ॥ ७ । ३ । १०० ॥

अद धातु से परे जो अपृक्त हलादि सार्वधातुक उस को अट् का आगम हो सब आचार्यों के मत में । यह अपृक्त हलादि सार्वधातुक लङ् लकार के तिप् और

सिप् दो ही में मिलता है । आट् + अट् + अट् + तिप् = आदत् । आत्ताम् ।
आदन् । आदः । आत्ताम् । आत्त । आदम् । आह । आदम् । अद्यात् । अद्याताम् ।
अद्या + उस् = अद्युः (८३) पररूपएकादेश । अद्याः । अद्यातम् । अद्यात । अद्याम् ।
अद्याव । अद्याम । अद्यात् । अद्यास्ताम् । अद्यासुः ॥ ३०१ ॥

३०२—लुङ्सनोर्घसल् ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३७ ॥

लुङ्लकार और सन् प्रत्यय परे हीं तो अट् धातु को घस्त् आदेश होवे ।
लटित् घस्त् आदेश के पढ़ने से च्चि के स्थान में अङ् (२१७) अघसत् ।
अघसताम् । अघसन् । आत्स्यत् [हन] हिंसागल्थोः (मारना और गति)
शप् का लुक् (२६७) हन्ति ॥ ३०२ ॥

३०३—अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादीनामनुनासिकलोपो

भ्रालि कृडिति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३७ ॥

उपदेश में जो अनुदात्त (अनिट्) धातु, वन और तनु से ले कर जो धातु
हैं उन सब के अनुनासिक का लोप होवे भ्रालादि कित् डित् प्रत्यय परे हीं तो
अनुदात्तोपदेश अनुनासिकान्त । यम, रम, नम, गम, हन और दिवादि गण
का मन ये छः धातु हैं और तनोत्यादि अनुनासिकान्त । तनु, षणु, क्षणु, क्षिणु,
ऋणु, लणु, घृणु, वनु और मनु ये नौ धातु हैं और वनति धातु भ्रादिगण का
लिया है इन सब के अन्त्य अनुनासिक का लोप जहां २ भ्रालादि कित् डित् हीं
वहां २ होता है यहां इन धातु से परे तस् की डित् संज्ञा (६७) होने से ।
हन् + तस् = हतः । यहां अनुनासिक लोप हुआ है । हन्-भि ॥ ३०३ ॥

३०४—हो हन्तेर्अण्णिनेषु ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५४ ॥

हन् धातु के हकार को कवर्ग आदेश होवे जित् णित् और नकार परे हीं
तो । यहां भि के भ्रकार को अन्त आदेश होने की पश्चात् उपधाअकार का लोप
(२१४) होकर केवल नकार के परे ह की घ । जन्ति । हंसि । हयः । हय ।
हन्मि । हन्म्यः । हन्म्यः । हन् + हन् + णल् = जघान (३०४) णित् के परे ह की
कुत्व । जघ्नतुः (२१४) उपधा लोप और न के परे ह की कुत्व (३०४) जघ्नः ॥ ३०४ ॥

३०५—अभ्यासाच्च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५५ ॥

अभ्यास से परे हन धातु के हकार को कुत्व होवे । जघनिष । जघन्म्य ।
यहां कुत्व (३०४) नहीं प्राप्त है । जघ्नयुः । जघ्न । जघ्नान् । जघ्नन । जघ्निव ।
जघ्निम । हन्ता । हन्ताती । हन्तारः । हन्तासि । हनिष्यति । हनिष्यतः (२३८)

अप्राप्त इट् । हांसति । हांसाति । हंसति । हंसाति । हमति । हनाति । हन्तु ।
हतात् । हताम् । हन्तु ॥ ३०५ ॥

३०६—हन्तेर्जः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३६ ॥

हन् धातु को ज आदेश होवे हि परे होती । अब हन् धातु के स्थान में ज आदेश होने के पश्चात् हि का लुक् (७१) प्राप्त है उस ज आदेश को असिद्ध (४२) मान कर नहीं होता । जहि । हतात् । हतम् । हत । हनानि । हनाव । हनाम । अहन् । यहां हल् नकार से परे अपृक्त तिप् के तकार का लोप होता है । अहताम् । अहन् । अहन् । अहतम् । अहत । अहनम् । अहन्व । अहन्व । हन्यात् । हन्याताम् । हन्तुः । हन्त्याः ॥ ३०६ ॥

३०७—आर्द्धधातुके ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३५ ॥

यह अधिकार सूत्र है ॥ ३०७ ॥

३०८—हनो बध लिङि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४२ ॥

हन् धातु को बध आदेश होवे आर्द्धधातुक विषय में लिङ् परे हो तो । बध अकारान्त होता है । बध्यात् (१७२) अकार लोप । बध्यास्ताम् । बध्यासुः । बध्याः । बध्यास्तम् ॥ ३०८ ॥

३०९—लुङि च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४३ ॥

आर्द्धधातुक विषयक लुङ् परे हो तो भी हन् धातु को बधादेश होवे । इस सूत्र का पृथक् निर्देश इस से अगले सूत्र में अनुवृत्ति के लिये है । अबधीत् । बध आदेश के अदन्त होने से सिच् के परे अकारलोप (१७२) होकर उस के स्थानिवत् होने से वृद्धि (१३५) नहीं होती । अबधिष्टाम् । अबधिषुः । अबधीः । अहनिष्यत् (२३८) अहनिष्यताम् । अहनिष्यन् । अदिहनी अनुदात्तावुदात्तौ परस्मैपदिनी । अद और हन् दोनों धातु अनिट् परस्मैपदी हैं ॥

अथ चत्वारः स्वरितैः । अब चार धातु उभयपदी कहते हैं [द्विष] अप्रीती (वैर करना) द्वेष्टि । द्वेष्टः । द्विषन्ति । द्वेचि । द्विष्ठः । द्विष्ठ । द्वेषि । द्विष्यः । द्विष्यः । द्विष्टे । द्विषाते । द्विषते । द्विच्छे । द्विड्द्वे । द्विषे । द्विष्यहे । द्विष्यहे । द्विद्वेष । द्विद्विषतुः । द्विद्विषे । द्वेष्टासि । द्वेष्टासे । द्वेक्ष्यति । द्वेक्ष्यते । द्वेक्ष्यते । द्वेक्षाते । द्वेषते । द्वेषाने । द्वेक्षति । द्वेक्षाति । द्वेषति । द्वेषाति । द्वेष्टु । द्विष्टात् । द्विष्टाम् । द्विषन्तु । द्विड्दि । द्विष्टात् । द्विष्टम् । द्विष्ट । द्वेषाणि । द्वेषाव । द्वेषाम द्विष्टाम् । द्विषाताम् । द्विषताम् । द्विष्य । द्विषायाम् । द्विड्द्वम् । द्वेषे ।

द्वेषावहै । द्वेषामहै । अद्वेष्ट । तिप् के तकार का लोप (हल्ङ्या०) होता है । अद्विष्टाम् ॥ २०८ ॥

३१०—द्विषञ्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ११२ ॥

शाकटायन आचार्य ही के मत में द्विष धातु से परे लङ् लकार के भि की जस् आदेश होवे । अद्विषुः । अन्य लोगों के मत में । अद्विषन् । अद्वेष्ट । अद्विष्टम् । अद्विष्ट । अद्विषम् । अद्विष्व । अद्विष । अद्विष्ट । अद्विषाताम् । अद्विषत । द्विष्यात् । द्विष्याताम् । द्विष्युः । द्विषीत । द्विषीयाताम् । द्विषीरन् । द्विषीयाः । द्विष्यात् । द्विष्यास्ताम् । द्विषीष्ट । द्विषीयास्ताम् । द्विषीरन् (१६३) कित् । अद्विचत् । अद्विचताम् । अद्विचन् (२०७) क्त् । अद्विचत । अद्विचाताम् (२०८) क्त् लोप । अद्वेच्यत् । अद्वेच्यत [दुह] प्रपूरणे (लृप्तकरण) ॥ ३१० ॥

३११—दादेधातोर्घः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३२ ॥

दकारादि धातुओं के हकार की घकार आदेश हो भल् परे हो वा पदान्त में दुह्+तिप्=दोग्धि (१४१) त की घ और घ की जस्त्व । दुग्धः । दुहन्ति । धोक्षि (२०४) दुग्धः । दुग्ध । दोह्नि । दुह्वः । दुह्वः । दुग्धे । दुहाते । दुहते । धुचे । दुहाथे । धुग्धे । दुहे । दुह्वहे । दुह्वहे । दुहाह । दुदुहतुः । दुदोहिथ । दुदुहे । दोग्धा । धोक्ष्यति । धोक्ष्यते । धोक्षते । धोक्षाते । दोहते । दोहाते । धोक्षति । धोक्षाति । दोहति । दोहाति । दोग्धु । दुग्धात् । दुग्धाम् । दुहन्तु । दुग्धि । दुग्धात् । दुग्धम् । दुग्ध । दोहानि । दोहाव । दोहाम । दुग्धाम् । दुहाताम् । दुहताम् । धुक्त्व । दुहाथाम् । धुग्धम् । दोहै । दोहावहै । दोहामहै । अधोक् । यहाँ पदान्त में संयोगान्त हल् तकार का लोप हो कर कुत्व होजाता है । अदुग्धाम् । अदुहन् । अधोक् । अदोहम् । अदुग्ध । अदुहाताम् । अधुग्धम् । दुह्यात् । दुह्याताम् । दुह्युः । दुहीत । दुहीयाताम् । दुहीरन् । दुह्यात् । दुह्यास्ताम् । धुचीष्ट । (१६३) धुचीयास्ताम् । धुचीरन् । अधुचत् (२०७) क्त् । अधुचताम् । अधुचन् । अधुचः । अधुचत । अधुचाताम् (२०८) अधुचन्त । विकल्प से क्त् लुक् (२३७) अदुग्ध । अदुग्धाः । अधुचथाः । अधुग्धम् । अधुचध्वम् । अधोच्यत् । अधोच्यत । [दिह] उपचये (वदना) सब कार्य और प्रयोग दुह के तुल्य जानो । देग्धि । अधिचत् । अदिग्ध । अधिचत (लिह) आस्वादने (स्वाद लेना) लिह+तिप्=लेदि (२०३ । १४१ । २०६) लीढः (२३६) लिहन्ति । लेचि (२०५) लीढः । लीढ । लेचि । लिह्वः । लिह्वः । लीढे । लिहाते । लिहते । लिचे । लिहाथे । लीढ्वे । लिहे । लिह्वहे । लिह्वहे । लिलेह । लिलिहतुः । लिलेहिथ । लिलिहे । लिलिहाते ।

लिलिहिरे । लीढासि । लीढासे । लेक्ष्यति । लेक्ष्यते । लेक्षते । लेक्षाते । लेक्षति ।
लेक्षाति । लेढु । लीढात् । लीढाम् । लिहन्तु । लीढि । लीढात् । लीढम् ।
लीढ । लेहानि । लेहाव । लेहाम । अलेट् । अलीढाम् । लिह्यात् । लिह्यीष्ट ।
अलिक्षत् । अलिक्षत (२३०) अलीढ । अलिक्षाताम् । अलिक्षन्त । अलिक्षथाः ।
अलीढाः । अलेक्ष्यत् । अलेक्ष्यत । द्विषादयोऽनुदात्ताः स्वरिते उभयपदिनः । ये द्विष
आदि अनिट् उभयपदी धातु हैं [चक्षिङ्] व्यक्तयां वाचि, अयं दर्शनेऽपि (स्यष्टबोल-
ना और देखना) इस धातु में जो अनुदात्त इकार है उस की इत् संज्ञा होजाती है
फिर अनुदात्तेत् के होने से आत्मनेपद हो ही जाता फिर ङकार पढ़ने से अनुदा-
त्तेत् धातुओं से आत्मनेपद विधान का अनित्य ज्ञापक होता है । और इस का
इकार अन्त में इत् नहीं गया इस कारण नुम् नहीं होता । चक्ष् + ते = चष्टे
(२१०) संयोगादि ककार का लोप । चक्षते । चक्षाते । चक्षे । चक्षाथे । चङ्द्वे ।
चक्षे । चक्ष्वहे । चक्ष्वहे ॥ ३११ ॥

३१२—चक्षिङ् ख्याञ् ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५४ ॥

सामान्य आर्द्धधातुक विषय में चक्षिङ् धातु की ख्याञ् आदेश होवे ॥ ३१२ ॥

३१३—वा लिटि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५५ ॥

लिट् लकार में चक्षिङ् धातु की ख्याञ् विकल्प करके होवे । पूर्व सूत्र से
सर्वत्र नित्य प्राप्त है उस का विकल्प करनेसे प्राप्त विभाषा है । ख्याञ् हो कर
आकारान्त के समान प्रयोग और जित् होने से उभयपद (१०३) चख्यौ (२४३)
चख्यतुः (२४४ । २४५) चख्युः । चख्यथ । चख्याथ । चख्ये । चख्याते ॥ ३१३ ॥

३१४—वा०—ख्शादिर्वा ॥

यह ख्याञ् आदेश जो कहा है सो ख्शाञ् आदेश कहना चाहिये । फिर
ख्याञ् धातु के प्रयोग किस प्रकार बनने चाहिये ॥ ३१४ ॥

३१५—वा०—असिद्धे शस्य यवचनं विभाषा ॥

असिद्ध अर्थात् अष्टमाऽध्याय के अन्त के तीन पादों में ख्शाञ् के शकार को
विकल्प करके यकार होवे । सो जब यकार होगा तब ख्याञ् के प्रयोग और
ख्शाञ् रहेगा वहां ख् को चर्त्वं क् हो कर । चक्षौ । चक्षतुः । चक्षे ।
चक्षते । ख्शाञ् आदेश विधान करके असिद्ध प्रकरण में शकार को यकार
कहने से जो २ कार्य सपाद सप्ताऽध्यायी में ख्या धातु को कहे हैं वे इस को नहीं
हैंते । क्यों कि सपाद सप्ताऽध्यायी में वह ख्याञ् नहीं किन्तु ख्शाञ् है । इस
प्रकार के कई प्रयोजन महाभाष्य कारने (३१२) सूत्र पर गिनाये हैं । अब

जिस पक्ष में ख्शाञ् आदेश (३१३) नहीं हुआ वहां । चच्चे । चच्चाते । चच्चिरे । ख्यातासि । ख्यातासे । क्शातासि । क्शातासे । ख्यायति । ख्यास्यते । क्शास्यति । क्शास्यते । ख्यासति । ख्यासाति । क्शासति । क्शासाति । ख्यासते । ख्यासाते । क्शासते । क्शासाते । चच्ते । चच्चाते । चच्ते । चच्चाते । चटाम् । चच्चाताम् । चच्व । चच्चाथाम् । चङ्द्वम् । चच्चे । चच्चावहे । चच्चामहे । अचष्ट । अचच्चाताम् । अचच्चत । अचच्चाः । अचच्चाथाम् । अचङ्द्वम् । अचच्चि । अचच्च्वहि । अचच्चमहि । चच्चीत । चच्चीयाताम् । चच्चीरन् । ख्यायात् । ख्येयात् । क्शायात् । क्येयात् (२५२) एत्वविकल्प । ख्यासीष्ट । क्शासीष्ट ॥ ३१५ ॥

३१६—अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५२ ॥

असु दिवादि गण का वच और ख्या अदादि गण के धातुओं से परे चि के स्थान में अङ् हांवे । सो जिस पक्ष में यकार होता है वहां अङ् जानो । अख्यत् । अख्यताम् । अख्यन् । अख्यत । अख्यतम् । अख्यन्त । ख्शाञ् पक्ष में । अक्शासीत् (२५१) अक्शास्त । अख्यास्यत् । अख्यास्यत । अक्शास्यत ॥ ३१६ ॥

३१७—वा०—वर्जनै प्रतिषेधः ॥

वर्जन अर्थ में चञिङ् धातु को ख्शाञ् आदेश न होवे । संचक्षितासे । संचक्षिष्यते । संचक्षिषीष्ट । समचक्षिष्ट । सम् उपसर्ग पूर्वक इस धातु का वर्जन अर्थ होता है । अथ पृच्यन्ता अनुदासितव्यतुर्दश । अव पृची धातु पर्यन्त १४ धातु आत्मनेपदी कहते हैं [ईर] गती कम्पने च (गति और कांपना) ईर्त्ते । प्रेर्त्ते । ईराते । ईर्षे । ईराथे । ईर्ध्वे । ईरे । ईर्वहे । ईर्महे । ईराञ्चक्रे । ईरितासे । ईरिष्यते । ईरिष्यते । ईरिषाते । ईरते । ईराते । ईर्ताम् । ईराताम् । ईरताम् । ऐर्त्त । ईरीत । ईरीयाताम् । ईरीरन् । ईरिषीष्ट । ऐरिष्ट । ऐरिष्यत [ईड] स्तुती (स्तुतिकरना) [ईश] ऐश्वर्ये (मालिक का होना) ईष्टे । चर्त्तव । ईडाते । ईडते । ईट्से । ईष्टे (२३३) षत्व । ईशाते । ईशते ॥ ३१७ ॥

३१८—ईशः सि ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७७ ॥

ईश धातु से परे जो सार्वधातुक उसको इट् का आगम होवे । ईशिते ॥ ३१८ ॥

३१९—ईङ्जनोर्ध्वे च ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७८ ॥

ईश, ईड, और जन धातुओं से परे जो से और ध्वे बलादि सर्वाधातुक उन को इट् आगम हो । पूर्व सूत्र की यहां सब अनुवृत्ति आती है इन दोनों सूत्रों से बराबर कार्य होता है फिर एक सूत्र पढ़ते पृथक् २ पढ़ने से आचार्य की

विचित्र क्रिया दीख पड़ती है । ईडिषे । ईडाये । ईडिध्वे । ईडे । ईशे । ईडा-
 च्छुके । ईशाच्छुके । ईडामास । ईडाम्बभूव । ईशामास । ईशाम्बभूव । ईडितासे ।
 ईशितासे । ईडाम् । ईडाताम् । ईडताम् । ईडिष्व (३१८) ईशिष्व । ईडिध्वम् ।
 ईशिध्वम् । यहां एकदेश एकार को विकृत मान कर इट् हो जाता है और से ध्वे
 (३१८ । ३१८) एकारान्त पढ़ने से ही लङ् लकार में इट् नहीं होता । ऐट् ।
 ऐडाताम् । ऐडत । ऐडध्वम् । ईडौत । ईशीत [आस] उपवेशने (बैठना)
 आस्ते । आसाते । आसते । आसाच्छुके (१८०) आम् । आसाम्बभूव । आसामास ।
 आसितासे । आसिष्यते । आसिषतै । आसिषातै । आस्ताम् । आस्व । आध्वम् ।
 आस्त । आसीत । आसिषीष्ट । आसिष्ट । आशिष्यत [आङ्ःशासु] इच्छायाम् ।
 बहुधा आङ्पूर्वक ही इस धातु के प्रयोग आते हैं इस लिये आङ् इस के साथ
 लगा दिया है । आशास्ते । आशासाते । आशासते । आशशासे । आशशासाते ।
 आशासितासे । आशास्ताम् । आशास्व । आशाध्वम् । आशासै । आशासावहै ।
 आशासामहै । आशास्त । आशासीत । आशासिषीष्ट । आशासिष्ट [वस]
 आच्छादने (ढांकना) वस्ते । वसाते । वसते । ववसे । ववसाते (१२८) एत्वाभ्या-
 सलोप निषेध । वसितासे । वसिष्यते । वासिषतै । वासिषातै । वसतै । वसातै ।
 वस्ताम् । वसाताम् । वस्व । वध्वम् । अवस्त । वसीत । वसिषीष्ट । अवसिष्ट ।
 अवसिष्यत [कसि] गतिशासनयोः (गति और शिक्षा) कंस्ते । कंसाते । कंसते ।
 कन्ध्वे । कंससे । कंस्ताम् । कंस्व । कन्ध्वम् । अकंस्त । कंसीत [कस] इत्यन्ये ।
 कस्ते । कसाते । चकसे । चकसाते । कस्ताम् । कस्व । कध्वम् । अकस्त । कसीत ।
 अकसिष्ट [कश] इत्येके । कष्टे (२३३) षत्व । कशाते । चकशे । चकशाते ।
 कशितासे । कशिष्यते । काशिषतै । काशिषातै । कष्टाम् । कशाताम् । कशताम् ।
 कञ् । कङ्ढवम् । अकष्ट । कशीत । कशिषीष्ट । अकशिष्ट । अकशिष्यत ।
 [णिसि] चुम्बने (चूबना) निंस्ते । निंसाते । निनिंसे । निंसितासे । निंसिष्यते ।
 निंसिषतै । निंसिषातै । निंस्ताम् । निंस्व । निन्ध्वम् । अनिंस्त । निंसीत ।
 निंसिषीष्ट । अनिंस्त । अनिसिष्यत [णिजि] शुद्धौ । निङ्क्ते । निञ्जाते । निङ्क्ते ।
 निनिञ्जे । निञ्जितासे [शिजि] अव्यक्ते शब्दे । शिङ्क्ते । शिशिञ्जे [पिजि]
 वर्णे (श्वेतआदि) पिङ्क्ते । सम्पर्चनइत्येके । यह धातु किसी के मत में स्पर्श
 करने अर्थ में है । उभयत्रेत्यन्ये । कोई कहते हैं कि वर्ण और सम्पर्चन दोनों
 अर्थ हैं । अवयव इत्यपरे । अव्यक्ते शब्द इतीतरे । किन्ही के मत में अवयव और
 कोई के मत में अव्यक्त शब्द अर्थ में पिजि धातु है [पृजि] इत्येके । पूर्वोक्त सब
 अर्थों में पिजि के स्थान में कोई लोग पृजि धातु कहते हैं । पृङ्क्ते । [वृजि]

वर्जने (निषेध करना) वृत्ते । वृजाते । वृजते । वृत्ते । वृग्ध्वे । वृहजे । वर्जिता । वर्जियते ।
वर्जिषते । वर्जिषाते । वृजते । वृजाते । वृताम् । वृत् । वृग्ध्वम् । अवृत्त ।
वृजीत । वर्जिषीष्ट । अवर्जिष्ट । अवर्जियत [पृची] सम्पर्चने (सम्बन्ध) पृक्ते । पृचाते ।
ईरादय उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः । ये ईर आदि धातु समाप्त हुए ॥

[घूङ्] प्राणिगर्भविमोचने (गर्भस्थप्राणियों का जन्म) सूते । सुवाते (१५६)
उवङ् । सुवते । सुषुवे (१४०) सूत्र में सूति करके इसी सू धातु का ग्रहण है ।
इस कारण इट् का विकल्प होता है । सुषुविषे । सुसृषे । सुषुविद्वे । सुषुविध्वे ।
सुषूद्वे । सवितासे । सोतासे । सविष्यते । सोष्यते । साविषते । साविषाते । सविषते ।
सविषाते । साविषते । साविषाते । सविषते । सविषाते । सौषते । सौषाते । सोषते ।
सोषाते । सोषते । सोषाते । सौषते । सौषाते । सुवते । सुवाते । सुवते । सुवाते ।
सूताम् । सुवाताम् । सुवताम् । सुवै (८१) गुण निषेध । सुवावहे । सुवामहे ।
असूत । सुवीत । सविषीष्ट । सोषीष्ट । सविषीद्वम् । सविसीध्वम् । सोषीद्वम् ।
असविष्ट । असोष्ट । असविद्वम् । असविध्वम् । असोद्वम् । असविष्यत । असोष्यत ।
[शीङ्] स्वप्ने (सोना) ङितवत् (८७) होने से गुण नहीं प्राप्त है इस लिये ॥३१६॥

३२०—शीङ्: सार्वधातुके गुणः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २१ ॥

शीङ् धातु को गुण होवे सामान्य सार्वधातुक परे हों तो । यह सूत्र (४५)
सूत्र के निषेध का अपवाद है । शेते । शी + आताम् = शयाते । गुण होकर
अवादेश होता है ॥ ३२० ॥

३२१—शीङो णट् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६ ॥

शीङ् धातु से परे झकार के स्थान में जो अत् आदेश उस को णट् का आगम
होवे । टित् आगम उस की आदि में होकर । शेरते । शेषे । शयाथे । शिध्वे ।
शये । शिवहे । शिमहे । शिश्ये (१५६) यण् । शिश्यिद्वे । शिश्यिध्वे । शयितासे ।
शयिष्यते । शायिषते । शायिषाते । शिताम् । शयाताम् । शेरताम् । शिष्व । शया
याम् । शिध्वम् । शयै । शयावहे । शयामहे । अशेत । अशयाताम् । अशेरत ।
शयीत । शयीयाताम् । शयीरन् । शयिषीष्ट । शयिषीद्वम् । शयिषीध्वम् । अश-
यिष्ट । अशविद्वम् । अशयिध्वम् । अशयिष्यत । आत्मनेभाषावुदात्तौ । शीङ्
और णट् दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथ स्तौत्यन्ताः परस्मैपदिना हादश । अब स्तु धातु पर्यन्त १२ बारह धातु
परस्मैपदी कहते हैं [यु] मिश्रणे अमिश्रणे च (मिलाना वा पृथक् करना) ॥३२१॥

३२२—उतो वृद्धिर्लुकि हलि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८६ ॥

हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो लुक् विषय में उकारान्त अङ्ग को वृद्धि होवे परन्तु अभ्यस्त सञ्ज्ञक उकारान्त को पूर्वोक्त लक्षणों में भी वृद्धि न होवे । यु + तिप् = यौति । युतः । युवन्ति (१५६) यौषि । युथः । युथ । यौमि । युवः । युमः । युयाव । युयुवतुः । युयविथ । यवितासि । यविष्यति । याविषति । याविषाति । यविषति । यविषाति । यवति । यवाति । यौतु । युतात् । युहि । यवानि । यवाव । यवाम । अयौत् । अयुताम् । अयुवन् । अयोः । अयुतन् । अयुत । अयवम् । युयात् । यहां विशेष विधायक जो यासुट् को डित्व (७८) है वह पित् का बाधक होने से वृद्धि (३२२) नहीं होती । युयाताम् । युयुः । यूयात् (१६०) दौर्घ । अयावीत् । अयाविष्टाम् । अयाविषुः (१५८) अयविष्यत् [णु] स्तुतौ । नौति । नौषि । नौमि । नवितासि । नाविषति । नाविषाति । नौतु । अनौत् । नूयात् । नूयात् । अनावीत् । अनविष्यत् [रु] शब्दे ॥ ३२२ ॥

३२३—तुरुस्तुशस्यमः सार्वधातुके ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८५ ॥

तु, रु, स्तु, शम और अम धातुओं से परे जो हलादि सार्वधातुक उस को विकल्प करके इट् का आगम होवे (अम, गत्यादिषु) यह धातु भ्वादि गण में लिख चुके हैं । उस से परे वेद में शप् का लुक् (२८७) होने पश्चात् हलादि सार्वधातुक मिलता है । अभ्यमीति । अभ्यमति । प्रयोग होंगे । और शम धातु दिवादि गण का है । रु + इट् + तिप् = रवीति । रौति । रवीतः । उवङ् (१५६) रुतः । रुवन्ति । यहां हलादि के न होने से इट् न हुआ । और इस सूत्र में सार्वधातुक की अनुवृत्ति पूर्व से चली आती थी फिर सार्वधातुक ग्रहण का यही प्रयोजन है कि अपित् सार्वधातुक में भी हो जावे । रवीषि । रौषि । रवीथः । रुथः । रवीथ । रुथ । रवीमि । रौमि । रवीमः । रुमः । रवीतु । रौतु । अरवीत् । अरौत् । [टुच्] शब्दे । चौति । क्षुतः । चुक्षाव । चौतु । क्षूयात् । शेष यु के समान [क्षु] तेजने (तीक्ष्ण करना) क्षीति । क्षुतः । चुक्षाव । क्षूयात् । अक्षावीत् [णु] प्रस्रवणे (झरना) क्षीति । क्षुक्षाव । क्ष्विता । क्षीतु । क्षूयात् । उदात्ताः परस्मैपदिनः । यु आदि धातु सेट् परस्मैपदी हैं [ऊर्णञ्] आच्छादने (ढांकना) ॥ ३२३ ॥

३२४—ऊर्णोतेविभाषा ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८० ॥

हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो ऊर्ण धातु को विकल्प करके वृद्धि होवे (३२२) सूत्र से नित्य वृद्धि प्राप्त है इस लिये यह प्राप्तविभाषा जानो । ऊर्णोति

जर्णोति । जर्णुतः । जर्णुवन्ति । यहां हलादि के न होने से वृद्धि नहीं होती ।
जर्णोषि । जर्णोषि । जर्णुते । जर्णुवाते । जर्णुवते । जर्णु धातु के इजादि गुरु-
मान् होने से लिट् में आम् प्रत्यय (१००) प्राप्त है इस लिये ॥ ३२४ ॥

३२५—का०—वाच्य जर्णोर्णुद्वावो यङ्प्रसिद्धिः प्रयोजनम् ।

आत्मश्च प्रतिषेधार्थमेकाचश्चेडुपग्रहात् ॥

जर्णुज् धातु को णवत् भाव कहना चाहिये । अर्थात् जैसे एकाच् हलादि (ण, सुतो) धातु को कार्य्य होते हैं वैसे इस को भी होवें । प्रयोजन यह है कि एक तो यङ् प्रत्यय एकाच् हलादि से होता है वह इससे भी होवे और इजादि गुरुमान् के न होने से आम् प्रत्यय (१००) न होवे । और (युक्कः किति) सूत्र में उगन्त एकाच् धातुओं से परे कित् आर्द्धधातुक को इट् का निषेध कहा है सो इस को भी एकाच् मान कर निषेध हो जावे । जर्णुतः । जर्णुवान् । इत्यादि में । अब यहां आम् का निषेध हो कर । जर्णु—एल् । यहां णु को वृद्धि हो कर । अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव र्णु मात्र को द्वित्व (३५ । ३६) प्राप्त है इस लिये ॥ ३२५ ॥

३२६—न न्द्राः संयोगादयः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३ ॥

अच् से परे संयोग के आदि जो न् द और र् इन को द्वित्व न होवे इस से रेफ को द्वित्व का निषेध होकर णु शब्द को द्वित्व होता है । जर्णुनाव । रेफ को द्वित्व हो जाता तो अभ्यास का आदि हल् वही रेफ है उस से परे अन्य हल् णकार का लोप (३८) हो जाता । जर्णुनुवतुः । जर्णुनुवुः ॥ ३२६ ॥

३२७—विभाषोर्णोः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३ ॥

जर्णुधातु से परे जो इडादि प्रत्यय सो विकल्प करके डित्वत् हो । जर्णुन-
विथ । डित् पक्ष में गुण का निषेध (४५) जर्णुनविथ । जर्णुनुवे । जर्णुनुवाते ।
जर्णुनुविषे । जर्णुनविषे । जर्णुवितासि । जर्णुवितासि । जर्णुवितासे । जर्णुवितासे ।
जर्णुवियति । जर्णुविष्यति । जर्णुविष्यते । जर्णुविष्यते । जर्णुविषति । जर्णुविषाति ।
जर्णुविषत् । जर्णुविषात् । जर्णुविषति । जर्णुविषाति । जर्णुविषति । जर्णुविषाति ।
जर्णुवति । जर्णुवाति । जर्णुविषतै । जर्णुविषातै । जर्णुविषते । जर्णुविषाते ।
जर्णुविषतै । जर्णुविषातै । जर्णुविषते । जर्णुविषाते । जर्णोतु । जर्णोतु ।
जर्णुतात् । जर्णुताम् । जर्णुवन्तु । जर्णुहि । जर्णुतात् । जर्णुतम् । जर्णुत । जर्णुवानि ।
जर्णुवाव । जर्णुवाम । जर्णुताम् । जर्णुवाताम् । जर्णुवताम् । जर्णुस्व । जर्णुवे ।
जर्णुवाव है । जर्णुवाम है ॥ ३२७ ॥

३२८—गुणोऽष्टके ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६१ ॥

जर्णुन् धातु को गुण ही अपृक्त हलादि सार्वधातुक परे हो तो । अपृक्त विषय में भी वृद्धि (३२४) प्राप्त है उस का अपवाद यह सूत्र है । और्णोत् । और्णीः । और्णवम् । और्णुत । और्णुवाताम् । और्णुवत । जर्णुयात् । जर्णुयाताम् । जर्णुयुः । जर्णुवीत । जर्णुवीयाताम् । जर्णूयात् (१६०) दीर्घ । जर्णुविषीष्ट । जर्णविषीष्ट । जर्णविषीढवम् । जर्णुविषीध्वम् ॥ ३२८ ॥

३२९—जर्णोतिर्विभाषा ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६ ॥

परस्मैपद विषय में इडादि सिच् परे हो तो जर्णु धातु को विकल्प करके वृद्धि होवे पक्ष में गुण ही जाता है । और्णोवीत् । और्णोविष्टाम् । और्णोविषुः । और्णुवीत् । और्णुविष्ट । और्णुविष्ट । और्णुविष्यत् । और्णुविष्यत् । और्णुविष्यत । और्णुविष्यत [द्यु] अभिगमने (सन्मुख चलना) (३२२) वृद्धि । द्योति । द्युतः । द्युयाव । द्युयवतुः । द्युयविथ । द्योतासि । द्योष्यति । द्यौषति । द्यौषाति । द्योषति । द्योषाति । द्यवति । द्यवाति । द्यौतु । द्युहि । द्यवानि । अद्यौत् । द्युयात् । द्यूयात् । अद्यौषीत् (१५८) वृद्धि । अद्योष्यत् [पु] सप्रवैश्वर्ययोः (उत्पत्ति और संपत्ति का होना) सौति । सौता । सौतु ॥ ३२९ ॥

३३०—स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु * ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७२ ॥

स्तु, सु और धूञ् धातु से परे जी सिच् उस को इट् का आगम होवे परस्मैपद विषय में । असावीत् । असाविष्टाम् । असाविषुः । असावीः (१५८) वृद्धि । [कु] शब्दे । कीति । चुकाव । कीता । कीष्यति । कीषति । कीषाति । कीतु । अकीत् । कूयात् । कूयात् । अकीषीत् । अकीष्यत् [तु] गतिवृद्धिहिंसासु । तीति । तवीति (३२३) तुवीतः । तुतः । तुवन्ति । तुताव । तुतविथ । तुतोथ । तोतासि । तोष्यति । तोषति । तोषाति । तवीतु । तीतु । तुवीतात् । तुतात् । तुवीताम् । तुताम् । अतवीत् । अतीत् । अतवीः । अतीः । तुयात् । तुवीयात् । तुवीयाताम् । तुवीयुः । तूयात् । तूयास्ताम् । अतौषीत् । अतौष्टाम् । अतोष्यत् । येद्यु आदि चार धातु अनिट् परस्मैपदी हैं [ष्टुञ्] सुती । स्तवीति । (३२३) स्तौति । सुवीतः । सुतः । सुवीते । सुवाते । सुवते । सुवीषे । सुषे । सुवीध्वे । सुध्वे । सुवे । सुवीवहे । सुवहे । सुवीमहे । सुमहे । तुष्टाव । तुष्टवतुः ।

* इस सूत्र को भट्टोजिदीक्षित ने भ्वादिगण के सु धातु पर लिखा है सो स्तु धातु के साहचर्य से लुग्विकरण अदादि के सु धातु का ग्रहण होना चाहिये इस लिये वहां लिखना ठीक नहीं है ॥

तुष्टुवुः । तुष्टोय (१४८) इट् निषेध । स्तोतासि । स्तोतासे । स्तोष्यति । स्तोष्यते । स्तोषति । स्तोषाति । स्तोषति । स्तोषाति । स्तोषतै । स्तोषातै । स्तोषते । स्तोषाते । स्तोषते । स्तोषाते । स्तोषतु । स्तवीतु । स्तवीताम् । स्तुताम् । अस्तवीत् । अस्तौत् । अस्तुवीत् । अस्तुत । स्तुवीयात् । स्तुयात् । स्तुवीत । स्तुवीयाताम् । स्तूयात् । स्तूयास्ताम् । स्तोषीष्ट । स्तोषीद्वम् । अस्तावीत् (३३०) इट् । अस्ताविष्टाम् । अस्ताविष्टुः । अस्तावीः (३३०) सूत्र में परस्मैपद के कहने से आत्मनेपद में इट् नहीं होता । अस्तोष्ट । अस्तोषाताम् । अस्तोषत । अस्तोष्यत् । अस्तोष्यत [ब्रूज्] व्यक्तायां वाचि (स्पष्ट बोलना) ॥ ३३० ॥

३३१—ब्रुवः प्रञ्चानामादित आहो ब्रुवः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८४ ॥
ब्रूज् धातु से परे लट् लकार के परस्मैपद संज्ञक आदि के तिप् आदि पांच वचनों की लण् आदि पांच आदेश यथासंख्य करके होंगे और उन्हीं आदेशों के सम्बन्ध में ब्रूज् धातु की आह आदेश होजावे । इस सूत्र में दूसरी बार वू धातु इस लिये पढ़ा है कि आह आदेश किसी प्रत्यय के स्थान में न होजावे । वू + तिप् = आह । आहतुः । आहुः । प्राहुः । आह + थल् ॥ ३३१ ॥

३३२—आहस्यः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३५ ॥

आह धातु की हकार की थकार आदेश होवे भल् परे हो तो । आत्य । प्रथम थकार की चर्त्त तकार हो जाता है । आह्युः (३३१) सूत्र में आदि के पांच वचनों के कहने से । ब्रूथ । यहां प्रत्यय और धातु की आदेश नहीं होते ॥ ३३२ ॥

३३३—ब्रुवईट् ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६३ ॥

ब्रूज् धातु से परे जो हलादि पित् सार्वधातुक उस की ईट् का आगम होवे । ब्रवीति । आत्य । यहां वूज् की स्थानिवत् मानने से ईट् प्राप्त है परन्तु (३३२) सूत्र से हकार की थकार विधान सामर्थ्य से नहीं होता । ब्रूतः । ब्रुवन्ति । ब्रवीषि । ब्रूथः । ब्रूथ । ब्रवीमि । ब्रूवः । ब्रूमः । ब्रूते । ब्रुवाते । ब्रुवते ॥ ३३३ ॥

३३४—ब्रुवो वचिः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५३ ॥

आर्द्धधातुक विषय में ब्रूज् धातु की वचि आदेश होवे । इकार व्यंजन की सहायता के लिये है । वच + वच + णल् = उवाच (२८३) सम्प्रसारण । उचतुः । उचुः (२८२) उवचिथ । उवकथ । उचे । उचाते । उचिरे । वक्तासि । वक्तासे । वक्ष्यति । वक्ष्यते । वाक्षति । वाक्षाति । वक्षति । वक्षाति । ब्रवति । ब्रवाति । वाक्षते । वाक्षाते । वक्षते । वक्षाते । वक्षते । वक्षाते । ब्रुवते । ब्रुवाते । ब्रुवते । ब्रुवाते ।

ब्रवीतु । ब्रूतात् । ब्रूताम् । ब्रुवन्तु । ब्रूहि । ब्रूतात् । ब्रूतम् । ब्रूत । ब्रवाणि ।
ब्रवाव । ब्रवाम । ब्रूताम् । ब्रुवाताम् । ब्रुवताम् । ब्रुवै । ब्रुवावहे । ब्रवामहे ।
अब्रवीत् । अब्रूताम् । अब्रुवन् । अब्रूत । ब्रूयात् । ब्रूयाताम् । ब्रूयुः । ब्रुवीत ।
ब्रुवीयाताम् । ब्रुवीरन् । उच्चात् (३३४) वचि (२८२) सम्प्रसारण । उच्चास्ताम् ।
वचोष्ट । लुङ् में अङ् (३१६) हो कर ॥ ३३४ ॥

३३५-वच उम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २० ॥

अङ् परे होता वच धातु को उम् का आगम होवे । मित् आगम अन्त्य अच् से
परे हो कर । अट्+व-उम् च्+अङ्+तिप्=अवोचत् । अवोचताम् । अवोचन् ।
अवोचत । अवोचेताम् । अवोचन्त । अवच्यत् । अवच्यत । आशिषि लिङ् में वच
आदि कई धातुओं के प्रयोग वैदिक विषय में कुछ विशेष होते हैं ॥ ३३५ ॥

३३६-लिङ्ग्राशिष्यङ् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८६ ॥

आशीर्वाद अर्थ में लिङ् परे ही तो वेद विषय में सामान्य धातुओं से अङ्
प्रत्यय होवे ॥ ३३६ ॥

३३७-छन्दस्युभयथा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११७ ॥

वेद विषय में जिन प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा कही है उन की आर्द्धधातुक
और जिन की आर्द्धधातुक संज्ञा कही है उन की सार्वधातुक संज्ञा भी होवे ।
प्रकृत में आशीर्वाद अर्थ में लिङ् की आर्द्धधातुक संज्ञा (८४) कह चुके हैं उस की
सार्वधातुक संज्ञा भी होवे (भा०-स्थागागमिवचिवदिशकिरुहयः प्रयोजनम्)
स्था, गा, गम, वच, वद, शक और रुह इन धातुओं से बहुधा आशिष् लिङ् में
अङ् होता है । यह नियम नहीं है कि इक्की धातुओं से होवे अन्य से नहीं (स्था)
उपस्थ+अङ्+यासुट्+मिप्=उपस्थेयम् (२४४) आकार लोप और सार्वधातुक
संज्ञा मान के इय् आदेश (८१) (गा) गै धातु, स्वादि गण में लिख चुके हैं
उसी की यहां जानो । उपगा+अङ्+यासुट्+अम्=उपगीयम् । पूर्वषत् (गम)
गम्+अङ्+इय्+मस्=गमेम । यहां लिङ् की सार्वधातुक संज्ञा होने से इय्
और अङ् की आर्द्धधातुक संज्ञा मान के गम् को छकारादेश (२७३) नहीं होता
(वच) वचम्+अङ्+यास्+मस्=वोचेम (विद) विद्+अङ्+इय्+मिप्=
विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् (शक्) शक्+अङ्+इय्+मिप्=शक्यम् (रुह)
रुह+अङ्+इय्+मिप्=रुहेयम् ॥ ३३७ ॥

३३८—दृशेरग्वक्तव्यः ॥

दृश् धातु से अक् प्रत्यय कहना चाहिये । दृश् + अक् + इय् + अम् = दृशेयम्, जो यहां (३३६) सूत्र से अङ् होता तो अकित् होने से अम् (२७८) होजाता इस लिये अक् पढ़ा है ॥

अथ शास्त्र्यन्ताः परस्मैपदिनः । इङ्त्वात्मनेपदी । अब शासु धातु पर्यंत परस्मैपदी कहते हैं परन्तु इङ् धातु एक आत्मनेपदी है [इण्] गती । एति । इतः ॥ ३३८ ॥

३३९—इणो यण् अ० ॥ ६ । ४ । ८१ ॥

इण् धातु को यण् आदेश हीवे अच् परे होतो । यन्ति । यह सूत्र इयङ् (१५८) का अपवाद है । इ + णल् = इयाय । यहां इकार को ऐकार वृद्धि और ऐको द्वित्व होकर इयङ् (१५३) होता है ॥ ३३९ ॥

३४०—दौर्घइणः किति ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६९ ॥

इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ आदेश हीवे कित् लिट् परे होतो । इ—अतुस् । इस अवस्था में यण् होकर । यण् को स्थानि रूप (२४५) मान कर द्वित्व होता है । ईयतुः । ईयुः । इययिथ । इयेथ । ईयथुः । ईय । इयाय । इयय । ईयिव । ईयिम । एतासि । एथति । ऐषति । ऐषाति । ऐषति । ऐषाति । अयति । अयाति । एतु । इतात् । इताम् । यन्तु (३३८) यण् । इहि । इतात् । इतम् । इत । अयानि । अयाव । अयाम् । ऐत् । ऐताम् । आयन् । ऐः । ऐतम् । ऐत । आयम् । ऐव । ऐम । इयात् । इयाताम् । इयुः । ईयात् (१६०) दीर्घ । ईयास्ताम् ॥ ३४० ॥

३४१—एतेर्लिङि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २४ ॥

उपसर्ग ने परे इण् धातु के अण् को ऋस्व हीवे कित् लिङ् परे ही तो । उदियात् । समियात् । अन्वियात् । सम् + आ + इ + यासुट् + तिप् = समियात् । यहां एकार अण् नहीं है इस लिये ऋस्व नहीं होता ॥ ३४१ ॥

३४२—इणो गालुङि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४५ ॥

इण् धातु को गा आदेश हीवे लुङ् लकार परे हो तो । गा होकर सिच् का लुक् (८९) सूत्र में गाति करके यही गा आदेश लिया जाता है । अगात् । अगाताम् । अगुः [इङ्] अध्ययने (पढ़ना) इस धातु के प्रयोग नित्य अधि उपसर्ग पूर्वक ही आते हैं । अधि + इ + त = अधीते । सवर्णदीर्घ एकादेश होता है । अधीयाते । अधीयते । इयङ् (१५८) अधीषे । अधीयाथे । अधीध्वे । अधीथे । अधीवहे । अधीमहे ॥ ३४२ ॥

३४३—गाङ् लिटि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४६ ॥

इङ् धातु को गाङ् आदेश होवे लिट् लकार की विवक्षा में। अधि+गा+एङ्=अधिजगे। यहां प्रथम आकार लोप (२४४) होकर स्थानिरूप (२४५) मान के द्वित्व होता है। अधिजगाते । अधिजगिरे । अधिजगिषे । अध्येतासे । यहां अधि के इकार की यण् हो जाता है । अध्येयते । अध्येषते । अध्येषाते । अध्येषते । अध्येषाते । अध्येषते । अध्येषाते । अधीताम् । अधीयाताम् । अधीयताम् । अध्ययै । अध्ययावहे । अध्ययामहे । अध्येत । अध्येयाताम् । यहां परत्व से प्रथम इयङ् (१५८) और पीछे आट् हो कर उस के साथ वृद्धि होती है । अध्येयत । अध्येयाः । अध्येयाथाम् । अध्येयध्वम् । अध्येयि । अध्येयवहि । अध्येयमहि । अधीयीत । अधीयीयाताम् । अधीयीरन् । अधीयीध्वम् । अधीयीय । अध्येयीष्ट । अध्येयीयास्ताम् । अध्येयीद्वम् ॥ ३४३ ॥

३४४—विभाषा लुङ्लृङोः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५० ॥

इङ् धातु को गाङ् आदेश विकल्प करके होवे लुङ् और लृङ् लकार परे हीं तो । गाङ् आदेश पक्ष में ॥ ३४४ ॥

३४५—गाङ्कुटादिभ्योऽञ्जिन्डित् ॥ अ० ॥ १ । २ । १ ॥

गाङ् और कुटादि धातुओं से परे जो जित् णित् भिन्न प्रत्यय वे ङित्वत् हो । यहां लुङ् में सिच् और लृङ् में स्य ङित्वत् होकर ॥ ३४५ ॥

३४६—घुमास्यागापाजहातिसां हलि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६६ ॥

घुसञ्जक (२४६) मा, स्था, गा, पा, ओहाक् और षो धातु के आकार की ईकारादेश होवे हलादि कित् ङित् आर्द्धधातुक परे हो तो । अध्यगीष्ट । अध्यगीषाताम् । अध्यगीषत । अध्यगीष्टाः । अध्यगीद्वम् । जिस पक्ष में गाङ् (३४४) न हुआ वहां । अध्यैष्ट । अध्यैषाताम् । अध्यैद्वम् । अध्यगीष्यत । अध्यगीष्येताम् । अध्यगीष्यन्त । अध्यैष्यत । [इक्] स्मरणे (स्मरण करना) यह भी धातु अधि उपसर्ग पूर्वक ही है इस में कारक विषयक (अधीगर्थद्व्येशां कर्मणि) सूत्र का प्रमाण है । अध्येति । अधीतः । अधीयन्ति । अध्येयि । अधीयाय । अधीयतुः । अधीयुः । अध्येतासि । अध्येयति । अध्येषति । अध्येषाति । अध्येषति ।

अध्येषाति । अध्येतु । अधीतात् । अधीताम् । अधीयन्तु । अधीहि । अध्ययानि ।
अध्ययाव । अध्ययाम् । अध्यैत् । अध्यायन् । अध्यैः । अध्यायम् । अधीयात् ।
अधीयाताम् । अधीयुः । अधीयात् । अधीयास्ताम् ॥ ३४६ ॥

३४७—वा०—इण्वदिक इति वक्तव्यम् * ॥

आर्द्धधातुक अधिकार में इक् धातु को इण् के तुल्य कार्य होवे अर्थात् लुङ् लकार में जो इण् धातु की गा आदेश (३४२) कहा है सो इक् को भी होवे ।
अध्यगात् । अध्यगाताम् । अध्यगुः । अध्येष्यत् [वी] गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसन-
खादनेषु (गति, व्याप्ति, गर्भ होना, इच्छा, फेंकना और खाना) वेति ।
वीतः । वियन्ति (१५८) इयङ् । विषि । विवाय । विव्यतुः । विव्युः । विवयिष्य ।
विवेद्य । वेता । वेष्यति । वैषति । वैषाति । वेषति । वेषाति । वयति । वयाति ।
वेतु । वीतात् । वीहि । वयानि । अवेत् । अवौताम् । अवियन् । अवेः । वीयात् ।
वीयाताम् । वीयुः । वीयास्ताम् । अवैषौत् । अवैषाम् । अवैषुः । अवेष्यत् । इस
वी धातु में मिला उर्द्धी अर्थों में ई धातु भी मानते हैं । एति । ईतः । इयन्ति ।
इयाय । ईयतुः । एता । एष्यति । ऐषति । ऐषाति [या] प्रापणे (प्राप्त होना)
याति । यातः । यान्ति । ययी । ययतुः । ययुः । ययिष्य । ययाय । यातासि । यास्यति ।
यासति । यासाति । यातु । अयात् । अयाताम् ॥ ३४७ ॥

३४८—लङ्ः शाकटायनस्यैव ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १११ ॥

आकारान्त धातु से परे जो लङ् लकार का भि उस को जुस् आदेश होवे
शाकटायन आचार्यही के मत में । अयुः (८३) पररूपएकादेश । अयाः । अया-
तम् । अयात । अयाम् । अयाव । अयाम् । यायात् । यायाताम् । यायास्ताम् ।
अयासीत् । अयासिष्टाम् । अयासिषुः । अयास्यत् [वा] गतिगन्धनयोः (गति
और सूचना) वाति । वातः । वान्ति । वासि । ववी । वातासि । वास्यति ।
वासति । वासाति । वातु । वाहि । अवात् । अवासीत् । अवास्यत् [भा] दीप्ती

* इस वार्त्तिक की भट्टोजिदीक्षित ने लट् लकार में लगा के और [अधियन्ति] प्रयोग इक् धातु को यण् (३३८) करके बनाया और पीछे यह भी लिखा है कि कोई लोग इस को आर्द्धधातुक विषय में कहते हैं उन के मत में (अधीयन्) होगा । सो यह मंहाभाष्य से विरुद्ध होने के कारण सामनीय नहीं भाष्यकार ने इस वार्त्तिक की [३४२] सूत्र पर लिखकर लुङ् लकार के उदाहरण दिये हैं और (३४२) सूत्र भी आर्द्धधातुक अधिकार में होने से लट् लकार में इक् धातु को इण्वत् कार्य कदापि नहीं होसकता फिर (अधियन्ति) प्रयोग सर्वथा अशुद्ध है ।

(प्रकाश) भाति । बभौ [ष्णा] शौचे । स्नाति । सन्नौ । स्नेयात् (२५२) स्नायात् ।
 अस्नासीत् [आ] पाके । श्रेयात् । आयात् [द्रा] कुत्सायां गतौ च (निन्दा और
 गति) द्रेयात् । द्रायात् [ष्ठा] भक्षणे (खाना) ष्ठाति । पष्ठी । श्रेयात् । ष्ठायात् ।
 [पा] रक्षणे । पायास्ताम् (२५२) सूत्र में पा धातु से पिबति का ग्रहण होने से इस
 धातु को एकारादेश (२५२) नहीं होता । अपासीत् (८८) सूत्र में भी पिबति
 का हो ग्रहण होने से सिच् लुक् नहीं होता [रा] दाने । राति [ला] आदाने ।
 लाति । लायात् [दाप्] लवने (काटना) दाति । दायास्ताम् । छु संज्ञा के
 (२४६) न होने से ईकार आदेश और । अदासीत् । सिच् लुक् (८८) नहीं होता
 [ख्या] प्रकथने (अच्छे प्रकार कहना) इस धातु के प्रयोग सार्वधातुक विषय
 में ही समझने चाहिये क्यों कि आर्द्धधातुक विषय में चक्षिङ् धातु को ख्याञ्
 आदेश (३१२) कह चुके हैं उसी के प्रयोग आते हैं । ख्याति । ख्येयात् । ख्यायात् ।
 [प्रा] पूरणे (तृप्त करना) प्राति । प्रेयात् । प्रायात् । अप्रासीत् [मा] माने
 (समाजाना) माति । ममौ । ममिथ । ममाथ । मातासि । मास्यति । मासति ।
 मासाति । मातु । माहि । अमात् । मेयात् (२४७) मेयास्ताम् । अमासीत् ।
 अमास्यत् [वच्] परिभाषणे (व्याख्यान करना) वक्ति । वक्तुः । वचन्ति । वक्षि ।
 वक्ष्यः । वच्मि । उवाच (२८२) संप्रसारण । जचतुः (२८३) जचुः । उवचिथ ।
 उवक्ष्य । वक्तासि । वक्ष्यति । वाक्षति । वाक्षाति । वक्तु । वग्धि । वचानि । अवक् ।
 अवक्ताम् । अवचन् । अवक् । वचात् । उचात् (२८३) उचास्ताम् । अवोचत् ।
 अङ् । और (३३५) उम् आगम । ये इण् आदि अनिट् परस्मैपदौ धातु समाप्त
 हुए [विद्] ज्ञाने ॥ ३४८ ॥

३४८—विदो लटो वा ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८३ ॥

विद् धातु से परे लट् लकार संबन्धी परस्मैपद संज्ञक प्रत्ययों के स्थान में
 णल् आदि ८ आदेश यथासंख्य और विकल्प करके होंगे । वेद । विदतुः । विदुः ।
 वेत्य । विदथुः । विद् । वेद । विह । विह्य । पक्ष में । वेत्ति । वित्तः । विदन्ति ।
 आम् प्रत्यय विधायक (२१३) सूत्र में विद् धातु अकारान्त निपातन भाष्यकार
 ने किया है आम् प्रत्यय के परे विद् धातु के अकार का लोप (१७२) हो कर
 स्थानिवत् होने से आम् प्रत्यय को मान कर गुण नहीं होता । विदाञ्चकार ।
 विदाञ्चक्रतुः । विदाञ्चक्रुः । पक्ष में । विवेद । विविदतुः । विविदुः । विवेदिथ ।
 वेदितासि । वेदिष्यति । वेदिषति । वेदिषाति । वेदति । वेदाति । वेत्तु । विस्तात् ।
 विस्ताम् ॥ ३४८ ॥

३५०-विदाङ्कुर्वन्तिवत्यन्यतरस्याम्* ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४१ ॥

लोट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में । विदाङ्कुर्वन्तु । विकल्प से निपातन किया है । विद् धातु से आम् प्रत्यय क्त्वा का अनुप्रयोग और उ प्रत्यय विकरण आदि निपातन से होते हैं । और पक्ष में । विदन्तु । भी होता है । विदि । विप्तात् । विप्ताम् । विप्ता । वेदानि । वेदाव । वेदाम । अवेत् । अविप्ताम् । अविदुः (१३४) भि को जुम् ॥ ३५० ॥

३५१-दक्ष ॥ अ० ॥ ८ । २ । ७५ ॥

धातु के पदान्त दकार की क आदेश वित्प कर के ङीवे सिप् पर होती । अवेः । क को विसर्जनीय । पक्षमें । अवेत् । अविप्ताम् । अविप्ता । अवेदम् । अविदुः । अविदुः । विद्यात् । विद्युः । विद्यास्ताम् । अवेदीत् । अवेदिष्टम् । अवेदिषुः । अवेदिष्वत् [अस] भुवि । यह धातु भूधातु के अर्थ में है । अस्ति ॥ ३५० ॥

३५२-असोरत्लोपः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १११ ॥

अम् प्रत्यय और अस् धातु के अकार का लोप होवे कित् डित् सार्वधातुका भरे होती । अस् + तस् = स्तः । सन्ति । असि (५४) रुः । स्थ । अस्मि । स्वः । आः ॥ ३५२ ॥

३५३-अस्तेभूः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५२ ॥

अस धातु को भू आदेश होवे सामान्य आर्द्धधातुका विषय में अर्थात् आर्द्धधातुका लकारों में भूधातु के ही प्रयोग होते हैं अस के नहीं । बभूव । बभूवतुः । बभूविष । भवितासि । भविष्यति । भाविष्यति । भाविष्यति । असति । असाति । अरुत् । असात् । अस्तु । स्तात् । स्ताम् । सन्तु (३५२) अस्-हि । यहाँ ॥ ३५३ ॥

३५४-वसोरेङ्गावभ्यासलोपश्च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११६ ॥

वु संज्ञका और अस धातु की एकारादेश और वु संज्ञक के अभ्यास का लोप होवे ङि पर होती । असधातु के अन्य अल् सकार के स्थान में एकारादेश होता

* इस सूच में जा इति शब्द पड़ा है उस से शब्द के स्वरूप का बोध होता है और इति शब्द का यही प्रयोजन सर्वत्र आता है । काशिका कार आदि और भट्टोजिदीक्षित ने लिखा है कि इति शब्द पढ़ने से पुरुष और वचन की विवेचना नहीं कि लोट् के प्रथम पुरुष बहुवचन का ही प्रयोग निपातन किया होवे किन्तु लोट् लकार के सब प्रयोगों में निपातन किया है । विदाङ्कुर्वन्तु । आदि भी प्रयोग होते हैं तो यह व्याख्यान माननीय नहीं है क्योंकि कि मूल और सहाभाष्य से विरुद्ध है । इस से अगले [अभ्युदायों] सूच में ऐसे ही आम् प्रत्ययान्त निपातन किये हैं वहाँ भी इति शब्द पड़ा है उस का व्याख्यान इन लोगों ने भी स्वरूप बोधक ही रक्खा है । इस से इन का व्याख्यान पूर्वापर विरुद्ध भी है ।

है पौष्टि एकारादेश को असिद्ध (४२) मान कर हि को धि (३००) और अकार का लोप (३५२) होता है। एधि । स्तात् । स्ताम् । स्त । असानि । असाव । असाम । लङ् में ईट (१३१) आसीत् । यहाँ भी तस् आदि में लोप के बलौय होने से अकारलोप (३५२) ही कर अजादि के न हाने से आट् (११८) नहीं प्राप्त है सो अकार लोप को असिद्ध (४२) मानकर आट् हो जाता है । आस्ताम् । आसन् । आसीः । आस्तम् । आस्त । आसम् । आस्व । आम्न । स्यात् । स्याताम् । स्युः । स्याः । भूयात् । भूयास्ताम् । अभूत् । अभूताम् । अभूवन् । अभविष्यत् । [मृजूष्] शुद्धी (पवित्रता) यह धातु ऊदित् है ॥ ३५४ ॥

३५५—मृजेष्टद्धिः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ११४ ॥

मृज धातु के इक् को वृद्धि होवे सामान्य प्रत्ययों के परे। ऋकार को आर् वृद्धि। मर्ष्टि (२३३) षत्व । मृष्टः । ॥ ३५५ ॥

३५६—वा०—इहान्ये वैयाकरणे मृजेरजादौ संक्रमे
विभाषा वृद्धिमारभन्ते॥

यह वार्त्तिक (इकीगुणवृद्धी) सूत्र पर है इस व्याकरण शास्त्र में बहुतेरे वैयाकरण लोग मृज धातु को अजादि कित् डित् प्रत्ययों के परे विकल्प कर के वृद्धि कहते हैं। मार्जन्ति । मृजन्ति । मार्जि । मृष्टः । मृष्ट । मार्ज्मि । मृज्वः । मृज्मः । समार्ज । समार्जतुः । समृजतुः । समार्जुः । समृजुः । ऊदित् होने से इट् का विकल्प (१४०) समार्जिथ । समार्ष्टि । समार्जिथुः । समृजथुः । समार्ज । समृज । समार्जि । समर्ज । समार्जिव । समृजिव । समृज्व । समार्जिम । समृजिम । समृज्म । मार्जितासि । मार्ष्टासि । मार्जिष्यति । मार्ज्यति । मार्जिषति । मार्जिषाति । मार्जति । मार्जाति । मार्जति । मार्जाति । मार्ष्टु । मृष्टात् । मृष्टाम् । मार्जन्तु । मृजन्तु । मृड्ढि । यहाँ षत्व होने के पश्चात् (२३३) जश्त्व ष्टुत्व होते हैं। मार्जानि । मार्जाव । मार्जाम् । अमार्ष्टि । अमृष्टाम् । अमार्जन् । अमृजन् । अमार्जम् । मृज्यात् । मृज्याताम् । मृज्यास्ताम् । अमार्जीत् । अमार्जिष्टाम् । अमार्जीत् । अमार्ष्टाम् । अमार्जुः । अमार्जिष्यत् । अमार्ज्यत् [रुदिर्] अशुवि-
मोचने (रोना) ॥ ३५६ ॥

३५७—रुदादिभ्यः सार्वधातुके ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७६ ॥

रुद, स्वप्, श्वस्, अन और जच इन पांच धातुओं से परे बलादि सार्वधातुक को इट् का आगम होवे । रोदिति । रुदितः । रुदन्ति । रोदिषि । रुदिथः ।

रुदिथ । रोदिमि । रुदिवः । रुदिमः । रुरोद । रुदतुः । रुदुः । रुरोदिथ ।
रोदितासि । रोदिष्यति । रोदिषति । रोदिषादि । रोदति । रोदाति । रोदितु ।
रुदिहि । रोदानि । रोदाव । रोदाम ॥ ३५७ ॥

३५८—रुदञ्च पञ्चस्यः ॥ अ० । ७ । ३ । ६८ ॥

रुद आदि उक्त पांच धातुओं से परे हलादि पित् अष्टक सार्वधातुक को ईट्
होवे । अरोदीत् । अरोदीः ॥ ३५८ ॥

३५९—अङ् गार्ग्यगालवयोः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६९ ॥

गार्ग्य और गालव आचार्यों के मत में रुद आदि पांच धातुओं से परे उक्त
सार्वधातुक को अट् का आगम होवे । यह ईट् और अट् ईट् के आगम का निषेध
है । अरोदत् । अरुदताम् । अरुदन् । अरोदः । अरुदितम् । अरुदित । अरोदम् ।
अरुदिव । अरुदिम । प्रकृति और प्रत्यय की विशेष अपेक्षा रखनेवाले अट् और
ईट् आगमों से अन्तरङ्ग होने के कारण यासुट प्रथम ही जाता है फिर ईट् और
अट् की प्राप्ति नहीं है । रुद्यात् । रुद्याताम् । रुद्यास्ताम् । इरित् होने से अङ्
विकल्प (१३८) अरुदत् । अरुदिताम् । अरुदन् । अरोदीत् । अरोदिष्टाम् । अरो-
दिषुः [जिष्वप] शये (सोना) स्वपिति (३५६) इट् । स्वपितः । स्वपन्ति । सुषाप
(२८२) संप्रसारण । सुषपतुः (२८३) सुषुपुः । सुषपिथ । सुषपथ । स्वप्तासि ।
स्वप्स्यति । स्वाप्सति । स्वाप्साति । स्वप्सति । स्वप्साति । स्वपति । स्वपाति ।
स्वपितु । स्वपितात् । स्वपिहि । अस्वपीत् (३५८) अस्वपत् (३५९) अस्वपिताम् ।
अस्वपन् । अस्वपीः । अस्वपः । अस्वपम् । स्वप्यात् । स्वप्याताम् । सुप्यात् ।
सुप्यास्ताम् (२८३) अस्वाप्सीत् । अस्वाप्ताम् । अस्वाप्सुः । अस्वाप्सीः । अस्वाप्तम् ।
अस्वाप्त । अस्वाप्सम् । अस्वाप्स । अस्वाप्स । अस्वप्स्यत् [श्वस] प्राणने (जपर
का श्वास) श्वसिति । श्वसितः । श्वसन्ति । श्व्वास । श्व्वासतुः । श्व्वासुः ।
श्व्वासिथ । श्वसितासि । श्वसिष्यति । श्वसिषति । श्वसिषाति । श्वसितु ।
श्वसिहि । अश्वसीत् । अश्वसत् । अश्वसीः । अश्वसः । श्वस्यात् । अश्वसीत्
(१६२) वृद्धि का निषेध । अश्वसिष्यत् [अन] च । यह धातु भी प्राणन अर्थ
में है । अनिति । आन । आनतुः । अनितु । आनीत् । आनत् । आनीः ।
आनः । अन्यात् । आनीत् । आनिष्टाम् । आनिष्यत् [जञ्] भक्षहसनयोः
(खाना और हंसना) जञ्जिति । जञ्जितः ॥ ३५९ ॥

३६०—जञ्जित्यादयः षट् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ६ ॥

जञ् धातु से ले कर वेवीङ् पर्यन्त सात धातुओं की अभ्यस्त संज्ञा होवे ।

इस सूत्र में अतद्गुण संविज्ञान बहुव्रीहि है । अर्थात् जच्च धातु जिन के आदि में ही ऐसे अन्य छः धातु और जच्च सातवां हुआ । अभ्यस्त का फल ॥ ३६० ॥

३६१—अभ्यस्तात् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ४ ॥

अभ्यस्त संज्ञक धातुओं से परे जो प्रत्यय का आदि भ्रकार उस को अत् आदेश होवे । यह अन्त आदेश का बाधक है । जक्षति । जक्षिषि । जजक्ष । जजक्षिष्य । जक्षितासि । जक्षिष्यति । जक्षिषति । जक्षिषाति । जक्षति । जक्षाति । जक्षितु । जक्षत् । जक्षिहि । अजक्षीत् । अजक्षत् । अजक्षिताम् । अजक्षुः (१३४) अभ्यस्त होने से जुस् । अजक्षीः । अजक्षः । जक्ष्यात् । जक्ष्याताम् । जक्ष्यास्ताम् । अजक्षीत् । अजक्षिष्यत् । ये रुदादि पांच धातु समाप्त हुए ॥

[जागृ] निद्राक्षये (जागना) इस धातु के अन्य ऋकार का लोप नहीं होता क्योंकि वह उपदेश में अतृनासिक नहीं पड़ा है । जागर्षि । जागृतः । जाग्रति । अभ्यस्त संज्ञा (३६०) होने से प्रत्ययादि भ्रकार को अत् । जागर्ति । जागृथः । जागृथ । जागर्षि । जागृवः । जागृतमः । लिट् में विकल्प से आम् (२१३) जगराञ्चकार । जागराञ्चभूव । जागरामास । पक्ष में यह धातु दो स्वर वाला है इस लिये प्रथम एकाच् अवयव जामात्र को द्वित्व होता है । जजागार ॥ ३६१ ॥

३६२—जाग्रोऽविचिखलुडित्यु ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८५ ॥

जागृ धातु को गुण होवे वृद्धिविषय और निषेध विषय में । परन्तु वि, चिण्, णल् और डित् प्रत्ययों के परे न होवे । वि कर के उणादि का विन् प्रत्यय लिया है । इस सूत्र से तीन प्रकार का नियम निकलता है । एक तो कित् डित् प्रत्ययों में गुण नहीं प्राप्त है वहां कित् में होना डित् में नहीं । विन् प्रत्यय में गुण प्राप्त है वहां न होना । जागृविः । चिण् और णल् को ङोङ् के अन्यत्र वृद्धि विषय में गुण होना वृद्धि नहीं । फिर चिण् और णल् में वृद्धि ही होती है । जजागरतुः । जजागरुः । जजागरिष्य । जागरितासि । जागरिष्यति । जागरिषति । जागरिषाति । जागर्तु । जागृतात् । जागृताम् । जाग्रतु । जागृहि । जागराणि । जागराव । जागराम । अजागः । अजागृताम् । अभ्यस्त होने से जुस् (१३४) ॥ ३६२ ॥

३६३—जुसि च ॥ अ० ॥ ७ । ३ ॥ ८३ ॥

अजादि जुस् परे ही तो इगन्त अङ्ग को गुण होवे । अजागरुः । यहां डित् होने से गुण नहीं प्राप्त है इसलिये यह सूत्र है । अजागः । अजागरम् । जागृयात् । जागृयाताम् । जागृयुः । अजादि के कहने से यहां जुस् में गुण नहीं होता ।

जागर्यात् । जागर्यास्ताम् । जागर्यासुः । लुङ् में । अट्-जागृ-इस्-ईट्-तिप् । इस अवस्था में जागृ धातु के ऋकार की यणादेश प्राप्त है उस का बाधक गुण (२१) प्राप्त और गुण का अपवाद वृद्धि (१५८) प्राप्त है उस का भी अपवाद गुण (३६२) होता है फिर अर् गुण हो कर हलन्त होने से वृद्धि (१३५) प्राप्त है उस का निषेध (१३६) होकर विकल्प से वृद्धि (१४४) प्राप्त है उस का बाधक नित्य वृद्धि (१८६) प्राप्त है उस का भी निषेध (१६२) होजाता है । अजागरीत् । अजागरिष्टाम् । अजागरिष्यत् [दरिद्रा] दुर्गती (बुरा हाल) दरिद्राति ॥ ३६३ ॥

३६४—इद्दरिद्रस्य ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११४ ॥

हलादि कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो दरिद्रा धातु की इकारादेश हो । अस्य अल् आकार की होता है । दरिद्रितः ॥ ३६४ ॥

३६५—आभ्यस्तयोरातः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११२ ॥

आ प्रत्यय और अभ्यस्त संज्ञक धातुओं के आकार का लोप हो कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो । दरिद्रति । दरिद्रासि । दरिद्रिथः । दरिद्रिथ । दरिद्रामि । दरिद्रिवः । दरिद्रिमः (१६८ । १७०) सूत्रों से दरिद्रा धातु की अनेकाच् मान कर आम् प्रत्यय होता है । दरिद्राञ्चकार । दरिद्राम्यभूव । दरिद्रामास । वेद में आम् प्रत्यय नहीं होता वहां । ददरिद्रौ । ददरिद्रतुः । ददरिद्रुः ॥ ३६५ ॥

३६६—वा०—दरिद्रांतेराद्धधातुके लोपो वक्तव्यः ॥

आर्द्धधातुक प्रत्ययों की विवक्षा में दरिद्रा धातु के आकार का लोप होवे । प्रयोजन यह है कि इट् और अजादि कित् ङित् आर्द्धधातुक में आकार लोप (२४४) होता है इस धार्मिक से हलादि कित् ङित् आर्द्धधातुक में भी हो जाता है । ददरिद्रिथ । दरिद्रितासि । दरिद्रिथति । दरिद्रिषाति । दरिद्रातु । दरिद्रितात् । दरिद्रिताम् । दरिद्रतु । दरिद्रिहि । दरिद्राणि । अदरिद्रात् । अदरिद्रिताम् । अदरिद्रुः । दरिद्रियात् । दरिद्रियाताम् । दरिद्रियुः । दरिद्र्यात् । दरिद्र्यास्ताम् । यहां हलादि कित् आर्द्धधातुक में लोप (३६६) होता है ॥ ३६६ ॥

३६७—वा०—अद्यतन्यां वेति वक्तव्यम् ॥

लुङ् लकार में दरिद्रा धातु के अकार का लोप विकल्प करके होवे । पूर्व आचार्यों के मत में अद्यतनौ संज्ञा लुङ् लकार की है । अदरिद्रीत् । अदरिद्रिष्टाम् । अदरिद्रासीत् (२५२) अदरिद्रिष्यत् ॥ ३६७ ॥

३६८—का०—न दरिद्रायके लोपो दरिद्राणे च नेष्यते ।

दिदरिद्रासतीत्येके दिदरिद्रिषतीति वा ॥

आर्द्धधातुक में सामान्य करके जो लोप (३६५) कहा है सो । दरिद्रायकः ।
यहां क्तदन्त खुल् प्रत्यय में तथा । दरिद्रायम् । यहां ल्युट् प्रत्यय में आकार लोप
न होवे और सन् प्रत्यय के परे विकल्प करके होवे । दिदरिद्रिषति । दिदरिद्रासति ।
[चकास्] दीप्ती (प्रकाश)-चकास्ति । चकास्तु । चकासति । चकासांचकार ।
(१७०) आम् । चकासास्वभूव । चकासामास । चकासितासि । चकासिष्यति ।
चकासिषति । चकासिषाति । चकास्तु । चकासतु । चकास्-हि । यहां प्रथम हि
को धि आदेश (३००) हो कर धकार के परे स लोप (१११) हो जाता है ।
चकाधिचकासानि । अचकास्-तु । यहां संयोगान्त तकार का लोप हो कर ॥ ३६८ ॥

३६९—तिष्यनस्तेः ॥ अ० ॥ ८ । २ ॥ ७३ ॥

अस धातु को छोड़ के अन्य धातु के पदान्त सकार को दकार आदेश होवे
तिप् परे होतो । अचकात् । अचकाद् । अचकास्ताम् । अचकास्तुः ॥ ३६९ ॥

३७०—सिप्पिधातोर्वा ॥ अ० ॥ ८ । २ । ७४ ॥

पदान्त धातु के सकार को विकल्प करके र हो सिप् परे हो तो । पक्ष में
पूर्व सूत्र से दकार होता है । अचकाः । अचकात् । चकास्यात् । चकास्यास्ताम् ।
अचकासीत् । अचकासिष्टाम् । अचकासिष्यत् [शासु] अनुशिष्टौ (शिक्षा देना)
शास्ति ॥ ३७० ॥

३७१—शासद्दङ्हलोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३४ ॥

शास धातु की उपधा को इकार आदेश होवे अङ् और हलादि कित् डित्
आर्द्धधातुक परे होतो । शिष्टः (२८४) पत्व । शासति । शास्सि । शिष्ठः । शिष्ठ ।
शास्सि । शिष्वः । शिषः । शशास । शशासतुः । शशासुः । शासितासि । शासिष्यति ।
शासिषति । शासिषाति । शास्तु । शिष्टात् । शिष्टाम् । शासतु ॥ ३७१ ॥

३७२—शाहौ ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३५ ॥

शास धातु को शा आदेश होवे हि परे हो तो । शा आदेश अनेकाल् होने
से संपूर्ण के स्थान में होता है । शा आदेश को असिद्ध (४२) मान कर हि को धि
आदेश (३००) होजाता है । शाधि । शिष्टात् । शिष्टम् । शिष्ट । शासानि । अशात्
(३६९) अशिष्टाम् । अशास्तुः । अशात् । अशाः (३७०) शिष्यात् । शिष्याताम् ।
शिष्यास्ताम् । लुङ् में (२५६) सूत्र से अङ् होकर इकार (३७१) अशिषत् ।
अशिषाताम् । अशिषन् । अशासिष्यत् । इति विदादय उदात्ताः परस्मैपदिनः ।

ये विद् आदि सेट् परस्मैपदी धातु हैं परन्तु स्वप् धातु अनिट् है । अब आगे पांच धातु वैदिक विषयक कहते हैं उन के प्रयोग लोक में नहीं आते [दीधीङ्] दीप्ति देवनयोः (प्रकाश और क्रीड़ा आदि) [वेवीङ्] वेतिना तुल्ये । वीगति व्याप्ति० इस लिखित धातु के अर्थों में वेवीङ् धातु भी है । दीधीते । दीध्याते । (१५६) यण् । दीध्यते । दीधीषे । दीध्याषे । दीधीध्वे । दीध्ये । दीधीवहे । दीधीमहे । वेवीते । वेव्याते । दिदीध्वे । वेद में निषेध होने के कारण आम् प्रत्यय (१६८) लिट् में नहीं होता । दिदीध्वति । दिदीध्विरे ॥ ३७२ ॥

३७३—यौवर्णयोर्दीधीवेव्योः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५३ ॥

दीधी और वेवी धातु के अन्त्य वर्ण का लोप होवे यकारादि और इवर्ण पर ही तो दिदीधिषे । विवीव्ये । विवीविषे । दिदीधिवहे । विवीविवहे । दीधितासे (५२) गुण निषेध । वीधितासे । दीधिष्यते । दीधिषतै । दीधिषाते । दीध्यतै । दीध्याते । दीधीताम् । दीध्यै । अदीधीत । दीधीत । दीधिषाट् । अदीधिष्ट । अदीधिष्यत । उदात्तावात्मनेपदिनौ । ये दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथ त्रयः परस्मैपदिनः [वस, सस्ति] स्वप्ने (सोना) सस्ति । सस्तः । ससन्ति । सस्सि । ससास । सेसतुः । ससितासि । ससिष्यति । सासिषति । सासिषाति । सतु । असत् (३६८) असस्ताम् । अससन् । असः । असत् (३७०) अससम् । सस्यात् । सस्याताम् । सस्युः । सस्यास्ताम् । असासीत् । अससीत् । अससिष्यत् । सस्ति धातु में इदित् होने से नुम् । संस्त—ति । इस अवस्था में संयोगादि सकार का लोप (२१०) होकर हल से परे तकार लोप (२७२) होता है । सन्ति । सन्तः । संस्तन्ति । सन्ति । सन्त्यः । सन्त्य । सन्ति । सन्त्व । सन्त्वा । ससंस्त । ससंस्तिथ । संस्तितासि । संस्तिष्यति । संस्तिषति । संस्तिषाति । सन्तु । संस्तात् । संस्ताम् । संस्तन्तु । असन् । असन्ताम् । असंस्तन् । असन् । संस्यात् । संस्याताम् । संस्यास्ताम् । असंस्तीत् । असंस्तिष्टाम् । असंस्तिष्यत् [वश] कान्तौ (इच्छा वा शोभा) वष्टि (२३३) षत्व । उष्टः (२८६) सम्प्रसारण । उशन्ति । वसि । उवठः । उवष्ट । वशि । उवशः । उवशः । उवाश (२८२) ऊशतुः (२८३) ऊशः । उवशिथ । वशिता । वशिष्यति । वाशिषति । वाशिषाति । वष्टु । उष्टात् । उष्टाम् । उशन्तु । उड्डि । वशानि । अवट् । औष्टाम् । औशन् । अवशम् । उश्यात् । उश्याताम् । उश्यास्ताम् । अवाशीत् । अवशीत् । अवशिष्यत् । ये वस आदि तीन धातु परस्मैपदी समाप्त हुए ॥

[चर्करीतञ्च] इस निर्देश से यङ्लुगन्त धातुओं से परस्मैपद और शप् का लुक् होता है । सो यङ्लुगन्त प्रक्रिया का विषय है [नुङ्] अपनयने (दूरकरना)

ऋते । ऋवाते । ऋषे । जुऋवे । जुऋविषे । जुऋविद्वे । जुऋविध्वे । ऋतासे ।
ऋष्यते । ऋषते । ऋषाते । ऋताम् । ह्वे । अऋत । ऋवीत । ह्वीषीष्ट । अह्वीष्ट ।
अह्वीष्यत । अनुदात्त आत्मनेपदी । यह धातु अनिट् आत्मनेपदी है ॥

इतिलुग्विकरणा अदादयः समाप्ताः ॥

यह लुक् विकरण वाला अदादि गण समाप्त हुआ ॥

अथ जुहोत्यादिगणः ॥

[हु] दानादनयोः । आदानेचत्येके (देना, खाना और ग्रहण करना) यहाँ दान अर्थ से अग्नि में हवन करना भी लिया जाता है । और इस धातु को भाष्यकारने तृप्ति अर्थ में भी माना है ॥ ३७३ ॥

३७४—जुहोत्यादिभ्यः श्लुः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७५ ॥

हु आदि धातुओं से शप् के स्थान में श्लु होवे । श्लु संज्ञा भी प्रत्यय के अदर्शन की ही होती है इस कारण शप् का लोप हो जाता है । हु-तिप् । यहाँ ॥ ३७४ ॥

३७५—श्लौ ॥ अ० ॥ ६ । १ । १० ॥

अनभ्यास धातु के प्रथम एकाच् अवयव और अजादि धातु के द्वितीय एकाच् अवयव को द्वित्व हो श्लु परे हो तो । जुहोति । जुहुतः । अभ्यस्त (३६०) होने से प्रत्ययादि भ् को अत् (३६१) और यण् (३६१) हो कर । जुह्वति । जुह्वीषि । जुहुयः । जुहुय । जुह्वीषि । जुह्वः । जुहुमः ॥ ३७५ ॥

३७६—बहुलं छन्दसि ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७६ ॥

वेद विषय में शप् के स्थान में श्लु आदेश बहुल करके होवे प्रयोजन यह है । हवति । भरति । आदि भी प्रयोग हो जावे ॥ ३७६ ॥

३७७—भौऋभृहुवां श्लुवच्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३६ ॥

भौ, ऋ, भृ और हु धातुओं से आम् प्रत्यय विकल्प करके होवे लोक विषय में लिट् लकार परे हो तो और आम् के परे श्लुवत् कार्य्य द्विवचन भी होवे । जुहवाञ्चकार । जुहवाञ्चक्रतुः । जुहवाञ्चभूव । जुहवामास । होतासि । ह्यीषति । ह्यीषति । ह्यीषति । जुहवति । जुहवाति । हवति । हवाति । जुहोतु । जुहुतात् । जुह्वतु । जुहुषि (३००) हि को षि । जुह्वानि । अजुहोत् । अजुहुताम् । अजुह्वुः । (१३४) जुस् हो कर गुण (३६३) जुहुयात् । जुहुयाताम् । जुहुयुः । ह्यात् । (१६०) दीर्घ । अह्वीषीत् (१५८) वृद्धि । अह्वीषाम् । अह्वीषुः । अह्वीष्यत् [जिभी] भये (डरना) जि की इत् संज्ञा (१५०) विभेति ॥ ३७७ ॥

परीष्यति । परिष्यति । पारीषति । पारीषाति । पारिषति । पारिषाति । परीषति ।
परीषाति । परिषति । परिषाति । पिपरति । पिपराति । पिपर्त्तु । पिपृक्षात् ।
पिपृक्षाम् । पिपुरतु । पिपृर्धि । पिपराणि । पिपराव । पिपराम । अपिपः ।
अपिपृक्षाम् । अपिपरुः । यहां अभ्यस्त संज्ञा होने से जुस् (१३४) हो कर गुण (३६३)
होता है । अपिपः । अपिपृर्त्तम् । अपिपृर्त्त । अपिपरम् । अपिपूर्व । अपिपूर्म ।
पिपूर्यात् । पिपूर्याताम् । पूर्यात् । पूर्यास्ताम् । यहां भी (३८०) उत्त्व हो कर दीर्घ
(१६७) होता है । अपारीत् । अपारिष्टाम् । अपरीष्यत् । अपरिष्यत् । ह्रस्वान्तोऽ-
यमित्येके । किन्ही लोगों के मत में यह पृ धातु ह्रस्व ऋकारान्त है । पिपर्त्ति ।
पिपृतः । यहां दीर्घ ऋकार के न होने से उत्त्व नहीं होता पिप्रति । पपार । पप्रतुः ।
पप्रुः । पपरुः । पर्त्ता । ह्रस्वान्त पच्च में अनिट् है । परिष्यति (२३८) इट् ।
पिपृयात् । प्रियात् (२३८) प्रियास्ताम् । अपार्षीत् । अपार्ष्टीम् । अपरिष्यत्
[डुभृज्] धारणपोषणयोः । डु कौ इत्संज्ञा (१५०) ॥ ३८१ ॥

३८२—भृजामित् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७६ ॥

भृज्, माङ् और ओहाक् इन तीनों धातुओं के अभ्यास को इकार आदेश
होवे श्लु परे हो तो । विभर्ति । विभृतः । विभ्रति । विभ्रते । विभ्राते । विभ्रते ।
विभ्रध्वे । विभराञ्चकार (३७७) आम्, प्रत्यय और आम्, के परे श्लुवत् होने
से द्वित्व होता है । पच्च में । बभार । बभ्रतुः । बभर्थ (१४८) इट् का निषेध ।
बभ्रव । बभ्रम । भर्त्तासि । भरिष्यति । भार्षति । भार्षाति । विभरति । विभराति ।
विभर्त्तु । विभ्रहि । विभराणि । अविभः । अविभ्रताम् । अविभरुः । विभ्रयात् ।
विभ्रयाताम् । भ्रियात् । भ्रियास्ताम् । भृषीष्ट (२४०) अभार्षीत् । अभृत ।
अभरिष्यत् । अभरिष्यत [माङ्] माने शब्दे च (तोल और शब्द) ॥ ३८२ ॥

३८३—ई हल्यघोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११३ ॥

सुसंज्ञक धातुओं को छोड़ के आ और अभ्यस्त संज्ञक धातुओं के अकार को
ईकारादेश होवे हलादि कित्छित् सार्वधातुक परे हो तो । मिमीते । मिमाते ।
मिमते । यहां अजादि सार्वधातुक में आकार लोप होजाता है और अभ्यास को
इकारादेश (३८२) होता है । मिमीधे । मिमाधे । ममे । ममाते । ममिरे । माता-
से । मास्यते । मासतै । मासातै । मिमीताम् । मिमाताम् । मिमताम् । मिमै ।
अमिसीत । मिमीत । मिमीयाताम् । मासीष्ट । अमास्त । अमास्यत [ओहाङ्]
गतौ । माङ् के समान इस के भी प्रयोग होते हैं । जिहीते । जिहाते । जिहते ।
जहे । जहाते । जहिरे । हातासे । हास्यते । हासतै । हासातै । जिहीताम् ।

अजिहीत । जिहीत । हासीट् । अहास्त । अहास्यत् । अनुदात्तावात्मनेपदीनी ये दोनों धातु अनिट् आत्मनेपदी हैं [ओहाक्] त्यागे । यह परस्मैपदी है (३८२) सूत्र यहाँ नहीं लगता क्यों कि यहाँ से पूर्व ही सृज् आदि तीन धातु पूरे हो गये । जहाति ॥ ३८३ ॥

३८४—जहातेश्च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११६ ॥

हन्तादि कित् ङित् सार्वधातुक परे हो तो जहाति धातु के आकार की इकार आदेश विकल्प करके होवे । और पञ्च में ईकार (३८३) होता है । यह सूत्र (३८३) सूत्र का अपवाद होने से प्राप्त विभाषा है । जहितः । जहीतः । जहति । जहासि । जहियः । जहीयः । जहिय । जहीय । जहामि । जहिवः । जहीवः । जह्विमः । जहीमः । जही । जहतुः । जहिय । जहाय । हातासि । हास्यति । हासति । हासाति । जहाति । जहातु । जहितात् । जहीतात् । जहिताम् । जहीताम् । जहतु ॥ ३८४ ॥

३८५—आच हौ ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११७ ॥

जहाति धातु की आकारादेश ही हि परे हो तो और चकार से इत् और ईत् भी होवे । जहाहि । जहिहि । जहीहि । जहानि । अजहात् । अजहिताम् । अजहीताम् । अजहुः ॥ ३८५ ॥

३८६—लोपो यि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११८ ॥

यकारादि सार्वधातुक परे हो तो जहाति धातु के आकार का लोप होवे । जह्यात् । जह्याताम् । जह्युः । हियात् (२४७) हियास्ताम् । अहासीत् (२५१) अहासिष्टाम् । अहास्यत् [हुदाज्] दाने (देना) ददाति । दत्तः । यहाँ (३८३) सूत्र में सुसंज्ञक धातुओं की ईकारादेश का निषेध होने से आकार लोप (३६५) होता है । ददति । ददासि । दद्यः । दद्य । ददामि । दद्वः । ददुमः । दत्ते । ददाते । ददते । ददुध्वे । ददे । ददौ । ददतुः । ददे । ददाते । दातासि । दातासे । दास्यति । दास्यते । दासति । दासाति । दासतै । दासातै ॥ ३८६ ॥

३८७—घोर्लोपो लेटि वा ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७० ॥

सुसंज्ञक धातुओं के आकार का लोप विकल्प करके होवे लेट् लकार परे होता । ददति । ददाति । ददत् । ददात् । यहाँ आट् के आगम पञ्च में लोप होने पर भी । ददाति । होता है जो लोप न कहते तो अट् आट् दोनों पञ्च में । ददाति । प्रयोग वनता । और विकल्प कहने से यह प्रयोजन है कि किसी की

ऐसी शंका न हो कि । ददाति । प्रयोग मिल्य प्राप्त है उस का लोप कहने से बाधक होगा । ददातु । दत्तात् । दत्ताम् । ददतु । देहि (२५४) एत्वाभ्यास लोप । ददानि । अदत्ताम् । अददुः । दद्यात् । दद्याताम् । दद्युः । देयात् (२४७) घु संज्ञा होने से एत् । देयास्ताम् । अदात् (८६) सिच् लुक् । अदाताम् । अदुः । दत्ताम् । ददाताम् । ददताम् । दत्स्व । ददे । अदत्त । ददौत । दासीष्ट । अदित । (२६३) इत्व और कित्व । अदिषाताम् । अदिषत । अदास्यत् । अदास्यत [डुधाञ्] धारणपोषणयोः । इस के प्रयोग के डुदाञ् के तुल्य जानो । दधाति ॥ ३८७ ॥

३८८-दधत्तस्योश्च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३८ ॥

हित्व किये भूषन्त धा धातु के वश् को भष् आदेश होवे । त, थ, स् और ध्व परे हों तो । यहां अनभ्यास के आकार का लोप (३६५) किये पश्चात् अभ्यास के दकार को धकार हो जाता है । धत्ता । दधति । दधासि । धत्यः । धत्य । दधामि । दध्वः । दध्वः । धत्ते । दधाते । दधते । धत्ते । धदध्वे । दधौ । दधतुः । धातासि । धातासे । धास्यति । धास्यते । धासतै । धासातै । धासति । धासाति । दधति (३८७) दधाति । दधत् । दधात् । दधातु । धत्तात् । धत्ताम् । दधतु । धेहि (२५४) दधानि । धत्ताम् । दधाताम् । धत्स्व । धदध्वम् । अदधात् । अधत्ताम् । अदधुः । अधत्त । अदधाताम् । अदधत । अधत्याः । अधदध्वम् । दध्यात् । दधौत । धेयात् (२४७) अधात् । अधाताम् । अधुः (८६) अधित (२६३) अधिषाताम् । अधिषत । अधास्यत् । अधास्यत । अनुदात्तावुभयतो भाषी । ये दोनों धातु अनिट् उभयपदी हैं ॥

अथ त्रयः स्वरितेः । अब तीन धातु स्वरिते (उभयपदी) कहते हैं [णिजिर्] शौचपोषणयोः (शुद्धि और पुष्टि) ॥ ३८८ ॥

३८९-निजां चयाणां गुणः प्रलौ ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७५ ॥

निज आदि (निज्, विज्, विष्) तीन धातुओं के अभ्यास को गुण होवे प्रलु परे हो तो । नेनेक्ति । यहां तिप् के आश्रय से अनभ्यास को भी गुण होता है । नेनेक्तिः । नेनिजति । नेनेक्षि । नेनिकथः । नेनिकथ । नेनेज्मि । नेनिज्वः । नेनिज्मः । नेनेक्ते । नेनिजाते । नेनिजते । निनेज । निनिजतुः । निनिजे । निनिजाते । नेक्तासि । नेक्तासे । नेक्ष्यति । नेक्ष्यते । नेक्षति । नेक्षाति । नेक्षतै । नेक्षातै । ॥ ३८९ ॥

३९०-नाभ्यस्तस्याचि प्रिति सार्वधातुके ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ८७ ॥

अभ्यस्त संज्ञक धातुओं को गुण न होवे अजादि पित् सार्वधातुक परे हो तो । यह सूत्र (५१) सूत्र का अपवाद है अर्थात् लघूपध गुण का निषेध है ।

नेनिजति । नेनिजाति । नेनिजत् । नेनिजात् । नेनिजतै । नेनिजातै । नेनेक्तु ।
 नेनिन्धि । नेनिजानि । नेनिक्ताम् । नेनिजाताम् । नेनिजै । नेनिजावहै । अनेनेक् ।
 अनेनिक्ताम् । अनेनिजुः । अनेनेक् । अनेनिजम् (३६०) अनेनित्त । अनेनिजाताम् ।
 अनेनिजत । नेनिज्यात् । नेनिजीत । निज्यात् । निज्यास्ताम् । निज्यौष्ट ।
 (१६३) अनिजत् (१३८) अनैजौत् । अनैक्ताम् । अनित्त । अनिजाताम् ।
 अनेच्यत् । अनेच्यत [विजिर्] पृथग्भावे (अगल होना) णिज धातु के समान
 सिद्धि । वेवेक्ति । वेवेक्तुः । वेवेक्ते । वेविजाते । विवेज । विविजतुः । विवेजिथ ।
 विविजे । वेक्तासि । वेक्तासे । वेविजति । वेविजाति । वेविजतै । वेविजातै । वेवेक्ता
 वेविग्धि । वेविजानि । वेवेक्ताम् । वेविजै । अवेवेक् । अवेवेक्ताम् । अवेविजुः ।
 अवेविजम् । वेविज्यात् । वेविजीत । विज्यात् । विज्यौष्ट (१६३) अविजत् । अवेजौत् ।
 अविक्त । अवेच्यत् । अवेच्यत [विषट्] व्याप्ती (व्यापक होना) पूर्ववत् । वेवेष्टि ।
 वेविष्टः । वेविषति । वेवेचि । वेविष्टे । वेविषाते । वेविषते । विवेष । विविषे ।
 वेष्टासि । वेष्टासे । वेच्यति । वेच्यते । वेजति । वेचाति । वेजतै । वेचातै । वेवि
 षति । वेविषाति (३६०) गुण निषेध । वेवेष्टु । वेविष्टात् । वेविष्टाम् । वेविषतु
 वेविष्ट्वि । वेविषानि । वेविष्टाम् । वेविषाताम् । वेविषताम् । वेविष्ट्वम् । अवे
 वेष्ट् । अवेविष्टाम् । अवेविषुः । अवेविषम् । अवेविष्ट । अवेविषाताम् । अवेविषत
 वेविष्यात् । वेविषीत । विष्यात् । विष्यास्ताम् । विज्यौष्ट (१६३) विज्यौयास्ताम्
 अविषत् (२१७) अविचत (२०७) अविचाताम् (२०८) अविचन्त । अवेच्यत्
 अवेच्यत । ये णिज् आदि अनिट् उभयपदी तीन धातु समाप्त हुए ॥

अथाऽऽगणन्तात्परस्मैपदिनश्चान्दसाद्यैकादश । अब इस गण के अन्त 'तव
 परस्मैपदी वेद विषयक ११ ग्यारह धातु कहते हैं [छ] चरणदीप्त्योः (अच्छे
 प्रकार चलना और प्रकाश) ॥ ३६० ॥

३६१—बहुलं कुन्दसि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७८ ॥

वेद विषय में श्लु परे हो तो अभ्यास को इकारादेश बहुल करके होवे
 जिघर्षिं । जघर्षिं । जिघृतः । जघृतः । जिघ्रति । जिघर्षिं । जघार । जघ्रतुः
 घर्षासि । घरिष्यति (२३८) यह नियम नहीं है कि केवल वैदिक प्रयोगों में लो
 वेद के सामान्य सूत्र लगे किन्तु केवल एक विषय के सामान्य विषय में नहीं लगते
 घर्षति । घर्षाति । जिघ्रति । जिघ्राति । जघ्रति । जघ्राति । जिघर्षुं । जघर्षुं
 अजिघः । अजघः । अजिघरुः । जिघ्रयात् । घ्रियात् (२३६) अघर्षीत् । अघरिष्य
 [छ] प्रसह्यकरणे (छठ करना) ॥ ३६१ ॥

३८२—वा०—हृग्रहोश्चन्द्रसि हस्य भत्वम् ॥

हृ और ग्रह धातु के हकार की भकारादेश होवे वेद विषय में ॥ जिभर्त्ति । जिभर्त्ति । जभार । जहार । भर्त्ता । भरिष्यति । भार्षति । भार्षति । जिभर्त्तु । जिभर्त्तु । जभ्रतु । जभ्रहि । अजभः । अजभ्रताम् । अजभरुः । जभ्रयात् । भ्रियात् । अभर्षीत् । अभरिष्यत् । सर्वत्र वैदिक प्रयोगों में यह बात समझ लेनी चाहिये कि वेद में जिस प्रकार का प्रयोग जिस धातु का आजाता है उस के अनुकूल सूत्र वार्त्तिकों से सिद्धि समझ ली जाती है कुछ सूत्रों वा वार्त्तिकों के अनुकूल सब वैदिक प्रयोग नहीं लिखने चाहिये इस लिये यहां इन धातुओं के प्रयोग सूक्ष्म ही लिखते हैं [ऋ, रु] गतौ । ऋ धातु की द्वित्व होने पश्चात् अभ्यास के ऋकार को अकार (१०६) हो कर (३८१) सूत्र से अभ्यास की इकार होजाता फिर (३७८) सूत्र में अर्त्ति ग्रहण सामर्थ्य से यह धातु लोक में भी समझा जाता है । सो इकारादेश भी नित्य होता है । फिर । इ+ऋ+तिप्=इयत्ति (१५३) अभ्यास की इयङ् और अनभ्यास की गुण हो जाता है । इयृतः । इयृति । आर । आरतुः । आरिष्य (२५८) अर्त्तासि । अरिष्यति । आर्षति । आर्षति । इयरति । इयराति । इयर्त्तु । इयृतात् । इयृताम् । इयृतु । इयृहि । इयराणि । इयरावा । इयराम । ऐयः । ऐयृताम् । ऐयरुः । ऐयः । ऐयृतम् । ऐयृत । ऐयरम् । ऐयृष ऐयृम । इयृयात् । अर्यात् (२५४) आरत् । आरताम् (२५६ । २५७) आरिष्यत् । ससर्त्ति । सिसर्त्ति । इत्यादि । प्रादयश्चत्वारोऽनुदात्ताः । ये ष्ट आदि चार धातु अनिट् हैं [भस] भर्त्तनदौपत्योः (धमकाना और प्रकाश) विभस्ति । वभस्ति ॥ ३८२ ॥

३८३—वसिभसोर्हलि च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०० ॥

वस और भस धातु के उपधा अकार का लोप होवे हलादि और अजादि कित् ङित् प्रत्यय परे हीं ती वेद विषय में । वभ्+स्+तस्=वब्धः (१४२) वप्सति । वभास । विभस्तु । वब्धाम् । वभसानि । अबिभः । अबिब्धाम् । अबिभस्तु । वप्स्यात् । वप्स्याताम् । भस्यात् । भस्यास्ताम् । अभसीत् । अभसीत् । अभसिष्यत् । [कि] ज्ञाने । चिकेति । चिकितः । चिकयति । चिकयाति । चिकेतु । चिकिहि । चिकयानि । अचिकेत् । अचिकयुः । चिकियात् । कौयात् । अकौषीत् । यह धातु अनिट् है [तुर] त्वरणे (शीघ्रता) तुतोर्त्ति । तुतूर्त्तः । तुतुरति । तुतुरति । तुतुराति (३८०) तुतोर्त्तु । तुतुराणि । अतुतोः । अतुतुरुः । तुतूर्यात् । तूर्यात् । अतोरीत् [धिष] शब्दे । दिधिष्टि । दिधिष्टः । दिधिषति । अदिधेष्ट [धन] धान्ये । दिधन्ति । दधन्ति । दधनति । दधान । दधनतुः । धनितासि । धनिष्यति ।

दधनति । दधनाति । धानिषति । धानिषाति । दिधन्तु । दिधनानि । अदि-
धन् । अदिधन्तुः । दधन्यात् । धन्यात् । अधानीत् । अधनीत् । अधनिष्यत् [जन]
जनने । जजन्ति ॥ ३८३ ॥

३८४—जनसनखनां सञ्भ्रालोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४२ ॥

जन, सन और खन धातुओं के अन्त को आकारादेश होवे भलादि सन् और
भलादि कित् डित् परे हीं तो जजातः । जजति (२१४) पश्चात् न को ज् झुत्व
होता है । जजंसि । जजाथः । जजन्मि । जजान । जजतुः (२१४) जानिषति ।
जानिषाति । जजनति । जजनाति । जजन्तु । जजातात् । जजाहि ॥ ३८४ ॥

३८५—वा छन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ८८ ॥

वेद विषय में सिप् के स्थान में हि आदेश विकल्प करके पित् होवे जिस पक्ष
में पित् होता है वहां । जजहि । आकार नहीं होता । जजनानि । अजजन् ।
अजजाताम् । अजजुः । अजजनम् । जजायात् । जजन्यात् (१८५) अजानीत् ।
अजनीत् । ये तुर् आदि धातु सेट् परस्मैपदी हैं [गा] स्तुतौ (प्रशंसा) जिगाति ।
जिगीतः जिगति (३६५) जगौ । गातासि । गास्यति । गासति । गासाति ।
जिगातु । जिगीहि । जिगाहि । अजिगात् । अजिगीताम् । अजिगुः । जिगीयात् ।
गायात् । अगासीत् । अगास्यत् । यह धातु अनिट् परस्मैपदी है ॥

इति ह्रुविकरणो जुहोत्यादिगणः समाप्तः ॥

॥ अथ दिवादिगणः ॥

[दिव] क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु (खेलना,
जीतने की इच्छा, लेना, देना, प्रकाश, प्रशंसा, आनन्द, अहंकार, निद्रा, शोभा
और गति अर्थात् ज्ञान गमन प्राप्ति) अव भृष् धातु पर्यन्त सेट् परस्मैपदी धातु
क होते हैं ॥ ३८५ ॥

३८६—दिवादिभ्यः श्यन् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६८ ॥

दिव आदि धातुओं से शप् (१८) का बाधक श्यन् प्रत्यय होवे कर्त्ता में सार्व-
धातुक परे हीं तो । दीव्यति (१८७) दीर्घ । दीव्यतः । दीव्यन्ति । दिदेव । दिदिवतुः ।
दिदेविथ । देवितासि । देविष्यति । देविषति । देविषाति । दीव्यति । दीव्याति ।
दीव्यतु । अदीव्यत् । दीव्येत् । दीव्यात् । अदेवीत् । अदेविष्यत् [षिवु] तन्तुसन्ताने
(सीना) सीव्यति । सिसेव । असेवीत् [खिवु] गतिशीषणयोः (गति और
शोखना) स्त्रीव्यति [ङिवु] निरसने (यूकना) ष्ठीव्यति (१५२) सत्व निषेध ।
तिष्ठेव । टिष्ठेव । टिष्ठिवतुः [यूसु] अदने । आदान इत्येके । अदर्शन इत्यपरे ।

सुष्यति । सुष्णोस [ष्णसु] निरसने । स्रस्यति । सस्त्रास । सस्त्रसतुः [स्त्रसु] ह्वरण-
दौपत्योः (कुटिलता और प्रकाश) कस्यति । चक्कास [व्युष] दाहे (जलना)
व्युष्यति । बुब्ब्योष [बुष] च । मुष्यति । पुष्पोष [नृती] गात्र विक्षेपे (नाचना)
नृत्यति । ननर्त्स । ननृततुः । ननृतुः । ननर्त्तिथ । नर्त्तितासि ॥ ३८६ ॥

३८७—सिऽसिचि कृतचृतकृदहृदहृतः ॥ अ० ॥ ७। २। ५७ ॥

कृत, चृत, कृद, हृद और हृत धातुओं से परे जो सिच् भिन्न सकारादि
आर्द्धधातुक उस को विकल्प करके इट् का आगम होवे । नर्त्तिष्यति । नत्स्यति ।
नर्त्तिषति । नर्त्तिषाति । नर्त्सति । नर्त्साति । नृत्यति । नृत्याति । नृत्यतु । नृत्य।
नृत्यानि । अनृत्यत् । नृत्येत् । नृत्यात् । अनर्त्तीत् । अनर्त्तिष्यत् । अनत्स्यत् [वसी]
उद्वेगे (भय होना) (१८८) सूत्र से श्यन् विकल्प पक्ष में शप् । त्रस्यति । त्रसति
तत्रास । विकल्प से एत्वाभ्यास लोप (२२८) हो कर । त्रसतुः । तत्रसतुः । त्रसुः ।
तत्रसुः । त्रसितासि । त्रसिष्यति । त्रासिषति । त्रासिषाति । त्रस्यति । त्रस्याति ।
त्रसति । त्रसाति । त्रस्यतु । त्रसतु । अत्रस्यत् । अत्रसत् । त्रस्येत् । त्रसेत् । त्रस्यात् ।
अत्रासीत् । अत्रसीत् । अत्रसिष्यत् [कुथ] पूथीभावे (दुर्गन्ध) कुथ्यति । कुकोथ [पुथ]
हिंसायाम् । पुथ्यति । पुपोथ [गुथ] परिवेष्टने (लपेटना) गुथ्यति । जुगोथ ।
जुगुथतुः । गोथितासि । गोथिष्यति । गोथिषति । गोथिषाति । गुथ्यतु । अगुथ्यत् ।
गुथ्येत् । गुथ्यात् । अगोथीत् । अगोथिष्यत् [क्षिप] प्रेरणे (फेंकना) यह धातु
अनिट् है । क्षिप्यति । क्षिपेप । क्षिपेपिथ । क्षिपेपथ । क्षेप्तासि । क्षेप्स्यति । क्षेप्सति ।
क्षेप्साति । क्षिप्यतु । अक्षिप्यत् । क्षिप्येत् । क्षिप्यात् । अक्षेप्सीत् । अक्षेप्ताम् ।
अक्षेप्सुः । अक्षेप्स्यत् [पुथ्य] विकसने (विभाग होना) पुष्यति । पुपुष्य [तिम, तीम,
ष्टिम, ष्टीम] आर्द्धीभावे (गीला होना) तिष्यति । तीष्यति । स्तिष्यति । स्तीष्यति ।
तितेम । तितिमतुः । तितीम । तिस्तेम । तिस्तीम [व्रीड] चादने लज्जायां च
(प्रेरणा और लज्जा) व्रीडति । विव्रीड [इष] गतौ । इष्यति । इयेष (१५३) इयङ् ।
इषतुः । इषुः । इयेषिथ । एषितासि । एषिष्यति । एषिषति । एषिषाति । इष्यति ।
इष्याति । इष्यतु । ऐष्यत् । इष्येत् । इष्यात् । ऐषीत् । ऐषिष्यत् [षह पुह]
चकथ्ये (तप्त होना वा मारना) सह्यति । सुह्यति । ससाह । सेहतुः । सेहुः ।
सेहिथ । सुसीह । सहिता । सोढा (२१२ । २३०) सहिष्यति । साहिषति ।
साहिषाति । सह्यति । सह्याति । सह्यतु । असह्यत् । सह्येत् । सह्यात् । अस-
हीत् (१६२) वृद्धि का निषेध । असहिष्यत् [जृष्, भृष्] वयोहानौ (अवस्था
की हानि) इन दोनों धातुओं के अन्य प्रकार की इत्संज्ञा होती है (२६५ ।
१८७) जीर्यति । जजार । जृ + अतुस—जीरतुः (२२८) एत्वाभ्यासलोप का

विकल्प और । जजरतुः (२५८) अप्राप्त गुण । जिरुः । जजरुः । जेरिथ । जजरिथ ।
 जेरथुः । जजरथुः । जर्रीतासि । जरितासि (२६४) जर्रीष्यति । जरिष्यति ।
 जार्रीषति । जार्रीषाति । जारिषति । जारिषाति । जर्रीषति । जर्रीषाति ।
 जरिषति । जरिषाति । जीर्यति । जीर्याति । जीर्यतु । अजीर्यत् । जीर्येत् । जीर्यात् ।
 लुङ् में विकल्प से अङ् (१५४) और ऋवर्णान्त को अङ् के परे गुण (२५७)
 हो कर । अजरत् । अजरताम् । अजरन् । अङ् के निषेध पक्ष में । अजारौत् ।
 अजारिष्टाम् (२६६) अजरौष्यत् । अजरिष्यत् । भीर्यति । अभरतुः । अभरौत् ।
 अभारिष्टाम् । दिवादय उदात्ता उदात्तेतः क्षिपिवर्ज परस्मैपदिनः । ये दिव
 आदि धातु क्षिप को छेड़ के सेट् परस्मैपदी हैं [षड्] प्राणिप्रसवे (प्राणियों
 की उत्पत्ति) सूयते । सूयते । सूयन्ते । सुषुवे । बलादि लिट् में विकल्प से इट्
 (१४०) प्राप्त है उस का बाधक निषेध (व्युक्तः किति) है उस का भी अपवाद निया-
 मक (१४८) होने से नित्य इट् होता है । सुषुविषे । सुषुविषे । सुषुविमहे ।
 सोतासे । सवितासे (१४०) सविष्यते । सोष्यते । साविषते । साविषाते । सौषते ।
 सौषाते । सूयते । सूयाते । सूयताम् । असूयत । सूयत । सविषीष्ट । सौषीष्ट ।
 असविष्ट । असौष्ट । असविष्यत । असौष्यत [दूङ्] परितापे (दुःख होना)
 दूयते । दुदुवे । दवितासे । आत्मनेभाषावुदात्तौ । ये दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी
 हैं [दीङ्] जये (नाश होना वा वसना) दीयते ॥ ३६७ ॥

३६८—दीङो युङञि क्छिति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६३ ॥

दीङ् धातु में परे जो अजादि कित् छिट् आर्द्धधातुक उस को युट् का आगम
 होवे । दिदीये (४३) वार्तिक से युट् के आगम को सिद्ध मान के यण् (१५६)
 नहीं होता । दिदीयिषे । दिदीयिष्वे । दिदीयिष्वे । दिदीयिष्वे ॥ ३६८ ॥

३६९—मीनातिसिनोतिदीङां ल्यपि च ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५० ।

एच् का निमित्त अशित् वा ल्यप् परे हो तो मीनाति सिनोति और दीङ्
 धातुओं को आकारादेश होवे । दातासे । दास्यते । दासते । दासाते । दीयताम् ।
 अदीयत । दीयते । दासीष्ट । अदास्त । अदास्थाः । इस दीङ् धातु की घुसंज्ञा
 (२४६) नहीं होती क्योंकि यह न तो दा धा और न उन की प्रकृति है । अदास्यत ।
 [ङीङ्] विहायसागतौ (आकाश में उड़ना) ङीयते । ङीयेते । ङिद्ये (१५६)
 यण् । ङयितासे । ङयिष्यते । ङायिषते । ङायिषाते । ङीयताम् । अङीयत । ङीयेत ।
 ङयिषीष्ट । अङयिष्ट । अङयिष्यत [धीङ्] आधारे । धीयते । दिध्ये [मीङ्]
 हिंसायाम् । मीयते [रीङ्] अशने (सुनना) रीयते । रिये । रेतासे । रेप्यते ।

रैषतै । रैषातै । रीयतै । रीयातै । रीयताम् । अरीयत । रीयेत । रेषीष्ट । अरेष्ट ।
अरेष्यत [लीङ्] श्लेषणे (मिलना) लीयते ॥ ३८८ ॥

४००—विभाषा लीयतेः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५१ ॥

एच् विषय में शित् भिन्न प्रत्यय और ल्यप् परे हो तो लीयति धातु को
आकारादेश विकल्प करके होवे । लातासे । लेतासे । लास्यते । लेष्यते । एच्
विषय के कहने से । लिल्ये । लिल्याते । आदि में आकारादेश नहीं होता । लासतै ।
लासातै । लैषतै । लैषातै । लीयताम् । अलीयत । लीयेत । लासीष्ट । लेषीष्ट ।
अलास्त । अलेष्ट । अलास्यत । अलेष्यत [व्रीड्] वृणीत्यर्थे (स्वीकार) व्रीयते ।
वित्रिये । यहाँ संयोग पूर्व के होने से यण् (१५६) से नहीं होता । हृत् स्वादय ओदितः ।
षूड् धातु से लेकर यहाँ तक ओदित् धातु हैं ओदित् होने का फल कदन्त में
आवेगा [पीड्] पाने (पीना) पीयते । पिष्ये । पेटासे । पेथ्यते । पैषतै । पैषातै ।
पीयताम् । अपीयत । पीयेत । पेषीष्ट । अपेष्ट । अपेथ्यत [माड्] माने (तोलना)
मायते । ममे [ईड्] गतौ । ईयते । अयांचक्ते । अयास्वभूव । अयामास । एतासे ।
एथ्यते । ऐषतै । ऐषातै । ईयताम् । ऐयत । ईयेत । एषीष्ट । ऐष्ट । ऐथ्यत [प्रीड्]
प्रीणने (तृप्ति) प्रीयते । पिप्रिये । दीडादय आत्मनेपदिनी डीङ् वर्जमनुदात्ताः ।
दीङ् आदि धातु आत्मनेपदी डीङ् की छोड़ के अनिट् हैं ॥

अथ परस्मैपदिनश्चत्वारः । अब चार धातु परस्मैपदी कहते हैं [शो] तनू
करणे (महीन करना) ॥ ४०० ॥

४०१—ओतः श्यनि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७१ ॥

श्यन् प्रत्यय परे हो तो धातु के अन्य ओकार का लोप होवे । श्यति । श्यतः ।
श्यन्ति । श्यौ । श्यतुः । श्यथि । श्यथ । शातासि । शास्यति । श्यतु । श्य ।
अश्यत् । श्येत् । शयात् । लुङ् विषय में विकल्प से सिच् लुक् (२४८) अशात् ।
अशाताम् । अशः । पक्ष में । अशासीत् (२५१) अशास्यत् [छो] छेदने (छेदना)
ओकार लोप (४०१) छति । चक्षी । छातासि । अन्य पूर्ववत् [षो] अन्तर्कर्मणि
(कर्म की समाप्ति) स्यति । ससी । सातासि । सास्यति । सासति । सासाति ।
स्यतु । अस्यत् । स्येत् । सेयात् (२४७) असात् (२४८) असासीत् (२५१) असास्यत्
[दो] अवखण्डने (काटना) द्यति (४०१) ददाति । दातासि । दास्यति । दासति ।
दासाति । द्यतु । दद्यात् । द्येत् । देयात् । हु संज्ञा के होने से (२४७) से एकार ।
अदात् (८८) सिच् लुक् । अदाताम् । अदुः । अदास्यत् । श्यति प्रभृतयोऽनुदात्ताः ।
शो आदि चार धातु अनिट् हैं ॥

अधात्मनेपदिनः पंचदश । अब पन्द्रह धातु आत्मनेपदी कहते हैं [जनी]
प्रादुर्भावे (उत्पत्ति वा अवस्थान्तर से प्रकट होना) ॥ ४०१ ॥

४०२—ज्ञाजनोर्जा ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७६ ॥

शित् प्रत्यय परे ही तो ज्ञा और जन धातु को जा आदेश होवे । अनेकाल् होने से सब के स्थान में होता है । जायते । जन्+एश्=जज्ञे (२१४) उपधा अकार का लोप होकर जन् के संयोग में तवर्ग नकार को चवर्ग जकार होजाता है । जज्ञाते । जज्ञिरे । जनितासे । जनिष्यते । जानिषतै । जानिषाते । जायते । जायाते । जायते । जायाते । जायताम् । अजायत । जायेत । जनिषीष्ट । लुङ् में चि के स्थान में चिण् (१८४) और चिण् से परे प्रत्यय का लुक् (१८४) होकर । जन-चिण् । यहां वृद्धि प्राप्त है इस लिये ॥ ४०२ ॥

४०३—जनिवध्योश्च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३५ ॥

जन और वध धातु की उपधा को वृद्धि न होवे जित् शित् क्तत् और चिण् परे ही तो । अजनि । और जिस पक्ष में चिण् (१८४) से न हुआ वहां । अजनिष्ट । अजनिषाताम् । अजनिषत [दीपी] दीप्ती । दीप्यते । दिदीपे । दिदीपाते । दीपितासे । दीपिष्यते । दीपिषतै । दीपिषातै । दीप्यताम् । अदीप्यत । दीप्येत । दीपिषीष्ट । अदीपि (१८४ । १८५) अदीपिष्ट । अदीपिष्यत [पूरी] आप्यायने (बढ़ना) पूर्यते । पूरुरे । अपूरि (१८४ । १८५) अपूरिष्ट [तूरी] गतित्वरण-हिंसनयोः (शीघ्रचलना और मारना) तूर्यते । तूरुरे । अतूरिष्ट [धूरी, गूरी] हिंसागत्योः । धूर्यते । दुधूरे । गूर्यते । जुगूरे [धूरी, जूरी] हिंसावयोहान्योः (हिंसा और अवस्था की हानि) घूर्यते । जुघूरे । जूर्यते । जुजूर [शूरी] हिंसा-स्तम्भनयोः (मारना और रोकना) शूर्यते । शुशूरे [चूरी] दाहे । चूर्यते । चुचूरे । चूरितासे । चूरिष्यते । चूरिषतै । चूरिषातै । चूर्यताम् । अचूर्यत । चूर्येत । चूरिषीष्ट । अचूरिष्ट । अचूरिष्यत [तप] ऐश्वर्ये (सम्पत् का होना) यह धातु अनिट् है । तप्यते । तपे । तपाते । तपिरे । तपिषे । तप्तासे । तप्स्यते । ताप्सतै । ताप्सातै । तप्यताम् । अतप्यत । तप्येत । तप्सीष्ट । अतप्त । अतप्साताम् । अतप्सत । अतप्स्यत [बाहृतु] वरणे (स्वीकार) यह धातु अनेकाच् है । बाहृत्यते । अनेकाच् होने से लिट् में आम् (१७०) बावर्ताच्चक्रे । बावर्ताम्बभूव । बावर्तामास । वेद में । ववाहतीववाहताते । वावर्त्तितासे । वावर्त्तिष्यते । अवावर्त्तिष्ट [क्लिश] उपतापे (दुःख) क्लिष्यते । चिक्लिषे । क्लेषितासे । अक्लिषिष्ट [काश्र] दीप्ती । काश्यते । चकाशे । अकाशिष्ट । अकाशिष्यत [वाश्र] शब्दे । वाश्यते ।

ववाशि । वाशिताशि । वाशिष्यते । वाशिष्यते । वाशिषाते । वाश्यताम् । अवाश्यत ।
वाश्येत । वाशिषीष्ट । अवाशिष्ट । अवाशिष्यत । जन्यादयोऽनुदात्तेत आत्मनेपदि-
नस्तपिवर्जमुदात्ताः । जनौ आदि सब धातु आत्मनेपदौ और तप को छोड़ के सेट्
हैं । अथ पञ्च स्वरितेतः । अब पांच धातु उभयपदी कहते हैं [मृष] तितिच्चायाम्
(सहना) मृष्यति । मृष्यते । ममष । ममृषे । मर्षिता । मर्षिष्यति । मर्षिष्यते । मर्षिषाते ।
मृष्यतु । मृष्यताम् । अमृष्यत् । अमृष्यत । मृष्येत् । मृष्येत । मृष्यात् । मर्षिषीष्ट ।
अमर्षीत् । अमर्षिष्ट । अमर्षिष्यत । अमर्षिष्यत् [ईशुचिर्] पूतीभावे (पवित्रता)
इस धातु का ई और इर् भाग इत्संज्ञक होता है । शुच्यति । शुच्यते । शुशोच ।
शुशुचे । अशुचत् (१३८) इरित् होने से अङ् । अशोचौत् । अशोचिष्ट । ये दोनों
धातु सेट् उभयपदी हैं [णह] बन्धने (बाधना) नह्यति । नह्यते । ननाह ।
नेहतुः । नेहुः । नेहिय । नह्-यल् । यहां अनिट् पक्ष में नह धातु के ह को
(२०३) से ढकार पाता है इसलिये ॥ ४०३ ॥

४०४—नहो धः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३४ ॥

नह धातु के हकार को धकार आदेश होवे भल परे वा पदान्त में । ननह ।
नेहथुः । नेह । नेहे । नेहाते । नहासि । नहासे । नह्यति । नाह्यति । नाह्यताम् ।
अनाह्यत । नह्येत । नह्यीष्ट । नह्यात् । अनाह्यीत् (१३५) अनाह्याम् ।
अनाह्युः । अनाह्यीः । अनाह्यम् । अनाह्य । अनाह्यम् । अनाह्यत् । अनाह्यत् । अनाह्यत् ।
अनह्यताम् । अनह्यत । अनहाः । अनह्यत । अनह्यत् [रञ्ज] रागे (रंगना-
वा अति प्रीति) उपधा अनुनासिक का लोप (१३६) होकर । रज्यति ।
रज्यते । ररञ्ज । ररञ्जे । रङ्क्तासि । रङ्क्तासे । रङ्क्यति । रङ्क्यते । रङ्क्तीष्ट ।
अरङ्क्त । अरङ्क्ताताम् । अरङ्क्तत । अरङ्क्तीत् । अरङ्क्ताम् । अरङ्क्नुः [शप]
आक्रोशे (कोशना) शप्यति । शप्यते । शशाप । शेषतुः । शेषिथ । शशप्य । शेषे ।
शेषाते । शेषासि । शप्यति । शाप्सति । शाप्साति । शाप्सते । शाप्साते ।
शप्यतु । शप्यताम् । अशप्यत् । अशप्यत । शप्येत् । शप्येत । शप्यात् । शप्सीष्ट ।
अशाप्सीत् । अशाप्ताम् । अशाप्सुः । अशप्त । अशाप्ताताम् । अशप्यत् । अशप्यत ।
एहादयस्त्रयोऽनुदात्ताः स्वरितेत उभयपदिनः । एह आदि तीन धातु अनिट्
उभयपदी हैं । अथैकादशानुदात्तेतः । अब ११ ग्यारह धातु आत्मनेपदी कहते हैं
[पद] गतौ । पद्यते । प्रतिपद्यते । प्रपद्यते । पेदे । पेदाते । पेदिरे । पप्तासे ।
पट्स्थते । पाक्तै । पाक्ताते । पद्यताम् । अपद्यत । पद्येत । पक्तीष्ट ॥ ४०४ ॥

४०५—चिण् ते पदः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६०॥

पद धातु से परे जो चि उस के स्थान में चिण् होवे त शब्द परे होतो। अपादि (१८५) अपक्ताताम् । अपक्तत । अपत्स्यत । [खिद] दैन्ये (दीनता) खिद्यते । चिखिदे । खिक्तासे । खिक्सीष्ट (१६३) अखिक्त [विद] सत्तायाम् (होना) विद्यते । विविदे । विक्तासे । वेत्स्यते । वेक्तै । वेक्तातै । विद्यताम् । अविद्यत । विद्येत । विक्सीष्ट (१६३) अविक्त । अविक्ताताम् । अवेत्स्यत [बुध] अवगमने (ज्ञान होना) बुध्यते । बुबुधे । बोद्धासे । भोत्स्यते (२०४) भोक्तै । भोक्तातै । बुध्यताम् । अबुध्यत । बुध्येत । भुत्सीष्ट (१६३) अबोधि (१८४) अबुद्ध । अभोत्स्यत [युध] सम्प्रहारे (युद्ध करना) युध्यते । युयुधे । योद्धासे । योत्स्यते । युत्सीष्ट । अयुद्ध । अयुत्साताम् [अनोरुध] कामे (कामना) इस धातु के प्रयोग बहुधा अनु पूर्वक आते हैं इसलिये इस के पूर्व अनु उपसर्ग पड़ा है । अनुरुध्यते । अनुरुधे । अनुरोद्धासे । अन्वरुध्यत । अनुरुत्सीष्ट । अन्वरुद्ध । अन्वरुक्ताताम् [अण] प्राणने (श्वास का चलना) यह धातु सेट् है । अण्यते । आणे । आणति । आणिरे । अणितासे । अणिय्यते । आणिषतै । आणिषातै । अण्यताम् । आण्यत । अण्येत । अणिषीष्ट । आणिष्ट । आणिष्यत [मन] ज्ञाने । मन्यते । मेने । मन्तासे । मंसीष्ट । अमंस्त [युज] समाधौ (चित्त की वृत्तियों को रोकना) युज्यते । युयुजे । योक्तासे । योच्यते । योचतै । योच्चातै । युज्यताम् । अयुज्यत । अयुज्यत । युज्येत । युच्चीष्ट । अयुक्त । अयुक्ताताम् । अयोच्यत [सृज] विसर्गे (रचना वा त्यागना) सृज्यते । ससृजे । स्रष्टासे (२३३) ज को षत्व और अम् आगम (२७८) स्रच्यते । स्राचतै । स्राच्चातै । सृज्यताम् । असृज्यत । सृज्येत । सृच्चीष्ट । असृक्त । असृक्ताताम् । असृचत । अस्रच्यत । [लिश] अल्पीभावे (थोड़ा होना) लिश्यते । लिलिशे । लिष्टासे (२३३) षत्वा लेच्यते । लेचतै । लेच्चातै । लिश्यताम् । अलिश्यत । लिश्येत । लिच्चीष्ट (१६३) अलिष्ट । अलेच्यत । पदायोऽनुदात्तित आत्मनेभाषा अण्यतिवर्जमनुदात्ताः । पद आदि सब धातु आत्मनेपदी और अण् की छोड़ के अनिट् हैं । अथा गणन्तात्परस्मैपदिनोऽष्टषष्टिः । अब इस दिवादिगण के अन्त पर्यन्त ६८ अड़सठ धातु परस्मैपदी कहते हैं [राधोऽकर्मकादृहडावेव] अकर्मक राध धातु से वृद्धि अर्थ में ही श्यन् प्रत्यय ही । राध्यति । रराध । रराध्यतुः । यहां हिंसा अर्थ के न होने से (४२३) सूत्र नहीं लगता । रराधिय । राडासि । रात्स्यति । रासति । राक्ताति । राध्यतु । अराध्यत् । राध्यत् । राध्यात् । अराक्सीत् । अराडाम् । अरात्सुः । अरात्स्यत् [व्यध] ताड़ने (पीड़ा देना) विध्यति (२८६)

सम्प्रसारण । विध्यतः । विध्यन्ति । विव्याध (२८२) विविधतुः । विविधुः । विव्यधिय । विव्यद्ध । व्यहसि । व्यत्यति । व्यत्सति । व्यत्साति । विध्यतु । अवि-
त् । विध्येत् । विध्यात् । अव्यात्सीत् । अव्याहाम् । अव्यात्सुः । अव्यात्स्यत् ।
[पुष] पुष्टौ (पुष्ट करना) पुथति । पुपोष । पुपोषिथ । पोष्टासि । पोथ्यति ।
पोक्षति । पोक्षाति । पुथतु । अपुथत् । पुथेत् । पुथात् । अपुषत् (२१७) अङ्
इस सूत्र में पुषादि करके इसी पुष से इस गण के अन्त पर्यन्त धातुओं का ग्रहण
होता है । अपुषताम् । अपुषन् । अपोक्ष्यत् [शुष] शोषणे (सोखना) शुष्यति ।
अशुषत् [तुष] प्रीतौ (प्रसन्नता) तुथति । तुथतु । अतुषत् [दुष] वैकृत्ये (विकार
को प्राप्त होना) दुथति । अदुषत् [श्लिष] आलिङ्गने (मिलना) श्लिष्यति ।
शिश्लिष । श्लेष्टासि । श्लेथ्यति । श्लेक्षति । श्लेक्षाति । श्लिष्यतु । अश्लिष्यत् ।
श्लिष्येत् । श्लिष्यात् ॥ ४०५ ॥

४०६—श्लिष आलिङ्गने ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४६ ॥

श्लिष धातु से परे जो अनिट् चि उस के स्थान में क्त आदेश होवे आलिङ्गन
ही अर्थ में अन्यत्र नहीं । यह सूत्र (२१७) सूत्र का अपवाद है । और आलिङ्गन
अर्थ से यहां स्त्री पुरुष का संयोग समझना चाहिये किन्ही जड़ पदार्थों वा अन्य
सम्बन्धियों का मिलना नहीं । अश्लिषत् । और जहां आलिङ्गन अर्थ नहीं है वहां
अश्लिषत् । प्रयोग होगा । अश्लिषताम् । अश्लिषन् । अश्लेच्यत् [शक] विभाषितो
मर्षणे । सहन अर्थ में शक धातु से विकल्प करके श्यन् प्रत्यय होवे पक्ष में शप् होता
है । शक्यति । शकति । शयाक । शकतुः । शकिथ । शशक्य । शक्तासि । शक्यति ।
शाक्षति । शाक्षाति । शक्यतु । अशक्यत् । शक्येत् । शक्यात् । अशकत् (२१७)
अशक्यत् [जिष्विदा] गान्प्रचरणे (पसीना छूटना) श्विद्यति । सिखेद ।
सिखेदिथ । स्वेत्तासि । स्वेत्त्यति । स्वेत्सति । स्वेत्साति । श्विद्यतु । अश्विद्यत् ।
श्विद्येत् । श्विद्यात् । अश्विदत् । अस्वेत्स्यत् [क्रुध] क्रोधे । क्रुध्यति । चुक्रोध ।
क्रोडासि । अक्रुधत् [क्षुध] बुभुक्षायाम् (भोजन की इच्छा) क्षुध्यति । चुक्षोध ।
अक्षुधत् [शुध] शौचे (शुद्धि) शुध्यति । शुशोध । शोद्धा । अशुधत् [सिधु] संराधौ
(सिद्धि होना) सिध्यति । सिसेध । सिषिधतुः । सिषेधिथ । सेडासि । सेत्स्यति ।
सेत्सति । सेत्साति । सिध्यति । सिध्याति । सिध्यतु । असिध्यत् । सिध्येत् ।
सिध्यात् । असिधत् । असेत्स्यत् । राधादयोऽनुदात्ताः उदात्तेतः परस्मैपदिनः ।
राध आदि धातु अनिट् परस्मैपदी हैं [रध] हिंसासराध्योः (हिंसा और
सिद्धि) रध्यति । ररन्ध (१६५) नुम् । ररन्धतुः । ररन्धिथ ॥ ४०६ ॥

४०७—रधादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४५ ॥

रध आदि (रध, नश, तप, इप, दुह, सुह, षुह, णिह) धातुओं से परे वलादि आर्द्धधातुक को विकल्प करके इट् का आगम होवे । ररह । ररन्धिव । रध्व । ररन्धिम । रेधम ॥ ४०७ ॥

४०८—नेध्यलिटि रधेः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६२ ॥

लिट् लकार से भिन्न इडादि प्रत्यय परे होतो रध धातु को नुम् का आगम न होवे । इस सूत्र के नियम से इडादि लिट् में तो नुम् होता है । जो कदाचित् ऐसा नियम करते कि इडादि लिट् में ही नुम् होवे तो इस से विपरीत नियम का सम्भव था कि लिट् में जो नुम् ही तो इडादि में ही होवे इस नियम से । ररन्धतुः । आदि में भी निषेध होजाता । रधितासि । रधासि । रधिष्यति । रत्स्याति । राधिषति । राधिषाति । रधिषति । रधिषाति । रात्सति । रात्साति । रध्यति । रध्याति । रध्यतु । अरध्यत् । रध्येत् । रध्यात् । अराधीत् । अराधत् । यहाँ अङ् के परे प्रथम नुम् (१६५) होकर न लोप (१३८) होता है । अरधताम् । अरधिष्यत् । अरत्स्यत् [ण्य] अदर्शने (नेत्र से न देखना) नश्यति । ननाश । नेशतुः । नेशुः । थल् के परे (१४८ । २१५) नियम से सेट् पक्ष में । नेथिथ । अनिट् पक्ष में ॥ ४०८ ॥

४०९—मस्जिनशोर्क्षलि ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६० ॥

भलादि प्रत्यय परे ही तो मस्ज और नश धातु को नुम् का आगम होवे । ननष्ठ (२३३) पत्व । नेशथुः । नेश । ननाश । ननश । नेशिव । ननंश्म । नेशिम । ननंश्म । नशितासि । नंष्टासि (४०७) नशिष्यति । नङ्क्षति । नङ्क्षाति । नश्यतु । अनश्यत् । नश्येत् । नश्यात् । अनशत् । अनशिष्यत् । अनङ्क्ष्यत् [त्व] प्रीणने (तृप्ति) यङ् धातु अनिट् है । तृप्यति । ततर्प । तत्पतुः । थल् में इट् पक्ष में (४०७) ततर्पिथ । तत्रपथ (२७५) ततर्पथ । इसी प्रकार सर्वत्र वलादि आर्द्धधातुक में जानो । तर्पिता । तप्ता । तर्प्ता । तर्पिष्यति । तप्स्यति । तर्पिषति । तर्पिषाति । त्रप्सति । त्रप्साति । तर्प्सति । तर्प्साति । पृप्यति । पृप्याति । पृप्यतु । अतृप्यत् । तृप्येत् । तृप्यात् । लुङ् में प्रथम सिच् पक्ष में (२८०) इट् का विकल्प (४०७) होने से । अतर्पीत् । अत्राप्सीत् (२७५) अताप्सीत् । और जिस पक्ष में चलि के स्थान में सिच् (२८०) न हुआ वहाँ अङ् (२१७) अत्पत् । इस प्रकार चार रूप होते हैं । अतर्पिष्यत् । अत्रप्यत् । अतर्प्स्यत् [दृप्] हर्षण मोहनयोः (आनन्द और गर्व) इस के प्रयोग त्व के समान जानो । दृप्यति ।

अदर्पीत् । अद्राप्सीत् । अदाप्सीत् । अट्टपत् । तप और टप दोनों धातु अनिट् हैं परन्तु रधादि में होने से यहाँ विकल्प से इट् होता है [द्रुह] जिघांसायाम् (सारने की इच्छा) द्रुह्यति । दुद्रोह । दुद्रोहिथ (४०७) अनिट् पक्ष में ॥ ४०६ ॥

४१०—वा द्रुहमुहरबुहस्त्रिहाम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ३३ ॥

द्रुह, मुह, बुह और स्त्रिह धातुओं के हकार को घकारादेश विकल्प करके होवे भूल परे हो वा पदान्त में पक्ष में ठकार हो जाता है । यह सूत्र भी (२०३) सूत्र का अपवाद है । दुद्रोग्धा । घ को जश्त्व । ठकार पक्ष में । दुद्रोढ । द्रोहिता । द्रोग्धा । द्रोढा । द्रोहिष्यति । ध्रौह्यति । यहाँ घ और ढ दोनों आदेश का एक ही प्रकार का प्रयोग होता है । घकार पक्ष में उस को चर् ककार और ठकार में भी (२०५) ठ को क ही जाता है । द्रोहिषति । द्रोहिषाति । ध्रौह्यति । ध्रौहाति । द्रुह्यतु । अद्रुह्यत् । द्रुह्येत् । द्रुह्यात् । अद्रुह्यत् । अद्रोहिष्यत् । अद्रोह्यत् [सुह] वैचित्तये (विचार शून्य) सुह्यति । सुमोह । सुमोहिथ । सुमोग्ध । सुमोढ । मोहिता । मोग्धा । मोढा । मोहिष्यति । मोह्यति । अमुहत् [णुह] उदगिरणे (उगलना) सुह्यति । सुमोह । सुमोहिथ । सुमोग्ध । सुमोढ । सुमोहिष्यति । सुमोह्यत् । मोहिता । मोग्धा । मोढा । मोहिष्यति । मोह्यति । अमुहत् [णिह] प्रीतौ (प्रीति करना) स्त्रिह्यति । सिष्णेह । अस्त्रिहत् । हत्त्रधादयः समाप्ताः । ये रध आदि (४०७) सूत्र में कहे धातु समाप्त हुए । पुषादि तो इस गण को समाप्ति पर्यन्त हैं [शम] उपशमे (शान्ति) ॥ ४१० ॥

४११—शमामष्टानां दीर्घः श्यनि ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ७४ ॥

शम आदि आठ धातुओं के अष् को दीर्घ होवे श्यन् परे हो तो । शाम्यति । शाम्यतः । शाम्यन्ति । शशाम । शमतुः । शमिथ । शमिता । शमिष्यति । शमिषति । शमिषाति । शाम्यतु । अशाम्यत् । शाम्येत् । शम्यात् । अशमत् (२१७) अशमिष्यत् [तसु] काङ्चायाम् (अभिलाषा) ताम्यति (४११) तताम । तमतुः । तमितासि । अतमत् [दसु] उपशमे (दाम्यति । अदमत् [असु] तपसि खेदे च (तप करना और ह्लेश भोगना) आम्यति । अशमत् [असु] अनवस्थाने (स्थिति न होना) (१८८) आम्यति । अमति । बभ्राम । अमतुः । अमसुः (२२८) एत्वाभ्यासलोप विकल्प पक्ष में । दअमतुः । लुङ् में अङ् (२१७) अअमत् । अन्य सब प्रयोग आदि के समान जानो [क्षमूष्] सहने । यह धातु ऊदित् और षित् है । क्षाम्यति । चक्षाम । चक्षमतुः । चक्षमिथ (१४०) चक्षन्थ । चक्षमिव । चक्षण्व । चक्षमिम । चक्षण्म । क्षमिता । क्षन्ता । क्षमिष्यति । क्षस्यति ।

चांसति । चांसाति । चाम्यत् । अचाम्यत् । अचमत् [क्लमु] ग्लानौ (आनन्द का नाश) क्लाम्यति (१८८) क्लामति (१८६) सूत्र से ही शप् और श्यन् दोनों में दीर्घ हो जाता फिर इस का शमादिकों में यहां पाठ कदन्त में विगुण प्रत्यय होने के लिये है । चक्लाम् । चक्लमतुः । क्लमिता । क्लमिष्यति । क्लाम्यत् । क्लामतु । अक्लमत् [मदौ] हर्षे (आनन्द) माद्यति । ममाद् । मेदत् । मेदिष्य । मदिता । मदिष्यति । मादिषति । मादिषाति । माद्यत् । प्रमाद्यत् । माद्यत् । मद्यात् । अमदत् । अमदिष्यत् । इत्यष्टौ शमादयः । ये (४११) सूत्र में कहे शम आदि पाठ धातु समाप्त हुए [असु] सेपणे (फेंकना) अस्यति । आस । असि-
तासि । अस्यत् ॥ ४११ ॥

४१२—अस्यतेस्युक् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । १७ ॥

अङ् परे ही तो अस्यति धातु को युक् का आगम होवे । अस्यत् । अस्यताम् । इस धातु से लुङ् में (२१७) सूत्र से अङ् सिद्ध हो है फिर (३१६) सूत्र में असु धातु का ग्रहण आत्मनेपदविषय के लिये है [यसु] प्रयत्ने (पुरुषार्थ) ॥ ४१२ ॥

४१३—यसोऽनुपसर्गात् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७१ ॥

उपसर्गरहित यस धातु से परे श्यन् प्रत्यय विकल्प करके होवे कर्त्तावाची सर्वधातुक परे ही तो पच में शप् होता है । यस्यति । यसति ॥ ४१३ ॥

४१४—संयसञ्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७२ ॥

संपूर्वक यस धातु से भी श्यन् प्रत्यय विकल्प करके होवे । संयस्यति । संयसति । ययास । येसतुः । यमिता । यमिष्यति । यासिषति । यासिषाति । यस्यत् । अयस्यत् । यस्येत् । यस्यात् । अयसत् । अयसिष्यत् [जसु] मोक्षणे (छूटना) जस्यति । अजसत् [तसु] उपक्षये (नाश) तस्यति । अतसत् । [दसु] च । पूर्व धातु के अर्थ में । दस्यति । अदमत् [वसु] स्तम्भे (रोकना) वस्यति । वयास । ववसतुः (१२८) अवसत् । वयादिरित्येके । किङ्क्री के मत में यह धातु पवर्गादि है वहां (१२८) सूत्र न लगने से । विसतुः । विसुः । प्रयोग बनते हैं [व्युष] विभागे । व्युष्यति । अव्युषत् । ओष्ठ्यादि दन्त्यान्तोऽयमित्येके । कोई के मत में यह धातु व्युस है । व्युस्यति । अव्युसत् । अयकारं वुस इत्यपरे । कोई के मत में यकार रहित वुस है । वुस्यति । वुषोस । अवुसत् [भुप] दाहे । भुष्यति । अभुषत् [विस] प्रेरणे (प्रेरणा) विस्यति । विविस । अविषत् [कुस] संश्लेषणे । कुस्यति । अकुसत् [वुस] उत्सर्गे (त्याग)

बुस्यति।अबुसत्[मुस] खण्डने (काटना) मुस्यति। मुमोस। मुमुसतुः। मोसिता।
मोसिष्यति। मोसिषति। मोसिषाति।मुस्यतु।अमुस्यत्।मुस्येत्।मुस्यात्।अमु-
सत्।अमोसिष्यत्[मसौ] परिणामे (विकार) मस्यति।ममास।मिसतुः।अमसत्।
[समी] इत्येके।कोई के मत में मसौ नहीं समी है।सम्यति।असमत्[लुठ]
विलोडने (विलीना) लुव्यति।अलुठत्[उच] समवाये (नित्य संबन्ध) उच्यति।
उवोच।उचतुः।उचुः।ओचिता।ओचिष्यति।ओचिषति।ओचिषाति।उच्यतु।
ओच्यत्।उच्येत्।उच्यात्।ओचत्।माभवनुचत्।ओचिष्यत्[भृश,भ्रंश]अभ-
पतने (नौचे गिरना) भृश्यति।बभ्रशं।अभृशत्।भ्रंश्यति।बभ्रश।अभ्रशत्।
(१३८)[वृश्] वरणे (स्वीकार) वृश्यति।अवृशत्[क्षश्]तनूकरणे (सूक्ष्म करना)
क्षश्यति।अक्षशत्[जिह्व] पिपासायाम् (पीने की इच्छा) लथ्यति।अलथत्
[हृष] तुष्टौ(सन्तोष) हृष्यति।अहृषत्[रुष,रिष]हिंसायाम् (मारना) रुष्यति।
रिष्यति।रुरीष।रिरिष।रौषिता(२१२) रौष्टा।रैषिता।रैष्टा।अरुषत्।
अरिषत्[डिप] जेपे (फेंकना) डिप्यति।अडिपत्[कुप] क्रोधे।कुप्यति।अकु-
पत्।[गुप] व्याकुलत्वे (व्याकुलता) गुप्यति।अगुपत्[युप,रुप,लुप] विमोहने
(मोहित करना) युप्यति।रुप्यति।लुप्यति।अयुपत्।अरुपत्।यहां लुप धातु
सेट् ही है और अनिट् धातुओं में जो लुप गिनाया है वह तुदादिगण का साह-
चर्य्य से समझा जाता है।अलुपत्[लुभ] गाढ्ये (आकाङ्क्षा) लुभ्यति।लुलोभ।
लुलुभतुः।लोभिता(२१२) लोब्धा।अलुभत्[लुभ] सञ्चलने (चलायमान)
लुभ्यति।अलुभत्[णभ,तुभ] हिंसायाम्।नभ्यति।ननाभ।नेभतुः।अनभत्।
तुभ्यति।अतुभत्[क्लिद्रू] आर्द्राभावे (गौलापन) क्लियति।चिक्लेद।चिक्लेदिष।
जदित् हीने से इट् विकल्प (१४०)चिक्लेत्थ।चिक्लिदिव।चिक्लिह।क्लेदिता।
क्लेत्ता।अक्लिदत्[जिमिदा] स्नेहने (प्रीति वा चिकनाई) ॥ ४१४ ॥

४१५—मिदेर्गुणः ॥ अ० ॥ ७।३।८२ ॥

मिद धातु के इक् भाग को गुण होवे शित् प्रत्यय पर ही तो।मिद्यति।
मिद्यतः।मिद्यन्ति।यहां श्यन् के डित् होने से गुण प्राप्त नहीं था।मिमिद।
मिमिदतुः।अमिदत्[जिह्विदा] स्नेहनमोचनयोः।क्ष्विद्यति।अक्ष्विदत्[ऋधु]
वृद्धौ।ऋध्यति।आनर्धं।आनृधतुः(१४७।११०)अर्धिता।अर्धिष्यति।अर्धि-
षति।अर्धिषाति।ऋध्यतु।आर्ध्यत्।ऋध्येत्।ऋध्यात्।आर्धत्।आर्धिष्यत्
[ऋधु] अभिकाङ्क्षायाम् (मिलने की इच्छा) ऋध्यति।जगर्धं।जगृधतुः।अगृ-
धत्।जो मिद वा णभ आदि धातु भ्वादि गण में पढ़ चुके हैं उन का पाठ श्यन्

वा अङ् आदि विशेष कार्यों के लिये किया है इसी प्रकार अन्य सब गणों में जानो । वृत् पुषादयः (२१७) सूत्र में कई पुषादि धातु पूरे हुए । दिवादि गण भी भ्वादि के समान आकृतिगण है । जिस से । जीयते । मृयति । आदि प्रयोग बनते हैं । इति श्यन् विकरणे दिवादिगणः समाप्तः । यह श्यन् विकरण वाला दिवादि गण समाप्त हुआ ॥

अथ स्वादिगणः ॥

[पुञ्] अभिषवे (यंत्र से रस खींचना वा राज्याधिकार देना) ॥ ४१५ ॥

४१६—स्वादिभ्यः भ्रुः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७३ ॥

सु आदि धातुओं से शप्का बाधक श्रु प्रत्यय होवे कर्तावाची सार्वधातुक परे ही तो । विकरणस्य उकार को गुण होकर । सुनोति । सुनुतः । सुन्वन्ति (२६१) सुनोषि । सुनुयः । सुनुय । सुनोमि । सुन्वः (२००) सुनुवः । सुन्मः । सुनुमः । सुनुते । सुन्वते । सुषाव । सुषुवे । सोता । सोष्यति । सोष्यते । सोषति । सोषाति । सोषते । सोषाते । सुनोतु । सुनुतात् । सुनु (२०१) सुनवानि । सुनवाव । सुनवाम । सुनुताम् । असुनोत् । सुनुयात् । सुन्वीत् । सूयात् । सोषीष्ट । असावीत् (३३०) असोष्ट । असोष्यत् । असोष्यत [सिज्] बंधने (बांधना) सिनोति । सिषाय । सिष्ये । सेता । सेष्यति [शिज्] निशाने (तीक्ष्ण करना) शिनोति । शिनुते [डुमिज्] प्रक्षेपणे (फेंकना) मिनोति । मिनुते । ममी (३८८) आकारादेश होकर आकारान्ती के तुल्य रूपजाना । एच् विषय में आकारादेश के कहने से । मिम्यतुः । मिम्युः । आदि में नहीं होता । ममिथ । ममाथ । मिम्ये । मिम्याते । मिमयिरे । माता । मिनोतु । मौयात् (१६०) दीर्घ । मासौष्ट । अमासौत् । अमासिष्टाम् । अमास्तु । अमास्यत [चिज्] चयन (जोड़ना) चिनोति । चिनुतः । चिनुते ॥ ४१६ ॥

४१७—विभाषा चैः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ५८ ॥

सन् और लिट् परे ही तो अभ्यास से परे चिज् धातु को विकल्प करके कुल्य होवे । चिकाय । चिक्वतुः । चिकयिथ । चिचाय । चिच्यतुः । चिक्ये । चिच्ये । चेता । चेष्यति । चेष्यते । चेषति । चेषाति । चेषते । चेषाते । चिनोतु । चिनुताम् । अचिनोत् । अचिनुत । चिनुयात् । चिन्वीत् । चीयात् । चेषीष्ट । अचेषीत् । अचेष्ट । अचेयत् । अचेयत [स्तृज्] आच्छादने । स्तृणोति । स्तृणुते । तस्तार । तस्तारतुः (२५३) तस्तारुः । तस्तारिथ । तस्तार्य । तस्तारे । तस्ताराते । स्तर्त्ता । स्तर्त्यात् (२५४) स्तर्त्यास्ताम् ॥ ४१७ ॥

४१८—वृत्तश्च संयोगादेः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४३ ॥

संयोगादि ऋकारान्त धातुओं से परे आत्मनेपद विषय में जो लिङ् सिच् उन को विकल्प करके इट् का आगम होवे। स्तरिषीष्ट । पक्षमें स्तृषीष्ट (२४०) अस्तरिष्ट । अस्तृत । अस्तार्षीत् । अस्तार्षाम् [कृञ्] हिंसायाम् । कृणोति । कृणुते । चकार । चकर्थ (१४८) चक्रे । कर्त्ता । करिष्यति । करिष्यते । कार्षति । कर्षाति । कार्षते । कार्षाते । कृणोतु । कृणुताम् । अकृणोत् । अकृणुत । कृणुयात् । कृण्वीत । क्रियात् (२३८) कृषीष्ट (२४०) अकार्षीत् । अकृता । अकरिष्यत् । अकरिष्यत [वृञ्] वरणे (स्त्रीकार) वृणोति । वृणुते । ववार । ववतुः ॥ ४१८ ॥

४१९—बभूयाततन्यजगृभ्सववर्थेति निगमे ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६४ ॥

बभूय, आततन्य, जगृभ्स, ववर्थ इन शब्दों में थल् के परे वेद विषय में इट् का अभाव निपातन किया है । भू धातु का वेद में । बभूय । लोक में । बभूविथ । आङ् पूर्वक तनु धातु का वेद में । आततन्या । लोक में । आतेनिथ । ह, प्रसह्यकरणे । जुहोत्यादि धातु का लिट् लकार उत्तम पुरुष के बहुवचन में । जगृभ्स । वेद में जगृहिम् । लोक में । तथा इसी वृञ् धातु का । ववर्थ । वेद में और इसी प्रमाण से लोक में इट् होता है । ववरिथ । ववव । ववम (१४८) वव्रे । ववपे । वववहे । ववमहे । वरिता । वरीता (२६४) वरिष्यति । वरीष्यति । वरिष्यते । वरीष्यते । वारीषति । वारीषाति । वारिषति । वारिषाति । वृणोतु । वृणुताम् । अवृणोत् । अवृणुत । वृणुयात् । वृण्वीत । व्रियात् । व्रियास्ताम् ॥ ४१९ ॥

४२०—लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४२ ॥

वृङ् वृञ् और ऋकारान्त धातुओं से परे जो आत्मनेपदविषयक लिङ् सिच् उन को विकल्प करके इट् का आगम होवे। वृङ् वृञ् ऋकारान्त सब धातु सेट हैं इस लिये प्राप्त विभाषा है । अब इट् को दीर्घ (२६४) प्राप्त है उस का निषेध ॥ ४२० ॥

४२१—न लिङि ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३६ ॥

वृङ् वृञ् और ऋकारान्तों से परे लिङ् के इट् को दीर्घ न होवे । वरिषीष्ट । वरिषीयास्ताम् । अनिट् पक्ष में । वृषीष्ट । अवारीत् । अवारिष्टाम् । अवारिषुः (२६६) अवरिष्ट । अवरीष्ट । अवरीष्यत् । अवरिष्यत् [धुञ्] कम्पने (कांपना) धुनोति । धुनुते । दुधाव । दुधविथ । दुधुवे । धोता । अधौषीत् ।

अधीष्ट। अधीष्यत्। दीर्घान्तोऽपीत्येके * । यह धृञ् धातु किङ्की आचार्यों के मत में दीर्घ जकारान्त भी है। धूनीति। धूनुते। दुधाव। दुधुवे। दुधविथ। दुधोथ। (१४०) इट् विकल्प। कित् लिट् में क्रादि नियम (१४८) से नित्य इट् होता है। दुधुविव। दुधुविम। धविता। धोता। धविथति। धोथति। धाविषति। धाविषाति। धौषति। धौषाति। धाविषतै। धाविषातै। धौषतै। धौषातै। धूनीतु। धूनुताम्। अधूनीत्। अधूनुत। धूनुयात्। धून्वीत्। धूयात्। धविषीष्ट। धौषीष्ट। अधविष्ट। अधोष्ट। अधावीत्। अधाविष्टाम् (३३०) नित्य इट्। अधविष्यत्। अधोष्यत्। स्वादय उभयतोभाषा वृज्वर्जमनुदात्ताः। सु आदि धातु उभयपदौ वृज् को छोड़ के सब अनिट् हैं ॥

अथ परस्मैपादो नव। अब परस्मैपदौ नव ८ धातु कहते हैं [टुदु] उपतापे (क्लेश भोगना) टु कौ इत्संज्ञा (१५०) टुनीति। टुदाव। टुदविथ। टोतासि। टोथति। टौषति। टौषाति। टुनीतु। अटुनीत्। टुनुयात्। टूयात्। अटौषीत्। अटोष्यत् [हि] गतौ वृद्धौ च। हिनीति ॥ ४२१ ॥

४२२—हेरचङि ॥ अ० ॥ ७।३।५६ ॥

अभ्यास से परे हि धातु के हकार को कुल होवे परन्तु चङ् परे न हो तो। हकार का अन्तरतम घकार होकर। जिघाय। जिघ्यतुः। जिघयिथ। जिघेथ। हिनीतु। अहैषीत् [पृ] प्रीतौ। पृणीति। पर्सा। परिथति। प्रियात्। अपार्षीत् [सृ] प्रीतिसेवनयोः। प्रीतिचलनयोरित्यन्ये। स्मृणीति। पस्सार। पस्सरतुः (२५३) पस्सरिथ। पस्सर्य। स्मर्यात् (२५४) अस्पर्षीत् [सृ] इत्येके। स्मृणीति। सस्मार। सस्मारिथ। सस्मर्य। स्मर्यात् (२५५) [आप्] व्याप्तौ (व्यापक हीना) आप्नोति। आप्नतः। आप्नुवन्ति। यहां संयोग पूर्व के होने से शु प्रत्यय के उकार को यण् (२६१) तथा। आप्नुवः (२००) लोप नहीं होता। आप्ता। आप्स्वति। आप्सति। आप्साति। आप्नोतु। आप्नुहि (२०१) संयोग पूर्व के होने से हि का लुक् नहीं होता। आप्नोत्। आप्नुयात्। आप्यात्। आपत् (२१७) अङ्। आप्स्यत् [शक्] शक्ती। शक्नोति। शशक। शेकतुः। शेकिथ। शशक्य। शक्ता। शक्ष्यति। शाक्षति। शाक्षाति। शक्नोतु। अशक्नोत्। शक्नुयात्। शक्न्यात्। अशकत् (२१७) अशक्ष्यत् [राध, साध] संसिद्धौ। राध्नोति। साध्नोति ॥ ४२२ ॥

लोक वेद में सर्वत्र दीर्घान्त धृञ् धातु के प्रयोग बहुधा आते हैं और पाणिनीय (सुसुधृञ्) आदि मूलों में दीर्घान्त ही आता है फिर यह ठीक नहीं बनता कि किङ्की के मत में दीर्घान्त ही किन्तु दीर्घान्त सार्वत्रिक और अन्य प्रयुक्त किङ्की के मत में इत्सान्त ही मात्वाहिये ॥

४२३—राधो हिंसायाम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १२३ ॥

कित् लिट् और सेट् थल् परे हीं तो हिंसा अर्थ में वर्तमान राध धातु का एकार आदेश और अभ्यास का लोप हावे । रराध । रेधतुः । अपरेधतुः । अपरेधुः । रेधिथ । अपपूर्वक राध धातु का हिंसा अर्थ होता है । राधा । साधा । रात्स्यति सात्स्यति । रात्सति । रात्साति । साधोति । असात्सौत् । असाद्धाम् । असात्स्यत् । दुनोतिप्रभृतयोऽनुदात्ताः परस्मैभाषाः । दु आदि धातु अनिट् परस्मैपदी हैं । अथ हावनुदात्तेतौ । अब दो धातु आत्मनेपदी कहते हैं [अशूङ्] व्याप्ती सङ्घाते च (व्याप्ति और इकट्ठा करना) अश्रुते । अश्रुवाते ॥ ४२३ ॥

४२४—अश्रोतेञ्च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७२ ॥

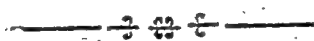
दीर्घ किये अभ्यास के अर्थ से परे अश्रधातु को नुट् का आगम होवे । आनशे । आनशाते । ऊदित् होने से इट् विकल्प (१४०) आनशिषे । आनक्षे । आनशिवहे । आनश्वहे । अशितासे । अष्टासे (२३३) षत्व । अशिष्यते । अक्ष्यते । आशिषतै । आशिषातै । आक्षतै । आक्षातै । अश्रुताम् । अश्रुवै । आश्रुत । अश्रुवीत । अशिषीष्ट । अक्षीष्ट । आशिष्ट । आष्ट । आक्षाताम् । आशिष्यत । आक्ष्यत [षिष] आस्कन्दने (शोखना) स्तिष्वनुते । तिष्ठिषे । स्तेषितासे । अस्तेषिष्ट ।

अथागणान्तात्परस्मैपदिनः । अब इस गण के अन्त पर्यन्त परस्मैपदी धातु कहते हैं [तिक, तिग] नतौ च (चादास्कन्दने) यहां चकार से आस्कन्दन अर्थ की अनुवृत्ति आती है । तिक्रोति । तिग्नोति । तितेक । तेगितासि । तेगिष्यति । तेगिषति । तेगिषाति । तिग्नोतु । अतिग्नोत् । तिग्नयात् । तिग्यात् । अतेगीत् । अतेगिष्यत् [षष] हिंसायाम् । सन्नोति [जिधृषा] प्रागल्भ्ये (अतिदृढ़ होना) धृष्णोति । दधर्ष । धर्षिता [दध्नु] दध्मने (अहङ्कार) (१३८) दध्मनाति । ददध्म (२७१) कित्वा हो कर दध्म धातु के अनुनासिक का लोप (१३८) होकर न लोपको (४२) असिद्ध मानने से (१२५) एत्वाभ्यास लोप नहीं पाता इस लिये ॥ ४२४ ॥

४२५—वा०—दध्मेरेत्वं वक्तव्यम् ॥

दध्म धातु का एत्व और अभ्यास का लोप हो कित् लिट् और सेट् थल् परे हीं तो । देभतुः । देभुः । देभिथ । दधिता । दध्यात् (१३८) [ऋधु] ह्रस्वौ । ऋधोति । आनर्द्ध । अर्दिता । अर्दिष्यति । अर्दिषति । अर्धिषाति । ऋधोतु । आर्धीत् । ऋधुयात् । ऋध्यात् । आर्धीत् । आर्धिष्यत् (छन्दसि) यह गणसूत्र अधिकार है यहां से आगे इस गण के अन्त पर्यन्त सब धातु वैदिक विषयक हैं [लप] प्रीणन इत्येके । कोई के मत में प्रीणनार्थ लप धातु वैदिक है । लप्णोति । लुभ्नादि

गण में पाठ होने से श्लक्ष्ण होता है। अतर्पीत् [अह] व्याप्नोति । अह्नोति । माभ-
वानहीत् (१६२) [दघ] घातने पालने च (मारना और रक्षा) दघ्नोति ।
ददाघ । देघतुः । देघिथ । दघिता । दघिष्यति । दाघिषति । दाघिषाति ।
दघ्नीतु । दघ्नवानि । अदघ्नीत् । दघ्नुयात् । दघ्यात् । अदाघीत् । अदघीत् ।
अदघिष्यत् [चसु] भक्षणे । चमूनीति [रि, चि, चिरि, जिरि, दाग्य, ट,]
हिंसायाम् । रिणीति । चिणीति । अयं भाषायामपीत्येके । कोई के मत में चि धातु
लौकिक भी है । ऋचोत्येक एवाजादिरित्यन्ये । किङ्की के मत में रि, और चि
दो नहीं किन्तु ऋचि अजादि अजन्त एक ही दो अक्षर का धातु है ऋचिणीति ।
चिरिणीति । जिरिणीति । दाग्योति । टणीति । चिचिराय । चिचिरियतुः । इत्यादि
वैदिक प्रयोगों में जैसा प्रयोग आ जावे उस के अनुकूल सूत्रों से सिद्ध समझनी
चाहिये । तिकाद्य उदात्ता उदात्तेतः परस्मैपदिनः । ये तिक आदि धातु षट्
परस्मैपदी हैं (वृत्) इति श्नुविकरणः स्वादिगणः समाप्तः ॥ यह श्नु विकरण
वाला स्वादि गण समाप्त हुआ ॥



अथ तुदादयः ॥

[तुद] व्यथने (पीड़ा) ॥ ४२५ ॥

४२६—तुदादिभ्यः शः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७७ ॥

तुदादि धातुओं से परे शप् का बाधक श प्रत्यय होवे कर्त्तावाची सार्वधातुक
परि हो तो । अपित् श के छित् होने से गुण निषेध सर्वत्र । तुदति । तुदते ।
तुतोद । तुदोदिथ । तुतुदे । तोत्ता । तोत्स्यति । तोत्स्यते । तुदतु । तुदताम् ।
अतुदत् । अतुदत । तुदेत् । तुदेत । तुद्यात् । तुत्सीष्ट (१६३) अतौत्सीत् । अतौत्ताम् ।
(१३५) अतुत्त । अतुत्ताताम् । अतोत्स्यत् [णुद] प्रेरणे (आज्ञा करना)
नुदति । नुदते । नुनोद । नुनुदे [दिथ] अतिसर्जने (देना) दिथति । दिथते ।
देष्टा । देक्षति । देक्षते । देक्षति । देक्षाति । देक्षते । देक्षाते । दिक्षीष्ट । अदिक्षत् ।
अदिक्षत (२०७) [अस्ज] पाके (पकाना) भृज्जति । भृज्जते (२८६) संप्रसारण
सकार को श्चुव शकार और शकार को जश्च होजाता है ॥ ४२६ ॥

विज धातु से परे जो इडादि प्रत्यय सो डित्त्वत् हो । उद्विजिता । उद्विजिष्यते ।
डित् होने से लघूपध गुण नहीं होता । उद्विजिषीष्ट । उद्विजिष्ट [ओलजी, ओ-
लस्जी] ब्रीड़ायाम् (प्रेरणा और जज्जा) लजते । लेजि । लजितासे । लजिष्यते ।
लाजिष्यते । लाजिषाते । लजताम् । अलजत । लजत । लजिषीष्ट । अलजिष्ट ।

अलजिष्यत । लज्जति । ललज्जे । अस्ज धातु के समान ष्चुत्व और जश्च । जुषाद्य उदात्ताच्चत्वारोऽनुदात्ते आत्मनेपदिनः । ये जुष आदि चार धातु सेट् आत्मनेपदी हैं ॥

अथ परस्मैपदिनो दशोत्तरशतम् । अब एक सौ दश ११० धातु परस्मैपदी कहते हैं [औत्रच्] क्कृदने (काटना) वृश्चति (२८६) सम्प्रसारण । वव्रश्च । वव्रश्चतुः । वव्रश्चुः । वव्रश्चिथ वव्रष्ठ । यहां अभ्यास के रेफ को ऋ सम्प्रसारण (२८२) होकर ऋ को अकार (१०६) होता है उस ऋकार को स्थानिवत् मान ने से सम्प्रसारण के परे पूर्व वकार को सम्प्रसारण नहीं होता । जदित् होने से इट् विकल्प (१४०) व्रश्चिता । व्रष्टा । व्रश्चिष्यति । व्रश्च्यति । व्रश्चिषति । व्रश्चिषाति । व्रचति । व्रजाति । वृश्चतु । अवृश्चत् । वृश्चेत् । वृश्चात् । अवृश्चीत् । अव्राचीत् [व्यच] व्याजीकरणे (छल करना) विचति (२८६) विव्याच (२८२) विविचतुः (२८६) व्यचितासि । व्यचिष्यति । व्यचिषति । व्यचिषाति । विचतु । अविचत् । विचेत् । विच्यात् । अव्याचीत् । अव्यचीत् [उक्छि] उक्छे (ऊकना) उक्छति । उक्छाच्चकार । उक्छाम्भूव । उक्छामास । उक्छिता [उक्छी] विवासे (परदेश वास) उक्छति [ऋच्छ] गतीन्द्रियप्रलयमूर्त्तिभावेषु (गति, इन्द्रियों का प्रलय और शरीर का वनना) ऋच्छति । आनर्च्छ (२५८) गुण । आनर्च्छतुः । आनर्च्छुः । आनर्च्छिथ । ऋच्छिता । [मिच्छ] उत्तल्लेशे (पीड़ा) मिच्छति । मिमिच्छ । अमिच्छीत् [जर्ज, चर्च, भर्भ] परिभाषणभर्त्सनयोः (बड़त बोलना वा धमकाना) जर्जति । चर्चति । भर्भति [त्वच] संवरणे (ढांकना) त्वचति । तत्वाच [ऋच] सुतौ (गुण कथन) ऋचति । आनर्च । आनृचतुः [उज] आर्जवे (कोमलता) उजति । उजांकार [उज्भ] उत्सर्गे (त्याग) उज्भति । उज्भांचकार [लुभ] विमोहने (व्याकुलता) लुभति । लुलोभ । लोभिता (२१२) लोब्धा । लोभिष्यति । लोभिषति । लोभिषाति । लुभतु । अलुभत् । लुमेत् । लुभ्यात् । अलोभीत् । अलोभिष्यत् [रिफ] कथनयुद्धनिन्दा हिंसादानेषु (अपनी प्रशंसा, युद्ध निन्दा, हिंसा और ग्रहण करना वा देना) रिफति । रिरिफ । रिफिता । रिफिष्यति । रिफिषति । रिफिषाति । रिफतु । अरिफत् । रिफेत् । रिफ्यात् । अरिफौत् । अरिफिष्यत् [रिह] इत्येके । रिहति । रिरिह । [तप, तप्] तप्ती । तपति । ततर्प । तर्पिता । तप्सति । तप्यात् । तप्यात् (१३८) उपधाऽनुनासिक लोप । अतर्पीत् । यहां (२८०) वार्त्तिक में अङ् का अपवाद होने से दिवादि के अन्तर्गत पुषादि के तप का ग्रहण होता है । इस लिये नित्य सिच् होता है [तफ, तप्फ] इत्येके ॥ ४२८ ॥

४२८—वा०—जे तप्प्तादीनामुपसंख्यानम् ॥

तप्प्ता आदि धातुओं की नुम् ही श प्रत्यय परे हो तो यह वार्त्तिक (७।१।५६)

सूत्र पर है। तम्फ आदि धातुओं में जो अनुनासिक सहित हैं उन के भी अनुनासिक का लोप श के परे (१३८) हो जाता है। और नुम् विधान सामर्थ्य से फिर लोप नहीं होता है। तम्फति। तटम्फ। तम्फिता। तफ्यात् (१३८) [तुप, तुम्फ, तुफ, तुम्फ] हिंसायाम्। तुम्पति। तुम्फति। तुप्यात्। तुफ्यात् [टप, टम्फ] उत्क्षेपे (पौड़ा) टम्पति। टम्फति। टप्यात्। टफ्यात् [ऋफ, ऋम्फ] हिंसायाम्। ऋम्फति। आनर्फ। ऋम्फाञ्चकार। ऋफ्यात् [गुफ, गुम्फ] ग्रन्थे (बन्धन) गुम्फति। जुगुम्फ [उभ, उम्भ] पूरणे (पूर्ति) उभति। उम्भति। उवोभ। उम्भाञ्चकार। उभ्यात् [शुभ, शुम्भ] शोभार्थे। शुभति। शुशुभ। शुशोभ। शुभ्यात् (४२८) वार्त्तिक में कहे तम्फादि धातु पूरे हुए [टभी] ग्रन्थे। टभति। ददर्भ। अदर्भीत्। अदर्भिष्यत् [चृती] हिंसाग्रन्थनयोः। चृतति। चचर्त। चचृततुः। चचर्त्तिष्य। चर्त्तिता। चर्त्तिष्यति (३८७) चत्स्येति। चर्त्तिषति। चर्त्तिषाति। चत्सति। चत्साति। चृततु। अचृतत्। चृतेत्। चृत्यात्। अचर्तीत्। अचर्त्तिष्यत् [विध] विधाने। विधति। विवेध। विविधतुः। वेधिता। वेधियति। वेधषति। वेधिषाति [जुड] गतौ। जुडति। अजोडोत् [जुन] इत्येके। जुनति [मृड] सुखने मृडति। अमर्डोत् [पृड] च। पृडति [पृण] प्रोणने (हसि) पृणति। पपर्ण [वृण] च। वृणति। अवर्णीत्। अवर्णिष्यत् [मृण] हिंसायाम्। मृणति। मर्णिता [तुण] कौटिल्ये। तुणति। तोणिष्यति [पुण] कर्मणिशुभे (शुभकर्म) पुणति। पोणिषति। पोणिषाति [मुण] प्रतिज्ञाने (प्रतिज्ञा) मुणति। मुणतु [कुण] शब्दोपकरणयोः (शब्द और उपकार) कुणति। अकुणत् [शुन] गतौ। शुनति। शुनेत् [द्रुण] हिंसागतिकौटिल्येषु (हिंसा, गति और कुटिलता) द्रुणति। द्रुण्यात् [घृण, घूर्ण] भ्रमणे (डोलना) घृणति। घूर्णति। जुघोण। जुघूर्ण [घुर] ऐश्वर्यदोष्योः (धन और प्रकाश) सुरति। सुषोर। सौरिता। सौरिष्यति। सौरिषति। सौरिषाति। सुरतु। असुरत्। सुरेत्। सुर्यात् (१८७) दीर्घ [कुर] शब्दे। कुरति ॥ ४२८ ॥

४३०—न भकुर्कुराम् ॥ अ० ॥ ८। २। ७६ ॥

रेफान्त और वकारान्त भसञ्जक तथा कुर और कुर इन की उपधा इक् की दीर्घ न होवे (१८७) सूत्र से दीर्घ प्राप्त है। उस का अपवाद यह सूत्र है। कुर्यात्*

* यहां भट्टोजिदीक्षित ने लिखा है कि (४३०) सूत्र यहां नहीं लगता क्यों कि वहां कुर कइने से कृञ् धातु का ग्रहण होता है इस से। कुर्यात्। प्रयोग होता है सो संदिग्ध है क्यों कि जो (लक्षणप्रतिपदीकयोः) इस परिभाषा का आशय करें तब तो कृञ् का ग्रहण ही न हो क्यों कि कृञ् का कुर लाक्षणिक और कुर धातु प्रतिपदीक है। इस लिये इस परिभाषा का आशय न करें तो भी लाक्षणिक और प्रतिपदीक दोनों का ग्रहण हीवे फिर ऐसी परिभाषा कौन है कि जिससे लाक्षणिक कृञ् का ग्रहण होजावे और प्रतिपदीक कुर का नही ॥

[खुर] छेदने (दोभाग करना) खुरति । खुखोर । खूयात् [मुर] संचेष्टने । मुरति ।
 मूयात् [चुर] विलेखने (और कर्म) चुरति । चूयात् [घुर] भीमार्थशब्दयोः
 (भयंकर पदार्थ और शब्द) घुरति । घूयात् [पुर] अग्रगमने (आगे चलना) पुरति ।
 पूयात् [वृह] उद्यमने (उद्यम) वृहति । ववर्ह । ववृहत् । ऊदित् होनेसे इट् विकल्प ।
 ववर्हिथ । ववर्ढ । ववृहिव । ववृह्व । वर्हिता । वर्ढा । वर्हिष्यति । वर्च्यति । वर्हि-
 षति । वर्हिषाति । वर्चति । वर्चाति वृहत् । अवृहत् । वृहेत् । वृह्यात् । अवर्हीत् ।
 अवृचत् (२०७) क्त्वा । अवर्हिष्यत् । अवर्च्यत् [सृह] इत्ये के इस में इतना विशेष है
 कि। भर्च्यति (२०४) भर्चति । भर्चाति । अभृचत् । अभर्च्यत् [लृह, लृह्व, लृहू]
 हिंसार्थाः । लृहति । स्लृहति । लृहति । ततर्ह । तस्तर्ह । तलृह । तर्हिता ।
 तर्ढा । स्तर्हिता । स्तर्ढा । लृहिता । लृढा । लृह्यात् । अलृचत् । अस्तृचत् [इष]
 इच्छायाम् । इषति । इयेष । एषिता । एषिषति । एषिषाति । इषत् । ऐषत् । इषेत् ।
 इष्यात् । ऐषीत् । ऐषिष्यत् [मिष] स्पृष्टायाम् (ईर्ष्या) मिषति । मिमेष [किल]
 श्वेत्यक्लीडनयोः । श्वेताई और क्लीडा । किलति । केलिता [तिल] स्नेहने (चिक-
 नाई) तिलति । नेलिष्यति [चिल] वसने (वस्त्र) चिलति । चेलिषति । चेलिषाति ।
 चिलत् [चल] विलसने (शोभा) चलति । अचलत् [इल] स्वप्ननेपणयोः (सोना और
 फेंकना) इलति । इयेल । ईलत् । ऐलत् । इलेत् [विल] संवरणे (आच्छादन)
 विलति । विल्यात् [विल] भेदने (खादना) विलति । अवेलीत् [विल] गहने (गाढ़)
 निलति । अनेलिष्यत् [हिल] भावकरणे (प्रीति करना) हिलति [शिल, षिल]
 उच्चे । शिलति । सिलति [मिल] श्लेषणे (मिलना) मिलति [लिख] अक्षर
 विन्यासे (अक्षरवनाना) लिखति । लिलेख । लेखिता । लेखिष्यति । लेखिषति ।
 लेखिषाति । लिखत् । अलिखत् । लिखेत् । लिख्यात् । अलेखीत् । अलेखिष्यत्
 [कुट] कौटिल्ये (कुटिलाई) कुटति । चुकोट । चुकुटत् (३४५) डित् हो कर ।
 चुकुटिथ । कुटिता । कुटिष्यति । काटिषति । काटिषाति । कुटिषति । कुटिषाति ।
 यहां णिन् पक्ष में डित्त्व (३४५) न होनेसे गुण होता है । और डित् होने से
 सब कुटादिकों में गुण का निषेध जानी । कुटत् । अकुटत् । कुटेत् । कुव्यात् ।
 अकुटीत् । अकुटिष्यत् (३४५) सूत्र में कहे कुटादि धातु इसी कुट से कूड् धातु
 पथ्यन्त जानी [पुट] संश्लेषणे । पुटति । पुपोट । पुटिता [कुच] सङ्कोचने
 (इकट्ठा होना) कुचति । चुकुचिथ [गुज] शब्दे । गुजति । गुजिष्यति [गुड]
 रचायाम् । गुडति । गोडिषति । गोडिषाति । गुडिषति । गुडिषाति [डिप]
 क्षेपे (फेंकना) डिपति । डिपत् [कुर] छेदने । कुरति । अचकुरत् । कुर्यात् (४३०)

[रफुट] विकसने (खिलना) स्फुटति । पुस्फुटिथ [सुट] आक्षेपमर्दनयोः (खण्डन और मलना) सुटति । सुटिता [चुट] छेदने (१८८) विकल्प से श्यन् । चुट्यति । चुटति । चुटिष्यति । चुट्यतु । चुटतु । अचुट्यत् । अचुटत् । चुट्येत् । चुटेत् । [तुट] कलहकर्मणि (विरोध करना) तुटति । तोटिषति । तोटिषाति । तुटिषति । तुटिषाति [चुट, कुट,] छेदने । चुटति । कुटति [जुड] बन्धने (जोड़ना) जुडति । जुडतु [कड] मदे (अहङ्कार) कडति [लुट] संश्लेषणे (मिलना) लुटति । अलुटत् [लुठ] इत्येके । लुठति । लुठेत् [कड] घनत्वे (सघन) कडति । अकडोत् [कुड] बाल्ये (बालकपन) कुडति [पुड] उत्सर्गे (त्याग) पुडति [घुट] प्रतिघाते (घोटना) घुटति । जुघुटिथ । घुटिता [तुड] तोड़ने (तोड़ना) तुडति । तुडिष्यति [थुड, स्युड] संवरणे । थुडति । स्युडति । तुस्युडिथ [स्फुड] इत्येके । स्फुडति [खुड, कुड] इत्यन्ये । खुडति । कुडति [कुड] तंघातइत्येके । कुडति [स्फुर] स्फुरणे (चेतनता) स्फुरति । पुस्फोर [स्फुर] इत्येके । स्फुरति । [स्फुल] संचलने (चंचलता) स्फुलति [स्फुड, चुड, वुड] संवरणे । स्फुडति । चुडति । वुडति [कुड, भुड] निमज्जनइत्येके । कुडति । भुडति । भुडिता । ब्रश्चादय उदात्ता उदात्तेतः परस्मैभाषा दशोत्तरशतम् । ब्रश्च आदि एक सौ दश ११० धातु सेट् परस्मैपदी हैं [गुरी] उद्यमने । उदात्तोऽनुदात्तेदात्मनेपदी । यह धातु सेट् आत्मनेपदी है । गुरते । जुगुरे । गुरिता । गुरिष्यते । गोरिषतै । गोरिषातै । गुरिषतै । गुरिषातै । गुरताम् । अगुरत । गुरेत । गुरिषौष्ट । अगुरिष्ट । अगुरिष्यत । इतश्चत्वारः परस्मैपदिनः । यहाँ से आगे चार धातु परस्मैपदी हैं [गु] स्तवने (स्तुति) गुवति । गुनाव । अनुगुीत् [धू] विधूनने (कंपाना) ध्रुवति । दुधाव । दुधुवतुः । ध्रुविता । अधुवीत् । ये दोनों सेट् हैं [गु] पुरीषोत्सर्गे (मल त्यागना) गुवति । जुगाव । जुगुविथ । जुगुथ । गुता । गुथ्यति । गौषति । गौषाति । गुषति । पुषाति । गुवतु । अगुवत् । गुवेत् । गूयात् (१६०) अगुषीत् । अगुताम् । (२४१) सिच् लोप । अगुषुः [ध्रु] गतिस्त्रैर्ययोः (चलना और स्थिति) [ध्रुव] इत्येके । ध्रुवति । इत्यादि । गु के समान रूप जानो । और ध्रुव धातु तो सेट् है । दुध्रुविथ । ध्रुविता । ध्रूव्यात् (१८७) दीर्घ । अत्रुवीत् [कृड्] शब्दे [कुड्] शब्दइत्येके यह धातु दीर्घान्त पक्ष में सेट् और क्खान्त पक्ष में अनिट् है । कुवति । चुकुविथ । कुविता । अकुविष्ट । क्ख पक्ष में । चुकुविथ । चुकुथ । कुता । अकुत (वृत्) । इति कुटादयः समाप्ताः । ये (३४५) सूत्र में कहे कुटादि धातु समाप्त हुए ॥

[पृष्ठ] व्यायामे (कसरत) यह धातु बहुधा वि और आङ् उपसर्ग

पूर्वक ही प्रयुक्त आता है । व्याप्रियते (२३८ । १५८) व्याप्रियेते । व्याप्रियन्ते । व्यापप्रे । व्यापप्राते । व्यापप्रिषे । पत्तासे । परिष्यते । पार्षते । पार्षाते । प्रियताम् । अप्रियत । प्रियेत । पृषीष्ट (२४०) अपृष्ट (२४१) अपृषाताम् । अपृषत [मृड्] प्राणत्यागे (शरीर कूटना) ॥ ४३० ॥

४३१—स्त्रियतेलुङ्लिङोश्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६१ ॥

मृड् धातु से परे लुङ्लिङ् और शित् विषय में आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय ही अन्यत्र नहीं । मृड् धातु के डित् होने से सर्वत्र आत्मनेपद सिद्ध ही हैं फिर विशेष विषय में कहने से यह नियम हुआ कि लुङ् लिङ् और शित् से भिन्न लकारों में परस्मैपद ही हों । स्त्रियते । ममार । मस्त्रतुः । मस्त्रुः । ममर्थ । मस्त्रिव । मस्त्रिमा । मत्तासि । मरिष्यति । मार्षति । मार्षाति । स्त्रियताम् । अस्त्रियत । स्त्रियेत । मृषीष्ट । अमृत । अमृषाताम् । अमरिष्यत् ॥

अथ परस्मैपदिनः सप्त । अब सात ७ धातु परस्मैपदी कहते हैं [रि, पि] गती । रियति । पियति । रिराय । पिपाय । रिरियतुः । पिपयिथ । पिपेथ । पिता । पेथति । पैषति । पैषाति । पियतु । अपियत् । पियेत् । पीयात् । अपैषीत् । अपैष्टाम् । अपेथत् [धि] धारणे । धियति । दिधयिथ । दिधेथ । धेता । [जि] निवासगत्योः । चियति । चीयात् । अचैषीत् । र्यादयोऽनुदात्ताः । ये रिआदि अनिट् हैं [घू] प्रेरणे (आज्ञा) सुवति । सुषाव । सुषविथ । सविता । सविष्यति । साविषति । साविषाति । सुवतु । असुवत् । सुवेत् । स्यात् । असावीत् । असाविष्टाम् । असविष्यत् [कृ] विक्षेपे (फैलाना) किरति । किरतः (२६५) चकार । चकरतुः । चकरुः (२५८) गुण । करीता (२६४) करिता । करीष्यति । करिष्यति । कारीषति । कारीषाति । कारिषति । कारिषाति । किरतु । अकिरत् । किरत् । कार्यात् (२६५ । १८७) अकारीत् । अकारिष्टाम् (२६६) अकरीष्यत् । अकरिष्यत् [गृ] निगरणे (खाना वा उपदेश करना) ॥ ४३१ ॥

४३२—अचि विभाषा ॥ अ० ॥ ८ । २ । २१ ॥

अजादि प्रत्यय परे हो तो गृ धातु के रेफ को विकल्प करके लकारादेश होवे । गिरति । गिलति । जगाल । जगार । जगलतुः । जगरतुः । गलीता । गलिता । गरीता । गरिता । गीर्यात् । अगालीत् । अगारीत् । अगालिष्टाम् । अगारिष्टाम् । उदात्ताः परस्मैपदिनः । सु आदि धातु से ट् परस्मैपदी हैं [ट्ङ्] आदरे (सत्कार) यह धातु आङ्पूर्वक बहुधा आता है । आद्रियते (२३८) रिङ् । आद्रियेते । आद्रे । अद्रिषे ।

आदर्शते । आदरिष्यते । आदार्शते । आदार्शते । आद्विष्यताम् । आद्विष्यत ।
आद्विष्येत । आदृषीष्ट (२४०) आदृत । आदृषाताम् । आदरिष्यत [ष्टङ्] अवस्थाने
(स्थिति) ध्रियते । दध्ने । दध्निषे । अनुदात्तावात्मनेपदिनी । ये दीनो धातु अनिट्
आत्मनेपदी हैं ॥

अथ परस्मैपदिनः षोडश । अब सोलह धातुपरस्मैपदी कहते हैं [प्रच्छ]
जीप्सायाम् (जनाने की इच्छा) पृच्छति । पृच्छतः (२८६) संप्रसारण । पप्रच्छ ।
पप्रच्छत् । पप्रच्छिष्य । अनिट् पत्र में । पप्रष्ट (२३३) षत्व । प्रष्टा । प्रच्छति ।
प्राश्चति । प्राचाति । पृच्छतु । अपृच्छत् । पृच्छेत् । पृच्छ्यात् । अप्राचीत् । अप्रा-
ष्टाम् । अप्राचुः । अप्रच्छत् (वत्) किरादयः समाप्ताः । ये किरति आदि पांच धातु
पूरे हुए इन से सन्नत प्रक्रिया में विशेष कार्य होते हैं [सृज] विसर्गे (रचना
वा त्यागना) सृजति । संसर्ज । संसृजतुः । संसर्जिष्य (२७७) मस्त्रष्ट (२३३ । २७८)
स्त्रष्टा । स्त्रक्षति । स्त्राचति । स्त्राचाति । सृजत । असृजत् । सृजेत् । सृज्यात् ।
अस्त्राचीत् । अस्त्राष्टाम् । अस्त्रक्षत् [टुमस्जो] शङ्खी । टु और ओकार की वृत्संज्ञा ।
(स्तोः छुना श्चुः) सूत्र से स को श और श को ज होकर । मज्जति । ममज्ज ।
ममज्जिष्य । अनिट् पत्र में (४०८) नम प्राप्त है सो मित् होने से अन्त्य अच् से
परे होवे तो सकार के मध्य पाती होने से संयोगादि लोप (२१०) नहीं हो सकता
इस लिये ॥ ४३२ ॥

४३३-आ०-मस्जेरन्त्यात्पूर्वो नुम्बक्तव्यः ॥

मस्ज धातु के अन्त्य वर्ण जकार से पूर्व नुम् कहना चाहिये । फिर सकार के
संयोगादि होने से लोप (२१०) होकर । मस् न्ज् + यत् = मसङ्क्ष । मङ्क्ता ।
मङ्क्षति । मङ्क्षति । मङ्क्षाति । मज्जतु । अमज्जत् । मज्जेत् । मज्ज्यात् । अमा-
ङ्क्षीत् । अमाङ्क्षाम् । अमाङ्क्षुः । अमङ्क्षत् [रुजो] भङ्गे (टटना) रुजति ।
रोक्ता । रोक्षति । अरौक्षीत् । अरौक्षाम् [भुजो] कौटिल्ये (कुटिलता) भुजति ।
बुभोज । बुभोजिष्य । बुभोक्ष्य । भोक्ता । अभौक्षीत् । अभौक्षाम् [क्षुप] स्यर्शे । क्षुपति ।
क्षोप्ता । अक्षौक्षीत् [रुश, रिश] हिंसायाम् । रुशति । रिशति । रोष्टा । रेष्टा ।
अरुक्षत् । अरिक्षत् (२०७) [लिश] गतौ । लिशति । लेक्षति । लिशतु । अलिक्षत् ।
[सृश] संसर्शे (कूना) सृशति । पसर्श । पसर्शिष्य । स्रष्टा (२७५) स्रष्टा ।
स्रक्षति । स्रक्षति । स्रक्षति । स्रचाति । स्रर्क्षति । स्रर्क्षति । स्रर्क्षति । स्रर्क्षतु । अस्रक्षत् ।
स्रक्षेत् । स्रक्ष्यात् । अस्त्राचीत् । अस्त्राचीत् । अस्त्राष्टाम् । अस्रक्षत् । अस्रक्षत् । अस्रक्षत् ।
[विच्छ] गतौ (१६६) आय प्रत्यय (१६७) धातु संज्ञा । विच्छायति । विच्छायतः ।

आम् प्रत्यय (१६८) विच्छायाञ्चकार । विच्छायांभूष । विच्छायामास (१६८)
 विविच्छ । विविच्छतुः । विच्छायितासि । विच्छितासि । विच्छायिष्यति । विच्छि
 ष्यति । विच्छायिषति । विच्छायिषाति । विच्छिषति । विच्छिषाति । विच्छायतु
 अविच्छायत् । विच्छायेत् । विच्छायात् । विच्छात् । अविच्छायीत् । अविच्छीत्
 अविच्छायिष्यत् । अविच्छिष्यत् [विश] प्रवेशने । विशति । वेष्टा । अवैक्षीत् । अवै
 ष्टाम् [मृश] आमर्शने (विचारना) मृशति । मृष्टा । मर्ष्टा (२७५) अमर्ष्टीत् ।
 अमर्चीत् । अमृचत् [णट्] प्रेरणे । इस धातु को प्रथम इसी गण में लिख चुके हैं
 दूसरी बार यहां कर्त्तृभिप्राय क्रियाफल में भी नित्य परस्मैपद होने के लिये पढ़ा
 है [षट्] विशरणगत्यवसादनेषु । इस धातु को इसी प्रकार का भ्वादि में लिख
 चुके हैं वही के तुल्य रूप भी जानो कुछ विशेष नहीं फिर यहां लिखने का य
 प्रयोजन है कि कदन्त शब्द प्रत्यय में शप् विकरण वाले को नित्य नुम् और
 विकरण वाले को विकल्प होता है । और शप् और श विकरण का स्वर भी पृथक्
 होता है [शट्] श्वातने । इस को भी भ्वादि में लिख चुके हैं फिर इस का पाठ
 केवल स्वर के पृथक् होने के लिये है । प्रच्छादयो विच्छिर्वर्जमनुदात्ताः परस्मैप
 दिनः । ये प्रच्छादि धातु विच्छ को छोड़ के अनिट् और सब परस्मैपदी हैं ।

अथ षट् स्वरितेतः । अव छः ६ धातु स्वरितेतु (उभयपदी) कहते हैं [मिल
 सङ्गमे (समागम) (मिल, संश्लेषणे) धातु प्रथम लिख चुके हैं । उस को फि
 दूसरी बार कर्त्तृभिप्राय अर्थ में आत्मनेपद होने के लिये पढ़ा है । मिलति । मि
 लते । मिमेल । मिमिले । मेलिता । मेलिष्यते । मेलिषते । मेलिषाते । मिलताम्
 मिलतु । अमिलत् । मिलेत् । मिल्यात् । अमिलीत् । अमेलिष्यत् । यह धातु से
 है [सुच्] मोक्षणे (कूटना) ॥ ४३३ ॥

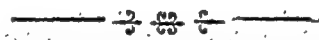
४३४-शे मुचादीनाम् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ५८ ॥

श प्रत्यय के परे मुचादि धातुओं को नुम् का आगम होवे । मुञ्चति । मुञ्चते
 मुमीच । मुमुचे । मोक्ता । मोक्षते । मोक्षति । मोक्षते । मोक्षति । मोक्षति । मोक्षति
 मुञ्चतु । मुञ्चताम् । अमुञ्चत् । अमुञ्चत । मुञ्चेत् । मुञ्चेता । मुचात् । मुचीष्ट । अमुच
 (२१७) अङ् । अमुक्त । अमुचाताम् । अमोक्षत् । अमोक्षत [लुप्लृ] क्तेदने
 लुम्पति । लुंपते । लुप्यात् । अलुपत् । अलुप्त [विट्] लाभे (प्राप्ति) विन्दति
 विन्दते । विवेद । विविदे । वेत्ता । वेत्स्यति । परिवेत्ता [लिप्] उपदेहे (लोप
 वा वृद्धि) लिम्पति । लिंपते । लिप्ता । अलिपत् । अलिप्त (२८२) अङ् । अलिपत । अलिप्त (२८३)
 [षिच] चरणे (सींचना) सिञ्चति । सिञ्चते । सिचात् । असिञ्चत् (२८२) असिच

(२६३) असिक्त । मुन्नादयोऽनुदात्ताः स्वरिते उभयपदिनः । ये मुच आदि धातु अनिट् उभयपदी हैं ॥

अथ परस्मैपदिनः [कृत्तौ] क्तेदने । कृन्तति । चकर्त्त । कर्त्तिता । कर्त्तिष्यति (३६७) कर्त्स्यति । कर्त्तिषति । कर्त्तिषाति । कर्त्सति । कर्त्साति । कृन्ततु । अकृन्तत् । कृन्तेत् । कृत्यात् । अकर्त्सीत् । अकर्त्तिष्यत् । अकर्त्स्यत् [खिद] परिधाते (पौडा) यह धातु दीनता अथ में दिवादि और रुधादिकों में पड़ा है । खिन्दति । चिखेद । खेत्ता । खेत्स्यति । खिद धातु अनिट् है [पिशि] अवयवे । पिंशति । पिंशते । पिपेश । पेशिता । पेशिष्यति । पेशिषति । पेशिषाति । पिंशतु । अपिंशत् । पिंशित् । पिश्यात् । अपेशीत् । अपेशिष्यत् (हत्) मुचादयः । ये (४३४) सूत्र में कहे मुच आदि धातु पूरे हुए ॥

इति शविकरणमुदादिगणः समाप्तः ॥



अथ रुधादिगणः ॥

अथ नव स्वरिते इरितश्च । अब नौ धातु उभयपदी कहते हैं [रुधिर] आवरणे (आच्छादन) इर् भाग इत्संज्ञा ही कर ॥ ४३४ ॥

४३५—रुधादिभ्यः श्म ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७८ ॥

रुध आदि धातुओं में शप् का अपवाद श्म प्रत्यय हो कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो । श्म मित् प्रत्यय होने से अन्य अचरु से परे धकार से पूर्व होता है । रु + श्मन् + ध् + तिप् = रुणद्धि । शकार मकार की इत्संज्ञा और एत्व होता है । रुधः (३५२) अकार लोप । एत्व को असिद्ध मान कर नकार को अनुस्वार और अनुस्वार को परसवर्ण करने में अकारलोप को स्थानिवत्भाव प्राप्त है उस का अनुस्वार और परसवर्ण विधि में निषेध हो जाता है । रुन्धन्ति । रुणक्षि । रुन्धे । रुन्धाते । रुन्धते । रुरोध । रुरुधतुः । रुरोधिष्य । रुरुधे । रोद्धा । रीत्स्यति । रीत्स्यते । रीत्स्यति । रीत्साति । रीत्सतै । रीत्सातै । रुणधति । रुणधाति । रुणधातै । रुणधानै । रुणहु । रुन्धात् । रुन्धाम् । रुन्धन्तु । रुन्धि । रुणधानि । रुणधाव । रुन्धाम् । रुन्धाताम् । रुणधै । अरुणत् । अरुन्धाम् । अरुन्धन् । अरुणत् । अरुणः । यहां पदान्त धकार की प्रथम जश्त्व ही कर (३५१) सूत्र की दृष्टि में जश्त्व सिद्ध होने से दकार को रु विकल्प से (३५१) होता है । अरुणधम् । रुन्ध्यात् । रुन्ध्याताम् ।

रुध्यात् । इरित् होने से अङ् विकल्प (१३८) अरुधत् । अरुधताम् । अरोत्सीत् ।
 अरुद्ध । अरुत्ताताम् । अरोत्स्यत् [भिद्वि] विदारणे (भेद) भिनत्ति । भिन्ते ।
 विभेद । विभिदे । भेत्ता । भेत्स्यति । भेत्सति । भेत्ताति । भिनत्तु । अभिनत् ।
 अभिनः । अभिनदम् । अभिन्त । भिन्ध्यात् । भिध्यात् । अभिदत् । अभिद्वीत् । अ-
 भेत्ताम् । अभिन्त [छिद्वि] द्वैधीकरणे (दो भाग करना) छिनत्ति । अच्छिनत् ।
 अच्छिनः । अच्छिदत् । अच्छेत्सीत् । अच्छिन्त [रिचिर्] विरेचने (वमन क-
 रना) रिणक्ति । रिङ्क्ते । रिरेच । रिचिरे । रिक्ता । रिच्यते । रिच्यते । रिच्यते । रिणक्तु
 रिङ्क्ताम् । अरिणक् । अरिचत् । अरिक्त [विचिर्] पृथग्भावे (अलग होना)
 विनत्ति । विङ्क्ते । अविनक् । अविचत् । अवैचीत् । अविक्त [लुदिर्] संप्रपणे
 (पीसना) लुणत्ति । लुन्ते । लोत्ता । अनुणत् । अनुणः । अनुदत् । अचौत्सीत् ।
 अनुत्त [युजिर्] योगे (समाधि) युनक्ति । युङ्क्ते । अनुनक् । अयुजत् । अयौचीत् ।
 अयोच्यत् । रुधादयोऽनुदात्ताः स्वरितेः । रुध आदि धातु अनिट् उभयपदी हैं
 [उच्छृदिर्] दीप्तिदेवनयोः (प्रकाश और क्रीड़ा आदि) कृणत्ति । कृन्ते । चचृर्द ।
 चचृदत्तुः । कृदिता । कृदिष्यति । कृत्स्यति (३८७) कृदिषति । कृदिषति ।
 कृत्स्यति । कृत्सति । कृणत्तु । अचृकृणत् । अचृकृणः । कृन्ध्यात् । कृध्यात् । कृत्सीष्ट ।
 अचृकृदत् । अचृकृदीत् । अचृकृदिष्ट । अचृकृदिषत् । अचृकृत्स्यत् [उत्तदिर्] हिंसा-
 नादरयोः (हिंसा और अनादर) लणत्ति । इत्यादि । कृदि के समान जानो ।
 ये दोनी धातु उभयपदी सेट् हैं [लृत्] वेष्टने (लपेटना) कृणत्ति । यह धातु
 तुदादि गण में आ चुका है आर्द्धधातुक में वैसे ही प्रयोग जानो [जिह्वी]
 दीप्ती । तदासीतुदात्तेदात्मनेपदी । यह धातु सेट् आत्मनेपदी है जि और
 इकार की इत्संज्ञा ही कर ॥ ४३५ ॥

४३६—आन्मलोपः ॥ अ० ॥ ६। ४। २३ ॥

अम् प्रत्यय से परे नकार का लोप हो । अर्थात् इकार से परे होने के कारण
 धकार से पूर्व जो न उस का लोप होता है । इन्धे (३५२) अकार लोप । इन्धते ।
 इन्धते । इन्धते । इन्ध्यात् । इन्ध्याम् । इन्ध्याम् । इन्ध्याम् । इन्ध्याम् । इन्ध्याम् ।
 प्रत्यय का निषेध होने से (४४) सूत्र से लिट् को कित् हो कर । इन्धे (१३८)
 नलोप । इन्धाते । इन्धिरे । इन्धित । इन्धिष्यते । इन्धिष्यते । इन्धिष्यते । इन्धिष्यते ।
 इन्धाताम् । इन्धे । ऐन्ध । ऐन्धाः । इन्धीत । इन्धिषीष्ट । ऐन्धिष्ट । ऐन्धिष्यत् [खिद्वि]
 द्वैधे (दोनता) खिन्ते । खिन्ता । खिन्ताम् । अखिन्त । खिन्तीत । खिन्तीष्ट । अखिन्त
 [विद्वि] विचारणे (विचारना) विन्ते । विविदे । वेत्ता । वेत्स्यते । वेत्स्यते । वेत्स्यते ।
 विन्ताम् । अविन्त । विन्तीत । विन्तीष्ट । अविन्त । अवेत्स्यत् । खिदिविदि

अनुदात्तावात्मनेपदिनौ । खिद और विद दोनों धातु अनिट् आत्मनेपदी हैं ।
अथपरस्मैपदिनो द्वादश । अब बारह १२ धातु परस्मैपदी कहते हैं [शिष्ल्]
विशेषणे (विशेषण) शिनष्टि । शिष्टः । शिषन्ति । शिशेष । शिशेषिथ । शिष्टा ।
शिष्यति । शिष्यति । शिष्याति । शिनष्टु । शिष्-हि । यहाँ प्रथम हि का धि
और षकार की जश्त्व ड हाँ कर (२७२) सूत्र से विकल्प करके डकारलोप
हाता है । शिषिह । शिषिह । शिनषाणि । अशिनट् । शिष्यात् । शिष्यात् । ल-
दित् होने से अङ् (२१७) अशिषत् । अशिष्यत् [पिष्ल्] सञ्चूर्णने (पीसना)
पिमाष्टि । पिपेष । पेष्टा । पेच्यति । पेचति । पेचाति । पिनष्टु । पिण्डि । अपि-
नट् । पिष्यात् । पिष्यात् । अपिषत् [भञ्जो] आमदने (बल से मलना) भर्नात्ति ।
वभञ्ज । वभञ्जिथ । वभङ्क्थ । भङ्क्ता । भङ्क्यति । अभङ्क्षीत् । अभङ्क्षाम् ।
[भुज] पालनाभ्यवहारयोः (रक्षा और भोजन) भुर्नात्ति । भोक्ता । भोक्ष्यति ।
अभुनक् । अभोक्षीत् । अभोक्ष्यत् । अनुदात्ताउदात्ततत्त्वत्वारः । ये शिष आदि
चार धातु अनिट् परस्मैपदी हैं [लृह, हिंसि] हिंसायाम् ॥ ४३६ ॥

४३७—लृणह इम् ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६२ ॥

अन् प्रत्ययान्त लृह धातु को इम् का आगम होवे हलादि पित् सार्व-
धातुक परे हो ता । लृण्टि । लृण्टः । ततर्ह । तर्हिता । तर्ह्यति । तर्हिषाति ।
तर्हिषाति । लृण्टु । अलृण्ट् । लृण्णात् । लृण्णात् । अतर्हीत् । हिन्स्ति ।
हिंसः । हिंसन्ति । जिहिंस । हिंसिता [उन्दी] क्लेदने (गौलापन) उनक्ति ।
उन्तः । उन्दन्ति । उन्दाञ्कार । उन्दाबभूव । उन्दाभास । उन्दिता । उन्तु ।
उन्धि । औनत् । औन्ताम् । औन्दन् । औनः (३५१) औनत् । औनदम् । उन्द्यात् ।
उद्यात् (१३६) औन्दीत् [अञ्जु] व्यक्तिमन्त्रणकान्तिगतिषु (मनुष्यादि की स्थूल-
व्यक्ति, भोजन, शोभा और गति) अनक्ति । अङ्क्तः । अञ्जन्ति । आनञ्ज । आन-
ञ्जिथ । आनङ्क्थ । ऊदित् होने से इट् विकल्प (१४०) अञ्जिता । अङ्क्ता ।
अञ्जिषति । अञ्जिषाति । अङ्चति । अङ्चाति । अनक्तु । अङ्ग्धि । अनजानि ।
आनक् । आङ्क्ताम् । आञ्जन् । अञ्ज्यात् । अज्यात् ॥ ४३७ ॥

४३८—अञ्जुः सिचि ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७१ ॥

अञ्ज धातु से परे जो सिच् उस को नित्य इट् का आगम होवे । ऊदित्
होने से इट् का विकल्प (१४०) प्राप्त है उस का यह अपवाद है । आञ्जीत् ।
आञ्जिष्टाम् [तञ्जु] सकोचने (दही जमाना) तनक्ति । ततञ्जिथ । ततङ्क्थ ।
तञ्जिता । तङ्क्ता । तनक्तु । अतनक् । अतञ्जीत् । अताङ्जीत् । अताङ्क्ताम् ।

[अविजी] भयचलनयोः । विनक्ति । विङ्कतः । विवेज । विविजिय (४२८)
विजिता । विजियति । वेजिप्रति । वेजिषाति । विनक्तु । अविनक् । अविजीत् ।
[वृजो] वर्जने । वृणक्ति । वर्जिता [वृचो] संपर्के (स्पर्श करना) पृणक्ति ।
पपर्व । पपर्विथ । पर्विता । पर्विथ्यति । पर्विषति । पर्विषाति । पृणक्तु । अपृ-
णक् । पृञ्चात् । पृच्यात् । अपर्चीत् । अपर्विथत् ॥

(वृत्) इति शनम्बिकरणो रुधादिगणः समाप्तः ॥



॥ अथ तनादिगणः ॥

अथ सप्त स्वरितेतः । अवसात धातु उभयपदौ कहते हैं [तनु] विस्तारि ॥ ४३८ ॥

४३८—तनादिक्ञ्भ्यउः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७६ ॥

तनादि और क्ञ् धातु से उ प्रत्यय हो कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हो तो यह भी सूत्र शप् का अपवाद है । क्ञ् धातु भी तनादिगण में ही पड़ा है इस कारण क्ञ् से भी उ प्रत्यय हो जाता फिर क्ञ् का पृथक् ग्रहण इस लिये है कि तनादिगण के अन्य कार्य क्ञ् को नहीं जैसे तनादिकों से परे सिच् का लुक् (४४०) विकल्प से होता है सो क्ञ् से न होवे । तनोति । तनुते । तनुषः । तन्वः (२००) ततान । तने । तनिता । तनिथ्यते । तानिषति । तानिषाति । तनोतु । तनु (२०१) तनवानि । तनुताम् । अतनोत् । अतनुता तनुयात् । तन्वौता । तन्यात् । तनिषीष्ट । अतानीत् । अतनीत् ॥ ४३९ ॥

४४०—तनादिभ्यस्तथासोः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७६ ॥

तनादि धातुओं से परे जो सिच् उस का लुक् होवे त और थास् परे ही तो । त और थास् आत्मनेपद प्रत्यय के साहचर्य से त भी आत्मनेपद का एक-वचन लिया जाता है । इस से । यूयमतनिष्ट । यहां परस्मैपद के मध्यम पुरुष बहुवचन में सिच् लुक् नहीं होता । अतत (३०३) अनुनासिक लोप । अतनिष्ट । अतनिषाताम् । अतनिषत । अतथाः । अतनिष्ठाः । अतनिषि । अतनिथ्यत् । अतनिथ्यत [षण्] दाने । सनोति । सनुते । सायात् (१८५) सन्यात् । असात । (३८४) असनिष्ट । असाथाः । असनिष्ठाः [क्षण्] हिंसायाम् । क्षणीति । क्षणुते । अक्षणीत् (१६२) वृद्धि का निषेध । अक्षत । अक्षणिष्ट । अक्षथाः । अक्षणिष्ठाः [क्षिण्] च । क्षेणीति । यहां उ प्रत्यय के आर्द्धधातुक होने से लघूपध

गुण (५१) होता है । ज्ञेयते । चिज्ञेय । चिज्ञेयते । ज्ञेयतासि । ज्ञेयतासे । ज्ञेयिषति । ज्ञेयिषाति । अज्ञेयौत् । अज्ञित । अज्ञेयिष्ट । अज्ञिथाः । अज्ञेयिष्ठाः [ऋण] गती । अर्णोति । अर्णतः । अर्णवन्ति । आनर्ण । आनृणतुः । आनृणे । अर्णितासि । अर्णीत् । अर्त्त । अर्णिष्ट । अर्थाः । अर्णिष्ठाः [ढण] अदने । तर्णोति । तर्णते । अढत । अतर्णिष्ट [ढण] दीप्ती । घर्णोति । घर्णते । जघर्ण । जघृणे । तनादय उदात्ताः स्वरिते उभयतोभाषाः । ये तन आदि धातु सेट् उभयपदी हैं [वनु] याचने (मांगना) वनुते । ववने (१२८) वनितासे । वनिष्यते । वानिषतै । वानिषातै । वनुताम् । वनवै । अवनुत । वन्वीत । वनिषीष्ट । अवत । अवनिष्ट । अवथाः । अवनिष्ठाः । अवनिष्यत [मनु] अवकीधने (निश्चित ज्ञान) मनुते । मेने । अमत । अमनिष्ट । उदात्तावनुदात्तेतावात्मनेपदिनी । ये दोनों धातु सेट् आत्मनेपदी हैं [ङुक्कज्] करणे (करना) अनुदात्त उभयतोभाषाः । यह धातु अनिट् उभयपदी है । तस् के परे भी उ प्रत्यय निमित्त क्कज् को अर् गुण हो कर ॥ ४४० ॥

४४१—अत उत्सार्वधातुके ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ११० ॥

क्कज् धातु के अकार को उकारादेश होवे किन्डित् सार्वधातुक परे हों तो । कुरुतः । कुर्वन्ति । यहां भी (१८७) सूत्र से दीर्घ प्राप्त है उस का निषेध (४३०) हो जाता है । करोषि । कुरुथः । कुरुथ । करोमि ॥ ४४१ ॥

४४२—नित्यं करोतेः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०८ ॥

करोति धातु से परे जो प्रत्यय का उकार उस का नित्य ही लोप होवे व म परे हों तो यह सूत्र (२००) का अपवाद है । कुर्वः । कुर्मः । कुरुते । कुर्वते । चकार । चक्रतुः । चकर्थ (१४८) चक्रव । चक्रे । चक्रषे । कर्त्ता । करिष्यति । करिष्यते (२३८) कार्षति । कार्षाति । कार्षतै । कार्षातै । करोतु । कुरुतात् । कुरु (२०१) करवाणि । करवाव । कुरुताम् । अकरोत् । अकुरुत ॥ ४४२ ॥

४४३—ये च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १०६ ॥

क्कज् धातु से परे प्रत्यय के उकार का लोप हो यकारादि प्रत्यय परे हों तो । कुर्यात् । क्रियात् (२३८) कृषीष्ट (२४०) अकार्षीत् । अकार्षाम् । अकृत । अकृथाः । यहां सिच् लुक् नित्य होता है । अकरिष्यत् । अकरिष्यत ॥ ४४३ ॥

४४४—मन्त्रे षसह्वरणशष्टदहाद्दृक्छगमिजनिभ्यो लेः

॥ अ० ॥ २ । ४ । ८० ॥

वेदविषय मन्त्रभाग में षस, ह्वर, णश, दृ, दह, आकारान्त, दृक्, छ, गमि

और जन धातुओं से परे जो लि उस का लुक् होवे । लि कर के यहां लुङ् का चि प्रत्यय समझा जाता है (वस्त्, अदने) अक्षत्रभौमदन्त पितरः । अक्षन् । अक्षसन् । लोक में होता है । हर से (हृ, कौटिल्ये) समझना चाहिये । माह्वाः । अह्वाः । लोक में । अह्वार्षीत् । (गश्, अदर्शने) प्रणङ् मर्त्यस्य । प्रणक् । यहां अट् का अभाव है । लोक में । अनश्त् । हृ करके हृङ् और हृञ्, दोनों का ग्रहण होता है । सुरुचो वेन आवः । आवः । आवारीत् । आङ् पूर्वक लोक में (दृह, भस्मीकरणे) अधक् । लोक में । अधाक्षीत् (प्रा, पूरणे) आप्रा द्यावापृथिवी । अप्राः । अप्रासीत् । लोक में (वर्क्) लोक में । अवर्चीत् । क् धातु का । अक्रन् । बहुवचन में और अकः । एकवचन में । गमका । अगमन् । लोक में । अगमन् । जनका । अजा वा अरय दन्ताः । लोक में । अजनि । अजनिष्ट ॥ ४४४ ॥

४४५-अभ्युत्सादयांप्रजनयांचिकयारमयामकः पावयां-

क्रियाद्विदामक्रान्ति कृत्सि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ४२ ॥

अभ्युत्सादयां आदि वेद विषय में निपातन किये हैं । सद, जन और इन एवन्त धातुओं से लुङ् लकार में आम् प्रत्यय निपातन किया है । और चि धातु से भी लुङ् में आम् प्रत्यय द्विवचन और कुत्व निपातन किया है । अक यह कृञ् धातु का पूर्व सूत्र (४४४) से सिद्ध प्रयोग का सद आदि चारों धातु के अन्त में अनुप्रयोग किया है । जैसे । अभ्युत्सादयामकः । और लोक में । अदसीषदत् । प्रजनयामकः । प्राजीजनत् । लो० । चिकयामकः । लो० । अचैषै रमयामकः । लो० । अरीरमत । पावयांक्रियात् । यहां एवन्त पङ् धातु से । में आम् प्रत्यय और कृञ् धातु का अनुप्रयोग निपातन किया है लोक में । पाव विदामक्रान्ति यहां लुङ् लकार के प्रथम पुरुष बहुवचन में विद् धातु से आम् । कृञ् का अनुप्रयोग और चि का लुक् (४४४) निपातन किया है । लोक अवेदिषुः । होता है ॥

(हम्) इति तनादिगणः समाप्तः ॥

अथ क्रादिगणः ॥

[डुक्रीज्] द्रव्यविनिमये (द्रव्य का लेना देना) ॥ ४४५ ॥

४४६—क्रादिभ्यः आ ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८१ ॥

कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो क्री आदि धातुओं से आ प्रत्यय हो । क्रीणाति । क्रीणीतः (३८३) पर नित्य और अन्तरङ्ग होने से ईकारादेश (३८३) का बाधक भि को अन्त और भ को अत् आदेश हो कर । क्रीणन्ति (३६५) क्रीणासि । क्रीणीते । क्रीणाते । क्रीणते । चिक्राय । चिक्रियतुः । चिक्रयिष्य । चिक्रेष्य । चिक्रियिष्य । क्रेता । क्रेष्यति । क्रेष्यते । क्रेषति । क्रेषाति । क्रेषतै । क्रेषाते । क्रीणातु । क्रीणीहि । क्रीणानि । क्रीणीताम् । अक्रीणीत । क्रीणीयात् । क्रीणीत । क्रीयात् । क्रेषीष्ट । अक्रेषीत् । अक्रेष्ट । अक्रेष्यत् । अक्रेष्यत [प्रीज्] तर्पणे कान्तौ च (हृष्टि और शोभा) प्रीणाति । प्रीणीते [प्रीज्] पाके (पकाना) प्रीणाति । प्रीणीते [मीज्] हिसायाम् । मीनाति । मीनीतः । मीनीते एच् विषय में आकारादेश (३८६) ममी । मिस्यतुः । ममिष्य । ममाय । मिस्ये । माता । मास्यति । मास्यते । मासति । मासाति । मीयात् । मासीष्ट । अमासीत् । अमासिष्टाम् । अमास्त । अमासाताम् [षिज्] बंधने । सिनाति । सिनीते । सिषाय । सिषे । सेता [स्कुज्] आप्रवणे (कूदना) ॥ ४४६ ॥

४४७—स्तम्भुस्तम्भुस्त्वम्भुस्कुम्भुस्कुज्भ्यः श्नुञ्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८२ ॥

स्तम्भु आदि पांच धातुओं से श्नु और चकार से श्ना प्रत्यय हों कर्त्तावाची सार्वधातुक परे हों तो । स्तुनोति । स्तुनुते । स्तुनाति । स्तुनीते । तुस्त्वाव । तुस्त्वयिष्य । तुस्त्वोय । स्तोता । अस्तुवीत् । अस्तुवीष्ट । स्तम्भ आदि चार धातु सौत्र हैं इन का पाठ किसी गण में नहीं है और सब रोकने अर्थ में परस्मैपदी हैं । स्तम्भोति । स्तम्भनाति (१३८) न लोप । तस्तम्भ । अस्तम्भत् (१५४) अङ्, विकल्प । अस्तम्भीत् । सुम्भोति । सुम्भनाति । स्तम्भोति । स्तम्भनाति । स्कुम्भोति । स्कुम्भनाति । चस्तम्भ । स्तम्भिता । स्तम्भिष्यति ॥ ४४७ ॥

४४८—हलः अः शानज्भौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८३ ॥

हलन्त धातु से परे जो श्ना प्रत्यय उस की शानच् आदेश होवे हि परे होतो । स्तमान । सुमान । स्तमान । स्कुमान । शुपक्ष में । स्तम्भुहि । इत्यादि । अस्तम्भनात् । अस्तम्भोत् । स्तम्भनीयात् । स्तम्भयन्तात् । स्तम्भ्यात् । अस्तम्भीत् । अस्तम्भिष्यत् ॥ ४४८ ॥

४४६—छन्दसि शायजपि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८४ ॥

वेद विषय में हि परि होतो श्ना प्रत्यय के स्थान में शानच् और शायच् दोनों आदेश ही । गृभाय । स्तभाय । स्तभाय । स्तभान । बधान देव सवितः [युज्] बन्धने । युनाति । युनीते । युयाव । युयुवे । क्रादादयोऽनुदात्ताः स्वरितेतः सप्त । क्री आदि सात धातु अनिट् उभयपदी हैं [क्लृज्] शब्दे । क्लूनाति । क्लूनीते । क्लृविता । क्लृविष्यति । अक्लावीत् । अक्लविष्ट । [द्रृज्] हिंसायाम् । द्रृणाति । द्रृणीते । दुद्राव । दुद्रुवे [पूज्] पवने (पवित्रता) ॥ ४४६ ॥

४५०—आदीनां क्लृप्त्वा ॥ अ० ॥ ७ । ३ ॥ ८० ॥

शित् प्रत्यय परे होतो पू आदि धातुओं के अच् को क्लृप्त्वा होवे । पुनाति । पुनीते । पुपाव । पुपुवे । पविता । पविष्यति [मूज्] बन्धने । मुनाति । मुनीते । माविषति । माविषाति । [लूज्] छेदने (काटना) लुनाति । लुनीते । लुनातु । लुनीताम् । [स्तृज्] आच्छादने । स्तृणाति । स्तृणीते । तस्तार । तस्तारतुः । स्तरीता । स्तरिता । अस्तृणात् । अस्तृणीत । स्तृणीयात् । स्तृणीत । स्तीर्यात् । स्तरिषीष्ट (४२१) स्तृषीष्ट । अस्तारीत् । अस्तारिष्टाम् । (४२०) अस्तरीष्ट । अस्तरीष्ट । अस्तरीष्ट । [कृज्] हिंसायाम् । कृणाति । कृणीते । चकार । चकारतुः । चकरे (२५८) [वृज्] वरणे (स्वीकार) वृणाति । वृणीते । ववार । ववरे । वरिता । वरीता । वूर्यात् (३८० । १६७) वरिषीष्ट । वूर्षीष्ट । अवारीत् । अवारिष्टाम् । अवरिष्ट । अवरीष्ट । अवूरष्ट [धूज्] कम्पने । धुनाति । धुनीते । दुधाव । दुधुवतुः । दुधविष्य । दुधोथ (१४०) इट् विकल्प । धविता । धीता । धविष्यति । धोष्यति । अधावीत् (३३०) नित्य इट् । अधविष्ट । अधोष्ट । उदात्ता उभयतोभाषा नव । क्लृज् आदि नव धातु सेट् उभयपदी हैं । अथ बध्नात्यन्ताः परस्मैपदिनः । अब बध धातु पर्यन्त परस्मैपदी कहते हैं [शृज्] हिंसायाम् । शृणाति । शृणार । शृणतुः । शृणुः (३८१) दीर्घ पक्ष में । शृणरतुः (२५८) गुण । शृणस्थि । शृणिव । शृणरिव । शरीता । शरिता । शरिष्यति । शरीष्यति । शारीषति । शारीषाति । शारिषति । शारिषाति । शृणातु । शृणीहि । अशृणात् । शृणीयात् । शीर्यात् । अशारीत् । अशारिष्टाम् । अशरीष्यत् । अशरिष्यत् [पृ] पालन-पूरणयोः । पृणाति । पप्रतुः । पपरतुः । पूर्यात् (३८०) [वृज्] वरणे । भरण इत्येके वृणाति । वूर्यात् [भृज्] भर्त्सने । भरण इत्येक्ये [भृज्] हिंसायाम् । मृणाति । ममार । [दृज्] विदारणे दृणाति । दद्रतुः । ददरतुः [जृज्] वयोहानौ [भृज्] इत्येके । जृणाति । जीर्यात् [धृज्] इत्येक्ये । धृणाति [नृज्] नये (लेचलना) नृणाति ।

ननृतुः । ननरतुः । [कृत्] हिंसायाम् । कृणाति [कृ] गतौ । कृणाति । अराञ्च-
कार । अरास्वभूव । अरासास । अरिता । अरीता । आर्णात् । आर्णीताम् । ईर्यात् ।
आरीत् । आरिष्टम् [गृ] शब्दे । गृणाति । जग्रतुः । जगरतुः । गरीता । गरिता ।
गरिष्यति । गरीष्यति । गारीषति । गारीषाति । गृणातु । गृणीहि । अगृणात् ।
गृणीयात् । अगारीत् । [ज्या] वयोहानौ (२८६) य को इ सम्प्रसारण और पूर्व
रूप एकादेश होता है ॥ ४५० ॥

४५१—हलः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २ ॥

अङ्ग के अवयव हल से परे जो संप्रसारण उस को दीर्घ होवे । जिनाति ।
यहां जि को दीर्घ हो कर फिर ङस् (४५०) हो जाता है । जिज्यौ (२८२)
जिज्यतुः (२८६) ज्याता । ज्यास्यति । ज्यासति । ज्यासाति । जिनातु । अजि-
नात् । जिनीयात् । जीयात् (२८६) अज्यासीत् । अज्यास्यत् [व्री] वरणे ।
विणाति । विनाय । विविनतुः । वेता । व्रीयात् [री] गतिरेषणयोः (गति
और भेड़िया का शब्द) रिणाति [ली] श्लेषणे । लिनाति (४००) आत्ववि-
कल्प । लली । लिलाय । लिन्यतुः । ललिथ । ललाथ । ललियथ । लाता ।
लेता । लास्यति । लेष्यति । लासति । लासाति । लैषति । लैषाति । लिनातु ।
लिनीहि । अलिनात् । लिनीयात् । लायात् । लेयात् । अलासीत् । अलैषीत् ।
अलास्यत् । अलेष्यत् [व्री] वरणे (स्त्रीकार) व्रीनाति [व्री] गतौ (वृत्) ये
(४५०) सूत्र में कहे प्वादि धातु पूरे हुए [व्री] हिंसायाम् । व्रीणाति । पित्
का प्रयोजन कदन्त में आवेगा [व्री] भये (डर) [भर] इत्येके) भर्णाति ।
[ज्ञा] अवबोधने । जानाति (४०२) जानीतः । जानन्ति । जानासि । जज्ञौ ।
जज्ञतुः । जज्ञिथ । जज्ञाथ । ज्ञाता । ज्ञास्यति । ज्ञासति । ज्ञासाति । जानातु ।
जानीहि । जानानि । अजानात् । जानीयात् । ज्ञेयात् । ज्ञायात् । अज्ञासीत् ।
अज्ञास्यत् [बन्ध] बन्धने (बांधना) बध्नाति । बबन्धिथ । बबन्ध । बन्धा । बन्धा-
रौ । बन्धारः । भन्त्स्यति । भन्त्सति । भन्त्साति । बध्नातु । बधान (४४८ | ४४९)
बधाय । अबध्नात् । बध्नीयात् । बध्यात् । अभान्त्सीत् । अबान्धाम् । यहां भष्भाव
विधायक सूत्र (२०४) से सिच्लोप (१४२) पूर्व होने से भष्भाव को असिद्ध
मान के सिच्लोप (१४२) हो जाता है । पीछे प्रत्ययलक्षण सूत्र की अपेक्षा में
त्रिपादी का सिच् लोप असिद्ध होने से सादि प्रत्यय के न रहने से भष्भाव नहीं
होता । अभान्त्सुः । ज्यादयोऽनुदात्ताः परस्मैभाषाः । ये ज्यादि धातु अनिट्
परस्मैपदी हैं [वृड्] संभक्तौ (अच्छी भक्ति) उदात्त आत्मनेपदी । वृणीते । वृत्रे ।
वृषे । वृष्ट्वे । वरीता । वरिता । वृणीताम् । अवृणीत । वृणीत । वरिषीष्ट

हो अनुनासिक, क्षिप् और भलादि कित् डित् प्रत्यय परे होतो । पीछे जठ् के साथ वृद्धि एकादेश हो कर । खीनाति । खीनीतः । चखाव । चखवतुः । खविता । खीनीहि । यहां परत्व से प्रथम जठ् ही कर हलन्त के न रहने से हि को धि न हुआ [हेठ] च । चकार से पूर्वोक्त अर्थ लिया जाता है । गृत्व हो कर । हेट्णाति । हेठान । अर्थादयः पंचविंशतिरुदात्ता उदात्तैः । ये अन्य आदि पक्षीस २५ धातु सेट् परस्मैपदी है [ग्रह] उपादाने (लेना) उदात्तः स्वरितेत् । ग्रह धातु सेट् उभयपदी है । गृह्णाति (२८६) सम्प्रसारण । गृह्णीते । जग्राह । जगृहतुः । जगृहः ॥ ४५४ ॥

४५५—ग्रहोऽलिटि दीर्घः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३७ ॥

एकाच् ग्रह धातु से विहित जो इट् उस को दीर्घ होवे परन्तु लिट् परे न हो तो । ग्रहीता । लिट् में निषेध होने से । जग्रहिथ । यहां दीर्घ न हुआ । ग्रहीष्यति । ग्रहीष्यते । ग्रहीषति । ग्रहीषाति । गृह्णातु । गृहाण । अगृह्णात् । गृह्णीयात् । गृह्णात् । ग्रहीषीष्ट । अग्रहीत् (१६२) अग्रहीष्टाम् । अग्रहीष्ट । अग्रहीषाताम् । अग्रहीषत । अग्रहीष्यत् । अग्रहीष्यत ॥

(वर्त्) इतिआविकणः क्रयादिगणः समाप्तः ॥

अथ चुरादि गणः

[चुर] स्तेये (चोरी करना) ॥ ४५५ ॥

४५६—सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्ण-
चूर्णचुरादिभ्यो णिच् ॥ अ० ॥ ३ । १ । २५ ॥

सत्याप, पाश, रूप, वीणा, तूल, श्लोक, सेना, लोम, त्वच, वर्म, वर्ण, चूर्ण और चुरादि धातुओं से णिच् प्रत्यय होवे । सत्याप आदि चूर्ण पर्यन्त प्रातिपदिकों का वर्णन नामधातु प्रक्रिया में करेंगे । और चुरादि धातुओं से स्वार्थ में णिच् हो कर । चुर-णिच् । की धातु संज्ञा (१६७) णिच् को मान के गुण (५१) तिप् । शप् को मान के गुण और अयादेश हो कर । चोरयति । चोरयतः । चोरयन्ति ॥ ४५६ ॥

४५७—णिचश्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७४ ॥

क्रिया का फल कर्त्ता के लिये हीतो णिजन्त धातु से आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय हों । चोरयते । चोरयाञ्चकार । चोरयाञ्चके । चोरयामास । चोरयास्वभूष । चोरयिता । चोरयिष्यति । चोरयिष्यते । चोरयिषति । चोरयिषाति । चोरयतु । चोरयताम् । अचोरयत् । चोरयेत् । चोर्यात् । चोरयिषीष्ट । लुङ् में (१७६) चङ् (१७८) उपधा को ऋस् (१८०) हित्व (१८३) अभ्यास को दीर्घ । अचूचुरत् । अचूचुरत् [चिति]

स्मृत्याम् (ज्जरण) चिन्तयति । अचिचिन्तत् । इस चिति धातु को इदित् पढ़ने से यह ज्ञापक होता है कि चुरादि धातुओं से णिच् प्रत्यय विकल्प से होवे पक्ष में चुरादि की संशय भी होवे क्योंकि जो चिन्त धातु पढ़ते तो । चिन्त्यात् । पादि प्रयोगों में नकार लोप (१३६) हो जाता [यत्रि] संकोचने । यन्त्रयति । अययन्त्यात् [स्फुडि] परिहासे । (ठहा करना) स्फुण्डयति । अपुस्फुण्डत् [स्फुटि] इत्येव स्फुण्टयति । [लक्ष] दर्शनाङ्गनयोः (देखना, और चिन्ह) लक्षयति । अललक्षत् [कुट्टि] अनृतभाषणे (झूठबलना) कुन्दयति । अशुकुन्दत् [लड] उपसेवयाम् [लाड] लाडयति (१२६) वृद्धि । अलीलडत् [मिदि] स्नेहने । मिन्दयति । अमिमिन्दत् । मिन्द्यात् । [ओलडि] उत्क्षेपे (ऊपर की फेंकना) लण्डयति । किन्ही के मत में ओकार की इत्संज्ञा नहीं होती वहां । ओलण्डयति । उकारादिरयमित्यन्ये । कोई इस धातु को उकारादि कहते हैं । उलण्डयति [जल] अपवारणे (जाल) जालयति । अजीजलत् [लज] इत्येके । लाजयति । अलीलजत् [पीड] अवगाहने (पीड़ा) पीडयति ॥ ४५७ ॥

४५८—आजभासभाषदीपजौवसीलपौडामन्यतरस्याम्

॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३ ॥

आज आदि धातुओं की उपधा की विकल्प कर के ह्रस्व हो चङ् परक णि परे होतो । अपौपिडत् । अपिपौडत् । यहां जिस पक्ष में ह्रस्व नहीं होता वहां लघु परक अभ्यास के न होने से अभ्यास की दीर्घ (१८३) नहीं होता [नट] अवस्थान्दने [नाचना] नाटयति । अनौनटत् [अथ] प्रयत्ने । प्रस्थान इत्येके । कोई के मत में अथ धातु प्रस्थान अर्थ में है [बध] संयमने । (बन्धन) बाधयति । अबी-बंधत् [पृ] पूरणे । पारयति । पारयते । पारयाञ्चकार । पारयिता । अपौपरत् । इस धातु की दीर्घ ऋकारान्त पढ़ा है सो ह्रस्व कहते तो भी णिच् में वृद्धि हो ही जाती फिर यह ज्ञापक होता है कि इस से शप् भी होवे । परति । परतः । पपार । पपरतुः [ऊर्ज] बलप्राणनयोः (बल और जीवन) ऊर्जयति [पच] परिग्रहे (लेना) पचयति । अपपचत् [वर्ण, चूर्ण] प्रेरणे । वर्णयति । चूर्णयति [वर्ण] वर्णन इत्येके (व्याख्यान) [प्रथ] प्रख्याने (प्रकट करना) प्राथयति ॥ ४५८ ॥

४५९—अत् स्मृहृत्वरप्रथस्वदस्तृप्शाम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६५ ॥

स्मृ आदि धातुओं के अभ्यास की अकारान्त आदेश ही चङ् परक णि परे हो तो । यह सूत्र सन्वज्ञाव (१८१) से प्राप्त इत्त्व (१८२) का अपवाद है । अपप्रथत् । [पृथ] प्रक्षेपे । पर्थयति । पर्थयते । पर्थयाञ्चकार ॥ ४५९ ॥

४६०—उक्तं ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ७ ॥

धातु के उपधा ऋकार के स्थान में ऋत् आदेश विकल्प से होवे चङ् परक णि परे होतो । यह सूत्र गुण वृद्धि आदि का बाधक है। अपीपृथत् अपपर्थत् । अपी-पृथत् । अपपर्थत् [पथ] इत्येके । पाथयति [पथ्] सम्बन्धने (मेल) सम्बयति । असम्बत् [शम्ब] च । अशम्बत् [साम्ब] इत्येके । अससाम्बत् [भच्च] अदने । भच्चयति [कुट्] छेदनभर्त्सनयोः । पूरण इत्येके । कुट्टयति । अचुकुट्टत् [पुट्, चुट्] अल्पीभावे (थोड़ाहीना) पुट्टयति । चुट्टयति [अट्, षट्] अनादरे । अट्टयति । इस धातु की दकारोपध मानने से उस दकार की ट के संयोग में टकार ही हो कर उस के असिब होने से संयोगादि दकार की हित्व नहीं होता । आट्टिट् । [लुण्ठ] स्तेये । लुण्ठयति [शठ, खठ] असंस्कारगत्योः [श्वठि] इत्येके । शाठयति । खाठयति । श्वण्ठयति । [तुज, तुजि, पिज, पिजि, लजि, लुजि] हिंसाबलादाननिकेतनेषु (हिंसा, बल आदान और स्थान) तोजयति । अतूतु-जत् । पेजयति । अपीपिजत् । तुज्जयति । अततंजत् [पिस] गतौ । पिसयति [पान्त्व] सामप्रयोगे (शान्तिकरना) सान्त्वयति [शल्क, वल्क] परिभाषणे । श्वल्कयति । [णिह] स्नेहने (प्रीति) स्नेहयति । असिस्त्रिहत् (स्फिट) इत्येके । स्फोटयति [स्मिट] अनादरे । असिस्मिटत् [षिङ्] अनादर इत्येके । इस में णिच् की छोड़ के केवल स्मिङ् धातु से ङित् करण निष्प्रयोजन होने से णिजन्त से आत्मनेपद ही होते हैं [श्लिष] श्लेषणे । श्लेषयति । अशिश्लषत् [पथि] गतौ । पथ्ययति [पिच्छ] कुट्टने (कूटना) पिच्छयति [कृदि] सम्बरणे । कन्दयति । [अण] दाने । आणयति [तड] आघाते (ताड़ना) ताडयति । अतीतडत् । [खड, खडि, कडि] भेदने । खाडयति । खण्डयति । कण्डयति [कुडि] रक्षणे [गुडि] वेष्टने । रक्षणे इत्येके [कुठि, गुठि] चेत्यन्ये । कुण्डयति । गुण्डयति । अचुकुण्डत् [खुडि] खण्डने (काटना) खुण्डयति [वटि] विभाजने (वांटना) वण्डयति [वडि] इत्येके [मडि] भूषायाम् [शोभा] मण्डयति । मण्डयते । मण्ड-याञ्कार । मण्डयिता । मण्डयिष्यति । मण्डयिषति । मण्डयिषाति । मण्डयतु । मण्डयताम् । अमण्डयत् । मण्डयेत् । मण्डयात् । अममण्डत् । अमण्डयिष्यत् [भडि] कल्याणे । भण्डयते [कृद] वमने । कृदयाञ्चके [पुस्त, वुस्त] आदरानादरयोः । पुस्तयितासे [चुद्] संचोदने । चोदयिष्यते [कन, धक्] नाशने । नक्कयिष्यते । नक्कयि-षाते [चक्, चुक्] व्यथने । चक्कयताम् [च्ल] शौचकर्मणि (शुद्धिकरना) चालयति । [तल] प्रतिष्ठायाम् । अतालयत् [तुल] उन्नाने (तोलना) तोलयति । अतूतुलत् [दुल] उत्क्षेपे (फेंकना) दोलयति [पुल] महत्वे । पोलयेत् [चुल] समुच्छाये ।

चोलयिषीष्ट । अचूचुलत [मूल] रोहणे । मूलयति [बुल] निमज्जने (डूबना) अवूचुलत [कल, विल] जेपे (निन्दा) कालयति । वेलयति । [शुल्क] अतिस्पर्शने । शुल्कयति [चपि] गत्याम् । चम्पयति । अचचम्पत् । [क्षपि] क्षान्त्याम् (सहना) क्षम्पयति । अचक्षम्पत् [क्षजि] कच्छजोवने (कठिन से जौना) [श्वर्त] गत्याम् । श्वर्तयति [श्वभ्र] च । श्वभ्रयति [ज्ञप] मित्र । ज्ञप धातु से णिच् प्रत्यय और उस की मित् संज्ञा हो ॥ ४६० ॥

४६१—मितां क्रस्वः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६२ ॥

मित्संज्ञक धातुओं की उपधा को क्रस्व ही णिच् परे हो तो । ज्ञपयति । [यम] च परिवेषणे । परोक्षने अर्थ में यम धातु से णिच् प्रत्यय और उस की मित्संज्ञा होती है । यमयति (४६०) क्रस्व [चह] परिकल्कने (मूर्खता) चहयति । अचीचहत् [चप] इत्येके । चपयति । अचीचपत् [रह] त्यागे । रहयति । अरीरहत् [वल] प्राणने (जीवन) वलयति [चिज्] चयने (इकठ्ठा) ॥ ४६१ ॥

४६२—चिस्फुरोर्णौ ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५४ ॥

चि और स्फुर धातु के एच् की आकारादेश विकल्प से ही णिच् परे होता । आकारादेश होने के पश्चात् ॥ ४६२ ॥

४६२—अर्तिक्लीरौक्लूयीक्ष्माय्यातां पुग्णौ ॥

अ० ॥ ७ । ३ । ३६ ॥

क्ल, क्ली, व्ली, रौ, क्लूयी, क्ष्मायी और आकारान्त धातुओं की पुक् का आगम ही णिपरि हो तो । चपयति । अचीचपत् । जिस पक्ष में । आकार नहुआ वहां । चययति । इस धातु में जित् करने से णिच् प्रत्यय का विकल्प होता है क्योंकि जित् करने का प्रयोजन आत्मनेपद होने से भी उसी अर्थ में हो जाता फिर णिच् से अलग भी आत्मनेपद होने के लिये जित् पढ़ा है । चयते । चयति (नान्ये मितोऽहेतो) स्वार्थ णिच् में ज्ञप आदि धातुओं से अन्य धातु मित्संज्ञक न हों । इस नियम के करने से प्रयोजन यह है कि जिन शम आदि अमन्त धातुओं की भ्वादि गण में मित्संज्ञा कर चुके हैं उन में से जिस किसी धातु से इस चुरादि गण में स्वार्थ में णिच् करें तो भी मित्संज्ञा न हो केवल ज्ञप आदि धातुओं की ही हो [घट्ट] चलने [मुस्त] संवाते [खट्ट] संवरणे [घट्ट, स्फिट्ट, चुवि] हिंसायाम् । चुवयति [पूल] संवाते । पूर्ण इत्येके [पुण] इत्यन्ये । पूलयति । [पुंस] अभिवर्द्धने (पढ़ना) पुंसयति । अपुपुंसत् [टकि] बन्धने । टंकयति [धूस] कान्तिकरणे [इच्छाकरना] धूसयति । अदुधूसत् [धूष] इत्येके [धूश] इत्यपरे

[कीट] वरणे । कीटयति । अचिकीटत् [चूर्ण] संकोचने । चूर्णयति [पूज] पूजायाम् । अपुपूजत् [अर्क] स्तवने (स्तुति) तपनइत्येके । अर्कयति । आर्चिकत् । [शुठ] आलस्ये । अशूशुठत् [शुठि] शोषणे । शुशुठयति [जुड] प्रेरणे [गज, मार्ज] शब्दार्थे । गाजयति । मार्जयति । अममार्जत् [मर्च] च । मर्चयति [छ] प्रस्त्रवणे । धारयति । अजीधरत् [पचि] विस्तारवचने (विस्तार से कहना) पंचयति [तिज] निशाने (तीक्ष्णता) तेजयति [कृत] संशब्दने (कीर्त्ति) ॥४६२॥

४६३—उपधायाश्च ॥ अ० ॥ ७ । १ । १०१ ॥

धातु की उपधा का जो ऋकार उस को इकारादेश हो । रपर इर् हीकार (१३०) सूत्र से दीर्घ होता है । कीर्त्तयति । कीर्त्तयांचकार । अचीकृतत् । अचिकीर्त्तत् (४६०) [वर्ध] छेदनपूरणयोः । वर्धयति [कुवि] आच्छादने । कुम्भयति [कुभि] इत्येके । कुम्भयति [लुवि, तुवि] अदर्शने । अर्दनइत्येके [क्लप] अक्तायां वाचि । क्लापयति [क्लप] इत्येके । क्लापयति [चुटि] छेदने । चुण्टयति । अचुचुण्टत् । [इल] प्रेरणे । एलयति । ऐलिलत् ॥ ४६३ ॥

४६४—नोनयति ध्वनयत्येलयत्यर्दयतिभ्यः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५१ ॥

जन, ध्वन, इल और अर्द इन णिजन्त धातुओं से परे चलि के स्थान में चङ् आदेश न हो वेदविषय में । यहाँ (१७६) से चङ् प्राप्त था उस का निषेध है । ऐलयीत् [म्रच्छ] म्लेच्छने (अशुद्ध बोलना) म्रच्छयति । अमम्रच्छत् [स्नेच्छ] अव्यक्तायां वाचि [ब्रूस, वर्ध] हिंसायाम् । ब्रूसयति । वर्धयति [गर्ज, गर्द] शब्दे । गर्जयति । गर्दयति [गर्ध] अभिकाङ्क्षायाम् । गर्धयति [गूर्द, पूर्व] निकेतने (स्थान) गूर्दयति । पूर्वयति । अजुगूर्दत् । अपुपूर्वत् [जसि] रक्षणे । मोक्षणइत्येके । जंसयति । अजजंसत् [ईड] स्तुतौ । ईडयति । ऐडिडत् [जसु] हिंसायाम् । जासयति । अजीजसत् [पिडि] संघाते । पिण्डयति । अपिपिण्डत् [रुष] राषे [रुट्] इत्येके [डिप] क्षेपे । अडौडिपत् [ष्टुप] समुच्छाये । स्तोपयति । अतुष्टुपत् । सेटः परस्मैपदिन एकशतमष्टपञ्चाशच्च । ये चुर आदि १५८ धातु परस्मैपदी हैं । यद्यपि कर्त्तृगामी क्रियाफल में इन से आत्मनेपद होते हैं तो भी अगले धातुओं की अपेक्षा में (जो नित्य आत्मनेपदी हैं) परस्मैपदी हैं [आ कुस्मादात्मनेपदिनः] अब यहाँ से कुस्म धातु पर्यन्त आत्मनेपदी कहते हैं अर्थात् कर्त्तृगामी क्रियाफल से अन्यत्र भी आत्मनेपद ही हों [चित] संचेतने । चेतयते । अचीचितत् [दृशि] दंशनदर्शनयोः (काटना और देखना) [दस, दसि] इकेत्ये । दासयते । दंसयते । अदीदसत् । अददंसत् [डप, डिप] संघाते । डापयते । डेपयते । अडौडपत् [तत्रि] कुटुम्बधारणे । तन्त्रयते । अततन्त्रत् [मत्रि]

शुभभाषणे । मन्त्रयते । असमन्वत [स्यञ] ग्रहणसंश्लेषणयोः । स्याशयते । अप-
 स्यशत [तर्ज, भर्त्स] तर्जने (डरना) तर्जयते । भर्त्सयते । भर्त्सयते । अवभ-
 र्त्सत [वस्त, गन्ध] भर्त्सने (मांगना) वस्तयते । गन्धयते [विष्क] हिंसायाम्
 [द्विष्क] इत्येके [निष्क] परिमाणे (तोल) निष्कयते [लल] ईप्सायाम् (लेने
 की इच्छा) लालयते । लालयाञ्चक्रे । लालयांभवूव । लालयामास [कूण] सं-
 कोचने । कूणयते । अचुकूणत [तूण] पूरणे [भ्रूण] आशाविशङ्कयोः (इच्छा
 और संदेह) भ्रूणयते [शठ] श्लाघायाम् (अपनी प्रशंसा) शाठयते । शाठया
 शाठयांभवूव । शाठयामास । [यज] पूजायाम् । यजयते [स्यम] वितर्के । ति ।
 यते [गुर] उद्यमने । गौरयते । अजगूरत् [शम, लज्ज] आलोचने (देखना) शम की
 लज्जयते [कुत्स] अवक्षेपणे । कुत्सयते । अचुकुत्सत [कुट] छेदने । कोटयते । खंता)
 [कुट] इत्येके [गल] स्ववर्ण (झरना) गालयते । अजीगलत । अगालयिष्य रह्य-
 भण्डने (बद्धत बोलना) भालयते [कूट] आप्रदाने । अवसादन इत्येके ॥४६१॥
 अचुकूटत [कुट] प्रतापने (तपाना) कुट्टयते । अचुकुट्टत [वञ्च] प्रलम्बने
 वञ्चयते । अववञ्चत [वृष] शक्तिबन्धने (सन्तानोत्पत्ति का सामर्थ्य) वर्षयते ।
 वृषत । अववर्षत (४६०) [मद] तृप्तियोगे । मादयते । अमीमदत [दिवु]
 (शब्द) देवयते । अदीदित [गृ] विज्ञाने । गारयते । अजीगरत [वि-
 ख्याननिवासेषु । वेदयते । अवौविदत [मान] स्तम्भे (रोकना) मानयते
 [यु] जुगुप्सायाम् (निन्दा) यावयते । अयौयवत [कुक्ष] नाम्नो वा । ये कुक्ष
 प्रादिपदिक अथवा धातु है और इस का अर्थ बुरा हंसना है । कुस्मयते । अकु-
 कुस्मत । चेतादयो द्विचत्वारिंशत् । ये चित आदि ४२ धातु पूरे हुए [चर्च] अध्ययने
 (पढ़ना) चर्चयति । अचचर्चत् [वुक्] भाषणे । वुक्कयते [शब्द] उपसर्गादाविष्कारे
 च । चाङ्गाषणे उपसर्ग पूर्वक शब्द धातु से परे प्रकट करने और बोलने अर्थ में णिच्
 होता है । परिशब्दयति [कण] निमीलने (मीचना) काणयति । काणयते ॥४६४॥

४६५-वा०—काण्यादीनां वा ॥

चङ् परक णिच् परे होतो काणि आदि धातुओं की उपधा को ऋस्व विक-
 करके हो । अचीकणत् । अचकाणत् [जभि] नाशने । जम्भयति । अजजम्भत् [पूद-
 चरणे (झरना) सूदयति [जसु] ताड़ने । जासयति [पश] बन्धने । पाशयति [अम-
 रोगे । आमयति । आमिमत् । आमिमत् [चट, स्फुट] भेदने । चाटयते । स्फोटयते
 अचीचटत् । अचीचटत । अपस्फुटत् । अपस्फुटत [घट] संघाते (सन्बूह) घाटयति ।
 घाटयते । अजीघटत् (हन्यथांश्च) चुरादि से पहिले नव गणों में जो हिंसार्थक
 धातु कहे हैं उन सब से स्वार्थ में णिच् होता है । हिंसयति । विहयति, इत्यादि

[दिव्] मर्दने । देवयति । अदीदिवत् [भज्] प्रतियत्ने (सञ्चय) अर्जयति [घुषिर्] विशब्दने । घोषयति । अजुघुषत् । इस धातु में इरित् करने का यह प्रयोजन है कि णिच् प्रत्यय विकल्प से होवे जब णिव नहीं होता वहाँ अङ् (१२८) से होजाता है । अघुषत् । अघोषीत् [आङ्:क्रन्द] सातत्ये । आङ्:पूर्वक क्रन्द धातु से निरन्तर अर्थ में णिच् होता है । आक्रन्दयति । आचक्रन्दत् । आचक्रदत् । [लाश] शिल्पयोगे (कारौगरी में युक्त) लाशयति । लाशयते । अलीलशत् । अलीलशत । अलाशयत् । अलाशयिष्यत् [तसि,भूष] अलंकारे । तंसयति । भूषयति [अर्ह] पूजायाम् । भायति [ज्ञा] नियोगे (नियुक्त करना) आज्ञापयति । आज्ञापयते (४६२) [भज] सूत्र से भावणे (बहुत सुनाना) भाजयति [शृधु] प्रसहने । शर्धयति । अशीशृधत् । [वर्ध] धत् [यत्] निष्कारोपस्कारयोः (स्थान और जोड़ना) यातयति [काल, गल] कुभयति दने । कालयति [रव] इत्येके [रग] इत्यन्ये [अश्रु] विशेषणे । अश्रयति [क्षप] चिचोकरणे (चिह्नकरना) लिंगयति । अलिलिङ्गत् । अलिलिङ्गत [मुद] प्रेरणे । ए (मिलाना) मोदयति । मोदयते । अमूमुदत् । अमूसुदत् । अमोदयिष्यत् । ४६४—यिष्यत् [चस] धारणग्रहणवारणेषु । चासयति । अतचसत् [उभ्रस] उच्छे । जन,धा उभ्रासयति । इस धातु में किङ्क्षी के मत में उकार की इत्संज्ञा ही जाती प्रादेश न । प्रमोचनमोदनयोः । मोचयति । मोचयते [वस] स्नेहच्छेदापहरणेषु (प्रौति, ऐलयीत् [और छौनलेना) वासयति । वासयते [चर] संशये । चारयति । अचीचरत् । अचाचरत् [च्यु] हसने । सहन इत्येके । च्यावयति । च्यावयते [च्युस] इत्येके । च्योसयति । च्योसयते [भुवो] अवकल्कने (मिलाना वा विचारना) भावयति [क्षपेध] क्षपू धातु से भी सामर्थ्य अर्थ में णिच् प्रत्यय हो । कल्पयति [आस्वदः] सकर्म्मकात् । यहाँ से लेकर स्वद धातु पर्यन्त सकर्म्मक धातुओं से ही णिच् प्रत्यय कहेंगे [यस] ग्रहणे । यासयति । यासयते [पुष] धारणे । पोषयति । अपूपुषत् [दल] विदारणे । [खण्डकरना] [पट, पुट, लुट, तुजि, मिजि, पिजि, भजि, लघि, चसि, पिसि, स्तसि, दसि, कुशि, घट, घटि, वृद्धि, वर्ह, वल्ह, गुप, धूप, विच्छ, चीव, पुथ, लोक्त, धोचृ, णद, कुप, तर्क, वतु, वधु] भाषार्थाः (बोलना) पाटयति । पाटयति । भोटीयति । तुञ्जयति । लोचयति । लोचयति ॥ ४६५ ॥

४६६—नाग्लोपिशाष्टदिताम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २ ॥

णिच् प्रत्यय के परे जिन के अक् का लोप हुआ हो उन, शास और ऋकार जिन का इत् गया हो उन धातुओं की उपधा को झस्व न हो चङ् परक णिच् परे होती । अलुलोक्तत् । अलुलोचत् [रुट, लजि, अजि, दसि, सृशि, रुशि, ससि, शीक, नट, पुटि, जिवि, रघि, लघि, अहि, रहि, नहि] च [लडि, तड, नल]

च । रोटयति । रञ्जयति । लञ्जयति । नाटयति । जित्वयति । [पूरी] प्राप्यायने
 (वढ़ना) पूरयति [रुज] हिंसायाम् । रोजयति । अरुरुजत् [ष्वद्] आस्तादने ।
 स्वादयति । असिष्वदत् [स्वाद्] इत्येके । इस में विशेष यह है कि सोपदेश के न
 होने से अभ्यास से परे पत्व नहीं होता । असिष्वदत् । इत्यास्वदीयाः । स्वदपर्यन्त
 जो सकर्षक धातु कह चुके हैं सो पुरे हुए [आधुषाहा] अब यहां से आगे धृष
 धातु पर्यन्त सब धातुओं से णिच् प्रत्यय विकल्प कर के होगा पक्ष में सब धातुओं
 से भ्रादि गण के प्रयोग होंगे [युज, पृच] संयमने । योजयति । योजति । अयूयु-
 जत् । अयौचीत् । पचयति । अपौपृचत् । अपपचत् । पचति । पचिता । पचिष्यति
 अपचिष्यत् [अर्च] पूजायाम् । अर्चयति । अर्चति । आर्चिचत् । आर्चीत् [षह]
 अर्षणे (सहना) साहयति । असौसहत् । सहति । असहौत् (१६२) [ईर] चेपे ।
 ईरयति । ऐरिरत् [ली] द्वीकरणे (गीला करना) लाययति । लयति [वृजी]
 वर्जने । वर्जयति । वर्जति । अवौवृजत् । अववर्जत् । अवर्जीत् [वृज्] आवरणे
 (ढांकना) वारयति । वरति । वरते [जृ] वयोहानी । जारयति । जरति ।
 जरिता । जरिता [जि] च । जाययति । जयति । जेता [रिच] वियोजनस-
 म्यर्चनयोः (पृथक् होना और समबन्ध) रेचयति । रेचति । रेक्ता । अरीरिचत् ।
 [शिष] असर्वोपयोगे (वाकी होना) शिषयति । शिषति । शिष्टा । अशीशिषत् ।
 [तप] दाहे । तापयति । तपति । तप्ता । अतीतपत् । अताप्तीत् [तृप] तृप्ती ।
 तर्पयति । तर्प्ता । चप्ता [कृदौ] सन्दोषने (प्रकाश होना) कृदयति । कृदति ।
 अचीकृदत् । अचचकृदत् । कृदिष्यति । यहां इट् का विकल्प (३६७) रुधादिके साह-
 चर्य्य से नहीं होता [चृप, कृप, टृप] सन्दोषनइत्येके । चर्पयति । कर्पयति । दर्पयति ।
 दर्पति । अदीटृपत् । अददर्पत् [टृभौ] भये । दर्भयति । दर्भति । दर्भिता [टृभ]
 सन्दर्भे (गांठना) [कृद] संवरणे । क्रादयति । कृदति [अथ] विमोक्षणे ।
 हिंसायामित्येके । आश्रयति [भौ] गतौ । माययति । मयति । मेता [अन्य]
 बन्धने । अन्ययति । अन्यति [क्रथ] हिंसायाम् । स्वरितेदित्येके । यह धातु
 भ्रादिगण में स्वरित् है । क्राथयति । क्रथति । क्रथते [शौक] आमर्षणे (सहना)
 [चौक] च । चौकयति । चौकति । अचिचौकत् [अर्द] हिंसायाम् । स्वरितत् ।
 अर्दयति । आर्दिदत् । अर्दति । अर्दते [हिंसि] हिंसायाम् । हिंसयति । हिंसति
 [अर्ह] पूजायाम् (आङःपद) पद्यर्थे (गति) आसादयति । आसीदति (२३१)
 सीद आदेश आसत्ता । आसात्तीत् [शुभ] शौचकर्मणि । शुभयति [कृद] अपवारणे
 स्वरितत् (दुरप्रकार हठाना) [जुष] परितर्कणे (इकट्ठा होना वा मारना) पति
 तर्पण इत्यन्ये । जाषयति । जाषति [धूज्] कम्पने ॥ ४६६ ॥

४६७-वा०-धूज् प्रीजोर्नुग्वक्तव्यः ॥

णिच् परे हो तो धूज् प्रीज् धातु को नुक् का आगम हो। धूनयति। धवति। धवते। इस वार्त्तिक को कोई आचार्य (धूज् प्रीणोः) ऐसा पढ़ के क्रादिस्थ प्रीज् धातु के साहचर्य से क्रादि का जो धूज् धातु है उसी को हेतुमान् णिच् के परे नुक् कहते हैं। धावयति। [प्रीज्] तर्पणे। प्रीणयति। प्रयति। प्रयते [अय्य, गय्य] सन्दर्भे (गांठना)। [आप्] लभने (प्राप्ति करना) आपयति। आपति। आपत्। (२१७) आप्ता। स्वरितेदयमित्येके। आपते [तनु] अङ्गोपकरणयोः (अङ्ग और उपकार करना) उपसर्गाच्च दैर्घ्ये। विस्तार अर्थ में उपसर्ग से परे णिच् होता है। तानयति। वितानयति। तनति। वितनति। [चन] अङ्गोपहननयोरित्येके। चानयति। चनति [वद] संदेशवचने। स्वरितेत् (संदेश कहना) वादयति। वदति। वदते [वच] परिभाषणे (अधिक बोलना) वाचयति। वचति। वक्ता। अवीवचत्। अवाच्चीत् [मान] पूजयाम्। मानयति। मानति। मानिता [भू] प्राप्तावात्मनेपदौ। भावयते। भवति। इस धातु से णिच् के संयोगमें ही आत्मनेपद होता है अन्यत्र नहीं [गर्ह] विनिन्दने (निन्दा) गर्हयति [मार्ग] अन्वेषणे (खोजना) मार्गयति [कठि] शोके। कण्ठयति [मृजू] शौचालंकारयोः। मार्जयति। मार्जति। मार्जिता। मार्ष्टा [मृष] तितित्तायाम्। स्वरितेत्। मर्षयति। मर्षति। मर्षते [धृष] प्रसहने। धर्षयति। धर्षति। इत्याधृषीयाः। धृषपर्यन्त धातुओं से णिच् का विकल्प कह चुके हैं सो पूरे हुए ॥

अथादन्ताः। अब अदन्त धातु कहते हैं अर्थात् उन के अकार का लोप (१७२) से णिच् के परे होगा इसी से ये अगलोपी कहाते हैं [कथ] वाक्यप्रबन्धने (प्रबन्ध से कहना) कथयति। अचकथत्। यहां अगलोप के होने से वृद्धि नहीं होती [वर] ईप्सायाम् (मिलने की इच्छा) वरयति। अववरत् [गण] संख्याने (गणना) गणयति ॥ ४६७ ॥

४६८-ईच गणः ॥ अ० ॥ ७। ४। ६७ ॥

गण धातु के अभ्यास को ईकारादेश और चकार से अकारादेश भी हो चङ् परक णिच् परे हो तो। अजीगणत्। अजगणत् [शठ, खठ] सम्यगवभाषणे (अच्छे प्रकार कहना) शाठयति। खाठयति। अशशठत्। अशखठत् [पट, वट] ग्रन्थे पठयति। वटयति [रह] त्यागे। अररहत् [स्तन, गदी] देवशब्दे। स्तनयति। गदयति [पत] गती वा। यह धातु विकल्प करके णिजन्त है। वाऽदन्तइत्येके। कोई लोग विकल्प करके अदन्त कहते हैं। पतयति। पतति। पतयांचकार। अपतीत्। पातयति। अपीपतत् [पष] अनुपसर्गात्। यहां पूर्व से गति अर्थ की अनुवृत्ति आती है। पषयति [स्वर] आक्षेपे (निन्दा) स्वरयति [रच] प्रतियत्ने। रचयति।

[कल] गतौ संख्याने च । कलयति [चह] परिकल्कने (अभिमान और सूखता) चहयति । अचचहत् [मह] पूजायाम् । महयति [सार, कप, अथ] दौर्वल्ये (निर्वलता) सारयति । कपयति । अथयति [सृह] ईप्सायाम् । सृहयति [भाम] क्रोधे । अवभामत् । अग्लोपी होने से उपधा ङस्व का निषेध (४६६) [सूच] पैशुन्ये (चुगलौ करना) सूचयति । अससूचत् [खेट] भक्षण्ये । खेटयति । अचिखेटत् । तृतीयान्तइत्येके । कोई के मत में छकारान्त खेड धातु है । खेडयति । अचिखेडत् [खोट] इत्यन्ये [क्षीट] क्षेपे (निन्दा) अचुक्षीटत् [गोम] उपलेपने (लीपना) गोमयति । अजुगोमत् [कुमार] क्रीडायाम् । कुमारयति । अचुकुमारम् [शील] उपधारणे । अच्छे गुणों का अभ्यास करना) शीलयति । अशिशीलत् [साम] सान्त्वप्रयोगे । अससामत् [विल] कालोपदेशे (नियत समय का उपदेश) विलयति [काल] इति पृथक् धातुरित्येके । कालयति । अचकालत् । [पल्पूत्] लवनपवनयोः (खेत काटना और पवित्र करना) पल्पूलयति । अपपल्पूलत् [वात] सुखसेवनयोः । गतिसुखसेवनेष्वित्येके । वातयति । अववातत् [गवेष] मार्गणे (खोजना) गवेषयति । अजगवेषत् [वास] उपसेवायाम् । वासयति [निवास] आच्छादने । निवासयति । अनिनिवासत् [भाज] पृथक्कर्मणि (अलग करना) भाजयति । अवभाजत् [सभाज] प्रीतिदर्शनयोः । प्रीतिसेवनयोरित्येके । सभाजयति । अससभाजत् [जन] परिहाणे । जनयति । औननत् । वेद में औनयीत् (४६४) चङ् नहीं होता [ध्वन] शब्दे । अदध्वनत् । अध्वनयीत् [कूट] परितापे । कूटयति । अचुकूटत् । परिदाह इत्यन्ये [सङ्केत, ग्राम, कुण, गुण] चामंत्रणे । चकार से कूट धातु की अनुवृत्ति है । सङ्केतयति । ग्रामयति । कुणयति । गुणयति [कूण] संकोचने । अचुकूणत् [स्तेन] चौर्ये (चोरी) अतिस्तेनत् । आगर्वादात्मनेपदिनः । यहां से आगे गर्व धातु पर्यंत आत्मनेपदी है [पद] गतौ । पदयति । अपपदत् [गृह] ग्रहणे । अजगृहत [मृग] अन्वेषणे । मृगयते [कुह] विस्मापने (सन्देह कराना) कुहयते [शूर, वीर-विक्रान्तौ] (पराक्रम दिखाना) शूरयते । अशुशूरत् । वीरयते [स्थूल] परिहृहणे (मोटापन) स्थूलयते [अर्थ] उपयाज्जायाम् (चाहना) अर्थयते । आर्तघत [सत्र] सन्तानक्रियायाम् (विस्तार) सत्रयते । अससत्रत् [गर्व] माने । गर्वयते । अजगर्वत् । इत्यागर्वीयाः [सूत्र] वेष्टने (लपेटना) विमोचन इत्यन्ये (छोड़ना) सूत्रयति [मूत्र] प्रस्ववणे । मूत्रयति । असुमूत्रत् [रूक्ष] पारुष्ये (कठोरपन) रूक्षयति । अरुरूक्षत् [पार, तीर] कर्मसमाप्तौ । पारयति । तीरयति । अपपारत् । अतितीरत् [पुट] संसर्गे (मिलाना) पुटयति [धेक] दर्शन इत्येके । अदिधेकत्

[कञ्] शैथिल्ये । कञ्जयति । अचकञ्जत् [कर्त्त] इत्यप्येके । कर्त्तयति । प्रातिप-
दिकाद्वात्वर्थे बहुलसिष्ठवच्च । प्रातिपदिक से सामान्य धातु के अर्थ में णिच् प्रत्यय
हो और जैसे इठन् तद्धित प्रत्यय के परे कार्य होते हैं वे णिच् प्रत्यय के परे ही
जैसे । पटुमाचष्टे, पटयति । यहां इठन् प्रत्यय के समान टिलोप होता है । अप-
पटत् । तत्करोतितदाचष्टे । जिस प्रातिपदिक से णिच् होता है वह करने वा
कहने का कार्य समझना चाहिये । मृदुं करोत्याचष्टे वा , मृदयति । यह दूसरा
सूत्र पूर्व सूत्र में कहे धात्वर्थ से संबन्ध रखता है । तेनाऽतिक्रामति । तृतीयान्त
प्रातिपदिक से (अतिक्रमण) उल्लंघन अर्थ में णिच् प्रत्यय हो । अश्वेनातिक्रामति,
अश्वयति । हस्तिनातिक्रामति । हस्तयति, इत्यादि । धातुरूपं च । जिस प्रातिप-
दिक से णिच् प्रत्यय करें वह जिस धातु से बना ही उसी का रूप णिच् प्रत्यय
में होजावे और चकार से अन्य कार्य भी णिच् प्रत्यय के अनुकूल हो जावे । कंस
बधमाष्टे, कंस घातयति । यहाँ बध शब्द इन धातु से बना है वह णिच् प्रत्यय के परे
धातु रूप होकर इन धातु का प्रयोग होता है इस विषय की विशेष व्याख्या आगे
नाम धातु प्रक्रिया में लिखेंगे । कर्त्तृकरणाद्वात्वर्थे । कर्त्ता के व्यापार के लिये जो
साधन हैं उस से धातु के अर्थ में णिच् प्रत्यय हो । असिना हन्ति, असयति । परशु
ना हृष्यति, परशयति [वल्क] दर्शने । वल्कयति [चित्र] चित्रोकरणे । चित्रय-
ति । अचिचित्रत् । कदाचिद्दर्शने किसी समय देखने अर्थ में भी चित्र धातु से
णिच् होता है [अंस] समाधाते । अंसयति [वट] विभाजने [लज] प्रकाश-
ने । लजयति [वटि, लजि] इत्येके । वटयति । लंजयति [मिश्र] संपर्के (संयोग
करना) मिश्रयति [संग्राम] युद्धे । अनुदात्तेत् । संग्रामयते । अससंग्रामत् [स्तोम
श्लाघायाम् । स्तोमयति [छिद्र] कर्णभेदने (कान का छेदना) छिद्रयति ।
करणभेदन इत्यन्ये (साधनों का भेद) [कर्ण] इतिधात्वन्तरमित्यन्ये । कर्णयति ।
[अन्ध] दृष्ट्युपघाते (नेत्र फटना) अन्धयति । उपसंहार इत्यन्ये (समाप्ति)
[दण्ड] दण्डनिपातने (दण्डदेना) दण्डयति । अददण्डत् [अंक] पदे लक्षणे च
(पग और चिन्ह) अङ्कयति । आञ्जकत् [अङ्ग] च । आञ्जगत [सुख, दुःख]
तत्क्रियायाम् । (सुख और दुःख करना) सुखयति । दुःखयति [रस] आस्वादसे-
हनयोः । रसयति [व्यय] वित्तसमुत्सर्गे (खर्च करना) व्यययति । अवव्ययत् ।
[रूप] रूपक्रियायाम् (रूप को देखना वा करना) रूपयति । अररूपत् ।
[छेद] वैधीकरणे (दोभाग करना) अचिच्छेदत् [छेद] अपवारण इत्येके ।
छेदयति [लाभ] प्रेरणे (आज्ञा करना) लाभयति । अललाभत् [व्रण] गात्र-
विचूर्णने (घाव) व्रणयति । अवव्रणत् [वर्ण] वर्णक्रियाविस्तारगुणवचनेषु

(रंगना, फैलाव, सुतिकरना) वर्णयति । अववर्णयति । बहुलमेतन्निर्दर्शनम् । कथ
 आदि अदन्त धातुओं का पाठ बहुल से जानो अर्थात् बहुल कहने से अन्य धातु
 ओं से भी यहाँ णिच् होता है जैसे [पर्ण] हरितभावे (हराहीना) पर्णयति ।
 अपपर्णयति [विष्क] दर्शन (देखना) विष्कयति । अपविष्कयति [चप] प्रेरणे
 पचयति [वस] निवासे । वसयति [तुल्य] आवरणे । तुल्ययति । तथा । गणयति ।
 आन्दोलयति । प्रेङ्खोलयति । विडम्बयति । अवधीरयति, इत्यादि प्रयोग भी
 बहुल ग्रहण से होते हैं तथा कोई ऐसा कहते हैं कि दशो गणों के धातुओं के लिखे
 बहुल ग्रहण है इस से सौत्र लौकिक और वैदिक धातु अपठित (जो दशगणों में
 नहीं पड़े) उन से भी उन २२ गणों के प्रयोग होते हैं । और कोई के मत में नवगणों
 में पड़े धातुओं के लिये बहुल है इस से चुरादि गण में अपठित धातुओं से भी
 स्वार्य में णिच् होजाता है जैसे । प्रचीकरत् । और कोई के मत में चुरादि धातुओं
 से ही णिच् प्रत्यय बहुल कर के होता है ॥ णिङ्ङान्निरसने । अङ्गवाच्ये प्रातिपदिक
 से फेंकने अर्थ में णिङ् प्रत्यय हो । ङित् करने से आत्मनेपद होता है । हस्तो विर-
 स्यति, हस्तयते । पादौ निरस्यति, पादयते, इत्यादि । श्वेताऽश्वश्चतस्रः गालोडिताः
 रकाणामश्वतरैतकलोश्चाश्वेताश्व, अश्वतर, गालोडित, आह्वरक, इत्यादि प्रातिपदिकों
 से अतिक्रमण अर्थ में णिङ् प्रत्यय और इन के अश्व, तर, इत और अकार का
 लोप होजावे । श्वेताश्वमाचष्टे, अतिक्रामति वा, श्वेतयते । अश्वतरमाचष्टे, पश्यति
 गालोडितं वाग्बिमर्शमाचष्टे तत्करोत्यतिक्रामति वा, गालोडयते । आह्वरकमरो-
 त्यतिक्रामति वा, आह्वरयते । पुच्छादिषु धात्वर्थ इत्येवसिद्धम् । पुच्छ आदि प्रातिपदिक
 कों से (पुच्छभाण्डचौवराणिङ्) इस सूत्र में णिङ् प्रत्यय कहा है वहाँ भी धात्वर्थ
 में प्रातिपदिक मात्र से कहने से णिच् होकर बहुलवचन सामर्थ्य से आत्मनेपद
 भी होजावेगा फिर पुच्छआदि से णिङ् कहने का कुछ प्रयोजन नहीं और वहाँ
 सिद्ध शब्द के मंगलार्थ होने से इस चुरादि गण की समाप्ति जानो । इन दश
 गणों में भ्वादि गण सब का उत्कर्ग है और नौ गण सब शप् के ही बाधक हैं ।
 । जब नव गणों में पड़े भ्वादि के धातु का अवकाश मिलता है तब शप् ही
 होता है । जितने धातु इन दश गणों में लिखे हैं वेही औपदेशिक हैं और इङ्ग
 से सब प्रकार के शब्द बनते हैं । और आगे १२ प्रक्रिया लिखेंगे उन प्रत्येक
 में इन सब धातुओं का काम पड़ा करेगा ॥

इति चुरादिगणः समाप्तः ॥

अथ सिजन्त प्रक्रिया ॥

४६६—तत्प्रयोजको हेतुश्च ॥ अ० ॥ १ । ४ । ५५ ॥

स्वतंत्र कर्ता को प्रेरणा करने वाले को हेतु और कर्ता दोनों संज्ञा हैं ॥ ४६६ ॥

४७०—हेतुमति च ॥ अ० ॥ ३ । १ । २६ ॥

प्रयोजक कर्ता के भेजने आदि व्यवहार अर्थ में धातु से णिच् प्रत्यय हो । सो दृशगणों में जितने धातु लिख चुके हैं उन सब से णिच् आदि प्रक्रिया के प्रत्ययों में उन सब धातुओं के प्रयोग सर्वत्र नहीं लिखेंगे किन्तु जिन में कुछ विशेष कार्य सूत्रों से होते हैं वे लिखे जावेंगे । भवतीति भवन्, भवन्तं प्रेरयति, भावयति । भावयते । यहां क्रिया का फल कर्ता के लिये होने में आत्मनेपद (४५७) होता है । और शप् आदि की उत्पत्ति होती है । भावयाचकार । भावयास्वभूवा । भावयामास । भावयिष्यति । भावयिता । भावयिषति । भावयिषाति । भावयतु । भावयत् । भावयेत् । भाव्यात् (१७७) णिलोप ॥ ४७० ॥

४७१—ओः पुयणज्यपरे ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८० ॥

अवर्ण परक पवर्ग, यण् और जकार परे हैं तो सन् प्रत्यय के परे जो अङ्ग स के अवयव अभ्यास के अवर्ण को इकारादेश हो । अवीभवत् । अपीपवत् । अमीमवत् । अयीयवत् । अरीरवत् । अलीलवत् । अजीजवत् । यहां सर्वत्र यद्यपि न् प्रत्यय परे नहीं है तो भी (१८१) सन्वद् भाव मानकर कार्य होता है ॥ ४७१ ॥

४७२—स्वतिष्ठणोतिद्रवतिप्रवतिस्रवतिच्यवतीनां

वा ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८१ ॥

स्वति आदि धातुओं के अभ्यासस्थ उकार को विकल्प करके इकारादेश हो सन् प्रत्यय के परे अवर्ण परक धातु का अक्षर परे हो तो । असिस्ववत् । असुस्ववत् । अशिश्चवत् । अशुश्चवत् । अदिद्रवत् । अदुद्रवत् । अपिप्रवत् । अपुप्रवत् । अपिप्लवत् । अपुप्लवत् । अचिच्यवत् । अचुच्यवत् । अडुडौकत् । अचीचकासत् । यहां (४६६) सर्वत्र उपधा को ऋस्व नहीं होता । और चुरादिगण में स्वार्थ णिच् से भी हेतुमान् णिच् प्रत्यय होता है । चोरयन्तं प्रेरयति, चोरयति । अचूचुरत् ॥ ४७२ ॥

४७३—णौ च संश्रुडोः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३१ ॥

सन् और चङ् जिस से परे हैं ऐसा णि परे हो तो शि धातु की सम्प्रसारण विकल्प करके हो सम्प्रसारण और उस के आश्रय जो कार्य हैं उन के बलवान् होने से सम्प्रसारण और पूर्वरूप होकर । अशुशुवत् । पच में । अशिश्चियत् । आटिटत् । यहां उपधा को ऋस्व बहिरङ्ग भी है परन्तु ओण् धातु में ऋदित् कर-

णसामर्थ्य मान हित्व से पहिले ही ङ्स हो जाता है। औन्दिदत्। आड्डिडत्।
आर्चिचत्। यहां सयोग के आदि न द और र को हित्व (३२६) से नहीं होता।
[उल] आर्जवे। धातु उपदेश में दकारोपध है और (भुज न्युजौ) सूत्र में निपातन
करने से दकार को बकार हो जाता है वह अन्तरङ्ग भी है परन्तु हित्व विषय में
औपदेशिक का ग्रहण होने से दकारस्थानी बकार को हित्व नहीं होता।
औजिजत् ॥ ४७३ ॥

४७४—रभेरशब्दलिटोः ॥ अ० ॥ ७।१।६३ ॥

रभ धातु की नुम् का आगम हो शप् और लिट् भिन्न अजादि प्रत्यय पर हो
ता। रभयति। अररभत् ॥ ४७४ ॥

४७५—लभेञ्च ॥ अ० ॥ ७।१।६४ ॥

पूर्वतुल्योक्त कार्य लभ धातु की भी ही। लभयति। अललभत्। अजीहयत्।
यहां (४२२) से चङ् के परे अभ्यास को लुत्व का निषेध हो जाता है। स्मारयति।
असस्मरत्। दारयति। अददरत्। अतत्वरत्। असस्वदत्। अतस्तरत्। यहां सर्वत्र
स्मृ आदि धातुओं के अभ्यास को अकारादेश (४५८) से हो जाता है ॥ ४७५ ॥

४७६—विभाजा वेष्टिचेष्ट्योः ॥ अ० ॥ ७।४।८६ ॥

चङ् परक णिच् परे हो ता वेष्ट और चेष्ट धातु के अभ्यास को अकारादेश
विकल्प करके होवे। अववेष्टत्। अविवेष्टत्। अचचेष्टत्। अचिचेष्टत्। आज आदि
धातुओं की उपधा की विकल्प करके ङ्स (४५८) सूत्र से हो कर। अविभजत्।
अवभाजत्। अवभसत्। अवभासत्। अविभषत्। अवभाषत्। अदीदिपत्। अदि-
दीपत्। अजीजिवत्। अजिजीवत्। अपीपिडत्। अपिपीडत्। कण आदि णिजन्त
धातुओं की उपधा की चङ् परक णिच् में विकल्प करके ङ्स (४६५) से हो जाता
है (कण, रण, भण, अण लुप, हेठ) ये छः धातु महाभाष्य में काण्णादि गिनाये
गये हैं। अचीकणत्। अचकाणत्। इत्यादि ॥ ४७६ ॥

४७७—स्वापेञ्च ॥ अ० ॥ ६।१।१८ ॥

णिजन्त स्वापि धातु की संप्रसारण हो चङ् परे हो ता। स्वापयति।
अमसुपत् ॥ ४७७ ॥

४७८—शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् ॥ अ० ॥ ७।३।३७ ॥

या आदि धातुओं की युक् का आगम होवे णिच् परे हो ता (४६२) सूत्र से
युक् प्राप्त है उस का यह अपवाद है। शाययति। छायायति। साययति। हाययति।
संव्याययति। वाययति। पाययति। अशोशयत्। हा धातु में विशेष है ॥ ४७८ ॥

४७६—ह्रः सम्प्रसारणम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ३२ ॥

सन् और चङ् जिससे परे ही ऐसा णिच् परे हो तो ह्रा धातु को सम्प्रसारण हो । अजुहवत् । अजुहावत् । यहां (४६५) वार्त्तिक से उपधा ऋस्व विकल्प होता है । पा धातु में यह विशेष है ॥ ४७६ ॥

४८०—लोपः पिवतेरौच्चाभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४ ॥

चङ् परक णिच् परे होतो पिवति अङ्ग की उपधा का लोप और अभ्यास को इकारादेश हो । अपीप्यत् । अर्पयति । ज्ञेपयति । ल्वेपयति । रेपयति । क्लोपयति । क्षापयति । स्थापयति । दापयति । धापयति । घ्रापयति । यहां सर्वत्र (४६२) सूत्र से णिच् के परे पुक् होता है । स्था धातु में यह विशेष है ॥ ४८० ॥

४८१—तिष्ठतेरित् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५ ॥

चङ् परक णिच् परे हो तो स्था अङ्ग की उपधा को इकारादेश हो । अतिष्ठित् । अतिष्ठित्तान् । घ्रा धातु में यह विशेष है ॥ ४८१ ॥

४८२—जिघ्रतेर्वा ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६ ॥

चङ् परक णिच् परे हो तो घ्रा धातु की उपधा को इकारादेश विकल्प करके हो । अजिघ्रित् । अजिघ्रित् । कर्त्तयति । इत्यादि । ऋवर्णीपध धातुओं में (४६०) सूत्र से विकल्प करके ऋत् हो जाता है । अचीकृतत् । अचकर्त्तत् । कीर्त्तयति । अचीकृतत् । अचिकीर्त्तत् । यर्त्तयति । अवीकृतत् । अववर्त्तत् । अमीकृतत् । अममाजत् । पाति धातु में यह विशेष है ॥ ४८२ ॥

४८३—वा०—पातेर्लुक्चनम् ॥

णिच् परे होतो पाति धातु को लुक् आगम हो । पालयति ॥ ४८३ ॥

४८४—वो विधूनने जुक् ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३८ ॥

णिच् परे हो तो कम्पाने अर्थ में वा धातु को जुक् आगम हो । वाजयति । और जहां कम्पाना अर्थ नहीं है वहां । केशान् वापयति ॥ ४८४ ॥

४८५—लौलोर्नुग्लुकावन्यतरस्यां स्नेहविपातने ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३९ ॥

णिच् परे हो तो चिकनाई गिराने अर्थ में लौ और ला धातु को नुक् और लुक् का आगम यथासंख्य और विकल्प करके हो । घृतं विलीनयति । घृतं विलापयति । जहां स्नेह विपातन नहीं है वहां । विलाययति । विलापयति । इस सूत्र में इकारान्त लौ धातु * का ग्रहण इसलिये है कि जिस पक्ष में (४००) सूत्र से आकारादेश होता है वहां नुक् का आगम न हो ॥ ४८५ ॥

४८६—लियः सम्माननशालीनौकरणयोश्च ॥ अ० ॥ १।३।७० ॥

सत्कार तिरस्कार और ठगने अर्थ में णिजन्त ली धातु से आत्मनेपद हो। जटाभिरालापयते। अर्थात् जटाओं से सत्कार को प्राप्त होता है। श्येनो वर्तिकासुजापयते। बाज पखेरू बतक का तिरस्कार करता है। कस्त्वामुजापयते। कौन तुझ को ठगता है ॥ ४८६ ॥

४८७—विभेतेहेतुभये ॥ अ० ॥ ६।१।५६ ॥

णिच् प्रत्यय परे हो तो हेतु से भय अर्थ में भी धातु के एच् को विकल्प से आकार आदेश हो ॥ ४८७ ॥

४८८—भौस्म्योहेतुभये ॥ अ० ॥ १।३।६८ ॥

हेतु भय अर्थ में णिजन्त भी और स्मि धातु से आत्मनेपद हो। आकारादेश पक्ष में। मुण्डी भाषयते। और यहां आकारादेश न हुआ वहां यह विशेष है ॥ ४८८ ॥

४८९—भियो हेतुभये पुक् ॥ अ० ॥ ७।३।४० ॥

णिच् परे हो तो हेतुभय अर्थ में भी धातु को पुक् आगम हो। जटिलो भीषयते। जटाधारी डरपाता है। यहां भी धातु में महाभाष्यकार ईकार का प्रश्लेष माना है इस से आकारान्त भी धातु को पुक् नहीं होता है। स्मि धातु में यह विशेष है ॥ ४८९ ॥

४९०—नित्यं चयतेः ॥ अ० ॥ ६।१।५७ ॥

णिच् परे हो तो हेतु भय अर्थ में स्मि धातु को नित्य ही आकारादेश हो। जटिलो विस्मापयते। और जहां हेतुभय अर्थ नहीं है वहां। कुञ्चिकयेन विस्मापयति। यहां कुंची से भय है किन्तु हेतु प्रयोजक कर्ता से नहीं है ॥ ४९० ॥

४९१—स्फाया वः ॥ अ० ॥ ७।३।४१ ॥

णिच् परे हो तो स्फायि अङ्ग को वकारादेश हो। स्फाययति ॥ ४९१ ॥

४९२—शदेरगतौ तः ॥ अ० ॥ ७।३।४२ ॥

णिच् परे हो तो गति भिन्न अर्थ में वर्तमान शब्द अङ्ग को तकारादेश हो। पुष्पाणि शातयति। और गति अर्थ में तो। गोपालो गाः शादयति। दयति। यहां चलाना अर्थ है ॥ ४९२ ॥

४९३—रुहःपोऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ७।३।४३ ॥

णिच् परे हो तो रुह अङ्ग को पकारादेश विकल्प करके होवे। रोपयति। रोहयति ॥ ४९३ ॥

४८४—क्रीड्जीनां णौ ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४८ ॥

णिच् प्रत्यय परे होतो क्री, ड् और जि धातुओं के एच् को आकारादेश हो । आकारादेश हो कर पुक् (४६२) क्रापयति । अध्यापयति । जापयति । ड् धातु में कुछ विशेष है ॥ ४८४ ॥

४८५—णौ च सँध्यङोः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५१ ॥

सन् और चङ् जिस से परे हों ऐसा णिच् परे होतो ड् धातु को गाड् आदेश विकल्प कर के होवे । अध्यजीगपत् । अध्यापिपत् ॥ ४८५ ॥

४८६—सिध्यतेरपारलौकिके ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४८ ॥

णिच् परे होतो सांसारिक पदार्थों की सिद्धि करने अर्थ में वर्तमान जो सिध्यति धातु है उस के एच् को आकारादेश हो । अन्नं साधयति । अलौकिक-ग्रहण इस लिये है कि । तपस्तापसं सेधयति । चापयति । स्फारयति । यहां (४६३) सूत्र से आकारादेश होता है ॥ ४८६ ॥

४८७—प्रजने वीयतेः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५५ ॥

णिच् परे होतो गर्भधारण कराने अर्थ में वर्तमान वी धातु के एच् को आकारादेश विकल्प करके हो । पुरोवातो गाः प्रवापयति । प्रवाययति वा । गूहयति (२३५) सूत्र से उपधा को जकार होता है ॥ ४८७ ॥

४८८—दोषो णौ ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ८० ॥

णिच् परे होतो दुष् धातु के उपधा ओकार को जकारादेश हो । दूषयति ॥ ४८८ ॥

४८९—वा चित्तविरागे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ८१ ॥

णिच् परे होतो चित्त विगाढ़ने अर्थ में दुष् धातु के ओकार को विकल्प कर के जकारादेश हो । चित्तं दूषयति । दोषयति वा कामः । जितने मित् संज्ञक धातु भ्रादि और चुरादि गण में लिख चुके हैं उन सब की उपधा को क्ख (४६१) से होता है जैसे । घटमानं प्रयोजयति, घटयति । जनयति । जरयति । रञ्जधातु में यह विशेष है ॥ ४८९ ॥

५००—वा०—रञ्जेणौ मृगरमणे ॥

णिच् परे होतो मृगरमण अर्थ में रञ्ज धातु के उपधा नकार का लोप हो । मृगान् रजयति । अन्यत्र । रंजयति वस्त्राणि । गच्छन्तं प्रयोजयति गमयति । अजीगमत् । ज्वलयति । ज्वालयति ॥ ५०० ॥

५०१—गौ गमिरबोधने ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४६ ॥

णिच् परे हो तो अबोधन अर्थ में इण् धातु को गमि आदेश हो । यन्त प्रयोग जयति गमयति । बोधन अर्थ में तो । प्रत्याययति । इक् धातु को भी इण्वत् कार्य (३४७) वार्त्तिक से होता है । अधिगमयति ॥ ५०१ ॥

५०२—हनस्तो चिम्बलोः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३२ ॥

चिण् और णल् भिन्न जित् णित् प्रत्यय परे हो तो हन् धातु को तकारादेश हो । घातयति । यहां (३०४) से कृत्व हो जाता है । ईर्ययति ॥ ५०२ ॥

५०३—वा०—ईर्यतेस्तृतीय इभवत् इति वक्तव्यम् ॥

ईर्य धातु के हित्व प्रसंग में तृतीय व्यंजन वा तृतीय एकाच् अवयव को हित्व आदेश हो । ऐर्ययत् । यहां तृतीय के कहने से पकार को हित्व नहीं होता है । नाथयति । अननाथत् ॥ ५०३ ॥

इति णिजन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ सन्तप्रक्रिया ॥

५०४—धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ७ ॥

जिस का इच्छा कर्म और इच्छा के साथ कर्ता हो उस धातु से इच्छा अर्थ में विकल्प करके सन् प्रत्यय हो । पठितुमिच्छति, पिपठिषति । कर्मग्रहण इसलिये है कि । गमनेनेच्छति । यहां करण से न हो । समान कर्ता इस लिये कहा है कि । देवदत्तस्य भोजनमिच्छति यज्ञदत्तः । विकल्पग्रहण से एक पक्ष में वाक्य भी होता है । पिपठिषांचकार । पिपठिषिता । पिपठिषिष्यति । पिपठिषिषति । पिपठिषिषाति । पिपठिषति । पिपठिषाति । पिपठिषतु । अपिपठिषत् । पिपठिषेत् । पिपठिष्यात् । अपिपठिषीत् । अपिपठिषिष्यत् । अट् धातु को घसल् आदेश (३०२) से होता है । अस्तुमिच्छति जिघ्रसति । ईर्य धातु के तृतीय पक्ष को हित्व होता है । ईर्यिषिषति ॥ ५०४ ॥

५०५—रुद्विदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च ॥ अ० ॥ १ । २ । ८ ॥

रुदादि धातुओं से परे जो सन् और क्ता से कित्बत् हो । रुद्विषति । विविदिषति । मुमुषिषति । इन में कित् मान कर गुणादेश नहीं होता ॥ ५०५ ॥

५०६—सनि ग्रहगुहोश्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । १२ ॥

ग्रह गुह और उगन्त धातुओं से परे जो सन् उस को इट् का आगम न हो । जिघृक्षति । यहां (२८६) से संप्रसा० होता है । सुषुप्ति (२८३) से संप० ॥ ५०६ ॥

५०७—किरश्च पञ्चम्यः ॥ अ० ॥ ७।२।७५ ॥

कृ गृ ङ् ङ् और प्रच्छ इन पांच धातुओं से परे षलादि सन् आर्द्धधातुक को इट् का आगम हो। पिपृच्छिषति। चिकरिषति। जिगरिषति। जिगलिषति। दिदरिषते। दिधरिषते ॥ ५०७ ॥

५०८—इको भल ॥ अ० ॥ १।२।६ ॥

इगन्त से परे जो भलादि सन् वह कित् हो। भवितुमिच्छति बुभूषति। पुपूषति। पुपूषते। लुलूषति। लुलूषते ॥ ५०८ ॥

५०९—हलन्ताच्च ॥ अ० ॥ १।२।१० ॥

इक् समीपवर्ती हल से परे भलादि सन् कित् हो। तितिसते। जुषुचति। विभित्सति। इग् ग्रहण इस लिये है कि। थियचते। यहां कित् के न होने से संप्रसारण न हुआ भल् इस लिये है कि। विवर्षिषते। हल् ग्रहण यहां जातिपरक है इस से। तित्वचति। तित्वं हिषति ॥ ५०९ ॥

५१०—अजन्तगमां सनि ॥ अ० ॥ ६।४।१६ ॥

अजन्त, हन्, और अजादेश गम धातु को दीर्घ हो भलादि सन् परे होतो जेतुमिच्छति जिगोषति। चिकोषति। चिचोषति। यहां (४१७) से कुत्वविकल्प० हन्तुमिच्छति, जिघांसति ॥ ५१० ॥

५११—सनि च ॥ अ० ॥ २।४।४७ ॥

सन् परे होतो इण् धातु को गमि आदेश अवोधन अर्थ में हो जिगमिषति। बोधन अर्थ में प्रतौषिषति। अधिजिगमिषति (३४७) वा० से इक् को इण्वज्ञाव ॥ ५११ ॥

५१२—इङ्श्च ॥ अ० ॥ २।४।४८ ॥

सन् परे हो तो इङ् धातु को गमि आदेश हो। अधिजिगांसते। यहां (५०८) से दीर्घ होगया। अजादेश ग्रहण से गम् धातु को दीर्घ नहीं होता है इस से संजिगंसते। यहां उपधा दीर्घ न हुआ ॥ ५१२ ॥

५१३—रलो व्युपधाङ्गलादेः सँश्च ॥ अ० ॥ १।२।२६ ॥

इकार और उकार जिस की उपधा और हल् आदि तथा रल् अन्त में हो उस से परे सेट् ला और सन् कित् संज्ञक हो। दियुतिषते। दियोतिषते। रुरुचिषते। रुरोचिषते। लिलिखिषति। लिलेखिषति। रल्ग्रहण इस लिये है कि। दिदेविषति। इ,उ,उपधा में इस लिये कहा कि। विवर्तिषते। हलादि इस लिये है कि। एषिषति। यहां नित्यद्वित्व को भी बाध कर पूर्व गुणादेश होता है ॥ ५१३ ॥

५१४—सन्निवन्तर्द्धभस्जदम्भुयिस्वयूगुभरज्ञपिसनाम्

॥ अ० ॥ ७।२।४६ ॥

इवन्त, ऋधु, भस्ज, दम्भु, यि, स्ठ, यु, जर्ण, भर, जपि, और सन् इन अङ्गी से परे वलादि सन् आर्द्धधातुक को विकल्प कर के इट् का आगम हो। दिदेविषति। दुयूषति। सिपेविषति। सुस्यूषति। अर्दिधिषति। अनिट् पक्ष में ॥ ५१४ ॥

५१५—आप्ज्ञपृथामौत् ॥ अ० ॥ ७।४।५५ ॥

सकारादि सन् प्रत्यय परे हो तो आप्, अपि और ऋध अङ्गी के अच् को ईकारादेश होवे ॥ ५१५ ॥

५१६—अत्र लोपोऽभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ७।४।५८ ॥

इस (अ० ॥ ७।४।५४ ॥) से लेकर (अ० ॥ ७।४।५८ ॥) इस सूत्र पर्यन्त जिन धातुओं से सन् होता है उन के अभ्यास का लोप होवे। आमुमिच्छति, ईप्सति। अर्धितुमिच्छति, ईर्क्षति। यहां धकार को चर्त्वं और ईकार को रपर भाव होता है। विभ्रज्जिषति। विभर्जिषति (४२७) रेफ और उपधा को रन् आगम का विकल्प०। अनिट् पक्ष में। विभ्रक्षति। विभर्क्षति ॥ ५१६ ॥

५१७—दम्भ इच्च ॥ अ० ॥ ७।४।५६ ॥

सकारादि सन् परे हो तो दम्भ धातु के अच् को इकार और ईकार होवे। पूर्व सूत्र से अभ्यास लोप और (५०८) सूत्र में हल् करके हल् जाति का ग्रहण होने से सन् को कित्व हो कर नकारलोप (१३८) होता है। धिप्सति। धीप्सति। सेट् पक्ष में। दिदम्भिषति। यिषीषति। यिष्यिषति। सुस्वूर्षति (३८०) ऋको उर् आदेश। सिस्वरिषति। यियविषति (४७१) अभ्यास को इत्। युयूषति। कित्व (५०८) हो कर दीर्घ (५१०) होजाता है। जर्णुनविषति (३२७) ङित्व का विकल्प। उर्णुनूषति। जर्णुनूषति (५१४) सूत्र में भर कहने से भ्रादिगण के भृज् धातु का ग्रहण है। विभरिषति। वुभूर्षति (३८०) जिञ् पयिषति। ज्ञीप्सति (५१५) से ईकार और अभ्यास का लोप (५१६) सिसनिषति। सिषासति (३८४) अकारादेश० ॥ ५१७ ॥

५१८—वा०—तनिपतिदरिद्राणामुपसंख्यानम् ॥

तन, पत, और दरिद्रा धातुओं से परे जो वलादि सन् आर्द्धधातुक उस को विकल्प से इट् का आगम होवे ॥ ५१८ ॥

५१६—तनोतेविभाषा ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १७ ॥

सन् परे हो तो तन अङ्ग को उपधा को विकल्प करके दीर्घ होवे । तित-
निषति । तितांसति । तितंसति ॥ ५१६ ॥

५२०—वा०—आशङ्कायासुपसंख्यानम् ॥

संदेह करने अर्थ में धातु से सन् प्रत्यय हो । पतितुमिच्छति, कूलम् । पिपतिषति
खामुमूर्षति ॥ ५२० ॥

५२१—सनि सौमाधुरभलभशकपतपदामच इस् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५४ ॥

सकारादि सन् परे हो तो मौ, मा, घु, रभ, लभ, शक, पत, और पद इन
धातुओं के अच् को इस् आदेश होवे । पिस्त् + सन् + तिप् = पित्सति (२१०)
से सलोप और (५१६) अभ्यास का लोप हो जाता है । दिदरिद्रिषति । दिदरि-
द्रासति (मौ) से डुमिज् और मौज् दोनों का ग्रहण है । मित्सति (२१६) इस् के स को
तकार (मा, माने) मित्सति । माङ्, मेङ् । मित्सते । दो, दाण्, । दित्सति । देङ्, दित्सते ।
दाज्, दित्सति । दित्सते । घेट्, धित्सति । धाज्, धित्सति । धित्सते । रभ, रित्सते ।
लभ, लित्सते । शक्, शित्सति । शक्, शित्सति । शित्सते । पद, पित्सते ॥ ५२१ ॥

५२२—वा०—इत्स्वं सनि राधो हिंसायाम् ॥

सन् परे होतो हिंसा अर्थ में वर्तमान राध धातु के अच् को इस् आदेश और
अभ्यास का लोप होवे । प्रतिरित्सति । हिंसा अर्थ से अन्यत्र । आरिरित्सति ॥ ५२२ ॥

५२३—मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ५७ ॥

सकारादि सन् परे हो तो अकर्मक मुच धातु को विकल्प से गुण और
अभ्यास का लोप होवे प्रयोजन यह है कि जो (५०८) सूत्र से कित् नित् प्राप्त
है उस का विकल्प हो जावे । मोचते । मुमुचते वा वत्सः स्वयमेव । अकर्मक ग्रहण
इस लिये है कि । मुमुचति वत्सं देवदत्तः । यहां गुण न होवे । हतु आदि चार
धातुओं से परे सादि आर्द्धधातुक को इट् का निषेध (२२२) विवृत्तति । (२२१)
परस्मैपदविधि । निनिर्त्तिषति । निवृत्तति (३८७) से इट् का विकल्प । चिकर्त्तिषति ।
चिक्त्तति । चिचर्त्तिषति । चिचृत्तति । चिक्र्दिषति । चिक्त्तति ॥ ५२३ ॥

५२४—इट्सनि वा ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४१ ॥

वृङ्, वृज् और ऋकारान्त धातुओं से सन् को इडागम विकल्प कर के ही ।
तितरिषति । तितरीषति (२६४) इट् को दीर्घ विकल्प । अनिट् पञ्च में । तितीर्षति ।
विवरिषति । विवरीषति । वुवूर्षति । विवरिषते । विवरीषते । वुवूर्षते । वृङ्, ।
विवरिषते । विवरीषते । वुवूर्षते । इत्यादि ॥ ५२४ ॥

५२५—स्मिपूङ्ग्रञ्ज्वां सनि ॥ अ० ॥ ७ । २ । ७४ ॥

सन् परे होतो स्मिङ्, पूङ्, ऋ, अञ्, अशू, इन धातुओं की इट् का आगम होवे। स्मेतुमिच्छति, स्मिन्नयिषति। पिपयिषति। ओःपुयणउयपरे। सूत्र से अभ्यास की इकारादेश होता है। पिपावयिषति। अरिरिषति। अक्षिजिषति। अग्निषति। पूज् पुषति। उच्छ, उचिच्छिषति। चुरादिगण तथा अन्य सब धातु हेतुमान् गिजन्तो से भी इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय होता है। जैसे। पाठयितुमिच्छति, पिपाठयिषति। अध्यापयितुमिच्छति, अधिजिगापयिषति (४८५) इङ् की गाङ् आदेशवि०। अध्यापयिषति। शिष्यापयिषति। शृष्यावयिषति (४७३) श्र को सम्प्रसारण०। जुहावयिषति। सम्प्रसारण०। पुस्फारयिषति। चुन्नावयिषति। यियावयिषति। विभावयिषति। रिरावयिषति। लिलावयिषति। जिजावयिषति। पु, यण्, जि ग्रहण इस लिये है कि। मुनावयिषति। अकार परे इसलिये कहा है कि। बुभूषति (४७२) सूत्र से ख्रव आदि के अभ्यास की इत्त्व का विकल्प हो कर। सिस्त्रावयिषति। सुस्त्रावयिषति। इत्यादि। तुष्टूषति। सुष्वापयिषति। सिषाधयिषति। तिष्ठासति। सुपुसति। प्रतीषिषति। अधीषिषति। एधितुमिच्छति, एदिधिषति। इस प्रक्रिया में भी सामान्य और विशेष सूत्रों में सब धातुओं का संबन्ध कर के प्रयोग व्यवस्था जानो ॥ ५२५ ॥

इति सन्नन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ यङन्तप्रक्रियाप्रारम्भः

५२६—धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्

॥ अ० ॥ ३ । १ । २२ ॥

क्रिया के बार बार, शीघ्र वा निरन्तर अर्थ में हलादि एकाच् धातुओं से यङ् प्रत्यय होवे (१६६) से धातु संज्ञा और (२६८) से हित्व हो कर ॥ ५२६ ॥

५२७—गुणो यङ्लुकोः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८२ ॥

यङ् और यङ्लुक परे होतो इगन्त यङ् के अभ्यास की गुणादेश हो। पुनः पुनरतिशयेन भृशं वा भवतीति बोभूयते। बोभूयांचक्रे। बोभूयांबभूव। बोभूया-मास। बोभूयिता। बोभूयिष्यते। बोभूयिषते। बोभूयिषाते। बोभूयताम्। अबो-भूयत। बोभूयेत। बोभूयिषीष्ट। अबोभूयिष्ट। अबोभूयिष्यत।

धातुग्रहण आर्द्धधातुक संज्ञा होने के लिये है। एकाच् ग्रहण इसलिये है कि। पुनः पुनर्जागृतिः। यहां यङ् न हो। हलादिग्रहण इस लिये है कि भृशमीक्षते। जिस धातु * के यङ्न्त प्रयोग से शीघ्र आदि अर्थ विदित नहीं होते हैं उस से यङ् प्रत्यय नहीं होता जैसे। भृशंशोभते। भृशंरोचते ॥ ५२७ ॥

५२८—वा०—सूचिसूत्रिमूच्यव्यत्यश्रुतातीनां ग्रहणं यङ्विधानेकाज्झलादर्थम् ॥

यङ्विधान में अनेकाच् और हलादि धातुओं के अर्थ सूचि, सूत्रि, मूचि, अटि, अर्ति, अशू, ऊर्ण इन धातुओं का ग्रहण कर्त्तव्य है अर्थात् (५२६) सूत्र में एकाच् और हलादिग्रहण से सूचि आदि धातुओं से यङ् नहीं प्राप्त है बहूँ हो। सोसूच्यते। सोसूच्यते। सोमूच्यते ॥ ५२८ ॥

५२९—यस्य हलः ॥ अ० ॥ ६। ४। ४८ ॥

आर्द्धधातुक विषय में हल् से परे यकार का लोप हो। सोसूच्य + आम् + क्त + एच् = सोसूचाञ्चक्रे। सोसूचिता। सोसूचिता। सोमूचिता ॥ ५२९ ॥

५३०—दौर्घोऽकितः ॥ अ० ॥ ७। ४। ८३ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हो तो अङ्ग के अकित् अभ्यास को दौर्घ हो। अट् आदि अजादि धातुओं में यङन्त द्वितीय एकाच् अवयव व्य मात्र को द्वित्व होता है। अटाक्यते। अटाटाञ्चक्रे। अटाटिच्यते ॥ ५३० ॥

५३१—यङि च ॥ अ० ॥ ७। ४। ३० ॥

यङ् परे हो तो ऋ और संयोगादि ऋकारान्त धातु को गुणादेश होवे। अरार्यते। अशाश्र्यते। अराराञ्चक्रे। अरारिता। अशाशिता। ऊर्णानूयते। वेभिच्यते। वेभिदिता। यहां अकार लोप को स्थानिवत् मानने से उपधा को गुण नहीं होता ॥ ५३१ ॥

५३२—नित्यं कौटिल्ये गतौ ॥ अ० ॥ ३। १। २३ ॥

कुटिलता अर्थ में गत्यर्थक धातुओं से नित्य ही यङ् प्रत्यय हो। अर्थात् क्रिया-समभिहार अर्थ में जो यङ् (५२६) कहा है वहां उसी अर्थ में लकारार्थ प्रक्रिया में पाक्षिक लोट् भी होगा परन्तु गत्यर्थ धातुओं से कुटिलगति में ही यङ् ही होगा लोट् नहीं। कुटिलं व्रजति, वाव्रज्यते। वाव्रज्यते ॥ ५३२ ॥

* तच्चावश्यमभिधानमाश्रितव्यं क्रियमाणेषु चोकाज्झलादि ग्रहणे यत्रैकाचो हलादेशोत्पद्यमानेन यङाद्यंस्याभिधानं न भवति। न भवति तत्रोत्पत्तिः। तद्यथा। भृशंशोभते। भृशं रोचते। महाभाष्य०। अ०। ३ पा० १ आ० २ ॥

५३३—लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो भावगर्हायाम्

॥ अ० ॥ ३ । १ । २४ ॥

धात्वर्थ की निन्दा में लुप् आदि धातुओं से यङ् प्रत्यय हो। लुप् आदि प्रक्रियासमभिहार में यङ् नहीं होता किन्तु निन्दा में ही होता है। गर्हितं लुप्यति, लीलुप्यते। निन्दितं सौदति, सासद्यते ॥ ५३३ ॥

५३४—चरफलोश्च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८७ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे ही तो चर और फल धातु के अभ्यास की नुक् आगम होवे ॥ ५३४ ॥

५३५—वा०—अनुस्वारागमः पदान्तवच्च ॥

नुक् के स्थान में अनुस्वार आगम कहो और उस को पदान्त के समान कार्य हो ॥ ५३५ ॥

५३६—उत्तरस्यातः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८८ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हो तो चर और फल धातु के अभ्यास से परे षकार की उकारादेश हो। चञ्चर्यते। चञ्चर्यते (१८७) दीर्घ। पम्फुल्यते। पंफुल्यते ॥ ५३६ ॥

५३७—जपजभदहदशभञ्जपशां च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ८९ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे हो तो जप, जभ, दह, दश, भञ्ज और पश धातुओं के अभ्यास की नुक् आगम होवे। कुक्षितं जपति, जञ्जप्यते। जंजप्यते। जंजभ्यते। दंदह्यते। दंदश्यते। पश धातु सौत्र है किसी गण का नहीं। पंपश्यते ॥ ५३७ ॥

५३८—ग्रो यङि ॥ अ० ॥ ८ । २ । २० ॥

यङ् परे हो तो गृ धातु के रेफ की लकारादेश हो। गर्हितं गिरति, जेगिर्यते। अतिशयेन पुनः पुनर्वा ददाति, देदीयते। देधीयते। मेमीयते। तेष्ठीयते। जिगीयते। पेपीयते। जेहीयते। अवसेषीयते। यहां सर्वत्र (३४६) से ह्रिस्व से पूर्व ईकारादेश होता है। शोशूयते। शेष्ठीयते। यहां (२८४) से संप्रसारण विकल्प। अतिशयेन प्यायते, पेपीयते। यहां (१८३) सूत्र से प्यायी धातु को पी आदेश। सास्त्रयते। सास्त्रयते (२५४) से ऋकार की गुण होता है ॥ ५३८ ॥

५३९—रीड् ऋतः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २७ ॥

कृत् और सार्वधातुक भिन्न यकारादि और चि प्रत्यय परे हो तो ऋकारात् अङ्ग की रीड् आदेश हो। चेक्रीयते। जेक्रीयते। देधीयते। वेवीयते ॥ ५३९ ॥

५४०—न कवतेर्यङि ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६३ ॥

यङ् परे ही तो कुङ् धातु के अभ्यास की नुक् न हो अतिशयेन कवते कीकृत्यते। अतिशयेन कीति, कुवति वा चीकृत्यते ॥ ५४० ॥

५४१—कृषेष्कृन्दसि ॥ अ० ॥ ७।४।६४ ॥

यङ् परे हो तो वेद विषय में कृष् धातु के अभ्यास की चुत्व न हो। करी-
कृष्यते यज्ञकुणपः । अन्यत्र लोक में । चरीकृष्यते कषीवलः ॥ ५४१ ॥

५४२—नीग्वञ्चुस्सुध्वंसुभंसुकसपतपदस्कन्दाम् ॥ अ० ॥ ७।४।८४ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे ही तो वञ्चु, स्सु ध्वंसु भंसु, कस, पत, पद, और स्कन्द
के अभ्यास की नीक् आगम हो। वनीवच्यते (५३०) इस सूत्र में अकित् कहने
से दीर्घ नहीं होता। सनीस्स्यते। दनीध्वस्यते। वनीभ्रस्यते। यहां (१३८) से
न लोप०। चनीकस्यते। पनीपत्यते। पनीपयते। चनीस्कयते ॥ ५४२ ॥

५४३—नुगतोनुनासिकान्तस्य ॥ अ० ॥ ७।४।८५ ॥

यङ् और यङ्लुक् परे ही तो अनुनासिकान्त अङ्ग के अकारान्त अभ्यास की
नुक् आगम हो। तंतन्यते। जगम्यते। वयम्यते। ययम्यते। तपरग्रहण से पूर्वदीर्घ
अभ्यास की नुक् नहीं होता। यथा। बाभाभ्यते। जाजायते। जज्जन्यते। यहां
(१८५) सूत्र से आकारादेश विकल्प० ॥ ५४३ ॥

५४४—हन्तेर्हिंसायां यङि घ्रीभावो वक्तव्यः ॥

यङ् प्रत्यय परे ही तो हिंसा अर्थ में हन् धातु की घ्री आदेश हो। अतिशयेन
हन्ति, जेघ्रीयते। हिंसा से अन्यत्र। जंघन्यते ॥ ५४४ ॥

५४५—रौगृदुपधस्य च ॥ अ० ॥ ७।४।९० ॥

यङ् और यङ्लुक् परे ही तो ऋदुपध धातु के अभ्यास की रीक् का आगम
हो। अतिशयेन वर्त्तते, वरीवृष्यते। वरीवृष्यते। नरीवृष्यते। यहां (४५३) इस
सूत्र से णत्व का निषेध होता है। चलीकृष्यते। यहां (२२३) से लत्व० ॥ ५४५ ॥

५४६—रौगृत्वत इति वक्तव्यम् ॥

(रौगृदु०) यहां ऋकारवान् धातु के अभ्यास की रीक् कहना चाहिये। पुनः
पुनर्वृषति, वरीवृष्यते। परीवृष्यते ॥ ५४६ ॥

५४७—स्वपिस्यमिव्येजां यङि ॥ अ० ॥ ६।१।१८ ॥

यङ् परे ही तो स्वपि, स्यमि, और व्येज् धातु की संप्रसारण हो। सोसुष्यते।
सेसिम्यते। वेवीयते ॥ ५४७ ॥

५४८—न वशः ॥ अ० ॥ ६।१।२० ॥

यङ् परे ही तो वश धातु की संप्रसारण न हो। वावश्यते ॥ ५४८ ॥

५४६—चायः कौ ॥ अ० ॥ ६ । १ । २१ ॥

यङ् परे हो तो चाय् धातु की कौ आदेश हो । अतिशयेन चायते, चेकीयते ॥ ५४६ ॥

५५०—ई प्राध्मोः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३१ ॥

यङ् परे हो तो प्रा, ध्मा धातुओं को ईकारादेश हो । अतिशयेन पुनः पुनर्वा जिघ्रति, जेघ्रीयते । देखीयते ॥ ५५० ॥

५५१—अयङ् यि क्ङिति ॥ अ० ॥ ७ । ४ । २२ ॥

यकारादि कित् ङित् प्रत्यय परे होतो शीङ् धातु को अयङ् आदेश हो । भृशं श्रिते, शाशय्यते । डोढीक्यते । तीचीक्यते । यहाँ अभ्यास की कृत्स्न हो कर गुण हो जाता है । अतिशयेन प्रीणाति, पेप्रीयते ॥ ५५१ ॥

इति यङन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥



अथ यङ्लुगन्तप्रक्रियारम्भः ॥

५५२—यङोऽचि च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ७४ ॥

अच् प्रत्यय परे हो तो यङ् का लुक् हो । तथा वेद में बहुल करके लुक् पश धातुओं

५५३—न धातुलोप आर्द्धधातुके ॥ अ० ॥ १ । १

आर्द्धधातु निमित्तमानकर जहाँ धात्ववयव लोप हुआ हो वहाँ इ गुण वृद्धि न हो । अतिशयेन यो लीलूयते, स लीलुवः । पोपुवः । दनीध्वंसः (दाधर्त्ति) इस अगले सूत्र में (तित्तिक्ते) इस प्रयोग में यद्यपि मान कर आत्मनेपद सिद्ध है तथापि आत्मनेपद निपातन से यह अतिशय अन्वय यङ् लुगन्त धातुओं से परस्मैपद होता है ॥ ५५३ ॥

५५४—यङो वा ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६४ ॥

यङ् से परे हलादिपित् सार्वधातुक की ईट् का आगम विकल्प कर शाकुनिकी लालपीति । दुंदुभिर्वावदौति । त्रिधावद्दीव्यभो रोरवीति । यहाँ अन्तरङ्गत्व मानकर द्वित्व से पूर्व यङ् लुक् होता है । प्रत्यय लक्षण से द्वित्व लट् आदि लकारों की उत्पत्ति, परस्मैपद, और विकरणों का उत्कर्ग शप् विकरण होता है ॥ ५५४ ॥

५५५—दाधर्त्तिर्दधर्त्तिर्दधर्षिर्बोभूतुतेतिक्तेऽलर्ष्यापनीफणत्संसनि-
प्यदत्करिक्कत्कनिक्रदद्गुरिभद्विध्वतोदविद्युतत्तरिचतःसरी-
रुपतंवरीवृजन्मर्ज्यागनौगन्तीतिच ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६५ ॥

दाधर्त्ति, दधर्त्ति, दधर्षि, बोभूत, तैत्तिके, अलर्षि, आपनीफणत्, संसनिथदत्, करिक्तत्, कनिक्तदत्, भरिभ्रत्, दविध्वतः, दविद्युतत्, तरिचतः, सरीसृपतं, वरी-
 वृजत्, मर्मज्य, और आगनीगन्ति ये अष्टादश वेद में निपातन हैं दाधर्त्ति, यहाँ
 धारि वा धृज् धातु से श्लु वा यङ् लुक् में अभ्यास की दौर्घ और णिच् लोप निपातन
 है। दधर्त्ति, में श्लु प्रत्यय के परे अभ्यास की रुक् आगम तथा। दधर्षि, में भी।
 बोभूत, में यङ् लुगन्त भू धातु से लोट् प्रथमैकवचन में गुण का निषेध नि०। यद्यपि
 (८१) सूत्र से गुण का निषेध हो जाता। फिर यहाँ गुण के अभाव निपातन
 से। बोभवीति, आदि में (८१) सूत्र से गुण का निषेध नहीं होता। तैत्तिके, में यङ्-
 लुगन्त तिज् धातु से आत्मनेपद निपातन किया है। अलर्षि, यहाँ जुहोत्यादि
 ऋ धातु से लट् मध्यमैकवचन में अभ्यास के हलादिः शेष रेफ को लत्व नि०।
 यहाँ सिप् निर्देश उपलक्षण मात्र है। इस से। अलर्त्ति दत्तः। इत्यादि में उक्त कार्य
 होता है। आपनीफणत्, में आङ् पूर्वक यङ् लुगन्त फण धातु के अभ्यास की
 नौक् आगम शट् प्रत्यय में निपातन है। संसनिथदत्, में सम्पूर्वक यङ् लुगन्त स्यन्द-
 की शट् परे हो तो अभ्यास की निक् आगम निपातन है। यहाँ सम्पूर्व
 प्रतंत्र है इस से। आसनिथदत्। यहाँ भी उक्त कार्य होता है। करिक्तत्।
 लुगन्त कृज् धातु के अभ्यास की चुत्व न होना तथा उस के ककार को रिक्
 हन्ति, जेष्ठा। कनिक्तदत्, में लुङ् में क्रन्द् से परे चि को अङ् आदेश, धातु द्विवचन,
 चुत्व न होना और निक् आगम नि०। भरिभ्रत् में यङ् लुगन्त भृज्
 यङ् और आस को जश्त्व और इत्व का होना और रिक् आगम नि०। दविध्वतः, में
 ही। अतिशब्ध धातु के अभ्यास की विक् आगम और ऋ लोप शट् पूर्वक जस् विभक्ति के
 सूत्र से लत्व। दविध्वतोरश्मयः सूर्यस्य। दविद्युतत्, में यङ् लुगन्त द्युत धातु के अभ्यास
 रण निषेध अकारादेश और विक् आगम निपातन है। तरिचतः, में तु
 (रीगश्लु विकरण से शट् प्रत्यय के परे षष्ठी के एकवचन में अभ्यास की
 गदक् आगम नि०। सरीसृपतम्, में सृप धातु की श्लु विकरण में शट् प्रत्यय के परे
 द्वितीया के एकवचन में अभ्यास की रौक् आगम नि०। वरीवृजत् में वृजो धातु की श्लु
 विकरण से शट् प्रत्यय के परे अभ्यास की रौक् आगम नि०। मर्मज्य, में मृज धातु
 से लिट् णल् परे हो तो अभ्यास की रुक्, धातु की युक् नि०। यहाँ मृज की लघूपध
 के अभाव से वृद्धि नहीं होती। आगनीगन्ति, में आङ् पूर्वक गम धातु की झु विकरण
 से लट् में अभ्यास की चुत्व निषेध और नौक् आगम निपातन किया है। वध्यन्ती
 वेदागनीगन्ति करणम् (दाध०) इस सूत्र में इति शब्द पढ़ने से इस प्रकार की

अन्य प्रयोगों का भी संग्रह होता है (२६१) इस सूत्र में हुश्नु, ग्रहण का मुख्य प्रयोजन यही है कि यङ्लुगन्त में अजादि सार्वधातुक के परे इन को यष्ठादेश न हो। इस से हुश्नु ग्रहण ज्ञापक है कि लोक में भी सब लकारों के विषय में यङ्लुक् होता है। यथा अतिशयेन पुनः पुनर्वा भिनत्ति, वेभिदीति यहाँ (३८०) से गुणनि०। वेभेत्ति। वेभित्तः। वेभिदति। वेभिदीषि। वेभेत्ति। वेभित्थः। वेभित्थ। वेभिदीमि। वेभेद्मि। वेभिहः। वेभिश्नः। वेभेदांचकार। वेभेदामास। वेभेदांवभूव। वेभेदिता। वेभेदिष्यति। वेभेदिषति। वेभेदिषाति। वेभिदति। वेभिदाति। वेभिदीतु। वेभेत्तु। अवेभिदीत्। अवेभेत्। अवेभेः। यहाँ (३५१) से कृत्व विकल्प होता है। अवेभिदीः। वेभिद्यात्। वेभिद्यात्। वेभिद्यास्ताम्। अवेभेदीत्। अवेभेदिष्टाम्। अवेभेदिष्यत्। चेच्छिदीति। चेच्छेत्ति। इत्यादि। बोभवीति। बोभोति। बोभूतः। बोभुवति। बोभवांचकार। बोभविता। अबोभवीत्। अबोभूताम्। अबोभवुः। यहाँ (३६३) से गुणादेश०। बोभूयात्। बोभूयाताम्। बोभूयास्ताम्। अबोभूवीत् (८८) से सिच् लुक् तथा (३३) से नित्यत्व मानकर वुक्। अबोभीत्। अबोभूताम्। अबोभवुः। अबोभविष्यत्। अतिशयेन स्पर्धते, पास्पर्धीति। पास्पर्धि। पास्पर्धः। पास्पर्धति। पास्पर्क्षि। पास्पर्धि। यहाँ (३००) से हि को धि हुआ है। अपास्पर्त्। अपास्पाः। यहाँ सिप् के परे (३५१) से कृत्व विकल्प हुआ। अपास्पर्त्। अपास्पर्द। अतिशयेन गाधते, जागाडि। जागाधीति। जागाक्षि। अजाघात्। अजाघाः। यहाँ (२०४) से भष्०। पुनः पुनर्नायते, नानात्ति। नानाश्रीति। नानात्तः। चीक्षु न्दीति। चीक्षुन्ति। अचीक्षुन्। अचीक्षुन्ताम्। अचीक्षुन्दुः। अतिशयेन मोदते, मोमुदीति। मोमोदांचकार। मोमोदिता। अमोमुदीत्। अमोमोत्। अमोमुत्ताम्। अमोमुदुः। अमोमुदीः। अमोमोः। अमोमोत्। अमोमोदीत्। पुनः २ कर्हते, चीकूहीति। चीकूत्ति। चीकूत्तः। चीकूहति। अचीकूत्। अचीकूहीत्। अचीकूः। अचीखूः। अजोगूः। अतिशयेन वञ्चति, वनीवङ्क्ति। वनीवञ्चीति। वनीवक्तः। वनीवचति। अवनीवञ्चीत्। अवनीवन्। अतिशयेन गच्छति, जंगमीति जंगन्ति। जंगतः। यहाँ (३०३) से अनुनासिक लोप०। जंगमति। जंगन्मि। जंगन्वः। यहाँ (१७३) से म को न आ०। जंगमिता। यहाँ एकाच् से निषेध होने से इट्निषेध नहीं होता। जंगहि। यहाँ (मो नी धातोः) इस सूत्र से ककार को नकार होता है। अजंगमीत्। अजंगमिष्टाम्। यहाँ लृटित् कार्य (चि) को अङ् आदेश नहीं होता। भृयं हन्ति, जंघनीति। जंघन्ति। जंघतः। जंघति।

जंघनिता । जंघहि । अजंघनीत् । अजंघन् । बध्यात् । यहाँ द्वित्व आदेश होकर बध
आदेश होता है फिर आदेश स्थानिवत् मान कर अन्वयास निषेध से बधादेश को
द्वित्व नहीं होता है । आङ् पूर्व से (आङो यमहनः) से आत्मनेपद होगा । आजंसते ।
इत्यादि । अतिशयेन चरति, चंचुरीति । चञ्चूर्ति । चञ्चूर्तः । चञ्चुरति । अचञ्चुरीत् ।
अचञ्चूः । चङ् खनीति । चङ् खन्ति । चङ् खातः । यहाँ (३८४) सूत्रसे आकारादेश ।
चङ् खाहि । अचङ् खनीत् । अचङ् खन् । अचङ् खाताम् । अचङ् खन्तुः । चङ् ख्यात् ।
चाङ् खायात् । यहाँ (१८५) से आकारादेश विकल्प । अचङ् खनीत् । अतिशयेन यीति,
योयीति । योयवीति । यहाँ (उतोष्ठि०) इस सूत्र में (नाभ्यस्ता०) इस सूत्र की
अनुवृत्ति होने से वृत्ति न हुई । अयोयवीत् । अयोयीत् । योयुयात् । आशीर्लिङ्, व
(१६०) हीर्षीयोयूयात् । अयोयावीत् । नोनवीति । नोनोति । अतिशयेन जहाति,
जाहेति । जाहाति । जाहीतः । यहाँ (३८३) से ईकारादेश० । जाहति । जाहेषि ।
जाहासि । जाहीयः । यहाँ । जहातेश्च, आचहौ, लोपोयि, घुमाख्या०, एर्लिङि ये पांच
सूत्र शुद्धगण के निर्देश से प्रवृत्त नहीं होते हैं जाहीहि । अजाहेत् । अजाहात् ।
अजाहीताम् । अजाहुः । जाहीयात् । जाहायात् । अजाहासीत् । अजाहासिष्टाम् ।
अजाहिष्यत् । अतिशयेन खपिति, साखपीति । साखसि । यहाँ यङ् कालुक् होने से
(नलुप्ततांगस्य) इस निषेध से (खपिस्यमि०) यह संप्रसारण और शुद्धगण के उच्चारण
से (रुदादिभ्यः०) यह इट् नहीं होता । साखमः । साखपति । असाखपीत् ।
असाखप् । साखप्यात् । आशीर्लिङ् में । सासुप्यात् । यहाँ (वचिखपि०) इस से
संप्रसारण होता है । असाखापीत् । असाखपीत् ॥ ५५५ ॥

५५६—रग्निकौ च लुक् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६१ ॥

यङ् लुक् परे होता ऋकारोपध धातु के अभ्यास को रुक् रिक् और रीक् आश्रम
है । अतिशयेन वर्तते, वर्ततीति । वरिवृतीति । वरीवृतीति । वर्वर्त्ति । वरिवर्त्ति ।
वरीवृत्ति । वर्वृत्तः । वर्वृत्तति । वर्वर्त्तामास । वर्वर्त्तिता । वर्वर्त्तिष्यति । वर्वृत्तति ।
वरिवृत्तति । वरीवृत्तति । वर्वृताति । वरिवृताति । वरीवृताति । वर्वर्त्तिष्यति ।
वरिवर्त्तिष्यति । वरीवर्त्तिष्यति । वर्वर्त्तिष्यति । वरिवर्त्तिष्यति । वरीवर्त्तिष्यति ।
अवर्त्ततीत् । अवर्त्तत् । अवर्त्ताः । अवर्त्तासीत् । अतिशयेन गर्हते, जर्गहीति । जर्गर्हि ।
जर्गटः । जर्गहति । अजर्घट् । अजर्घड् । अतिशयेन गृह्णाति, जागृहीति ।
जाग्राडि । तस् आदि में डित् मान कर संप्रसारण होता है । वह बहिरङ्ग
है । इस से यहाँ अभ्यास को रुक् आदि नहीं होते । जागृटः । जागृहति । जागृ-
हीषि । जागृन्ति । जाग्रहिता । यहाँ (यहीलिटिदीर्घः) यह नहीं होता । क्वी

यहां एकाच् की प्रवृत्ति है । जर्गधीति । जर्गधिं । जर्गधः । जर्गधति । जर्गधीषि । जर्गधिं । अजर्गधीत् । अजर्गधत् । यहां ईट् के अभावपक्ष में गुण, हल्ङादिलोप, भष्भाव, जश्त्व और चर्त्त्व होता है । अजर्गधाम् । अजर्गधाः । अजर्गधीत् । अजर्गधिष्टाम् । अजर्गधिषुः ॥ ५५६ ॥

५५७—ऋतश्च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ६२ ॥

यङ्लुक् परे ही तो ऋकारान्त धातु के अभ्यास को, रुक् रिक् और रीक् का आगम ही । अतिशयेन करोति, चर्कति । चरिर्कति । चरीर्कति । चर्करीति । चरिर्करीति । चरीर्करीति । चर्कृतः । चर्कति । चर्कराचकार । चर्करिता । चर्करिषति । चर्करति । अचर्करीत् । अचर्कः । चर्क्यात् । चर्क्रियात् । यहां (२३८) से ऋ को रिङ् हो गया । अचर्करीत् । ऋ धातु को यङ्लुक् में हित्व हुए पीछे (उरत्) इससे अभ्यास को अत्त्व, रपरत्त्व, हलादिशेष, रुक्, और रिक् तथा रीक् के स्थाने में (१५३) दृयङ् होता है । अतिशयेन ऋच्छति, अररीति । अरियरीति । अरियरीति । अरत्ति । अरियत्ति । अर्चतः । अरियुतः । भि में यण् और रुक् के रेफ को “रोरि” कर के लोप होता है “रोरि,” लोप करने में अजादेश स्थानित नहीं होता । क्योंकि इस का पूर्ववासिजीव * कार्य में निषेध है । अरति । अरियति । अरराचकार । अररिता । अररियात् । अरिरियात् । अरीरियात् (ऋतश्च) यहां तपर करण से कृ, तृ आदि दीर्घ ऋकारान्ती में रुक् रिक् रीक् नहीं होते । अतिशयेन किरति, चाकति । चाकरीति । पुनः पुनस्तारति, तातरीति । तातर्ति । तातीर्तः । तातिरति । तातरिता । तातरीता । तातीर्हि । अतातरीत् । अतातः । अतातीर्ताम् । अतातरुः । अतातारीत् । अतातारिष्टाम् । इत्यादि । पुनपुनः पृच्छति, पाप्रच्छति । पाप्रष्टि । पाप्रष्टः । पाप्रच्छति । पाप्रश्मि । पप्रश्मः । यहां (क्वीः शूडनुनासिकेच) इस सूत्र से छ को श् होगया है । अतिशयेन जहयति, जाहयति । जाहति । जाहतः (लोपोष्ठी०) इस से यलोप० । जाहयति । जाहयीषि । जाहसि । जाहानि । यहां (२८) से दीर्घ । पुनः पुनर्हयति, जाहयीति जाहर्ति । जाहर्तः । जाहयति । जाहर्हि । अजाहः । अजाहयुः । ॥ ५५७ ॥

५५८—ज्वरत्वरश्चिष्यविमवामुपधायाश्च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २० ॥

क्षिप्, झलादि और अनुनासिकादि प्रत्यय परे ही तो ज्वरादि धातुओं की उपधा और षकार की ऊठ् आदेश ही । अतिशयेन ज्वरति, जाज्वरीति ।

जाजूर्ति । जाजूर्तः । तात्वरीति । तातूर्ति । अतिशयेन स्त्रीयति, नेस्त्रिवीति ।
सेस्त्रुति । सेस्त्रूतः । आषीति । औति । औतः । मामौति । मामौति । मामूतः ।
मामवति । मामोषि । मामोमि । मामावः । मामूमः । मामोतु । मामूतात् ।
मामृहि । मामृहानि । अमामोत् । अमामोः । अमामवम् । अमामाव । अमामूम ।
अतिशयेन तूर्वति, तोतूर्वति ॥ ५५८ ॥

५५९—रास्त्रोपः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २१ ॥

रेफ से परे शकार और छकार का लोप हो किप्, फलादि और अनुना-
सिकादि प्रत्यय परे होते । तोतोर्ति । तोतूर्तः । तोतूर्वति । तोथोर्ति । दोदोर्ति ।
दोधोर्ति । अतिशयेन मूर्च्छति, मोमोर्ति । मीमूर्तः । अतिशयेन वेत्ति, वेदिदीति ।
वेदिस्तः । वेदिदति । अवेदिदीत् । अवेवेत् । अवेवेः ॥ ५५९ ॥

इति यङ्लुगन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ नामधातुप्रक्रियाप्रारम्भः

५६०—सुपधात्मनः क्यच् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८ ॥

इच्छा करने वाले के संबन्धी इच्छा के कर्मरूप सुबन्त से इच्छा अर्थ में विकल्प
करके क्यच् प्रत्यय हो ॥ ५६० ॥

५६१—क्यच्चि च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ३३ ॥

क्यच् परे होतो अवर्णान्त षष्ठ को ईकारादेश हो । यह सूत्र (१६०) सूत्र का
प्रपवाद है । आत्मनः पुत्रमिच्छति, पुत्रौयति । यहाँ (सुपोधातुप्रातिपदिकयोः)
सूत्र से पुत्रशब्द की द्वितीया विभक्ति का लुक् हो जाता है । आत्मनो गामिच्छति,
गव्यति (सन्धि० १५७) सूत्र से बान्तादेश । आत्मनो नाभिमिच्छति, नाव्यति । यहाँ
पदान्त (५६२) के न होने से अवर्णपूर्वक वकार का लोप (सन्धि० १७०) सूत्र
से नहीं होता । गव्याञ्चकार । गव्यिता । नाव्याञ्चकार । नाव्यिता । यहाँ सन्धि-
पातपरिभाषा के आश्रय से क्यच् के यकार का लोप नहीं होता ॥ ५६१ ॥

५६२—नः क्ये ॥ अ० ॥ १ । ४ । १५ ॥

क्यच् क्यङ् और क्यष् परे होते नकारान्त की ही पदसंज्ञा है अन्य की नहीं ।
आत्मनो राजानमिच्छति, राजीयति । यहाँ पदसंज्ञा होने से राजन् शब्द के
नकार का लोप होता है । राजीयाञ्चकार । राजीयिता । राजीयिष्यति । राजी-
यिषति । राजीयिषाति । राजीयतु । अराजीयत् । राजीयेत् । राजीय्यात् ।
अराजीयीत् । अराजीयिष्यत् ॥ ५६२ ॥

५६३—प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ॥ अ० ॥ ७।२।६८ ॥

प्रत्यय और उत्तर पद परे ही तो एकवचन में वर्तमान मपर्यन्त युषद् अस्मद् शब्दों को त्व, म आदेश ही । आत्मनस्त्वामिच्छति, त्वद्यति । मद्यति । एकवचन के कहने में । युष्मद्यति । अस्मद्यति । यहां त्व, म आदेश नहीं होते । आत्मनो गिर-मिच्छति, गीर्यति । (१६७) दीर्घादेश० पूर्यति । दिवमिच्छति, दिव्यति । धातु को दीर्घ कहा दिव् शब्द के इकार को नहीं होता । अध इच्छति, अधस्यति । आत्मनः कर्त्तारमिच्छति, कर्त्तार्यति (२६) ऋ को रोङ् आदेश० ॥ ५६३ ॥

५६४—क्यच्प्रत्ययश्च ॥ अ० ॥ ६।४।१५२ ॥

क्य और च्वि प्रत्यय परे ही तो हल् से परे अपत्य सम्बन्धी यकार का लोप ही । आत्मनो गार्ग्यमिच्छति, गार्गीयति । वात्सीयति । आत्मनो वाचमिच्छति, वाच्यति । आत्मनः कविमिच्छति, कवीयति (१६०) दीर्घ । समिधमिच्छति, समिध्यति ॥ ५६४ ॥

५६५—क्यस्य विभाषा ॥ अ० ॥ ६।४।५० ॥

हल् से परे जो क्य प्रत्यय का यकार उस का विकल्प कर के लोप हो आर्द्धधातुक विषय में । समिधाञ्चकार । यहां प्रथम अकारलोप (१७२) से होकर उस को स्थानिवत् सान के लघूपध गुण नहीं होता । समिधाञ्चकार । समिधिता । समिध्यिता । इत्यादि (५६०) सूत्र में सुप्रवृत्त इस लिये है कि वाक्य में क्यच् नही जैसे । महान्तं पुत्र-मिच्छति । और आत्मा ग्रहण इस लिये है कि । राज्ञः पुत्रमिच्छति । यहां क्यच् न ही ॥ ५६५ ॥

५६६—ता०—क्यचि सान्ताऽव्ययप्रतिषेधः ॥

सकारान्त और अव्यय शब्दों से क्यच् प्रत्यय न है । इदमिच्छति । किमिच्छति । उच्चैरिच्छति । नीचैरिच्छति । स्वरिच्छति । इत्यादि ॥ ५६६ ॥

५६७—अशनायोदन्यधनायावुभुक्षापिपासागर्ह्येषु ॥

अ० ॥ ७।४।३४ ॥

वुभुक्षा, पिपासा अभिलाषा, इन अर्थों में अशनाय, उदन्य और धनाय ये यथासंख्य करके तीनों निपातन हैं । अशनाय, यहां अशन शब्द को अत्व क्यच् प्रत्यय के परे निपातन है । आत्मनोऽशनमिच्छति, अशनायति । वुभुक्षा से अन्यत्र । आत्मनोऽशनं संवातमिच्छति, अशनौयति । उदन्य, यहां उदक शब्द को उदन् आदेश निपातन है । उदकमिच्छति, उदन्यति । पीने की इच्छा से अन्यत्र । उदकीयति ।

धनाय, यहां धन शब्द को आकारादेश निपातन है। धनायति। अभिलाषा से अन्यत्र। धनीयति ॥ ५६७ ॥

५६८—न कृन्दस्यपुत्रस्य ॥ अ० ॥ ७।४।३५ ॥

वेद विषय में क्यच् परे हो तो पुत्रभिन्न अवर्णान्त अङ्ग को ईत्व न हो। मित्रयति। पुत्र शब्द के ग्रहण से यहां न हुआ। पुत्रीयन्तः सुदानवः। अत्यल्पमिदमुच्यते (अपुत्रस्येति, अपुत्रादीनामिति वक्तव्यम्) इहापि यथास्यात् जनीयन्तोऽन्वयः ॥ ५६८ ॥

५६९—क्याक्कृन्दसि ॥ अ० ॥ ३।२।१७० ॥

वेद में क्य प्रत्ययान्त धातुओं से तच्छील, तद्धर्म, तत्काधुकारि इन अर्थों में उ प्रत्यय हो। मित्रयुः। संस्वेदयुः। देवाज्जिगाति सुम्नयुः ॥ ५६९ ॥

५७०—दुरस्युर्द्विणस्युर्द्विषण्यतिरिषण्यति ॥ अ० ॥ ७।४।३६ ॥

वेद में क्यच् प्रत्ययान्त दुरस्यु, द्विणस्यु, द्विषण्यति, रिषण्यति, ये शब्द निपातन किये हैं। दुरस्यु, यहां दुष्ट शब्द को दुरस् आदेश नि०। अविद्योना दुरस्युः। दुष्टीयति। यह लोक में होता है। द्विण, शब्द को द्विणस् भाव निपातन है। द्विणस्युर्विपन्यया। द्विणीयति। यह लोक में होता है। द्विष शब्द को द्विषण निपात०। द्विषण्यति। लोक में। द्विषीयति। रिष्ट शब्द को रिषण् भाव निपात०। रिषण्यति। लोक में। रिष्टीयति ॥ ५७० ॥

५७१—अश्वाघस्यात् ॥ अ० ॥ ७।४।३७ ॥

वेद विषय में क्यच् परे हो तो अश्व और अघ अङ्ग को आकारादेश हो। अश्वायन्तोमघवन्। मा त्वा हका अघायवो विदन्। लोक में अश्वीयति। अघीयति। यह अश्व और अघ अङ्ग का आत्व विधान ज्ञापक है कि इस प्रकार (१६०) इस से दीर्घ नहीं होता ॥ ५७१ ॥

५७२—देवसुमनयोर्यजुषि काठके ॥ अ० ॥ ७।४।३८ ॥

यजुर्वेद की काठक शाखा में देव और सुम्न अङ्ग को आकारादेश हो। क्यच् परे हो तो देवायन्तो यजमानाय। सुम्नायन्तो हवामहे। यजुर्ग्रहण से देवाज्जिगाति सुम्नयुः। यहां नहीं होता। काठकग्रहण से सुम्नयुरिदमासीत् ॥ ५७२ ॥

५७३—कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः ॥ अ० ॥ ७।४।३९ ॥

वेद विषय में क्यच् परे हो तो कवि, अध्वर और पृतना अङ्ग का लोप हो। कव्यन्तः सुमनसः। अध्वर्यन्तः। पृतन्यन्तस्तिष्ठन्ति ॥ ५७३ ॥

५७४—अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि ॥

अ० ॥ ७ । १ । ५१ ॥

क्यच् परे हा तो अश्व, क्षीर, वृष, लवण इन पद्यों की आत्मप्रीति प्रर्थ में असुक् आगम हा । अश्वस्यति बडवा । क्षीरस्यति माणवकः । आत्मनोवृषमिच्छति, वृषस्यति गौः । लवणमिच्छति, लवणस्यत्युष्ट्रः । आत्मप्रीति प्रर्थ से अन्यत्राग्रशीयति । क्षीरीयति । वृषीयति । लवणीयति । इत्यादि में नहीं होता ॥ ५७४ ॥

५७५—वा०—अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायाम् ॥

अश्वक्षीर० सूत्र में जो असुक् कहा है वह अश्व क्षीर वृष पद्यों से मैथुन की इच्छा में हो । उदाहरण पूर्वोक्त जानो ॥ ५७५ ॥

५७६—वा०—क्षीरलवणयोर्लालसायाम् ॥

क्षीर और लवण शब्द से लालसा (अत्यन्त भोजन की इच्छा) में असुक् होता है । यहां भी उदाहरण पूर्वोक्त जानो ॥ ५७६ ॥

५७७ वा०—अपरआह—सर्वप्रातिपदिकेभ्यो

लालसायामिति वक्तव्यम् ॥

किन्ही लोगों के मत में क्यच् परे होती सब प्रातिपदिकों को असुक् ही । आत्मनो दधीच्छति, दध्यस्यति । मध्यस्यति । इत्यादि ॥ ५७७ ॥

५७८—वा०—अपरआह—सुखक्तव्यः ॥

कोई आचार्य कहते हैं कि क्यच् के परे सब प्रातिपदिकों की सुक् का आगम ही । दधिस्यति । मधुस्यति ॥ ५७८ ॥

५७९—काम्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ९ ॥

सुवन्त कर्म से आत्मा की इच्छा में काम्यच् प्रत्यय होवे । आत्मनःपुत्रमिच्छति, पुत्रकाम्यति । वस्तुकाम्यति । यह सूत्र (५६०) सूत्र से पृथक् इस लिये किया है कि इस से अगले सूत्रों में क्यच् की अनुवृत्ति जावे काम्यच् की नहीं । यशस्ताम्यति । सर्पिष्काम्यति । और काम्यच् प्रत्यय मान्त तथा अव्ययी से भी होता है । इदङ्काम्यति । किङ्काम्यति । स्वःकाम्यति । उच्चैःकाम्यति ॥ ५७९ ॥

५८०—उपमानादाचारे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १० ॥

आचार अर्थ में उपमान वाची सुवन्त कर्म से विकल्प करके क्यच् प्रत्यय हो । आचाररूप क्रिया प्रत्यय का अर्थ होने से उसी की अपेक्षा से उपमान की कर्मत्व

वनता है। पुत्रमिवाचरति, पुत्रीयति शिथम्। मित्रमिवाचरति, मित्रीयति शत्रुम्। इत्यादि ॥ ५८० ॥

५८१—वा०—अधिकरणाच्च ॥

अधिकरणवाची प्रातिपदिक से भी आचार अर्थ में क्यच् प्रत्यय होवे। कुव्या-मिवाचरति, कुटीयति प्रासादे। प्रासादीयति कुव्याम्। पर्यङ्कीयति मञ्चके ॥ ५८१ ॥

५८२—कर्त्तुः क्यङ् सलोपश्च ॥ अ० ॥ ३।१।११ ॥

आचार अर्थ में उपमानवाची कर्त्ता सुबन्त से विकल्प करके क्यङ् प्रत्यय और सकार का लोप हो। जो सकारान्त शब्द हैं उन के लिये सकार का लोप कहा है ॥ ५८२ ॥

५८३—वा०—सलोपो वा ॥

सकारान्त शब्दों के सकार का लोप विकल्प करके होवे ॥ ५८३ ॥

५८४—वा०—ओजोऽप्सरसोर्नित्यम् ॥

ओजस् और अप्सरस् शब्द के सकार का लोप नित्य हो। श्येन इवाचरति, श्येनायते काकः। यहाँ सर्वत्र क्यङ् के डित्व से आत्मनेपद होता है। पण्डित इवाचरति, पण्डितायते मूढः। राजीवाचरति, राजायते। पयइवाचरति, पयायते। पयस्यते। तक्रम् (५८३) सलोप। यशायते। यशस्यते। विहायते। विहस्यते। त्वयते। मयते। ओज इवाचरति, ओजायते। अप्सरायते। हंसायते। सारसायते। इत्यादि में अन्त्यसकार के न होने से सलोप नहीं होता ॥ ५८४ ॥

५८५—वा०—आचारेऽवगल्भक्लीवहोडेभ्यः क्तिब् वा ॥

अवगल्भ, क्लीव और होड शब्दों से आचार अर्थ में विकल्प करके क्तिप् प्रत्यय होवे। पक्ष में क्यङ् होता है। क्तिप् का सवल्लोप होकर। अवगल्भते। अवगल्भायते। विल्लीवते। विल्लीवायते। विहोडते। विहोडायते। अवगल्भाच्चके। अवगल्भिष्यते। इत्यादि। इन शब्दों में क्तिवन्ती से आत्मनेपद प्राप्त नहीं इस लिये अवगल्भादि शब्दों को भाष्यकार ने अनुदात्तेत् माना है ॥ ५८५ ॥

५८६—वा०—अपरआह-सर्वप्रातिपदिकेभ्य आचारे क्तिव्वा वक्तव्यः ॥

क्लिक्ली के मत में सब प्रातिपदिकों से आचार अर्थ में क्तिप् होता है। अश्व इवाचरति, अश्वति। गर्दभति। अश्वायते। गर्दभायते। अ इवाचरति, अति। अतः। अस्ति। लिट् में। औ। अतुः। उः। मालेवाचरति, मालाति। मालाच्चकार। अमालात्। अमालासीत्। कविरिवाचरति, कवयति। कवीयात्। अकवयीत्। विरिवाचरति, वयति। विवाय। विव्यतुः। अवयीत्। श्रीरिव, अयति।

शिञ्चाय । शिञ्चियुः । शिञ्चियुः । शीयात् । पितेवाचरति, पितरति । पित्रियात् (२३६) से रिङ् आदेश । भूरिवाचरति, भवति । बुभाष । अभवीत् । दुरिवाचरति, द्रवति । अद्रावीत् ॥ ५८६ ॥

५८७—अनुनासिकस्य क्विभ्रलोः क्ङिति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १५ ॥

क्विप् और भ्रलादि कित् ङित् परे ही तो अनुनासिकान्त अङ्ग की उपधा की दीर्घ हो । इदमिवाचरति, इदामति । राजेवाचरति, राजानति । पन्याइवाचरति, पथीनति । ऋभुचीणति । द्यौरिवाचरति, द्यवति । यष्ठां वकार की ऊठ्, यणादेश और शवाश्चय गुण होता है ॥ ५८७ ॥

५८८—क्यङ्मानिनोश्च ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ३६ ॥

क्यङ् प्रत्यय और मानिन् शब्द परे ही तो ऊठ्, रहित भाषितपुंस्क स्त्रीलिङ्ग शब्द की पुंवङ्गाव होवे । एनी—इवाचरति, एतायते । प्रयेनी—इवाचरति, प्रयेतायते । यहाँ स्त्री प्रत्यय के निमित्त से हुए तकार की नकार आदि कार्य भी निवृत्त होजाते हैं । कुमारीवाचरति, कुमारायते । हरिणीवाचरति, हरिणायते । शुर्वीवाचरति, गुरुयते । पट्टी मृदव्याविवाचरति, पट्टीमृदूयते ॥ ५८८ ॥

५८९—न कोपधायाः ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ३७ ॥

ककारोपध स्त्री की पुंवङ्गाव न ही क्यङ् और मानिन् शब्द परे ही तो । पाचिका इवाचरति, पाचिकायते । मदिकायते । इत्यादि ॥ ५८९ ॥

५९०—भृशादिभ्यो भुव्यच्चेर्लोपश्च हलः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२ ॥

भू धातु के अर्थ में अभूततद्भावविषयक भृशादिशब्दों से क्यङ् प्रत्यय होवे । और भृशादिकों में जो हलन्त हैं उन के अन्त्य हल् का लोप हो । अभृशो भृशो भवति, भृशायते । इस सूत्र में चि प्रत्ययान्त के निषेध से अभूततद्भाव सम्भ्रा जाता है । अभूततद्भाव ग्रहण से । क दिवा भृशा भवन्ति । यहाँ क्यङ् नहीं होता । सुमनस्, सुमनायते । सकार लोप । सुमनायांचक्रे । सुमनायिता । सुमनायिष्यते । सुमनायिषतै । सुमनायिषातै । सुमनायताम् । स्वमनायत् । यहाँ मनस् शब्द मात्र से क्यङ् प्रत्यय है इस से मनस् के पूर्व अट् होता है । क्योंकि चुरादि गण पठित (संशाम युद्धे *) यह नियमार्थ है कि सीपसर्ग प्रातिपदिक से जो क्यजादि प्रत्यय ही तो संशाम ही से ही औरों से न हों ॥ ५९० ॥

* अथश्रयं संशामयतेः सीपसर्गादुत्पत्तिर्वक्तव्या । असंशामयत शरइत्येवमर्थम् । तन्नियमार्थं भविष्यति संशामयतेरेव सीपसर्गान्नायथात् सीपसर्गादिति ॥ महाभाष्य ३ । १ । १२ ॥

५८१—लोहितादिडाउभ्यः क्यष् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३ ॥

भू धातु के अर्थ में अभूततद्भावविषयक लोहितादि और डाच् प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से क्यष् प्रत्यय हो ॥ ५८१ ॥

५८२—वा क्यष् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६० ॥

क्यष् प्रत्ययान्त धातु से परस्मैपद विकल्प करके हो । अलोहितो लोहितो भवति, लोहितायते । लोहितायति । अपटपटा पटपटा भवति, पटपटायति । पटपटायते ॥ ५८२ ॥

५८३—वा०—लोहितडाउभ्यः क्यष्वचनं भृशादिष्वितराणि ॥

(५८१) सूत्र से जो क्यष् प्रत्यय कहा है वह लोहित और डाच् प्रत्ययान्तों से ही कहना चाहिये किन्तु लोहितादि गण के नील आदि शब्द भृशादिकों में पढ़ने चाहिये । अनिलो नीलो भवति, नीलायते पटः । यहाँ क्यषन्त से जो उभयपद होता है वह न हुआ । अलोहिनी लोहिनी भवति, लोहिनीयति । लोहिनीयते । यहाँ “प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्,” इस परिभाषा से लोहिनी शब्द का भी ग्रहण होता है ॥ ५८३ ॥

५८४—कष्टाय क्रमणे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४ ॥

चतुर्थ्यन्त कष्ट शब्द से क्रमण अर्थात् उत्साह अर्थ में क्यङ् प्रत्यय हो । कष्टाय क्रमते, कष्टायते ॥ ५८४ ॥

५८५—वा०—सचकक्षकष्टकृच्छ्रगृह्णेभ्यः कण्वचिकीर्षायाम् ॥

कण्वचिकीर्षा अर्थात् पाप करने की इच्छा में सच, कक्ष, कष्ट, कृच्छ्र और गृह्ण शब्दों से क्यङ् प्रत्यय हो । कण्वं चिकीर्षति । सचायते । कक्षायते । कष्टायते । कृच्छ्रायते । इन में स्वपद विग्रह नहीं होता है । कण्वचिकीर्षा से अन्यत्र । कष्टं क्रामति ॥ ५८५ ॥

५८६—कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्त्तिचरोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १५ ॥

वर्त्ति और चर धातु की यथाक्रम से जो रोमन्थ और तपःकर्म उन से क्यङ् प्रत्यय हो । रोमन्थाना रोमन्थ कहाता है ॥ ५८६ ॥

५८७—वा०—हनुचलन इति वक्तव्यम् ॥

ठोड़ीचलाने अर्थ में क्यङ् प्रत्यय कहना चाहिये । रोमन्थं वर्त्तयति, रोमन्थायते ॥ ५८७ ॥

५६८—वा०—तपसः परस्मैपदं च ॥

क्यङन्त तपःशब्द से परस्मैपद भी हो जावे । तपश्चरति, तपस्यति ॥ ५६८ ॥

६६६—वाष्पोष्मभ्यामुद्गमने ॥ अ० ॥ ३ । १ । १६ ॥

उगलने अर्थ में वाष्प और ऊष्म कर्मवाची शब्दों से क्यङ् प्रत्यय हो । वाष्पमुद्गमति, वाष्पायते । ऊष्मायते ॥ ६६६ ॥

६००—वा०—फेनाच्च ॥

फेन शब्द से भी उलगने अर्थ में क्यङ् हो । फेनमुद्गमति, फेनायते ॥ ६०० ॥

६०१—शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १७ ॥

करने अर्थ में शब्द, वैर, कलह, अभ्र, कण्व और मेघ प्रातिपदिक से क्यङ् प्रत्यय हो । शब्दं करोति, शब्दायते । वैरायते । कलहायते । अभ्रायते । कण्वायते । मेघायते ॥ ६०१ ॥

६०२—वा०—सुदिनदुर्दिनाभ्यां च ॥

सुदिन और दुर्दिन शब्द से करने अर्थ में क्यङ् प्रत्यय हो । सुदिनं करोति, सुदिनायते । दुर्दिनं करोति, दुर्दिनायते ॥ ६०२ ॥

६०३—वा०—नीहाराच्च ॥

नीहारं करोति, नीहारायते ॥ ६०३ ॥

६०४—वा०—अटाट्टाश्रीकाकोटापोटासोटापुष्टाप्पुष्टाग्रहणम् ॥

करने अर्थ में अटा, अट्टा, श्रीका, कोटा, पोटा, सोटा, पुष्टा और पुष्टा शब्दों से क्यङ् प्रत्यय हो । अटां करोति, अटायते । अट्टायते । श्रीकायते । कोटायते । पोटायते । सोटायते । पुष्टायते । पुष्टायते ॥ ६०४ ॥

६०५—सुखादिभ्यः कर्त्तृवेदनायाम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १८ ॥

वेदना अर्थ में ज्ञाता के संबन्धी सुख आदि कर्मवाची प्रातिपदिकों से क्यङ् प्रत्यय हो । सुखं वेदयते, सुखायते । दुःखायते । कर्णायते । कृपणायते । इत्यादि । इस सूत्र में कर्त्तृग्रहण इस लिये है कि । सुखं वेदयति प्रसाधको देवदत्तस्य । यहाँ सुख शब्द से क्यङ् न हो ॥ ६०५ ॥

६०६—नमोवरिवश्चिबडः क्यच् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १९ ॥

नमस्, वरिवस् और चिबड् प्रातिपदिकों से सत्कार करने आदि अर्थों में क्यच् प्रत्यय हो (नमसः पूजायाम्, वरिवसः परिचर्यायाम्, चिबड् आश्रये) नमः

करोतिनमस्यति गुरुम् । वरिवः करोति वरिवस्यति पितरम् । चित्रं करोति चित्रोयते । चित्रङ् शब्द में डित् अनुबन्ध आत्मनेपद होने के लिये है ॥ ६०६ ॥

६०७—पुच्छभाण्डचौवराण्डि ॥ अ० ॥ ३ । १ । २० ॥

करण विशेष में पुच्छ, भाण्ड, और चौवर प्रातिपदिक से णिङ् प्रत्यय ही पुच्छादुदसने व्यवसने पथ्यसनेच । पुच्छमुदस्यति, उत्क्षिपति । उत्पुच्छयते । पुच्छं व्यस्यति, विविधं विगडं वा क्षिपति, विपुच्छयते । पुच्छं पथ्यस्यति, परितः क्षिपति परिपुच्छयते । भाण्डात् समाचयने । भाण्डानि समाचिनोति, संभाण्डयते राशीकरोतीत्यर्थः । चौवरादर्जने परिधाने च । चौवराण्यर्जयति परिधत्ते वा संचौवरयते भिक्षुः ॥ ६०७ ॥

६०८—मुण्डमिश्रश्लक्ष्णलवणव्रतवस्त्रहलकलकृतस्तूस्तेभ्यो

णिच् ॥ अ० ॥ ३ । १ । २१ ॥

करण अर्थ में मुण्ड, मिश्र, श्लक्ष्ण, लवण, व्रत, वस्त्र, हल, कल, कृत, और तूस्त से णिच् प्रत्यय ही । मुण्डं करोति, मुण्डयति । मिश्रं करोति, मिश्रयति । श्लक्ष्णयति । लवणयति । व्रतयति । वस्त्रयति । हलिकस्योरत्वनिपातनं सन्वद्भावप्रतिषेधार्थम् । हलिकरोति, हलयति । कलयति । अजहलत् । अचकलत् । कृतयति । *वितूस्तयति केशान् विशदीकरोति ॥

(सत्यापपाशरूपवौणातूलश्लोकसेनालोमत्वच्वर्मवर्णचूर्ण०)

यह सूत्र पीछे (४५६) संख्या में लिखचुके हैं इस का शेष विवरण लिखने के लिये यहां लिखा है ॥ ६०८ ॥

६०९—वा०—णिविधावर्थवेद सत्यानामापुक् च ॥

णिच् विधि में अर्थ वेद और सत्य शब्द को आपुक् आगम ही । अर्थमाचष्टे, अर्थापयति । वेदापयति । सत्यं करोति, आचष्टे वा सत्यापयति । पाशं विमृंचति । विपाशयति । रूपं पश्यति, रूपयति । वौण्योपगायति, उपवौणयति । तूलेनानु-कुणाति, अनुतूलयति । श्लोकैरुपस्तौति, उपश्लोकयति । सेनया अभियाति, अभिषेणयति (उपसर्गात्सुनोति० *) इस सूत्र से षत्व० । अभ्यषेणयत् (प्राक् सिता०) इस सूत्र से षत्व० । अभिषेणयितुमिच्छति, अभिषेणयिषति (स्यादि-ष्वभ्या०) इस सूत्र से षत्व० । लोमान्यनुमाष्टिं, अनुलोमयति । त्वचं गृह्णाति,

* सूताः कीटीभूताः केशाः तूस्तं पापं वा

+ उपसर्गात् सुनोति० प्राक्सितादडव्यवाये० स्यादिवस्यासे० इन सूत्रों की षत्व प्रकरण में लिखेंगे ॥

त्वचयति । वर्मणा संनद्धति, संवर्मयति । वर्णं गृह्णाति, वर्णयति । चूर्णैरवध्वंसयति, अनुचूर्णयति ॥ ६०८ ॥

६१०—प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठवच्च ॥

प्रातिपदिक से धात्वर्थ में णिष् प्रत्यय और वच् बहुल करके इष्ठन् प्रत्यय के तुल्य हो । पृथुमाचष्टे प्रथयति (स्त्रैण० ८८६) से ऋको र आदेश । म्रदयति । भ्रशयति । क्रशयति । जडिमाख्यत्, औजिडत् । यहां ढल्वादिर्को के असिद्ध होने से हति शब्द को हित्व हो कर अभ्यास के हकार को चुत्व होता है । अथवा (पूर्व-त्रासिद्धीयमहिर्वचने) इस वचन से ढल्वादि को असिद्ध मान कर ठि शब्द को हित्व होता है । औडिडत् । ऊटमाख्यत्, औजिडत् । औडिडत् (ओः पुण्य०) यह यहां नहीं प्रवृत्त होता है क्योंकि इस सूत्र में पवर्ग और प्रत्याहार के वर्णों का ग्रहण है । स्त्रमाचष्टे, स्त्रापयति । यहां (स्त्रैण० ८८८) प्रकृतिभाव (६०) वृद्धि और (४६२) पुक् हो जाता है । त्वामाऽऽचष्टे, त्वापयति । मामाचष्टे, मापयति । यहां पररूप से पूर्व हो नित्यत्व मान के (स्त्रैण० ८८८) टिलोप ही० । युवामावांचष्टे, युषयति । अस्मयति । उदञ्चमाचष्टे, उदीचयति । उदैचिचत् । प्रत्यञ्चमाचष्टे, प्रतीचयति । प्रत्यचिचत् (इकोऽसवर्णेशा०) इस से प्रकृतिभावपच में । प्रतिअचिचत् । सम्यञ्चमाचष्टे, समीचयति । सम्यचिचत् । समिअचिचत् । भुवमाचष्टे, भावयति । अबीभवत् । भुवमाचष्टे, भावयति । अबुभ्रवत् । अयमाचष्टे, आययति । अग्रिअयत् । गाम्भ्रयत् । अजूगवत् । रायमाख्यत् । अरीरयत् । स्त्रमाचष्टे, स्त्रयति । असस्त्रत् । असिस्त्रत् । बह्वन् भावयति, बह्वयति । औमती औमन्त वा स्तौति, अययति । अग्रिअयत् । पयस्विनीमाचष्टे, पयसयति । यहां टिलोप नहीं होता क्योंकि टिलोपापवाद (विभक्तौर्लुक् स्त्रैण० ७८८) इस से विन् प्रत्यय का लुक् हो जाता है । स्थलमाचष्टे, स्थवयति । दूरंगच्छति, दवयति । इत्यादि प्रयोगों में जी२ कार्य (स्त्रैण० ८८९) सूत्र में जिन २ शब्दों को कहें हैं वे उन शब्दों को होते हैं । युवानं, युवयति । कनयति वा (स्त्रैण० ७८७) से कन् आदेश वि० । अन्तिकं प्राप्नोति, नेदयति । वाढं, साधयति । प्रशस्यं प्रशस्ययति । यहां [अ,ज्य] ये आदेश न होंगे क्योंकि नामधातुओं में उपसर्ग पृथक्माने हैं और पृथक् होने से (शस्य) शब्द प्रकृति रह जायगा (शस्य) को आदेश विधान नहीं है । हवं सेवयते, व्यापयति । प्रियमाचष्टे, प्रापयति । स्थिर, स्थापयति । स्फिर, स्फापयति । उरु, वरयति । बहुलं बह्वयति । गुरुं, गरयति । त्वप्रं त्रपयति । दीघं द्राघयति । हन्दारकं, हन्दयति ॥ ६१० ॥

६११—वा०—तत्करोतीत्युपसंख्यानं सूत्रयत्याद्यर्थम् ॥

सूत्रयति, इत्यादि प्रयोगों के लिये द्वितीया समर्थ प्रातिपदिक से करने अर्थ में णिच् प्रत्यय कहना चाहिये। सूत्रं करोति, सूत्रयति। व्याकरणस्य सूत्रं करोति व्याकरणं सूत्रयति। यहां वाक्य में जो षष्ठी है उस के स्थान में प्रत्ययोत्पत्ति में द्वितीया हो जाती है क्यों कि जो वह सूत्र और व्याकरण शब्द का संबन्ध है उस को प्रत्ययोत्पत्ति में निवृत्ति हो जाती है ॥ ६११ ॥

६१२—वा०—आख्यानात्कृतस्तदाचष्टे क्लृप्प्रकृतिप्रत्यापत्तिः
प्रकृतिवच्च कारकम् ॥

द्वितीयासमर्थ आख्यान कदन्त से कहने अर्थ में णिच् प्रत्यय हो कृत् का लुक् प्रकृति का पूर्वरूप और प्रकृति के तुल्य कारक हो। कंसबधमाचष्टे कंसं घातयति। यहां अप् जो कृत् प्रत्यय है उस का लुक् [बध] का पूर्वरूप और कंस कारक प्रकृति के तुल्य होता है। बलिबन्धमाचष्टे, बलिं बन्धयति। राजागमनमाचष्टे, राजानमागयति ॥ ६१२ ॥

६१३—वा०—दृश्यर्थायां च प्रवृत्तौ ॥

जिस में देखना प्रयोजन है ऐसी जहां प्रवृत्ति हो वहां आख्यान कदन्त से णिच् और पूर्वोक्त समस्त कार्य्य हो। मृगरमणमाचष्टे, मृगान् रमयति। दृश्यार्था-प्रवृत्ति क्यों कही कि। यामिमृगरमणमाचष्टे। यहां न हो ॥ ६१३ ॥

६१४—वा०—आङ्लोपश्च कालात्यन्तसंयोगे मर्यादायाम् ॥

समय के अत्यन्तसंयोग अर्थ में मर्यादा प्राप्त हो तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से णिच्, पूर्वोक्त कार्य्य और आङ् का लोप हो। आरात्रिविवासमाचष्टे, रात्रिं विवासयति। जबतक रात्रि व्यतीत होती है तबतक किसी प्रसंग को कहता है ॥ ६१४ ॥

६१५—वा०—चित्राकरणे प्राप्ति ॥

आश्चर्य्य करने अर्थ में प्राप्ति अर्थ हो तो द्वितीयासमर्थ प्रातिपदिक से णिच् और पूर्वोक्त कार्य्य हो। उज्जयिन्याःप्रस्थितो माहिष्मत्यां सूर्योद्गमनं संभावयते, सूर्यमुद्गमयति। कोई-पुरुष उज्जायिनी नगरी से चला हुआ और माहिष्मती नगरी में सूर्य के उदय को प्राप्त होता है। यहां अति दूर देश पहुंचने से आश्चर्य्य का निश्चय होता है ॥ ६१५ ॥

६१६—नक्षत्रयोगे ज्ञि ॥

नक्षत्र के योग में जानना अर्थ होता द्वितीयान्त प्रातिपदिक से णिच् प्रत्यय तथा पूर्वोक्त कार्य अर्थात् कृत्प्रत्यय का लुक् प्रकृति का पूर्वरूप और प्रकृति के तुल्य कारक हो । पुष्पयोगं जानाति, पुष्पेण योजयति । मघाभिर्योजयति ॥ ६१६ ॥

इति नामधातुप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ कण्डादिप्रक्रियाप्रारम्भः ॥

६१७—कण्डादिभ्यो यक् ॥ अ० ॥ ३ । १ । २७ ॥

कण्डादि धातुभ्यो से यक् प्रत्यय नित्य हो ॥ ६१७ ॥

६१८—का०—धातुप्रकरणाद्भातुः कस्य चासंजनादपि ।

आह चायमिमं दीर्घं मन्ये धातुर्विभाषितः ॥

धातु के अधिकार होने और यक् प्रत्यय में ककार अनुबंध करने से मैं इन कण्डादिकों को धातु मानता हूं तथा ये आचार्य इस कण्डू शब्द को दीर्घ पढ़ते अर्थात् दीर्घ पढ़ने का मुख्य प्रयोजन यही है कि एक पक्ष में यह कण्डू शब्द धातु और दूसरे पक्ष में प्रातिपदिक हो इस से इनको विकल्प करके धातु मानता हूं । प्रयोजन यह है कि कण्डूज् आदि धातु और प्रातिपदिक दोनों हैं जिस पक्ष में धातु माने जाते हैं वहां (६१७) सूत्र से यक् होता है अन्यत्र नहीं [कण्डूज्] गात्र विवर्षणे (शरीर खुजाना) जकार अनुबन्ध से उभयपद होते हैं । कण्डूयति । कण्डूयते । कण्डूयांचक्रे । कण्डूयांबभूव । कण्डूयामास । कण्डूयिता । कण्डूयिष्यति । कण्डूयिषति । कण्डूयिषाति । कण्डूयतु । अकण्डूयत् । कण्डूयेत् । कण्डूयात् । अकण्डूयीत् । अकण्डूयिष्यत् । [मन्तु] अपराधे । रोषे इत्येके । मन्तूयति [वल्गु] पूजामाधुर्ययोः (सत्कार और मौठापन) वल्गूयति [असु] उप-तापे (दुःख होना) असूयति [अस, असृज्] इत्येके । अस्यति । असूयति । असूयते [लिट्, लाट्] धौल्ये, पूर्वभावे स्वप्ने च । दीप्तावित्येके (धूर्त्तपन, पिछिलापन और सोना तथा प्रकाश । लेव्यति । लोव्यति । लेटिता । लोटिता [लेला] दीप्ता । लेलायति । [इरस्, इरज्, इरज्] ईर्ष्यायाम् । इरस्यति । इरज्यति । ईर्यति । ईर्यते (१८७) से दीर्घ [उषस्] प्रभातीभावे (प्रातःकाल का होना) उषस्यति [वेद] धौल्ये स्वप्ने च । वेद्यति [मेधा] आशुग्रहणे (तुरंत लेना) मेधायति [कुपुभ] क्षेपे (निन्दा) कुपभ्यति [मगध] परिवेष्टने नीचदास्ये इत्यन्ये (लपेटना तथा नीच की सेवा करना) मगध्वति [तंतस्, पंपस्,] दुःखे । तंतस्यति । पंपस्यति [सुख दुःख]

तत्क्रियायाम् । सुख्यति । दुःख्यति । सुखं दुःखंचानुभवति [सपर] पूजायाम् । सपर्यति [अरर] आराकर्मणि (चाम काटना आदि) अरर्यति [भिषज्] चिकित्सायाम् । भिषज्यति [भिषणज्] उपसेवायाम् । भिषण्यति [इषुध] शरधारणे (बाण धारण) इषुध्यति [चरण, वरण] गतौ । चरण्यति । वरण्यति [चुरण] चौर्ये चुरण्यति [तुरण] त्वरायाम् (शीघ्रता) तुरण्यति [भुरण] धारणपोषणयोः । भुरण्यति [गदुगद] वाक्स्खलने (गिड़गिड़ाकर बोलना) गदुगद्यति [एला, केला, खेला] विलासे । एलायति । केलायति । खेलायति [इला] इत्यन्ये । इलायति [खेला] स्खलने च । अदन्तोप्ययमित्यन्ये । खेव्यति [लिट्] अल्पकुत्सनयोः । लिव्यति [लाट्] जीवने । लाव्यति [हृणोङ्] रोषणे लज्जायां च । हृणोयति [महीङ्] पूजायाम् । महीयते [रेखा] श्लाघासादनयोः (आत्मप्रशंसा, स्थिति) रेखायति [दुवस्] परितापपरिचरणयोः (कष्ट ओर सेवा) दुवस्यति [तिरस्] अन्तर्द्धा तिरस्यति [अगद] नीरोगत्वे । अगद्यति [उरस] बलार्थे । उरस्यति [तरण] गतौ । तरण्यति [पयस्] प्रसूतौ । पयस्यति [संभूयस्] प्रभूतभावे । (समर्थहोना) संभूयस्यति (अंवर, संवर) संभरणे । अंवर्यति । संवर्यति । आकृतिगणोयम् । यह कण्डादि आकृतिगण अर्थात् इस गण में अर्थानुसार अन्यशब्द भी धातु माने जाते हैं ॥ ६१८ ॥

इति कण्डादिप्रक्रिया समाप्ता ॥

—*—

अथ प्रत्ययमालाप्रक्रियाप्रारम्भः

६१९—का०—शैषिकान्मतुबर्थीयाच्छैषिको मतुबर्थिकः ।

सरूपः प्रत्ययो नेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते ॥

शेषाधिकार के प्रत्यय से समानरूप वाला शेषाधिकारी प्रत्यय और मतुप प्रत्यय के अर्थ वाले से समान रूपवाला मतुबर्थ प्रत्यय इष्ट नहीं । तथा इच्छा अर्थ वाला सन् प्रत्यय जिस के अन्त में ही उस से फिर इच्छार्थ सन् प्रत्यय नहीं इष्ट है । शैषिकात्, शालायां भवः शालीयो घटः शालीये घटे भवमुदकम् । यहां (क) प्रत्यय फिर न हुआ । और विरूप होजाता है जैसे । अहिच्छन्ने भव अहिच्छन् । अहिच्छन्ने भवः, अहिच्छन्नीयो माणवकः । मतुबर्थीयात्, दण्डोऽस्यास्तीति, दण्डिकः दण्डिकोऽस्यास्तीति, यहां फिर मतुबर्थ ठन् प्रत्यय नहीं होता और विरूप तो होता है । जैसे दण्डिमती सेना । सन्नन्तात्, चिकौर्षितुमिच्छति । जिहौर्षितुमिच्छति ।

यहां फिर सन् नहीं होता । और स्वार्थ सन्नस्त से तो इच्छार्थ सन् होता है । जैसे ।
जुगुप्सितुमिच्छति, जुगुप्सिषते । मौमांसिषते ॥ ६१८ ॥

६२०—वा०—कण्डादीनां च ॥

कण्डादि शब्दों के तृतीय एकाच् अवयव को हित्व हो । कण्डूयितुमिच्छति,
कण्डूयिषति । असूयिषति ॥ २२० ॥

२२१—वा०—वा नामधातूनां तृतीयस्य द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

नामधातुओं के तृतीय एकाच् अवयव को विकल्प करके हित्व हो । क्यजन्तात्
सन् । अत्मनोऽश्मिच्छति, अश्मीयति, । अश्मीयितुमिच्छति । अश्मीयिषति ।
अशिश्मीयिषति ॥ ६२१ ॥

६२२—अपरआह—यथेष्टं वा नामधातूनाम् ॥

पुत्रीयितुमिच्छति, पुपुत्रीयिषति । पुतित्रीयिषति । पुत्रीयिषति । अजा-
दि के आदि को छोड़कर औरों को यथेष्ट हित्व होता है । अध्यापनीयितुमिच्छ-
ति, अदिध्यापनीयिषति । अध्यापिपनीयिषति । अध्यापनिनीयिषति । अध्याप-
नीयिषति । न, द, र, ये संयुक्त हों तो इन में जो अच् से परे हो उस को हित्व
का निषेध है । आत्मन इन्द्रमिच्छति, इन्द्रीयति, इन्द्रीयितुमिच्छति, इन्दिद्रीयिषति ।
इन्द्रीयिषति । प्रियमाचष्टे, प्रापयति । प्रापयितुमिच्छति, पिप्रापयिषति ।
प्रापिपयिषति । प्रापयिषति । उरुमाचष्टे, वारयति, वारयितुमिच्छति, वारि-
रयिषति । वारयिषति । बाढमाचष्टे, साधयति । साधयितुमिच्छति, सिसा-
धयिषति । सादिधयिषति । साधयिषति । अविशयेन पुनः पुनर्वा भवति,
बोभूयते । बोभूयितुमिच्छति, बोभूयिषते, बोभूयिषमाचष्टे, बोभूयिषयति,
बोभूयिषयितुमिच्छति, बोभूयिषयिषति । अन्तिकमाचष्टे, नेदयति, आत्मनो
नेदयितुमिच्छति, नेदयीयति । नेदयीयितुमिच्छति, निनेदयीयिषति । निनेद-
यीयिषमाचष्टे, निनेदयीयिषयति । गोमन्तमाचष्टे, गवयति । आत्मनो गवय-
मिच्छति, गवयीयति । गवयीयितुमिच्छति, गविवयीयिषति । पाचकीयितुमिच्छति,
पिपाचकीयिषति । आख्यातमाचष्टे, आख्यातयति । आख्यातयितुमिच्छति, आधि-
ख्यातयिषति । इत्यादि असंख्य प्रयोग प्रत्ययमाला में बन सकते हैं । सो व्याकरण
में पूर्ण प्रवेश होने के आधीन हैं ॥ ६२२ ॥

इति प्रत्ययमालाप्रक्रिया समाप्ता

अथात्मनेपदप्रक्रियाऽऽरम्भः

अनुदात्त और ङित् धातुओं से आत्मनेपद (८५) सूत्र में कह चुके हैं । आस्ते । श्रुते । प्रवते । म्रवते । इत्यादि ॥

६२३—भावकर्मणोः ॥ अ० ॥ १ । ३ । १३ ॥

भाव और कर्म में विहित जो लकार उस के स्थान में आत्मनेपद हो । भाव में । आस्यते भावता । श्रूयते भवता । कर्म में । क्रियते कटः । क्रियते भारः ॥ ६२३ ॥

६२४—कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे ॥ अ० ॥ १ । ३ । १४ ॥

परस्पर एक दूसरे का काम करे इस अर्थ में वर्तमान धातु से कर्त्ता में आत्मनेपद हो । व्यतिलुनन्ते । व्यतिपुनन्ते । व्यतिस्ते । व्यतिषाते । व्यतिषते । (२१६) इस से सलोप । व्यतिध्वे । यहां (१११) सूत्र से सलोप । व्यतिहे (११२) सूत्र से अस् के स को ह । कर्मव्यतिहार कहने से यहां न हुआ । एवं रत्नेन लुनन्ति । कर्त्ता का ग्रहण अगले सूत्रों के लिये है ॥ ६२४ ॥

६२५—न गतिहिंसार्थेभ्यः ॥ अ० ॥ १ । ३ । १५ ॥

गत्यर्थक और हिंसार्थक धातुओं से कर्मव्यतिहार अर्थ में आत्मनेपद न हो । गत्यर्थ, व्यतिगच्छन्ति । व्यतिसर्पन्ति । हिंसार्थ, व्यतिहिंसन्ति । व्यतिघ्नन्ति ॥ ६२५ ॥

६२६—वा०—प्रतिषेधे हसादीनामुपसंख्यानम् ॥

यहां आत्मनेपद के प्रतिषेध में हसादिकों का भी ग्रहण करना चाहिये । हस के सदृश शब्दक्रियावाले धातु हसादि कहाते हैं । व्यतिहसन्ति । व्यतिजल्पन्ति । व्यतिपठन्ति ॥ ६२६ ॥

६२७—वा०—हरिवह्योरप्रतिषेधः ॥

ह और वह धातु से कर्मव्यतिहार अर्थ में आत्मनेपद होने का प्रतिषेध न हो । संप्रहरन्ते राजानः । संविवहन्ते गर्गैः ॥ ६२७ ॥

६२८—इतरेतरान्योन्योपपदाच्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । १६ ॥

इतरेतर और अन्योन्य उपपद ही तो कर्म व्यतिहार अर्थ में धातु से आत्मनेपद न हो । इतरेतरस्य व्यतिलुनन्ति । अन्योन्यस्य व्यतिलुनन्ति ॥ ६२८ ॥

६२९—वा०—परस्परौपपदाच्च ॥

परस्पर उपपद ही तो कर्मव्यतिहार में धातु से आत्मनेपद न हो । परस्परस्य व्यतिलुनन्ति । परस्परस्य व्यतिपुनन्ति ॥ ६२९ ॥

६३०—नेविशः ॥ अ० ॥ १ । ३ । १७ ॥

निपूर्वक विभ धातु से आत्मनेपद हो । निविशते । नि, ग्रहण से यहां न हुआ । प्रविशति “अर्थवतआगमस्तदगुणीभूतोऽर्थवदग्रहणेन गृह्यते,, इस से अट् के व्यवधान में भी होता है । न्यविशत “अर्थवदग्रहणेनानर्थकस्य,, इस से यहां न हुआ । मधुनि विशन्ति अमराः ॥ ६३० ॥

६३१—परिव्यवेभ्यः क्रियः ॥ अ० ॥ १ । ३ । १८ ॥

परि, वि और अव उपसर्गों से परे डुक्रीज् धातु से आत्मनेपद हो । परिक्रीणीते । विक्रीणीते । अवक्रीणीते । यहां न हुआ । बहुविक्रीणाति वनम् ॥ ६३१ ॥

५३२—विपराभ्याञ्जेः ॥ अ० ॥ १ । ३ । १९ ॥

वि और परा उपसर्गों से परे जि धातु से आत्मनेपद हो । विजयते । पराजयते । उपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । बहुविजयति वनम् । पराजयति सेना ॥ ६३२ ॥

६३३—आडो दोऽनास्यविहरणे ॥ अ० ॥ १ । ३ । २० ॥

मुख के फौलाने अर्थ से अन्यत्र आड् पूर्वक डुदाज् धातु से आत्मनेपद हो । विद्यामादत्ते । अनास्यविहरण कहने से यहां न हुआ । आस्यं व्याददाति । आस्यविहरण के समान जो और क्रिया हैं उन में भी प्रतिषेध होता है जैसे । विपादिकां व्याददाति । कूलं व्याददाति ॥ ६३३ ॥

६३४—वा०—स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम् ॥

“अनास्यविहरण,, यहां स्वाङ्गकर्म वाले दाधातु से आत्मनेपद प्रतिषेध कहना चाहिये इस से यहां प्रतिषेध न हुआ । व्याददते पिपीलिका पतङ्गस्य मुखम् ॥ ६३४ ॥

६३५—क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । २१ ॥

अनु, सम्, परि, और आड् उपसर्गों से परे जो क्रीड धातु उस से आत्मनेपद हो । अनुक्रीडते । संक्रीडते । परिक्रीडते । आक्रीडते । उपसर्गनियम से यहां नहीं होता । अनुक्रीडतिमाणवकम् । माणवकेन सह क्रीडतीत्यर्थः । यहां “तृतीयार्थे,, इस से अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा है किंतु उपसर्गसंज्ञा नहीं “समोऽकृजने,, सम् से परे क्रीड से अकृजने अर्थ में आत्मनेपद होना चाहिये । अर्थात् यहां नहीं । संक्रीडन्ति शकटानि ॥ ६३५ ॥

६३६—वा०—आगमेः क्षमायाम् ॥

सहन अर्थ में आड् पूर्वक णिजन्त गमधातु से आत्मनेपद हो । माणवक आगमयस्व तावत् । सहनं कुरु ॥ ६३६ ॥

६३७—वा०—शिक्षेर्जिज्ञासायाम् ॥

जानने की इच्छा में शिक्षधातु से आत्मनेपद हो । विद्यासु शिक्षते । धनुषि शिक्षते । विद्या वा धनुर्विषय के ज्ञान में समर्थ होने की इच्छा करता है ॥ ६३७ ॥

६३८—वा०—किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेषु ॥

हर्ष (आनन्द) जीविका । कुलायकरण (गड्ढा करना) इन अर्थों में । किरति धातु से आत्मनेपद हो । अपस्किरते वृषो हृष्टः । अपस्किरते कुकुटो भक्षार्थी । अपस्किरतेश्वा आश्रयार्थी ॥ ६३८ ॥

६३९—वा०—हरतेर्गतताच्छील्ये ॥

किसी प्रकार के स्वभाव होने अर्थ में हृधातु से आत्मनेपद हो । पैत्रिकमखा अनुहरन्ते । मात्रिकं गावोऽनुहरन्ते । घोड़ा पिता से पाये हुए प्रकार का अनुहार करते हैं । तथा गौ मातृस्वभाव का अनुहार करती हैं ॥ ६३९ ॥

६४०—वा०—आशिषि नाथः ॥

आशीः (आशा) अर्थ में ही नाथ से आत्म० । सर्पिषो नाथते सधुनो वा ॥ ६४० ॥

६४१—वा०—आङि नुपृच्छोः ॥

आङ् पूर्वक नु और पृच्छ धातु से आत्मनेपद हो । आनुते शृगालः । उक्ता पूर्वकं शब्दं करोतीत्यर्थः । आपृच्छते गुरुम् ॥ ६४१ ॥

६४२—वा०—शपउपलभने ॥

उलहना देने में शपधातु से आ० । गुरवे शपते ॥ ६४२ ॥

६४३—समवप्रविभ्यः स्थः ॥ अ० ॥ १ । ३ । २२ ॥

सम्, अव, प्र, और वि उपसर्गों से परे स्थाधातु से आत्मनेपद हो । संतिष्ठते । अवतिष्ठते । प्रतिष्ठते । वितिष्ठते ॥ ६४३ ॥

६४४—वा०—आङि स्थः प्रतिज्ञाने ॥

प्रतिज्ञा अर्थ में आङ् से परे स्था धातु से आत्मनेपद हो । अस्ति सकारमातिष्ठते । आगमौ गुणवृद्धौ आतिष्ठते । विकारौ गुणवृद्धौ आतिष्ठते ॥ ६४४ ॥

६४५—प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । २३ ॥

अपने अभिप्राय के प्रकाश और विवाद के निर्णय करने वाले की आख्या में स्थाधातु से आत्मनेपद हो । भार्या तिष्ठते पत्ने । विदुषे तिष्ठते जिज्ञासुः । संशय्य करणादिषु तिष्ठते यः ॥ ६४५ ॥

६४६—उदोऽनूर्ध्वकर्मणि ॥ अ० ॥ १ । ३ । २४ ॥

अनूर्ध्व कर्म में वर्तमान उद् उपसर्ग से परे स्था धातु से आत्मनेपद हो। “उदईहा-
याम्,” यहां उद् उपसर्ग से चेष्टा अर्थ में कहना चाहिये। गेहेउत्तिष्ठते। घर की उत्तिष्ठति
लिये यत्न करता है। अनूर्ध्वकर्म कहने से यहां न हुआ। आसनादुत्तिष्ठति।
ईहाग्रहण से यहां न हुआ। उत्तिष्ठति सेना। उत्पद्यते जायतइत्यर्थः ॥ ६४६ ॥

६४७—उपान्मन्त्रकरणे ॥ अ० ॥ १ । ३ । २५ ॥

मंत्र करने में उप से परे स्था धातु से आत्मनेपद हो। ऐन्द्रा गार्हपत्यमुप-
तिष्ठते। आन्नेयाऽऽनीध्रमुपतिष्ठते। मंत्रकरण अर्थ के ग्रहण से यहां न हुआ।
पत्तिमुपतिष्ठति यौवनेन ॥ ६४७ ॥

६४८—वा०—उपाद्देवपूजासंगतिकरणमित्रकरण-
पथिष्विति वक्तव्यम् ॥

देवपूजा, संगतकरण, मित्रकरण, और मार्ग अर्थ में उप से परे स्था धातु से
आत्मनेपद हो। देवपूजायाम्। आदित्यमुपतिष्ठते। चन्द्रमसमुपतिष्ठते। संगतकरणे।
रधिकानुपतिष्ठते। अश्वारोहानुपतिष्ठते। संगतकरण समीप जा कर मित्रपन से
वर्तमान और मित्रकरण तो समीप वा असमीप में केवल मित्रपन समझना चाहिये।
पथिषु, अयं पन्थाः सुधमुपतिष्ठते। अयं पन्थाः साकेतमुपतिष्ठते ॥ ६४८ ॥

६४९—वा०—वा लिप्सायाम् ॥

लाभ की इच्छा अर्थ में स्था धातु से आत्मनेपद हो। भिक्षुका ब्राह्मणकुलमु-
पतिष्ठते ॥ ६४९ ॥

६५०—अकर्मकाच्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । २६ ॥

उप पूर्वक अकर्मक अर्थात् अकर्मकक्रियावचन स्था धातु से आत्मनेपद हो।
यावदुक्तमुपतिष्ठते। यावदोदनमुपतिष्ठते। भोजन २ में सन्निहित होता है।
अकर्मक ग्रहण से यहां न हुआ। राजानमुपतिष्ठति ॥ ६५० ॥

६५१—उद्विभ्यां तपः ॥ अ० ॥ १ । ३ । २७ ॥

उद् और वि उपसर्ग से परे अकर्मकक्रियावचन तप धातु से आत्मनेपद हो।
उत्तपते। वितपते। प्रकाशित होता है। अकर्मक ग्रहण से यहां न हुआ। उत्तपति
सुवर्णं सुवर्णकारः। वितपति पृष्ठं सविता ॥ ६५१ ॥

६५२—वा०—स्वाङ्गकर्मकाच्च ॥

उद् और वि से परे स्वाङ्गकर्मक तप धातु से आत्मनेपद हो। उत्तपते पाणिम्।

वितपते पाणिम् । उक्तपते पृष्ठम् । वितपते पृष्ठम् । स्वाङ्गं यहाँ अपने ही अङ्ग का ग्रहण है अर्थात् (स्वमङ्गं स्वाङ्गं) किन्तु “अद्रवंमूर्त्तिमत्”, इस परिभाषा से जो उक्त है वह नहीं लिया जाता है । इस से यहाँ न हुआ । देवदत्तो यन्नदत्तस्य पाणिमुक्तपति । उद्, वि ग्रहण से यहाँ न हुआ । निष्ठपति ॥ ६५२ ॥

६५३—आङो यमहनः ॥ अ० ॥ १ । ३ । २८ ॥

आङ् से परे अकर्मक क्रियावचन यम, हन् धातु से आत्मनेपद ही । आयच्छते । आयच्छते । आयच्छन्ते । आहते (३०३) अनुनासिक लोप० । आप्नाते । आप्नते । अकर्मक ग्रहण से यहाँ न हुआ । आयच्छति रज्जु कृपात् । आहन्ति वृषलं पादेन ॥ ६५३ ॥

६५४—वा०—स्वाङ्गकर्मकाच्च ॥

आङ् से परे स्वाङ्गकर्मक यम और हन धातु से आत्मनेपद ही । आयच्छते पाणी । आहते उदरम् ॥ ६५४ ॥

६५५—आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ २ । ४ । ४४ ॥

आत्मनेपद प्रत्यय परे ही तो लुङ्लकार में हन् धातु को वध आदेश विकल्प करके ही । आवधिष्ट । आवधिषाताम् । आवधिषत । जिस पक्ष में वध आदेश न हुआ वहाँ ॥ ६५५ ॥

६५६—हनः सिच् ॥ अ० ॥ १ । २ । १४ ॥

हन् धातु से परे आत्मनेपद में भलादि सिच् कित्त्वत् ही । आहत । आहसाताम् । आहसत ॥ ६५६ ॥

६५७—यमो गन्धने ॥ अ० ॥ १ । २ । १५ ॥

दूसरे के दोष को प्रकाश करने में यम धातु से परे जो भलादिसिच् सी कित्त्वत् ही । आत्मनेपद में । शत्रुमुदायत । उदायसाताम् । उदायसत । गन्धनग्रहण से यहाँ न हुआ । उदायस्त पादम् । यहाँ (समुदाङ्भ्यः०) इस अगामी सूत्र से आत्मनेपद हुआ ॥ ६५७ ॥

६५८—समो गम्यच्छिभ्याम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । २६ ॥

सम् उपसर्ग से परे अकर्मक क्रियावचन गम और ऋच्छ धातु से आत्मनेपद ही । संगच्छते शास्त्रम् । सम्यच्छते वस्त्रम् । अकर्मक ग्रहण से यहाँ न हुआ । संगच्छति ग्रामम् ॥ ६५८ ॥

६५९—वा गमः ॥ अ० ॥ १ । २ । १३ ॥

गम धातु से परे आत्मनेपद विषयक भलादि लिङ् सिच् कित्त्वत् ही । संगसीष्ट । संगंसीष्ट । समगत । समगस्त ॥ ६५९ ॥

६६०—वा०—समो गमादिषु विदिष्टच्छिस्वरतौ नामुपसंख्यानम् ॥

सम् से परे गमादिकों में विद्, प्रच्छ, स्त इन् धातुओं से आत्मनेपद कहना चाहिये। संवित्ते। संविदाते। संपृच्छते। संस्वरते। यहाँ अकर्मक की अनुवृत्ति (६५०) सूत्रसे नहीं आती है ॥ ६६० ॥

६६१—वेत्तेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ७।१।७ ॥

(विद्, ज्ञाने) धातु से परे प्रत्ययादि भ्रकार के स्थान में अत् और उस् को रुट् आगम विकल्प करके ही आत्मनेपद विषय में। इस सूत्र में वेत्ति की रुडागम कहा है इसी कारण पूर्व वार्तिक में विद् करके वेत्ति का ही ग्रहण है अन्य विद् का नहीं। सम्+विद्+रुट्+अत्+अ=संविद्वते। संविदते ॥ ६६१ ॥

६६२—वा०—अर्तिश्रुदृशिभ्यश्च ॥

सम् से परे ऋ, श्रु, और दृश् धातु से आत्मनेपद ही। मासृषत। मासृषा-ताम्। मासृषत *। संश्रुणुते। संपश्यते ॥ ६६२ ॥

६६३—वा०—उपसर्गादस्यत्पूह्योर्वा वचनम् ॥

उपसर्ग से परे जो अस् और जह धातु उन से विकल्प करके आत्मनेपद ही। निरस्यति। निरस्यते। समृहति। समृहते ॥ ६६३ ॥

६६४—उपसर्गाद्भ्रस्व जहतेः ॥ अ० ॥ ७।४।२३ ॥

उपसर्ग से परे जह धातु को ऋस्व ही। यकारादि कित् ङित् परे ही तो। समुह्यादग्निम् ॥ ६६४ ॥

६६५—निसमुप्रविभ्यो ह्वः ॥ अ० ॥ १।३।३० ॥

नि, सम्, उप और वि इन से परे जो ह्वा धातु उस से आत्मनेपद ही। निह्वयते। संह्वयते। उपह्वयते। विह्वयते ॥ ६६५ ॥

६६६—स्यर्द्धायासाङः ॥ अ० ॥ १।३।३१ ॥

स्यर्द्धा अर्थात् दूसरे के तिरस्कार करने की इच्छा में वर्त्तमान आङ् उपसर्ग से परे जो ह्वा धातु उस से आत्मनेपद ही। मल्लो मल्लमाह्वयते। छात्रश्चात्रमाह्वयते। स्यर्द्धा से अन्यत्र। गामाह्वयति गोपालः ॥ ६६६ ॥

* यहाँ कौमुदीकार वा काशिकाकार आदिने ऋ धातु से आत्मनेपद विषयक लुङ् लकार में चि के स्थान में अङ् "सत्तिशान्तिभ्यश्च" सूत्र से करके। मासमरत। मासमरेताम्। मासमरन्त। इत्यादि प्रयोग बनाये हैं। सो महाभाष्य में विरुद्ध है क्योंकि महाभाष्यकार के "शासददङ् हलीः" इस सूत्र के व्याख्यान से निश्चित होता है कि "सत्तिशान्ति०" सूत्र में परस्मैपद की अनुवृत्ति है ॥

६६७—गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु
कृञ् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३२ ॥

गन्धन (चुगली) अवक्षेपण (धमकाना) सेवन (सेवा) साहसिक्य (हठ)
प्रतियत्न (गुणाधान) प्रकथन। उपयोग (धर्मार्थ नियम) इन अर्थों में वर्तमान कृञ्
धातु से आत्मनेपद हो। गन्धन, शत्रुमुत्कुरुते। अवक्षेपण, प्रयेनो वर्त्तिकामुदा-
कुरुते। सेवन, आचार्यमुपकुरुते शिष्यः। परदारान् प्रकुरुते। प्रतियत्न, एधोदक-
स्योपस्कुरुते। गुडस्योपस्कुरुते। प्रकथन, जनापवादान् प्रकुरुते। उपयोग, शतं
प्रकुरुते। सहस्रं प्रकुरुते। धर्मार्थं विनियुङ्क्ते इत्यर्थः। इन अर्थों से अन्यत्र। कटं
करोति ॥ ६६७ ॥

६६८—अधेः प्रसहने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३३ ॥

सहन वा तिरस्कार करने अर्थ में अधि से परे कृञ् धातु से आत्मनेपद हो।
सहन, शीतमधिकुरुते। तिरस्कार, शत्रुमधिकुरुते। अन्यत्र। अर्थमधिकरोति ॥ ६६८ ॥

६६९—वेः शब्दकर्मणः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३४ ॥

वि उपसर्ग से परे शब्दकर्मणः कृञ् धातु से आत्मनेपद हो। यहां कर्म
कारक का ग्रहण है। क्रोष्टा विकुरुते खरान्। ध्वाङ्क्षी विकुरुते खरान्। अन्यत्र।
विकरोति पयः ॥ ६६९ ॥

६७०—अकर्मकाच्च ॥ अ० ॥ अ० । १ । ३ । ३५ ॥

वि उपसर्ग से परे अकर्मक कृञ् धातु से आत्मनेपद हो। विकुर्वते सैन्धवाः।
शोभनं वल्गन्तीत्यर्थः ॥ ६७० ॥

६७१—सम्माननोत्सञ्जनआचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु
नियः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३६ ॥

सम्मानन (अच्छे प्रकार मान) उत्सञ्जन (उछालना) आचार्य करण (आचार्य
क्रिया) ज्ञान, भृति (वेतन) विगणन (ऋणादि का चुकाना) व्यय (धर्मादि
कामों में खर्च करना) इन अर्थों में वर्तमान नी धातु से आत्मनेपद हो। संमा-
नन, मातरं सन्नयते। उत्सञ्जन, दण्डमुन्नयते। आचार्यकरण, माणवकमुपनयते।
ज्ञान, तत्त्वं नयते। भृति, कर्मकरानुपनयते। भृतिदानेन समीपं नयते इत्यर्थः।
विगणन, मद्राः करं विनयन्ते। राजा को उगाही आदि धन देते हैं। व्यय,
शतं विनयते। धर्मार्थं शतं मुद्रा खर्च करता है ॥ ६७१ ॥

२७२—कर्त्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३७ ॥

कर्त्ता में स्थित शरीर भिन्न कर्म उपपद हो तो भी धातु से आत्मनेपद होवे । शरीर का एकदेश भी शरीर कहता है । क्रोधं विनयते । मय्यं विनयते । कर्त्तृस्थ ग्रहण इस लिये है कि । देवदत्तो यज्ञदत्तस्य क्रोधं विनयति । अशरीरग्रहण इस लिये है कि । हस्तं विनयति । कर्मग्रहण इस लिये है कि बुद्ध्या विनयति ॥ ६७२ ॥

६७३—वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३८ ॥

वृत्ति (अनिरोध) सर्ग (उत्साह) तायन (विस्तार) इन अर्थों में वर्त्तमान क्रम धातु से आत्मनेपद ही । वृत्ति, मन्त्रेष्वस्य क्रमते बुद्धिः । सर्ग, व्याकरणाध्ययनाय क्रमते । तायन, क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि । वृत्तिआदि से अन्यत्र । अपक्रामति बालः ॥ ६७३ ॥

६७४—उपपराभ्याम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ३९ ॥

वृत्ति, सर्ग, तायन अर्थों में उप और परा उपसर्गों से परे ही क्रम धातु से आत्मनेपद ही अन्य उपसर्गों से नहीं । उपक्रमते । पराक्रमते । उप, परा के नियम से । संक्रामति । यहां आत्मनेपद नहीं होता । वृत्ति आदि अर्थों से अन्यत्र । उपक्रामति । पराक्रामति ॥ ६७४ ॥

६७५—आङ् उद्गमने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४० ॥

वा०—ज्योतिषामुद्गमने ॥ आङ् से परे सूर्य आदि के ऊपर को उठने अर्थ में वर्त्तमान क्रम धातु से परे आत्मनेपद ही । आक्रमते सूर्यः । आक्रमते चन्द्रमाः । उद्गमन् से । अन्यत्र । आक्रमति माणवकः कुतुपम् । ज्योतिषी के ग्रहण से । आक्रमति धूमो हर्म्यतलात् । यहां आत्मनेपद न ही ॥ ६७५ ॥

६७६—वेः पादविहरणे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४१ ॥

पादविहरण अर्थ में वर्त्तमान वि उपसर्ग से परे क्रम धातु से आत्मनेपद ही । साधु विक्रमते बाजी । पादविहरण से अन्यत्र । विक्रामति सन्धिः ॥ ६७६ ॥

६७७—प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४२ ॥

तुल्यार्थ प्र और उप से परे जो क्रम धातु है उस से आत्मनेपद ही । प्रक्रमते । भोक्तुम् । उपक्रमते भोक्तुम् । प्र और उप दोनों शब्द आरम्भ अर्थ में तुल्य हैं । समर्थ-ग्रहण इस लिये है कि । पूर्वद्युः प्रक्रामति । अपरद्युरपक्रामति । यहां आत्मनेपद न ही ॥ ६७७ ॥

६७८—अनुपसर्गाद्वा ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४३ ॥

उपसर्ग रहित क्रम धातु से आत्मनेपद विकल्प करके ही । क्रमते । क्रामति । अनुपर्ग कहने से । संक्रामति । में न हुआ ॥ ६७८ ॥

६७६—अपङ्गवे ज्ञाः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४४ ॥

मिथ्या अर्थ में वर्तमान ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो । शतमपजानीते । अपङ्गव अर्थ से अन्यत्र । न त्वं किंचिदपि जानासि ॥ ६७६ ॥

६८०—अकर्मकाच्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४५ ॥

अकर्मक ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो । सर्पिषो जानीते । यहां करण में षष्ठी है । अकर्मक से अन्यत्र । स्वरेण पुत्रं जानाति । यहां आत्मनेपद नहीं होता ॥ ६८० ॥

६८१—संप्रतिभ्यामनाध्याने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४६ ॥

उत्कण्ठापूर्वक स्मरण से अन्य अर्थ में सम् और प्रति उपसर्गों से परे ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो । शतं संजानीते । शतं प्रतिजानीते । स्मरण का निषेध इस लिये है कि । मातुः सजानाति बालः ॥ ६८१ ॥

६८२—भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमंत्रणेषु वदः ॥

अ० ॥ १ । ३ । ४७ ॥

भासन (दीप्ति) उपसंभाषा (समीप से समझना) ज्ञान (सम्यग्बोध) यत्न (उत्साह) विमति (नानाप्रकार की बुद्धि) उपमंत्रण (एकान्त में कहना) इन अर्थों में वद धातु से आत्मनेपद हो । भासन—शास्त्रे वदते । शास्त्र में विद्या प्रकाश की प्राप्त हुआ कह रहा है । उपसंभाषा—कर्मकरानुपवदते । ज्ञान—व्याकरणे वदते । यत्न—ज्ञेने वदते । गेहे वदते । विमति—सदसि विवदन्ति विद्वांसः । उपमंत्रण—राजानुपवदते मंत्री । भासन आदि अर्थों से अन्यत्र । यत् किंचिद्वदति ॥ ६८२ ॥

६८३—व्यक्तवाचां समुच्चारणे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४८ ॥

स्यष्ट वर्ण बोलने वालों के एकसाथ उच्चारण करने अर्थ में वर्तमान वद धातु से आत्मनेपद हो । संप्रवदन्ते ब्राह्मणाः । व्यक्तवाणी वालों का ग्रहण इस लिये है कि । संप्रवदन्ति कुकुटाः । साथउच्चारण कहने से अन्यत्र । ब्राह्मणो वदति । यहां आत्मनेपद नहीं ॥ ६८३ ॥

६८४—अनोरकर्मकात् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ४९ ॥

स्यष्ट वर्ण बोलने वालों के एकसाथ उच्चारण करने अर्थ में वर्तमान अनुउपसर्ग से परे वद धातु से आत्मनेपद हो । अनुवदते कठः कलापस्याजैसे कलाप पड़ता हुआ कहता है वैसे कठ भी । अकर्मक ग्रहण से यहां न हुआ । उक्तमनुवदति । व्यक्तवाग् ग्रहण से यहां न हुआ । अनुवदति वीणा । यहां सदृश अर्थ मात्र है ॥ ६८४ ॥

६८५—विभाषा विप्रलापे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५० ॥

विरुद्ध कथन में व्यक्तवर्ण बोलने वालों के एकसाथ उच्चारण अर्थ में वदधातु से परे आत्मनेपद विकल्प करके हो। विप्रवदन्ते विप्रवदन्ति वा वैयाकरणाः । एकदूसरे के पक्ष का खण्डन करने से विरुद्ध बोलते हैं। विप्रलाप से अन्यत्र । संप्रवदन्ते ब्राह्मणाः । व्यक्तवाणी से अन्यत्र । विप्रवदन्ति शकुनयः । समुच्चारण से अन्यत्र । क्रमेण तार्किकस्तार्किकेण सह विप्रवदति ॥ ६८५ ॥

६८६—अवद्ग्रः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५१ ॥

अव उपसर्ग से परे जो गृ धातु उस से आत्मनेपद हो। अवगिरते। अवगिरते। अव से अन्यत्र । गिरति ॥ ६८६ ॥

६८७—समः प्रतिज्ञाने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५२ ॥

प्रतिज्ञा अर्थ में वर्तमान समपूर्वक गृ धातु से आत्मनेपद हो। शतं संगिरते। नित्यं शब्द संगिरते। प्रतिज्ञा अर्थ से अन्यत्र । संगिरति आसम्। यहां आत्मनेपद नहीं होता ॥ ६८७ ॥

६८८—उद्वरः सकर्मकात् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५३ ॥

उद्वपूर्वक सकर्मक चरधातु से आत्मनेपद हो। धर्ममुच्चरते। गुरुवचनमुच्चरते। धर्म और गुरु के वचन का उलंघन करता है। सकर्मक से अन्यत्र । वाप्यमुच्चरति कूपात् ॥ ६८८ ॥

६८९—समस्तृतीयायुक्तात् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५४ ॥

तृतीया विभक्ति से युक्त समपूर्वक चर धातु से आत्मनेपद हो। रथेन संचरते। अश्वेन संचरते। तृतीया से अन्यत्र । उभौ लोको संचरति। यहां न हो ॥ ६८९ ॥

६९०—दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५५ ॥

अशिष्टव्यवहार अर्थ में तृतीया विभक्ति से युक्त समपूर्वक दाण् धातु से आत्मनेपद हो परन्तु वह तृतीया विभक्ति चतुर्थी के अर्थ में होतो। दास्या संप्रयच्छते। वृपत्या संप्रयच्छते। कामी पुरुष दासी और वेश्या को कुछ देता है। चतुर्थ्यर्थ से अन्यत्र । पाणिना संप्रयच्छति ॥ ६९० ॥

६९१—उपाद्यमः स्वकरणे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५६ ॥

हाथ पकड़ के जो स्वीकार करना है उस अर्थ में वर्तमान यम् धातु से आत्मनेपद हो। भार्यामुपयच्छते । स्वकरण ग्रहण करने से यहां न हुआ । पटमुपयच्छति । देवदत्तो यज्ञदत्तस्य भार्यामुपयच्छति ॥ ६९१ ॥

६६२—ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५७ ॥

ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृश् इन धातुओं के सन् प्रत्यय से परे आत्मनेपद ही। धर्म जिज्ञासते। गुरुं श्रुश्रूषते। विस्मृतं सुस्मूर्षते। नृपं दिदृक्षते। सन् ग्रहण से यहां न हुआ। जानाति। शृणोति। स्मरति। पश्यति ॥ ६६२ ॥

६६३—नानोर्ज्ञः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५८ ॥

अनु उपसर्ग से परे ज्ञा धातु के सन् से आत्मनेपद न हो। पुत्रमनुजिज्ञासति। अनुग्रहण से यहां न हुआ। धर्म जिज्ञासते ॥ ६६३ ॥

६६४—प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ५९ ॥

प्रति और आङ् उपसर्ग से परे सन्नन्त श्रु धातु से आत्मनेपद न हो। प्रतिश्रुश्रूषति। आश्रुश्रूषति। उपसर्ग मानने से यहां न हुआ। देवदत्तं प्रति श्रुश्रूषते ॥ ६६४ ॥

६६५—पूर्ववत्सनः ॥ अ० ॥ १ । २ । ६२ ॥

सन्नन्त से पूर्ववत् आत्मनेपद ही। अर्थात् जिस निमित्त से प्रथम आत्मनेपद होता है उसी निमित्त से सन्नन्त में भी आत्मनेपद है। जैसे। अनुदात्त डित् से आत्मनेपद होता है। आस्ते। श्रुते। वैसे ही उक्ती निमित्तों से सन्नन्त में भी आत्मनेपद है। आसिसिषते। शिशयिषते। निविशते। निविचिषते। आक्रमते। आचिक्रंसते। सन्नन्त शब्द और मृङ् धातु से आत्मनेपद न होगा। क्यों कि उन से आत्मनेपद विधान में सन्नन्त से निषेध है * ॥ ६६५ ॥

६६६—प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६४ ॥

अयज्ञपात्र प्रयोग में प्र और उप से युज् धातु से परे आत्मनेपद ही। प्रयुङ्क्ते। उपयुङ्क्ते। अयज्ञपात्र ग्रहण से यहां न हुआ। इत्वं यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति ॥ ६६६ ॥

६६७—वा०—स्वराद्यन्तोपस्थादिति वक्तव्यम् ॥

स्वर जिस के आदि तथा अन्त में है। उन उपसर्गों से युक्त युज धातु से परे आत्मनेपद ही। अर्थात् सम्, निस्, दुर् इन तीन उपसर्गों को छोड़ के अन्य सब उपसर्गों से परे युज से आत्मनेपद ही। उद्युङ्क्ते। अनुयुङ्क्ते। नियुङ्क्ते। यहां नहीं होता। संयुनक्ति ॥ ६६७ ॥

* जो (२३२। ४३१) सूत्रों में आत्मनेपद विधान का नियम है सो सन्नन्त में आत्मनेपद नहीं होता क्यों कि (२३२। ४३१) सूत्रों में (६६२। ६६३) सूत्रों से सन्नन्त से निषेध की अनुवृत्ति आती है। शिशयति। सुस्मूर्षति ॥

६६८—समः क्षुण्वः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६५ ॥

सम्पूर्वक क्षुधातु से आत्मनेपद हो । संक्षुण्ते शस्त्रम् । क्षुधातु को (६५८) सूत्र में पढ़ देते तो यह पृथक् सूत्र बनाने न पड़ता । फिर यह सकर्मक क्षु का ग्रहण होने के लिये पृथक् पढ़ा है और वहाँ (६५८) सूत्र में प्रकर्मक की अनुवृत्ति है ॥ ६६८ ॥

६६९—भुजोऽनयने ॥ अ० । १ । ३ । ६६ ॥

अपालन अर्थ में वर्त्तमान भुज धातु से आत्मनेपद हो । भुङ्क्ते । भुञ्जते । पालन के निषेध से अन्यत्र । पृथिवीं भुनक्ति राजा । यहाँ रक्षार्थ के निषेध से जाना जाता है कि इस सूत्र में रुधादि के भुज का ग्रहण किया तुदादि का नहीं ॥ ६६९ ॥

७००—गो रणौ यत्कर्म णौ चैत्सकर्त्ताऽनाध्याने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ६७ ॥

अख्यन्त अवस्था में जो कर्म वही ख्यन्त अवस्था में कर्म तथा कर्त्ता भी हो तो अनाध्यान अर्थात् अत्यन्त उत्साह से जो स्मरण करना है उस अर्थ में णिजन्त धातु से आत्मनेपद हो । आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः, आरोहयते हस्ती स्वयमेव । उपसिञ्चन्ति हस्तिनं हस्तिपकाः, उपसेचयते हस्ती स्वयमेव । पश्यन्ति भृत्या राजानं, दर्शयते राजा स्वयमेव । णिग्रहण से यहाँ न हुआ । आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपका आरोहयमाणो हस्ती साधारोहति । अणिग्रहण से यहाँ न हुआ । गणयति गणं गोपालकः । गणयति गणः स्वयमेव । कर्मग्रहण से यहाँ नहीं । लुनाति दात्रेण लावयति दातृं स्वयमेव । णौ चेतु ग्रहण समान क्रिया के लिये है । आरोहयमाणो हस्ती भीतान् सेचयति मूत्रेण । यत्स ग्रहण अनन्यकर्म के लिये है । आरोहयमाणो हस्ती स्थलमारोहयति मनुष्यान् । कर्त्ता ग्रहण इस लिये है कि आरोहन्ति हस्तिनं हस्तिपकास्तानमारोहयति महामात्रः । अनाध्यान ग्रहण से यहाँ न हुआ । अरयत्येनं वनगुहम् स्वयमेव । आगे कर्मकर्त्तृ प्रक्रिया लिखेंगे उसी के सहश उदाहरण इस सूत्र में दिये हैं सो कर्मकर्त्ता से आत्मनेपद हो जाता फिर विशेष यह है कि उस प्रक्रिया में जो आत्मनेपद होता है सो कर्मस्थभावक और कर्मस्थक्रिय धातुओं से होता है और यह सूत्र कर्त्तृस्थभावक और कर्त्तृस्थक्रिय धातुओं के लिये है । वैसे ही कर्त्तृस्थक्रिय रुह और कर्त्तृस्थभावक दृश धातु के उदाहरण दिये हैं ॥ ७०० ॥

७०१—गृध्रिवज्ज्योः प्रलभने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७६ ॥

प्रलभन अर्थात् झूठसाँच बकने अर्थ में वर्त्तमान णिजन्त गृध्र और वज्रु धातु से आत्मनेपद हो । माणवकं गर्धयते । माणवकं वक्षयते । प्रलभन ग्रहण से यहाँ

न हुआ । श्वानं गर्धयति । रोटी आदि से कुत्ते की इच्छा को उत्पादन करता है ।
अहिं वञ्चयति । सर्प को हर लेता है ॥ ७०१ ॥

७०२—मिथ्योपपदात्कजोऽभ्यासे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७१ ॥

वार २ काम करने में मिथ्या शब्द जिस के उपपद हो, उस णिजन्त कृज् धातु से परे आत्मनेपद हो । पदं मिथ्या कारयते । पद का वार २ मिथ्या उच्चारण कराता है । मिथ्या शब्द के ग्रहण से यहां न हुआ । पदं सुष्ठु कारयति । कृज् ग्रहण से यहां न हुआ । पदं मिथ्यावाचयति । अभ्यास ग्रह० । पदं मिथ्या कारयति । एक वार उच्चारण कराता है ॥ ७०२ ॥

७०३—अपाह्वदः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७३ ॥

क्रिया का फल जहां कर्ता के लिये हो वहां अप उपसर्ग से परे वद धातु से आत्मनेपद हो । धनकामी न्यायमपवदते । धन का लोभी न्याय को छोड़े हुए कहता है । जहां कर्तृगामी क्रिया फल नहीं है वहां । अपवदति । होगा ॥ ७०३ ॥

७०४—समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७५ ॥

अग्रन्थ अर्थ में सम् उद् और आङ् से परे यम धातु से आत्मनेपद हो जो क्रिया का फल कर्ता के लिये होतो । ब्रीहीन् संयच्छते । भारमुद्यच्छते । वस्त्रमायच्छते । अग्रन्थ ग्रहण से यहां न हुआ । वेदमुद्यच्छति । वेद आनि के लिये उद्यम करता है । उद्यच्छति विकित्तायां वैद्यः । कर्तृगामी ग्रहण से यहां न० । संयच्छति शिथ्यम् ॥ ७०४ ॥

७०५—अनुपसर्गाञ्जः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७६ ॥

क्रिया का फल कर्ता के लिये होतो उपसर्ग रहित ज्ञा धातु से आत्मनेपद हो । गांजानीते । अश्वंजानीते । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न० । स्वर्गं लोकं न प्रजानाति मूढः । कर्तृगामी फ० । देवदत्तस्य गांजानाति ॥ ७०५ ॥

७०६—विभाषोपपदेन प्रतीयमाने ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७७ ॥

समीपवर्ती पद के उच्चारण से कर्तृगामी क्रियाफल प्रतीत हो तो (स्वरितजित, अपाह्वदः, णिच०, समुदाङ्भ्योय०, अनुपस०,) इन सूत्रों से जो आत्मनेपद कहा है वह विकल्प करके हो । स्वं यज्ञं यजति । स्वं यज्ञं यजते । स्वं पुत्रमपवदते । स्वं पुत्रमपवदति । स्वं यज्ञं कारयति कारयते वा । स्वान् ब्रीहीन् संयच्छति । संयच्छते वा । स्वां गां जानाति । जानीते वा ॥ ७०६ ॥

इत्यात्मनेपदप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ परस्मैपदप्रक्रियारम्भः ॥

७०७—अनुपराभ्यां कृञः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ७६ ॥

अनु और परा उपसर्गों से परे कृञ् धातु से परस्मैपद हो । अनुकरोति । पराकरोति । कर्त्तृगामी क्रियाफल और गन्थनादि अर्थों में भी अनु और परा पूर्वक कृञ् से आत्मनेपद ही होता है ॥ ७०७ ॥

७०८—अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८० ॥

अभि, प्रति और अति उपसर्गों से परे क्षिप धातु से परस्मैपद हो । अभि-क्षिपति । प्रतिक्षिपति । अतिक्षिपति । इन से अन्यत्र । आक्षिपते ॥ ७०८ ॥

७०९—प्राड्वहः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८१ ॥

प्र से परे वह धातु से परस्मैपद हो । प्रवहति । प्र से अन्यत्र । आवहते ॥ ७०९ ॥

७१०—परिमृषः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८२ ॥

परि पूर्वक मृष धातु से परस्मैपद हो । परिमृष्यति । अन्यत्र प्रामृष्यते ॥ ७१० ॥

७११—व्याङ्परिभ्यो रमः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८३ ॥

वि, आङ् और परि उपसर्ग से परे रम धातु से परस्मैपद हो । विरमति । आरमति । परिरमति । अन्यत्र । अभिरमते ॥ ७११ ॥

७१२—उपाञ्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८४ ॥

उप पूर्वक रम धातु से परे परस्मैपद हो । उपरमति । यह सूत्र अलग जो क्रिया है इस से जानना चाहिये कि अगले सूत्र में उप उपसर्ग से ही अकर्मक रम धातु से परस्मैपद होगा ॥ ७१२ ॥

७१३—विभाषाऽकर्मकात् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८५ ॥

उपपूर्वक अकर्मक रम धातु से परे विकल्प करके परस्मैपद हो । उपरमति । उपरमते । निवृत्ति का प्राप्त होता है ॥ ७१३ ॥

७१४—बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुसुभ्यो णोः ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८६ ॥

बुध, युध, नश, जन, इङ् प्रु, द्रु और सु इन णिजन्त धातुओं से परे लकार के स्थान में परस्मैपद हो । बोधयति । योधयति । नाशयति । जनयति । अध्यापयति । प्रावयति । द्रावयति । स्त्रावयति । बुध आदि धातुओं में जो अकर्मक हैं उन का ग्रहण अचित्तवत् कर्त्तृकों के लिये है क्योंकि चित्तवत् कर्त्तृकों से “अणावकर्म०”, इस सूत्र से परस्मैपद सिद्ध है और चलनार्थक धातुओं में “निगरणचलनार्थेभ्यश्च”, इस सूत्र से परस्मैपद सिद्ध है फिर चलनार्थ से अन्यत्र भी परस्मैपद होने के लिये है ॥ ७१४ ॥

७१५—निगरणचलनार्थेभ्यश्च ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८७ ॥

भोजन और कम्पन अर्थ वाले निगन्त धातुओं से परस्मैपद हो । निगारयति निगालयति वा । भोजन कराता है । चलयति । चोषयति । कम्पयति । यह भी सूत्र सकर्मक और अचित्तवत् कर्तृको के लिये है । अस्ति ब्रह्मदत्तः । आदयते । देवदत्तेन । यहां इस से परस्मैपद प्राप्त है उस का निषेध (कारकीय वा०—३३) इस से है ॥ ७१५ ॥

७१६—अण्वावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात् ॥ अ० ॥ १ । ३ । ८८ ॥

अण्यन्त अवस्था में जो अकर्मक और चित्तवान् कर्ता वाला धातु हो उस अण्यन्त से परस्मैपद हो । आस्ते बालः । आसीनं बालं माता प्रयोजयति इति माता बालमासयति । स्नापयति । शाययति । अण्यन्त अवस्थाग्रहण से यहां न हुआ । आरोह्यमाणं प्रयोजति, आरोहयते । अकर्मकग्रहण से यहां न हुआ । कटंकुर्वाणं प्रयोजयति कारयते । चित्तवत्कर्ता से अन्यत्र । शुष्यन्ति व्रीहयः, शोषयति । व्रीहीनातपः ॥ ७१६ ॥

७१७—न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहृचिनृतिवदवसः

॥ अ० ॥ १ । ३ । ८९ ॥

पा, दमि, आङ्यम, आङ्यस, परिमुह, रुचि, नृति, वद और वस इन अण्यन्त धातुओं से परस्मैपद न हो (अण्वाव०, निगरण०) पूर्वोक्त इन दो सूत्रों से जो परस्मैपद प्राप्त है उस का निषेध किया है । पाययते । दमयते । आयासयते । आयासयते । परिमोहयते । रोचयते । नर्त्तयते । वादयते । वासयते । यहां ऐसा जानना चाहिये कि पा आदि धातुओं से कर्तृगामी क्रियाफल में यह निषेध है और परगामी क्रियाफल में तो (शिषात्कर्त्तरि०) इस से परस्मैपद होता ही है । वक्तान् पयः पाययति ॥ ७१७ ॥

७१८—वा०—पादिषु घेट उपसंख्यानम् ॥

इन पा आदिधातुओं में घेट धातु को भी पढ़ना चाहिये । धापयेते

शिशुमेकं समीची ॥ ७१८ ॥

इति परस्मैपदप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ भावकर्मप्रक्रियाऽऽरम्भः ॥

भाव, भावना क्रिया को कहते हैं। यह सब धातुओं से अपने २ धात्वर्थ को ले कर कहा जाता है। उस का अनुवाद भाववाची लकार से होता है। युष्मद् और अस्मद् से समानाधिकरण का अभाव है इस से यहां प्रथम पुरुष होता है। तथा तिङ् प्रत्ययवाच्य भाव अद्रव्य है इस से भाव में द्विवचन और बहुवचन की प्रतीति नहीं होती इस लिये भाव में द्विवचन और बहुवचन नहीं होते हैं किन्तु एकवचन होता है। क्यों कि वह द्विवचनादिकों का उत्सर्गमात्र है। अब प्रथम पुरुष के परस्मैपद वा आत्मनेपद में कौन होना चाहिये इस विषय में (६२३) सूत्र से आत्मनेपद विधान कर चुके हैं सो यहां भाव में प्रथम पुरुष का आत्मनेपद एकवचन होगा जैसे। भू+त। इस अवस्था में ॥

७१६ - सार्वधातुके यक् ॥ अ० ॥ ३।१।६७ ॥

भावकर्मवाची सार्वधातु परे हो तो धातु से यक् प्रत्यय हो। भू+यक्+ते। भूयते देवदत्तेन। वभूवे ॥ ७१६ ॥

७२० - स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽजन्त

ग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च ॥ अ० ॥ ६।४।६२ ॥

भावकर्म विषय में स्य, सिच्, सीयुट् और तासि परे होते उपदेश में अजन्त, घन, ग्रह और दृश अङ्गीको विकल्प करके चिण्वत् कार्य और इट् का आगम हो। यहां चिण्वद्भाव का विकल्प होने से जिस पक्ष में चिण्वत्कार्य होता है। वही इट् भी जानो। चिण् णित् है इस से जो २ कार्य णित् प्रत्ययों में होते हैं वेही स्यआदि के परे भी हो जावे। भाविता। यहां चिण्वत् कार्य ठहरी होती है। भविता। भाविष्यते। भविष्यते। भाविष्यते। भाविष्यते। भविष्यते। भविष्यते। भूयताम्। अभूयत। भूयेत। भाविषीष्ट। भविषीष्ट ॥ ७२० ॥

७२१ - चिण् भावकर्मणोः ॥ अ० ॥ ३।१।६६ ॥

भावकर्मवाची त शब्द परे होतो चि के स्थान में चिण् आदेश हो। अभवि। अभविष्यत। अभविष्यत। अनुपूर्वक भूधातु सकर्मक हो जाता है। अनुभूयते। चैवेण त्वया मया वा आनन्दः। यहां आनन्द अनुपूर्वकभूधातु का कर्म है। उस आनन्द कर्म में लकारादि प्रत्यय के होने से उस से द्वितीया विभक्ति नहीं होती क्योंकि वह अनभिहित नहीं रहा। अनुभूयते। अनुभूयन्ते। त्वमनुभूयसे। ग्रह मनुभूये। अनुभवूवे। त्वमनुभावितासे। अनुभवितासे। इत्यादि। अन्वभावि। अन्वभाविष्यताम्। अन्वभविष्यताम्। णिजन्त से भावकर्म में यक्। भाव्यते।

भावयाञ्चके । भावयास्वभूवे । भावयामासे । भाविता । यहां चिण्वद्भाव में इट् को (४२) सूत्र से असिद्ध मान के (१७७) सूत्र से णिलोप हो जाता है । और जहां चिण्वद्भाव नहीं है वहां । भावयिता । भाविष्यते । भावयिष्यते । भाव्यताम् । अभाव्यत । भाव्येत । भाविषीष्ट । भावयिषीष्ट । अभावयिषाताम् । अभावयिषाताम् । सन्नन्त से भावकर्म । बुभूष्यते । बुभूषाञ्चके । बुभूषिता । बुभूषिष्यते । यङन्त से भावकर्म । बोभूष्यते । यङ्लुगन्त से भावकर्म । बोभूष्यते । बोभवाञ्चके । बोभाविता । बोभाविता । स्तूयते परमात्मा । तुष्टुवे । स्ताविता । स्तोता । स्ताविष्यते । स्तोष्यते । अस्तावि । अस्ताविषाताम् । अस्तोषाताम् । अर्यते (२५४) से गुण० । स्मर्यते । सस्मरे । स्मारिता । यहां परत्व और नित्यत्व मान कर प्रथम गुण तथा गुण को रपर करने से ऋ धातु अजन्त न भी है तथापि (स्यसिच्०) इस सूत्र में जो उपदेशग्रहण है इस से उस को चिण्वद्भाव और तत्संनियोग इट् होता है । अर्त्ता । स्मारिता । स्मर्त्ता । संस्क्रियते । यहां (२५४) इस सूत्र से संयोगादित्व मान कर ऋकार को गुणादेश नहीं होता है । क्यों कि । यह संयोग सुट् से हुआ है । सुट् वहिरङ्ग वा क्त का अभक्त होने से असिद्ध है । स्रस्यते । यहां (१३८) इस से नकार का लोप हुआ । नन्यते । यहां इदित् मान कर नकार का लोप न हुआ । इज्यते । यहां (३८३) इस से संप्रसारण हुआ । श्रय्यते । यहां (५५१) से अयङ् आदेश हुआ ॥ ७२१ ॥

७२२—तनोतेर्यकि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४४ ॥

यक् प्रत्यय परे ही तो तनोति धातु को आकारादेश विकल्प करके होवे । तायते । तन्यते । जन धातु को आकारादेश विकल्प (१८५) से होता है । जायते । जन्यते ॥ ७२२ ॥

७२३—तपोऽनुतापे च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६५ ॥

कर्म कर्त्ता और अनुताप अर्थ में तप धातु से परे चि के स्थान में चिण् आदेश न हो । अनुताप (पकृतावे) को कहते हैं । सो भावकर्मप्रक्रिया में ही चिण् निषेध होने के लिये अनुतापग्रहण है । अन्वतम पापेन पापः कर्त्ता । यह भावकर्म का उदाहरण है । कर्मकर्त्ता का उदाहरण कर्मकर्त्तृप्रक्रिया में लिखे गे । दीयते । धीयते (३४६) इस सूत्र से ईकारादेश० ॥ ७२३ ॥

७२४—आतो युक् चिण्वक्तोः ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ३३ ॥

जित् णित् क्त और चिण् परे ही तो आदन्त अङ्ग को युक् आगम हो । दायिता । दाता । धायिता । धाता । दायिषीष्ट । दाषीष्ट । अदायि । अदायिषाताम् ।

अदिषाताम् । अधादिषाताम् । अधिषाताम् । ग्लायते । ग्लायते । जग्ले । मग्ले । यहाँ (२४२) सूत्र के अशित् शब्द में जो कर्मधारय समास मान कर इत्संज्ञक प्रकारादि प्रत्यय के परे निषेध किया है उस से एण् आदि प्रत्ययों में आदि शित् न होने से आत्व निषेध नहीं होता है। ग्लायिता । ग्लायता । अग्लायि । अग्लायिषाताम् । अग्लायिताम् । हन्यते । घानिता । यहाँ (५०२) से तकारादेश नहीं होता । क्योंकि वहाँ चिण् विभक्त में निषेध है । हन्ता । घानिष्यते । हनिष्यते । हन्यते । हन्यते । हन्यते । हन्यते । हन्यते । घानिषते । घानिषते । घानिषते । घानिषते । हनिषते । हनिषते । हनिषते । हनिषते । घानिषीष्ट । यहाँ (३०८) से वध आदेश न हुआ । क्योंकि सीयुट् के परे विशेष विधान से चिण्वद्भाव वध आदेश का अपवाद है । वधिषीष्ट । अधानि । अधानिषाताम् । अहसाताम् । दूसरे पक्ष में अवधि । अवधिषाताम् । अवानिष्यत । अवनिष्यत । गृह्यते । ग्राहिता । यहाँ (४५५) इस से इट् को दीर्घादेश न हुआ । क्योंकि उस प्रकरण में जो वलादि लक्षण इट् होता है उसी दीर्घ विधि में इट् का ग्रहण है । ग्रहीता । ग्राहिष्यते । ग्रहिष्यते । ग्राहिषीष्ट । ग्रहीषीष्ट । अग्राहि । अग्राहिषाताम् । दृश्यते । अदर्शि । अदर्शिषाताम् । अट्छाताम् । यहाँ सिच् के कित्त्व होने से (२७८) अम् न हुआ । गौर्यते । जगरि । जगले । गारिता । गालिता । गरीता । गलीता । गरिता । गलिता । गारिष्यते । गारिषते । गारिषाते । गालिषते । गालिषाते । गरीषते । गरीषाते । गलीषते । गलीषाते । गरिषते । गरिषाते । गलिषते । गलिषाते । गारिषते । गारिषाते । गालिषते । गालिषाते । गरीषते । गरीषाते । गलीषते । गलीषाते । गरिषते । गरिषाते । गलिषते । गलिषाते । गौर्यते । गौर्यते । गौर्यते । गौर्यताम् । अगौर्यत । गौर्यत । गारिषीष्ट । गालिषीष्ट । गरिषीष्ट । यहाँ (४२१) इस से दीर्घ न हुआ । गौर्यीष्ट । यहाँ (४२०) से इट् विकल्पः अगारि । अगारिषाताम् । अगरिषाताम् । अगौर्यताम् । अगारिष्वम् । अगरीष्वम् । अगरिष्वम् । अगालिष्वम् । अगलीष्वम् । अगलिष्वम् (४२२) से लत्व विकल्पः । अगारिद्वम् । अगरीद्वम् । अगरिद्वम् । अगालिद्वम् । अगलीद्वम् । अगलिद्वम् (१२१) से मूर्द्धन्यादेशवि० । इट् के अभाव पक्ष में अगौर्द्वम् । यहाँ (२४०) से सिच् कित् (१०८) से नित्य ढत्व० । हेतुमत् णिजन्त से कर्म में लकार० । शस्यते मोही गुरुणा ॥ ७२४ ॥

७२५-चिन्मासुलोदीर्घान्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६३ ॥

विष्णु और एमुल् पर होता मित् अङ्गों को उपधा को विकल्प करके दीर्घ हो । शमिता । शमिता । शमयिता । शमिष्यते । शमिष्यते । शमयिष्यते । जहाँ शिजन्त न है वहाँ भाव में लकार हींगे । शम्यते मुनिना ॥ ७२५ ॥

७२६—नोदात्तोपदेशस्यमान्तस्याऽनाचमेः ॥ अ० ॥ ७।३।३४ ॥

चिण् और जित् णित् कृत् परे हो तो आङ्पूर्वक चम् वर्जित मकारान्त अङ्ग की उपधा की वृद्धि न हो। अगमि। अदमि। उदात्तोपदेशग्रहण से यहां न हुआ। अगामि। मान्तग्रहण से यहां न हुआ। अवादि। अनाचम्यग्रहण से यहां न हुआ। आचामि ॥ ७२६ ॥

७२७—वा०—अनाचमिकसिवसौनामिति वक्तव्यम् ॥

(अनाचमि) यहां आचम्, कम्, वम् इन अङ्गों को निषेध कहना चाहिये अर्थात् चिण् और जित् णित् कृत् परे हों तो उक्त सब अङ्गों की उपधा की वृद्धि न हो। अकामि। अवामि। अजागारि। यहां (३६२) से गुण न हुआ क्योंकि चिण् के परे निषेध है ॥ ७२७ ॥

७२८—भञ्जेश्च चिणि ॥ अ० ॥ ६।४ ॥ ३३ ॥

चिण् परे हो तो भञ्ज धातु के नकार का लोप विकल्प कर के हो। अभञ्जि। अभञ्जि ॥ ७२८ ॥

७२९—विभाषा चिस्समुलोः ॥ अ० ॥ ७।१।६९ ॥

चिण् और णमुल् परे हो तो लभ धातु को नुमागम विकल्प कर के हो। अलम्भि। द्विकर्मक। गौर्दुह्यते पयः। इत्यादिकों में अप्रधान कर्म में लकार होते हैं। तथा अजानौयते ग्रामम्। इत्यादि की में प्रधान कर्म में लकार होते हैं। यह निर्णय “कारकीय,, ग्रन्थ के (२०) सूत्र के व्याख्यान में कर चुके हैं ॥ ७२९ ॥

॥ इति भाषकर्मप्रक्रियासमाप्ता ॥

अथ कर्मकर्तृप्रक्रियारम्भः ॥

जब काम के अत्यन्त अच्छे प्रकार होने रूप अर्थ को प्रकट करने के लिये कर्त्ता का क्रिया करना न कहा जाय तब अन्य कारक भी कर्त्तृ संज्ञा को प्राप्त होते हैं। क्योंकि वे अपने २ विषय में स्वतंत्र हैं। और स्वाधीन व्यापार वाले को कर्त्ता संज्ञा भी होती है। इस कारण प्रथम करण आदि संज्ञा होती भी हैं तथापि उन कारकों के स्वतंत्र होने से कर्त्तृ संज्ञा ही कर उस कर्त्ता में भी लकार होते हैं। करण, देवदत्तोऽसिना छिनत्ति, छिन्दतो देवदत्तस्यासिः स्वयमेव छिनत्ति। देवदत्त तलवार से काटता है काटते हुए देवदत्त की तलवार आप ही काटती है। देवदत्तः काष्ठैः पचति पचतो देवदत्तस्य काष्ठानि साधु पचन्ति। देवदत्तः स्यात्वां

पचति पचतो देवदत्तस्य स्थाली स्वयमेव पचति। और जब कर्म को कर्तृत्व विवक्षा होती है तब प्रथम से सकर्मक भी धातु प्रायः अकर्मक हो जाते हैं। और उन से भाव वा कर्ता में लकार होते हैं। जैसे भाव में। देवदत्त ओदनं पचति, पचतो देवदत्तस्य, ओदनेन स्वयमेव पचते। भिद्यते काष्ठेन। और कर्ता में तो ॥

७३०—कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः ॥ अ० ॥ ३।१।८७ ॥

जिस की कर्मस्थ क्रिया के तुल्य क्रिया है वह कर्ता कर्मवत् हो। यहां कार्यातिदेश अर्थात् कर्म विषयक काम कर्ता में भी हैं। इस का प्रयोजन यह है कि यक्, आत्मनेपद, चिण्, और चिण्वद्भाव भी होवे। देवदत्तः काष्ठं भिनत्ति, भिन्दतो देवदत्तस्य काष्ठं स्वयमेव भिद्यते। देवदत्त ओदनं पचति, पचतो देवदत्तस्य ओदनः स्वयमेव पचते। अभेदि काष्ठं स्वयमेव, अपाच्योदनः स्वयमेव। पाचिष्यते ओदनः स्वयमेव वत् ग्रहण करने से साधुन कार्य भी होते हैं। भिद्यते कुसुलेन। यहां स्वात्रय कार्य भाव में लकार हुआ है। कर्मणा, ग्रहण इसलिये है कि कारण और अधिकरण के तुल्य क्रिया कर्ता को कर्मवद् भाव न हो। जैसे साध्वसि-शब्द नत्ति। साधु स्थाली पचति। इस प्रकरण में धातु का अधिकार है इस से एकही धातु में कर्मवद् भाव होता है किन्तु। पचत्योदनं देवदत्तः, राधत्योदनः स्वयमेव। यहां न हुआ। इस सूत्र से कर्मस्थभावक और कर्मस्थक्रिय धातुओं का कर्ता कर्मवत् होता है। किन्तु कर्तृस्थ भावक तथा कर्तृस्थ क्रिय धातुओं का कर्ता कर्मवत् नहीं होता जैसे कर्तृस्थभावों में। देवदत्तः शास्त्रं चिन्तयति। शास्त्रचिन्तयतो देवदत्तस्य शास्त्रं स्वयमेव चिन्तयति। अमात्यो राजानं मन्त्रयते। मन्त्रयमानस्यामात्यस्य राजा स्वयमेव मन्त्रयते। कर्तृस्थक्रियों में। गच्छति ग्रामं देवदत्तः। ग्रमंगच्छतो देवदत्तस्य ग्रामः स्वयमेव गच्छति। आरोहति हस्ती स्वयमेव। कर्मस्थभावकी में। शिते बालः शयानं बालं जनकः प्रयोजयति, जनको बालं शाययति। शाययतो जनकस्य बालः स्वयमेव शायते। यहां सोना रूप भाव कर्मस्थ है। जहां कर्म में क्रिया क्त विशेष देख पड़े वह कर्मस्थक्रिय होता है जैसे फटी हुई लकड़ियों में काटना रूप क्रिया प्रत्यक्ष देख पड़ती है। इस से भिदधातु कर्मस्थ क्रिय है ॥ ७३० ॥

७३१—तपस्तपःकर्मकस्यैव ॥ अ० ॥ ३।१।८८ ॥

सकर्मकी में तपः कर्मवाले ही तप धातु का कर्ता कर्मवत् हो यह सूत्र निय

* “कर्मवत्” सूत्र में “वत्” की छोड़ के “कर्मकर्मणा”, कहने से तुल्य क्रिया कर्ता की कर्म संज्ञा ही कर उन की कर्माय कार्य ही होते किन्तु जो कर्म का कर्तृत्व विवक्षा करने से सकर्मक धातु अकर्मक हो कर उन से भाव में लकार होते हैं वे न होते। वत्करण करने से तो कर्मकी तुल्यता हो कर स्वात्रय कार्य भी होते हैं।

मार्थ है कि सकर्मक धातुओं को कर्मवद् भाव हो तो तपधातु ही कोहो । सो भी तपः कर्म वाले ही तप धातु को हो । किन्तु और कर्म वाले को नहो । वेदव्रतादीनि तपांसि तापसं तपन्ति स तापसस्त्वगस्थिभूतः स्वर्गाय तपस्तप्यते । वेदव्रत आदि तप तापस अर्थात् तपस्या कहने वाले को संताप देते हैं वह तापस अत्यन्त सुख के लिये तप को यज्ञ में सिद्ध करता है । पिछले सूत्र से कर्मवद्भाव न प्राप्त था इस से विधान किया । अन्वतप्त तपस्तापसः । यहां (७२४) इस से चिण् निषेध हो कर सिच् हो जाता है । तपःकर्मक ग्रहण करने से यहां न हुआ । उत्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः । कारकः कटं करोति कुर्वतस्तस्य कटः स्वयमेव क्रियते ॥ ७३१ ॥

७३२—अचः कर्मकर्त्तारि ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६२ ॥

कर्मकर्त्ता में तश्च परे ही तो अजन्त धातु से परे चि को चिण् आदेश हो । अकारि कटः स्वयमेव । अकृत कटः स्वयमेव । कृषीवलः केदारं लुनीने लुनतस्तस्य-केदारः स्वयमेव लूयते । अलविष्ट केदारः स्वयमेव (अचः) इस ग्रहण से यहां न हुआ । अमेदि काष्ठं स्वयमेव । कर्मकर्त्तृ ग्रहण से यहां न हुआ । अकारि कटो देवदत्तेन गोपालो गां व्रजमन्ववरुणश्चि, रन्धतस्य गौः स्वयमेवान्ववरुण्यते ॥ ७३२ ॥

७३३—न रुधः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६४ ॥

रुधि धातु से परे कर्मकर्त्ता में चि के स्थानमें चिण् आदेश न हो । अन्व वारुणश्चि गौः स्वयमेव । कर्मकर्त्ता ग्रहण से यहां न हुआ । अन्ववारोधि गौर्गोपालेन ७३३ ॥

७३४—वा०—दुहिप्रच्योर्वहुलं सकर्मकयोः ॥

सकर्मक दुह और पच धातु का कर्त्ता बहुल करके कर्मवत् हो ॥ ७३४ ॥

७३५—न दुहसुनमां यक्चिणौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८६ ॥

दुह, सु और नम् इन धातुओं के कर्मवद्भाव—में यक् और चिण् न हो । इस से दुह धातु से यक् का प्रतिषेध है । और चिण् तो विकल्प से कहेंगे । गोपालो गां पयो दोग्धि दुहतस्तस्य गौः पयः स्वयमेव दुग्धे ॥ ७३५ ॥

७३६—दुहस्य ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६३ ॥

दुह धातु से परे कर्मकर्त्ता में विकल्प करके चि को चिण् आदेश हो । अदुग्ध गौः पयः स्वयमेव । कर्मकर्त्ता ग्रहण से । अदोहि गौर्गोपालेन । ऋतुरुदुंबरं सलोहितं फलं पचति पचतस्तस्योदुम्बरः स लोहितं फलं पच्यते । प्रसूते गौः स्वयमेव । प्रास्त्रीष्ट गौः स्वयमेव । नमतदण्डः स्वयमेव । अनस्त दण्डः स्वयमेव ॥ ७३६ ॥

७३७—वा०—सृजियुज्योःश्यञ्च ॥

सकर्मक सृज् और युज् धातु का कर्त्ता बहुल करके कर्मवत् और श्यन् हो । यह श्यन् यक् प्रत्यय का अपवाद है ॥ ७३७ ॥

७३८—वा०—सृजेऽद्योपपन्ने कर्त्तरि कर्मवद्भावो वाच्यः
श्चिणात्मनेपदार्थः ॥

अहायुक्त कर्त्ता में सृज धातु की कर्मवद्भाव कहना चाहिये । चिण् और आत्मनेपद होने के लिये । सृज्यते मालाम् । अद्वा से माला बनाता है । असृजि मालाम् । अद्वा से माला बनालिई । युज्यते ब्रह्मचारौ योगम् ॥ ७३८ ॥

७३९—वा०—भूषाकर्मकिरादिसनां चान्यत्रात्मनेपदात् ॥

भूषण अर्थवाले, किरादि और सन्नत धातुओं की आत्मनेपद से अन्यत्र प्रतिषेध कहना चाहिये । अर्थात् उन को यक्, चिण् और चिण्वद्भाव नहीं । और आत्मनेपद ही । भूषार्थ में माता कन्या भूषयति, कन्या भूषयत्या मातुः कन्या स्वयमेव भूषयते । अनुवुभूषत कन्या स्वयमेव । मण्डयते कन्या स्वयमेव । अममण्डत कन्या स्वयमेव । अलं कुर्वते कन्या स्वयमेव । अलमकृत कन्या स्वयमेव । किरादि अवकिरते हस्ती स्वयमेव । अवाकीर्ष्ट हस्ती स्वयमेव । गौर्यते ग्रासः स्वयमेव । अवगौर्यते ग्रासः स्वयमेव । चिकीर्षते कटः स्वयमेव । अचिकीर्ष्ट कटः स्वयमेव । यहां इच्छा कर्त्तृस्थ भी है तथापि करोति क्रिया की अपेक्षा लेकर कर्मस्थ क्रिया जाननी चाहिये क्योंकि करोति प्रधान है और इच्छा तो करोति के आधीन है किन्तु स्वतंत्र नहीं है ॥ ७३९ ॥

७४०—वा०—यक्चिणोः प्रतिषेधे हेतुमसिश्चिब्रूजा-
मुपसंख्यानम् ॥

यक् और चिण् के प्रतिषेध में हेतुमान् णि, श्चि, और ब्रूज् इन का उपसंख्यान करना चाहिये । णि । कारयते कटः स्वयमेव । श्चि । उच्छ्रयते दण्डः स्वयमेव । उद-
शिश्चियत दण्डः स्वयमेव । ब्रूज् । ब्रूते कथाः स्वयमेव । अबोचत कथाः स्वयमेव ॥ ७४० ॥

* यहां सायणिच् मानकर भूषार्थकों के प्रतिषेध में भूषयते, इत्यादि उदाहरण महाभाष्यकारने दिये हैं क्योंकि "यक्चिणोः प्रतिषेधे", इस वार्तिक से केवल हेतुमत् णिच् से प्रतिषेध है । और भारद्वाजौय जी णिमात्र से प्रतिषेध पढ़ते हैं वह उर्द्धा का मत है । इस चिर्वे सर्व संमत से खल, अखल दोनों पक्षों में "भूषाके", इस वार्तिक में भूषार्थकों का ग्रहण किया है अन्यथा महाभाष्यकार का भूषयते कन्या स्वयमेव । इत्यादि उदाहरण देना व्यर्थ हो इस से यहां केवटने जी भूषार्थकों का ग्रहण अण्वन्ती ही के लिये माना है यह उन का व्याख्यान असंगत है ॥

७४१—वा०—भारद्वाजीयाः पठन्ति—यक्चिणोः

प्रतिषेधे णिअन्थिग्रन्थिब्रूजात्मनेपदाकर्मकाणामुपसंख्यानम् ॥

पुक्कमुदस्यति, उत्पुच्छयते गौः । अन्तर्भावितख्यर्थ मान कर गामुत्पुच्छयते । यह व्यवस्था होगी । फिर कर्तृत्व अपेक्षा में । उत्पुच्छयते गौः होगी । उदपुप्पुच्छता । यहां यक् और चिण् के प्रतिषेध से शप् और चङ् होते हैं । अन्थि और ग्रन्थ के आष्टवीयत्व होने से णिच् के अभाव पञ्च के लिये इन का ग्रहण है । ग्रन्थते ग्रन्थमाचार्यः । अन्थते मेखलादेवदत्तः । ग्रन्थते ग्रन्थः स्वयमेव । अन्थते मेखला स्वयमेव । अग्रन्थिष्ट । अग्रन्थिष्ट । विकुर्वते * सैन्धवाः । फिर अन्तर्भावितख्यर्थ के प्रयोजनांश त्याग किये से । विकुर्वते सैन्धवाः स्वयमेव होगी । व्यकारिष्ट । व्यकारिषाताम् । व्यकारिषत । यहां से चिण्वद्भावः । व्यक्तत । व्यक्तषाताम् । व्यक्तषत ॥ ७४१ ॥

७४२—कुषिरञ्जोः प्राचां श्यन् परस्मैपदं च ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६० ॥

प्राचीन आचार्यों के मत से कुष और रञ्ज धातु को कर्मवद्भाव में श्यन् प्रत्यय और परस्मैपद हो । किन्तु यक् आत्मनेपद न हों । कुष्यति, कुष्यते वा पादः स्वयमेव । रज्यति रज्यते वस्त्रं स्वयमेव । यह प्राचां ग्रहण विकल्प के लिये है । और वह व्यवस्था से माना जाता है इस से लिङ्, लुङ्, लिट् और स्यादि विषय में यह सूत्र नहीं प्रवृत्त होता । चुकुषे पादः स्वयमेव । ररंजे वस्त्रं स्वयमेव । कोषिषीष्ट पादः स्वयमेव । रङ्लीष्ट वस्त्रं स्वयमेव । कोषिष्यते पादः स्वयमेव । रङ्ज्यते वस्त्रं स्वयमेव । अकोषि पादः स्वयमेव । अरञ्जि वस्त्रं स्वयमेव ॥ ७४२ ॥

इति कर्मकर्तृप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ लकारार्थप्रक्रिया प्रारम्भः ॥

७४३—अभिज्ञावचने लृट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११२ ॥

अभिज्ञावचन अर्थात् स्मृतिबोधक उपपद ही तो धातु से लृट् प्रत्यय ही । यह लृट् का अपवाद है । अभिजानासि वत्त कश्मीरेषु वत्स्यामः । स्मरसि बुध्यसे चेतयसे वा मित्र काश्यां पठिष्यामः ॥ १४३ ॥

७४४—नयदि ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११३ ॥

यत् शब्द सहित अभिज्ञावचन उपपद ही तो लृट् प्रत्यय न ही । अभिजानासि देवदत्त यत्कश्मीरेष्ववसामः । यहां निवास मात्र का स्मरण है । इस से यह अगले सूत्र का विषय नहीं है ॥ ७४४ ॥

७४५—विभाषासाकाङ्क्षे ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११४ ॥

अभिज्ञावचन उपपद ही और यत् शब्द उपपद ही वान ही तो धातु से विक-
ल्प करके लट् ही साकाङ्क्ष अर्थ में। अभिजानासि देवदत्त कश्मीरेषु वक्ष्यामः।
तत्र सक्तून् पास्यामः। अभिजानासि देवदत्त कश्मीरेष्ववसाम तत्र सक्तून्पिष्याम।
यद् अभिजानासि देवदत्त यत्कश्मीरान् गमिष्यामः यत्कश्मीरानगच्छाम। यत्तत्रौदनं
भोक्ष्यामहे यत्तत्रौदनमभुञ्जमहि। अयद्। अभिजानासि देवदत्त कश्मीरान्गमि-
ष्यामः। कश्मीरानगच्छाम तत्रौदनं भोक्ष्यामहे तत्रौदनमभुञ्जमहि। लक्ष्य और
लक्षण के संबन्ध से वक्ता की आकाङ्क्षा होती है। उक्त उदाहरणों में निवास और
गमन लक्षण है और पान भोजन लक्ष्य हैं (२६) से लिट् विधान कर चुके हैं वहां
उत्तम पुरुष के विषय में विशेष कहते हैं। सुप्तमत्तयोरुत्तमः। महाभा० ३।२।११५।
सुप्त और मत्त के विषय में पारोक्ष्य भाव से उत्तम पुरुष होता है। सुप्तोहं किल-
विललाप। सुप्तोन्वहं किल विललाप। मत्तोन्वहं किल विललाप ॥ ७४५ ॥

७४६—वा०—परोक्षेलिट्यन्तापङ्गवे च ॥

परोक्षेलिट् यहां अत्यन्त अप्रवृत्त अर्थात् मिथ्यापन में भी लिट् कहना चाहिये
नो खण्डिकाञ् जगाम। नो कलिङ्गाञ् जगाम ॥ ७४६ ॥

७४७—ह्रस्वतोर्लङ् च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११६ ॥

भूत अनद्यतन परोक्ष अर्थ में ह्र और शस्वत् शब्द उपपद ही तो धातु से लङ् और
लिट् ही। इति ह्र अकरोत् इतिह चकार। शस्वदकरोत्। शस्वच्चकार ॥ ७४७ ॥

७४८—प्रश्ने चासन्नकाले ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११७ ॥

समीप काल के पूछने में जो भूतअनद्यतन परोक्ष है उस अर्थ में धातु से लङ्
और लिट् ही। अगच्छत् किं देवदत्तः। जगाम किं देवदत्तः। कोई किसी से पू-
छता है कि क्या देवदत्त गया। प्रश्न ग्रहण से। जगाम देवदत्तः। यहां नहुआ
आसन्न काल से अन्यत्र। भवन्तं पृच्छामि। जवान कंसं किल वासुदेवः ॥ ७४८ ॥

७४९—लट् स्म ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११८ ॥

भूत अनद्यतन परोक्ष काल में स्म उपपद ही तो धातु से लट् प्रत्यय ही।
यजति स्म युधिष्ठिरः। स्म से अन्यत्र। इयाज युधिष्ठिरः ॥ ७४९ ॥

७५०—अपरोक्षे च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११९ ॥

भूत अनद्यतन अपरोक्ष काल में भी स्म उपपद ही तो धातु से लट् ही। एवं
पिता ब्रवीति स्म ॥ ७५० ॥

७५१—ननौ पृष्टप्रतिवचने ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२० ॥

प्रश्न के उत्तर देने अर्थ में भूतकाल में वर्तमान धातु से लट् प्रत्यय हो। अकार्षीः किं ननु करोमि भोः। प्रवोचस्तत्र किं देवदत्त ननु ब्रवीमिभो। पृष्टप्रतिवचन से अन्यत्र। नन्वकार्षीन्माणवकः ॥ ७५१ ॥

७५२—नन्वोर्विभाषा ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२१ ॥

न और नु उपपद हों तो प्रश्न के उत्तर देने में भूतकाल में वर्तमान धातु से विकल्पकरके लट् हो। अकार्षीः किं। न करोमि। नाकार्षं वा। नु करोमि। न्वकाकार्षं वा ॥ ७५२ ॥

७५३—पुरि लुङ् चास्मे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२२ ॥

स्मरहित पुरा शब्द उपपद हो तो भूत अनद्यतन काल में धातु से विकल्प करके लुङ् और लट् हों। वसन्तीह पुरा छात्राः। अवात्सुरिह पुरा छात्राः। पक्ष में यथाप्राप्त हों। अवसन्निह पुरा छात्राः। ऊपुरिह पुरा छात्राः। अस्मग्रहण से यहां लुङ् न हुआ। धर्मेण स्म पुरा कुरवी युध्यन्ते ॥ ७५३ ॥

७५४—यावत्पुरानिपातयोर्लट् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४ ॥

निपात संज्ञक यावत् और पुरा शब्द उपपद हों तो भविष्यत्काल में धातु से लट् प्रत्यय हो। यावदभुङ्क्ते। पुरा भुङ्क्ते। निपातग्रहण से यहां न हुआ। यावदास्यति तावन्नोच्यते। पुरा यास्यति। यहां पुरा, तृतीया का एकवचन है ॥ ७५४ ॥

७५५—विभाषा कदाकर्होः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५ ॥

कदा और कर्हि शब्द उपपद हों तो भविष्यत्काल में धातु से विकल्प करके लट् प्रत्यय हो। कदा भुङ्क्ते। कर्हि भुङ्क्ते। कदाभोच्यते। भोक्ता। कर्हि भोच्यते। भोक्ता ॥ ७५५ ॥

७५६—किंष्टत्ते लिप्सायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६ ॥

किं शब्द का प्रयोग उपपद हो तो भविष्यत्कालिक धातु से लाभ की इच्छा अर्थ में विकल्प करके लट् प्रत्यय हो। कं कतरं कतमं वा ददासि। दास्यति। दातासि वा। कीई लाभ की इच्छा वाला पूछता है कि तुम किस को दोगे। लिप्सा अर्थ से अन्यत्र। कः पाटलिपुत्रं गमिष्यति ॥ ७५६ ॥

७५७—लिप्समानसिद्धौ च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७ ॥

अभीष्टपदार्थ से सिद्धि गम्यमान हो तो भविष्यत्काल में धातु से विकल्प करके लट् प्रत्यय हो। यो धनं ददातिस स्वर्गं गच्छति। यो धनं दास्यतिस स्वर्गं

गमिष्यति । यो धनं दाता स स्वर्गं गन्ता । धन देने से स्वर्ग प्राप्त होता है इस प्रकार धन चाहता हुआ देने वाले को उत्साह कराता है ॥ ७५७ ॥

७५८—लोडर्थलक्षणो च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८ ॥

विध्यादिक जो लोट् के अर्थ हैं वे जिस से जाने जावे उस अर्थ में वर्तमान धातु से भविष्यत् काल में विकल्प करके लट् प्रत्यय ही । उपाध्यायश्चेदागच्छति, प्रागमिष्यति, आगन्ता वा । अथ त्वं व्याकरणमधीव । यहाँ उपाध्याय का प्रागमन पढ़ाने की प्रेरणा को विदित कराता है ॥ ७५८ ॥

७५९—लिङ् चोर्ध्वमौर्ध्विके ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ९ ॥

लोडर्थलक्षण में वर्तमान धातु से दो घटी से ऊपर जो भविष्यत् काल उस में विकल्प करके लिङ् और लट् ही । उपाध्यायश्चेदागच्छति, प्रागमिष्यति, आगन्ता वा अथ त्वं छन्दोऽधीव ॥ ७५९ ॥

७६०—वर्त्तमानसमीप्ये वर्त्तमानवदा ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३१ ॥

वर्त्तमान के समीप का जो भूत वा भविष्यत् काल उस में वर्त्तमान धातु से वर्त्तमानवत् प्रत्यय विकल्प करके हो । अर्थात् “वर्त्तमाने लट्,, इस सूत्र से लेकर “उणादयो बहुलम्,, इस सूत्र पर्यन्त वर्त्तमानाधिकार में जिस २ निमित्त से जो २ प्रत्यय कहे हैं वे उन्हीं निमित्तों से वर्त्तमान समीप भूत वा भविष्यत् काल में विकल्प करके ही । कदा देवदत्तागतोसि, अयमागच्छामि । आगच्छन्तमेव मां विद्धि । अयमागमन् । एषोऽस्यागतः । कदा देवदत्त गमिष्यसि, एषगच्छामि । गच्छन्तमेव मां विद्धि । एष गमिष्यामि । गन्तास्मि । सामीप्यग्रहण से अतिकाल की विवक्षा में नहीं । परुदगच्छत् पाटलिपुत्रं वर्षेण गमिष्यति ॥ ७६० ॥

७६१—आशंसायां भूतवच्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३२ ॥

आशंसा गम्यमान होती भविष्यत् काल में धातु से विकल्प करके भूतवत् और वर्त्तमानवत् प्रत्यय ही । अप्राप्तप्रियवस्तु के पाने की इच्छा करने की आशंसा कहते हैं । उपाध्यायश्चेदागमत् । आगतः । आगच्छति । प्रागमिष्यति वा । एते वयं व्याकरणमध्यगीप्सहि । एते वयं व्याकरणमधीतवन्तः । अधीमहे । अध्येष्यामहे । यहाँ “सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः,, इस परिभाषाबल से लङ् और लिट् नहीं होते हैं । आशंसाग्रहण से यहाँ न हुआ । प्रागमिष्यति ॥ ७६१ ॥

७६२—क्षिप्रवचने लट् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३३ ॥

क्षिप्रवाची उपपद ही और आशंसा गम्यमान होती भविष्यत्काल में धातु से लट् प्रत्यय ही । यह पिछले सूत्र का अपवाद है । उपाध्यायश्चेत् क्षिप्रमागमिष्यति । क्षिप्रं व्याकरणमध्येष्यामहे । शीघ्रमाशुत्वरितमध्येष्यामहे वा ॥ ७६२ ॥

७६३—आशंसावचने लिङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३४ ॥

आशंसा कहने वाला पद उपपद हीतो धातु से लिङ् प्रत्यय ही । यह (७६१) सूत्र का अपवाद है । उपाध्यायश्चेदागच्छेत् आशंसे धीयीय । आशंसे ऽवकल्पयेयुक्ती धीयीय । आशंसे क्षिप्रमधीयीय ॥ ७६३ ॥

७६४—नानद्यतनवत् क्रियाप्रबन्धसामीप्योः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३५ ॥

क्रिया के प्रबन्ध और सामीप्य में अनद्यतनवत् प्रत्यय नहीं । अर्थात् भूत अनद्यतन में लङ् और भविष्यत् अनद्यतन में लुट् विहित हैं वे नहीं । क्रियाप्रबन्ध (क्रिया का निरन्तर होना) सामीप्य (तुल्यजातीय से अव्यवधान) क्रियाप्रबन्ध, यावज्जीव भृशमन्नमदात् । भृशमन्नं दास्यति । यावज्जीवंपुत्रोऽध्यापिपत् । यावज्जीवमध्यापयिष्यति । सामीप्य, येयंपीर्णमास्थितिक्रान्ता, एतस्यामुपाध्यायोन्नीनाधित । सोमेनायष्ट । गामदित । येयममावास्या ऽऽगामिनौ, एतस्यामुपाध्यायोन्नीनाध्यास्यते । सोमेन यज्यते । स गां दास्यते ॥ ७६४ ॥

७६५—भविष्यति मर्यादावचनेवरस्मिन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३६ ॥

उरले भाग को ले कर मर्यादा ही तो भविष्यत् काल में अनद्यतनवत् प्रत्यय न ही । आपाटलिपुत्राद् योयमध्वा गन्तव्यस्तस्य यद्वरं कौशाम्ब्यास्तत्र स्थास्यामि । भविष्यत् के ग्रहण से यहां न हुआ । आपाटलिपुत्राद् योयमध्वा गन्तव्यस्तस्य यद्वरं कौशाम्ब्यास्तत्र युक्ता अध्येमहि । मर्यादावचन से अन्यत्र । योयमध्वानिरवधिको गन्तव्यस्तस्य यद्वरं कौशाम्ब्यास्तत्र भोक्तास्महे । अवरस्मिन् ग्रहण से यहां न । आपाटलिपुत्राद् योयमध्वा गन्तव्यस्तस्य यत् परं कौशाम्ब्यास्तत्र भोक्तास्महे ॥ ७६५ ॥

७६६—कालविभागे चानहोरात्राणाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३७ ॥

समय को मर्यादा के विभाग में उरले विभाग की अपेक्षा ही तो भविष्यत् काल में अनद्यतनवत् प्रत्यय न ही । जो वह मर्यादाविभाग अहोरात्र संबन्धी न ही । योयं संवत्सर आगामी तत्र यद्वरमाग्राहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येतास्महे । भविष्यत्ग्रहण से यहां न हुआ । योयं वत्सरोत्तीतस्तस्य यद्वरमाग्राहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येमहि । मर्यादा से अन्यत्र । योयं निरवधिकः काल आगामी तस्य यद्वरमाग्राहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येतास्महे । अवरभाग की अपेक्षा में यह हीगा । और परभाग में अगले सूत्र से विधान करेंगे । अनहोरात्र ग्रहण से यहां न हुआ । योयं मास आगामी तस्य योवरः पञ्चदशरात्रस्तत्र युक्ता अध्येतास्महे । योयं त्रिंशद्रात्र आगामी तस्य योवरोर्ध्वमासस्तत्र युक्ता अध्येतास्महे । तत्र सक्तून पातास्मः । सब प्रकार से अहोरात्र के स्पर्श में प्रतिषेध है ॥ ७६६ ॥

७६७—परस्मिन् विभाषा ॥ अ० ॥ ३।३।१३८ ॥

सम्बन्ध की मर्यादा के विभाग में परभाग की अपेक्षा ही तो विकल्प करके अनद्यतनवत् प्रत्यय न हो। जो वह मर्यादावचन अहोरात्र संबन्धी विभाग में न हो। योयं संवत्सर आगामी तस्य यत्परमाग्रहायण्यास्तत्रयुक्ता अध्येतास्महे। अध्येतास्महे। अनहोरात्र से अन्यत्र। योयंविंशद्वात्र आगामी तस्य यः परः पञ्चदशरात्रस्तत्रयुक्ता अध्येतास्महे। भविष्यत्काल से अन्यत्र। योयंसंवत्सरोत्तीतस्तस्य यत्परमाग्रहायण्यास्तत्र युक्ता अध्येतास्महे। कालविभाग से अन्यत्र योयमध्वान्तव्य आपाटलिपुत्रात् तस्य यत्परं कोशाम्ब्यास्तत्र अध्येतास्महे (८३) सूत्र से लृङ् विधान कर चुके हैं उसका विशेष व्याख्यान करते हैं। दक्षिणेनचेदायास्थशकटं पर्याभविष्यत्। यदि कमलकमाद्वास्यत्र शकटं पर्याभविष्यत्। अभीक्ष्यत भवान् घृतेन यदि मत्समीपमागमिष्यत्। यहां सर्वत्र भविष्यत्कालसंबन्धी कार्य का न होना हेतुमान् और दक्षिणमार्गगमन आदि हेतु हैं तथा भविष्यत्काल विषयक हेतु और हेतुमान् की प्रतिपत्ति वाक्यसे प्रतीति होती है ॥ ७६७ ॥

७६८—भूते च ॥ अ० ॥ ३।३।१४० ॥

लिङ् निमित्त में क्रियातिपत्ति ही तो भूतकाल में भी लृङ् प्रत्यय हो। दृष्टो मया भवत्युचोऽन्वार्थो चङ्क्रम्यमाणः। अपरस्य द्विजो ब्राह्मणार्थो यदि स तेन दृष्टोऽभविष्यत् तदाऽभीक्ष्यत नतु भुक्तवान्। अन्येन पथा स गतः ॥ ७६८ ॥

७६९—उताप्योः ॥ अ० ॥ ३।३।१४१ ॥

यहां से लेकर “उताप्योः समर्थयोर्लिङ्”, इस सूत्र पर्यन्त जो २ विधान करेंगे वहां लिङ् के निमित्त में क्रियातिपत्ति ही तो लृङ् विकल्प करके होता है यह अधिकार समझना चाहिये “विभाषाकथमि०”, यह कहेंगे इस के विषय में कथं नाम तत्र भवान् वृषलमयाजयिष्यत्। याजयेद् वा ॥ ७६९ ॥

७७०—गर्हायां लङ्पिजात्वोः ॥ अ० ॥ ३।३।१४२ ॥

कुत्सा अर्थ में अपि और जातु उपपद ही तो धातु से लट् प्रत्यय ही सामान्यकाल में। कालविशेष विहित जो प्रत्यय हैं उन को यह परत्व से बाध लेता है। अपितत्र भवान् वृषलं याजयति। जातु तत्र भवान् वृषलं याजयति। गर्हामहे। अहो अन्यायमेतत्। लिङ्निमित्त के अभाव से यहां क्रियातिपत्ति में लृङ् नहीं होता है ॥ ७७० ॥

७७१—विभाषा कथमिलिङ् च ॥ अ० ॥ ३।३।१४३ ॥

कथम् शब्द उपपद है और निन्दा पाई जाय तो धातु से लिङ् और लट्

प्रत्यय विकल्प करके हो । कथं नाम तत्र भवान् वृषलं याजयेत् । कथं तत्र भवान् वृषलं याजयति । विकल्प पक्ष में । कथं नाम तत्र भवान् वृषलं याजयिष्यति । कथं नाम तत्र भवान् वृषलं याजयिता । इत्यादि । यहां लिङ् निमित्त है इस से भूतकाल की क्रियातिपत्ति विवक्षा में विकल्प करके और भविष्यत् काल की में नित्य लृट् होता है ॥ ७७१ ॥

७७२ — किं वृत्ते लिङ् लृटौ ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४४ ॥

किम् शब्द का प्रयोग उपपद हो और गृही पाई जाय तो धातु से लिङ् और लृट् प्रत्यय हो । यहां लिङ् ग्रहण लृट् को निवृत्ति के लिये है । को नाम वृषलो यं तत्र भवान् याजयेत् । यं तत्र भवान् वृषलं याजयिष्यति । कतरो नाम कतमो नाम यं तत्र भवान् वृषलं याजयेत् । याजयिष्यति । भूतकाल की क्रियापत्ति में विकल्प करके लृट् और भविष्यत् सवन्धो में नित्य हो लृट् होगा । को नाम वृषलो यं तत्र भवान् याजयिष्यत् ॥ ७७२ ॥

७७३ — अनवक्तृप्रमर्षयोरकिं वृत्ते ऽपि ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४५ ॥

असंभावना और असहन अर्थ में किम् शब्द का प्रयोग उपपद हो वा न हो तो धातु से लिङ् और लृट् प्रत्यय हो । यहां अधिक अच्वाले “अनवक्तृप्ति,, शब्द का पूर्वनिपात किं वृत्त और अकिं वृत्त से अर्थों के यथासंख्य न होने का प्रकाशक है । अनवक्तृप्ति । नावकल्पयामि । न संभावयामि । न अहधे । तत्र भवान् गुरुं निन्देत् । तत्र भवान् गुरुं निन्दिष्यति । कः कतरः कतमो वा गुरुं निन्देत् । निन्दिष्यति वा । प्रमर्ष, न मर्षयामि । तत्र भवान् गुरुं निन्देत् । निन्दिष्यति वा । को नाम गुरुं निन्देत् । निन्दिष्यति वा । लृट् पूर्वनियम के तुल्य० । जैसे । नाव कल्पयामि तत्र भवान् वृषलं याजयिष्यत् ॥ ७७३ ॥

७७४ — किं किल अस्यर्थेषु लृट् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४६ ॥

किंकिल और अस्यर्थक धातु उपपद हो तो अनवक्तृप्ति और प्रमर्ष अर्थ में धातु से लृट् प्रत्यय हो । किंकिल शब्द क्रोधका प्रकाशक है । अस्यर्थक । अस्ति, भवति, विद्यति । यह लृट् लिङ् का अपवाद है । किंकिल नाम तत्र भवान् वृषलं याजयिष्यति । अस्ति नाम तत्र भवान् वृषलं याजयिष्यति । न अहधे । न मर्षयामि । इत्यादि । यहां लृट् नहीं प्राप्त है ॥ ७७४ ॥

७७५ — जातु यदो लिङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४७ ॥

जातु और यद् उपपद हो तो धातु से लिङ् हो । यह लृट् का अपवाद है । जातु तत्र भवान् गुरुं निन्देत् । यत्राम तत्र भवान् गुरुं निन्देत् । नावकल्पयामि । न मर्षयामि । लृट् पूर्ववत् ॥ ७७५ ॥

७७६-वा०-जातुयदोर्लिङ् विधानेयदायद्योरुपसंख्यानम् ॥

यदा भवद्विधः क्षत्रियं याजयेत् । यदि भवद्विधः क्षत्रियं याजयेत् । नावकल्पामि नमर्षयामि । भूत, भविष्यत् क्रियातिपत्ति विवक्षा में पूर्ववत् लृङ् हीगा ॥७७६॥

७७७-यच्चयचयोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४८ ॥

यच्च वा यच उपपद ही और अनवकृति तथा अमर्ष अर्थ गम्यमान होतो धातु से लिङ् प्रत्यय ही । यह लृट् का अपवाद है । यच्च तत्रभवान् गुरुं निन्देत् । यच तत्र भवान् गुरुं निन्देत् । नावकल्पयामि । नमर्षयामि । क्रियातिपत्ति में पूर्ववत् लृङ् हीता है ॥ ७७७ ॥

७७८-गर्हायांच ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४९ ॥

गर्हागम्यमान ही और यच्च, यच उपपद ही तो धातु से लिङ् प्रत्यय ही । यह सब लकारों का अपवाद है । यच्च यच वा तत्रभवान् वृषलं याजयेत् । गर्हामहे अन्यायमेतत् । क्रियातिपत्ति में पूर्ववत् लृङ् हीता है ॥ ७७८ ॥

७७९-चित्रीकरणेच ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५० ॥

यच्च यच उपपद ही और चित्रीकरण गम्यमान ही तो धातु से लिङ् प्रत्यय ही । चित्रीकरण आश्चर्य अद्भुत विस्मय करने योग्य को कहते हैं । यच्च यत् वा भवान् वृषलं याजयेत् । आश्चर्य मेतत् । क्रियाति पत्ति में यथाप्राप्त लृङ् हीता है ॥७७९॥

७८०-शेषेलृङ्यदौ ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५१ ॥

यदि शब्द भिन्न यच्च यत् से अन्य उपपद ही और चित्रीकरण गम्यमान होतो धातु से लृट् प्रत्यय ही । सबलकारों का अपवाद है । आश्चर्य चित्रमद्भुतम् । अन्यो नाम पर्वतमारोह्यति । बधिरोनाम व्याकरणमध्येयते । अयदियहण से यहां न हुआ । आश्चर्य यदि सोधीयते । इस विषय में लिङ् निमित्त के अभाव से लृङ् नहीं होता ॥ ७८० ॥

७८१-उताप्योः समर्थयोर्लिङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५२ ॥

समानार्थक उत और अपि उपपद ही तो धातु से लिङ् प्रत्यय ही । अङ्गीकार अर्थ में उत, अपि, समानार्थक हैं । उत कुर्यात् । अपि कुर्यात् । उताधीयीत । अप्यधीयीत । हां यह करेगा वा पड़ेगा । समर्थग्रहण से यहां न हुआ । उत दण्डः पतिष्यति । अपि द्वारं घास्यति । दण्ड गिरेगा द्वार को टाप लेगा । यहां प्रश्न प्रच्छादन गम्यमान है “उताप्योः”, यह निमित्त पूरा हो गया अब यहां से लेकर भूतकाल में भी क्रियातिपत्ति में नित्य लृङ् हीगा ॥ ७८१ ॥

७८२—कामप्रवेदनेऽकच्चिति ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५३ ॥

कच्चित् शब्द न उपपद हो तो अपने अभिप्राय के प्रकाश करने में धातु से लिङ् प्रत्यय हो । यह सब लकारों का अपवाद है । कामी ने गच्छेद् भवान् । अभिलाषा इच्छा वा मम भुञ्जीत भवान् । अकच्चित् कहने से यहां न हुआ । कच्चिज्जीवति ते माता ॥ ७८२ ॥

७८३—संभावनेलमिति चेत्सिद्धाप्रयोगे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५४ ॥

जो सिद्ध अलम् शब्द का प्रयोग न किया जाय तो अलमर्थ सम्भावन में वर्तमान धातु से लिङ् प्रत्यय हो । जहां वाक्य में अलम् शब्द का अर्थ परिपूर्णता अर्थात् प्रौढपन गम्यमान हो और उस का प्रयोग न हो वहां सिद्ध अलम् का अप्रयोग । तथा क्रियाओं में योग्यता का निश्चय करना सम्भावन समझना चाहिये । यह सब लकारों का अपवाद है । अपि पर्वतं शिरसा भिन्द्यात् । अपि द्रोणपाकं भुञ्जीत । अलम् ग्रहण से यहां न हुआ । विदेशस्थो देवदत्तः प्रायेण ग्रामं गमिष्यति । सिद्धाप्रयोग ग्रहण से यहां न हुआ । अलं कृष्णोहस्तिनं हनिष्यति । भूत वा भविष्यत्काल की क्रियातिपत्ति में नित्य लृङ् होता है ॥ ७८३ ॥

७८४—विभाषाधातौ सम्भावनवचनेऽयदि ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५५ ॥

यद्शब्द वर्जित अलमर्थ संभावन अर्थ का कहने वाला धातु उपपद होता धातु से विकल्प करके लिङ् प्रत्यय हो जो सिद्ध अलम् का अप्रयोग हो । पूर्वसूत्र से नित्य-लिङ् प्राप्तथा विकल्प के लिये यह सूत्र है । संभावयामि भुञ्जीत भवान् । संभावयामि भाष्यते भवान् । अयद् ग्रहण से यहां न हुआ । संभावयामि यद्भुञ्जीत भवान् ॥ ७८४ ॥

७८५—हेतुहेतुमतोर्लिङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५६ ॥

हेतु कारण और हेतुमत् जिस में कारण रहे अर्थात् फल उन में वर्तमान जो धातु हो उस से लिङ् प्रत्यय विकल्प करके हो । दक्षिणेन चेद् यायात् न शकटं पर्याभवेत् । यहां दक्षिणमार्ग से यानाहेतु और अपरिपूर्ति होना फल है । लिङ् वर्तमान था पुनर्लिङ् ग्रहण विशेष काल के संग्रह करने के लिये है । इस से यह लकार भविष्यत् काल में होता है । द्वितीय पक्ष में लृट् । दक्षिणेन चेद्यास्यति न शकटं पर्या भविष्यति । भविष्यत् के नियम से यहां न हुआ । हन्तीति पलायते । वर्धतीति धावति । क्रियातिपत्ति में लृङ् होता है ॥ ७८५ ॥

७८६—इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५७ ॥

इच्छा अर्थ वाले धातु उपपद हो तो धातु से लिङ् और लोट् प्रत्यय हो ।

यह सब लकारी का अपवाद है। इच्छामि भुञ्जीत भवान्। इच्छामि भुक्तां भवान् कामये। प्रार्थये। पठतु भवान्। कामप्रवेदनं चेत्। महाभाष्य०। ३। ३। १५७। जो प्रत्यन्त इच्छा विदित करना गम्यमान हो तो उक्त लिङ् प्रत्यय ही यह कहना चाहिये अर्थात् यहाँ न ही। इच्छन् कटं करोति ॥ ७८६ ॥

७८७—लिङ् च ॥ अ० ॥ ३। ३। १५८ ॥

समानकर्ता वाले इच्छार्थक धातु उपपद ही तो धातु से लिङ् प्रत्यय ही। भुञ्जीयेतीच्छति। प्रधीयीयेतीच्छति। क्रियातिपत्ति में लृङ् होता है ॥ ७८७ ॥

७८८—इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्तमाने ॥ अ० ॥ ३। ३। १६० ॥

इच्छार्थक धातुओं से वर्तमान काल में विकल्प करके लिङ् प्रत्यय होता है। इच्छति। इच्छेत्। कामयते। कामयेत्। वष्टि। उश्यात्। प्रथम (७७। ६४) से लिङ् और लोट का विधान किया है। अब उस विषय के क्रम से उदाहरण देते हैं। जैसे। विधि, भवान् पठेत्। ग्रामं भवानागच्छेत्। निमन्त्रण, इह भवान् भुञ्जीत। ग्रामन्त्रण, इह भवानासीत्। प्रधीष्ट, भवान् पुत्रमध्यापयेत्। संप्रश्न, किं भी वेदमधीयीय। प्रार्थन, भवतिमे प्रार्थना व्याकरणमधीयीय। इसी प्रकार लोट भी होगा। भवान् पठतु इत्यादि ॥ ७८८ ॥

७८९—प्रेषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च ॥ अ० ॥ ३। ३। १६३ ॥

प्रेष (प्रेरणा करना) अतिसर्ग (इच्छा पूर्वक आज्ञा देना) प्राप्तकाल (कार्य के समय का अवसर पाना) इन अर्थों में धातु से कृत्य सञ्ज्ञक और लोट* प्रत्यय ही। कृत्य, भवता कटः करणीयः। कर्त्तव्यः कटः कृत्यः कार्यः। इत्यादि। लोट, करोतु कटं भवानिह प्रेषितः। भवानतिसृष्टः। भवतः प्राप्तकालः कट करणे ॥ ७८९ ॥

७९०—लिङ् चोर्ध्वमौहर्त्तिके ॥ अ० ॥ ३। ३। ३६४ ॥

प्रेषादि अर्थ गम्यमान हों तो दो घड़ी से ऊपर जो भविष्यत् काल है उस में वर्तमान धातु से लिङ् और यथाप्राप्त कृत्य लोट भी हों। मृहर्त्तादुपरि भवता खलु कटः कर्त्तव्यः। करणीयः। कार्यः। भवान् खलु कटं कुर्यात् भवान् खलु कटं करोतु। भवानिह प्रेषितः। अतिसृष्टः प्राप्तकालोवा ॥ ७९० ॥

* प्रेषातिसर्ग० सूत्र की व्याख्या में जो कौमुदीकार से लोट का अनुकर्मण कर केवल उस को प्राप्तकाल अर्थ ही के लिये माना है यह उनका मानना असंगत है क्योंकि उक्त सूत्र की व्याख्या की महाभाष्यकारने की है उस से स्पष्ट विदित होता है कि प्रेषादि तीनों अर्थों में लोट प्रत्यय होता है यथा अर्थ प्रेषादिष्वर्थेषु लोट विधीयते स विशेषविहितः सामान्य विहितान् कृत्यान् वाधेत, इत्यादि महाभाष्य० ३। ३। १६३ ॥

७६१—स्मे लोट् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६५ ॥

प्रेषादि अर्थ गम्यमान ही और स्म शब्द उपपद हो तो ऊर्ध्वमौहर्षिक अर्थ में वर्तमान धातु से लोट् प्रत्यय हो । यह लिङ् और कृत्य प्रत्ययों का अपवाद है । सुहृत्तदूर्ध्व भवान् कटं करोतु स्म । माणवकमध्यापयतु स्म ॥ ७६१ ॥

७६२—अधीष्टे च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६६ ॥

सत्कारपूर्विका चेष्टा गम्यमान और स्म उपपद हो तो धातु से लोट् प्रत्यय हो । यह लिङ् का अपवाद है । अङ्ग स्म राजन् माणवकमध्यापय ॥ ७६२ ॥

७६३—लिङ्यदि ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६८ ॥

काल, समय और वेला तथा यद् शब्द उपपद होतो धातु से लिङ् प्रत्यय हो । यह तुमुन् प्रत्यय का अपवाद है । कालो यद्भुञ्जीत भवान् । समयो यद्भुञ्जीत भवान् वेला यद्भुञ्जीत भवान् ॥ ७६३ ॥

७६४—अहं कृत्यत्तच्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६९ ॥

अहं कर्ता वाच्य वा गम्यमान होतो धातु से कृत्य, तच् और लिङ् प्रत्यय हो । भवता खलु कन्या वोढव्या । वाह्या । वहनीया वा । भवान् खलु कन्याया वोढा । भवान् खलु कन्यां वहेत् ॥ ७६४ ॥

७६५—शक्ति लिङ् च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७२ ॥

शक्तिअर्थ में धातु से लिङ् और कृत्य प्रत्यय हो । भवता खलु भारो वोढव्यः । वहनीयः । भवान् खलु भारं वहेत् । भवानिह शक्तः ॥ ७६५ ॥

७६६—माङि लुङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७५ ॥

माङ् उपपद होतो धातु से लुङ् प्रत्यय हो यह सब लंकारों का अपवाद है माकार्षीत् । माहार्षीत् ॥ ७६६ ॥

७६७—स्मोत्तरे लङ् च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७६ ॥

स्म जिस से परे हो वह माङ् शब्द उपपद हो तो धातु से लङ् और लुङ् प्रत्यय हो । मास्म करोत् । मास्मकार्षीत् । मास्म हरत् । मास्म हार्षीत् ॥ ७६७ ॥

७६८—धातुसंबन्धे प्रत्ययाः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १ ॥

धातुर्थ संबन्ध काल में प्रत्यय ही । अर्थात् जिसर काल में प्रत्यय कहे हैं उन से अन्यत्र भी ही । अग्निष्टोमयाजी तब पुत्री जनिता । कृतः कटः श्रो भविता । भावि-कृत्यमासीत् । अग्निष्टोमयाजी यह भूतकाल और जनिता यह भविष्यत् काल में है यहां भूतकाल जनिता के भविष्यत् काल का संबन्ध पाकर साधु होता है । अष्टाध्यायी

के क्रम से प्रत्ययाधिकार वर्त्तमान था तथापि यहां प्रत्ययग्रहण का यह प्रयोजन है कि धात्वधिकार से अन्य भी प्रत्यय धातु संबंध काल में हो जावें। गोमानासीत् गोमान् भविता यहां गावो विद्यन्तेऽस्य, इस विग्रह से वर्त्तमान काल में भी किया हुआ मतुप् आसीत्, भविता इन क्रियापदों के संबंध से भूत और भविष्यत् काल का कहने वाला होता है ॥ ७६८ ॥

७६९—क्रियासमभिहारे लोट् लोटो हिस्वौ वा च तद्ध्वमोः ॥

अ० । ३ । ४ । २ ॥

क्रियासमभिहार (बार २ होना निरन्तर होना) अर्थ में धातु से लोट् और उस लोट् के स्थान में परस्मैपद हि, और आत्मनेपद स्व आदेश ही । तथा त और ध्वम् भावी लोट् के स्थान में हि और स्व विकल्प करके ही । यह सब लकारों का अपवाद है । क्यों कि सब लकारों के विषय में होता है ॥ ७६९ ॥

८००—समुच्चयेऽन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३ ॥

अनेकक्रियाओं के अध्याहार में धातु से विकल्प करके लोट् और उस लोट् के स्थान में यद्योक्त हि, और स्व आदेश ही ॥ ८०० ॥

८०१—यथाविध्यनुप्रयोगः पूर्वस्मिन् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४ ॥

पूर्वोक्तलोटविधान में यथाविधि अनुप्रयोग हो । अर्थात् जिस धातु से लोट् विहित हो उसी धातु का संख्या, काल और पुरुष के नियम से पीछे प्रयोग हो ॥ ८०१ ॥

८०२—समुच्चये सामान्यवचनस्य ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५ ॥

समुच्चय अर्थ में लोट् विधान हो तो सामान्य अर्थ कहनेवाले धातु का अनुप्रयोग ही ॥ ८०२ ॥

८०३—वा०—क्रियासमभिहारे द्वे भवत इतिवक्तव्यम् ॥

क्रियासमभिहारार्थविहित लोट् के विषय में द्विवचन ही । क्रियासमभिहार में परस्मैपद लट् लकार, स भवान् लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनाति। इमौ लुनीत इमे लुनन्ति । लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनासि । युवां लुनीथः । यूयं लुनीथ । लुनीहि लुनीहीत्येवायं लुनामि । आवां लुनीवः वयं लुनीमः । इत्यादि । आत्मनेपद । अधौष्वाधौष्वेत्येवायमधीते । इमावधीयाते । इमेऽधीयते । इत्यादि। इस प्रकार सब लकारों में उदाहरण जानना चाहिये । क्रियासमभिहार में । दुग्धं पिव चणकाञ्चर्य । इत्यभ्यवहरति । अन्नं भुङ्क्ष्व । दाधिकमाखादस्वेत्यभ्यवहरति । त, ध्वम् के विषय में दुग्धं पिव चणकाञ्चर्वेत्यभ्यवहरथ । अन्नं भुङ्क्ष्व । दाधिकमाखादस्वेत्यभ्यवहरथ्ये । दुग्धं पिबत चणकाञ्चर्वेत्यभ्यवहरथ अन्नं भुङ्क्ष्व, दाधिकमाखादध्वम् ।

इत्यवहरध्वे इसी प्रकार क्रियासमभिहार और समुच्चय अर्थ में सप्त लकारों के विषय में लोट होता है ॥ ८०३ ॥

८०४—छन्दसि लुङ्लङ्लिटः ॥ अ० ॥ ३।४।६ ॥

छन्दोविषयक धातुसंबन्ध सामान्यकाल में धातु से विकल्प करके लुङ् लङ् और लिट् प्रत्यय हों । लुङ्, शकलाङ्गुष्टको करत् । अहं तेभ्योकरन्नमः । लङ् अग्निमद्य हेतारमहृणीयं यजमानः । लिट्, अद्याममार । अद्यस्त्रियते ॥ ८०४ ॥

इति लकारार्थप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ षत्वप्रक्रियाऽरम्भः ॥

८०५—अपदान्तस्य मूर्धन्यः ॥ अ० ॥ ८।३।५५ ॥

अपदान्त सकार को मूर्धन्य आदेश हो । यह अधिकार करते हैं अष्टाध्यायी में यह तृतीय पाद का प्रकरण है इस पाद की समाप्ति पर्यन्त । सिषिव । सुष्वाप । अग्निषु । वायुषु । इत्यादि यहाँ सर्वत्र (५६) सूत्र से षत्व हुआ है । अपदान्तग्रहण इस लिये है कि अग्निस्तत्र यहाँ मूर्धन्य न हो । सकार को षकार कहते तो धकार को ठकार भी कहने पड़ता इस लिये मूर्धन्य शब्द पड़ा है ॥ ८०५ ॥

८०६—साढः साढः सः ॥ अ० ॥ ८।३।५६ ॥

साढ् रूप सह धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश हो । जलाषाढ् । तुराषाढ् । घृतनाषाढ् । साढ्ग्रहण से । तुरासाहम् । यहाँ नहीं होता । स को इस लिये कहा कि आकार को न हो जावे ॥ ८०६ ॥

८०७—इण्कोः ॥ अ० ॥ ८।३।५७ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है । अपदान्तसकार को मूर्धन्यादेश कहें सो इण् कवर्ग से ही परे हो। जैसे । कर्त्तृषु । हर्त्तृषु । वाक् + सु = वाक्षु । इण् कवर्ग से परे नियम इस लिये है कि । दास्यति, असौ यहाँ न हो ॥ ८०७ ॥

८०८—नुम्सिर्जनौयशर्वायेऽपि ॥ अ० ॥ ८।३।५८ ॥

नुम्, विसर्जनौय और शर्प्रत्याहार इन के व्यवधान में भी इण् कवर्ग से अपदान्त सकार को मूर्धन्यादेश हो । जैसे नुम् के व्यवधान में । सर्पि + नुम् स + जस् = सर्पीषि । हवीषि । यजूषि । इत्यादि । विसर्जनौय के व्यवधान में । सर्पिःषु । धनुःषु । यजुःषु । इत्यादि । शर्प्रवधान में सर्पिषु । यजुषु । हविषु । इत्यादि ।

इस सूत्र में नृन् आदि के व्यवधान का पृथक् २ प्रत्येक का ग्रहण है । इस लिये निस्से । निस्स्व । यहां नृन् और शर् दो के व्यवधान में षत्व नहीं होता ॥ ८०८ ॥

८०८—स्तौतिग्योरेवप्रणम्यासात् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६१ ॥

पण्णरूप सन् परे हो तो स्तु और णिजन्त धातुओं के इणन्त अभ्यास से परे जो आदेश का सकार उस को मूर्धन्य आदेश हो । स्तौतुमिच्छति, तुष्टुषति । णिजन्त से । सेवयितुमिच्छति, सिषेवयिषति । सुष्वापयिषति । सिषञ्जयिषति । इन धातुओं में इण् कवर्ग से परे अन्यसूत्रों से षत्व हो जाता फिर यह सूत्र नियमार्थ है कि सन् के परे स्तु और णिजन्त के ही अभ्यास से परे षत्व हो । इस नियम से । सिसिञ्चति । सुसृषति । यहां षत्व नहीं होता । स्तौति और णिजन्त के साथ एव शब्द पढ़ने से यह नियम नहीं होता कि । स्तौति और णिजन्त को सन् हो के परे षत्व हो इससे । तुष्टाव । आदि में षत्व हो जाता है और । सिसिञ्चति । में षत्व नहीं होता ॥ ८०८ ॥

८१०—सः स्विदिस्विदिसहीनां च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६२ ॥

षण्ण रूप सन् परे होती सिद्धि, स्वदि और सहि इन णिजन्त धातुओं के इणन्त अभ्यास से परे अपदान्त सकारको सकारादेश हो हो । स्वदयितुमिच्छति, सिस्वेदयिषति । सिस्वादयिषति । सिसाहयिषति । यहां सकार की सकार कहने से मूर्धन्य नहीं होता ॥ ८१० ॥

८११ प्राक्छितादङ्व्यवायेऽपि ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६३ ॥

(परिनिविध्यः सेवसित०) इस आगामी सूत्र के सित शब्द से पहिले २ अट् के व्यवधान में भी मूर्धन्य आदेश होता है । अपि शब्द के पढ़ने से अङ्व्यवाय से अन्यत्र निषेध नहीं होता ॥ ८११ ॥

८१२—स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६४ ।

(उपसर्गात् सुनो०) इस अगले सूत्र में (परि० सेवसि०) आगामी सूत्र से पहिले २ इण् कवर्ग से परे अभ्यास के व्यवधान में और अभ्यास के सकार को मूर्धन्यादेश होता है ॥ ८१२ ॥

८१३—उपसर्गात्सुनोतिसुवतिस्यतिसौतिस्तोभतिस्या

सेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६५ ॥

उपसर्गस्य निमित्त इण् से परे सुनोति, सुवति, स्यति, स्तोभति, स्या, सेनय, सेध, सिच, सञ्ज और स्वञ्ज इन के सकार को मूर्धन्य आदेश हो । सुनोति, अभिपुणोति । परिपुणोति । अभ्यपुणोत् । पर्यपुणोत् । सुवति, अभिपुवति ।

परिषुवति । अभ्यषुवत् । पर्यषुवत् । स्यति, अभिष्यति । परिष्यति । अभ्यष्यत् । पर्यष्यत् । स्तौति, अभिष्टौति । परिष्टौति । अभ्यष्टौत् । स्तोमति, अभिष्टोमते । अभ्यष्टोमत । पर्यष्टोमत । स्था, अभिष्ठास्यति । परिष्ठास्यति । अभ्यष्ठात् । पर्यष्ठात् । स्थादि कीं में अभ्यास के व्यवधान में और अभ्यास के सकार की भी मूर्धन्य कहचुके हैं । अभितष्ठी । अभितष्ठतुः । परितष्ठी । यहां अभ्यास में सकार नहीं । सेना, सेनया अभियाति । अभिषेणयति । अभ्यषेणयत् । पर्यषेणयत् । अभिषेणयितुमिच्छति, अभिषिषेणयिषति । परिषिषेणयिषति । यहां अभ्यास के व्यवधान में और अभ्यास के सकार की भी मूर्धन्य होता है । सेध, अभिषेधति । परिषेधति । अभ्यषेधत् । अभिषिषेध । सिच्, अभिषिञ्चति । परिषिञ्चति । पर्यषिञ्चत् । अभिषिषिञ्चति । सञ्ज, अभिषजति । अभ्यषजत् । अभिषिषजति । स्वञ्ज, अभिष्वजते । अभ्यष्वजत् । पर्यष्वजत् । परिषिष्वजते । सिध धातु का गुण किया निर्देश है इस से दिवादि के सिध धातु को षत्व नहीं होता । परिसिध्यति । पर्यसिध्यत् । उपसर्गग्रहण इस लिये है कि । दधिसिञ्चति । यहां षत्व न हो निर्गतः सेचका अस्माद्गमात्, निःसेचको ग्रामः । यहां निर् उपसर्ग का सवन्ध गमन क्रिया के साथ है सेचक शब्द के साथ नहीं ॥ ८१३ ॥

८१४—सदिरप्रतेः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६६ ॥

प्रति भिन्न उपसर्गस्थ निमित्त से परे सद धातु के सकार की मूर्धन्यादेश हो । निषीदति । विषीदति । व्यषीदत् । व्यषीदत् । निषसाद । विषसाद । प्रति का निषेध होने से । प्रतिसीदति । यहां षत्व न हुआ ॥ ८१४ ॥

८१५—स्तनूमेः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६७ ॥

उपसर्गस्थ इण् से परे स्तन्म धातु के सकार की मूर्धन्यादेश होवे । अभिष्ट्नाति । परिष्ट्मनाति । अभ्यष्ट्मनात् । अभितष्ट्म । परितष्ट्म । यहां प्रति के निषेध की अनुवृत्ति नहीं आती है । प्रतिष्ट्मनाति । प्रत्यष्ट्मनात् । प्रतितष्ट्म । यहां स्तम् धातु की ही सूत्रकार ने नकारोपध पढ़ा है ॥ ८१५ ॥

८१६—अवाञ्चालम्बनाविदूर्ययोः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६८ ॥

आश्रय और कुछ समीप होने अर्थ में अब उपसर्ग से परे स्तन्म धातु के सकार की मूर्धन्यादेश हो आलम्बन, अवष्टभ्यास्ते । अवष्टभ्यतिष्ठति । अवष्टम्भा सेना । अवष्टम्भा शरत् । आलम्बन और आविदूर्य अर्थ से अन्यत्र । अवष्टब्धो वृषलः शीतेन । यहां षत्व नहीं होता । अब उपसर्ग इणन्त नहीं है इस लिये यह सूत्र पढ़ा है नहीं तो पूर्वसूत्र से षत्व ही ही जाता ॥ ८१६ ॥

८१७—वैश्व स्वनो भोजने ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६६ ॥

वि और अव उपसर्ग से परे भोजन अर्थ में स्वन धातु के सकार को मूर्धन्य हो । विष्वणति । व्यष्वणत् । विषष्वाण । अष्वष्वणति । अषष्वाणत् । अषषष्वाण । भोजन अर्थ से अन्यत्र । विस्वनति मुदङ्गः । अवस्वनति वीणा । यहां शब्द अर्थ में पत्व नहीं होता ॥ ८१७ ॥

८१८—परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्सुखञ्जाम् ॥

अ० ॥ ८ । ३ । ७० ॥

परि, नि, वि उपसर्गों से परे सेव, सित, सय, सिवु, सह, सुट्, सु और खञ्ज के सकार को मूर्धन्यादेश होवे । परिषेवते । निषेवते । विषेवते । पर्यषेवत । व्यषेवत । न्यषेवत । परिषिषेविषते । विषिषेविषते । निषिषेविषते । सित, परिषितः । विषितः । निषितः । सय, परिषयः । विषयः । निषयः । सिवु, परिषीव्यति । विषीव्यति । निषीव्यति । पर्यषीव्यत् । न्यषीव्यत् । व्यसीव्यत् । यहां सिव आदि में अट् के व्यवधान में अगले सूत्र से पत्व विकल्प है । सह, परिषहते । निषहते । विषहते । पर्यषहत । न्यषहत । व्यषहत । पर्यसहत । न्यसहत । व्यसहत । सुट्, परिष्करोति । पर्यष्करोत् । सु, परिष्टीति । निष्टीति । विष्टीति । पर्यष्टीत् । पर्यस्तौत् । खञ्ज, परिष्वजते । विष्वजते । पर्यष्वजत । पर्यखजत । सु और खञ्ज धातु पूर्व “उपसर्गात्कुनोति,” सूत्र में भी पढ़े हैं उस से पत्व हो जाता । फिर यहां पढ़ने का यही प्रयोजन है कि अगले सूत्र से अट् के व्यवधान में विकल्प से पत्व होवे ॥ ८१८ ॥

८१९—सिव दीनां वाऽड्व्यवायेऽपि ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७१ ॥

अट् के व्यवधान में भी परि, नि, वि इन उपसर्गों से परे पूर्वसूत्रोक्त सिवादिकों के सकार को मूर्धन्य आदेश हो । इस सूत्र के उदाहरण पिछले सूत्र में दे चुके हैं । पर्यषहत । पर्यसहत । इत्यादि ॥ ८१९ ॥

८२०—अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेऽप्राणिषु ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७२ ॥

अप्राणी अभिधेय हो तो अनु, वि, परि, अभि, नि इन उपसर्गों से परे स्यन्द धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश हो । अनुस्यन्दते । विष्यन्दते । परिष्यन्दते । अभिष्यन्दते । निष्यन्दते । तैलम् । अनुस्यन्दते । विष्यन्दते । परिष्यन्दते । अभिष्यन्दते । निष्यन्दते । अप्राणियहण से यहां न हुआ । अनुस्यन्दते मस्य उदके । अनुस्यन्दते हस्ती । अप्राणिषु, यह पर्युदास प्रतिषेध है इस से जहां प्राणि अप्राणि दोनों का विषय है वहां भी मूर्धन्यादेश हो जाता है यहां ऐसा भाष्यकार का इङ्गित मालूम होता है । अनुष्यन्दते । मस्योदके ॥ ८२० ॥

८२१—वेः स्कन्देरनिष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७३ ॥

निष्ठा प्रत्यय न परे हो तो वि उपसर्ग से परे स्कन्द धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश विकल्प करके हो । विष्कन्ता । विस्कन्ता । विष्कन्तुम् । विस्कन्तुम् । विष्कन्तव्यम् । विस्कन्तव्यम् । अनिष्टायहण से यहां न हुआ । विस्कन्नः ॥ ८२१ ॥

८२२—परेश्व ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७४ ॥

परि उपसर्ग से परे स्कन्द धातु के सकार को मूर्धन्यादेश विकल्प करके हो । परिष्कन्ता । परिष्कन्तुम् । परिष्कन्तव्यम् । परिस्कन्ता । परिस्कन्तुम् । परिस्कन्तव्यम् । यह सूत्र जो पिछले सूत्रसे अलग किया है इस से जानना चाहिये कि पिछले सूत्र से यहां 'अनिष्ठायाम्', इस पद की अनुवृत्ति नहीं आती है ॥ ८२२ ॥

८२३—परिस्कन्दः प्राच्यभरतेषु ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७५ ॥

प्राच्यभरत अभिधेय होतो (परिस्कन्द) यहां मूर्धन्यादेश का अभाव निपातन है । परिस्कन्दः । प्राच्यभरतो से अग्यञ् । परिष्कन्दः । यह होता है ॥ ८२३ ॥

८२४—स्फुरतिस्फुलत्योर्निनिविभ्यः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७६ ॥

निम्, नि, वि इन के उत्तर स्फुरति और स्फुलति के सकार को मूर्धन्यादेश विकल्प करके हो । स्फुरति, निष्फुरति । निस्स्फुरति । निस्फुरति । निष्फुरति । विस्फुरति । विष्फुरति । स्फुलति, निष्फुलति । निस्स्फुलति । निस्फुलति । निष्फुलति । विष्फुलति । विस्फुलति ॥ ८२४ ॥

८२५—वेः स्कभ्नातेर्नित्यम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ७७ ॥

वि से परे स्कभ्नाति के सकार को मूर्धन्य आदेश हो । विष्कभ्नाति । विष्कभिता । विष्कभितुम् । विष्कभितव्यम् ॥ ८२५ ॥

८२६—समासिङ्गुलेः सङ्गः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८० ॥

समास में अङ्गुलि शब्द से परे सङ्ग शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश हो । अङ्गुलेः सङ्गः, अङ्गुलिषङ्गः । समासग्रहण से यहां न हुआ । अङ्गुलेः सङ्गं पश्य ॥ ८२६ ॥

८२७—भीरोः स्थानम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८१ ॥

समास में भीरु शब्द से उत्तर स्थान शब्द के सकार को मूर्धन्यादेश हो । भीरु-ष्ठानम् । समासग्रहण से यहां न हुआ । भीरोः स्थानं पश्य ॥ ८२७ ॥

८२८—अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८२ ॥

अग्नि शब्द से परे स्तुत्, स्तोम, सोम इन के सकार को मूर्धन्य आदेश हो ।

अग्निष्टुत् । अग्निष्टोमः । अग्नीषोमी । दीर्घअग्नि शब्द से परे मूर्धन्यादेश इष्ट है इस से यहां न हुआ । अग्निषोमी माणवकौ ॥ समासग्रहण से यहां न हुआ । अग्निं सोमं पश्य ॥ ८२८ ॥

८२९—ज्योतिरायुषः स्तोमः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८३ ॥

समास में ज्योतिस् और आयुस् शब्द से परे स्तोम शब्द के सकार को मूर्धन्यादेश है । ज्योतिष्टोमः । आयुष्टोमः । समासग्रहण से यहां न हुआ । ज्योतिः स्तोमं दर्शयति ॥ ८२९ ॥

८३०—मादृषित्वभ्यां खसा ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८४ ॥

समास में मादृ और पितृ से परे खस शब्द के सकार को मूर्धन्यादेश है । मादृषसा । पितृषसा ॥ ८३० ॥

८३१—मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८५ ॥

समास में मातुर् और पितुर् से परे खस शब्द के सकार को मूर्धन्यादेश विकल्प करके है । मातुःषसा । मातुःखसा । पितुःषसा । पितुःखसा । समासग्रहण से वाक्य में न हुआ । मातुः खसा ॥ ८३१ ॥

८३२—अभिनिस्तनः शब्दसंज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८६ ॥

शब्दसंज्ञा गम्यमान हो तो अभि निस् से परे स्तन धातु के सकार को विकल्प करके मूर्धन्यादेश है । अभिनिष्ठानो वर्णः । अभिनिष्ठानी विसर्जनीयः । अभिनिस्तानो वर्णः । अभिनिस्तानो विसर्जनीयः । शब्दसंज्ञा से अन्यत्र । अभिनिस्तनति मृदङ्गः ॥ ८३२ ॥

८३३—उसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८७ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त और प्रादुस् शब्द से परे यकार और अच् जिस से परे है उस अस् धातु के सकार को मूर्धन्यादेश है । अभिषन्ति । निषन्ति । विषन्ति । प्रादुषन्ति । अभिष्यात् । निष्यात् । विष्यात् । प्रादुष्यात् । उसर्गग्रहण से यहां न हुआ । दधि स्यात् । मधुस्यात् । अस्तिग्रहण से यहां न हुआ । अनुसृतम् । यच्परग्रहण से यहां न हुआ । निस्तः । विस्तः । प्रादुस्तः ॥ ८३३ ॥

८३४—सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८८ ॥

सु, वि, निर् और दुर् से परे सुपि, सूति और सम के सकार को मूर्धन्यादेश है (सुपि) यह संप्रसारण किये हुए स्वप् धातु का ग्रहण है । सुषुप्तिः । सुषुप्तः । विषुप्तः । निषुप्तः । दुषुप्तः । सूति, सुपूतिः । विषूतिः । निषूतिः । दुषूतिः । सम, सुषमम् । विषमम् । निषमम् । दुषमम् ॥ ८३४ ॥

८३५—निनदीभ्यां स्नातेः कौशले ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८६ ॥

कुशलता गम्यमान ही तो नि और नदी से परे स्नाति के सकार को मूर्धन्यादेश हो । निष्णातः शिल्पशास्त्रे । नद्यां स्नातीति नदीष्णः * । कौशलग्रहण से यहां न हुआ । निस्नातः । नद्यां स्नातो नदीस्नातः ॥ ८३५ ॥

८३६—सूत्रं प्रतिष्ठातम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८७ ॥

सूत्र वाच्य ही तो प्रतिष्ठात यह निपातन है । प्रतिष्ठातं सूत्रम् । सूत्र शुद्ध है । यहां प्रति से स्ना धातु के सकार को मूर्धन्यादेश हुआ । सूत्र से अन्यत्र । प्रतिस्नातम् होगा ॥ ८३६ ॥

८३७—कपिष्ठलो गोत्रे ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८८ ॥

गोत्रविषयक कपिष्ठल शब्द के सकार को मूर्धन्यादेश निपातन है । कपिष्ठल जिस का नाम है वह कापिष्ठलि पुत्र है । अन्यत्र । कपेः स्थलम् कपिस्थलम् ॥ ८३७ ॥

८३८—प्रष्टोऽग्रगामिनि ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ८९ ॥

अग्रगामी अभिधेय ही तो 'प्रष्ट', यह निपातन है । प्रतिष्ठत इति प्रष्टः । आगे चलता है । यहां प्र से परे स्था धातु के सकार को मूर्धन्यादेश निपातन किया है । अग्रगामिग्रहण से यहां न हुआ । ब्रौहीनां प्रस्थः ॥ ८३८ ॥

८३९—वृक्षासनयोर्विष्टरः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ९० ॥

वृक्ष और आसन वाच्य ही तो वि उपसर्ग से परे स्ठणाति धातु के सकार को मूर्धन्यादेश निपातन है । विष्टरो वृक्षः । विष्टरम् आसनम् । वृक्षासनग्रहण से यहां न हुआ । वाक्यस्य विस्तारः ॥ ८३९ ॥

८४०—छन्दोनामि च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ९१ ॥

छन्दोनामविषय में वि पूर्वक स्ठञ् धातु के सकार को मूर्धन्यादेश निपातन है । विष्टारपङ्क्तिः । विष्टारवृहती । छन्दोनामग्रहण से यहां न हुआ । पटस्य विस्तारः ॥ ८४० ॥

८४१—गवियुधिभ्यां स्थिरः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ९२ ॥

गवि और युधि शब्द से परे स्थिर शब्द के सकार को मूर्धन्यादेश ही । गवि-ष्ठिरः । युधिष्ठिरः । इस सूत्र में जी गवि, सप्तम्यन्त गोशब्द से मूर्धन्यादेश का विधान है इस आपन से समास में गोशब्द से सप्तमी का अलुक् होता है ॥ ८४१ ॥

* (सुपिथः) इस सूत्र में योगविभाग किया है उस से 'नदीष्णः' यहां क प्रत्यय होता है ॥

८४२—विकुशमिपरिभ्यः स्थलम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६६ ॥

वि, कु, शमि, परि इन से स्थल शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश हो । विठ-
सम् । कुठलम् । शमिठलम् । परिठलम् । अन्यत्र कुशस्थली । मरुस्थली ॥ ८४२ ॥

८४३—अस्वाम्बगोभूमिसव्यपद्विविकुशकुशङ्कुमञ्जिपुञ्जि

परमेवहिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६७ ॥

अस्व, आस्व, गो, भूमि, सव्य, अप, द्वि, त्रि, कु, श्रेकु, शङ्कु, अङ्कु, मञ्जि, पुञ्जि,
परमे, बर्हिस्, दिवि, अग्नि इन से परे स्थ शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश हो ।
अस्वष्ठः । आस्वष्ठः । गोष्ठः । भूमिष्ठः । सव्येष्ठः । अपष्ठः । द्विष्ठः । त्रिष्ठः ।
कुष्ठः । श्रेकुष्ठः । शङ्कुष्ठः । अङ्कुष्ठः । मञ्जिष्ठः । पुञ्जिष्ठः । परमेष्ठः । बर्हिष्ठः ।
दिविष्ठः । अग्निष्ठः ॥ ८४३ ॥

८४४—वा०—स्वास्थिन्स्थूणामिति वक्तव्यम् ॥

सव्येष्ठाः । परमेष्ठी । सव्येष्ठा ॥ ८४४ ॥

८४५—सुषामादिषुच ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६८ ॥

सुषामादिक शब्दों में सकार को मूर्धन्य आदेश होता है । शोभनं साम यस्यासौ
सुषामा ब्राह्मणः । निष्षामा । दुष्पेधः, इत्यादि ॥ ८४५ ॥

८४६—एति संज्ञायामगात् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ६९ ॥

संज्ञाविषय में एकार परे होती इण् और गरहित कवर्ग से परे सकार को
मूर्धन्य आदेश हो । हरिषेणः । वारिषेणः । जानुषेणी । एकार से अन्यत्र । हरि-
सक्तम् । संज्ञासे अन्यत्र । पृथ्वी सेना यस्य स पृथुसेनो राजा । अगात् के ग्रहण
से यहां न हुआ । विष्वक्सेनः । इण्, कु से अन्यत्र । सर्वसेनः ॥ ८४६ ॥

८४७—नक्षत्राहा ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०० ॥

संज्ञा विषय में एकार परे होती इण् और गकारभिन्न कवर्गवान् नक्षत्र वाची
शब्द से परे सकार को मूर्धन्य आदेश विकल्प करके हो । रोहिणिषेणः । रोहिणिसेनः ।
भरणिषेणः । भरणिसेनः । गकार के निषेध से यहां न हुआ । शतभिषक्सेनः ॥ ८४७ ॥

८४८—ऋस्वात्तादौतद्धिते ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०१ ॥

तकारादि तद्धित परे होती ऋस्व से परे सकार को मूर्धन्य आदेश हो ।
तकारादि तद्धित । तर, तम, तय, त्व, तल्, तस्, त्वप् । तर, सर्पिष्टरम् ।
यजुष्टरम् । तम, सर्पिष्टमम् । यजुष्टमम् । तय, चतुष्टयम् । चतुष्टयी शब्दानां
प्रवृत्तिः । त्व, सर्पिष्टम् । यजुष्टम् । तल्, सर्पिष्टा । यजुष्टा । तस्, सर्पिष्टः ।

त्यप्, आविध्यः । छस्वग्रहण से यहां न हुआ धूस्तरा । गीस्तरा । तादिग्रहण से यहां न हुआ । सर्पिस्सा इवति । तद्धित से अन्यत्र सर्पिस्तर्पयति ॥ ८४८ ॥

८४९—निसस्तपतावनासेवने ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०२ ॥

तप धातु परे ही तो अनासेवन अर्थ में निस् के सकार को मूर्धन्यादेश हो । आसेवन (वारं करना) अर्थ न हो वह अनासेवन कहावे । निष्टपति सुवर्णम् । अग्नि से सुवर्ण को एक बार तपाता है । अनासेवन ग्रहण से यहां न हुआ । निस्तपति पाणिं विष्णुमित्रः ॥ ८४९ ॥

८५०—युष्मत्तत्तत्तत्तुःष्वन्तःपादम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । १०३ ॥

तकारादि युष्मत्, तत् और तत्तत्तुस् परे ही तो सकार को मूर्धन्यादेश हो जा वह सकार पाद के मध्य में हो तो । तकारादि युष्मत् । त्वं, त्वां, ते, तव, । त्वं, अग्निष्ट्वं नामासीत् । त्वा, अग्निष्ट्वा वर्धयामसि । ते, अग्निष्टे विश्वमानया तव, अस्मिन् सधिष्टव । तत्, अग्निष्टद्विष्टमाष्ट्याति । तत्तत्तुस्, यावाष्टयिषौ निष्टतत्तुःषु । अन्तःपादग्रहण से यहां न हुआ । नित्यमात्मनोविदाभूदग्निस्तत् पुनराहं जातवेदो विचर्षणिः ॥ ८५० ॥

८५१—यजुष्येकेषाम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०४ ॥

यजुर्वेद के विषय में तकारादि युष्मद्, तत् और तत्तत्तुस् परे ही तो किङ्करी एक आचार्यों के मत से सकार को मूर्धन्यादेश हो । अर्चिर्भिष्टम् । अर्चिर्भिस्त्वम् । अग्निष्टेयम् । अग्निस्तेयम् । अग्निष्टत् । अग्निस्तत् । अर्चिर्भिष्टतत्तुः । अर्चिर्भिस्तत्तुः ॥ ८५१ ॥

८५२—स्तुतस्तोमयोश्चन्दसि ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०५ ॥

किङ्करी एक आचार्यों के मत से वेदविषय में इण् कवर्ग से परे स्तुत और स्तोम शब्द के सकार को मूर्धन्यादेश हो । त्रिभिष्टुतस्य । गोष्टोमं षोडशिनम् । गोस्तोमं षोडशिनम् ॥ ८५२ ॥

८५३—पूर्वपदात् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०६ ॥

किङ्करी एक आचार्यों के मत में पूर्वपदस्थ निमित्त से परे वेदविषय में सकार को मूर्धन्यादेश हो । द्विषन्धिः । त्रिषन्धिः । द्विसन्धिः । तिसन्धिः । मधुष्ठानम् । मधुस्थानम् । द्विषाहस्त्रं चिन्वीत । इस सूत्र में पूर्वपदमात्र का ग्रहण किया है इस से असमास में भी पूर्वपद से परे सकार को मूर्धन्यादेश होता है । त्रिः समृद्धत्वाय । त्रिः समृद्धत्वाय ॥ ८५३ ॥

८५४—सुजः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०७ ॥

वेदविषय में पूर्वपदस्थ निमित्त से परे सुज् निपात के सकार को मूर्धन्यादेश ही । अभीषुणः सखीनाम् । ऊर्ध्व ऊषुणः ॥ ८५४ ॥

८५५—सनीतेरनः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०८ ॥

इण्कवर्ग से परे नकारभिन्न सन् धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश ही । गोषाः । नृषाः । नकार के निषेध से यहां न हुआ । गोषनिं वाचमुदीरयन् ॥ ८५५ ॥

८५६—सहः घृतनत्ताभ्यां च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १०९ ॥

घृतना और ऋत से सह धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश ही । घृतनाषाहम् । ऋताषाहम् । अन्यत्र । विश्वसाट् । चकार अनुक्त समुच्चय के लिये है इस से ऋतीषहम् । यहां भी मूर्धन्य होता है ॥ ८५६ ॥

८५७—न रपरस्वपिस्वजिस्वशिस्वहिसवनादीनाम् ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११० ॥

जिस से रेफ परे हो उस सकार को तथा स्वपि, स्वजि, स्वशि, स्वहि और सवनादिकी के सकार को मूर्धन्य आदेश न हो । विस्त्रसिकायाः काण्डं जुहोति । विस्त्रव्यः कथयति । स्वपि, पुराक्रूरस्य विस्वपः । स्वजि, याचो विसर्जनात् । स्वशि, दिविस्पृशम् । स्पृहि, निस्पृहं कथयति । सवनादि, सवते सबने । सूते सूते । इत्यादि । इस सूत्र में जो 'अश्वसनि, शब्द का ग्रहण किया है इस आपन से अनियन्त से भी परे सकार को मूर्धन्यादेश होता है । जैसे । जलाषाहम् । अश्वषाः ॥ ८५७ ॥

८५८—सात्पदायोः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । १११ ॥

सात् और पदादि सकार को मूर्धन्य आदेश न हो । सात्, अग्निसात् । दधिसात् । मधुसात् । पदादि, दधि सिञ्चति । मधु सिञ्चति ॥ ८५८ ॥

८५९—सिचो यडि ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११२ ॥

यड् परे हो तो सिच् के सकार को मूर्धन्यादेश न हो । सेसिञ्चते । अभिसेसिञ्चते । यङ्ग्रहण से यहां न हुआ । अभिषिषिञ्चति ॥ ८५९ ॥

८६०—सेधतेर्गतौ ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११३ ॥

गति अर्थ में वर्तमान सेधति के सकार को मूर्धन्यादेश न हो । अभिसेधयति गाः । परिसेधयति गाः । गतिग्रहण से यहां निषेध न हुआ । प्रतिषेधयति गाः ॥ ८६० ॥

८६१—प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११४ ॥

प्रतिस्तब्ध और निस्तब्ध ये मूर्धन्यादेश प्रतिषेध के लिये निपातन है । प्रतिस्तब्धः । निस्तब्धः ॥ ८६१ ॥

८६२—सोढः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११५ ॥

सोढ् के सकार को मूर्धन्य आदेश न हो 'सोढ्' यह सह धातु का होता है ।
परिसोढः । परिसोढम् । परिसोढव्यम् । सोढग्रहण से यहां नहुआ । परिषहते ॥ ८६२ ॥

८६३—स्तम्भसिवुसहं चङि ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११६ ॥

चङ् परे होता स्तम्भ, सिवु और सह के सकार को मूर्धन्यादेश नहीं । स्तम्भसि-
वुसहं चङ्युपसर्गात् । महाभाष्य ८ । ३ । ११६ । स्तम्भ, सिवु, सह इन को उपसर्ग
से जो प्राप्ति है उसका निषेध हो किन्तु अभ्यास से जो प्राप्ति उसका न हो स्तम्भ,
पर्यंतस्तम्भत् । अभ्यतस्तम्भत् । सिवु, पर्यंतसीषिवत् । न्यसीषिवत् । सह, पर्यंतसीषहत् ।
व्यसीषहत् ॥ ८६३ ॥

८६४—सुनोतेः स्यसनोः ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११७ ॥

सुनोति के सकार को मूर्धन्यादेश नहीं । अभिसोथति । परिसोथति । अभ्यसो-
थत् । पर्यंतसोथत् । स्य सन् ग्रहण से यहां नहुआ । सुषाव ॥ ८६४ ॥

८६५—सदेः*परस्य लिटि ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११८ ॥

लिट् परे होता अभ्यास से परे सद् के सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं ।
अभिषसाद् । परिषसाद् । निषसाद् । विषसाद् ॥ ८६५ ॥

८६६—वा०—सटो लिटि प्रतिषेधे स्वञ्जेरुपसंख्यानम् ॥

लिट् के परे सद् धातु के प्रतिषेध में स्वञ्ज को भी मूर्धन्यादेश का प्रतिषेध
कहना चाहिये । परिष्वजे । परिष्वजते ॥ ८६६ ॥

८६७—निव्यभिभ्योड्यवाये वाच्छन्दसि ॥ अ० ॥ ८ । ३ । ११९ ॥

वेदविषय में नि, वि, अभि इन उपसर्गों से परे अट् का व्यवधान ही वा न
हो तो सकार को मूर्धन्य आदेश विकल्प करके हो । न्यषीदत् पिता नः । व्यषी-
दत् । व्यसीदत् । अभ्यष्टीत् । अभ्यस्तीत् ॥ ८६७ ॥

इति षत्वप्रक्रिया समाप्ता ॥

* (सदेः०) इस सूत्र में काशिकाकार ने स्वञ्ज धातु को भी मिलाकर मूल सूत्र का अन्वया पाठ 'सदिव्यञ्जोः
परस्य लिटि' करके व्याख्यान किया है यह उनका व्याख्यान अनादरणीय है क्योंकि स्वञ्ज धातु के लिये तो
महाभाष्य में वार्तिक ही पढ़ा है ॥

॥ अथ णत्वप्रक्रियाप्रारम्भः ॥

८६८—रषाभ्यां नो णः समानपदे ॥ अ० ॥ ८। ४। १ ॥

रेफ और षकार से परे नकार को णकारादेश हो । अषगीर्णम् । अषगूर्णम् । कुष्णाति । पुष्णाति । सुष्णाति । समानपद ग्रहणसे यहां न हुआ । अग्निर्नयति । वायुर्नयति । इस सूत्र में षकारग्रहण प्रगले सूत्रों के लिये है क्यों कि षकार से परे नकार को णत्वादेश श्रुत्व से भी हो जाता है । रषाभ्यां णत्वे ऋकार ग्रहणम् । महाभाष्य० ८। ४। १ र और ष से परे णत्वादेशविधानमें ऋकार का भी ग्रहण करना चाहिये । मातृणाम् । पितृणाम् । अथवा क्षुम्भादिगण में जो नृनमन और तृप्नोति शब्द का पाठ है इस ज्ञापन से भी ऋकार से परे नकार को णत्वादेश होता है ॥ ८६८ ॥

८६९—अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेपि ॥ अ० ॥ ८। ४। २ ॥

अट्, कु, पु, आङ्, नुम् इन से व्यवधान में भी रेफ षकार से परे नकार को णकारादेश होता है । अट्, कुरुणा । गुरुणा । किरिणा । गिरिणा । कवर्ग, अर्केण मूर्खेण । पवर्ग, दर्पेण । रेफेण । गर्भेण । कर्मणा । चर्मणा । वर्मणा । आङ्, पर्याण्डम् । अट्ग्रहण से भी आङ्व्यवाय में सिद्ध था फिर आङ् ग्रहण (पदव्यवाये च) इस प्रतिषेध के बाधने के लिये है । नुम्, वृंहणम् । वृंहणीम् । यहां नुम्ग्रहण अनुस्वार का उपलक्षणमात्र है । इस से उक्त (वृंहणम्, वृंहणीयम्) उदाहरणों में नुम् के अभाव में अनुस्वार के व्यवधान से णत्वादेश होता है । नुम् के होते भी जहां अनुस्वार नहीं होता वहां नहीं होता है । प्रेन्वनम् । प्रेन्वनीयम् ॥ ८६९ ॥

८७०—पूर्वपदात् संज्ञायामगः ॥ अ० ॥ ८। ४। ३ ॥

संज्ञा विषय में गकारभिन्न पूर्वपदस्थनिमित्त से परे नकार को णकारादेश हो । द्रुणसः । खरणसः । शूर्पणखा । संज्ञा से अन्यत्र । चर्मनासिकः । अगग्रहण से यहां न हुआ । ऋगयनम् ॥ ८७० ॥

८७१—वनं पुरगाभिश्चकासिधकाशारिकाकोटराग्नेभ्यः

॥ अ० ॥ ८। ४। ४ ॥

संज्ञाविषय में पुरगा, मिश्रगा, सिधका, शारिका, कोटरा, अग्ने, इन्ही पूर्वपदों से परे वन शब्द के नकार को णकारादेश हो औरों से न हो । पुरुगावणम् ।

मिश्रकावणम् । सिधकावणम् । शारिकावणम् । कोटरावणम् । अथेवणम् । औरी से न हो । जैसे । कुवेरवनम् । शतधारवनम् । असिपत्रवनम् ॥ ८७१ ॥

८७२-प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्नाकार्यखदिरपीयूक्षाम्भ्योऽ-
संज्ञायामपि ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ५ ॥

संज्ञा वा असंज्ञा विषय में प्र, निर्, अन्तर्, शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्ना, कार्य, खदिर, पीयूक्षा इन से परे वन शब्द के नकार को णकारादेश हो । प्रवणे यष्टव्यम् । निर्वणे प्रतिधीयते । अन्तर्वणम् । शरवणम् । इक्षुवणम् । प्लक्षवणम् । आम्नावणम् । कार्यवणम् । खदिरवणम् । पीयूक्षवणम् ॥ ८७२ ॥

८७३-विभाषौषधि*वनस्पतिभ्यः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ६ ॥

निमित्तवान् औषधि और वनस्पति वाचक जो पूर्वपद उस से परे वन शब्द के नकार को णकारादेश विकल्प करके हो । औषधि, दूर्वावणम् । दूर्वावनम् । मूर्वावणम् । मूर्वावनम् । वनस्पति, शिरीषवणम् । शिरीषवनम् । बदरीवणम् । बदरीवनम् । ह्यक्षरयक्षरेभ्य इति वक्तव्यम् । महाभाष्य० ८ । ४ । ६ । दो अक्षर और तीन अक्षर वाले औषधि वनस्पतियों से ही औरों से न हो । देवदारुवनम् । भद्रदारुवनम् ॥ ८७३ ॥

८७४-वा०-इरिकादिभ्यः प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

इरिकादिकों से परे नकार के णत्वादेश का प्रतिषेध कहना चाहिये । इरिकावनम् । तिमिरकावनम् ॥ ८७४ ॥

८७५-अक्रोदन्तात् ॥ अ० ॥ ४ । ७ ॥

निमित्तवान् अदन्त जो पूर्वपद उस से परे अक्र के नकार को णकारादेश हो । पूर्वाह्नः । अपराह्नः । अदन्तग्रहण से यहां न हुआ । निरक्रः । अक्र के ग्रहण से यहां न हुआ । दौर्वाह्नी ॥ ८७५ ॥

८७६-वाहनमाहितात् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ८ ॥

आहितवाचौ निमित्तवान् पूर्वपद से परे वाहन शब्द के नकार को णकारादेश हो । यहां गाढ़ी आदि में भर के जो वस्तु से चले उस का ग्रहण आहित शब्द से है । इक्षुवाहनम् । शरवाहनम् । दर्भवाहनम् । आहितग्रहण से यहां न हुआ । दात्रिवाहनम् । गर्गवाहनम् । यहां गमनक्रिया नहीं विवक्षित है ॥ ८७६ ॥

* उज्जिजाः स्थावरास्तुर्वे बीजकाष्ठप्ररोहिणः । औषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ १ ॥

अपुष्पाः फलवन्तीये ते वनस्पतयः स्मृताः । पुष्पिणः फलिनश्चैव ह्येतास्तुभ्यतः स्मृताः ॥ अनुस्मृतिअध्याय-१२ श्लो० ४७

८७७—पानं देशे ॥ अ० ॥ ८। ४। ६ ॥

देश अभिधेय होता पूर्वपदस्थ निमित्त से परे पान शब्द को नकार को णकारादेश हो। पौयत इति * पानम् जो पियाजाय वह पान कहावे। क्षीरं पानं येषान्ते क्षीर-पाणाः उशीनराः। सुरापाणाः प्राच्याः। सौवीर पाणाबाह्वीकाः। कषायपाणा गान्धाराः। इन उदाहरणों में मनुष्याभिधान से भी देशाभिधान की प्रतीति होती है। देशग्रहण से यहां न हुआ। दाक्षिपानम् ॥ ८७७ ॥

८७८—वां भावकरणयोः ॥ अ० ॥ ८। ४। १० ॥

पूर्वपदस्थ निमित्त से परे भाव और करण में जो पान शब्द उसके नकार को णकारादेश हो। भाव, क्षीरपाणम्। क्षीरपानम्। कषायपानम्। कषायपाणम्। करण, क्षीरपाणः। क्षीरपानः। कमण्डलुः ॥ ८७८ ॥

८७९—वा०—वाप्रकरणे गिरिनद्यादीनामुपसंख्यानम् ॥

वाप्रकरण में गिरिनद्यादि कों की गणना करना चाहिये। गिरिनदी। गिरिणदी। चक्रणितम्बा। चक्रनितम्बा ॥ ८७९ ॥

८८०—प्रातिपदिकान्तनुम्बिभक्तिषु च ॥ अ० ॥ ८। ४। ११ ॥

पूर्वपदस्थ निमित्त से परे प्रातिपदिकान्त नुम् और विभक्तिस्थ नकार को णकारादेश हो। प्रातिपदिकान्त, माषवापिणी। माषवापिनी। नुम् माषवापाणि। माषवापानि। विभक्ति, माषवापेण। माषवापेन। ब्रौहिवापेन। ब्रौहिवापेण। पूर्वपद के अधिकार से उत्तरपद का प्रातिपदिकस्थ अन्त्य जो नकार है उस को णत्वादेश विधान है। इस से यहां नहीं होता। गर्गाणां भगिनी, गर्भभगिनी। दक्षभगिनी। और जब यह वाक्य ही। गर्गाणां भगो गर्गभगः। गर्गभगोऽस्याअस्तीति, गर्गभगिणी। तब (८८३) अगले सूत्र से नित्य णत्वादेश होता है। माषवापिणी। माषवापिनी। यहां भी णकार विकल्प से होता है क्योंकि 'गति-कारकोपपदानां कृद्धिस्सह समासवचनं प्राक् सुवृत्ततेः' इस परिभाषा से कृदन्त के साथ ही में समास होने से कृत्संज्ञक प्रत्यय का नकार प्रातिपदिकान्त ही माना जाता है। इसी हेतु से सूत्र में नुम्काग्रहण अलग किया है क्योंकि नुम् समुदाय का भक्त है अतएव प्रातिपदिकान्त नहीं होता है ॥ ८८० ॥

८८१—वा०—युवादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः ॥

प्रातिपदिकान्तादिनकार को णत्वविधान में युवादिकों का प्रतिषेध कहना चाहिये। आर्ययूना। क्षत्रिययूना। प्रपक्वानि। परिपक्वानि। दीर्घान्ही शरत् ॥ ८८१ ॥

८८२—एकाजुत्तरपदेशः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १२ ॥

जिस में एकाच् उत्तर पद है उस समास में पूर्वपदस्थ निमित्त से परे प्रातिपदिकान्त नुम् और विभक्ति के नकार को णकारादेश हो । वृत्रहणौ । वृत्रहणः । नुम्, क्षीरपाणि । सुरापाणि । विभक्ति, क्षीरपेण । सुरापेण । ण, वर्तमान था फिर णग्रहण पूर्वविकल्प के बाधने के लिये है ॥ ८८२ ॥

८८३—कुसतिच ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १३ ॥

कवर्गवान् उत्तर पद वाले समास में पूर्वपदनिमित्त से परे प्रातिपदिकान्त नुम् और विभक्तिस्थ नकार को णकारादेश हो । वस्त्रयुगिणौ । वस्त्रयुगिणः । स्वर्गकामिणौ । वृषमामिणौ । नुम्, वस्त्रयुगाणि । स्त्रयुगाणि । विभक्ति, वस्त्रयुगेण । स्त्रयुगेण ॥ ८८३ ॥

८८४—उपसर्गादसमासेऽपिणोषदेशस्य ॥ अ० ॥ ४ । ८ । १४ ॥

समास वा असमास में उपसर्गस्थ निमित्त से परे णोपदेश धातु के नकार को णकारादेश हो । प्रणमति । परिणमति । प्रणयनम् । प्रणायकः । परिणायकः । उपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । प्रगतानासका अस्माद् देशात् प्रनायकोदेशः । असमासग्रहण समास की निवृत्ति के लिये है क्योंकि पूर्वपद के अधिकार से समास ही में प्राप्ति थी । णोपदेशग्रहण से यहां न हुआ । परिनेहति । परिवृत्त्यति ॥ ८८४ ॥

८८५—हिनुमीना ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १५ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे हिनु, मीना इन के नकार को णकारादेश हो । प्रहिणोति । प्रहिणुतः । प्रमीणाति । प्रमीणीतः ॥ ८८५ ॥

८८६—आनिलोट् ॥ अ० । ८ । ४ । १६ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे लोट् लकार के आदेश आनि शब्द के नकार को णकारादेश हो । प्रवपाणि । परिवपाणि । प्रयाणि । परियाणि । लोट् ग्रहण से यहां न हुआ । प्रवपानि । मांसानि ॥ ८८६ ॥

८८७—नेर्गदनदपतपदधुमास्त्वतिहन्तिवातिवातिद्रातिप्साति-
वप्रतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषुच ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १७ ॥

गद, नद, पत, पद, धुसंज्ञक, (दुद्वाञ् दाण् दो देङ् डुधाञ् धेट्) मा, (माङ् मेङ्) सो, हन्, या, वा, द्रा, प्सा, धुवप्, वह, शसु, चिञ्, दिह, ये धातु परे होते उपसर्गस्थ निमित्त से परे नि के नकार को णकारादेश हो । गद, प्रणिगदति । नद, प्रणिनदति । परिणिनदति । पत, प्रणिपतति । परिणिपतति ।

पद्, प्रणिपद्यते । परिणिपद्यते । पु, प्रणिददाति । प्रणिदात् । प्रणियवहति ।
 प्रणियति । प्रणिदयते । प्रणिदधाति । प्रणिधवति । मा, प्रणिमिमीते । प्रणिमयते ।
 सो, प्रणियति । परिणियति । हन्, प्रणिहन्ति । या, प्रणियाति । वा, प्रणिवाति ।
 द्रा, प्रणिद्राति । स्वा, प्रणिष्ठाति । डुवप्, प्रणिवपति । परिणिवपति । वच्,
 प्रणिवहति । शसु, प्रणिशाम्यति । चिञ्, प्रणिचिनोति । दिह, प्रणिदेग्वि । यहाँ
 (८६६) सूत्र से अङ्गव्याय का अनुवर्तन कर भट् के व्यवधान में भी नि के नकार
 को णकारादेश होता है । प्रख्यगदत् । प्रख्यागदत् ॥ ८८७ ॥

८८८—शेषे विभाषाकखादावधान्त उपदेशे ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १८ ॥

उपदेश अवस्था में क, ख जिस के आदि में घोर व चस्त में न ही ऐसा पूर्वोक्तों
 से शेष धातु परे ही तो उपसर्गस्थ निमित्त से परे नि के नकार को णकारादेश
 विकल्प करके ही । प्रणिपचति । प्रनिपचति । प्रणिमिनक्ति । प्रनिमिनक्ति ।
 पकखादिग्रहण से यहाँ न हुआ । प्रनिकरोति । प्रनिखादति । पषान्तग्रहण से
 यहाँ न हुआ । प्रनिपिनष्टि । उपदेशग्रहण का यह फल है कि । प्रनिचखाद ।
 प्रनिचकार । प्रनिपेक्षति । इत्यादिकों में प्रतिषेध हो । तथा विध, प्रणिषेठा ।
 प्रणिवेक्षति । यहाँ प्रतिषेध न हो ॥ ८८८ ॥

८८९—अनितेरन्तः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । १९ ॥

अन्त (समीपवर्ती) को उपसर्गस्थ रेफ उस से परे अन धातु के नकार को णका-
 रादेश हो । हेप्राण् । हेपराण् । प्राणिति । पराणिति । यह (८०८) सूत्र का अप-
 वाद है । अन्त ग्रहण से यहाँ न हुआ । पर्यनिति । वहाँ दो वर्ण का व्यवधान है
 इस से नकार को णकारादेश नहीं होता एकवर्ण का व्यवधान तो अन धातु का
 जो 'अ, अवयव है उसी से प्राप्त है ॥ ८८९ ॥

८९०—उभौसाभ्यासस्य ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २० ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे अभ्यासगुण अन धातु के दोनों नकारों को णकार
 आदेश हो । प्राणिणिषति । प्राणिणत् । पराणिणिषति । पराणिणत् ॥ ८९० ॥

८९१—हन्तेरत्पूर्वस्य ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २१ ॥

उपसर्गनिमित्त से परे हन् धातु के अकार पूर्वक नकार को णकारादेश हो ।
 प्रहण्यते । परिहण्यते । प्रहणनम् । परिहणनम् । अत्पूर्वग्रहण से यहाँ न हुआ ।
 प्रघ्नन्ति । परिघ्नन्ति । तपरकरण से यहाँ न हुआ । प्राघानि । पराघानि । ये चिण्
 के परे प्रयोग हैं ॥ ८९१ ॥

८६२—वसोर्वा ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २३ ॥

व, ज परे हीतो उपसर्गस्थ निमित्त से परे इन धातु के नकार को णकारादेश विकल्प करके हो । प्रहणः । प्रहन्वः । प्रहणम् । प्रहन्वाः ॥ ८६२ ॥

८६३—अन्तरदेशे ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २३ ॥

देश न अभिधेय हो तो अन्तर् शब्द से परे हन् धातु के अकारपूर्वक नकार को णकारादेश हो । अन्तर्हणनम् । अदेशग्रहण से यहाँ न हुआ । अन्तर्हणनोदेशः । अत्पूर्वग्रहण से यहाँ न हुआ । अन्तरधानि ॥ ८६३ ॥

८६४—अयनं च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २४ ॥

देश न कहा जाय तो अन्तर् शब्द से परे अयन शब्द के नकार को णकारादेश हो । अन्तरयणम् । अदेशग्रहण से यहाँ न हुआ । अन्तरयनो देशः ॥ ८६४ ॥

८६५—कृत्स्न्यद्वयग्रहात् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २५ ॥

वेदविषय में अवग्रह ऋकार जिस के अन्त में हो उस से परे नकार को णकारादेश हो । जो विग्रह में उच्चारण करने से निरवकाश प्रतीत हो वह अवग्रह कहता है । वृमणाः । पिठयानम् । वृ, पिठ ये त्रिग्रह में भिन्न २ भी पद हैं । तथापि यही मकार और वा के साथही ऋ, का उच्चारण होता है ॥ ८६५ ॥

८६६—नञ् धातुस्थोरुष्यः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २६ ॥

वेदविषय में धातुस्थ निमित्त से तत्ता उरु और षु से परे नस् शब्द के नकार को णकारादेश हो । धातुस्थ, पग्ने रक्षाणः । शिखाणो अग्निन् । उरु, उरुणस्त्वृधि । षु, अभीषुणः सखीनाम् । अर्ध्वं ज षु च जतसे ॥ ८६६ ॥

८६७—उपसर्गाद्बहुलम् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २७ ॥

वेदविषय में उपसर्गस्थ निमित्त से परे नस् के नकार को णकारादेश बहुल करके हो । प्रणसः प्रणी राजा । बहुलग्रहण के प्रनोमुद्धतम् । यहाँ नहीं भी होता । भाषा में होता भी है । प्रणसं मुखम् ॥ ८६७ ॥

८६८—कृत्यच्चः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २८ ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे अच् जिस के पूर्व उस कृत्य नकार को णकारादेश हो । अन्, मान, अनौय, अग्नि, इनि और निष्ठादेश में जो नकार उन को णकारादेश होता है । अन्, प्रयाणम् । परियाणम् । प्रमाणम् । परिमाणम् । मान, प्रयायमाणम् । परियायमाणम् । अनौय, प्रयाणौयम् । परियाणौयम् । अग्नि, अपरियाणि । इनि, प्रयायिणी । परिपायिणी । निष्ठादेश, प्रहीणः । परिहीणः ।

प्रहीणवान् । परिहीणवान् । अच् के ग्रहण से यहाँ न हुआ । प्रहृग्नः । परिभृग्नः । भुजा कौटिल्ये से निष्ठा के परे प्रयोग है ॥ ८८८ ॥

८८८—वा०—कृतस्य शत्वे निर्विस्सस्योपसंख्यानं कर्त्तव्यम् ॥

निर्विस्सोहमनेन नासेन ॥ ८८८ ॥

८००—शेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ८ । ४ । २८ ॥

उपसर्गस्य निमित्त से परे श्यन्तधातु से विहित कृततत्स्य अच् पूर्वक जो नकार उस को एकारादेश विकल्प करके हो । प्रयापनम् । प्रयापणम् । परियापणम् । परिदापनम् । विहितविशेषण से 'प्रयाप्यमाणम्', यहाँ यक् प्रत्यय के व्यवधान में नकार को एत्वादेश होता है ॥ ८०० ॥

८०१—हलञ्जेपधात् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३० ॥

उपसर्गस्य निमित्त से परे हलादि इजुपध धातु से परे कृतस्य अच् पूर्वक जो नकार उस को एकारादेश विकल्प करके हो । प्रकीपनम् । प्रकीपणम् । हलग्रहण से यहाँ न हुआ । प्रेङ्णम् । इजुपधग्रहण से यहाँ न हुआ । प्रवपणम् ॥ ८०१ ॥

८०२—इजादिः सनुजः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३१ ॥

उपसर्गस्य निमित्त से परे इजादि सनुम् हलन्त धातु उस से विहित जो कृत प्रत्यय तत्स्य अच् पूर्वक नकार को एकारादेश ही । प्रेङ्खणम् । प्रेङ्गनम् । प्रोञ्जनम् । इस विषय में एकारादेश सिद्ध था फिर एत्वविधान इजादि सनुम् से नियम के लिये है । सनुम् से हो तो इजादि ही सनुम् से ही अन्य से न हो । प्रसङ्गनम् । वहाँ एत्व नहीं होता ॥ ८०२ ॥

८०३—वा निंसनिक्षनिन्दम् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३२ ॥

उपसर्गस्य निमित्त से निंस, निक्ष और निन्द के नकार को एकारादेश विकल्प करके हो । प्रणिसनम् । प्रनिंसनम् । प्रनिक्षनम् । प्रनिक्षणम् । प्रणिन्दनम् । प्रनिन्दनम् ॥ ८०३ ॥

८०४—न भाभूपूकमिगमिष्यांक्विपाम् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३३ ॥

उपसर्गस्य निमित्त से परे भा, भू, पू, कमि, गमि, प्यायि और वेप धातु के कृतस्य नकार को एकारादेश न हो । प्रभानम् । परिभानम् । प्रभवनम् । परिभवनम् । प्रपवनम् । परिपवनम् । प्रकमनम् । परिकमनम् । प्रगमनम् । परिगमनम् । प्रप्यायनम् । परिप्यायनम् । प्रवेपनम् । परिवेपनम् । भादिषु पूज् ग्रहणम् । महाभाष्य ॥ ४ । ३३ । भादिकों में पूज् धातु का ग्रहण करना चाहिये । किन्तु पूज् से नित्य शत्व होता है । प्रपवणं सोमस्य ॥ ८०४ ॥

६०५—त्रा०—खन्तस्य चोपसंख्यानं कर्तव्यम् ॥

प्रभापनम् परिभापनम् ॥ ६०५ ॥

६०६—प्रात्यदान्तात् ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३४ ॥

पदान्त षकार से परे नकार को एकारादेश न हो । निष्पानम् । दुष्पानम् । सर्पिष्पानम् । षग्रहण से यहां निषेध न हुआ । निर्णयः पदान्त ग्रहण से यहां निषेध न हुआ । कुष्णाति । पुष्णाति । 'पदान्तात्' यहां पदेधन्तः यह सप्तमी समास इष्ट है । इस से यहां निषेध न हुआ । सुसर्पिष्केण ॥ ६०६ ॥

६०७—नशेः घान्तस्य ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३५ ॥

षकारान्त नश को एकारादेश न हो । प्रनष्टः । परिनष्टः । घान्तग्रहण से यहां निषेध न हुआ । प्रणश्यति । घन्तग्रहण भूतपूर्व घान्त से भी एत्व के प्रतिषेध के लिये है । प्रनष्ट्यति । परिनष्ट्यति ॥ ६०७ ॥

६०८—पदान्तस्य ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३६ ॥

पदान्त नकार को एकारादेश न हो । वृक्षान् । प्रक्षान् । रामान् ॥ ६०८ ॥

६०९—पदव्यवायेऽपि ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३७ ॥

निमित्त और निमित्ती को पदव्यवधान भी हो तो नकार को एत्वादेश न हो । माषकुम्भवापेन । प्रावनक्षम् ॥ ६०९ ॥

६१०—क्षुभ्नादिषु च ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ३८ ॥

क्षुभ्नादिक शब्दों में नकार को एकारादेश न हो । क्षुभ्नाति । अजादेश के स्थानिवद् भाव से यहां भी निषेध होता है । क्षुभ्नीतः । इत्यादि । अवहितलक्षण एत्वप्रतिषेध क्षुभ्नादिकों में देखना चाहिये ॥ ६१० ॥

इति एत्व प्रक्रिया समाप्ता ॥

॥ अथ कृदन्ते कृत्यप्रक्रियाप्रारम्भः ॥

६११—वासरूपोऽस्त्रियाम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६४ ॥

धात्वधिकार में स्त्री अधिकार के प्रत्ययों को ढोड़ के असरूप (असमानरूप) अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग का बाधक विकल्प करके हो ॥ ६११ ॥

६१२—कृत्याः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ६५ ॥

खुलप्रत्यय से पूर्व जो २ प्रत्यय अब आगे कहें वे सब कृत्य संज्ञक हैं ।

धात्वधिकार में धातु से जिन २ प्रत्ययों का विधान होता है वे प्रथम (३) सूत्र से कृत् संज्ञक होते हैं फिर उन की कृत्य संज्ञा भी होती है ॥ ८१२ ॥

८१३—कर्त्तरि कृत् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६७ ॥

कृत् संज्ञक प्रत्यय कर्त्ता में ही इस से कृत् संज्ञक प्रत्यय कर्त्ता में प्राप्त हुए इस व्यवस्था में ॥ ८१३ ॥

८१४—तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७० ॥

कृत्यसंज्ञक, क्त और खलर्त्थ प्रत्यय भाव और कर्म ही में ही । इस से कृत्य संज्ञक प्रत्ययों का भाव कर्म में सामान्यनियम है (७८८ । ७८४ । ७८५) सूत्रों से प्रेष, अतिसर्ग, प्राप्तकाल, अर्ह और शक्ति अर्थ में भी कृत्य प्रत्ययों का विधान है । इस विषय के उदाहरण भी उन्ही सूत्रों पर देखे हैं वैसे यहां और भी उदाहरण समझना चाहिये ॥ ८१४ ॥

८१५—तव्यत्तव्यानीयरः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ८६ ॥

धातु से तव्यत्, तव्य, और वनीयर् प्रत्यय हो । तकार और रेफ स्वर के लिये है । भाव में उत्सर्गभाव एकवचन और नपुंसक लिङ्ग होता है । अधितव्यम् । अधनीयमनेन । कथितव्यः । कथनीयो वा त्वया धर्मः । कथितुं योग्यः शक्यो वा इत्यादि ॥ ८१५ ॥

८१६—वा०—केलिमर उपसंख्यानम् * ॥

पचेलिमाः । पक्ताव्याः । माषाः । भिदेलिमाः । भेक्ताव्याः । सरलाः । यहाँ कर्म में प्रत्यय है ॥ ८१६ ॥

८१७—वा०—वसेस्तव्यत् कर्त्तरि णिञ्च ॥

वस धातु से कर्त्ता में तव्यत् प्रत्यय और वस णिञ् संज्ञक भी हो यह कहना चाहिये । वसतीति, वास्तव्यः ॥ ८१७ ॥

८१८—कृत्यल्युटो बहुलम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११३ ॥

कृत्य संज्ञक और ल्युट् प्रत्यय बहुल करके हैं । अर्थात् जहाँ २ कहे हैं वहाँ से अन्यत्र भी हैं । जैसे कृत्यसंज्ञक प्रत्यय भाव कर्म से अन्यत्र । स्नात्यनेनेति स्नानीयम् । चूर्णम् । दीयतेऽस्मै, दानीयो विप्रः । ल्युट् प्रत्यय कारण, अधिकरण और भाव में कहेंगे उन से अन्यत्र जैसे । पाच्छाद्यते, पाच्छादनं वासः । प्रस्तम्भ नम् । प्रतपनम् । बहुलग्रहण से और भी कृत् यथाविधान से अन्यत्र भी होते हैं जैसे । पादाभ्यां झियते, पादहारकः । गले चोप्यते, गलेचोपकः ॥ ८१८ ॥

* (केलिमर) इस प्रत्यय की इत्तिकारादिक कोई कर्मकर्त्ता में मानते हैं सी महाभाष्य से विरुद्ध है क्योंकि महाभाष्यकार ने तो उक्त प्रत्यय को कर्मही में दिखवाया है ।

६१६—अचो यत् ॥ अ० ॥ ३।१।६७ ॥

पञ्जरा धातु से यत् प्रत्यय हो । मेयम् । जेयम् । अजग्रहण क्यौ किया हलन्त से तो एत् विधान ही करेंगे । प्रथम जो पञ्जरा धातु है उस से भी हो इस लिये । जैसे । लव्यम् । पव्यम् । यहाँ आगामी आर्द्धधातुक का विषय मान कर गुण और अर्द्धधातुकविषय मान कर प्रकार लोप किये पीछे हलन्त से यत् नहीं प्राप्त है । दिव्यम् । धिव्यम् । यहाँ आगामी आर्द्धधातुकविषय मान कर प्रकार लोप किये पीछे हलन्त से यत् नहीं प्राप्त है ॥ ६१६ ॥

६२०—ईदति ॥ अ० ॥ ६।४।६५ ॥

यत् प्रत्यय परे हो तो आदन्त पङ्क्त को ईकारादेश हो । आदेयम् । गेयम् ॥ ६२० ॥

६२१—वा०—तकिशसिचितयतिजनौनामुपसंख्यानम् ॥

तकि, तक्यम् । शसि, शस्यम् । चति, चत्यम् । यति, यत्यम् । जनि, जन्यम् । यहाँ जन धातु से यत् प्रत्यय का विधान केवल स्वर के लिये है क्यौ कि यत् और एत् में इस का एकसा प्रयोग होता है ॥ ६२१ ॥

६२२—वा०—हनो वध च ॥

हन धातु से यत् प्रत्यय और हन् को वध आदेश विकल्प करके कहना चाहिये वध्यः । दूसरे पक्ष में । घाल्यः । यहाँ आगामी एत् प्रत्यय हो जाता है ॥ ६२२ ॥

६२३—पोरदुपधात् ॥ अ० ॥ ३।१।६८ ॥

अकार जिस के उपधा में हो ऐसे पवर्गान्त धातु से यत् प्रत्यय हो । शप्यम् । लभ्यम् । पवर्गग्रहण से यहाँ न हुआ । पाक्यम् । वाक्यम् । अदुपधग्रहण से यहाँ न हुआ । कोप्यम् । गोप्यम् । तपरकरण दीर्घादिकों को निवृत्ति के लिये है । आप्यम् ॥ ६२३ ॥

६२४—शकिसहोश्च ॥ अ० ॥ ३।१।६९ ॥

शक्त् और सह धातु से यत् प्रत्यय हो । शक्यम् । सक्षम् ॥ ६२४ ॥

६२५—गदमदचरयमश्चानुपसर्ग ॥ अ० ॥ ३।१।१०० ॥

उपसर्ग पूर्व न हो तो नद मद चर और यम धातु से यत् प्रत्यय हो । गद्यम् । मद्यम् । चर्यम् । यम्यम् । अनुपसर्गग्रहण से यहाँ न हुआ । प्रगाद्यम् । प्रमाद्यम् । इस सूत्र में यम धातु का ग्रहण केवल अनुपसर्ग के लिये है क्यौ कि यम धातु से यत् प्रत्यय (६१६) सूत्र से सिद्ध है प्रयाम्यम् । यहाँ यत् न हुआ वक्ष्यमाण एत् प्रत्यय ही गया ॥ ६२५ ॥

६२६—वा०—अनुपसर्गाच्चाङि चागुरौ ॥

अनुपसर्ग चर धातु से यत् के विधान में शुरु अभि धेय न हो तो आङ्पूर्वक

वर धातु से यत् प्रत्यय का विधान करना चाहिये। आचरितुंयोग्य आचर्यदिशः ।
अगुसग्रहण से यहाँ न हुआ । आचार्य उपनयमानः ॥ ६२६ ॥

६२७—अवद्यपण्यवर्था गच्छपश्चितव्यानिरोधेषु ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०१ ॥

गच्छ (निष्प) पणितव्य (व्यवहार के योग्य) अनिरोध (नरोक्ता) इन चर्चा
में क्रम से अवद्य, पण्य, वर्था ये निपातन हैं। अवद्यं पापम् । गच्छ से अण्यच् । अनु-
द्यम् । मनोदुस्सम् । वद धातु से क्यप् और यत् प्रत्यय का विधान करेंगे उन में यत्
के परे वच्च उसी से नञ् समास में अवद्य सिद्ध होगा वच्च गच्छ अर्ध में निपातन है।
अण्यच् क्यप् प्रत्ययान्त रहेगा जिस से नञ् में अनुद्य होता है। पण्यम्, वस्त्रम् ।
पण्यः कस्त्रलः । पण्या गौः । अर्थात् ये वेंचने योग्य पदार्थ हैं । यहाँ धातु से यत्
प्रत्यय है। सुत्यम् । शतेन वर्था । यहाँ वृद्ध धातु से यत् है । अण्यच् वृत्त्या होगा ।
स्त्रीलिङ्गनिर्देश से यहाँ न हुआ । वार्था कृत्विजः ॥ ६२७ ॥

६२८—वह्यं करस्वम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०२ ॥

वह धातु से करस्वकारक में यत् प्रत्यय निपातन है। वहत्यनेनेति वह्यम् ।
शकटम् । करण ग्रहण से अण्यच् वाह्यम् । होता है ॥ ६२८ ॥

६२९—अर्यः स्वामिवैश्ययोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०३ ॥

स्वामि और वैश्य अभिधेय हों तो कृ धातु से यत् प्रत्यय निपातन है। अर्यः
स्वामो वैश्यो वा । स्वामिन्यन्तोदात्तत्वं च महाभाष्य० ३ । १ । १०३ ॥ स्वामोऽभि-
धेय हो तो 'अर्थ', शब्द को अन्तोदात्तत्व भी निपातन है ॥ ६२९ ॥

६३०—उपसर्था काल्या प्रजने ॥ अ० । ३ । १ । १०४ ॥

प्रजन (प्रथम गर्भग्रहण) में जा (काल्या) समय को प्राप्त हुई वह अभिधेय
हो तो उपसर्था यह निपातन हो। उपसर्था गौः । उपसर्था स्त्री । यहाँ उपपर्व
सृज धातु से यत् प्रत्यय निपातन किया है। काल्या प्रजन ग्रहणसे यहाँ न हुआ ।
उपसर्था वसन्ते वाटिका ॥ ६३० ॥

६३१—अजर्यं सङ्गतम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०५ ॥

सङ्गत विशेष्य हो तो नञ्पूर्वक जृष् धातु से कर्त्ता में यत् प्रत्यय निपातन
हो। न जीर्यति; अजर्यम् । अजर्यमार्यसङ्गतम् । सङ्गतग्रहण से यहाँ न हुआ ।
अजरिता । कस्त्रलः ॥ ६३१ ॥

६३२—वदः सुपि क्यप् च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०६ ॥

अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो वद धातु से क्यप् और यत् प्रत्यय हो। प्रकीर्णम् ।

ब्रह्मवद्यम् । वेद का कथन है । सत्योद्यम् । सत्यवद्यम् । सुप् के ग्रहण से यहां न हुआ । वाद्यम् । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रवाद्यम् ॥ ८३२ ॥

८३३—भुवो भावे ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०७ ॥

अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो भू धातु से भाव में क्यप् प्रत्यय है। ब्रह्मणी भावो ब्रह्मभूयम् । देवभूयंगतः । भावग्रहण भगले सूत्रों के लिये है । क्यों कि सत्तार्थक भू धातु से अकर्मकत्व मान कर भाव में क्यप् सिद्ध है । सुप् के ग्रहण से यहां न हुआ (भव्यम्) अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रभाव्यम् ॥ ८३३ ॥

८३४—हनस्त च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १०८ ॥

अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो हन् धातु से भाव में क्यप् प्रत्यय और हन् को तकार अन्तादेश हो । ब्रह्मणी हननं ब्रह्महत्या । गौहत्या । खड्गहत्या वर्तते । सुप् के ग्रहण से यहां न हुआ । घातः । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रघातो वर्तते । भावग्रहण से यहां न हुआ । खघातो वृषलः ॥ ८३४ ॥

८३५—वा०—हनस्तश्चित् स्त्रियां छन्दसि ॥

वेदविषयक प्रयोग में (हनस्त च) इस से हन् धातु से विहित क्यप् प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में चित् हो । तां भूणहत्यां निगृह्यानुचरणम् । अस्यै त्वा भूणहत्याये चतुर्थं प्रतिपद्यते । स्त्रीलिङ्गग्रहण से यहां चित् नहीं होता है । आत्रते दस्युहत्याया छन्दोग्रहण से यहां चित् धर्म नहीं होता । प्रवहत्या । दस्युहत्या वर्तते ॥ ८३५ ॥

८३६—एतिस्तुशास्त्वजुषः क्यप् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११० ॥

इण्, तु, शास्त्, वृ, वृ, जुष् धातुओं से क्यप् प्रत्यय हो । इत्यः । स्तुत्यः । शिष्यः । यहां (३०१) सूत्र से इत् ही जाता है । इत्यः । आट्यः । जुष्यः । क्यप् प्रत्यय वर्तमान था फिर क्यप् के ग्रहण का यह प्रयोजन है कि । अवश्यस्तुत्यः । यहां आवश्यक अर्थ में वक्ष्यमाण जाणत् प्राप्त है वह न हो । क्यवविधौ वृज्य-हणम्, महाभाष्य ८ । ४ । १०८ । क्यवविधिमें वृज्का ग्रहण है इस से यहां न हुआ । वार्त्ता ऋत्विजः “प्रशस्यस्य अः” इस सूत्र में जो प्रशस्य शब्द का ग्रहण है इस ज्ञापन से शंसु धातु से भी क्यप् प्रत्यय होता है क्यों कि प्र उपसर्गपूर्वक शंसु धातु का क्यप् के परे प्रशस्य यह सिद्ध होता है ॥ ८३६ ॥

*महाभाष्यकार के (अह० दस्यु०) इहो प्रयोगों से स्पष्ट है कि हन् धातु से यह क्यप् प्रत्यय लोके में नियम से स्त्रीलिङ्ग में होता है ॥

६३७—वा०—अञ्जुश्चोपसङ्ख्यानं संज्ञायाम् ॥

संज्ञा गम्यमान होती अञ्जु धातु से क्यप् प्रत्यय का उपसंख्यान करना चाहिये आनक्त्यनेनेति, आज्यम् । घृतम् । यहां करण में क्यप् है । यह क्यप् आङ्पूर्वक ही से होता है । आङ्पूर्वस्य प्रयोगी भविष्यति । महाभाष्य ३ । १ । १०८ ॥ ६३७ ॥

६३८—ऋदुपधाञ्जुपिचृतेः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११० ॥

ऋपि चीर चृति धातुओं को ऋड कर ऋकारोपध धातु से क्यप् प्रत्यय होता है । वृत्त्यम् । वृथ्यम् । ऋपिचृतिग्रहण से यहां न हुआ । कल्याम् । चर्यम् । तपर करण से यहां न हुआ । कीर्त्यम् । यहां ख्यत् होता है । यह कृत संशब्दने का प्रयोग है ॥ ६३८ ॥

६३९—ई च खनः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १११ ॥

खन् धातु से क्यप् प्रत्यय और खन् को ईकारादेश हो । खेयम् । यहां ऋस्व इकार भी आदेश महाभाष्यकार को दृष्ट है क्योंकि (सन्धि१०८) सूत्र से ऋस्व वा दीर्घ दोनों के परे पूर्व पर के स्थान में गुण एकारादेश हो जाता है ॥ ६३९ ॥

६४०—भृजोऽसंज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११२ ॥

असंज्ञाविषय में भृज् धातु से क्यप् प्रत्यय हो । भृत्याः कर्मकराः । असंज्ञा ग्रहण से यहां न हुआ । भार्या नाम क्षत्रियाः । भार्या गृहिणी । यहां तो ख्यत् होता है । (असंज्ञायाम्) इस प्रतिषेध से भार्या शब्द ख्यत् प्रत्ययान्त संज्ञाविषय में होता है उस के लिये कहते हैं ॥ ६४० ॥

६४१—का०—संज्ञायां पुंसि दृष्टत्वान्न ते भार्या प्रसिध्यति ॥

स्त्रियां भावाधिकारोऽस्ति तेन भार्या प्रसिध्यति ॥ १ ॥

अथवा बहुलं छत्याः संज्ञायामिति तत् स्मृतम् ॥

यथा यत्यं यथा जन्यं यथा भित्तिस्तथैव सा ॥ ३ ॥

प्र०—पुंलिङ्गविषयक संज्ञा में ख्यत् प्रत्यय के देखने से तुम्हारा भार्या शब्द नहीं सिद्ध होता है । उ०—स्त्री लिङ्गविषयक (संज्ञायां समज०) इस सूत्र में भाव का अधिकार है उस से भार्या शब्द प्रसिद्ध होता है अर्थात् भाव का अधिकार मान कर स्त्री लिङ्ग में भावविषयक क्यप् प्रत्ययान्त भृत्या होगा तथा ख्यत्

* यहां कोशिकाकार ने इकार दूसरा प्रक्षेप मान कर (ये विभाषा) इस आत्व की व्यावृत्ति किई यह उन का व्याख्यान आहीपुरुषिकामात्र है क्योंकि क्यप् सन्धियाग में विधीयमान इत् अन्तरङ्ग और यकारादि प्रत्यय के परे विधीयमान आत्व वचिरङ्ग है इस से असिद्धवचिरङ्गमन्तरङ्ग इसी से आत्व की व्यावृत्ति ही जायगी फिर प्रक्षेप इकार को माना जाय । इस लिये महाभाष्यकार की व्याख्या से विरुद्ध है ॥

प्रत्ययान्त भार्या ही जायगा ॥ १ ॥ अथवा जो उक्त सूत्र में भावाधिकार न माने तो कृत्य और ल्युट् बहुल करके होते हैं वह स्मरण संज्ञा के निमित्त होना चाहिये । जैसे यत्न जैसे जन्य और जैसे भित्ति शब्द है वैसे ही वह भार्या शब्द भी सिद्ध होजायगा * ॥ ८४१ ॥

८४२—मृजेर्विभाषा ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११३ ॥

मृज धातु से विकल्प करके क्यप् प्रत्यय हो । मृज्यः ॥ ८४२ ॥

८४३—चजोः कुघिण्यतोः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५३ ॥

घित् और ण्यत् प्रत्यय परे हो तो चकार और जकार को कुत्व हो । मा० ॥ यहाँ वक्ष्यमाण ण्यत् प्रत्यय होता और (३५५) से वृद्धि हो गई ॥ ८४३ ॥

८४४—राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्यव्यव्याः ॥

अ० ॥ ३ । १ । ११४ ॥

राजसूय, मृषोद्य, रुच्य, कुप्य, कृष्टपच्य, अव्यय्य ये क्यप् प्रत्ययान्त निपातन हैं । अभिषवद्वारा राज्ञा सोतव्यो राजानस्मृयन्तेऽस्मिन्निति, वा राजसूयः । यज्ञः । यहाँ राजन् शब्दपूर्वक [षुज्] अभिषवे धातु से क्यप् प्रत्यय और निपात से दीर्घादेश होता है । सरत्याकाशमार्गेण गच्छति वा षुवति लोकंकर्मणि प्रेरयतीति, सूर्यः । यहाँ [रु] गती वा [ष्] प्रेरणे धातु से क्यप् प्रत्यय और रु को जकारादेश वा षू को रुडागम निपातन है । मृषा उद्यत इति मृषोद्यम् । यहाँ मृषोपपदवद् धातु से (८३२) सूत्र से क्यप् और यत् की प्राप्ति में क्यब् विहित है । रोचतेऽसौरुच्यः । यहाँ रुच धातु से कर्त्ता में क्यप् है । गुप्यते यत्तत् कुप्यम् । यहाँ संज्ञा में गुप धातु की आदि को कुत्व निपातन है । गोप्यते यत्तत् कुप्यम् । सुवर्ण और रजत से भिन्न धन की संज्ञा है । अन्यत्र गोप्यम् । होगा । कृष्टे स्वयमेव पच्यन्त इति कृष्टपच्यः । यहाँ कर्मकर्त्ता में पच से क्यप् प्रत्यय है । योहि कृष्टे पक्तव्यः से कृष्टपाक्यो भवति न व्यथत इति, अव्यय्यः । सूर्यरुच्यव्यव्याः कर्त्तरि । कुप्यं सन्नायाम् । कृष्टपच्यस्यान्तोदात्तत्वं च कर्मकर्त्तरि च । महाभाष्य ३ । १ । ११४ ॥ ८४४ ॥

८४५—भियोद्गौनदे ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११५ ॥

नद अभिषेय होतो भिय, उद्ग ये क्यप् प्रत्ययान्त निपातन हैं । भिनक्ति कूलमिति भियः । उज्भत्युदकमिति, उद्गः । यहाँ [उज्भ] त्यागे धातु की धत्व भी निपातन है । नदसे अन्यत्र भेत्ता । उज्भिता ॥ ८४५ ॥

* अजन्त से विहित यत् प्रत्यय यत् जन धातुओं से होता और स्त्री अधिकार में भिद धातु से अङ् विहित है तथापि बहुल भाव से क्तिन् भी होता है वैसे ही बहुल भाव से ण्यत् प्रत्ययान्त भार्या शब्द हो जायगा ॥

३४६—पुष्यसिद्धौ नञत्वे ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११६ ॥

नञ्च अभिधेयुः ही तो पुष्य, सिद्धा ये निपातन हैं पुष्यन्त्यस्मिन् कार्याणीति पुष्यः । सिद्धान्त्यस्मिन्नर्थ इति सिद्धाः । अन्यत्र । पोषणम् । सेधनम् ॥ ६४६ ॥

६४७—विपूयविनीयजित्यामुञ्जकल्कहलिषु ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११७ ॥

मुञ्ज, कल्क, हलि इन अर्थों में विपूय विनीय जित्य ये शब्द यथासङ्ख्य निपातन हैं । विपू विनी तथा जि से यत् प्रत्यय की प्राप्ति में क्यप् प्रत्यय निपातन किया है । वि पूयः । मुञ्जः । रज्जादि कर्म के लिये शोधने योग्य है । अन्यत्र विप्लव्यम् । विनेतुं योग्यो विनीयः । कल्कः । विप्रेयमन्यत् । जित्यः । हलिः । जियमन्यत् ॥ ३४७ ॥

६४८—प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११८ ॥

प्रति और अपि से परे यह धातु से क्यप् प्रत्यय ही । प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः कृन्दसि । महाभाष्य ३ । १ । ११८ ॥ मत्तस्य प्रतिगृह्यम् । अनृतं हि मत्तो वदति तस्मान्नापि गृह्यम् । लोक में प्रतिग्राह्यम् । अपिग्राह्यम् ॥ ६४८ ॥

६४९—पदास्वैरिवाह्यापक्ष्येषु च ॥ अ० ॥ ३ । १ । ११९ ॥

पद अस्वैरिन् वाह्या और पक्ष्य अर्थ में यह धातु से क्यप् प्रत्यय ही । पद, प्रगृह्यम् पदम् जिस की प्रगृह्य संज्ञा करते हैं । अवगृह्यम् पदम् । जिस का अवग्रह करते हैं । अस्वैरी (परतन्त्र) गृह्यकाः पक्षिणः । गृहीत हैं । बाह्या, ग्रामगृह्याः । वाप्यः । ग्राम से बाहर वाउरी हैं । नगरगृह्याः सेना । नगर से बाहर सेना है । यह प्रतीति होती है । स्त्रीलिङ्ग निर्देश से यहां न हुआ । ग्राम-ग्राह्याः पादपाः । पक्ष्य, पक्ष में जो ही वह पक्ष्य कहावे । आर्यैर्गृहीतुं योग्य आर्यगृह्याः पक्ष्यः । अर्जुनगृह्याः । वासुदेवगृह्याः ॥ ६४९ ॥

६५०—विभाषा कृष्टप्रोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२० ॥

कृज और वृष धातु से क्यप् प्रत्यय विकल्प करके ही । कृत्यम् । कार्यम् । वृष्यम् । वर्यम् ॥ ६५० ॥

६५१—युग्यं च पत्ने ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२१ ॥

पत्न (वाहन) अभिधेय ही तो युग्य यह निपातन है । युग्योश्चः । युग्योगीः । यहां युज् धातु से क्यप् और धातु की कुत्वादेश निपातन है । पत्रग्रहण से यहां न हुआ योग्यमन्यत् ॥ ६५१ ॥

६५२—अमावस्यदन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२२ ॥

अमावस्यत् यह विकल्प करके निपातन है अर्थात् अमापूर्वक वस धातु से

एतत् प्रत्यय के परे विकल्प करके वृद्धि का अभाव निपातन है। अमा शब्द सहाय्य में वर्तमान है। सह वसतोऽस्यां सूर्याचन्द्रमसाविति, अमावस्या। अमावास्या ॥८५२॥

८५३—छन्दसि निष्टक्यं देवहूयप्रणीयोऽन्नीयोऽच्छिष्यमर्यस्तूर्याध्वर्य

खन्यखान्यदेवयज्याष्टच्छप्रतिषीव्यब्रह्मवाद्यभाव्यस्ताव्योपचा-

य्यष्टडानि ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२३ ॥

निष्टक्यं, देवहूय, प्रणीय, उन्नीय, उच्छिष्य, मर्य, स्तूर्या, ध्वर्य, खन्य, खान्य, देवयज्या, आपृच्छ, प्रतिषीव्य, ब्रह्मवाद्य, भाव्य, स्ताव्य और उपचाय्यष्ट ये निपातन हैं। निष्टक्यं चिन्वीत पशुकामः। यहां निस् पूर्वक क्तौ धातु से एतत् प्रत्यय धातु का आद्यन्त विपर्यय और निस् के स् को ष् आदेश निपातन है। स्पडन्ते वा उ देवहूये। यहां देवपूर्वक ह्विज् वा हु धातु से क्यप् प्रत्यय धातु के उकार को दीर्घ और तुक् का अभाव निपातन है। प्रणीयः। उन्नीयः। प्र और उद् इन से परे नी धातु से क्यप्। उच्छिष्यः। उत्पूर्वक शिष से क्यप्। मर्यः। मृड् से यत्। स्तूर्या। स्तृज् से यत् और स्त्रीलिङ्ग में निपातन है। ध्वर्यः। ध्रु से यत्। खन्यः। खान्यः। खन से यत् और एतत्। शुन्धध्वं देव्याय कर्मणे देवयज्यायै। देवपूर्वक यज धातु से यत् प्रत्यय और स्त्री लिङ्ग में निपातन है। आपृच्छं धरुणं वाज्यर्षति। आड्पूर्वक प्रच्छ धातु से क्यप्। प्रतिषीव्यः। प्रतिपूर्वक सीव्यति से क्यप् और षत्व निपातन है। ब्रह्मवाद्यम्। ब्रह्मन् उपपद वद धातु से एतत्। भाव्यः। स्ताव्यः। भू और णृज् से एतत्। उपचाय्यष्टम्। यहां उपपूर्वक चिज् धातु से ष्ट उत्तर पद के परे एतत् प्रत्यय और आयादेश निपातन है। हिरण्य इति च महाभाष्य ३। १। १२३। हिरण्य अर्थ में उपचाय्यष्ट हो। हिरण्य से अन्यत्र उपचय्यष्टम्। होगा। “निष्टक्यं व्यत्ययं विद्याग्निः षत्व निपातनात् ॥ एतदायादेश इत्येतावुपचाये निपातितौ ॥ १ ॥ एतदेकस्माच्चतुर्थः क्यप् चतुर्थश्च यतो विधिः ॥ एतदेकस्माद्यशब्दश्च द्वौ क्यपौ एतद्विधिसंयुतः ॥ २ ॥ महाभाष्य ३। १। १२३ ॥ इन कारिकाओं का अर्थ निष्टक्यादि प्रयोगों की व्याख्या में आगया है ॥ ८५३ ॥

८५४—ऋहलोर्णत् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२४ ॥

ऋवर्णान्त और हलन्तों से एतत् प्रत्यय हो। धार्यम्। हार्यम्। वाक्यम्। पाक्यम् ॥ ८५४ ॥

८५५—वा०—पाणौ सृजेर्ण्यदिधिः ॥

पाणि शब्द उपपद हो तो सृज धातु से एतत् प्रत्यय का विधान करने योग्य है पाणिभ्यां सृज्यत इति पाणिस्मर्या रज्जुः। यहां (८४३) से कुत्त हो गया ॥ ८५५ ॥

६५६—वा०—समवपूर्वाच्च ॥

समवपूर्व भी सृज धातु से ख्यत् प्रत्यय विधान करने योग्य है । समवसर्ग्या रज्जुः ॥ ६५६ ॥

६५७—वा०—लपिदभिभ्यां चेति वक्तव्यम् ॥

लप और दभ धातु से भी ख्यत् प्रत्यय कहने योग्य है । अपलाप्यम् । अपदाभ्यम् ॥ ६५७ ॥

६५८—न क्वादेः ॥ ७ । ३ । ५६ ॥

कवर्ग जिस के आदि में है उस धातु के चकार और जकार को कुत्व न हो । कूज्यमनेन । खर्ज्यम् । गर्ज्यम् । कूजः । खर्जः । गर्जः ॥ ६५८ ॥

६५९—अजिब्रज्योश्च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६० ॥

अज और ब्रज धातु को कुत्व न हो । परिव्राज्यम् । परिव्राजः । समाजः । उदाजः । यहां घञ् प्रत्यय है । ख्यत् प्रत्यय की विवक्षा में (१५५) सूत्र से वी भाव होने से अज धातु का ख्यत् प्रत्ययान्त प्रयोग नहीं होता ॥ ६५९ ॥

६६०—वज्जेर्गतौ ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६३ ॥

गति अर्थ में वर्त्तमान वच्च धातु को कवर्गादेश न हो । वच्चितुं गन्तुं योग्य वच्चाम् । गतिग्रहण से यहां न हुआ । वङ्क्यम् । काठम् । काठटेढा है ॥ ६६० ॥

६६१—एय आवश्यक ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६५ ॥

आवश्यक अर्थ में एय प्रत्यय परे हो तो कवर्गादेश न हो । अवश्यपाच्यम् । अवश्यवाच्यम् । आवश्यक से अन्यत्र । पाक्यम् । वाक्यम् ॥ ६६१ ॥

६६२—यजयाचरुचप्रवचर्चश्च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६६ ॥

एय प्रत्यय परे हो तो यज, याच, रुच, प्रवच, ऋच इन धातुओं को कुत्वादेश न हो । याज्यम् । याच्यम् । रीच्यम् । प्रवाच्यमायह पाठविशेष का नाम है । अर्च्यम् । यद्यपि ऋदुपधत्व मान कर ऋच धातु से क्यप् प्रत्यय भी प्राप्त है तथापि एय के परे जो इस को कुत्व का निषेध किया है इस आपन से ख्यत् प्रत्यय इस से होगा ॥ ६६२ ॥

६६३—वा०—एयप्रतिषेधे त्यजेरुपसंख्यानम् ॥

एय के परे कुत्व प्रतिषेध में त्यज धातु का भी उपसंख्यान करना चाहिये । त्यक्तुंयोग्यं त्याज्यम् ॥ ६६३ ॥

६६४—भोज्यं भक्ष्ये ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ६६ ॥

भक्ष्य अर्थ में भोज्य यह निपातन ही । भोज्यमभ्यवहार्यमितिवक्तव्यम् । महाभाष्य ७ । ३ । ६६ ॥ अभ्यवहार्यमात्र अर्थ होती भोज्य यह निपातन ही । भोज्यः सूपः । भोज्या यवाङ्गूः । अभ्यवहार से अन्यत्र । भोग्यः कम्बलः ॥ ६६४ ॥

६६५—आवश्यक ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२५ ॥

आवश्यक अर्थ द्योत्य होती उवर्णान्त धातु से ख्यत् प्रत्यय ही । लाव्यम् । पाव्यम् । आवश्यक से अन्यत्र । लव्यम् । पव्यम् ॥ ६६५ ॥

६६६—आसुयुवपिरपिलपिचपिचमश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२६ ॥

आङ् पूर्वक षुज् यु डुवप रप लप चपि और चम धातु से ख्यत् प्रत्यय ही । यह यत् प्रत्यय का अपवाद है । आसाव्यम् । याव्यम् । वाप्यम् । राप्यम् । लाप्यम् । लाप्यम् । आचाम्यम् ॥ ६६६ ॥

६६७—आनाय्योऽनित्ये ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२७ ॥

अनित्य अर्थ अभिधेय होती आङ्पूर्वक णीज् धातु से आनाय्य यह निपातन है । आनाय्योनित्य इति चेदक्षिणाग्नौ कृतं भवेत् । एकयोनी तु तं विद्यादाने-योह्यन्यथा भवेत् । महाभाष्य ३ । १ । १२७ । अनाय्यो दक्षिणाग्निः । यहाँ ख्यत् प्रत्यय और आयादेश निपातन है । जो गार्हपत्य अग्नि से लिया जाता और आहवनीय अग्नि के साथ एकयोनि को प्राप्त है उस विशेषदक्षिणाग्नि में यह शब्द रुढि है । और जो वैश्यकुल से लिया जाता है उसमें आनेय, होगा ॥ ६६७ ॥

६६८—प्रणाय्योऽसंमतौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२८ ॥

असंमति अभिधेय होती प्रणाय्य यह निपातन ही । संमति (भलीभांतिमानना वा आदर) जिस में न हो वह असंमति कहावे । प्रणाय्यश्चोरः । प्रणाय्योऽप्रियः । प्रणाय्योऽन्तेवासी । यह विरक्त है । अर्थात् अपनी अनिच्छा से संसार से वैराग्य को प्राप्त है ॥ ६६८ ॥

६६९—पाय्यसांनाय्यनिकाय्यधाय्या मानहविर्निवाससामि-
धेनीषु ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२९ ॥

मान, हविष्, निवास, सामिधेनी ये अभिधेय होते यथाक्रम से पाय्य, सांनाय्य, निकाय्य, धाय्या, ये निपातन हैं । मीयतेऽनेनेति पाय्यमानम् । यहाँ ख्यत् प्रत्यय धातु के आदि म को प आदेशः । अन्यत्र । मियम् । सम्यङ्नीयते होमार्थमग्निं प्रतीति, सांनाय्यम् । हविः । ख्यत् आयादेश और सम् के अकार की दीर्घ

निपातन० । अन्यत्र सन्नेयम् । निच्रीयते धान्यादिकमन्नेति निकायः । निवासः । आय् और धातु के आदि को कुल निपातन० । अन्यत् । चैयम् । धीयतेऽनया समि-
दिति, धाव्या । सामिधेनौ ऋक् । ख्यत् प्रत्यय निपात० । सामिधेनौ शब्द ऋग्वि-
शेष का वाचक है । धाव्या शंसत्यग्निर्नेता त्वं सोमक्रतुभिः ॥ ६६६ ॥

६७०—क्रतौ कुण्डपाय्यसंचाय्यौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३० ॥

क्रतु अभिधेय हो तो कुण्डपाय्य और संचाय्य निपातन हैं । कुण्डेन पीयतेऽस्मिन्
सोम इति कुण्डपाय्यः । क्रतुः । यहां तृतीयान्त कुण्ड शब्द पूर्वक पिवति से यत्
प्रत्यय और युगागम निपातन है । क्रतु ग्रहण से यहां न हुआ । कुण्डपानम् ।
तथा । संचेयः । ॥ ६७० ॥

६७१—अग्नौ परिचाय्योपचाय्यसमूह्याः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३१ ॥

अग्नि अभिधेय हो तो परिचाय्य उपचाय्य और समूह्य ये निपातन हैं । परि-
चेतुं योग्यः, परिचाय्यः । उपचाय्य । परि उपपूर्वक चिज् धातु से ख्यत् और
आयादेश निपातन० । समूह्यं चिन्वीत पशुकामः । सम् पूर्वक वह धातु से ख्यत्
प्रत्यय धातु को संप्रसारण और दीर्घत्व निपातन० । अग्नि से अन्यत्र । परिचेयम् ।
उपचेयम् । संवाह्यम् ॥ ६७१ ॥

६७१—चित्याग्निचित्ये च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३२ ॥

अग्नि अभिधेय हो तो चित्य और अग्निचित्या निपातन हैं । च्रीयतेऽसौ
चित्योग्निः । अग्निचयनमेव, अग्निचित्या । यहां भाव में य प्रत्यय अन्तोदात्तत्व और
तुगागम निपातन० । अग्निचित्येत्यन्तोदात्तत्वं भावे । महाभाष्य ३।१।१३२ ॥ ६७२ ॥

६७३—भव्यगीयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्या

स्वाव्यापात्या वा ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६८ ॥

भव्य आदि कृत्य प्रत्ययान्त कर्त्ता में विकल्प करके निपातन हैं । द्वितीय पक्ष
में यथाप्राप्त भाव कर्म में होंगे । भवत्यसौ भव्यः । भव्यमनेन वा । गीयोमाणवकः
साम्नाम् । गीयानि माणवकेन सामानि । प्रवचनीयो गुरुः स्वाध्यायस्य । प्रवचनीयो
वा गुरुणा स्वाध्यायः । उपस्थानीयोऽन्ते वासी गुरोः । उपस्थानीयः शिष्येण वा गुरुः ।
जायतेऽसौ जन्यः । जन्यमनेन वा । आप्लवते, आप्लाव्यः । आप्लाव्यमनेन वा । आपत्य-
त्यसावापात्यः । अपात्यमनेन वा ॥ ६७३ ॥

इति कृत्यप्रक्रिया समाप्ता ॥

अथ कृदन्तप्रक्रियारम्भः ॥

६७४—खुल्ठचो ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३३ ॥

धातु से खुल् और ठच् प्रत्यय हो । इस प्रकरण में सर्वत्र (२) सूत्र से कृत्संज्ञा होती और (६१३) सूत्र से कृत् संज्ञक प्रत्यय सामान्य से कर्त्ता में होते हैं । करोतीति, कारकः । कर्त्ता । हारकः । हर्त्ता । स्त्रीलिङ्ग में कारिका । कर्त्री । हारिका । हर्त्री । कुटिता यहां (३४५) सूत्र से डित्व मान कर गुणादेश न हुआ । कोटकः । विजिता (४२८) सूत्र से इट्० । घातकः यहां (५०२) सूत्र से तकारादेश० । दायकः । शमकः । दमकः । रन्धकः । जम्भकः । यहां (१६५) सूत्र से नुम् हो० । रक्षिता (४०८) से नुम् निषे० । एषिता । एष्टा । सहिता । सोढा । यहां (२१२) सूत्र से इट् । ख्यजन्त—भावयिता । सन्नन्त—बुभूषिता । यङन्त—पापचकः । यहां अलोप के स्थानिवद्भाव से वृद्धि न हुई । यङ्लुगन्त—पापाचकः ॥ ६७४ ॥

६७५—नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३४ ॥

नन्द्यादिक, ग्रह्यादिक और पचादिक धातुओं से यथाक्रम पे ल्यु, णिनि और अच् प्रत्यय हो । अर्थात् नन्द्यादिकों से ल्यु, ग्रह्यादिकों से णिनि और पचादिकों से अच् होता है । नन्दयतीति, नन्दनः । जनानर्हयतीति जनार्दनः । मधुसूदनः । विशेषण भीषयतीति विभीषणः । वामनः । मदनः । दूषणः । लवणः । यहां गणपाठक्रम से निपातन से णत्वादेश है । ग्राही । स्थायी । मन्त्री । विषयी । यहां वृद्धि का अभाव निपातन है । विषयी । यहां षत्व निपातन है । परिभावी । परिभवी । यहां विकल्प करके वृद्धि का अभाव है । पचतीति पचः । अजपि सर्वधातुभ्यः । महाभाष्य ३ । १ । १३४ । सबधातुओं से अच् प्रत्यय कहना चाहिये । भवतीति भवः । सवः । यह अच् प्रत्यय धातु मात्र से इष्ट है इस से पचादिगण का कथन शब्दों के साथ अनुबन्ध लगाने और बाधकों के बाधने के लिये है जैसे । नदट् । चोरट् । देवट् इत्यादि टित् माने हैं । नदः । चोरः । देवः । स्त्रीलिङ्ग में नदी । चोरी । देवी । यहां इगुपधत्व मान कर दिवु धातु से क प्रत्यय प्राप्त था । उस को बाध कर अच् प्रत्यय हुआ । जारभरा । प्रवपचा । इन में अगला अण प्राप्त था । चेक्रियः । लीलुवः । पोपुवः । मरीमृजः ॥ ६७५ ॥

६७६—इगुपधज्ञाप्रौक्किरः कः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३५ ॥

इक् जिस के उपधा में हो और ज्ञा प्रौ तथा कृ धातु से क प्रत्यय हो । बुधः । विक्षिपः । क्षयः । ज्ञः । प्रीणातीति प्रियः । किरतीति किरः ॥ ६७६ ॥

६७७—आतश्चोपसर्गं ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३६ ॥

उपसर्ग पूर्व हो तो आदन्त धातु से क प्रत्यय हो । आगे ण प्रत्यय कहेंगे उस का यह अपवाद है । प्रस्थः । प्रवः ॥ ६७७

६७८—पात्राध्माघेट्दृशः शः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३७ ॥

पा घ्रा ध्मा घेट् और दृश धातु से श प्रत्यय हो। पिबतीति, पिबः । उर्ध्वपिबति, उत्पिवः । विपिवः । जिघ्रः । धमः । धयः । विधयः । पश्यतीति पश्यः ॥ ६७८ ॥

६७९—वा०—जिघ्रः संज्ञायां प्रतिषेधः ॥

व्याजिघ्रतीति व्याघ्रः ॥ ६७९ ॥

६८०—अनुपसर्गालिम्पविन्दधारिपारिवेद्युदेजिचेतिसाति
साहिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३८ ॥

उपसर्गरहित लिम्प विन्द धारि पारि वेदि उदेजि चेति साति साहि इन धातुओंसे श प्रत्यय हो । लिम्पतीति । लिम्पः । विन्दतीति, विन्दः । धारयतीति, धारयः । पारयतीति, पारयः । वेद्यतीति, वेद्यः । उदेजयतीति, उदेजयः । चेतयतीति, चेतयः । साति सुखार्थक सूत्र धातु है । सातयतीति, सातयः । साह्यतीति, साह्यः । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । प्रलिपः ॥ ६८० ॥

६८१—वा०—अनुपसर्गान्नौ लिम्पेः ॥

(अनुपसर्गात्०) इस विषय में निपूर्वक लिम्प धातु से श प्रत्यय कहना चाहिये । निलिम्पा नाम देवाः ॥ ६८१ ॥

६८२—वा०—गवादिषु विन्देः संज्ञायाम् ॥

गवादिक उपपद ही तो विदल धातु से श प्रत्यय संज्ञा में कहना चाहिये। गोविन्दः । अरविन्दः ॥ ६८२ ॥

६८३—ददातिदधात्योर्विभाषा ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३९ ॥

उपसर्गरहित दुदाच् और दुधाज् धातु से श प्रत्यय विकल्प करके हो । यह (६८६) सूत्र का अपवाद है । ददातीति, ददः । दायः । दधः । धायः । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रददातीति, प्रदः । प्रधः । यहां (६७६) सूत्र से क प्रत्यय हो गया ॥ ६८३ ॥

६८४—ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४० ॥

उपसर्गरहित ज्वल आदि कस पर्यन्त धातुओं से विकल्प करके ण प्रत्यय हो यहां इति शब्द आदि शब्द के लिये है । ज्वलतीति, ज्वालः । ज्वलः । चालः ।

चलः । दूसरे पक्ष में अच् प्रत्यय हो जाता है । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ ।
प्रज्वलः ॥ ८८४ ॥

८८५—वा०—तनोतेरुपसंख्यानम् ॥

तनु धातु से ण प्रत्यय का उपसंख्यान करना चाहिये । अवतनोतीत्यतानः ॥ ८८५ ॥

८८६—श्याडूव्यधास्तुसंस्वतीणवसावहलिहश्लिषश्चसञ्च ॥

अ० ॥ ३ । १ । १४१ ॥

श्यैड्, आकारान्त, व्यध, आस्तु, संस्तु, अतोण, अवसा, अवह, लिह, श्लिष, श्वस इन धातुओं से ण प्रत्यय हो । आकारान्त ग्रहण से श्यैड् और अवपूर्वक सा धातु से ण हो जाता तथापि इन का अलग ग्रहण सोपसर्ग लक्षण क प्रत्यय की बाधने के लिये है । अवश्यायः । प्रतिश्यायः । दायः । धायः । शायः । व्याधः । आस्तावः । संस्तावः । प्रत्यायः । अवसायः । अवहारः । लेहः । श्लेषः । श्वासः ॥ ८८६ ॥

८८७—दुन्योरनुपसर्ग ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४२ ॥

उपसर्गपूर्व न हो तो दु और नो धातु से ण प्रत्यय हो । दुनोतीति, दावः । नयतीति, नायः । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ । प्रदवः । प्रणयः ॥ ८८७ ॥

८८८—विभाषा ग्रहः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४३ ॥

ग्रह धातु से विकल्प करके ण प्रत्यय हो । यह अच् का अपवाद है गृह्णातीति ग्राहः । ग्रहः । यह व्यवस्थित विभाषा है । इस से जलचर में 'ग्राह, नित्य होता और ज्योतिः में 'ग्रह, यही होता है* ॥ ८८८ ॥

८८९—गेहे कः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४४ ॥

गेह (घर) कर्त्ता हो तो गृह धातु से क प्रत्यय हो । गृह्णाति धान्यादिक-मिति गृहम् । गृह्णन्ति पदार्थानिति, गृहाणि वेश्मानि । तात्स्थ्योपाधि से स्त्री जनों को भी गृह कहते हैं । गृहाः । दाराः ॥ ८८९ ॥

८९०—शिल्पिनिष्पुन् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४५ ॥

*शिल्पी कर्त्ता हो तो धातु से ष्वन् प्रत्यय हो । नृतिखनिरञ्जिभ्य इति वक्तव्यम् । महाभाष्य ३ । १ । १४५ । शिल्प (क्रिया कर ने की चतुराई) जिस में

* इस सूत्र के विवरण में जी काशिकाकार ने 'भवतेत्येति वक्तव्यम्' यह वार्त्तिक पड़ा है । सो महाभाष्य-कार के मत से विरुद्ध है महाभाष्य में उस का मूल नहीं है । इस से प्राप्त्यर्थक भू धातु से अच् प्रत्ययान्त भाव और सत्तार्थक से भव सम्भवं लेना चाहिये । भाव पदार्थों का नाम और भव महादेव और संसार आदि का नाम है ॥

विद्यमान है वह शिल्पी कहावे । नृत्यतीति, नर्त्तकः । खनकः । नर्त्तकी । खनकी । रञ्जकः । रञ्जकी ॥ ८६० ॥

६६१—गखकन् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४६ ॥

शिल्पी कर्त्ता हो तो गै धातु से थकन् प्रत्यय हो । गायतीति, गायकः । स्त्री लिङ्ग में । गायिका ॥ ६६१ ॥

६६२—ण्युट् च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४७ ॥

शिल्पी कर्त्ता में गै धातु से ण्युट् प्रत्यय हो । गायतीति, गायनः । स्त्री गायनी ॥ ६६२ ॥

६६३—ह्रस्व ब्रीहिकालयोः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४८ ॥

ब्रीहि और काल कर्त्ता हो तो ओहाक् ओहाङ् धातु से ण्युट् प्रत्यय हो । जहाति जलं जिहीते प्राप्नोति, वा हायनः । ब्रीहिः । जहाति भावान् जिहीते प्राप्नोति, वा हायनः । वत्सरः ॥ ६६३ ॥

६६४—पुसृत्वः समभिचारे वुन् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १४९ ॥

समभिचार (वार २ होने) अर्थ में पु सृ लू इन धातुओं से वुन् प्रत्यय हो । पुसृत्वः साधुकारिणि वुन्विधानम् । महाभाष्य ३ । १ । १४९ ॥ साधु कारी अर्थात् अच्छे प्रकार क्रिया करने वाला कर्त्ता अभिधेय हो तो पुसृ लू इन से वुन् का विधान करना चाहिये प्रवत इति प्रवकः । सरकः । लवकः । साधुकारित्व अर्थ में वुन्विधान से जहाँ एक वार भी अच्छे प्रकार काम करना हो वहाँ वुन् प्रत्यय हो और वार २ भी काम का अच्छा करना नही वहाँ न हो ॥ ६६४ ॥

६६५—आशिषि च ॥ अ० ॥ ३ । १ । १५० ॥

आशीर्वाद अर्थ गम्यमान हो तो धातु से वुन् प्रत्यय हो । जीवतात् जीवकः । नन्दतात् नन्दकः ॥ ६६५ ॥

+ रञ्जकः रजकी । यहां शिल्पी कर्त्ता में उणादिस्य कुन् प्रत्यय होता है । इस विषय में जो कौमुदीकार ने लिखा कि भाष्यमत से वृत्ति खनि इङ्गो से वुन् और रञ्जि से कुन् होता है । यह उन का कथन अयुक्त है क्योंकि जो रञ्जि से वुन् नहीं होता है तो महाभाष्यकार ने रञ्जि का परिगणन क्यों किया महाभाष्य के परिगणन से वृत्ति खनि और रञ्जि इन तीनों से वुन् प्रत्यय होगा । इस विषय में काशिकाकार ने वुन् प्रत्यय का विधान करके भी नकार का लोप माना यह उन का मानना असङ्गत है क्योंकि नलोप तो कित् जित् के परे होता है । और महाभाष्यकार भी रञ्जक शब्द उणादिस्य कुन् प्रत्यय से मानते हैं । रजकरजनरजःसु कित्वात् सिङ्गम् । कित् एवेति ओणादिकाः । महाभाष्य ६ । ४ । १४ ॥

६६६—कर्मण्यण्* ॥ अ० ॥ ३ । २ । १ ॥

कर्म उपपद हो तो धातु से अण् प्रत्यय हो । कर्म तीन प्रकार का है अर्थात् निर्वर्त्य, विकार्य, प्राप्य । निर्वर्त्य, कुम्भकारः । विकार्य, काण्डलावः । शरलावः । प्राप्य, वेदाध्यायः । चर्चापारः । शमनीपारः । सूत्रपाठः । यहां सर्वत्र उपपद समास होता है । आदित्यं पश्यति । हिमवन्तं शृणोति । ग्रामं गच्छति । इत्यादिकों में अनभिधान से नहीं होता अर्थात् । लोक में अर्थप्रतिपादन करने के लिये आदित्य-दर्श आदि शब्दों का प्रयोग नहीं करते हैं ॥ ६६६ ॥

६६७—वा०—अन्नादायेति च कृतां व्यत्ययश्छन्दसि ॥

वेदविषय में अन्नादाय इत्यादिकप्रयोगों के लिये कृत्संज्ञक प्रत्ययों का व्यत्यय देखना चाहिये । अस्तीति अदः । अन्नस्यादः अन्नदः तस्मै अन्नादाय । अन्नादाय आदायान्नपतये य आहुतिमन्नादां हुत्वा (अन्नमस्ति) इस विषय में कर्मोपपद अद धातु से अण् की प्राप्ति में पचायच् का विधान है ॥ ६६७ ॥

६६८—वा०—शीलिकामिभक्ष्याचारिभ्यो णः पूर्वपद-
प्रकृतिस्वरत्वञ्च ॥

शील, कामि, भक्षिआङ्पूर्वक चर इन धातुओं से ण प्रत्यय और पूर्वपद की प्रकृतिस्वर कहना चाहिये । मांसशीलः । मांसशीला । मांसकामः । मांसकामा । मांसभक्षः । मांसभक्षा । कल्याणाचारः । कल्याणाचारा ॥ ६६८ ॥

६६९—वा०—ईक्षिच्चमिभ्यां च ॥

सुखप्रतीक्षः । सुखप्रतीक्षा । कल्याणचमः । कल्याणचमा ॥ ६६९ ॥

१०००—ह्वावामश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । २ ॥

कर्म उपपद हो तो ह्वेज्, वेज् और माङ् धातु से अण् प्रत्यय हो । स्वर्गह्वायः । तन्तुवायः । धान्यमायः ॥ १००० ॥

१००१—आतोऽनुपसर्गं कः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३ ॥

उपसर्ग पूर्व न हो तो आकारान्त धातुओं से क प्रत्यय हो । यह अण् का

* जिस का उपादान कारण विद्यमान न हो वह निर्वर्त्य कहाता है जैसे संयोगं करोति । अथवा जिस का विद्यमान भी उपादान कारण न विवक्षित हो वह भी निर्वर्त्य कहाता है जैसे घटं करोति । जब उपादान कारण ही परिणामी माना जाय तो निर्वर्त्य कर्म भी विकार्य हो जाता है जैसे घटं घटं करोति और जब भेदविवक्षा है तब वही निर्वर्त्य कर्म रहता है जैसे घटा घटं करोति । विकार्य कर्म दो प्रकार का है । अर्थात् एक तो प्रकृति के विनाश से जो कुछ विकार उत्पन्न हो जैसे काष्ठादि भस्म और दूसरा गुणान्तर से जो उत्पन्न हो जैसे सुवर्णादि विकार कुण्डलादि । जिस में प्रत्यक्ष वा अनुमान से क्रियाकृत-विशेष न पाया जाय अर्थात् प्रथम से न हो वह प्राप्य कर्म कहाता है ॥

अपवाद है । गोदः । कम्बलदः । पार्श्वत्रम् । अनुपसर्गग्रहण से यहां न हुआ ।
गोसंदायः ॥ १००१ ॥

१००२—सुपि स्यः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४ ॥

सुबन्त उपपद हो तो स्था धातु से क प्रत्यय हो कूटस्थः । समस्थः । विषमस्थः ।
इस सूत्र में महाभाष्यकारने योगविभाग भी माना है जैसे (सुपि) सुबन्त उपपद
हो तो आकारान्त धातु से क प्रत्यय हो । कच्छेनपिवतीति कच्छपः । कटाहेन
पिवतीति, कटाहपः । द्वाभ्यां पिवतीति, द्विपः । पादपः (स्थः) सुबन्त उपपद होतो
स्था धातु से क प्रत्यय हो । आखूनामुत्थानमाखूत्यः । शलभोत्थः । सुपि, इस अंश से
कर्त्ता में क प्रत्यय होगी (स्थः) भाव में होने के लिये है * । अब अगले सूत्रों में
(कर्मणि, सुपि) इन दोनोपदों की अनुवृत्ति है अर्थात् यथायोग्यता से दोनों
उपस्थित होते हैं ॥ १००२ ॥

१००३—तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५ ॥

तुन्द और शोक कर्म उपपद हों तो परिपूर्वक मृज और अपपूर्वक नुद धातु
से क प्रत्यय हो । आलस्य सुखाहरणयोः । महाभाष्य ३ । २ । ५ (तुन्दशोकयोः०)
इस विषय में आलस्य, सुखाहरण और कहना चाहिये अर्थात् आलस्य गम्यमान
हो और सुखोत्पत्ति पर्य होतो उक्त धातुओं से क प्रत्यय हो । तुन्द परिमार्ष्टि, तुन्द-
परिमृजोलस आस्ते । अन्यत्र । तुन्दपरिमार्जः । शोकापनुदः । पुत्रो जातः । अन्यत्र
जो संसार की अनित्यता आदि दिखा कर शोकमात्र की निवृत्ति करत किन्तु
सुख नहीं उत्पन्न करता वह शोकापनोद होगा ॥ १००३ ॥

१००४—वा०—कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् ॥

मूलानि विभुजति, मूलविभुजो रथः । नखानि मुञ्चन्ति, नखमुचानि धनूषि।
काकगुहास्तिलाः । सरसिरुहं कुमुदम् ॥ १००४ ॥

१००५—प्रे दाज्ञः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६ ॥

कर्म उपपद हो तो प्रपूर्वक दा और ज्ञा धातु से क प्रत्यय हो । धनं प्रददाति,
धनप्रदः । शास्त्रप्रज्ञः । पथिप्रज्ञः । प्रमात्र से अन्यत्र । धनसंप्रदायः ॥ १००५ ॥

१००६—समि ख्यः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७ ॥

कर्म उपपद हो तो सम्पूर्वक ख्या धातु से क प्रत्यय हो । शास्त्रसंख्यः ।
गोसंख्यः ॥ १००६ ॥

* स्था धातु से भी कर्त्ता में क प्रत्यय इष्ट होतो इस से पृथक् क विधान न करते इसलिये पृथक् विधान
सामर्थ्य से स्था से भाव में क होगी परन्तु यह भावस्थ क प्रत्यय कर्त्ता वाले क प्रत्यय की वाधा नहीं करता
क्योंकि (स्थः) इस अंश में भाव का प्रत्यय ग्रहण नहीं है ॥

१००७—गापोष्टक् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८ ॥

कर्म उपपद ही तो उपसर्ग रहित गा, पा धातुओं से टक् प्रत्यय ही। साम गायतीति सामगः। स्त्री सामगी। सुराशीध्वोः पिवतेः। महाभाष्य ३। २। ८। सुरापः। सुरापी। शीधुपः। शीधुपी। इन से अन्यत्र। क्षीरपा ब्राह्मणी। पिवति से अन्यत्र। सामसंगाथः ॥ १००७ ॥

१००८—वा०—बहुलं तणि ॥

तण् (संज्ञा, छन्दः) विषय में पिवति से बहुल करके टक् प्रत्यय ही। या ब्राह्मणी सुरापी भवति नैनां देवाः पतिलोकं नयन्ति या ब्राह्मणी सुरापा भवति नैनां देवाः तिलोकं नयन्ति ॥ १००८ ॥

१००९—हरतेरनुद्यमनेऽच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ९ ॥

कर्म उपपद ही तो अनुद्यमन अर्थ में वर्तमान हज् धातु से अच् प्रत्यय ही। उद्यमन उद्यम को कहते हैं उससे अन्य अनुद्यमन कहाता है। अंशं हरति, अंश हरः। भागहरः। रिक्थहरः। अनुद्यमन ग्रहण से यहां न हुआ। भारहारः ॥ १००९ ॥

१०१०—वा०—अच्प्रकरणे शक्तिलाङ्गलाङ्गुशयष्टि-

तोमरघटघटीधनुष्पुग्रहेरुपसंख्यानम् ॥

अच् प्रकरण में शक्ति, लाङ्गल, अङ्गुश, यष्टि, तोमर, घट, घटी, धनुष् ये उपपद ही तो ग्रह धातु से अच् प्रत्यय का उपसंख्यान करना चाहिये। शक्तिग्रहः। लाङ्गलग्रहः। अङ्गुशग्रहः। यष्टिग्रहः। तोमरग्रहः। घटग्रहः। घटीग्रहः। धनुर्ग्रहः ॥ १०१० ॥

१०११—वा०—सूत्रे च धार्यर्थे ॥

तथा सूत्र उपपद ही तो धारणार्थक ग्रह धातु से उपसंख्यान करना चाहिये। सूत्रग्रहः। सूत्र की धारण करता है। धार्यर्थ से अन्यत्र अर्थात् जो सूत्र की ग्रहण करता है वह सूत्रग्राह कहाता है ॥ १०११ ॥

१०१२—वयसि च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १० ॥

वयस् यौवनादिभाव गम्यमान ही तो कर्मोपपद हज् धातु से अच् प्रत्यय ही। यह उद्यमन के लिये है। कवचहरः। कुमारः। शकटहरः। वृषभः ॥ १०१२ ॥

१०१४—आङि ताच्छील्ये ॥ अ० ॥ ३ । २ । ११ ॥

ताच्छील्य (तत्स्वभावता) अर्थ गम्यमान ही और कर्म उपपद ही तो आङ् पूर्वक हज् धातु से अच् प्रत्यय ही। पुष्पाणि आहरति तच्छीलः। पुष्पाहरः।

फलाहरः । स्वभाव से निष्प्रयोजन भी पुष्प और फलों को लेता है । ताच्छील्य से अन्यत्र भारमाहरतीति, भाराहारः ॥ १०१३ ॥

१०१४—अर्हः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२ ॥

कर्म उपपद हो तो अर्ह धातु से अच् प्रत्यय हो । वेदाहः स्त्री वेदाह्या ॥ १०१४ ॥

१०१५—स्तम्बकर्णयो रमिजपोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३ ॥

स्तम्ब और कर्ण ये सुबन्त यथासंख्य उपपद हो तो रम और जप धातु से अच् प्रत्यय हो । रम अकर्मक और जप शब्दकर्मक है इससे यहां कर्म शब्द की अनुवृत्ति नहीं होती है । स्तम्बकर्णयोर्हस्ति सूचकयोः । महाभाष्य ३ । २ । १३ (स्तम्बकर्णयोः) यहां हस्तिन्, सूचक और कहना चाहिये अर्थात् हस्ती सूचक अभिव्येय हो तो उक्त अच् प्रत्यय हो । स्तम्बे रमते, स्तम्बेरमः । हस्ती । कर्णेजपति, कर्णेजपः सूचकः । हस्ति सूचक से अन्यत्र स्तम्बेरन्ता । कर्णेजपिता । मशकः ॥ १०१५ ॥

१०१६—शमि धातोः संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४ ॥

शम् उपपद हो तो संज्ञाविषय में धातु मात्र से अच् प्रत्यय हो । शंकरः । शम्भवः । शंवदः । यहां धातुग्रहण हेत्वादि अर्थों में जो ट प्रत्यय का विधान करेंगे उस के बाधने के लिये है । अर्थात् उन अर्थों में भी शम्पूर्वक क्तञ् धातु से अच् प्रत्यय हो । शंकरा नाम परिव्राजिका । शंकरा नाम शकुनिका तच्छीलाच्च ॥ १०१६ ॥

१०१७—अधिकरणे शिंतेः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५ ॥

सुबन्त उपपद हो तो अधिकरण में शीङ् धातु से अच् प्रत्यय हो । खे शिंते, खुशयः । गर्त्तशयः ॥ १०१७ ॥

१०१८—वा०—अधिकरणे शिंतेः पार्श्वदिषूपसंख्यानम् ॥

(अधिकरण शिंतेः) यहां पार्श्वदिक पूर्व हो तो भी उपसंख्यान करना चाहिये । पार्श्वार्थ्यां शिंते पार्श्वशयः । पृष्ठशयः । उदरशयः ॥ १०१८ ॥

१०१९—वा०—दिग्धसहपूर्वाच्च ॥

दिग्धसहपूर्वक भी शीङ् धातु से अच् प्रत्यय कहना चाहिये । दिग्धेन सह शिंते, दिग्धसहशयः । यहां (दिग्धसह) इतना समुदाय पूर्व इष्ट किन्तु प्रत्येक शब्द पूर्व नहीं इष्ट है ॥ १०१९ ॥

१०२०—वा०—उत्तानादिषु कर्त्तृषु ॥

कर्त्तृवाचक उत्तानादिक शब्द उपपद हो तो शीङ् धातु से अच् प्रत्यय हो । उत्तानः शिंते, उत्तानशयः । अवनतोमूर्द्धा यस्य स, अवमूर्द्धा । अवमूर्द्धा शिंते, अवमूर्द्धशयः ॥ १०२० ॥

१०२१—वा०—गिरौ डप्रकुन्दसि ॥

गिरि शब्द उपपद होतो वेदविषय में ग्रीष्, धातु से ड प्रत्यय कहना चाहिये। गिरौ श्रुते, गिरिशः लोक में गिरिश, यह शब्द (स्त्रैण०६८२) सूत्र से तद्धितविषय में हाता है ॥ १०२१ ॥

१०२२—चरेष्टः ॥ ३। २। १६ ॥

अधिकरणवाची सुबन्त उपपद होतो चर धातु से ट प्रत्यय ही। खेचरतीति, खेचरः। खेचरी। निशाचरः। निशाचरी। कुरुचरः। कुरुचरी। मद्रचरः। मद्रचरी। दिवाचरः। दिवाचरी। अधिकरण ग्रहण से यहां न हुआ। कुरुँचरतीति। पञ्चा-लौचरतीति * ॥ १०२२ ॥

१०२३—भिच्चासेनादायेषु च ॥ अ० ॥ ३। २। १७ ॥

भिच्चा सेना और आदाय शब्द उपपद होतो चर धातु से ट प्रत्यय ही। भिच्चा चर-तीति भिच्चाचरः। सेनाचरः। आदाय यह ल्यबन्त है। आदाय चरतीति, आदायचरः। सहचरः यह तो पचादिगण में जो चरट् शब्द का पाठ है उस से बनेगा ॥ १०२३ ॥

१०२४—पुरोग्रतोऽग्रेषु सत्तेः ॥ अ० ॥ ३। २। १८ ॥

पुरस् अग्रतस् अग्रे ये उपपद होतो स्र धातु से ट प्रत्यय ही। पुरस्सरति, पुरस्सरः। अग्रतस्सरः। अग्रम् अग्रेण अग्रे वा सरति अग्रेसरः। यहां अग्रे शब्द एकारान्त निपातन से है ॥ १०२४ ॥

१०२५—पूर्व कर्त्तरि ॥ अ० ॥ ३। २। १९ ॥

कर्त्तृवाचक पूर्व शब्द उपपद होतो स्र धातु से ट प्रत्यय ही। पूर्वः सरतीति, पूर्वसरः। कर्त्तृ से अन्यत्र पूर्व देशं सरतीति पूर्वसारः ॥ १०२५ ॥

१०२६—कृजो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ॥ अ० ॥ ३। २। २० ॥

हेतुताच्छील्य और आनुलोम्य अर्थ गम्यमान होतो कृज् धातु से ट प्रत्यय ही। हेतु (कारण) ताच्छील्य (तत्त्वभावता) आनुलोम्य (अनुकूलपन) हेतु, यश-स्त्रीविद्या। शोककरी कन्या। दुःखकरं पापम्। ताच्छील्य, आइकरः। अर्थकरः। आनुलोम्य, वचनकरः। इन से अन्यत्र। कुम्भकारः। नगरकारः ॥ १०२६ ॥

* कुरु देश में भ्रमण करता है इस अर्थ की अपेक्षा में (कुरु चरति) यह विग्रह होता और अन्यदेश से कुरुदेश की प्राप्ति होता है इस विवेका में (कुरुँचरति) यह विग्रह होता है ॥

१०२७—दिवाविभानिशाप्रभाभास्कारान्तानन्तादिवहुनान्दी-
किंलिपिलिविलिभक्तिकर्त्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजड्वाबाह्व-
हयत्तद्भलुरक्षु ॥ अ० ॥ ३ । २ । २१ ॥

दिवादिक शब्द उपपद हीं तो कृज् धातु से ट प्रत्यय ही । दिवा करोति,
दिवाकरः विभां करोति विभाकरः । निशाकरः । प्रभाकरः । भास्करः । यहां (स-
न्धि० २०१) सत्व० । कारकरः । अन्तकरः । अनन्तकरः । आदिकरः । बहुकरः ।
संख्या से पृथक् बहु शब्द का ग्रहण बहुत्व की अपेक्षा से है । नान्दीकरः । किंकरः ।
लिपि लिबि एकार्थक हैं । लिपिकरः । लिबिकरः । बलिकरः । संख्या, एककरः ।
द्विकरः । त्रिकरः । जड्वाकरः । बाहुकरः । अहस्करः । यत्करः । तत्करः । चौर
अभिधेय ही तो तत्करः । होगा (सन्धि० २४८) से सुडागम और तलोप० । धनुस्करः ।
अक्षुकरः । यहां (सन्धि० १६८) से षत्व० । किंयत्तद्भुषु कृजोऽज् विधानम् ॥
महाभाष्य ३ । २ । २१ । पूर्वोक्त शब्दोंमें किं यद् तद् और बहु उपपद हीं तो
अच् प्रत्यय का विधान करना चाहिये । अन्यत्र ट होगा । किंकरा । यत्करा ।
किं करो । तत्करा आदि डीबन्त तो पुंयोग से होते हैं ॥ १०२७ ॥

१०२८—कर्मणि भृतौ ॥ अ० ॥ ३ । २ । २२ ॥

कर्म वाचक कर्म शब्द उपपद हीं तो कृज् धातु से ट प्रत्यय ही । भृति (वित्त)
कर्माणि करोति कर्मकरः । भृत्यः । भृति से अन्यत्र । कर्मकारः ॥ १०२८ ॥

१०२९—न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु ॥

अ० ॥ ३ । २ । २३ ॥

शब्द, श्लोक, कलह गाथा वैर, चाटु, सूत्र, मन्त्र, पद ये उपपद हीं तो कृज्
धातु से ट प्रत्यय न ही । हेत्वादिप्रथी में प्राप्त ट प्रत्यय का प्रतिषेध है । शब्द-
कारः । श्लोकारः । कलहकारः । गाथाकारः । वैरकारः । चाटुकारः । सूत्रकारः ।
मन्त्रकारः । पदकारः ॥ १०२९ ॥

१०३०—स्तम्बशक्तोरिन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । २४ ॥

स्तम्ब और शक्त उपपद हीं तो कृज् धातु से इन् प्रत्यय ही । स्तम्बशक्तो-
र्वीहिवत्सयोः । महाभाष्य ३ । २ । २४ उक्त सूत्रमें व्रीहि, वत्स और कहना
चाहिये । स्तम्बकरिः । व्रीहिः । शक्तकरिः । वत्सः । अन्यत्र । स्तम्बकारः ।
शक्तकारः ॥ १०३० ॥

१०३१—हरतेर्हतिनाथयोः पशौ ॥ अ० ॥ ३ । २ । २५ ॥

हति और नाथ कर्म उपपद हीं और पशु कर्त्ता हीं तो हृज् धातु से इन् प्रत्यय

हो । दृतिं चर्ममयं पात्रं हरति दृतिहरिः । नाथं नासारज्जुं हरति, नाथहरिः । पशुः । अन्यत्र दृतिहारः । नाथहारः ॥ १०३१ ॥

१०३२—फलेग्रहिरात्मभरिश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । २६ ॥

फलेग्रहि और आत्मभरि ये दोनों शब्द निपातन हैं । फलानि गृह्णाति, फलेग्रहिः । यहां उपपद को एकार और धातु से इन् प्रत्यय निपातन है । भृजः कुक्ष्यात्मनोर्मुं च । महाभाष्य० ३ । २ । २६ । भृज् धातु से इन् प्रत्यय के विधान में कुक्षि और आत्मन् शब्द को मुम् आगम निपातन होना चाहिये । कुक्षिं विभर्त्ति, कुक्षिंभरिः । आत्मभरिश्चरति यूथमसेवमानः । यहां चकार अनुक्त समुच्चय के लिये है इससे 'उदरभरिः', यह भी निपातन जानना चाहिये ॥ १०३२ ॥

१०३३—छन्दसि वनरुनरक्षिसयाम् ॥ अ० । ३ । २ । २७ ॥

कर्म उपपद हो तो वेदविषयमें वन, षण्, रक्ष, मये इन धातुओं से इन् प्रत्यय हो । ब्रह्मवनिं त्वा क्षतवनिं । गोसनिं यौ पथि रक्षी श्वानौ । हविर्मथौनाग् ॥ १०३३ ॥

१०३४—एजेः खश् ॥ अ० ॥ ३ । २ । २८ ॥

कर्म उपपद हो तो णिजन्त एज् धातु से खश् प्रत्यय हो । जनान् एजयतीति । (जन—एजि—शप्—खश्=) यहां ॥ १०३४ ॥

१०३५—अरुद्विषदजन्तस्य मुम् ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ६७ ॥

खिदन्त उत्तर पद पर हो तो अरुष् द्विषन् और अथयभिन्न अजन्त शब्दों को सुमागम हो । मुम् होकर जन+म्—एज्—अ—अ=) जनमेजयः ॥ १०३५ ॥

१०३६—वा०—खश्प्रकरणे वातशुनीतिलशर्ध्वजधे-
दत्तुदजहातिभ्यः ॥

खश् प्रत्यय के प्रकरण में वात शुनी तिल शर्ध्व ये यथाक्रम उपपद हों तो अज धेट् तुद और जहाति से खश् प्रत्यय का विधान करना चाहिये । वातमजाः । मृगाः । शुनीं धयति, यहां ॥ १०३६ ॥

१०३७—खित्यनव्ययस्य ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ६६ ॥

खिदन्त उत्तरपद पर हो तो अथय रहित पूर्वपद को क्ख आदेश हो । शुनिं धयः । तिलंतुदः । शर्ध्वमपानशब्दं जहति—जाहयन्ति, शर्ध्वजहाः माषाः । यहां हा धातु अन्तर्भावित व्यर्थ है ॥ १०३७ ॥

१०३८—नासिकास्तनयोध्माधेटोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । २९ ॥

नसिका और स्तन कर्म उपपद होतो ध्मा और धेट् धातुओं से खश् प्रत्यय

हो । स्तने घेटः । नासिकायां धमश् घेटश्च । महाभाष्य ३ । २ । २८ । स्तनंधयति स्तनन्धयः । नासिकंधमः । नासिकंधयः । स्त्रीलिङ्ग में । स्तनंधयी । यहां घेट् के टिट् से (स्त्रैणता० ३५) सेडोप् प्रत्यय होजाता है । सूत्र में बहच् भी नासिका शब्द का पूर्वनिपात अल्पाच्पूर्वनिपात के अनित्यत्व के लिये है ॥ १०३८ ॥

१०३९—नाडीमुष्ट्योश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३० ॥

नाडी और मुष्टि कर्म उपपद हों तो धमा और घेट् धातु से खश् प्रत्यय हो । यहां मुष्टि, इस घिसंज्ञकान्त का अपूर्व निपात है इस से संख्यातानुदेश नहीं होता है । नाडींधयति, नाडिंधयः । नाडींधमति, नाडिंधमः । मुष्टिंधयः । मुष्टिंधमः चकार अनुक्त समुच्चय के लिये है इस से वातंधयः । वातंधमः । पर्वतः । खरिंधयः खरिंधमः । ये भी जानना चाहिये ॥ १०३९८ ॥

१०४०—वा०—नासिकानाडीमुष्टिवटीखारीष्विति वक्तव्यम् ॥

घटिंधयः । घटिंधमः । खारिंधयः । खारिंधमः । नासिका, नाडी, मुष्टि शब्दों के विषय में उदाहरण दे चुके हैं ॥ १०४० ॥

१०४१—उद्दि कूले रुजिवहोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३१ ॥

कूलकर्म उपपद होती उत्पूर्वक रुज और वह धातु से खश् प्रत्यय हो । कूल-मुद्रुजतीति, कूलमुद्रुजोरथः । कूलमुद्वहः ॥ १०४१ ॥

१०४२—वहाम्ने लिहः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३२ ॥

वह और अभ्र कर्म उपपद होती लिह धातु से खश् प्रत्यय हो । वहं स्कन्ध-लेटीति, (वह-सुम्-लिह-शप्-खश् =) वहंलिहः । गौः । यहां अदादित्व से शप् का लुक् हो जाता है ॥ १०४२ ॥

१०४३—परिमाणो पचः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३३ ॥

परिमाणवाचक कर्म उपपद हो तो पच धातु से खश् प्रत्यय हो । प्रस्थंपचति, प्रस्थं पचा स्थाली । द्रोणम्पचः । खारिम्पचः कटाहः ॥ १०४३ ॥

१०४४—मितनखे च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३४ ॥

मित और नख ये कर्म उपपद होती पच धातु से खश् प्रत्यय हो । मितंपचति, मितम्पचा ब्राह्मणौ । नखम्पचा यवागूः । यहां पचधातु ताप अर्थ वाचक है ॥ १०४४ ॥

१०४५—विध्वरुषोस्तुदः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३५ ॥

विधु और अरुष् कर्म उपपद हों तो तुद धातु से खश् प्रत्यय हो । विधु-

त्तुदः । अरुंषि मर्मस्थलानितुदति अरुत्तुदः । यहाँ सुम् किये पीछे अरुष् के सकार को सयोगान्तलोप हो जाता है ॥ १०४५ ॥

१०४६—असूर्य्यललाटयोर्दृशितपोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३६ ॥

असूर्य्य और ललाट शब्द यथाक्रम से उपपद हों तो दृशि और तप धातु से खश् प्रत्यय हो । सूर्य्य न पश्यन्ति, असूर्य्यपश्याः राजदाराः । यहाँ नञ् का दृश से सम्बन्ध है इस से यह असमर्थ समास इसी (असूर्य्य) निर्देश से होता है । अनिवार्य्य सूर्य्य का भी दर्शन नहीं करने वाली राजदारा हैं । ललाटंतपः सूर्य्यः ॥ १०४६ ॥

१०४७—उग्रम्पश्येरन्मदपाणिन्ममाश्व ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३७ ॥

उग्रम्पश्य, इरन्मद और पाणिन्म ये शब्द निपातन किये हैं । उग्र शब्द यहाँ क्रियाविशेषण है । उग्रं यथा स्यात्तथा पश्यति, उग्रम्पश्यः । इरया जलेन मा व्यति, इरन्मदः । पाणयो ध्यायन्तेऽस्मिन्निति, पाणिन्ममः पन्थाः । जो अन्धकारयुक्त मार्ग होता है उस में सर्पादिक जुद्ध जीवों की निवृत्ति के लिये कभी हाथ से ताली भी देते हैं ॥ १०४७ ॥

१०४८—प्रियवशे वदः खच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३८ ॥

प्रिय और वश ये कर्म उपपद हों तो धातु से खच् प्रत्यय हो । प्रियं वदतीति, प्रियंवदः । वशंवदः ॥ १०४८ ॥

१०४९—वा०—खच्प्रकरणे गमेः सुपि उपसंख्यानम् ॥

खच् के प्रकरण में सुवन्त पूर्वक गम धातु से भी उप संख्यान करना चाहिये । मितंगमो हस्ती । मितंगमा हस्तिनी ॥ १०४९ ॥

१०५०—वा०—विहायसो विह च ॥

इस प्रकरण में विहायस् शब्द जो गम धातु के पूर्व हो तो उस को विह आदेश भी हो । विहायसाकाशमार्गेण गच्छति, विहंगमः पक्षी ॥ १०५० ॥

१०५१—वा०—खच्च डिच्च ॥

विहायस् शब्द को विह आदेश होने में गम से परे खच् प्रत्यय विकल्प करके डित्वत् हो । विहंगः ॥ १०५१ ॥

१०५२—वा०—डे च ॥

गम से ड प्रत्यय परे हो तो भी विहायस् को विह आदेश हो । विहंगः । यहाँ गम धातु से (१०६८) इस से ड प्रत्यय होता है ॥ १०५२ ॥

१०५३—द्विषत्परयोस्तापेः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ३६ ॥

द्विषत् और पर कर्म उपपद हों तो णिजन्त तप धातु से खच् प्रत्यय हो।
द्विषन्तं तपति, द्विषत्-ताप्-णिच्-खच्। इस व्यवस्था में ॥ १०५३ ॥

१०५४—खचि क्खः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६४ ॥

खच्परक णि परे हो तो अङ्ग की उपधा को क्खादेश हो। इस से क्खादेश होकर द्विषन्तपः सिद्ध होता है। ऐसे ही। परन्तपः। द्विषतीं तापयति। यहां लिङ्गविशिष्टपरिभाषा का अनित्यत्व * मान कर खच् नहीं होता है। अथवा (द्विषत्परयोः०) यहां द्वितकारक निर्देश मान कर तकारान्त द्विषत् शब्द का ग्रहण है ॥ १०५४ ॥

१०५५—वाचि यमो व्रते ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४० ॥

व्रत (नियम) अर्थ में वाच् कर्म उपपद हो तो धातु से खच् प्रत्यय हो। वाचं यच्छति, वाच्-अम्-यम्-खच्। यहां ॥ १०५५ ॥

१०५६—वाचंयमपुरंदरौ च ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ६६ ॥

वाचंयम और पुरन्दर ये निपातन किये हैं। प्रथमात् वाच् और पुर शब्द को अमन्तत्व निपातन है। इस से वाच् शब्द को अमन्तत्व होकर। वाचंयमः। होता है। नियम से अन्यत्र असामर्थ्य से वचन न निकले वहां वाच्यमः होगा ॥ १०५६ ॥

१०५७—पूःसर्वयोदारिसहोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४१ ॥

पूर, सर्व ये कर्म यथाक्रम से उपपद हों तो दारि, सह धातुओं से खच् प्रत्यय हो। पुरंदारयति, पुरन्दरः। यहां भी अमन्तत्व हो गया। सर्वसहः। कृत् संज्ञकों में (६१८) सूत्र के बहुल नियम से भगपूर्वक दारि धातु से भी खच् प्रत्यय होता है। भगन्दरः। ॥ १०५७ ॥

१०५८—सर्वकूलाम्बकरीषेषु कषः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४२ ॥

सर्व, कूल, अम्ब, करीष ये कर्म उपपद हों तो कष धातु से खच् प्रत्यय हो। सर्व कषति, सर्वकषः खलः। कूलंकषा नदी। अम्बकषागिरिः। करीषंकषा वात्या ॥ १०५८ ॥

१०५९—मेघर्त्तिभयेषु कजः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४३ ॥

मेघ, ऋति, भय ये कर्म उपपद हों तो कज धातु से खच् प्रत्यय हो। मेघंकरः। ऋतिंकरः। भयंकरः। यहां भय शब्द के साथ तदन्तविधि भी है अभयंकरः ॥ १०५९ ॥

१०६० — ज्ञेसप्रियमद्रेऽण् च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४४ ॥

ज्ञेस, प्रिय, मद्रे ये कर्म उपपद हों तो क्ण् धातु से अण् और खच् प्रत्यय हो। ज्ञेमं करोति, ज्ञेसकारः । ज्ञेमंकरः । प्रियकारः । प्रियंकरः । मद्रेकारः । मद्रेंकरः । यहां वा, ग्रहण करने से दूसरे पक्ष में (८८६) सूत्र से अण् प्रत्यय हो जाता फिर अण् ग्रहण हेत्वादिक अर्थों में जो क्ण् से ट प्रत्यय विहित है उस के बाधने के लिये है । ज्ञेमंकरः । यह तो कर्म की शेषत्वविवक्षा मान कर क्ण् से पृथक् पचाद्यच् होता है ॥ १०६० ॥

१०६१ — आशिते भुवः करणभावयोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४५ ॥

आशित शब्द सुबन्त उपपद हो तो भू धातु से करण और भाव में खच् प्रत्यय हो । करण, आशितो भवत्यनेनेति, आशितम्भव ओदनः । भाव, आशितस्य भवन् आशितंभवं वर्त्तते ॥ १०६१ ॥

१०६२ — संज्ञायां भृतृजिधारिसहितपिदमः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४६ ॥

कर्म वा अन्य सुबन्त उपपद हो तो भृ, तृ, हृ, जि, धारि, सहि, तपि, दम इन धातुओं से खच् प्रत्यय हो । यहां यथासंभव कर्म और सुप् उक्त धातुओं से संबद्ध होते हैं । विश्वं विभर्त्ति, विश्वंभरा वसुन्धरा । रथेन तरति रथन्तरं साम । पतिंवरा कन्या । शत्रुंजयो हस्तीयुगंधरः पर्वतः । शत्रुंसहः । शत्रुंतपः । अरिंदमः । संज्ञाग्रहण से यहां न हुआ । कुटुम्बं विभर्त्तीति, कुटुम्बभारः ॥ १०६२ ॥

१०६३ — गमश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४७ ॥

सुबन्त उपपद हो तो संज्ञा में गम धातु से खच् प्रत्यय हो । सुतया गच्छति, सुतंगमः । पृथक् सूत्र उत्तरार्थ है ॥ १०६३ ॥

१०६४ — अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४८ ॥

अन्तअत्यन्त, अध्वन्, दूर, पार, सर्व, अनन्त ये कर्म उपपद हों तो गम धातु से ड प्रत्यय हो । अन्तगः । अत्यन्तगः । अध्वगः । दूरगः । पारगः । सर्वगः । अनन्तगः । यहां टकार टि लोप के लिये है इस से ड प्रत्यय के परे भसंज्ञा के बिना भी टि लोप हो जाता है ॥ १०६४ ॥

१०६५ — वा० — डप्रकरणे — सर्वत्रपन्नयोरुपसंख्यानम् ॥

गम धातु से डप्रत्यय के प्रकरण में सर्वत्र और पन्न शब्द का भी उपसंख्यान करना चाहिये । सर्वत्र गच्छति, सर्वत्रगः । पन्नं पतितं गच्छति पन्नगः ॥ १०६५ ॥

१०६६—वा०—उरसो लोपश्च ॥

उ प्रकरण में गम धातु से उरस् पूर्व ही तो उस के अन्त्य सकार का लोप भी हो । उरसा गच्छति, उरगः ॥ १०६६ ॥

१०६७—वा०—सुदुरोरधिकरणे ॥

सु और दुर् उपपद ही तो गम धातु से अधिकरण में उ प्रत्यय कहना चाहिये सुखेन गच्छत्यस्मिन्निति सुगः । दुःखेन गच्छत्यस्मिन्निति दुर्गो मार्गः ॥ १०६७ ॥

१०६८—वा०—निसो देशे ॥

देश अभिधेय ही तो निस् से परे गम धातु से उ प्रत्यय कहना चाहिये निश्चयेन गच्छत्यस्मिन्निति निर्गो देशः ॥ १०६८ ॥

१०६९—वा०—अपर आह—उप्रकरणे अन्येष्वपि दृश्यते ॥

इस प्रकरण में और ह उपपद ही तो उ प्रत्यय देखा गया है । तत्र स्व्यगारगः, अश्रुते यावदन्नाय 'यामगः, ध्वंसते 'गुरुतल्पगः, ॥ १०६९ ॥

१०७०—आशिषि हनः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ४६ ॥

आशीर्वाद अर्थ गम्यमान और कर्म उपपद ही तो हन धातु से उ प्रत्यय हो । शत्रुं वध्यात् शत्रुहः । तव पुत्री भूयात् । तिमिहः । आशीः से अन्यत्र शत्रुघातः ॥ १०७० ॥

१०७१—वा०—दारावाहनोणन्तस्य च टः संज्ञायाम् ॥

संज्ञाविषय में दारु शब्द पूर्वक हन धातु से अण् प्रत्यय और अन्त्य को टकारा देश कहना चाहिये । दारु आहन्ति, दार्वाघाटः । दार्वाघाटस्तेवनस्यतीनाम् ॥ १०७१ ॥

१०७२—वा०—चारौ वा ॥

चारु शब्द उपपद ही तो आङ्पूर्वक हन धातु से अण् प्रत्यय नित्य और अन्त्य को टकारादेश विकल्प करके कहना चाहिये । चार्वाघाटः । चार्वाघातः ॥ १०७२ ॥

१०७३—वा०—कर्मणि समिच ॥

कर्म उपपद ही तो सम्पूर्वक हन धातु से अण् प्रत्यय और उस को टकारादेश विकल्प करके कहना चाहिये । वर्णान् संहन्ति, वर्णसंघाटः । वर्णसंघातः । पदानि संहन्ति पदसंघाटः । पदसंघातः ॥ १०७३ ॥

१०७४—अपे क्लेशतमसोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५० ।

क्लेश, तमस्, कर्म उपपद ही तो अप पूर्वक हन धातु से उ प्रत्यय हो । क्लेशमपहन्ति, क्लेशापहः पुत्रः । तमोपहन्ति तमोपहः सूर्यः ॥ १०७४ ॥

१०७५—कुमारशीर्षयोर्गिनिः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५१ ॥

कुमार और शीर्ष कर्म उपपद होते हैं धातु से गिनि प्रत्यय हो । कुमार हन्ति कुमारघाती । शीर्षघाती । यह शीर्ष शब्द शिरस् शब्द को शीर्ष भाव निपातन के लिये है ॥ १०७५ ॥

१०७६—लक्षणो जायापत्योष्टक् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५२ ॥

जाया और पतिये कर्म उपपद हैं और लक्षणवान् कर्त्ता अभिधेय होते हैं धातु से टक् प्रत्यय हो । जायां हन्ति जायाघो ब्राह्मणः । पतिघ्नो वृषलो ॥ १०७६ ॥

१०७७—अमनुष्यकर्त्तृके च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५३ ॥

कर्म उपपद होते हैं मनुष्यभिन्न कर्त्ता में हैं धातु से टक् प्रत्यय हो । जायां हन्ति, जायाघ्नस्तिलकालकः । पतिं हन्ति पतिघ्नो पाणिरखा । शशघ्नो शकुनी । इलेषाणं हन्ति, स्नेषघ्नम् मधु । पित्तं हन्ति पित्तघ्नम् । घृतम् । अमनुष्यकर्त्तृक ग्रहण से यहां न हुआ । आखुघातः शूद्रः । नगरघातो हस्ती । यहां टक् प्रत्यय प्राप्त भी है तथापि कृतसंज्ञकी के बहुल भाव से कर्मोपपद लक्षण अण् होता है । प्रलम्बघ्नः । शत्रुघ्नः । कृतघ्नः । इत्यादिक, तो मूलविभुजादिक प्रत्यय से होते हैं ॥ १०७७ ॥

१०७८—शक्तौ हस्तिकपाटयोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५४ ॥

शक्ति गम्यमान हो और हस्ति, कपाट कर्म उपपद होते हैं धातु से टक् प्रत्यय हो । यह मनुष्यकर्त्तृक विषय के लिये सूत्र है । हस्तिनं हन्तुं शक्तः, हस्तिघ्नः । मनुष्यः । कपाटघ्नश्चोरः । शक्तिग्रहण से यहां न० । विषेण हस्तिनं हन्ति, हस्तिघातः । यहां अण् होता है ॥ १०७८ ॥

१०७९—पाणिघताडघौ शिल्पिनि ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५५ ॥

शिल्पीकर्त्ता अभिधेय होते पाणिघ, ताडघ ये दोनों शब्द निपातन हैं । पाणिं हन्ति पाणिघः । ताडघः । यहां पाणि और ताड कर्मोपपद हैं धातु से टक् प्रत्यय के परे धातु को टि का लोप और घकारादेश निपातन है ॥ १०७९ ॥

१०८०—वा०-राजघ उपसंख्यानम् ॥

उक्त निपातनों में 'राजघ', यह भी उपसंख्यान करना चाहिये । राजानं हन्ति राजघः ॥ १०८० ॥

१०८१—आढ्यसुभगस्यूलपलितनग्नान्धप्रियेषु च्यव्येष्वचौ

ऊजः करणे ख्यन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५६ ॥

स्विरहित च्यर्थ आढ्य, सुभग, स्यूल, पलित, नग्न, अन्ध, प्रिय ये कर्म उपपद हैं

तो कज् धातु से करण में ख्यन् प्रत्यय हो। अनाद्यमाद्यमनेन कुर्वन्ति, आद्यं करणम् । सुभगकरणम् । स्थूलकरणम् । पलितकरणम् । नग्नकरणम् । अन्धकरणम् । प्रियकरणम् । च्यर्थग्रहण से यहां न हुआ। आद्यं घृतेन कुर्वन्ति घृतेनाभ्यञ्जयन्ति। 'अच्यौ, यह प्रतिषेध आगे के लिये है क्यों कि यहां च्यन्त विषय में ख्यन् के प्रतिषेध में ल्युट् ही जायगा ल्युट् में समान रूप समान ही स्वर आदि कार्य हैं। आद्यो करणम् * ॥ १०८१ ॥

१०८२—कर्त्तारि भुवः खिण्णच्खुकजौ ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५७ ॥

चि्वरहित च्यर्थ आद्यादिक सुवन्त उपपद ही तो भू धातु से कर्त्ता में खिण्णच् और खुकज् प्रत्यय ही। अनाद्य आद्यो भवति, आद्यभविष्णुः । आद्यभावुकः । सुभगंभविष्णुः । सुभगंभावुकः । स्थूलंभविष्णुः । स्थूलंभावुकः । पलितंभविष्णुः । पलितंभावुकः । नग्नंभविष्णुः । नग्नंभावुकः । अन्धंभविष्णुः । अन्धभावुकः । प्रियंभविष्णुः । प्रियंभावुकः । कर्त्तृग्रहण से करण में न होते हैं। च्यर्थ मात्र से अन्यत्र आद्यो भविता। अचि्वग्रहणसे यहां न० । आद्यो भविता ॥ १०८२ ॥

१०८३—स्पृशोऽनुदके किन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ५८ ॥

अनुदक सुवन्त उपपद ही तो स्पृश् धातु से किन् प्रत्यय हो। घृतं स्पृशति, घृतस्पृक् । मन्त्रेणस्पृशति, मन्त्रस्पृक् । जलेन स्पृशति, जलस्पृक् । अनुदकग्रहण से यहां न हुआ उदकस्पर्शः । कर्म की अनुवृत्ति नहीं है किन्तु निवृत्त हो गई ॥ १०८३ ॥

१०८४—ऋत्विग्दधृक्स्त्रिगुणिगञ्च्युजिक्नुञ्चाञ्च ॥

अ० ॥ ३ । २ । ५९ ॥

ऋत्विज्, दधृक्, खज्, दिग्, उणिज् ये किन् प्रत्ययान्त निपातन और अञ्च्युजि, कुञ्चु धातुओं से किन् प्रत्यय ही। ऋतौ यजति, ऋतुं यजति, वा ऋतुप्रयुक्तौ यजजि, ऋत्विक् । यहां ऋतुशब्दपूर्वक यज धातु से किन् प्रत्यय है। धृणोतीति, दधृक् । यहां जिधृषा धातु से किन् प्रत्यय धातुद्विवचन और अन्तोदात्तत्व भी निपातन है। सृज्यते या सा सृक् । यहां सृज मे कर्म में किन् प्रत्यय और अमागम निपातन है। दिश्यतेजनैर्या सा दिक्। यहां दिग् से कर्म में किन् है। जर्ध्वं स्निह्यति,

* ख्युनि प्रतिषेधानर्थकं ल्युट्प्रयुजोरविशेषात् । ख्यु नि चि्व प्रतिषेधोऽर्थकः । किंकरणम् । ल्युट् ख्युनोरविशेषात् ख्युनासुनोऽन्युटा भवितव्यम् । नचैवास्तिविशेषः । चि्वन्त उपपदे ख्यु नो वा ल्युटो वा । तदेव रूपं संप्रयत्नः । महाभाष्य० ३ । २ । ५६ ॥ खील्लिङ्गे मे (स्त्रीण० ३६) । ख्युन् प्रत्ययान्त से भी डीप् ही जायगा। आद्यं करणी । काशिकाकारने जो इस विषय में अर्थतः ल्युट् प्रत्यय का भी प्रतिषेध माना है सो असङ्गत है ॥

उष्णिक् । यहां उत्पूर्वक सिह धातु से क्तिन् षत्व और उपसर्गान्त लोप निपातन है । निपातनशब्दों के साथ जो अच्च् आदि धातुओं से क्तिन् का विधान किया है इस से उन में कुछ अलाक्षणिक कार्य भी होता है । जैसे सोपपद अच्च् से क्तिन् प्रकर्षणाच्चति, प्राङ् । प्रत्यङ् । उदङ् । युज् और क्रुच् से निरुपपद से होता है । युङ् । युञ्जी । युञ्जः । क्रुङ् । क्रुञ्ची । क्रुञ्चः । यहां निपातन से नलोप नहीं होता । इन क्तिन् प्रत्ययान्तों में (नामि० ११५) से सर्वत्र पदान्त में कुत्व होता है ॥ १०८४ ॥

१०८५—त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६० ॥

त्यदादिक उपपद ही तो अनालोचन अर्थ में वर्तमान दृश धातु से कञ् और क्तिन् प्रत्यय ही । तमिवेमं पश्यन्ति जनाः सोयं स इव दृश्यमानस्तमिवात्मानं पश्यति ताटक् । ताटशः । याटक् । याटशः । स्त्री ताटशी । याटशी । यहां (स्त्रैण० ३५) सूत्र से डीप् प्रत्यय हो जा० । अनालोचनग्रहण से यहां न हुआ । तं पश्यति-तद्दर्शः । ताटगादिक शब्द रूढि शब्दों के समान हैं । दर्शनक्रिया के अर्थ को नहीं कहते हैं ॥ १०८५ ॥

१०८६—वा०—दृशेः समानान्ययोश्च ॥

समान और अन्य शब्द भी उपपद ही और अनालोचन गम्यमान होता दृश धातु से क्तिन् और कञ् प्रत्यय ही । सटक् । सटशः । अन्याटक् । अन्याटशः ॥ १०८६ ॥

१०८७—सत्सूद्विषद्रुहद्रुहयुजविदभिदक्षिदजिनौरा-

जामुपसर्गपि क्तिप् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६१ ॥

उपसर्ग वा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद ही तो सदादिक धातुओं से क्तिप् प्रत्यय हो । द्विष के साहचर्य से अदादि षूङ् धातु का ग्रहण है । युज से युजिर् और युज दोनों का ग्रहण है । विद् इस को अकारान्त पठने से विदज्ञाने । विद् सप्तायाम् । विद् विचारणे । इन तीनों का ग्रहण है किन्तु विदल्लका नहीं है । मत्, शुचिषत् । युषत् । परिषत् । सू, वीरसूः शतसूः । प्रसूः । द्विष, मित्राद्विट् । परिद्विट् । प्रद्विट् । दुह, मित्रधुक् । मित्रधुग् । प्रधुक् । दुह, गोधुक् । परिधुक् । युज्, अश्वयुक् । प्रयुक् । विद्, वेदवित् । प्रवित् । ब्रह्मवित् । भिद्, काष्ठभित् । प्रभित् । क्षिद्, रज्जुच्छिद् । प्रच्छिद् । जि, शत्रुजित् । परिजित् । नी, मेनानीः प्रणीः । ग्रामणीः । इत्यादिकों में (स्त्रैण० ६६६) सूत्र में ग्रामणी शब्द के निर्देश को मान कर (८७०) से णत्व होजाता है । राज्, विराट् सम्राट् ॥ १०८७ ॥

१०८८—भजो शिवः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६२ ॥

उपसर्ग वा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो भज धातु से शिव प्रत्यय हो । विश्वं भजति, विश्वभाक् । सुखभाक् । प्रभाक् ॥ १०८८ ॥

१०८९—छन्दसि सहः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६३ ॥

वेदविषय में सुबन्त उपपद हो तो सह धातु से शिव प्रत्यय हो । तुराषाट् । यहाँ (८०६) से षत्व० ॥ १०८९ ॥

१०९०—वहश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६४ ॥

वेदविषय में सुबन्त उपपद हो तो वह धातु से शिव प्रत्यय हो । प्रष्टवान् ॥ १०९० ॥

१०९१—कव्यपुरीषपुरीष्येषु जुष्ट ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६५ ॥

वेदविषय में कव्य, पुरीष, पुरीष्य ये उपपद हैं तो वह धातु से जुष्ट प्रत्यय हो । कव्यवाहनः । पुरीषवाहनः । पुरीष्यवाहनः ॥ १०९१ ॥

१०९२—हव्येऽनन्तः पादम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६६ ॥

वेदविषय में हव्य शब्द उपपद हो तो वह धातु से जुष्ट प्रत्यय हो जो वह पाद के मध्य में न हो । अग्निश्च हव्यवाहनः । अनन्तःपादग्रहण से यहाँ न हुआ । हव्यवाङ्गिरजरः पिता नः ॥ १०९२ ॥

१०९३—जनसनखनक्रमो विट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६७ ॥

वेदविषय में सुबन्त उपपद हो तो जन आदि धातुओं से विट् प्रत्यय हो । जन, अजाः । गीजाः । सन, गोषा इन्द्रो नृषा असि । खन, विसखाः । कूपखाः । क्रम, दधिक्राः । गम, अग्रेगा उन्नेतृणाम् ॥ १०९३ ॥

१०९४—अदोऽनन्ते ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६८ ॥

अद धातु से अन्नभिनं सुबन्त उपपद हो तो विट् प्रत्यय हो । आममत्ति, आमात् । सस्यात् । अन्नग्रहण से यहाँ न हुआ । अन्नादः ॥ १०९४ ॥

१०९५—क्रव्ये च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६९ ॥

क्रव्य शब्द उपपद हो तो अद धातु से विट् प्रत्यय हो । क्रव्यात् । यहाँ भी पूर्व सूत्र से विट् प्रत्यय हो जाता फिर यह सूत्र असरूप प्रत्यय के बाधने के लिये है इस से क्रव्योपपद अद धातु से अण् प्रत्यय नहीं होता है ॥ १०९५ ॥

१०९६—दुहः कप्श्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७० ॥

सुबन्त उपपद हो तो दुह धातु से कप् प्रत्यय और धातु को वकारोन्तादेश हो । कामान्दोग्धि, कामदुघा । अर्थदुघा ॥ १०९६ ॥

१०६७—मन्त्रेश्वेतवहोक्थशसपुरोडाशो खिन् ॥ अ० ॥ ३।२।७१ ॥

मन्त्रविषय में श्वेतवह, उक्थशस, पुरोडाश इन से खिन् प्रत्यय हो। कर्त्तृ-
वाचक श्वेत शब्दोपपद वह धातु से कर्मकारक में खिन् प्रत्यय हो। श्वेता यं
वहन्ति स श्वेतवाः। कर्मवाचक वा करणवाचक उक्थ शब्द पूर्वक शंस धातु से
खिन्। उक्थानि शंसति उक्थेर्वा शंसति उक्थशाः। पुरः पूर्वक दाश को डका-
रादेश कर्म में खिन्। पुरोदाशन्त इममिति पुरोडाः। इस विषय में पदान्त में
(नामि० १२१, १२३) से डस् आदि कार्य होते हैं ॥ १०६७ ॥

१०६८—अवे यजः ॥ अ० ॥ ३।२।७२ ॥

मन्त्रविषय में अव उपपद हो तो यज धातु से खिन् प्रत्यय हो। अवयजति,
अवयाः। त्वं यजे वरुणस्यावया असि ॥ १०६८ ॥

१०६९—विजुपे छन्दसि ॥ अ० ॥ ३।२।७४ ॥

वेदविषय में उप उपपद होता यज धातु से विच् प्रत्यय हो। उपयडभीरुर्ध्वं
बहन्ति। यहां छन्दोपहण ब्राह्मण विषय के लिये भी है ॥ १०६९ ॥

११००—आतो मनिन्कनिव्वनिपश्च ॥ अ० ॥ ३।२।७३ ॥

वेदविषय में सुबन्त उपपद हो तो आकारान्त धातु से मनिन्, कनिप्, वनिप्
विच् प्रत्यय हों। मनिन् शोभनं ददाति सुदामा। अश्वत्यामा। कनिप् सुधीवा
सुपीवा। वनिप्। भूरिदावा। दृतपावा। विच्, कीलालपाः ॥ ११०० ॥

११०१—अग्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥ अ० ॥ ३।२।७५ ॥

आकारान्ती से अन्य धातुओं से भी मनिन्, कनिप्, वनिप् विच् प्रत्यय देखे
जाते हैं ॥ ११०१ ॥

११०२—नेडुशि कृति ॥ अ० ॥ ७।२।८ ॥

वशादि कृत् संज्ञक प्रत्यय परे हो तो इट् न हो। इस से इट् का निषेध हो
कर शोभनं शृणाति सुशर्मा। कनिप् प्रातरित्वा। प्रातरित्वानी। वनिप् विजावा।
अग्ने गावा। विच् रेडसि पर्णं नयेः। यहां अपि शब्द सर्वोपाधिनिवृत्ति के लिये
है। इस से केवल से भी होता है। धीवा। पीवा ॥ ११०२ ॥

११०३—क्विप् च ॥ अ० ॥ ३।२।७६ ॥

धातु से क्विप् प्रत्यय हो। उखायाः स्वस्यते उखास्वतापर्णध्वत्वाहाद् अस्थति
वाहभट्। यह क्विप् प्रत्यय सोपपद वा निरुपपद धातु से लोक वेद में सर्वत्र
होता है ॥ ११०३ ॥

११०४—इक्षन् तन्क्वि च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६७ ॥

इस् मन् तन्क्वि ये परे हों तो छादि धातु की उपधा को इक्ष आदेश हो । तन् छादयति, तनुच्छत् । ज्वरतीति, जूः । जूरी । जरः । तूः । सूः । जनानवतीति, जनीः । जनावी । जनावः । मवतीति मूः । यद्वां सर्वत्र (५५८) से ऊठ् । मूर्च्छति, मूः । मुरी । मुरः । धूर्वति, धूः । धुरी । धुरः (५५८) से ऊव् लोप० ॥ ११०४ ॥

११०५—गमः कौ ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४० ॥

क्वि परे ही तो गम के अनुनासिक का लोप हो । अहान् गच्छति, अहगत् । कश्मीरगत् । कलिङ्गगत् ॥ ११०५ ॥

११०६—वा०—गमादीनामिति वक्तव्यम् ॥

क्वि के परे गमादिकों के अनुनासिक का लो० । परितस्तनोतीति, परीतत् । परीतत्सह कुण्डिकया । संयच्छतीति संयत् । शोभनं नमति, सुनत् ॥ ११०६ ॥

११०७—वा०—ऊङ् च ॥

लोपविषय में गमादिकों के अन्य को ऊङ् भी हो । अये गच्छति, अयेगूः । अये भ्राम्यति, अयेभ्रूः ॥ ११०७ ॥

११०८—स्यः क च ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७७ ॥

उपसर्ग वा अनुपसर्ग सुबन्त उपपद हो तो स्या धातु से क और क्वि प्रत्यय हो । शं सुखं यथास्यात्तथा तिष्ठति, शंस्यः । शंस्थाः । यद्यपि (क, क्विप्) प्रत्यय (१००२, १०१२) सूत्रों से हो जाते तथापि यह सूत्र बाधकों के बाधने के लिये है इस से 'शंस्यः', आदि में (१०१६) सूत्र से प्राप्त अच् को बाधता है ॥ ११०८ ॥

११०९—मुष्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ॥ अ० ॥ ३ । २ । ७८ ॥

अजातिवाचो सुबन्तमात्र उपपद और ताच्छील्य अर्थ गम्यमान हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो । उष्णं भोक्तुं शीलमस्य, उष्णभोजी । शीतभोजी । कटुभोजी । मिष्टभोजी । न्यायकारी । उदासर्त्तुं शीलमस्या, उदासारिणी । उदासारिणी । उदासारिण्यः । प्रत्यासारिण्यः । अनुयायी । विसारी । अनुजीवी । अजाति ग्रहण से यहां न हुआ । गवां दोग्धा । ताच्छील्य ग्रहण से यहां न हुआ । कदाचिन्न्यायं करोति ॥ ११०९ ॥

१११०—वा०—णिनिधौ साधुकारिण्युपसंख्यानम् ॥

साधु करोति, साधुकारी । साधु ददाति, साधुदायी ॥ १११० ॥

११११—वा०—ब्रह्मणि वदः ॥

ब्रह्म उपपद हो तो वद धातु से णिनि प्रत्यय हो। ब्रह्म वदति, ब्रह्मवादी। ब्रह्मवादिनो वदन्ति। उक्त दोनों वार्तिक तात्कील्य से अन्यत्र के लिये हैं ॥ ११११ ॥

१११२—कर्त्तर्युपमाने ॥ अ० ॥ ३।२।७६ ॥

उपमानवाची कर्त्ता उपपद हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो। उद्गृह्य क्रोशति, उद्गृ-
क्रोशी। ध्वाङ्गुरावी। अतात्कील्यार्थ वा जात्यर्थ यह सूत्र है। कर्मग्रहण से यहां न०। अपूपानिव माषान् भक्षयति। उपमानग्रहण से यहां न०। उद्गृःक्रोशति॥१११२॥

१११३—व्रते ॥ अ० ॥ ३।२।८० ॥

शास्त्रोक्त नियम गम्यमान हो और सुबन्त उपपद हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो। स्थण्डिलस्थायी। स्थण्डिलशायी। नियम से स्थण्डिल ही पर सोता है। व्रत ग्रहण से यहां न हुआ। कदाचित् स्थण्डिले गते देवदत्तः। यह जाति के अर्थ वा तात्कील्य से अन्य अर्थ में होने के लिये सूत्र है ॥ १११३ ॥

१११४—बहुलमाभीक्ष्ण्ये ॥ अ० ॥ ३।२।८१ ॥

आभीक्ष्ण्य (वार वार होना) अर्थ गम्यमान हो और सुबन्त उपपद हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो। कषायपायिणो गान्धाराः। क्षीरपायिण उशीनराः। सौबीरपायिणो बालहीकाः। बहुलग्रहण से यहां न हुआ। कुल्माषखादः॥१११४॥

१११५—मनः ॥ अ० ॥ ३।२।८२ ॥

सुबन्त उपपद होती मन् धातु से णिनि प्रत्यय हो। दर्शनीयं मन्यते, दर्शनीयमानी। शोभनमानी। बहुमानो। सामान्य मन् के ग्रहण से मन् मात्र का ग्रहण प्राप्त है तथापि पूर्वसूत्र से बहुल, शब्द की अनुवृत्ति करके किसी मन् से णिनि नहीं भी होता इस से यहां मन्यति का ग्रहण है किन्तु तनादि मनुधातु का ग्रहण नहीं है ॥ १११५ ॥

१११६—आत्ममाने खञ्ज ॥ अ० ॥ ३।२।८३ ॥

आत्ममान (प्रपने की मानना) अर्थ गम्यमान होती मन् धातु से णिनि और खञ् प्रत्यय हो। आत्मानं पण्डितं मन्यते, पण्डितं मन्यः। पण्डितमानी। आत्ममान ग्रहण से यहां दो प्रत्यय न हुए। विष्णु मित्रं पण्डितं मन्यते, पण्डितमानी ॥१११६॥

१११७—इचएकाचोम्प्रत्ययवच्च ॥ अ० ॥ ६।३।६८ ॥

खिदन्त उत्तरपद पर हो तो इजन्त एकाच् को अम् आगम हो और वह अम् विभक्ति के तुल्य हो। गांमन्यः। यहां (१११) से ओकार को आकारादेशः। स्त्रीमन्यः।

स्त्रियमन्यः । यहां (नामि० ६०) में इयङ् विक० । इज्यहण से यहां न हुआ ।
त्वमन्यः । एकाज् ग्रहण से यहां न हुआ । लेखाम्नमन्यः ॥ १११७ ॥

१११८—भूते ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८४ ॥

यहां से जो प्रत्ययविधान करें सो भूतकाल में हो । यह अधिकार वर्त्तमानाधिकार से पूर्व २ है ॥ १११८ ॥

१११९—करणे यजः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८५ ॥

करण उपपद होतो भूतकाल में यज धातु से णिनि प्रत्यय हो । सीमेनेष्टवान् सीमयाजी । अग्निष्टोमेनायाचीत्, अयष्टवा अग्निष्टोमायाजी । भूतकाल से अग्यत्र अग्निष्टोमेन यजते ॥ १११९ ॥

११२०—कर्मणि हनः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८६ ॥

कर्म उपपद हो तो हन धातु से भूतकाल में णिनि प्रत्यय हो । पितृव्यघाती । मातुलघाती । यहां से सह पर्यन्त कर्माधिकार है ॥ ११२० ॥

११२१—ब्रह्मभूणवृत्तेषु क्विप् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८७ ॥

ब्रह्मन्, भूण, वृत्तये कर्म उपपद ही तो भूतकाल में हन धातु से क्विप् प्रत्यय हो । ब्रह्माणमवधीत् ब्रह्महा । भूणहा । वृत्तहा । धातु मात्र से क्विप् प्रत्यय का विधान कर चुके हैं इस से यह ब्रह्मादि विषयक क्विप् प्रत्यय नियमार्थ है । वह यहां दो प्रकार का नियम है । प्रथम, भूतकाल में ब्रह्मादिक ही उपपद ही तो हन धातु से क्विप् हो अन्योपपद हो तो नहीं इस से पुरुषं हतवान् । यहां क्विप्न० । दूसरा, भूतकाल में ब्रह्मादिक उपपद ही तो हन से क्विप् ही हो किन्तु और प्रत्यय नहीं इस से वृत्रमवधीत् यहां कर्मीपपद अण् भी नहीं होता ॥ ११२१ ॥

११२२—बहुलं छन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८८ ॥

वेदविषय में कर्म उपपद हो तो हन धातु से बहुल करके क्विप् प्रत्यय हो । माटहा सप्तमं नरकं प्रविशेत् । पिटहा । भाटहा । कहीं नहीं भी होता अमित्रघातः ॥ ११२२ ॥

११२३—सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृजः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ८९ ॥

स्वादिक कर्म उपपद ही तो कृज् धातु से भूतकाल में क्विप् प्रत्यय हो । शोभनं कृतवान् सुकृत् । कर्मकृत् । पापकृत् । मन्त्रकृत् । पुण्यकृत् । यहां तीन प्रकार का नियम है प्रथम, स्वादिक उपपद हो तो कृज् से क्विप् ही हो और प्रत्यय न हो । इस से कर्म कृतवान् । यहां अण् नहीं होता । दूसरा, स्वादिक उपपद ही तो कृज्,

ही से क्तिप् हो। इस से। मन्त्रमधीतवान्, यहां क्तिप् न०। स्वादिक उपपद ही तो भूतकाल ही में कृञ् से क्तिप् हो अन्यकाल में न हो। इस से मन्त्र पुरोति करिष्यति वा यहां क्तिप् न०। स्वादिकों का नियम नहीं है इस से अन्योपपद में भी सामान्य क्तिप् होता है। भाष्यकृत्। शास्त्रकृत् ॥ ११२३ ॥

११२४—सोमे सुञ्जः ॥ अ० ॥ ३। २। ६० ॥

सोम कर्म उपपद ही तो भूतकाल में सुञ् धातु से क्तिप् प्रत्यय हो। सोम सुतवान्, सोमसुत् ॥ ११२४ ॥

११२५—अग्नौ चेः ॥ अ० ॥ ३। २। ६१ ॥

अग्नि कर्म उपपद ही तो चिञ् धातु से भूतकाल में क्तिप् प्रत्यय हो। अग्निचितवानग्निचित्। अग्निचितौ। अग्निचितः ॥ ११२५ ॥

११२६—कर्मण्यग्न्याख्यायाम् ॥ अ० ॥ ३। २। ६२ ॥

कर्म उपपद ही तो भूतकाल में चिञ् धातु से कर्मकारक में क्तिप् प्रत्यय हो जो धातु उपपद और प्रत्यय के समुदाय से अग्न्याधारस्थल विशेष को आख्या पाई जाय। श्येन इव चितः श्येनचित्। कङ्कचित्। अग्नि के लिये जो ईंटों का चय के धरना है उसको संज्ञा है ॥ ११२६ ॥

११२७—कर्मणीनिर्विक्रियः ॥ अ० ॥ ३। २। ६३ ॥

कुत्सानिमित्तक कर्म उपपद होतो विपूर्व डुकौञ् धातु से भूतकाल में इनि प्रत्यय हो। सोमं विक्रीतवान् सोमविक्रयी। रस विक्रयी। कर्म वर्तमान था फिर कर्म ग्रहण शुद्ध कर्म से अन्य कर्म को ग्रहण करने के लिये है इस से यहां कुत्सानिमित्तक कर्म का ग्रहण होता है अतएव यहां न हुआ। धान्यविक्रायः ॥ ११२७ ॥

११२८—दृशेः क्तिप् ॥ अ० ॥ ३। २। ६४ ॥

कर्म उपपद होतो दृश् धातु से भूतकाल में क्तिप् प्रत्यय हो। पारं दृष्टवान् पारदृष्टा। मेरुदृष्टा ॥ ११२८ ॥

११२९—राजनि युधिक्षञ्जः ॥ अ० ॥ ३। २। ६५ ॥

राजन् शब्द कर्म उपपद ही तो युधि कृञ् धातुओं से भूतकाल में क्तिप् प्रत्यय हो। राजानं योधितवान् राजयुद्धा। यद्यपि युधि अकर्मक है तथापि अन्तर्भा वितण्यर्थ मानकर सकर्मक हो जाता है। राजानं हततान् राजहत्वा ॥ ११२९ ॥

११३०—सहै च ॥ अ० ॥ ३। २। ६६ ॥

सह शब्द उपपद होतो युधि कृञ् धातुओं से भूतकाल में क्तिप् प्रत्यय हो। सहायोत्सीत् सहयुद्धा। सहाकार्षीत् सहहत्वा ॥ ११३० ॥

११३१—सप्तम्यां जनेर्ङः ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६७ ॥

सप्तम्यन्त उपपद ही तो भूतकाल में जन धातु से ड प्रत्यय ही। उपसर्गे जातः। उपसरजः। सरसिजः। यहां (सामा० त् ल्युषे कृति०) सूत्र से सप्तमी का प्रत्यय भी होता है लुक् पक्ष में। सरोजः ॥ ११३१ ॥

११३२—पञ्चम्यामजातौ ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६८ ॥

जातिभिन्न पञ्चम्यन्त उपपद ही तो जन धातु से भूतकाल में ड प्रत्यय ही। संस्काराज्जातः संस्कारजः। पङ्कजः। दुःखजः। अजातिग्रहण से यहां न हुआ। हस्तिनो जातः। अश्वाज्जातः ॥ ११३२ ॥

११३३—उपसर्गं च संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । ६९ ॥

उपसर्ग उपपद ही तो भूतकाल में जन धातु से ड प्रत्यय संज्ञाविषय में ही। प्रकर्षेण जाताः प्रजाः ॥ ११३३ ॥

११३४—अनौ कर्मणि ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०० ॥

कर्म उपपद ही तो अनूपसर्गपूर्वक जन धातु से भूतकाल में ड प्रत्यय ही। राममनुजातो रामानुजः। भरतानुजः ॥ ११३४ ॥

११३५—अन्येष्वपि दृश्यते ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०१ ॥

अन्य भी उपपद ही तो भूतकाल में जन धातु से ड प्रत्यय देखा जाता है। सप्तम्यन्तोपपद में कहा है उस से अन्यत्र जैसे। नाजनीति, अजः। द्वाभ्यां जन्मसंस्काराभ्यां जाता द्विजाः। अजातिविषयक पञ्चम्यन्तोपपद में कहा है उस से अन्यत्र जातिविषय में जैसे। ब्राह्मणजी धर्मः। चतुर्यजं युद्धम्। वैश्यजो व्यापारः। उपसर्गोपपद से संज्ञाविषय में कहा है उस से अन्यत्र असंज्ञा में। अभिजाः। परिजाः। केशाः। अनुपूर्वक से कर्मोपपद में कहा है अन्यत्र। अनुजातः। अनुजः। अपि शब्द सर्वोपाधिनिवृत्ति के लिये है इस से यहां भी होता है। परितः खाता परित्वा। आखा ॥ ११३५ ॥

११३६—कृत्तवतु निष्ठा ॥ अ० ॥ १ । १ । २६ ॥

कृत्तवतु ये निष्ठा संज्ञक ही ॥ ११३६ ॥

११३७—निष्ठा ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०२ ॥

भूतकाल में धातु से निष्ठा संज्ञक प्रत्यय ही। अकारोति कृतः। अकार्षीदिति कृतवान्। भुक्तम्। भुक्तवान्। यह कृत्त प्रत्यय कर्म (६१४) में और कृत्तवतु कर्त्ता (६१३) में होता है ॥ ११३७ ॥

११३८—निष्ठायासण्यदर्थे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६० ॥

ण्यदर्थे जो भावकर्म्म * उस से अन्य अर्थ (कर्त्ता आदि) में निष्ठा परे हो तो चि धातु की दीर्घादेश हो ॥ ११३८ ॥

११३९—क्षियो दीर्घात् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४६ ॥

क्षि धातु के दीर्घ से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो । अन्वेषीदिति, क्षीणवान् । भाव में क्षितमनेन । कर्म, क्षितः कामिनया ॥ ११३९ ॥

११४०—रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४२ ॥

रेफ और दकार से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश तथा उस निष्ठा से पूर्व धातु के दकार की भी नकारादेश हो । शीर्णः । विस्तीर्णम् । यहाँ० (२६५) सूत्र से ऋकार को इकारादेश (संघि० ५७) सूत्र से रपरत्वं० द, भिन्नः । भिन्नवान् । रदग्रहण से यहाँ न हुआ । कृतः । कृतवान् । निष्ठाग्रहण से यहाँ न० । कर्त्ता । तग्रहण से यहाँ० । चरितम् । पूर्वग्रहण से पर को न हुआ । भिन्नवद्भ्याम् ॥ ११४० ॥

११४१—संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४३ ॥

संयोगादि जो यण्वान् आकारान्त धातु उस से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो । संस्थानः । ग्लानः । प्रद्राणः । संयोगादिग्रहण से यहाँ न० (यातः) यातवान् । आद्यग्रहण से यहाँ न० । च्युतः । च्युतवान् । म्रुतः । म्रुतवान् । धातुग्रहण से यहाँ न० । निर्यातः । यण्वदग्रहण से । ज्ञातः । ज्ञातवान् । यहाँ न० ॥ ११४१ ॥

११४२—लवादिभ्यः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४४ ॥

लूजादिक धातुओं से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो । यहाँ क्यूादिगण स्थ [लूज] छेदने से लेकर [पू] गती इस धातु पर्यन्त धातुओं का ग्रहण । है उन में रेफ से परे नकारादेश पूर्व से भी सिद्ध है शेष धातुओं से अप्राप्त है लूनः । लूनवान् । धूनः । धूनवान् ॥ ११४२ ॥

११४३—वा०—दुबोर्दीर्घश्च ॥

दु और गु धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश और उन की दीर्घ भी कहना चाहिये दु, आदूनः । गु, आगूनः ॥ ११४३ ॥

११४४—पूजो विनाशे ॥

विनाश अर्थ में वर्त्तमान पूज धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो ।

* एतत् कृत्य संज्ञक प्रत्यय है कृत्य प्रत्यय (२१४) सूत्र से भावकर्म्म में होते हैं इस से एतदर्थे भावकर्म्म है

पूनाः * यवाः । यव विनाश को प्राप्त हो गये । विनाशग्रहण से यहाँ न० पूत धान्यम् । धान्य पवित्र है ॥ ११४४ ॥

११४५—वा०—सिनोतेग्रासकर्मकर्त्तृकस्य ॥

जिस का ग्रास कर्मही कर्त्ता हुआ हो उस चिञ् धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो । असायि ग्रासः स्वयमेवेति सिनो ग्रासः स्वयमेव । ग्रास कर्मकर्त्तृ ग्रहण से यहाँ न० । सिता पाशेन सूकरी । फसरी से सूकरी आप ही बंधगई इस अपेक्षा में निष्ठात, को न न हुआ । ग्रास शब्द भी जब कर्म ही रहता तब निष्ठा तकार को नकार नहीं होता है । सिती ग्रासो देवदत्तेन ॥ ११४५ ॥

११४६—ओदितश्च ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४५ ॥

जिस का ओकार इत् संज्ञक हो उस से परे निष्ठा तकार को नकारादेश हो । ओलजी, लग्नः । लग्नवान् । ओविजी, उद्दिग्नः । उद्दिग्नवान् । ओहाक् प्रहीणः प्रहीणवान् ॥ ११४६ ॥

११४७—द्रवमूर्त्तिस्पर्शयोः श्यः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४५ ॥

निष्ठा परे हो तो द्रवमूर्त्ति (घृतादिपदार्थ का कड़ापन) औरस्पर्श (सागना) अर्थ में वर्त्तमान श्यैङ् धातु को संप्रसारण हो । स्पर्श, श्रोतं वर्त्तते । श्रोतो वायुः । द्रवमूर्त्ति में अगले सूत्र में उदाहरण देंगे । द्रवमूर्त्ति स्पर्श ग्रहण से यहाँ न० संशयानो वृश्चिकः सिमिटा हुआ बोझी है ॥ ११४७ ॥

११४८—श्योऽस्पर्श ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४७ ॥

स्पर्श भिन्न अर्थ में वर्त्तमान श्यैङ् धातु से परे निष्ठा तकार को नकारादेश हो । श्रोतं घृतम् । जमा घृत है अस्पर्श ग्रहण से यहाँ न हुआ । श्रोतो वायुः ॥ ११४८ ॥

११४९—प्रतिश्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । २५ ॥

निष्ठा परे हो तो प्रति से परे श्यैङ् धातु को संप्रसारण हो । प्रतिशीनः । प्रतिशीनवान् ॥ ११४९ ॥

११५०—विभाषाभ्यवपूर्वस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । २६ ॥

निष्ठा परे हो तो अभि अब पूर्वक श्यैङ् धातु को विकल्प करके संप्रसारण हो । अभिशीनम् । अभिश्यानम् । अवशीनम् । अवश्यानम् । द्रवमूर्त्तिस्पर्शविवक्षा में भी विकल्प होता है । अभिशीनम् । अभिश्यानम् । अवशीनम् । अवश्यानं वा घृतम् । अभिशीतः । अभिश्यानः । अवशीतः । अवश्यानो वा वायुः । यह व्यवस्थित विभाषा

है इस से अभि, अव और किसी के साथ में हों तो संप्रसारण नहीं होता । सम-
वर्णानः । समभिष्यानः ॥ ११५० ॥

११५१—अञ्चोनपादाने ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४८ ॥

अनपादान में अञ्चु धातु से परे निष्ठा के तकार को नकारादेश हो ॥ ११५१ ॥

११५२—यस्य विभाषा ॥ अ० ॥ ७ । २ । १५ ॥

जिस धातु के विषय में कहीं विकल्प करके इट् कहा है उस से निष्ठा में
इडागम न हो । सम् + अञ्चु + त = समक्तः । न्यक्तः । उदित् धातु से क्ता प्रत्यय
को विकल्प करके इडागम कहेंगे इस से यहां इट् (४६) नहुआ । अनपादान-
ग्रहण से यहां न० । उदत्तमुदकं कूपात् ॥ ११५२ ॥

११५३—दिवोऽविजिगीषायाम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४६ ॥

अविजिगीषा (न जीतने की इच्छा) अर्थ में दिवु धातु से परे निष्ठातकार को
नकारादेश हो । आद्यूनः । अविजिगीषाग्रहण से यहां न० । द्यूतं वर्त्तते ॥ ११५३ ॥

११५४—निर्वाणोवाते ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५० ॥

अवात अर्थ में निर्वाण, यह निपातन है । निर्वाणोमुनिः । निवृत्त सुख की
मुनि प्राप्त है यहां वात (पवन) से अन्य कर्त्ता में निस्पूर्वक वा धातु से निष्ठा
तकार को नकारादेश होता है । वात में ती । निर्वातः । होगा ॥ ११५४ ॥

११५५—शुषः कः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५१ ॥

शुष धातु से परे निष्ठा के तकार को ककारादेश हो । शुष्कः । शुष्क-
वान् । शुष्कवन्ती ॥ ११५५ ॥

११५६—पचो वः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५२ ॥

पच धातु से निष्ठा तकार को वकारादेश हो । पक्कः । पक्वान् ॥ ११५६ ॥

११५७—क्षायो मः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५३ ॥

क्षै धातु से परे निष्ठा के तकार को मकारादेश हो । क्षामः । क्षामवान् ॥ ११५७ ॥

११५८—स्त्यः प्रपूर्वस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । २३ ॥

निष्ठा परे ही तो प्रपूर्वक स्त्य धातु की संप्रसारण हो ॥ ११५८ ॥

११५९—प्रस्त्योन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५४ ॥

प्रपूर्वकस्त्यै धातु से परे निष्ठा के तकार को मकारादेश विकल्प करके हो ।
प्रस्तीमः । प्रस्तीमवान् । प्रस्तीतः । प्रस्तीतवान् ॥ ११५९ ॥

११६०—आदितश्च ॥ अ० ॥ ७।२। १६ ॥

आकार जिसका इत् संज्ञक हो उससे परे निष्ठा को इट् आगमन हो ॥ ११६० ॥

११६१—ति च ॥ अ० ॥ ७।४। ८६ ॥

तकारादि कित् परे ही तो चर, फल धातुओं के अकारको उकारादेश हो ॥ ११६१ ॥

११६२—अनुपसर्गात्फुल्लचीवकशोऽप्लाघाः ॥ अ० ॥ ८।२। ५५ ॥

उपसर्ग में न परे ही तो फुल्ल, चीव कश्च और अप्लाघ ये निपातन हैं । फुल्लः । यहाँ [जिफला] विशरणे धातु से निष्ठा के त को लत्व निपातन और (११६०) इट् निषेध तथा (११६१) से उकार होता है । इस धातु से निष्ठा को लकार एकदेश में भी इष्ट है । फुल्लवान् । [चीव] मदे चीवः मत्त का नाम है [कश्च] तनूकरणे । कश्चः । दुर्बलशरीर । उत् पूर्व [लाष्ट] सामर्थ्य से अप्लाघः । नौरोग । कड़ाता है इन प्रयोगों में निष्ठा के तकार का लोप और उस के असिद्ध (सन्धि० ८४) होने से प्राप्त इट् का निषेध निपातन है । उपसर्ग से परे उक्त निपातन नहीं होते हैं । जैसे प्रफुल्लितः । प्रचीवितः । प्रकश्चितः । प्रप्लाघितः । प्रफुल्ल शब्द तो फुल्ल विक-
शने से (८७५) सूत्र में होगा ॥ ११६२ ॥

११६३—वा०—उत्फुल्लसंफुल्लयोरिति वक्तव्यम् ॥

जिफला धातु से निष्ठातकार को नकारादेश विधान में उत्फुल्ल संफुल्ल इन शब्दों का भी उपसंख्यान करना चाहिये । उत्फुल्लः । संफुल्लः ॥ ११६३ ॥

११६४—गुदविदोन्दवाघ्राक्रीभ्योन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ८।२। ५६ ॥

गुद, विद, उन्द, वा, घ्रा, क्री इन धातुओं से परे निष्ठा तकार और पूर्व दकार को नकारादेश विकल्प करके ही । गुद, गुन्नः । गुत्तः । विद, विन्नः । वित्तः । यहाँ रुधादि गणस्थ [विद] विचारणे । धातु का ग्रहण है । उन्दी, उन्द + त । यहाँ ॥ ११६४ ॥

११६५—श्चिदितो निष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ७।२। १४ ॥

श्चि और ईदित् धातु से परे निष्ठा को इट् आगमन हो । इस से इट् का निषेध होकर उन्नः । उत्तः । वा, वातः । वाणः । घ्रा, घ्राणः । घ्रातः । क्रीणः । क्रीतः ॥ ११६५ ॥

११६६—न ध्याख्यापृमूर्च्छिमदाम् ॥ अ० ॥ ८।२। ५७ ॥

ध्या ख्या पृ मूर्च्छि मद् इन से परे निष्ठा को नकारादेश न हो । ध्यातः । ध्यातवान् । ख्यातः । ख्यातवान् । पूर्तः । पूर्तवान् । मूर्च्छः (५५६) मूर्च्छवान् । मत्तः । मत्तवान् ॥ ११६६ ॥

११६७—वित्तो भोगप्रत्यययोः ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५८ ॥

भोग और प्रत्यय (प्रतीत) अर्थ में वित्त, यह निपातन ही । भोग, बहु वित्तम् अस्य। इस के बहुत धन है। सब प्रकार धन ही भोगते हैं इस से भोग अर्थ प्रकाशित होता है । प्रत्यय, वित्तियं पुरुषः। पुरुष प्रतीत हुआ है । यहां विदुल का ग्रहण है । उक्त अर्थों से अन्यत्र विन्नः होगा । वेत्सेत् विदितो निष्ठा विद्यते विन्न इत्यते वित्ते-र्विन्नश्चित्तश्च भोगे वित्तश्च विन्दतेः । महाभाष्य ८ । २ । ५८ [विद्] ज्ञाने से निष्ठान्त विदितः, और [विद्] सत्तायाम् से निष्ठान्त विन्न तथा विद् विचारणे से निष्ठान्त (११६४) विन्न, वित्त और भोग वा प्रत्यय में [विदुल] लामे से वित्त इष्ट है । यहां कारिका में भोग उपलक्षण मात्र है इस से प्रत्यय का भी ग्रहण है ॥ ११६७ ॥

११६८—भित्तं शकलम् ॥ अ० ॥ ८ । २ । ५९ ॥

शकल (टुकड़ा) वाच्य हो तो भित्त यह निपातन है । भिदिर, भित्तम् । शकलम् । अन्यत्र भित्तम् ॥ ११६८ ॥

११६९—ऋणमाधमर्ण्ये ॥ अ० ॥ ८ । २ । ६० ॥

आधमर्ण्य (ऋण का लेना) अर्थ में ऋण यह निपातन ही । ऋणं धारयति यहां ऋ धातु से निष्ठा के तकार को नकारादेश निपातन है । आधमर्ण्य ग्रहण से यहां न हुआ । ऋतं वक्ष्यामि । ऋणे अधमः, अधमर्णः । अधमर्णस्य भावः आधमर्ण्यम् । ऋणमें जो लेनेवाला है वह अधम कहाता है यहां समास में सप्तम्यन्त ऋण शब्द का अपूर्वनिपात आधमर्ण्य, इस निर्देश को देख कर होता है तथा यह अधमर्ण्य उपलक्षण भी है इस से उत्तमर्ण्य, यह भी होता है ॥ ११६९ ॥

११७०—नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूत्तसूत्तगूर्त्तानि छन्दसि ॥ अ० ॥ ८ । २ । ६१ ॥

वेदविषय में नसत्त, निषत्त, अनुत्त, प्रतूत्त, सूत्त, गूर्त्त ये निपातन ही । नसत्त मञ्जसा । निषत्तमस्य चरतः । इनमें नज् और निपूर्वक सट् धातु से निष्ठा तकार को नकारादेश का अभाव निपातन है लोक में असत्त, निषत्त होगी । अनुत्त मां ते सधवन् । यहां नज् पूर्वक उन्दी से निष्ठा को नत्वाभाव नि० । अनुत्त यह लोक में होगा । प्रतूत्त वाजिनम् । यहां त्वर वा तुर्वी धातु से निष्ठा को नत्वाभाव० । लोक में प्रतूर्णम् सूत्त गावः । यहां सट् धातु से निष्ठा को नत्वाभाव० । लोक में । सूताः । गूर्त्त अमृतस्य । यहां गूरी से निष्ठा को नत्वाभाव० । लोक में गूर्णम् ॥ ११७० ॥

११७१—स्फायः स्फी निष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । २२ ॥

निष्ठा परे हो तो स्फाय धातु को स्फी आदेश ही । स्फायी, स्फीतः । स्फीत वान् । निष्ठाग्रहण से यहां न० । स्फातिः । यह क्तिन् प्रत्ययान्त है ॥ ११७१ ॥

११७२—इण् निष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ४७ ॥

निर् से परे जो कुष धातु उस से निष्ठा परे हो तो उस की इडागम हो ।
निष्कृषितः ॥ ११७२ ॥

११७३—वसतिक्षुधोरिट् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५२ ॥

वस और क्षुध धातु से परे क्त्वा और निष्ठा को इट् का आगम हो । वस,
उषितः । उषितवान् । क्षुधितः । क्षुधितवान् ॥ ११७३ ॥

११७४—अञ्जे पूजायाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५३ ॥

पूजार्थ में अञ्जु से क्त्वा और निष्ठा को इडागम हो । अञ्जिता अस्य गुरवः ।
पूजा से अन्यत्र उदत्तमुदकं कृपात् ॥ ११७४ ॥

११७५—लुभो विमोहने ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५४ ॥

विमोहन (व्याकुल करना) अर्थ में वर्तमान लुभ धातु से परे क्त्वा और निष्ठा
को इट् आगम हो । विलुभितः । विलुभितानि पदानि । विमोहनग्रहण से यहाँ
न हुआ । लुब्धो वृषलः ॥ ११७५ ॥

११७६—क्लिशः त्वानिष्ठयोः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५० ॥

क्लिश् धातु से परे क्त्वा और निष्ठा को विकल्प करके इट् आगम हो । क्लिष्टः ।
क्लिष्टवान् । क्लिशितः । क्लिशितवान् । यहाँ [क्लिश] उपतापे और [क्लिश्]
विबाधने इन दोनों का ग्रहण है ॥ ११७६ ॥

११७७—पूङश्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । ५१ ॥

पूङ् धातु से क्त्वा और निष्ठा को इडागम विकल्प करके हो । पू + इ + त् यहाँ ॥ ११७७ ॥

११७८—पूङः क्त्वा च ॥ अ० ॥ १ । २ । २२ ॥

पूङ् धातु से परे क्त्वा और निष्ठा कित् न हो । पवितः । इट् विकल्प में पूतः ॥ ११७८ ॥

११७९—निष्ठा शौङ्स्त्रिदिमिदिद्विदिधृषः ॥ अ० ॥ १ । २ । १६ ॥

जिषिदा, जिमिदा, जिप्तिदा, जिधृषा इन से परे सेट् निष्ठा कित् न हो ।
शौङ् शयितः । शयितवान् । यहाँ डकारोच्चारण यङ्लुगन्त की निवृत्ति के लिये
है । शेषितः । शेषितवान् ॥ ११७९ ॥

११८०—वा०—आदिकर्मणि निष्ठा वक्तव्या ॥

आदि कर्म (प्रथम क्रिया) में धातु से निष्ठा संज्ञक प्रत्यय कहना चाहिये ॥ ११८० ॥

११८१—आदिकर्मणि क्तः कर्त्तरि च ॥ अ० । ३ । ४ । ७१ ॥

आदि कर्म में जो क्त प्रत्यय विहित है वह कर्त्ता और भावकर्म में हो ॥ ११८१ ॥

११८२—विभाषा भावादिकर्मणोः ॥ अ० ॥ ७ । २ । १७ ॥

आकार जिस का इत् संज्ञक हो उस धातु से परे भाव और आदिकर्म में जो निष्ठा उस को विकल्प करके इट् आगमन हो । प्रस्वेदितम् मैत्रेण । मैत्रेण प्रस्वेद किया । प्रस्वेदितश्चैत्रः । चैत्र प्रथम प्रस्वेद की प्राप्त हुआ । प्रस्वेदितवान् । प्रमेदितम् । प्रमेदितः । प्रमेदितवान् । प्रक्षेदितम् । प्रक्षेदितः । प्रक्षेदितवान् । प्रधर्षितम् । प्रधर्षितः । प्रधर्षितवान् ॥ ११८२ ॥

११८३—मृषस्तिच्छायाम् ॥ अ० ॥ १ । २ । २० ॥

मृष धातु से परे तितिक्षा (सहन) अर्थ में इट्सहित निष्ठा कित् न हो । मर्षितः । मर्षितवान् । तितिक्षाग्रहण से यहां न हुआ । अपमृषितं वाक्यम् । स्पष्टाक्षर वाक्य नहीं है ॥ ११८३ ॥

११८४—उदुपधाद्भावादिकर्मणोरन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ १ । २ । २१ ॥

उकारोपध धातु से परे भाव और आदिकर्म में जो सेट् निष्ठा से विकल्प करके कित् न हो । प्रद्युतितम् । प्रद्युतितं वानेन । प्रद्युतितः । प्रद्युतितः साधुः । प्रमुदितम् । प्रमुदितमनेन । प्रमुदितः । प्रमुदितः साधुः । उदुपधग्रहण से यहां न हुआ । लिखितमनेन । विदितमनेन । भावादिकर्मग्रहण से यहां न हुआ । रुचितं कार्षापणं ददाति । सेट्ग्रहण से यहां न हुआ । प्रभुक्त ओदनः । यहां शब्दविकरण धातुओं का ग्रहण इष्ट है । शब्द विकरणेभ्य एवेत्यते । महाभाष्य० १ । २ । २१ । इस से यहां न हुआ । गुधितः । गुधितवान् ॥ ११८४ ॥

११८५—निष्ठायां सेटि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५२ ॥

सेट्निष्ठा परे हो तो णि प्रत्यय का लोप हो । भावितः । भावितवान् । गुह, गूढः । गूढवान् । वनु, वतः । तनु, ततः (३०३) पत्, पतितः । यद्यपि पत् धातु को विकल्प करके इट् (५१८) से विहित है इस से निष्ठा में इट् निषेध (११५२) भी प्राप्त है तथापि (सा०—द्वितीया०) सूत्र में पतित शब्द के ग्रहण से (पतित,) यहां इट् आगम (४६) होता है ॥ ११८५ ॥

११८६—क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नस्तिष्ठविरिब्धफाण्टबाढानि

मन्यमनस्तमःसक्ताऽविस्मष्टस्वरानायासमृशेषु ॥

अ० ॥ ७ । २ । १८ ॥

मन्य, मनस्, तमस्, सक्त, अविस्मष्ट, स्वर, अनायास, मृश इन अर्थों में यथासंख्य करके क्षुब्ध, स्वान्त, ध्वान्त, लग्न, स्तिष्ठ, विरिब्ध, फाण्ट, बाढ ये इट्सहित

निपातन हैं [लुभ] संचलने लुब्धो मन्थः । मन्थ यह मथनिशा, आदि जो मन्थन-
दण्ड हैं उन का नाम है । मन्थ से अन्यत्र । लुभितम् [खम ध्वन] शब्दे स्तान्तं मनः ।
ध्वान्तं तमः । अन्यत्र । खनितम् । ध्वनितम् [लगी] संगी लग्नम् । सक्तम् । जो
किसी में लग रहा है । यहाँ निष्ठा को नकारादेश भी निपातन है । अन्यत्र ।
लगितम् [स्नेच्छ] अव्यक्ते शब्दे स्निष्टम् । अविस्पष्टम् । जो अस्के प्रकार स्पष्ट न
हो [रेभृ] शब्दे विरिभ्यः । स्वरः । इन दोनों प्रयोगों में एकार को इकार भी
निपातन है । अन्यत्र । स्नेच्छितम् । विरेभितम् [फण] गतौ फाण्टम् अनाया-
ससाध्यं कषायम् । विना परिश्रम से सिद्ध होने वाले काढ़े को कहते हैं अर्थात्
जो ओषधि पकाई वा पौसी न जाय किन्तु जल में भिगीने से उन से जो रस उत्पन्न
हो और उस को पीछे से कुच्छ उष्ण कर लिया जाय वह अनायाससाध्य काढ़ा
फाण्ट कहाता है । अन्यत्र । फाणितम् [बाह] प्रयत्ने । बाढम् । भृशम् । अतिशय
को कहते हैं अन्यत्र । बाहितम् ॥ ११८६ ॥

११८७—धृषिशसी वैयात्ये ॥ अ० ॥ ७ । २ । १६ ॥

निष्ठा परे ही तो वैयात्य (अविनय*) ही अर्थ में जिष्टषा और शसु अनिट्
हो अन्यत्र न ही । जिष्टषा, अयं धृष्टः पुरुषः । यह ठोठ पुरुष है । अयं विशस्तः
पुरुषः । यह हिंसक पुरुष है । जिष्टषा, से निष्ठा को इट् निषेध (११६०) सूत्र
से सिद्ध तथा शसु, से (११५२) सूत्र से सिद्ध है इस से वैयात्य अर्थ में यह अनि-
ट् विधान करना नियमार्थ है अर्थात् वैयात्य ही अर्थ में धृषि, शसि अनिट् ही
अन्यत्र न ही । वैयात्य से अन्यत्र धर्षितः । विशसितः ॥ ११८७ ॥

११८८—दृढः स्थूलबलयोः ॥ अ० ॥ ७ । २ । २० ॥

स्थूल और बलवान् ये अर्थ वाच्य ही तो दृढ, यह निपातन है । दृढः स्थूलः
दृढो बलवान् । यहाँ [दृह, दृहि] वही इन दोनों धातुओं से क्त प्रत्यय को दृढ
का अभाव और ढकारादेश तथा धातु के हकार का लोप और दृहि के इदिदभा
से (१२७) हुए नकार का लोप निपातन है । स्थूल और बल से अन्यत्र दृहितः
दृहितः ॥ ११८८ ॥

११८९—प्रभौ परिवृढः ॥ अ० ॥ ७ । २ । २१ ॥

प्रभु वाच्य ही तो परिवृढ यह निपातन है । परिवृढः कुटुम्बी । यहाँ [वृह
वृहि] वही इन से दृढ शब्द के तुल्य समस्त कार्य होते हैं । प्रभु अर्थ से अन्यत्र
परिवृहितः । परिवृहितः ॥ ११८९ ॥

* विरुपं यातं गमनं चेष्टनं यस्य स विद्यातस्तस्य भावा विद्यात्मविनयः । जिस का विरुप गमन के
हे वह विद्यात कहावे उस का होना वैयात्य अर्थात् अविनय कहाता है ॥

११६०—कच्छगहनयोः कषः ॥ अ० ॥ ७ । २ । २२ ॥

कच्छ (दुःख वा दुःख का निमित्त) और गहन (सघन) अर्थ में कष धातु से निष्ठा की इडागम न हो । कष, कष्टं दुःखम् । कष्टी रोगः । दुःख तथा दुःख का निमित्त रोग आदि कष्ट कहाता है । गहन, कष्टाः पर्वताः । कष्टानि वनानि । कच्छगहन से अन्यत्र । कषितं सुवर्णम् ॥ ११६० ॥

११६१—घुषिरविशब्दने ॥ अ० ॥ ७ । २ । २३ ॥

निष्ठा परे होतो अविशब्दन (विशब्दन प्रतिज्ञा उस से अन्य) अर्थ में घुषिर् धातु अनिट् हो । घुष्टा रज्जुः । अविशब्दनग्रहण से यहां न हुआ । अवघुषितं वाक्यमाह । अर्थात् प्रतिज्ञात वाक्य कह रहा है । तुरादिगणस्थ घुषिर् धातु से जो णिच् होता है उस की अनित्यता में अविशब्दन निषेध ज्ञापक है ॥ ११६१ ॥

११६२—अर्द्धः सन्निविभ्यः ॥ अ० ॥ ७ । २ । २४ ॥

सम् नि वि इन से परे जो अर्द्ध धातु उस से परे निष्ठा की इट् आगम न हो । समर्णः (११४०) ल्यर्णः । व्यर्णः । अर्द्धग्रहण से यहां न० । समेधितः । सन्निविग्रह० । अर्हितः । यहां न हुआ ॥ ११६२ ॥

११६३—अभेष्टाविदूर्ये ॥ अ० ॥ ७ । २ । २५ ॥

आविदूर्य (जो बहुत दूर न हो वा अतिसमीप हो उस) अर्थ में अभि से परे जो अर्द्ध धातु उस से परे निष्ठा की इट् न हो । अभ्यर्णम् (११४०) अन्यत्र । शीत-नाभ्यर्हितोवृषभः । वृषभ शीत से पीड़ित हो रहा है ॥ ११६३ ॥

११६४—णेरध्ययने वृत्तम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । २६ ॥

अध्ययन अर्थ में एणन्त वृत्त धातु से निष्ठा की इट् का अभाव और णिच् का लोप निपातन है । वृत्तं व्याकरणमनेन । इस ने व्याकरण का संपादन कर लिया अध्ययन से अन्यत्र । वर्तिता रज्जुः । वर्ती हुई डोरि है ॥ ११६४ ॥

११६५—वृत्तं पाके ॥ अ० ॥ ६ । १ । २७ ॥

क्तप्रत्यय के परे पाक अर्थ में णिजन्त वा णिच् रहित आ धातु की शृभाव निपातन है ॥ ११६५ ॥

* घुषिर् धातु पिक्वली दी गणों में पड़ा है अर्थात् तुरादिगण में (घुषिर्) अविशब्दने तथा तुरादिगण में (घुषिर्) विशब्दने । इनदीनों में से अविशब्दन अर्थ में निष्ठा के परे घुषिर् धातु अनिट् है । विशब्दन में अनिट् नहीं है । यहां यह शंका है कि विशब्दन में इट् निषेध क्यों किया अर्थात् विशब्दन में तुरादिणिच् हो कर घुषि हो जाता है किन्तु घुष् नहीं रहता है इस से (अविशब्दने) यह ज्ञापक है कि तुरादिणिच् उक्त धातु से अनित्य है ॥

११६६—वा०—क्षीरहविषोरिति वक्तव्यम् ॥

उक्त शृभाव क्षीरहविर्विषयक पाक अर्थ में कहना चाहिये [या] पाके शृत क्षीरं स्वयमेव । शृतं हविः स्वयमेव । णिजन्त, शृतं क्षीरं देवदत्तेन । अन्यत्र आणा (११४१) अपिता वा यवागूः । या धातु अकर्मक है इससे कर्मकर्तृविषयक पक्ष धातु के अर्थ में वर्तमान है णिजन्त या धातु से फिर प्रयोजकव्यापार में णिच् क्रिया जाय जैसे (या + पुक् + णिच् + णिच् + क्त + सु =) यहां ॥ ११६६ ॥

११६७—वा०—अपेः शृतमन्यत्र हेतोरिति वक्तव्यम् ॥

णिजन्त या (अपि) धातु से जो हेतु अर्थात् प्रयोजक व्यापार उससे अन्यत्र शृभाव निपातन करना चाहिये । शृभाव का निषेध होकर । अत्रापिक्षीरं देवदत्तेन यज्ञदत्तेन, अपितं क्षीरं देवदत्तेन यज्ञदत्तेनेति ॥ ११६७ ॥

११६८—वा० दान्तशान्तपूर्णदत्तस्यष्टकञ्जज्ञप्ताः ॥ अ० ॥ ७ । २ । २७ ॥

णिज्विषय में दान्त, शान्त, पूर्ण, दत्त स्यष्टकञ्ज ज्ञप्ता ये विकल्प करके निपातन हैं । दत्त, दान्तः (५८७) पक्ष में दमितः । शम्भु, शान्तः । शमितः । पूरी, पूर्णः । पूरितः । दत्त, दस्तः । दामितः । स्य, स्पष्टः । स्याशितः । छद, क्वञ्जः । छादितः । इन दान्तादिकों में णितुक् और इट् का अभाव निपातन है । ज्ञप, ज्ञप्तः । ज्ञपितः । 'ज्ञप्त' का ग्रहण विकल्पार्थ इट् विधान के लिये है क्योंकि ज्ञप से (५१४) सूत्र से इट् विकल्प विधान है इस से (११५२) सूत्र से नित्य इट् प्रतिषेध प्राप्त है ॥ ११६८ ॥

११६९—रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । २८ ॥

रुष अम त्वर संघुष् आस्वन इन धातुओं से निष्ठा की इट् आगम विकल्प करके हो । रुष, रुष्टः । रुषितः (२१२) से इट् विकल्प (११५२) सूत्र से निषेध प्राप्त था । अम, आन्तः (५८७) अमितः । अस्वरा, तूर्णः (११६०) इट् प्रतिषेध प्राप्त था । संघुषिर् संघुषितः । आस्वन, आस्वान्तः । आस्वमितः ॥ ११६९ ॥

१२००—हृषेलोमसु ॥ अ० ॥ ७ । २ । २९ ॥

लोमविषय में वर्तमान हृष धातु से परे निष्ठा की विकल्प करके इट् आगम हो ॥ १२०० ॥

१२०१—वा०—हृषेलोमकेशकर्तृकस्येति वक्तव्यम् ॥

उक्त इट् विकल्प लोम और केश कर्तृक हृष धातु से कहना चाहिये । हृषाणि लोमानि । हृषितानि लोमानि । हृष्टं लोमभिः । हृषितं लोमभिः । हृष्टाः केशाः । हृषिताः केशाः । हृष्टं केशैः । हृषितं केशैः [हृषु] अलीके तथा [हृष] तुष्ट दोनों का ग्रहण है । उन में हृषु उदित होने से निष्ठा में (११५२) अनिट् तथा हृष सेट् है । लोम से अन्यत्र हृषु, हृष्टो देवदत्तः । हृष, हृषितो देवदत्तः ॥ १२०१ ॥

१२०२—वा०—विस्मितप्रतिघातयोरिति वक्तव्यम् ॥

विस्मित (विस्मिय को प्राप्त) प्रतिघात (ताडना को प्राप्त) इन अर्थों में हृष् धातु से इट् विकल्प करके कहना चाहिये । विस्मित, हृष्टो देवदत्तः । हृषितो देवदत्तः । प्रति घात, हृष्टा दन्ताः । हृषिता दन्ताः ॥ १२०२ ॥

१२०३—अपचितश्च ॥ अ० ॥ ७ । २ । ३० ॥

अपचित यह विकल्प करके निपातन है । अपचितः । अपचायितो वानेन गुरुः । इस ने गुरु सत्कार युक्त किया । यहां अपपूर्वक चायृ धातु से निष्ठा को इट् अभाव और धातु को चिभाव निपातन है ॥ १२०३ ॥

१२०४—प्यायः पी ॥ अ० ॥ ६ । १ । २८ ॥

निष्ठा परे होता ओप्यायी धातु को विकल्प करके पी आदेश हो [ओप्यायी] वृद्धी । पीनं मुखम् । पीनमुरः ॥ १२०४ ॥

१२०५—वा०—आङ्पूर्वादन्धूधसोः ॥

आङ्पूर्वक ओप्यायी धातु से निष्ठा परे ही तो उस धातु को पी आदेश कहना चाहिये । आपीनोऽन्युः । आपीनम् जधः । पूर्वसूत्र से सर्वत्र पी आदेश सिद्ध है फिर भी जो (आङ् पूर्व०) इत्यादि विधान है सो नियमार्थ है अर्थात् आङ् पूर्वक से निष्ठा के परे अन्धु और जधस् ही वाच्य हों तो (पी) आदेश ही अन्यत्र न हो । आप्यानश्चन्द्रमाः । तथा यह उभयतो नियम भी है अन्धु जधस् वाच्य हों तो आङ्पूर्वक ही से निष्ठा के परे पी आदेश हो । अन्यपूर्व से न हो । प्रप्यानोन्धुः । प्रप्यानमूधः ॥ १२०५ ॥

१२०६—ह्लादो निष्ठायाम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६५ ॥

निष्ठा परे ही तो ह्लाद अङ्ग को ह्रस्वादेश हो । प्रह्वन्नः । प्रह्वन्नवान् । निष्ठा-ग्रहण से यहां न हुआ । प्रह्लादयति ॥ १२०६ ॥

१२०७—द्यतिस्यतिमास्थामित्तिकिति ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४० ॥

तादि कित् परे ही तो द्यति, स्यति, मा, स्था इन अङ्गों को इकारादेश हो । द्यति, [दो] अवखण्डने । दितः । दितवान् । स्यति, [घो] अन्तर्कर्मणि । सितः । सितवान् । मा, [मा] माने [माङ्] माने । [मिङ्] प्रणिदाने । मितः । मितवान् । स्था, [ठा] गतिनिवृत्तौ । स्थितः । स्थितवान् ॥ १२०७ ॥

१२०८—शाक्कोरन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४१ ॥

तादि कित् परे ही तो शा, क्का अङ्गों को इकारादेश विकल्प कर के हो । निशितम् । निशातम् । निशितवान् । निशातवान् । अवच्छितम् । अवच्छातम् ।

अवच्छिन्नवान् । अवच्छातवान् । यह व्यवस्थित विभाषा है इस से व्रतविषय में श्रुति की नित्य इकारादेश होता है । संश्रितं व्रतम् । सम्यक् प्रकार से संपादन किया व्रत है । संश्रितो ब्राह्मणः । व्रतविषयक यत्नवान् ब्राह्मण है ॥ १२०८ ॥

१२०९—दधातेर्हिः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४२ ॥

तादि कित् परे होतो डुधाज् धातु को हि आदेश हो । अभिहितम् । निहितम् । विहितम् ॥ १२०९ ॥

१२१०—सुधितव सुधितनेमधितधिव्वधिषीय

च ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४५ ॥

वेदविषय में सुधित, वसुधित, धिव्व, धिषीय ये निपातन हैं । गर्भं माता सुहितम् । वसुधितमग्नी जुहोति । नेमधिता वाधन्ते । इन में सु, वसु, नेम पूर्वक [डुधाज्] धातु को इकारादेश निपातन है लोक में । सुहित, वसुहित नेमहित होंगा । धिव्व-सोमम् । सुरेता रेतो धिषीय । इन दोनों में डुधाज् को इत् वा प्रत्यय की इडागम निपातन है (धिव्व) लोट् मध्यमैकवचन में है लोक में (धत्स्व) होता तथा (धिषीय) आशीर्लिङ् के उत्तमैकवचन में है लोक में (धासीय) होता है ॥ १२१० ॥

१२११—दो दद् घोः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४६ ॥

तादि कित् परे हो तो घु संज्ञक दा धातु को दथ् आदेश हो डदाज् दत्तः । दत्तवान् । दायहण से यहां नहुआ । धेट्, पाने धीतः । धीतवान् । यहां (३४६) इकारादेश० । घुग्रहण से यहां न० । दैष् घोधने । अवदातम् मुखम् । उक्त आदेश को दत्, दद, दध्, दथ् इन में कौन सा मानना चाहिये ॥ १२११ ॥

१२१२—का०—तान्ते दोषो दीर्घत्वं स्याद् दान्ते दोषो निष्ठानत्वम् ।

धान्ते दोषो धत्वप्राप्तिः स्यान्तेऽदोषस्तच्चाटयान्तः ॥

यदि उस की तान्त अर्थात् (दत्) माने तो 'विदत्त, यहां अगले (१२१५) सूत्र से उपसर्ग के इक् को दीर्घादेश * प्राप्त है । दान्त (दद्) माने तो (दद् + त + सु =) दत्त यहां (११४०) सूत्र से निष्ठा की तथा पूर्व द की नकारादेश प्राप्त है । धान्त (दध्) माने तो (१४१) सूत्र से निष्ठा तकार की धकार प्राप्त है इस से यान्त (दथ्) मानना चाहिये क्योंकि यान्त में दोष नहीं है उपसर्ग से परे (प्र × दा + त + सु =) यहां ॥ १२१२ ॥

(दन्ति) इस सूत्र का जब यह अर्थ हो कि डुदाज् धातु का जो तकारान्त आदेश उस के विषय में इगन्तो परमर्ग को दीर्घ होताव दीर्घादेश प्राप्त है ।

दान्त धान्त पक्ष में भी पारिभाषिकस्य सन्निपात परिभाषा के विरोध से दत्त धत्व नहीं प्राप्त हैं ।

१२१३—अच उपसर्गात्तः ॥ अ० ॥ ७ । ४ । ४७ ॥

अजन्त उपसर्ग से परे घु संज्ञक दा धातु को त आदेश हो । आदेश हो कर (प्रदत् + त + सु =) प्रप्तम् । अवत्तम् ॥ १२१३ ॥

१२१४—का०—अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तं चादिकर्मणि ।

सुदत्तमनुदत्तं च निदत्तमिति चेष्ट्यते ॥

अवदत्त, विदत्त, आदिकर्म में प्रदत्त, सुदत्त, अनुदत्त तथा निदत्त ये भी इष्ट हैं अर्थात् इन सभी में दा की तकारादेश प्राप्त है सो न हुआ किन्तु दथ् आदेश होता है (चेष्ट्यते) यहां चकारग्रहण से यह जानना चाहिये कि एक पक्ष में तकार आदेश होता भी है ॥ १२१४ ॥

१२१५—दस्ति ॥ अ० ॥ ६ । ३ । १२४ ॥

डुदाज् धातु का जो तकारादि आदेश सो परे हो तो इगन्त उपसर्ग को दीर्घादेश हो । नीत्तम् । वीत्तम् । परीत्तम् । इन में दा के आकार के स्थान में यद्यपि (१२१३) त आदेश होता है तथापि (सं० ३०२) सूत्र से पूर्व द् को चर् हो कर तकारादि आदेश हो जाता है । आश्रयात्सिद्धत्वं भविष्यति । महाभाष्य ६। ३। १२४। चर्त्तके आश्रय से चर् का सिद्धभाव होजायगा अर्थात् (दस्ति यहां) जो तकारादि का आश्रय किया है इस से चर् (संधि० ८४) असिद्ध नहीं होगा ॥ १२१५ ॥

१२१६—अदो जग्धिर्त्यप्ति किति ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३६ ॥

त्यप् और तादि कित् परे हो तो अद धातु को जग्धि आदेश हो । अद, जग्धः। जग्धवाम् । यहां क्त प्रत्यय के परे अद को जग्धि आदेश, इकारेत् (नामि० १३) संज्ञा, निष्ठा तकार को (१४१) धकार और पूर्व धकार का (सं० ३१०) लोप हो जाता है । स कटं प्रकृतः । प्रकृतः कटस्तेन । यहां (११८१) सूत्र से आदिकर्म विषयक क्त प्रत्यय कर्त्ता में होता है । तथा । प्रचीणः तपस्वी । यहां भी कर्त्ता में होता और (११३८) चि धातु को दीर्घ (११३८) सूत्र से निष्ठा को नत्वादेश होता है ॥ १२१६ ॥ ॥

१२१७—वा क्रोशदैन्ययोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६१ ॥

भाव कर्म से अन्य अर्थ में निष्ठा परे हो तो आक्रोश (कोशना) और दैन्य (दीनता) अर्थ में चि धातु को विकल्प करके दीर्घादेश हो । आक्रोश, क्षीणायुर्भव । यहां चि को दीर्घादेश होकर (११३८) निष्ठा को नत्व हो जाता है द्वितीय पक्ष में । क्षितायुर्भव । दैन्य, क्षितः क्षीणोयं वा तपस्वी ॥ १२१७ ॥

१२१८—वा०—निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययेड्विविधिषु सिद्धो वक्तव्यः ॥

षत्वविधि, स्वरविधि, प्रत्ययविधि, तथा ङ्गविधि में निष्ठादेश सिद्ध है यह कहना चाहिये । ष, वक्ष्णः । वक्ष्णवान् । यहाँ (११४६) निष्ठा को नकारादेश उस के असिद्ध (सं० ८४) होने से च् को (२३३) सूत्र से षत्व प्राप्त है सो नकारादेश के सिद्ध होने से भ्रूल के अभाव से नहीं होता किन्तु (सं० १६१) कुत्व होता है स्वर आदि विषयों की आवश्यकता न होने से उन के उदाहरण नहीं दिये ॥ १२१८ ॥

१२१९—गत्यर्थकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुह-

जीर्यतिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७२ ॥

गति जिनका अर्थ है उनसे तथा अकर्मक, श्लिष, शीङ्, स्था, आस, वस, जन, रुह, जृष् इनधातुओं से विहित जोक्त प्रत्यय सो कर्त्ता और यथाप्राप्त भाव कर्ममें हो । गत्यर्थ, गन्तृ, ग्रामं गतो देवदत्तः । ग्राम को देवदत्त गया । गतो ग्रामो देवदत्तेन । देवदत्त को ग्राम प्राप्त हुआ । अकर्मक, ग्लै, ग्लानो देवदत्तः । ग्लानं देवदत्तेन । श्लिष, लक्ष्मोम् आश्लिष्टो विष्णुः । आश्लिष्टो लक्ष्मो विष्णुना । शीङ् खट्वाभ धिग्रथितः । खट्वाभिग्रथिता । स्था, गुरुमुपस्थितः । गुरुरुपस्थितस्तेन । आस, उपासितः परमेश्वरं भवान् । उपासितः परमेश्वरो भवता । वस, गुरुमनुषिती भवान् अनूषितो गुरुर्भवता । जन, राममनुजातो लक्ष्मणः । अनुजातो लक्ष्मणेन रामः । रुह, अश्वमारुढो देवदत्तः । आरुढोऽश्वो देवदत्तेन । जृष्, शुनीमनुजीर्णः खा । शुनानुजीर्णो शुनी । उक्त प्रयोगों में (८१४) सूत्र से यथा प्राप्त भावकर्म में भी (क्त) होता है श्लिष आदि अकर्मक भी हैं तथापि सोपसर्ग सकर्मक होजाते हैं इस से इन का ग्रहण है ॥ १२१९ ॥

१२२०—क्षोधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यश्च

॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७६ ॥

ध्रौव्य (स्थिरता) गति (गमन) और प्रत्यवसान (भक्षण) अर्थ वाले धातुओं से विहित जोक्त प्रत्यय सो अधिकरण और यथाप्राप्त भाव कर्म में हो । ध्रौव्यार्थक अकर्मक हैं उन से कर्त्ता, भाव, अधिकरण में गत्यर्थकों से कर्त्ता, कर्म, अधिकरण में तथा प्रत्यवसानार्थकों से कर्म और अधिकरण में क्त होता है । ध्रौव्यार्थ, आसिती देवदत्तः । आसितं मुकुन्देन । आसितम् मुकुन्दस्य वा । गत्यर्थ, देवदत्तो ग्रामं गतः । गतो देवदत्तेन ग्रामः । देवदत्त को ग्राम प्राप्त हुआ है । गतं देवदत्तस्य । यहाँ देवदत्त का गमन हुआ है । प्रत्यवसानार्थ, भुक्त आदनी देवदत्तः । देवदत्तस्य भुक्तम् उक्त उदाहरणों में (८१४, १८६) सूत्रों के अनुसार कर्म और कर्त्ता में भी क्त प्रत्यय ता है ॥ १२२० ॥

१२२१—जीतः क्तः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८७ ॥

जि जिस का इत् संज्ञक हो उस से वर्तमान काल में क्त प्रत्यय हो । जिखिदा, खिखः । खिखवान् ॥ १२२१ ॥

१२२२—मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८८ ॥

मति (इच्छा) बुद्धि (ज्ञान) पूजा (सत्कार) इन अर्थों वाले धातुओं से वर्तमान काल में क्त प्रत्यय हो । राज्ञां मतः । राज्ञामिष्टः । राज्ञां बुद्धः । राज्ञां ज्ञातः । राज्ञां पूजितः । राज्ञामर्चितः । (राज्ञाम्) यह षष्ठी (कार० १२०) से होती है । चकार अनुक्त शब्दों के संग्रह करने के लिये है इस से अगले प्रयोग भी जानने चाहिये ॥ १२२२ ॥

१२२३—क्रा०—शीलितो रक्षितः क्रान्त आक्रुष्टो जुष्ट इत्यपि ॥

रुष्टश्च रुषितश्चोभावभिव्याहृत इत्यपि ॥ १ ॥

हृष्ट तुष्टौ तथा क्रान्तस्तथोभौ संयतोद्यतौ ॥

कष्टं भविष्यतीत्याहुरमृताः पूर्ववत्स्मृताः ॥ २ ॥

शीलित, रक्षित, क्रान्त, आक्रुष्ट, जुष्ट, रुष्ट, रुषित, अभिव्याहृत, हृष्ट, तुष्ट, क्रान्त तथा संयत उद्यत ये भी वर्तमान काल में जानने चाहिये । 'कष्ट' इस शब्द को भविष्यत्काल में कहते हैं और अमृत शब्द का पूर्ववत् (शीलित आदि के तुल्य वर्तमान काल में) स्मरण करना चाहिये । न व्रियन्ते, अमृताः ॥ १२२३ ॥

१२२४—नपुंसके भावे क्तः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११४ ॥

भाव का प्रकाश करना हो तो नपुंसकलिङ्ग में धातु से क्त प्रत्यय हो । हसितम् । ययितम् । जल्पितम् । देवदत्तेन ॥ १२२४ ॥

११२५—सुयजोर्द्ध्वनिप् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०३ ॥

युज् और यज धातु से भूतकाल में ङ्निप् प्रत्यय हो । असावीत् असोष्ट वा सुत्वा । सुत्वानी । सुत्वानः । अयात्तीत् अयष्ट वा, यज्वा । यज्वानी । यज्वानः ॥ १२२५ ॥

१२२६—जीर्यतेरटन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०४ ॥

जृष् धातु से भूतकाल में अटन् प्रत्यय हो । अजरत् अजारीद् वा जरन् । जरन्ती । जरन्तः । वासरूपविधि (८११) से निष्ठा संज्ञक भी होते हैं । जीर्णः । जीर्णवान् ॥ १२२६ ॥

१२२७—ऊन्दसि लिट् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०५ ॥

वेदविषय में भूतकाल में धातु से लिट् प्रत्यय हो । अहं सूर्यमुभयतो ददर्श । अहं व्यावापृथिवी आततान ॥ १२२७ ॥

१२२८—लिट् कानच्वा ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०६ ॥

पूर्वविहित (१२२७) वेदविषयक लिट् के स्थान में कानच् आदेश विकल्प करके हो। अग्निमचैषीत्, अग्निं चिक्यानः। सोमं सुषुवाणः। इन में चिज् वा पुज् धातु से लिट् के स्थान में कानच् आदेश है। विकल्प के ग्रहण से कहीं नहीं भी होता। जैसे पूर्वोक्त उदाहरण। अहं सूर्यमुभयतो ददर्श। इत्यादि ॥ १२२८ ॥

१२२९—क्वसुश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०७ ॥

पूर्वविहित (१२२७) वेद विषयक लिट् के स्थान में कसु आदेश भी हो ॥ १२२९ ॥

१२३०—वस्वेकानाद्वसाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ ॥ ६७ ॥

द्विर्वचन किये हुए एकाच्, आकारान्त, वस्ल् इन्हीं धातुओं से परे जो वसु उस को इट् आगम हो। एकाच्, अशकदिति शिकिवान्। यहां शक् धातु से लिट् (१२२७) के स्थान में कसु (१२२९) और धातुद्विर्वचन (३६) तथा एत्वाभ्यासलोप (१२५) होकर जो एकाच् (शिक्) हो जाता है उस से परे वसु को इडागम हो जाता है। आत्, पपिवान्। वस्ल्, जजिवान्। यहां (२१४) सूत्र से उपधालोप और उस को (संधि० ६८) रूपातिदेश हो कर हित् (३६) और षत् (२८४) हो जाता है कसु तो लिट् के स्थान में ही होता है और लिट् विषय में क्रादिनियम (१४८) वा उदात्तत्व से इट् प्राप्त हो है। फिर भी जो इट् का विधान किया इस से यह सूत्र नियमार्थ है अर्थात् वसु को इट् एकाच् आदि ही से परे हो अन्य से न हो। इस से विभिधान्। बभूवान्। इत्यादि में इट् नहीं होता ॥ १२३० ॥

१२३१—भाषायां सद्वसश्चुवः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०८ ॥

भाषा अर्थात् लोक में सद, वस, शु इन धातुओं से परे भूतकाल में विकल्प करके लिट् और उस के स्थान में कसु आदेश नित्य हो। षट्लृ, उपसेदिवान् कौत्सः पाणिनिम्। विकल्पपक्ष में अपने २ विषय में यथोक्त प्रत्यय होते हैं। जैसे भूतसामान्यकाल में लुङ्। उपासदत्। अनद्यतन भूत में लङ्। उपासीदत्। परोक्षभूत में लिट्। उपससाद[वस]निवासे। अनूषिवान् (२८३) कौत्सः पाणिनिम्। अन्ववासीत्। अन्ववसत्। अनूवास। शु, उपशुशुवान् कौत्सः पाणिनिम्। उपाश्रीषीत्। उपाशृणीत्। उपशृश्राव ॥ १२३१ ॥

१२३२—उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १०९ ॥

उपेयिवान्, अनाश्वान्, अनूचान ये भाषा में निपातन हैं। उपेयिवा, य

उपपूर्वक [इण्] गती धातु से लिट् विकल्प करके और उस को नित्य वसु द्विर्वचन (३६) अभ्यास दीर्घ (३४०) और अभ्यासदीर्घसामर्थ्य से एकादेश (सं० १०६) का प्रतिबन्ध हो कर अनेकाच् (उप + ई + इ + वसु =) से इट् निपातन हैं । उपेयुषां । उपेयुषे । उपेयुषः । उपेयुषि । इत्यादि कीं में निपातन इट् नहीं होता क्योंकि 'उपेयिवान्' यहां क्रादिनियम (१४८) से प्राप्त भी इट् था पर- (१२३०) सूत्र के नियम से अनेकाच् से नहीं होता था उसी इट् का प्रादुर्भाव मात्र किया किन्तु अपूर्व इट् विधान नहीं किया इस से अजादि कीं में जहां वसु की (नामि० १५६) सूत्र से संप्रसारण होता वहां इट् नहीं होता है । यहां उप अव्ययित है जैसे । समीयिवान् । ईयिवान् । लिट् के विकल्प पक्ष में पूर्ववत् लुङादि होते हैं । उपागात् । उपैत् । उपेयाय । अनाखान् । यहां नञ्पूर्वक [अश्] भोजने धातु से पूर्ववत् लिट् वसु और इट् का अभाव निपातन है । विकल्प पक्ष में । अनाखान् । नाशीत् । नाशात् । नाश । अनूचानः कर्त्तरि ॥ महा-भाष्य । ३ । २ । १०८ । अनूक्तवान्, अनूचानः । यहां अनुपूर्वक वच से कर्त्ता में पूर्ववत् लिट् उस के स्थान में कानच् आदेश निपातन है । दूसरे पक्ष में । अनूचानः । अन्ववीचत् । अन्वव्रीचत् । अनूवाच ॥ १२३२ ॥

१२३३—विभाषा गमहनविद्विशाम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६८ ॥

गम, हन, विद, विश इन से परे वसु की इट् विकल्प करके हो । गम्ल्, जग्मिवान् (२१४) जगन्वान् (१२७) हन, जघ्मिवान् । जघन्वान् । विद, विविद्विवान् । विविद्वान् । विश, विविशिवान् । विविशा । विश के साहचर्य से यहां विद करके [विद्ल्] लाभे का ग्रहण है जो इस ग्रन्थ में (२७७) संख्या पर सूत्र लिखा है उस से अष्टाध्यायी के क्रम से मण्डूकप्रतिवत् दृश् का अनुवर्त्तन कर । दृशिर् से दृशिवान् । दृश्वान् । ये भी समझने चाहिये ॥ १२३३ ॥

१२३४—सनिंससनिवांसम् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ६९ ॥

वसु के इट्प्रकरण में 'सनिंससनिवांसम्' यह निपातन है । अञ्जित्वाग्ने सनिंससनिवांसम् । यहां सनिङ्पूर्वक [षुज्] अभिषवे वा [षन] संभक्ती से वसु की इट् आगम तथा एत्व और अभ्यासलोप का अभाव निपातन है यह निपातन वेद ही में आता है ॥ १२३४ ॥

१२३५—लटः शटशानच्चावप्रथमासमानाधिकरणे ॥

अ० ॥ ३ । २ । १२४ ॥

जब प्रथमान्त के साथ लट् (४) प्रत्यय का समानाधिकरण न हो तो उस

के स्थान में शट् और शानच् प्रत्यय विकल्प ही । ये दोनों प्रत्यय शित् हैं इस से इन की सार्वधातुक संज्ञा (१८) होकर इन के परे शप् (१८) आदि प्रत्यय भी होते हैं । जैसे (पच् + शप् + शतृ + अम् =) पचन्तं चैत्रं पश्य । यहां लट् जिस का वाचक है वह कर्त्तृसंज्ञक चैत्रं शब्द द्वितीयान्त है (७५२) इस संख्या पर जो सूत्र लिखा है उस से विभाषा पद की अनुवृत्ति यहां आती है उस की व्यवस्थित विभाषा मान कर प्रथमासमानाधिकरण में लट् के स्थान में शट् शानच् विकल्प करके होते हैं यह समझना चाहिये । पचन् मैत्रः । पचति मैत्रो वा । मैत्र किसी के लिये पचा रहा है । अग्रथमासमानाधिकरण में तो नित्य होते हैं ॥ १२३५ ॥

१२३६—आने सुक् ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८२ ॥

आने परे ही तो अङ्ग के अकार को सुक् का आगम है । पचमानं चैत्रं पश्य यहां लट् के स्थान में शानच् आदेश है । पचमानो मैत्रः । पचते मैत्रः । मैत्र अपने लिये पकाता है ॥ १२३६ ॥

१२३७—वा०—माङ्ग्याक्रोशे ॥

माङ्ग उपपद ही तो आक्रोश (निन्दा) अर्थ में उक्तविषयक शट् शानच् ही । मा पचन् । मा पचमानः । मत पका रे ॥ १२३७ ॥

१२३८—संबोधने च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२५ ॥

संबोधनविषय में लट् के स्थान में शट् शानच् प्रत्यय विकल्प करके ही । हे पचन् । हे पचमान । हे कुर्वन् । हे कुर्वाण ॥ १२३८ ॥

१२३९—लक्षणहेत्वोः क्रियायाः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२६ ॥

क्रिया के लक्षण (परिचय कराने) और हेतु (कारण) अर्थ में वर्तमान धातु से परे लट् के स्थान में शट् शानच् आदेश विकल्प करके ही । लक्षण, शयाना वर्धते दूर्वा । शयाना भुञ्जते यवनाः । हेतु, धनमर्जयन् वसति । अधीयानो वसति लक्षणहेतुग्रहण से यहां न हुए अधीते । भुङ्क्ते । क्रियाग्रहण से द्रव्य और गुण के परिचयादि में न० । यः कम्पते स दटः । यः स्थिरो भवति तद् गुरु ॥ १२३९ ॥

१२४०—ईदासः ॥ अ० ॥ ७ । २ । ८३ ॥

आस् धातु से आने को ईकारादेश हो । आसीनः । आस्ते । आसीनं पश्य । आसीनं कृतम् इत्यादि ॥ १२४० ॥

१२४१—विदेः शतुर्वसुः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३६ ॥

विद (विद ज्ञाने) से परे शट् का वसु आदेश विकल्प करके ही । विद्वान् । विदुषी (नामि० १५६) ॥ १२४१ ॥

१२४२—तौ सत् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२७ ॥

पूर्वाक्त शत शानच् सत्संज्ञक ही ॥ १२४२ ॥

१२४३—लुटः सदा ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १४ ॥

लुट् के स्थान में सत्संज्ञक प्रत्यय विकल्प करके ही । यहां भी यह विकल्प व्यवस्थित विभाषा है इस से जैसे लट्स्थानी शत शानच् प्रथमासमानाधिकरण विकल्प करके और द्वितीयादिकों में नित्य होते हैं वैसे यहां भी हैं । करिष्यः । करिष्यमाणं मैत्रं पश्य । करिष्यमाणः । करिष्यति । हे करिष्यन् । हे करिष्यमाणं प्रर्जयिष्यमाणो वसति ॥ १२४३ ॥

१२४४—पूङ्यजोः शानन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२८ ॥

वर्त्तमान काल में पूङ् और यज धातु से शानन् प्रत्यय ही । पूङ्, पवमानः । यज, यजमानः ॥ १२४४ ॥

१२४५—ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १२९ ॥

वर्त्तमानकाल में ताच्छील्य (स्वभाव) वयोवचन (अवस्थासंबंधीवचन) शक्ति (सामर्थ्य) इन अर्थों में धातु से चानश् प्रत्यय ही । ताच्छील्य, घृतं भुज्जानः । वयोवचन, कबचं विभ्राणः । शक्ति, शत्रुं निघ्नानः ॥ १२४५ ॥

१२४६—इङ्धार्योः शक्कृच्छिणि ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३० ॥

कष्टसाध्य जिस का क्रियाफल न हो वह कर्त्ता वाच्य होती वर्त्तमान काल में इङ् और णिजन्त धृज् धातु से शत प्रत्यय ही । अधीयन् पारायणम् । धातुपनिषदम् । अक्कच्छिन्ग्रहण से यहां न हुआ । कच्छेणाधीते । कच्छे धारयति ॥ १२४६ ॥

१२४७—द्विषोऽमित्रे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३१ ॥

अमित्र (शत्रु) कर्त्ता वाच्य हो तो वर्त्तमानकाल में द्विष धातु से शत प्रत्यय ही द्विष्यति, द्विषन् । द्विषन्तौ । द्विषन्तः । अमित्रग्रहण से यहां न हुआ । पितृपुत्रं द्वेष्टि ॥ १२४७ ॥

१२४८—सुजो यज्ञसंयोगे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३२ ॥

वर्त्तमान काल में यज्ञ संयोग (अभिषव) अर्थमें वर्त्तमान धृज् धातु से शत प्रत्यय ही । सर्वे सुन्वन्तः । यहां संयोगग्रहण प्रधान कर्त्ताओं के ग्रहण करने के लिये अर्थात् साधारण यज्ञ करने कराने वालों के ग्रहण में नहीं होता । याजकाः सुन्वन्ति यज्ञ का ही संयोग ग्रहण क्यों किया । सुरां सुनोति । यहां न ही ॥ १२४८ ॥

१२४६—अर्हः प्रशंसायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३३ ॥

प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमान काल में अर्ह धातु से शतृ प्रत्यय हो । भवान् विद्या-मर्हन् । प्रशंसागृहण से यहां न० तस्करोबधमर्हति ॥ १२४६ ॥

१२५०—आक्खीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३४ ॥

यहां से लेकर क्तिप् प्रत्यय पर्यन्त जो प्रत्यय कहें वे वर्त्तमान काल में तच्छील (जो स्वभाव से फल को नचाह कर कर्म में प्रवृत्त हो) तद्धर्मा (जो बिना भीशील मेरा धर्म है ऐसा मान कर कर्म में प्रवृत्त हो) तत्साधुकारो (क्रिया को सुन्दरता से करे) इन कर्त्ताओं में हों ॥ १२५० ॥

१२५१—तृन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३५ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में धातुमात्र से तृन् प्रत्यय हो । तच्छील, कटं करोति तच्छीलः, कटकर्त्ता । जनापवादान् वदिता । तद्धर्मा, उन्नयन्ति तद्धर्मिण उन्नेतारः । तौत्वलायनाः पुत्रे जाते । तत्साधुकारो, साधु कटं करोति, कटकर्त्ता ॥ १२५१ ॥

१२५२—वा०—तृन्विधाट्वित्त्तुनुचापसर्गस्य ॥

तृन् प्रत्यय के विधान करने में ऋत्विज् आदि कर्त्ता हों तो उपसर्गरहित धातु से (तृन्) प्रत्यय कहना चाहिये । जुहोतीति होता । पुनातीति पोता । अनुपसर्ग ग्रहण से यहां न हुआ । प्रतिहर्त्ता । यहां तृच् होता है ॥ १२५२ ॥

१२५३—वा०—त्विषेदेवतायासकारश्चोपधाया अनिट्त्वंच ॥

देवता अर्थ में त्विष धातु से तृन् प्रत्यय तथा उपधा को अकार और इट् का अभाव भी कहना चाहिये । त्विष, त्वेषितुं शीलमस्य, त्वष्टा ॥ १२५३ ॥

१२५४—वा०—क्षदेध्व नियुक्ते ॥

नियुक्त (जो कहीं अधिकार पाये हो उस) कर्त्ता में क्षद धातु से तृन् प्रत्यय कहना चाहिये । क्षद सौत्र धातु है इस को आच्छादन अर्थ में मानते हैं । क्षत्ता सारथि का नाम है ॥ १२५४ ॥

१२५५—वा०—क्षन्दिस् तृच्च ॥

वेदविषय में क्षद धातु से तृच् और तृन् प्रत्यय हों । क्षत्तभ्यः संगृहीतभ्यः ॥ १२५५ ॥

१२५६—अलंकृञ् निराकृञ् प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रप

वृत्तुवृधुसहचर इष्णुच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में अलंकृञ्, निराकृञ्, प्रजन, उत्पच, उत्पत, उन्मद, रुच, अपत्रप, वृत्तु, वृधु, सह, चर इन धातुओं से इष्णुच् प्रत्यय हो । अलं-कृञ्,

अलंकर्तुंशीलमस्य अलंकर्तुं धर्मोस्य, साधवलं करोति वा अलंकरिणः । निर्-आङ्-कृञ्, निराकरिणः । प्र-जन, प्रजनिणः । उद्-डुपचष्, उत्पचिणः । उद्-पत्ल, उत्पतिणः । उद्-मदी, उन्मदिणः । रुच, रोचिणः । अप-त्रपूष्, अपत्रपिणः । वतु, वर्त्तिणः । वधु, वर्धिणः । षंह, सहिणः । चर, चरिणः ॥ १२५६ ॥

१२५७—गोष्कन्दसि ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३७ ॥

वेदविषय में तच्छीलादि कर्त्ताओं में णिजन्त धातु से इण्णच् प्रत्यय हो । वषदं धारयिष्णवः । वीरुधः पारयिष्णवः ॥ १२५७ ॥

१२५८—भुवश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३८ ॥

वेदविषय में तच्छीलादि कर्त्ताओं में भूधातु से इण्णच् प्रत्यय हो । भविणः । चकार अनुक्त के ग्रहण करने के लिये है । इस से टुभ्राजृ णिजन्त से । भ्राजयिष्णु भी समझलेना चाहिये ॥ १२५८ ॥

१२५९—ग्लानिस्थश्च क्सुः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १३९ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में ग्ला, जि, स्था और, भू इन धातुओं से ग्सु, प्रत्यय हो । ग्लै, ग्लान्तुः । जि, जिणः । ठा, स्थास्तुः । भू, भूणः । यहां चर्त्त हो कर 'ग्' की 'क्' होगया है (४५) सूत्र में 'ग्' के निर्देश से उक्त प्रयोगों में गुणादेश नहीं होता तथा (२५५) सूत्र में ग् के निर्देश से 'भूण' यहां इडागम भी नहीं होता है ॥ १२५९ ॥

१२६०—वा०—स्थादंशिभ्यां सुशकन्दसि ॥

वेद में स्था और दंश धातु से सु प्रत्यय० । स्थास्तु जङ्गमदंष्टवः पशवः ॥ १२६० ॥

१२६१—त्रसिगृध्रिधृषिचिपेः क्तुः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४० ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में त्रसी, गृध्र, जिधृषा, इन धातुओं से क्तु प्रत्यय हो । त्रसी, त्रस्तुः । गृध्र, गृध्रनुः । जिधृषा, धृणः । चिप, चिप्नुः ॥ १२६१ ॥

१२६२—शमित्यष्टाभ्यो धिनुण् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४१ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में शमु आदि आठ धातुओं से धिनुण् प्रत्यय हो (धिनुण्) यहां घकार कुत्व के लिये उकार उगित् कार्य के लिये णकार वृद्धि के लिये है । शमितुं शीलं धर्मो वास्य साधुशाम्यति वा शमी । शमिनौ । शमिनः । यहां उगित् कार्यनुम् (नामि० ११३) नहीं होता । नुम् विधि में अष्टाध्यायी के क्रम से (नामि० ४५) सूत्र से भल् का अपकर्षण कर भलन्त उगित् की नुम् आगम हो ऐसा अर्थ वहां जानिगे । यहां वृद्धि (१२६) प्राप्त है उसी की निवृत्ति (७२६) से हो जाती है ।

• (शमु) उपशमे (तमु) काङ् चावांस् (दमु) उपशमे (शमु) तपसि खेदे च (भमु) अनवस्थाने चम् । सहने कम् ग्लानौ मदी हर्षे ये षाठ शनादि धातु हैं ॥

तमी । दमी । अमी । भ्रमी । क्षमी क्षमा । प्रमादी । आठ काही ग्रहण क्यो किया ।
असु, असिता यहां । न हो ॥ १२६२ ॥

१२६३—संष्टचानुरुधाड्यमाड्यसपरिष्टसंष्टजपरिदेविसंज्वरपरि-
क्षिपपरिरटपरिवदपरिदहपरिमुहदुषद्विषद्रुहदुहयुजाक्रीडविवि-
चत्यजरजभजातिचरापचरामुषाम्याहनश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४२ ॥

तच्छीलादिकर्त्ताओं में सम्पृचादि धातुओं से घिनुण् प्रत्यय हो (सम्पृच) यहां
रुधादि [पृचो] संपर्के इस का ग्रहण है । सम्पृणक्ति तच्छीलः, संपर्की । अनुरुध,
अनुरुध्यते तच्छीलः, अनुराधी । आड्यम, आयच्छति तच्छीलः आयामी । आयसु,
आयस्यति आयसति वा तच्छीलः, अयासी परिष्ट, परिसाति । तच्छीलः, परिसारी ।
संष्टज, संष्टज्यते । तच्छीलः, संसर्गी । परिदेवि, यहां [देव] देवने इस भ्वादिस्थ का
ग्रहण है । परिदेवते तच्छीलः, परिदेवी । जो विलाप करता है उस के जैसा स्वभाव
वाला पुरुष है । संज्वरति तच्छीलः संज्वारो । परिक्षिप, [क्षिप] प्रेरणे दिवादि वा
तुदादि दानों का ग्रहण है । परिक्षिप्यति, परिक्षिपति । परिक्षिपते वा तच्छीलः,
परिक्षिपो । परिरट, परिरटति तच्छीलः, परिराटी । परिवद, परिवदति तच्छीलः,
परिवादी । परिदह्याति तच्छीलः, परिदाही । परिमुह, परिमुह्यति, तच्छीलः,
परिमोही । दुष, दुष्यति तच्छीलः, दोषी । द्विष, द्वेष्टि तच्छीलः, द्वेषी । द्रुह, द्रुह्यति
तच्छीलः, द्रोही । दुह, दोग्धि तच्छीलः दोही । युज, यहां [युज] समाधौ दिवादि
[युजिर्] योगे रुधादि इन दोनों का ग्रहण है युज्यते युनक्ति युङ्क्ते वा तच्छीलः,
योगी । आक्रीड, आक्रीडते तच्छीलः, आक्रीडी । वि विचिर्, विविनक्ति विविनक्ते
वा तच्छीलः, विवेकी । त्यज, त्यागी (८४३) रञ्ज, रागी । भज, भागी । अतिचर,
अतिचारो । अपचर, अपचारो । आमुष, आमुष्याति तच्छीलः आमोषी । अभि-
आङ्-हन, अभ्याहन्ति, तच्छीलः अभ्याघाती (३०४, ५०२) इन सूचों से कुल
और तकारा देशः ॥ १२६३ ॥

१२६४—वौ कषलसकत्यस्त्रम्भः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४३ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में विपूर्वक कष, लस, कत्य, स्त्रम्भ इन धातुओं से घिनुण्
प्रत्यय हो । [कष] हिंसायाम् । विकाषी । लस श्लेषणक्रीडनयोः । विलासी ।
[कत्य] श्लाघायाम् । विकथी [स्त्रम्भ] विज्ञासे । विस्त्रम्भी ॥ १२६४ ॥

१२६५—अपे च लषः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४४ ॥

अप और वि पूर्व हों तो लष धातु से घिनुण् प्रत्यय हो तच्छी० । [लष] का-
न्तो । अपलाषो । विलाषो ॥ १२६५ ॥

१२६६—प्रे लपस्त्रुमथवदवसः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४५ ॥

तच्छीलादिकों में प्र पूर्वक लप, स्त्र, द्रु, मथ, वद, वस इन धातुओं से विभुन् प्रत्यय हो । प्रलप, प्रलापी । प्रस्त्र, प्रसारी । प्रद्रु, प्रद्रावी । प्रमथे, प्रमाथी । प्रवद, प्रवादी । प्रवस, वस निवासे प्रवासी ॥ १२६६ ॥

१२६७—निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवा-
दिव्याभाषास्त्रयो वुञ् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४६ ॥

तच्छीलादि कर्ताओं में निन्द आदि धातुओं से वुञ् प्रत्यय हो । निदि, निन्दकः । हिसि, हिंसकः । क्लिश उपतापे वा क्लिश विवाधने दोनों का गृहण है क्लेशकः । खाद, खादकः विनाश, वि-णश-णिच्, विनाशयति तच्छीलः, विनाशकः । परिक्षिप, परिक्षेपकः । परिरट, परिराटकः । परिवद, परिवादकः । वि-आ-भाष, व्याभाषकः । एवुल् (८७४) प्रत्यय से भी उक्त प्रयोग सिद्ध हैं फिर वुञ् प्रत्यय का यह प्रयोजन है कि तच्छीलादिकों में वासरूपन्याय (८११) से लृच् आदि अन्य प्रत्यय नहीं होते हैं ॥ १२६७ ॥

१२६८—देविक्रुशोऽपसर्गे ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४७ ॥

उपसर्ग पूर्व हो तो देवि और क्रुश धातु से वुञ् प्रत्यय हो तच्छी० । आदेव-यति तच्छीलः, आदेवकः । परिदेवकः । परिक्रोशकः । उपसर्गगृहण से यहां न हुआ देवयिता । क्रोष्टा । यहां तृन् हो जाता है ॥ १२६८ ॥

१२६९—चलन शब्दार्थादकर्मकाद्युच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४८ ॥

तच्छीलादि कर्ताओं में चलन और शब्द अर्थ वाले अकर्मक धातुओं से युच् प्रत्यय हो [चल] कंपने चलनः । कपि संचलने कम्पनः । चुप मन्दायां गती चीपनः । शब्दार्थ, शब्दनः । रवणः । अकर्मक गृहण से यहां न हुआ विद्यां पठिता । शालं वदिता । यहां लृन् हो जाता है ॥ १२६९ ॥

१२७०—अनुदात्तेतश्च हलादेः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १४९ ॥

अनुदात्त जिस का इत् संज्ञक हो ऐसा जो हलादि अकर्मक धातु उस से भी युच् प्रत्यय हो तच्छी० । वृत्, वर्त्तनः । वृध्, वर्धनः । अनुदात्तेत् के गृहण से यहां न० । भविता । हलादि गृहण से यहां न० । एधिता । अकर्मकगृहण से यहां न हुआ । वस्तं वसिता यहां लृन् हो जाता है ॥ १२७० ॥

१२७१—जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृध्रिज्वलशुचलप्रपतपटः ॥

अ० ॥ ३ । २ । १५० ॥

तच्छीलादि कर्ताओं में जु आदि धातुओं से युच् प्रत्यय हो । जु, यह सौत्र

धातु है इस को गति वा वेग अर्थ में मानते हैं। जवनः। चङ्क्रम्य, क्रमु-यङ्।
क्रम्यते तच्छीलः, चङ्क्रमणः। दन्दम्य, द्रमु-यङ्, दन्दमणः। स्र, सरणः।
गर्हणः। ज्वल, ज्वलनः। शुच, शोचनः। लष, लषणः। पत्ल, पतनः। पद, पत
यद्यपि (१२७०) सूत्र से पद धातु से युच् प्रत्यय ही जाता तथापि पद का
इस लिये है कि इस से सामान्य युच् प्रत्यय को बाध के विशेष उकज् (१
प्रत्यय न हो जाय क्यों कि तच्छीलादिकों में (६११) सूत्र के अनुसार परस्पर
नहीं होते हैं इस अंग में यही पदग्रहण ज्ञापक है। असरूपनिवृत्त्यर्थं तर्हि पद
क्रियते एतज्ज्ञापयत्याचार्यः। ताच्छीलिकेषु ताच्छीलिका वासरूपन्यायेन न
न्ति। महाभाष्य ३। २। १५० ॥ १२७१ ॥

१२७२—क्रुधमण्डायेभ्यश्च ॥ अ० ॥ ३। २। १५१ ॥

तच्छीलादिकों में क्रोध और भूषण अर्थ वाले धातुओं से युच् प्रत्यय ही।
क्रोपे क्रोधनः। रोषणः [मडि] भूषायाम्। मण्डनः। भूषणः ॥ १२७२ ॥

१२७३—न यः ॥ अ० ॥ ३। २। १५२ ॥

दकारान्त धातु से युच् प्रत्यय न हो [लूयी] शब्दे उन्दे च लूयिता [लूया
विधूनने। लूयिता। इन में (१२७०) सूत्र से युच् प्रत्यय प्राप्त है सो नहीं।
किन्तु लृन् (१२५१) प्रत्यय ही जाता है ॥ १२७३ ॥

१२७४—सूददीपदीक्षश्च ॥ अ० ॥ ३। २। १५३ ॥

सूद, दीप, दीक्ष इन धातुओं से युच् प्रत्यय न हो [षूट] चरणे सूदय
तच्छीलः सूदिता (१२५१) दीपौ, दीपिता। दीक्ष, दीक्षिता। इन सभी में (१२
सूत्र से युच् प्राप्त है। यहां दीपि गृहण क्यों किया क्यों कि 'दीप' धातु से
विहित र (१२८६) प्रत्यय सामान्य युच् (१२७०) प्रत्यय की बाध के ह
ता इस लिये दीपि ग्रहण ज्ञापक है वासरूपन्याय (६११) से र प्रत्यय के
युच् का समावेश हीता है। इस ज्ञापन से यह प्रयोजन है कि। कस्मा कन्या। क
कन्या। इत्यादि। सिद्ध हीं ॥ १२७४ ॥

१२७५—लषपतपदस्याभूदृषहनकमगमशृभ्य उकज् ॥

अ० ॥ ३। २। १५४ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में लष, पत, पद, स्या, भू, दृष, हन, कम, गम, शृ इन धा
से उकज् प्रत्यय ही। लष, अपलाषुकः। पत्ल, प्रपातुकः। पद, पादुकः। पठा,
स्यायुकः। भू, भातुकः। दृष, प्रदर्शुकः। पर्थन्यः। हन, घातुकः। क्रमु, कामुकः। ग
आगामुकः [श] हिंसायाम्। शृणाति तच्छीलः शारुकः। किंशारुकम्। तीक्ष्णम् ॥ १२७५ ॥

१२७६—जल्पभिन्नकुट्टलुण्टवडः प्राकन् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५५ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में जल्प, भिन्न, कुट्ट, लुण्ट, वड् इन धातुओं से प्राकन् प्रत्यय हो । जल्प, जल्पाकः । भिन्न, भिन्नाकः । कुट्ट, कुट्टाकः [लुटि] * स्तये लुण्टाकः । वड्, वराकः । स्त्री लिङ्ग में जल्पाको (स्तै० ७०) डीष् हा जाता है ॥ १२७६ ॥

१२७७—प्रजोरिनिः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में प्रपूर्वक जु धातु से इनि प्रत्यय हो । प्रजवी । प्रजविनी । प्रजविनः ॥ १२७७ ॥

१२७८—जिटृक्षिविञ्चौल्लमाव्यथाभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च ॥

अ० ॥ ३ । २ । १५७ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में जि, ट्, क्षि, विञ्चि इण्, टुवसु, अव्यय, अभ्यम, परिभू, प्रसू इन धातुओं से इनि प्रत्यय हो । जि; जितुं शोलमस्य जयी । वड्, दरी [क्षि] चये [क्षि] निवासगत्योः । क्षयी । विञ्चिज्, विञ्चयी । इण्, अत्ययो । टुवसु, वसौ नञ्-व्यय, अव्ययी । अभि-अमो, अभ्यमौ । परि-भू, परिभवौ । प्रसू-प्रसवी ॥ १२७८ ॥

१२७९—स्पृहृगृहृपतिदयिनिद्रातन्द्राअज्ञाभ्य आलुच् ॥

अ० ॥ ३ । २ । १५८ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में स्पृह आदि धातुओं से आलुच् प्रत्यय हो [स्पृह] ईसायाम् स्पृहयालुः [गृह] गृहणे गृहयालुः [पति] गतो पतयालुः । ये चुरादि अदन्तों में हैं । दय, दयालुः । निद्रा, [द्रा] कुत्सायाम् । निद्रालुः । तद्-द्रा, तन्द्रालुः । यहाँ तद् के द् को नकारादेश निपातन है । अत्-डुधाज्, अवालुः ॥ १२७९ ॥

१२८०—वा०—आलुचि शौङ्ग्रहणम् ॥

आलुच् प्रत्यय के विषय में शौङ् का भी ग्रहण करना चाहिये । शयितुं शोलमस्य, शयालुः ॥ १२८० ॥

१२८१—दाघेट्सिश्दसदोरः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १५९ ॥

दा, घेट्, सि, श्द, सद इन धातुओं से रु प्रत्यय हो तच्छी० । दातुं शोलमस्य दारुः । धातुं शोलमस्य धारुः । सीयति तच्छीलः । सेरुः । शीयति तच्छीलः । शद्रुः । सीदति तच्छीलः । सद्रुः ॥ १२८१ ॥

१२८२—सृषस्यदः क्लरच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६० ॥

सृषस् अद् इन धातुओं से क्लरच् प्रत्यय हो तच्छी० । सृ, सृमरः । वरुह, वस्मरः । अद्, अश्मरः ॥ १२८२ ॥

१२८३—भञ्जभासमिदो घुरच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६१ ॥

भञ्ज, भास, मिद इन धातुओं में घुरच् प्रत्यय हो तच्छी० । भञ्जो, भङ्गुरः (६४३)
भास, भासुरः । जिमिदा, मिदुरः ॥ १२८३ ॥

१२८४—विदिभिदिद्धिदेः कुरच् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६२ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में विद आदि धातुओं से कुरच् प्रत्यय हो । विद, [विद]
ज्ञाने वृत्ति तच्छीलः, विदुरः । भिदिर्, भिदुरः । छिदिर्, छिदुरः ॥ १२८४ ॥

१२८५—इण्णनशजिसर्त्तिभ्यः करप् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६३ ॥

तच्छीलादिकर्त्ताओं में इण्, नश, जि, सर्त्ति इन धातुओं से करप् प्रत्यय हो ।
इण्, इत्वरः । णश, नश्वरः । जि, जित्वरः । छ, सत्वरः (सं० २७३) से तुक् । स्त्रीलिङ्ग
में इत्वरो (स्त्री० ३५) जित्वरो । इत्यादि ॥ १२८५ ॥

१२८६—गत्वरश्च ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६४ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में 'गत्वर' यह निपातन है । गन्तुं शीलमस्य, गत्वरः ।
स्त्री गत्वरो । यहां गम्लृ से करप् और अनुनासिकलोप निपातन है ॥ १२८६ ॥

१२८७—जागुरूकः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६५ ॥

तच्छीलादिकों में जागृ धातु से ऊक प्रत्यय हो [जागृ] निद्राक्षये जागुरूकः ॥ १२८७ ॥

१२८८—यजजपदशां यङ् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६६ ॥

तच्छीलादिकर्त्ताओं में यज, जप, दंश इन के यङ् से परे ऊक प्रत्यय हो ।
यायज्य, यायजितुं शीलमस्य, यायजूकः । जञ्जप्य, जञ्जपूकः । दंश्य, दंश्यूकः ॥ १२८८ ॥

१२८९—नमिकपिस्मयजसकसहिसदौपोरः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६७ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में नम् आदि धातुओं से परे र प्रत्यय हो । णम्, नस्त्रम् ।
काण्ठम् । कपि, कं प्रा शाखा । पिङ् स्मेरम् सुखम् । अजस, [जसु] मोक्षणे नञ्पूर्वक
है अजस्त्रम् । निरन्तरम् । कसु, कस्माकन्या । हिसि, हिंस्रम् । रक्षः । दीपो,
दीपितुं शीलमस्य दीप्तः । दग्धिः ॥ १२८९ ॥

१२९०—सनाशंसभिच्च उः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १६८ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में सनन्त, आशंस, भिच्च इन धातुओं से उ प्रत्यय हो ।
सनन्त, पिपठिषितुं शीलमस्य पिपठिषुः । चिकीर्षुः आशंस, [आङ् शसि] इच्-
कायाम् । स्वादिः आशंसते तच्छीलः आशंसुः । भिच्च, भिजुः ॥ १२९० ॥

१२६१—विन्दुरिच्छुः ॥ अ० ॥ ३।२।१६६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में विन्दु और इच्छु ये निपातन हैं। वेत्ति तच्छीलो, विन्दुः। यहां [विद्] ज्ञान धातु से उ प्रत्यय और नुमागम निपातन है। इच्छति तच्छीलः, इच्छुः। यहां [इष्,] इच्छायाम् से उ प्रत्यय और ककारादेशः ॥ १२६१ ॥

१२६२—आट्गमहनजनः किकिनौ लिट् च ॥ अ० ॥ ३।२।१७१ ॥

वेदविषय में आकारान्त, ऋवर्णान्त, गम, हन, और जन इन धातुओं से कि और किन् प्रत्यय हों और वे लिट् प्रत्यय के तुल्य हों। आ, [पा] पाने पपी तच्छीलः पपिः सोमम्। डुदाज् ददिर्गाः। इन में लिङ् वद्भाव मान कर (३६) सूत्र से धातु द्विवचन हो जाता है। ऋ, भृ, वभ्रिवज्रम्। लृ, मित्रावरुणौ ततुरिः। [गृ,] शब्दे दूरह्रस्वा जगुरिः। गम्ल्, जगिमर्युवा। हन, जघ्नित्वम्। जन जज्जिर्वज्रम्। इन में उपधालोप (२१४) सूत्र से होता है यद्यपि (१३७) कित् संज्ञा सिद्ध भी है तथापि लिट् के कित्व विषय में भी जो गुणविधान (२५८) किञा है उस के प्रतिषेध के लिये (कि, किन्) इन प्रत्ययों में ककार पढ़ा है (आट्, ०) यहां आ, ऋ का अलगर सुख से उच्चारण होने के लिये द् पढ़ा किन्तु तपर करण नहीं है ॥ १२६२ ॥

१२६३—वा०—उत्सर्गश्चन्दसि सदादिभ्यो दर्शनात् ॥

वेदविषय में सद आदि धातुओं से कि, किन् प्रत्ययों का दर्शन है इस से ये उत्सर्गमात्र हैं ऐसा कहना चाहिये अर्थात् आकारान्तों से अन्यत्र भी होते हैं। सदिमनिरमिनमिविचिनीनाम्। महाभाष्य। प्रदल्, सेदिः। मन, मेनिः। रम, रेमिः। णम, नेमिश्चक्रमिवाभवन्। विचिर् विविचिरत्नधातम् ॥ १२६३ ॥

१२६४—वा०—भाषायां धाञ्छसृजनिनमिभ्यः ॥

भाषा में धाञ्, कृ, सृ, जन, नम इन धातुओं से कि, किन् प्रत्यय कहना चाहिये तच्छी०। डुधाज्, दधिः। कृ, चक्रिः। सृ, सस्त्रिः। जन, जज्जिः। णम, नेमिः ॥ १२६४ ॥

१२६५—वा०—सहिर्वाहचलिपतिभ्यो यङन्तेभ्यः

किकिनौ वक्तव्यौ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में यङन्त सहादि धातुओं से कि कन् प्रत्ययों को कहना चाहिये। सह—यङ् वृषा सहमानं सासहिः। वह—यङ् नावहिः चतु—यङ्, चाचलिः। पतलू—यङ्, पापतिः यहां नीक् (५४२) का अभाव निपातन है ॥ १२६५ ॥

१२६६—खपितृषोर्नाजिङ् ॥ अ० ॥ ३।२।१७२ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में खप् और तृष् धातु से नजिङ् प्रत्यय हो। जिष्वप, खप्प्रक्। जितृषा, तृष्णाक् ॥ १२६६ ॥

१२६७—शृवन्द्योराकः ॥ अ० ॥ ३।२।१७३ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में शृ और वदि धातु से आक प्रत्यय हो [शृ] हिंसायाम् शराकः [वदि] अभिवादनस्तुत्योः वन्द्यकः ॥ १२६७ ॥

१२६८—भियः क्लुकनौ ॥ अ० ॥ ३।२।१७४ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में भी क्लु और लुकन् प्रत्यय हो [जिभो] भये । विभेति तच्छीलो । भोरः । भौलुकः ॥ १२६८ ॥

१२६९—वा०—भियः क्लुकन्नापि वक्तव्यः ॥

भी धातु से क्लुकन् प्रत्यय भी कहना चाहिये । भौरकः ॥ १२६९ ॥

१३००—स्थेशभासपिसकसो वरच् ॥ अ० ॥ ३।२।१७५ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में स्था आदि धातुओं से वरच् प्रत्यय हो [ष्ठा] गति-निवृत्तौ । स्थातुं शीलमस्य स्थावरः [इश्] ऐश्वर्ये । ईशितुं शीलमस्य, ईश्वरः [भास्] दीप्तौ भास्वरः [पेस्] गती । पेश्वरः [कस्] गती । विकस्वरः ॥ १३०० ॥

१३०१—यञ्च यङ् ॥ अ० ॥ ३।२।१७६ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में यङन्त या, धातु से वरच् प्रत्यय हो (याया-य-वर-सु) यहां पर यकार के अकार का लोप (१७२) किये पीछे उस का स्थानिवद्भाव (सन्धि० ६३) जो प्राप्त है उस का यलोपविधि के प्रति प्रतिषेध (सन्धि० ६४) हो कर यलोप हो जाता है । यायावरः ॥ १३०१ ॥

१३०२—भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिष्टजुग्रावस्तुवः क्तिप् ॥

अ० ॥ ३।२।१७७ ॥

ताच्छीलादि कर्त्ताओं में भ्राज आदि धातुओं से क्तिप् प्रत्यय हो । टुभ्राज्, विभ्राजते तच्छी लः, विभ्राट् । विभ्राह् । विभ्राजौ । विभ्राजः । भासु, भाः । भासौ । भासः ध्रुवो, धूः । धुरौ । धुरः (५५९) द्युत्, विद्युत् [जर्ज] बलप्राणनयोः । जर्कः । जर्गः । पू, पूः । पुरौ (३८०) जु, यह सौत्र धातु गति और वेग में वर्त्तमान है । जूः । जुवौ । यहां उत्तर सूत्र में (१३०४) जो वास्तिक पढ़ा है उस से दीर्घादेश जानन चाहिये । ग्रावस्तु, ग्राव—ग्टुज्, * ग्रावस्तुत् । ग्रावस्तुतौ । ग्रावस्तुतः ॥ १३०२ ॥

१३०३—अन्येभ्योपि दृश्यते ॥ अ० ॥ ३।२।१७८ ॥

तच्छीलादि कर्त्ताओं में और धातुओं से भी क्तिप् प्रत्यय देखा जाता है । पचति

* यहां ग्राव शब्द का सु धातु के साथ सनास निपातन से कर पीछे क्तिप् प्रत्यय होता है ॥

तच्छीलः पक् । भिनत्ति, भित् । क्षिन्ति, क्षित् । यहां दृश्यते यह दृशि ग्रहण विशेष विधान करने के लिये हैं अर्थात् उक्त क्षिप् के परे कहीं दीर्घ कहीं द्विर्वचन कहीं संप्रसारण कहीं संप्रसारण का अभाव आदि कार्य्य होते हैं जैसे—॥ १३०३ ॥

१३०४—वा०—वचिप्रच्छायतस्तुकटप्रजुश्रीणां

दीर्घोऽसंप्रसारणं च ॥

वच्, प्रच्छ, आयतस्तु, कटप्, जु, श्रिञ् इन धातुओं से क्षिप् प्रत्यय दीर्घतया संप्रसारण का अभाव कहना चाहिये । वक्तीति वाक् । पृच्छति, प्राट् । आयतं स्तीति, आयतस्तूः । कटं प्रवते, कटप् । जषते, जूः । यहां जु का ग्रहण केवल दीर्घ के लिये है । हरिं श्रयति, श्रीः । लक्ष्मीः ॥ १३०४ ॥

१३०५—वा०—द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च

द्युत, गम्ल्, हु इन से क्षिप् और इनको द्वित्वादेश० । द्युत् । यहां द्युत धातु को क्षिप् के परे द्विर्वचन और उक्त दृशि ग्रहण से पूर्व की अभ्यास संज्ञा (३७) तथा उस अभ्यास को संप्रसारण (२१८) ही जाता है । गम्ल्, जगत् (११०५) अनुनासिक लोप० ॥ १३०५ ॥

१३०६—वा०—जुहोतेर्दीर्घश्च ॥

हु धातु को दीर्घ भी होना चाहिये । जुहूः । जुहीतेर्ह्वयतेर्वा [हु] दाना दनयोः अथवा [ह्वेज्] स्रद्धायां शब्दे च इन से (जुहू) सिद्ध होता है ॥ १३०६ ॥

१३०७—वा०—दृणातेर्द्गस्वश्च द्वे च क्षिप्चेति वक्तव्यम् ॥

दृणाति [दृ] विदारणे मे क्षिप् प्रत्यय धातु को द्विर्वचन और ह्रस्वादेशभी कहना चाहिये । ददृत् । दृणातेर्दीर्घ्यते वा [दृ] से कर्त्ता वा कर्म में ददृत् होता है । दृणाति, वा दीर्घ्यते या सा, ददृत् ॥ १३०७ ॥

१३०८—वा०—ध्यायतेः संप्रसारणं च ॥

[ध्ये] चिन्तायाम् धातु से क्षिप् उस को संप्रसारण० । धीः । ध्यायतेर्दीर्घातिर्वा (धीः) यह [ध्ये] से वा [दुधाज्] से सिद्ध होता है ॥ १३०८ ॥

१३०९—भुवः संज्ञान्तरयोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १७६ ॥

संज्ञा वा अन्तर गम्यमान हो तो भू धातु से क्षिप् प्रत्यय हो । संज्ञा, मित्रभूः । यह संज्ञा है । अन्तर, प्रतिभूः । धन के लेने देने वालों के बीच जो विश्वास कराने को स्थिर हो जाता है वह प्रतिभू कहाता है ॥ १३०९ ॥

१३१०—विप्रसंभ्योऽसंज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८० ॥

संज्ञा न गम्यमान हो तो वि, प्र, सम् इन उपसर्गों से उत्तर जो भू धातु उस

से डु प्रत्यय हो। विभुः। जो सर्वगत है। प्रभुः। स्वामी। संभुः। जिस का संभव है। असंज्ञा ग्रहण से जहां विभुः। किसी का नाम हो वहां न हो ॥ १३१० ॥

१३११—वा०—डुप्रकरणे मितद्र्वादिभ्य उपसंख्यानं
धातुविधितुक्प्रतिषेधार्थम् ॥

डु प्रत्यय के प्रकरण में धातुविधि (धातु ग्रहण से जो विधान किया जाय) और तुक् के प्रतिषेध के लिये मितद्रु आदि शब्दों का उपसंख्यान करना चाहिये। मितद्रवति प्राप्नोति, मितद्रुः। मितद्रू। मितद्रवः। यहां धातु को विहित। उवत् (नामि० ६२) नहीं होता तथा (मितद्रु) यहां (सं० २७३) तुक् नहीं होता। शं कल्याणं भावयति, शम्भुः। यहां अन्तर्भावित एवम् माना जाता है ॥ १३११ ॥

१३१२—धः कर्मणि घ्नन् ॥ अ० ॥ ३।२। १८१ ॥

कर्मकारक में धेट् और डुधाज् धातु से घ्नन् प्रत्यय हो। धयन्ति व स्तन्यार्थिनो यां सा, धात्री (स्त्रैण० ७०) उपमाता० दधति वा भेषज्यार्थं यां धात्री। आमलकी। औरा का नाम है ॥ १३१२ ॥

१३१३—दास्नीशसयुयजस्तुदसिसिचमिहपतदशनहः

करणे ॥ अ० ॥ ३।२। १८२ ॥

करण कारक में दाप् आदि धातुओं से घ्नन् प्रत्यय हो [दाप्] लवने दात्यनेन, दात्रम् [णीज्] प्रापणे नयत्यनेन, व्यवहारानिति, नेत्रम् [शसु] हिंसायाम्। शस्त्रम् [य] मिश्रणेऽमिश्रणे च। योत्रम् [युजिर्] योगे। योक्त्रम् [घुज्] सुती स्तीत्रम् [तुद्] व्यथने। तोत्रम् [षिज्] बन्धने। सेत्रम् [षिचिर्] क्षरणे। सेक्त्रम् [मिह] सेचने। मेह्द्रम् [पत्ल्] गतौ। पतति गच्छत्यनेनेति, पत्रं वाहनम् [दंश] दशने दंष्ट्रा (सू० २) अनुनासिक लोप के साथ जो दंश का निर्देश है सो यह ज्ञापक के लिये है अर्थात् नलोप जिन के परे (३०३) कहा है उन से अन्यत्र भी होता है इस से 'दशनम्' यहां ल्युट् के परे भी होता है [णह] बन्धने नदधम् ॥ १३१३ ॥

१३१४—हलसूकरयोः पुवः ॥ अ० ॥ ३।८। १८३ ॥

करण कारक में पूङ् धातु से घ्नन् प्रत्यय हो। जो वह करण हल और सूकर का अवयव हो। पवते पुनाति वानेन तत् पोत्रम्। हलमुखं सूकरमुखं वा ॥ १३१४ ॥

१३१५—अर्त्तिलूध्रस्त्रखनसहचर इवः ॥ अ० ॥ ३।२। १८४ ॥

करण कारक में ऋ आदि धातुओं से इत् प्रत्यय हो [ऋ] गतौ। अरिचम्

(लूज्) छेदने । लवित्रम् [धू] विधूनने । धवित्रम् [धू] प्रेरणे । सवित्रम् [खनु] अवहारणे खनित्रम् [मह] मर्षणे । सहितम् [चर] गतिमक्षणयोः । चरित्रम् ॥ १३१५ ॥

१३१६—पुवः संज्ञावाच्यम् ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८५ ॥

करणकारक में पूङ् वा पूज् धातु से इत् प्रत्यय हो जो समुदाय से संज्ञा गम्य-
मान हो तो । पवित्रम् । कुश वा अन्धियुक्त कुश (पैती) आदि को कहते हैं ॥ १३१६ ॥

१३१७—कर्त्तारि चर्षिदेवतयोः ॥ अ० ॥ ३ । २ । १८६ ॥

ऋषि और देवता वाच्य संज्ञा होती करण वा कर्त्ता कारक में पूङ् वा पूज्
धातु से इत् प्रत्यय हो । वहाँ यथासंख्य ऋषि, देवता से संबन्ध है अर्थात् ऋषि
वाच्य हो तो करण में और देवता वाच्य हो तो कर्त्ता में (इत्) होता है । पूयतेऽ-
नेनेति, पवित्रोऽयं ऋषिर्वेदः । अग्निः पवित्रं स जा पुनातु ॥ १३१७ ॥

१३१८—उष्णादयो बहुलम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १ ॥

वर्तमानकाल और संज्ञाविषय में धातु से उष् आदि प्रत्यय बहुल करके ही।
उष्ज्, करोतीति, क्रावः । शिखी का नाम है । वा, वातीति वायुः । पवनः ।
इत्यादि । प्रकृति प्रत्यय के अनुसार उष्णादिमण्डल उदाहरण जानने चाहिये । बहुल-
ग्रहण से कहे हुए कारक आदि के नियम से अन्यत्र भी शिष्ट प्रयोग के अनुसार
प्रकृति प्रत्यय की कल्पना से उष्णादिगण के प्रयोगों से और भी प्रयोग बनते हैं ।

इस विषय में महाभाष्यकार ने कहा है कि—

का०—बाहुल्यं प्रकृतेस्तमुदृष्टेः प्राक्समुच्चवनादपि तेषाम् ।

कार्मसम्प्लेषविधेस्तदुक्तं नैगमरूढिभवं हि सुसाधु ॥ १ ॥

नाञ्च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्थ तोकम् ।

यन्न पदार्थनिर्दिष्टसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेस्तदूच्यम् ॥ २ ॥

संज्ञासु वातरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।

कार्याद्विद्यादनुबन्धनेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥ ३ ॥

उक्त सूत्र में प्रकृतिर्गो को (तमुदृष्टि) तनुता देखने से बाहुल्य * का (बहुल शब्द
से बहुत अर्थों का) ग्रहण तथा उन उष् आदि प्रत्ययों का भी प्रायः (बहुल

* बहुलग्रहण से यह समझना चाहिये कि जो उष्णादिगण में अपठित प्रकृति हैं उन से भी उष्णादि प्रत्यय
होते हैं जैसे ह्य-धातु से उल्य् प्रत्यय कहा है वह (शक्ति) शंकायान् से भी होता है "ग्रहुषा" ।

+ बहुलग्रहण से यह समझना चाहिये कि जो उष्णादिगण में प्रत्यय न कहे हैं वे भी होते हैं जैसे महाभा-
ष्यकार ने (ऋचक्) सूक्तभाष्य में च धातु से फिड, फिड्ड प्रत्यय मान कर "ऋफिडः, ऋफिड्डः प्रयोग दिखवाये" हैं

करके) समुच्चय (समूह) किया है अर्थात् उणादिगण में वे प्रत्यय भी निःशेष नहीं पड़े हैं और काव्यों की विशेषविधि * (उणादिगण के सूची में असमस्तकार्य कहें किन्तु निःशेष नहीं कहें) देखने से यह बहुत शब्द पढ़ा है तथापि वेदिक और रुढिभव (संज्ञा वाचक) शब्द अच्छे प्रकार सिध करने ही है इस से पाणिनि आचार्य ने प्रकृतियों की तनुता देख कर बहुत शब्द पढ़ा है इस विषय में और आचार्यों का ऐसा सिद्धान्त है कि वे प्रकृत्यादिविभाग से शब्दों का साधन मानते हैं किन्तु रुढिप्रकार से नहीं मानते जैसे— ॥ १ ॥

(नाम च) निवृत्तकार निवृत्तग्रंथ में शब्दों की धातुज अर्थात् प्रकृतिप्रत्यय के विभाग से कहते और व्याकरणविषय में शकट ऋषि के तो क अपत्य (शाकटा-सम) वेयाकरण शब्दों की धातुज कहते हैं इस से जो विशेष † प्रकृतिप्रत्यय के विभाग से न जाना जाय वह प्रकृति और प्रत्यय से कल्पनीय है अर्थात् उस की सिधि के लिये प्रकृति को देखकर उस के कार्य के अनुसार प्रत्यय और प्रत्यय को देख कर प्रकृति की कल्पना करनी चाहिए यह कल्पना सर्वत्र नहीं होती किन्तु ॥ २ ॥

(संज्ञासु०) संज्ञा आदि शब्दों में धातुरूप और उन धातुओं से परे प्रत्यय तथा वृद्धि, गुण, उदात्तस्वर आदि काव्यों के अनुसार प्रत्ययों के अनुबन्ध जानना चाहिये । उणादिकों ने यही सिद्धा करके बोरव है ॥ ३ ॥ १३१८ ॥

१३१६—भूतेऽपि दृश्यन्ते ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २ ॥

भूतकाल में भी उण् आदि प्रत्यय देखे जाते हैं । जैसे 'वृत्तमिदं' वर्त्म । चरितमिति । चर्म । जो यत्न गया । और जाना गया वा चरित हो गया वह वृत्त और चर्म कहता है । यहाँ वृत्त और चर से भूतकाल में उणादिगणस्थ मनिन् प्रत्यय होता है ॥ १३१८ ॥

१३२०—भविष्यति गत्यादयः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३ ॥

भविष्यत्काल में (गमिन्) आदि उणादिप्रत्ययान्त शब्द देखे जाते हैं । ग्रामं गमि । यहाँ गमल् से उणादिस्थ इनि प्रत्यय भविष्यत्काल में होता है ॥ १३२० ॥

१३२१—त्रा०—भविष्यतीत्यनद्यतन उपसंख्यानम् ॥

भविष्यत्काल में गत्यादिकों के विधान में अनद्यतन का भी उपसंख्यान करना चाहिये । श्रो ग्रामं गमि । कल के दिन ग्राम को जाने वाला है ॥ १३२१ ॥

* उणादिगण में अनुक्त कार्य हैं वे भी बहुवचन से होते हैं जैसे "दृष्टः" यहाँ वन धातु की सूत्र्य * के सत्वादेश का अभाव वा सत्वादेश करके सूत्र्यादेश हो जाता है ।

† विभिन्यते यः सो विभिन्यते पदमर्थः प्रवेजनं यत् व्युत्पाद्यत्वेन न पदार्थः विशेषयासी पदार्थो विशेषपदार्थस्य आद यन्न समुत्पत्तिविशेषप्रकृतिप्रत्ययोच्चादनेन न व्युत्पादितमिति यावत् ।

१३२२—दाशगोप्तो संप्रदाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७३ ॥

दाश और गोप्त ये उणादिप्रत्ययान्त शब्द संप्रदान कारक में निपातन हैं ।
दाशन्ति-यच्छन्ति यस्मै स दाशः । गोहन्त्यते यस्मै स गोप्तः ॥ १३२२ ॥

१३२३—भौमादयोऽपादाने ॥ ३ । ४ । ७४ ॥

भौम आति उणादिप्रत्ययान्त शब्द अपादान कारक में जानने चाहिये ।
विमेत्यस्मादिति भौमः । भौषः इत्यादि ॥ १३२३ ॥

१३२४—तास्यासन्न्यद्वोणादयः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७५ ॥

संप्रदान अपादान से अन्यत्र अर्थात् और कारकों में उण् आदि प्रत्यय हैं ।
जि, जयतीति, जायुः इत्यादि ॥ १३२४ ॥

१३२५—तुमुन्खुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १० ॥

क्रियार्था क्रिया उपपद होता भविष्यत्काल में धातु से तुमुन् और खुल् प्रत्यय
हो (भुज् + तुमुन् + खु + गच्छति =) यहाँ तुमुन् के (उ, ल्) इन की इत् संज्ञा
और लोप होकर ॥ १३२५ ॥

१३२६—लज्जेजन्तः ॥ अ० ॥ १ । १ । ३६ ॥

मान्त और एजन्त जो कृत् प्रत्यय तदन्त जो शब्द जो अव्यय संज्ञक हैं । इस
से अव्यय संज्ञा हो जाती है । भोक्तुं गच्छति । पठितुं गच्छति । समां द्रष्टुं गच्छति ।
यहाँ (१३२५) सूत्र में जो खुल् प्रत्यय का ग्रहण किया है इस से जानना
चाहिये कि तुमुन् के विषय में वासरूपविधि से लज्जादिक नहीं होते हैं क्योंकि जो
लज्जादिक होते तो वासरूपविधि से खुल् (६७४) हो ही जाता ॥ १३२६ ॥

१३२७—समानकर्तृकेषु तुमुन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १५८ ॥

इच्छा अर्थवाले समानकर्तृक धातु समीपवर्ती हैं तो धातु से तुमुन् प्रत्यय
हो । इच्छति भोक्तुम् । कामयते भोक्तुम् । भोक्तुं गच्छति । समानकर्तृकग्रहण से
यहाँ न हुआ । पठन्तं देवदत्तमिच्छति विष्णुमित्रः । अक्रियार्थोपपद के लिये यह
सूत्र है । इच्छत्येवं भोक्तुम् । इस से यहाँ भी तुमुन् होता है ॥ १३२७ ॥

१३२८—शकधृषज्ञागलाघटरथलभक्रससहार्हास्तथर्थेषु तुमुन्

॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६५ ॥

शक आदि धातु उपपद हैं तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो । शक्नु, शक्नोति
भोक्तुम् । जिह्वा, धृणोति भोक्तुम् । ज्ञा, जानाति भोक्तुम् । रथे, रथान्यति भोक्तुम् ।
घट, घटते भोक्तुम् । रभ, भोक्तुमारभते । लभ, लभते भोक्तुम् । क्रस, भोक्तुं क्रसते ।

सह, भोक्तुम् सहते । अहं, भोक्तुमर्हति । असत्यर्थ—अस, भू, विद् । भोक्तुमस्ति । भोक्तुम् भवति । विद्यते भोक्तुम् । यह भी अक्रियार्थोपपद के लिये सूत्र है । शक्यमेवं भोक्तुम् । यहाँ भी तुमुन् होता है ॥ १३२८ ॥

१३२९—पर्याप्तवचनेष्वलमर्थेषु ॥ अ० । ३ । ४ । ६६ ॥

परिपूर्णता को कहने वारे अलमर्थ (सामर्थ्यवचन) उपपद ही तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो । पर्याप्तो भोक्तुम् । अलम्भोक्तुम् भोक्तुम् पारयति । भोक्तुं कुशलः । पर्याप्तवचनग्रहण से यहाँ न हुआ । अलं कृत्वा । अलमर्थग्रहण से यहाँ न हुआ पर्याप्तम्, उक्ते । यहाँ भोजन करने वाले की प्रभुता गव्यमान है ॥ १३२९ ॥

१३३०—कालसमयवेलानु तुमुन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६७ ॥

काल, समय, और वेला ये शब्द उपपद ही तो धातु से तुमुन् प्रत्यय हो । कालो भोक्तुम् । भोक्तुं वेला । भोक्तुं समयः । यहाँ अष्टाध्यायी के क्रम से (७८८) सूत्र में से प्रैष, अतिसर्ग, प्राप्तकाल इन अर्थों का भी संबंधानुवर्तन है अर्थात् प्रैषादि अर्थों के ही विषय में यह तुमुन् होता है । इस से यहाँ न हुआ । कालः पश्चति भूतानि कालः संहरति प्रजाः ॥ १३३० ॥

१३३१—भाववचनानाञ्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ११ ॥

क्रियार्था क्रिया उपपद ही तो धातु से भविष्यत्काल में भाववचन (भावाधिकार १३३२ विहित) षच् आदि प्रत्यय ही । यागाय याति । पाठाय गच्छति । पुष्टये प्रयतते । यज्ञ करने को वा पढ़ने को याता और पुष्टि के लिये उत्तम यज्ञ करता है । यहाँ कर्म में चतुर्थी (कारकीय६१) से होती है । वचनग्रहण इस लिये है कि जिस २ प्रकृति और नियम से जो २ प्रत्यय भावाधिकार में कहा है वहर इस विषय में उर्द्धी नियमों से हो। यद्यपि सामान्यविहित भाववचन क्रियार्थाक्रिया के विषय में होजाते परन्तु यहाँ वासरूपविधि को न होने से क्रियार्थोपपद विषयका तुमुन् की साधने से नहीं होते हैं इस लिये यह (१३३१) सूत्र कहा ॥ १३३१ ॥

१३३२—अण् कर्मणि च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२ ॥

क्रियार्थाक्रिया और कर्म उपपद ही तो धातु से भविष्यत्काल में अण् प्रत्यय हो । यहाँ चकार कर्मसन्नियोग के लिये है अर्थात् यहाँ कर्म और क्रियार्थाक्रिया साथ रहें वहाँ यह अण् हो । काण्डानि लेविषुं गच्छति, काण्डलावो गच्छति । अश्वं दातुं व्रजति, अश्वदायो व्रजति । परत्व से यह कादिकों (१००१) को वाधता है ॥ १३३२ ॥

१३३३—पद्वज्जविशस्पृशो घञ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६ ॥

पद आदि धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । यहाँ से तीनों काल में प्रत्यय होते हैं किन्तु भविष्यत्काल की निवृत्ति है । पद्यतेऽसौ पादः । रुजत्यसौ रोगः । विशत्यसौ वेशः । इसी प्रकार पत्यते, अपादि वा पादः । इत्यादि जानना चाहिये ॥ १३३३ ॥

१३३४—वा०—स्पृश उपतापे ॥

उक्त घञ् प्रत्यय स्पृश धातु से उपताप अर्थ में हो यज्ञ कहना चाहिये । स्पृशतीति, स्पृश उपतापः । कष्ट कष्टाता है उपतापग्रहण से यहाँ न हुआ । कम्बलस्य स्पर्शः कम्बलस्पर्शः यहाँ पचाद्यच् (६७५) हो जाता है ॥ १३३४ ॥

१३३५—ख् स्थिरे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७ ॥

ख धातु से स्थिर कर्त्ता में घञ् प्रत्यय हो । स्थिर शब्द से चिरकालस्थायी का ग्रहण है । यश्चिरं तिष्ठन् कालान्तरं सरति प्राप्नोति, स सारः । जो चिरकाल ठहरा हुआ कालान्तर को प्राप्त होता है वह सार कहाता है । स्थिरग्रहण से यहाँ न हुआ । सत्ता सारकः (६७४) ॥ १३३५ ॥

१३३६—वा०—व्याधिमत्स्यबलेष्विति यज्ञव्यम् ॥

व्याधि, मत्स्य और यज्ञ अर्थ में ख धातु से घञ् प्रत्यय कहना चाहिये । अत्यन्त सरति, अतिसारी व्याधिः । विविधं सरति, इतस्ततो जलेऽटति, विसारी मत्स्यः । शाल इव सरति, शालसारः । खदिरसारः । यलम् ॥ १३३६ ॥

१३३७—भावे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १८ ॥

भाव वाच्य हो तो धातु से घञ् प्रत्यय हो । यहाँ यह जानना चाहिये कि क्रियासामान्यवाची भू धातु है इस से अर्थ निर्देश किया हुआ सर्वधातुविषयक होता है । भाव अर्थात् धात्वर्थ सो भी धातु से ही कहा जायगा इस लिये धातु के सिद्ध प्रयोग से जो धात्वर्थ निष्पन्न होता है वह वाच्य होता घञ् होता है जैसे । कारः । हारः । इत्यादि ॥ १३३७ ॥

१३३८—स्फुरतिस्फुलत्योर्घञि ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४७ ॥

घञ् प्रत्यय परे होता स्फुर, स्फुल इन धातुओं के एच् के स्थान में आकारादेश हो । स्फारः । स्फालः ॥ १३३८ ॥

१३३९—इक्षः काशे ॥ अ० ॥ ६ । ३ । १२३ ॥

काश उत्तरपद परे हो तो इगन्त ही उपसर्ग का दीर्घादेश हो । मीकाशः । अनूकाशः । यहाँ [काशृ] दोसौ धातु से घञ् हुआ है । इगन्त ग्रहण से यहाँ दीर्घ नहीं होता । प्रकाशः ॥ १३३९ ॥

१३४०—स्यदो जवे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २८ ॥

घञ् प्रत्यय परे हो और जव (वेग) अभिधेय हो तो स्यद, यह निपातन है । गोरस्यदः । यहाँ [स्यन्दू] प्रत्ययणे । धातु से घञ् प्रत्यय, नलोप और वृद्धि (१२६) का अभाव निपातन है । जव ग्रहण से । हृतस्यन्दः । यहाँ नलोप नहीं होता ॥१३४०॥

१३४१—अवोदैधौ प्रत्ययहिमश्चथाः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २४ ॥

नलोपविषय में अवोद, एध, ओझ, प्रश्नश्च, हिमश्च, ये निपातन हैं । अवोदः । यहाँ अक्षपूर्वक [उन्दी] लोदने धातु से घञ् प्रत्यय के परे नलोप निपातन है । एधः । यहाँ [जिश्न्वी] दीप्तौ से घञ् प्रत्यय के परे नलोप और गुणादेश निपातन है । अन्वथा (५५३) सूत्र से गुणप्रतिषेध प्राप्त है । ओझः । यहाँ [उन्दी] धातु का नलोप और गुणादेश उणादिगणस्थ मन् प्रत्यय के परे निपातन है । प्रश्नश्चः । यहाँ अन्य धातु के नकार का लोप और वृद्धि का न होना निपातन है । इसी प्रकार हिमपूर्वक अन्व से । हिमश्चः । सिद्ध होता है ॥ १३४१ ॥

१३४२—अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १६ ॥

कर्त्ताभिन्न कारक में भी संज्ञाविषय में घञ् प्रत्यय हो । प्रसीव्यत इति प्रसेवः । आहरन्ति रसं यस्मात् आहारः । अकर्त्तृग्रहण से यहाँ न हुआ [मिष] स्यर्क्षायाम् मिषत्वसौ, मिषः । मेढा का नाम है यहाँ अच् होता है । संज्ञाग्रहण से यहाँ न हुआ । कर्त्तव्यः कटः । गन्तव्यो मार्गः । संज्ञा से अन्यत्र भी घञ् होने के लिये चकार है इस से यहाँ भी होता है । को लाभो भवता लब्धः ॥ १३४२ ॥

१३४३—यञि च भावकरणयोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । २७ ॥

भावकरणवाचो घञ् प्रत्यय परे हो तो रञ्ज धातु के उपधा नकार का लोप हो । भाव, में । रञ्जनं रागः । करण में रज्यतेऽनेनेति, रागः । भावकरणग्रहण से यहाँ नलोप न० । रञ्जत्यकिन्निति रङ्गः । यहाँ से आगे अष्टाध्यायीकेक्रमसे (कृत्यल्युटो बहुलम्) सूत्र पर्यन्त (भावे, अकर्त्तरि, कारके) इस पदों का अधिकार है ॥१३४३॥

१३४४—परिमाणाख्यायां सर्वथः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २० ॥

परिमाण का कथन हो तो सब धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । चिञ्, एकस्तण्डुलनिचायः । तण्डुलानां निचायस्तण्डुलनिचायः* । पूज्, हो शूर्पं निष्पावी [कृ] विक्षेपे हो कारी । त्रयः काराः परिमाणाख्या ग्रहण से यहाँ न हुआ । निश्चयः ॥१३४४॥

* यह पाठ्यों की देरी अर्थात् मन आदि परिमाण से पूर्ण है । जो शूर्प से निरन्तर यह किया जाए यह शूर्पनिपाद कहाता । दो शूर्पनिपाद अर्थात् दो बार से शूर्प से जितना यह हो सके उतना धान्य है । दो बार अर्थात् दो बार शूर्प आदि से किराजाय उतना धान्य है ।

१३४५—वा०—दारजारौ कर्त्तरि णितुक् च ॥

दार, जार ये दोनों प्रयोग कर्त्ता में कहने चाहिये और इन के विषय में णिच् प्रत्यय का लुक् भी कहना चाहिये [दृ] विदारणे । दारयन्तीति, दाराः [जृष्] वयोहानी जारयन्तीति आराः ॥ १३४५ ॥

१३४६—वा०—करणे वा ॥

अथवा करण कारक में दाव जार शब्द कहने चाहिये । इस पक्ष में णितुक् नहीं है । दीर्यन्ते तैर्दाराः । जीर्यन्ति तैर्जाराः ॥ १३४६ ॥

१३४७—इङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २१ ॥

इङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो । यह बह्यमाण अच् का अपवाद है । उपेत्यस्मा दधीत इत्युपाध्यायः । यहाँ [इङ्] धातु से अपादान में घञ् प्रत्यय है ॥ १३४७ ॥

१३४८—वा०—इङ्प्रचेत्यपादानेस्त्रियासुपसंख्यानंतदन्ताच्चवाङीष् ॥

(इङ्) इस विषय में स्त्रीलिङ्ग में घञ् प्रत्यय का उपसंख्यान करना और उस घञ् प्रत्यय से विकल्प करके ङीष् प्रत्यय कहना चाहिये । उपेत्याधीयतेऽस्या उपाध्यायी, उपाध्याया (स्तौ० ८८) ॥ १३४८ ॥

१३४९—वा०—शृ वायुवर्णनिवृत्तेषु ॥

(शृ) इस धातु से वायु, वर्णनिवृत्त (आवरण-आच्छादन) इन अर्थों में घञ् प्रत्यय कहना चाहिये (शृ) हिंसायाम् । शृणात्वनेनेति शारोवायुः । करणमें घञ् है । शीर्यते पिब्रीक्रियतेऽनेनेति, शारो वर्णः । गौरिवाकृतनीशारः प्रायेण शिशिरे कथः । निशीर्यते निव्रियते आच्छाद्यतेऽनेनेति, नीशारः । निवृत्तम् । (अकृतनीशारः) जिस ने छप्पर आदि नहीं छवाया वह पुसव प्राय करके शिशिर ऋतु में गौ के तुल्य दुबला हो जाता है ॥ १३४९ ॥

१३५०—उपसर्गं रवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २२ ॥

उपसर्गं उपपद् हो तो र धातु से घञ् प्रत्यय हो । संरावः । उपसर्गग्रहण से यहाँ न हुआ । रवः । यहाँ (१३८८) अप् हो जाता है ॥ १३५० ॥

१३५१—सम्पि युङ्गुदुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २२ ॥

सम् उपपद ही तो यु, हु, दु इन इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । संयूयते मित्रीक्रियते गुडादिभिरिति संयावः । मीठी पूड़ीआदि का नाम है । सन्दावः । सन्दावः ॥ १३५१ ॥

१३५२—श्रिणीमुदीनुपसर्गः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २४ ॥

उपसर्ग उपपद न हो तो श्रि, णी, भू इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । आद्यः । नायः । आवः । उपसर्गविधेय से यहाँ न हुआ । प्रवयः । प्रणयः । प्रभवः (प्रभावः) यह तो प्रादिसमास से होता है तथा (नयः वृष्टिदीपतेः) यह कृत् संज्ञकों के बहुलभाव से होता है ॥ १३५२ ॥

१३५३—वौ क्षुश्रुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २५ ॥

वि उपपद हो तो क्षु, श्रु इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । क्षिप्तावः । विज्ञावः । विग्रहण से यहाँ न हुआ । सवः । श्रवः ॥ १३५३ ॥

१३५४—अवोदोर्नियः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २६ ॥

अव, उद् ये उपसर्ग उपपद हैं तो नी धातु से घञ् प्रत्यय हो । अवनायः । नीचे को पहुँचाना । उवायः । ऊपर को पहुँचाना ॥ १३५४ ॥

१३५५—प्रे द्रुस्तुस्त्वः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २७ ॥

प्र उपपद हो तो द्रु, स्तु, स्तु इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । प्रद्रावः । प्रस्तावः । प्रस्तावः । प्रग्रहण से यहाँ न० । द्रवः । स्तवः । स्तवः । यहाँ वक्ष्यमाण अप् (१३८६) हो जाता है ॥ १३५५ ॥

१३५६—निरभ्योः पूत्वोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २८ ॥

निर् अभि ये यस्मासंख्य उपपद हैं तो पूल्, इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । [पू] यह सामान्य । [पूङ् पूज्] दोनों का ग्रहण है । निर्-पू, निष्पूयते शूर्पादिभिर्यः स, निष्पावः । यह किसी धातुविशेष का नाव है । अभिलावः ॥ १३५६ ॥

१३५७—उन्व्योर्थः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २९ ॥

उद् और नि उपपद हो तो गृ धातु से घञ् प्रत्यय हो [गृ] शब्दे [गृ] निगरणे । उद् + गृ, उहारः समुद्रस्थ । नि + गृ, निगारो मनुष्याणाम् । उद्, नि ग्रहण से यहाँ न हुआ । गरः । अप् (१३८६) हो जाता है ॥ १३५७ ॥

१३५८—छु धान्ये ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३० ॥

धान्य अर्थ से वर्तमान जो उद् नि पूर्वक कृ धातु उस से घञ् प्रत्यय हो [कृ] विक्षेपे । उत्कारो निकारो वा धान्यस्य । धान्य का ऊपर को किराना वा एक तार किराना धान्य से ग्रन्थत भैक्ष्योत्करः । पुथनिकरः । फूली का समूह ॥ १३५८ ॥

१३५८—यज्ञे समि स्तुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३१ ॥

यज्ञ अर्थ में सम् पूर्वक स्तु धातु से घञ् प्रत्यय ही । सनेत्य स्तुवन्ति कन्दोगा यस्मिन् देशे स देशः संस्तावः । यहाँ अधिकारण में घञ् प्रत्यय है । यज्ञ से अन्यञ् संस्तावः । परिचय है ॥ १३५८ ॥

१३६०—प्रेखोऽयज्ञे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३२ ॥

प्र उपपद ही तो यज्ञभिन्म अर्थ में स्तृज् धातु से घञ्प्रत्यय ही [स्तृज्] आच्छादने । कन्दर्मा प्रस्तारः । मणिप्रस्तारः । अयज्ञग्रहण से यहाँ न हुआ । बर्हिषः प्रस्तारः । कुशों की मूढी ॥ १३६० ॥

१३६१—प्रथने वावशब्दे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३३ ॥

अशब्दविषयक प्रथन (विस्तीर्णता) गद्यमान ही और पि उपपद ही तो स्तृज् धातु से घञ् प्रत्यय ही । षट्स्य विस्तारः । प्रथन ग्रहण से यहाँ न० । अयं त्व-णविस्तरः । यह त्व अर्थात् कुण आदि का विज्ञापना है । अशब्दग्रहण से यहाँ न हुआ । वचसां विस्तरः । अन्यविस्तरः । घन में अगला अप् प्रत्यय (१३८८) ही जाता है ॥ १३६१ ॥

१३६२—कन्दोनाग्नि च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३४ ॥

कन्दोनाम वाच्य ही तो विपूर्वकस्तृज् धातु से घञ् प्रत्यय ही । यहाँ कन्दश् शब्द से गायत्री आदि कन्दों का ग्रहण है विस्तीर्यन्तेऽस्त्रिनक्षराणि, विष्टारः विष्टारं च तत् पङ्क्तिश्चन्दः विष्टारपङ्क्तिश्चन्दः । विष्टाररुहती कन्दः । यहाँ (८४०) सूच मत० ॥ १३६२ ॥

१३६३—उदि ग्रहः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३५ ॥

उद् उपपद ही तो ग्रह धातु से तृज् प्रत्यय ही । उद्ग्राहः ॥ १३६३ ॥

१३६४—वा०—उद्ग्राभनिग्राभौ च कन्दसिस्तुगुह्यमननिपातनयोः

स्तुच् (हवन करने के पात्र) का उठाना, धरना अर्थ ही तो उद्ग्राभ, निग्राभ ये निपातन हैं । यहाँ उद् नि पूर्वक ग्रह धातु से भाव में घञ् और उस के हकार को भकार आदेश हुआ है ॥ १३६४ ॥

१३६५—समि मुष्टौ ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३६ ॥

सम् उपपद ही तो मुष्टिविषयक (पञ्चालङ्गने) अर्थ में ग्रहधातु से घञ् प्रत्यय ही । अही मल्लस्य संग्राहः । अही मुष्टिकस्य संग्राहः । मुष्टिग्रहण से यहाँ न हुआ । द्रव्यस्य संग्रहः ॥ १३६५ ॥

१३६६—परिज्योनी शोद्यूताभ्येषयोः ॥ अ० ॥ ३।३।३७ ॥

छूत अर्थ में परिपूर्वक शीज और अभ्येष (उचित करने) अर्थ में निपूर्वक इष् धातु से घञ् प्रत्यय ही। छूत, परिणयनं, परिणायः। परिणयेन आरामं हति सत्र और से एर फेर से पाशाची को छीनता झपटता है। अभ्येष, एषोच न्यायः। छूताभ्येष से अन्यत्र। परिणया विवाहः। न्ययो नाशः ॥ १३६६ ॥

१३६७—अनुपात्यय इष् ॥ अ० ॥ ३।३।३८ ॥

अनुपात्यय अर्थ में परिपूर्वक इष् धातु से घञ् प्रत्यय ही। तव पर्यायः। मम पर्यायः। अनुपात्ययग्रहण से यहाँ न हुआ। कालस्य पर्ययः। काल का व्यतीत होना ॥ १३६७ ॥

१३६८—व्युपयोः श्वेतेः पर्याये ॥ अ० ॥ ३।३।३९ ॥

पर्याय मय्यमान हो तो वि, उप पूर्वक शोङ् धातु से घञ् प्रत्यय ही। तव विशयः। तुझारा जागना। मम विशयः। मेरा जानना। तव राजीपशयः। तुझारा राजा के समीप सोना। मम राजीपशयः। मेरा राजा के समीप सोना। पर्यायग्रहणसे यहाँ न हुआ विशयः। उपपन्नः ॥ १३६८ ॥

१३६९—हस्तादाणे चेरस्त्रये ॥ अ० ॥ ४।३।४० ॥

शस्त्रेय चौरों से अन्यत्र जो हाथ से ग्रहण करना उस अर्थ में चिज् धातु से घञ् प्रत्यय ही। पुष्पप्रशयः। फलप्रशयः। पुष्प, फलों का हाथ से इकट्ठा करना। हस्तादाण से अग्र्यत्र। शृणुम फलसंसदयं कराति। यहाँ घञ् नहीं होता शस्त्रेयग्रहण से यहाँ नहीं होता। चौर्येण फलप्रशयः ॥ १३६९ ॥

१३७०—निवासचितिशरीरोपसमाधानीत्यादेशकः ॥ अ० ॥ ३।३।४१ ॥

निवास (अच्छे प्रकार जिस में बसे) चिति (जो चिमीजाना) शरीर, उपसमाधान (ढेर लगाना) इम अर्थों में चिज् धातु से घञ् प्रत्यय और धातु के आदि चकार को जकार आदेश ही। निवास, निवसत्त्वज्जिमिति, निकायः। फक्षीरनिकायः। चिति, आचीयतेऽसादित्याकायः। जो अच्छे प्रकार चिना जाय वह आकाय कहिये। आकायमग्निं चिम्बोत। शरीर। चीयतेऽस्मिन्सकृष्ट्यादिकमिति कायः। उपसमाधान, धान्यमिकायः ॥ १३७० ॥

१३७१—संघे ज्ञानौत्तरावर्धे ॥ अ० ॥ ३।३।४२ ॥

अनौत्तरावर्ध (ऊपर नीचे न होना) विषयक जो संघ (प्राणियों का एकत्र होना) उस अर्थ में चिज् धातु से घञ् प्रत्यय और उस के आदिभूत चकार को

क आदेश ही । ब्राह्मणनिकायः । भिज्जुनिकायः । वेधाकरणनिकायः । अनौत्तराध्वं
ग्रहण से यहाँ न हुआ । सूकरनिकायः । प्रायः सूकर सोते हुए एक दूसरे की ऊपर
भी हो रहते हैं । प्राणिविषयकसंघ लेने से यहाँ न० परिहारसमुच्चयः ॥ १३७१ ॥

१३७२—कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४३ ॥

कर्मव्यतिहार (क्रियाका परस्पर होना) गम्यमान हो तो स्त्रीलिङ्ग में धातु से
णच् प्रत्यय ही । यह भाव में होता है (णि + अव + कृष् + णच्) यहाँ (स्त्रै० ८२२)
सूत्र से स्वार्थ में तद्धित अञ् प्रत्यय होकर (व्यवकृष् + अ + अ =) इस अवस्था में
(स्त्रै० ८१८) सूत्र से ऐच् प्राप्त हुआ उस का (स्त्रै० ८२२) निषेध ही कर (स्त्रै०
१६७) सूत्र से वृद्धि तथा (स्त्रै० ३५) सूत्र से डीप् प्रत्यय हो जाता है । व्याघक्रो-
शी । व्यावहासी । स्त्रीग्रहण से यहाँ न हुआ । व्यतिपाकी वर्तते । कर्मव्यतिहार
से अन्यत्र । क्रोशी वर्तते ॥ १३७२ ॥

१३७३—अभिविधौ भाव इनुष् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४४ ॥

अभिविधि (अभिव्याप्ति अर्थात् क्रिया और गुणों से परिपूर्ण सम्बन्ध) अर्थ
हो तो धातु से भाव में इनुष् प्रत्यय ही । समत्ताद् रक्षणं, सनन्ताद् कृत्यत इति
वा साराविणम् । यहाँ सम्पूर्वक [ण] धातु से इनुष् और उस के परे धातु
की वृद्धि (६०) तदनन्तर (संराविन्) शब्द से स्वार्थ में अण् और अण् के परे
आदि अच् को (स्त्रै० १६७) वृद्धि और अण् के पूर्व की प्रकृतिभाव (८०१) सूत्र से
हो जाता है । साराविणं वर्तते । अभिविधिग्रहण से यहाँ न हुआ । संरावः ।
संद्रावः । इत्यादिकों में घञ् हो जाता है । भाव वर्तमान था फिर भाव इस
लिये है कि वासरूपविधि से अभिविधिविषयक भाव में घञ् न हो परन्तु
वक्ष्यमाण ल्युट् प्रत्यय तो होता है ॥ १३७३ ॥

१३७४—आक्रोशेवन्योर्ग्रहः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४५ ॥

आक्रोश (अच्चे प्रकार का शन) अर्थ गम्यमान हो तो अव, नि पूर्वक ग्रह धातु
से घञ् प्रत्यय ही । अवशाही हषल ते भूयात् । निग्राहो हन्त ते हषल भूयात् ।
आक्रोशग्रहण से यहाँ न ही । अवग्रहः पदस्य । पद का विग्रह निग्रहयोरस्य ।
चोर का बान्धना ॥ १३७४ ॥

१३७५—मे लिप्सायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४६ ॥

लाभ की इच्छा गम्यमान हो तो प्रपूर्वक ग्रह धातु से घञ् प्रत्यय ही । पाप
प्रयाहेण चरति भिजुः । लिप्साग्रहण से यहाँ न हुआ । प्रग्रहः पात्राणाम् ॥ १३७५ ॥

१२७६—परौ यज्ञे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४७ ॥

परि उपसर्ग उपपद हो तो ग्रह धातु से वज्र अर्थ में घञ् प्रत्यय हो । उत्तर परिग्राहः । स्फेनवेदेर्भवति । यज्ञ से अग्न्यन् । परिग्रही देवदत्तस्य ॥ १२७६ ॥

१२७७—नौ वृ धान्ये ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४८ ॥

धान्य अभिधेय हो और नि उपसर्ग उपपद हो तो वृज् वा वृङ् धातु से घञ् प्रत्यय हो । नौवाराः । नौहयः । यहाँ (उपसर्गस्य वज्रमनुष्ये बहुलम्) इस सूत्र से नि को दीर्घ होयया धान्य से अग्न्यन् (निरा कन्या) वहाँ अगला अप् (१३८८) प्रत्यय हो जाता है ॥ १२७७ ॥

१२७८—उहि अयतियौतिपूदुवः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ४९ ॥

उद् उपपद होतो अिञ् यु पू दु इन धातुओं से घञ् प्रत्यय हो । अिञ्, उच्छायः । यु, उद्यावः । पूज्-पूङ् उत्पायः । दु, उहावः ॥ १२७८ ॥

१२७९—विभाषाडि वृद्धोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५० ॥

आङ् उपपद होतो व और झु धातु से विकल्प करने घञ् प्रत्यय हो । आरावः । आरवः । आप्तावः । आप्तावः ॥ १२७९ ॥

१२८०—अवे ग्रहो वर्षप्रतिबन्धे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५१ ॥

वर्षा का प्रतिबन्ध अभिधेय हो और अव उपपद हो तो ग्रह धातु से विकल्प कर के घञ् प्रत्यय हो । अपने समय में हो रही जो वर्षा है उस का किसी कारण से जो अभाव होना उस को वर्षप्रतिबन्ध कहते हैं । अवग्राहो देवस्य । अवग्रह देवस्य । वर्ष प्रतिबन्ध ग्रहण से यहाँ न हुआ । अवग्रहः पदस्य ॥ १२८० ॥

१२८१—प्रे वणिजाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५२ ॥

वणिज्, संबंधी प्रत्ययार्थ होतो प्रपूर्वक ग्रहधातु से विकल्प कर के घञ् प्रत्यय हो । तुलाग्रग्रहेण चरति । तुलाग्रग्रहेण वा चरति । यहाँ वणिक्संबंधी तुल सूत्र का ग्रहण है अर्थात् तुला (तखरी-तक आदि) जिस से ग्रहण करी जाय उस सूत्र के साथ चलता है । वणिग्रग्रहण से यहाँ न हुआ प्रग्रही धनस्य ॥ १२८१ ॥

१२८२—रप्रग्रौ च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५३ ॥

रश्मि अभिधेय हो और प्रग्रब् उपपद होतो ग्रहधातु से विभाषा घञ् प्रत्यय हो । प्रग्रहः । प्रग्राहः । रघ में जुड़े चुये घोड़ों की बागी को कहते हैं ॥ १२८२ ॥

१३८३—हृत्तोतेराच्छादने ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५४ ॥

प्र उपपद होता हृत् धातु से आच्छादन अर्थ में घञ् प्रत्यय हो । प्रवारः । प्रवरः । आच्छादनग्रहण से यहां नहुआ । प्रवरा (१३८८) गौः ॥ १३८३ ॥

१३८४—परौ भवोऽवज्ञाने ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५५ ॥

परि उपपद होता अवज्ञान (तिरस्कार) अर्थ में भू धातु से घञ् प्रत्यय हो । परिज्ञावः । परीभावः (उपसर्गस्य घञ्प्रत्ययेऽवज्ञानम्) इस स दीर्घ । परिभवः । अवज्ञान से अन्यत्र परितः सर्वतो भवनं परिभवः । यहाँ अप् हो जाता है ॥ १३८४ ॥

१३८५—एरच् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५६ ॥

इवर्त्तान्त धातु से अच् प्रत्यय हो । चिच् चयः । जि, जयः । चि, चयः । भाव और कर्त्ताभिन्न कारक का अधिकार है इस लिये इस प्रकरण के उक्त अनुक्त सब प्रत्यय भाव वा कर्त्ताभिन्न कारकों में प्रायः होते हैं ॥ १३८५ ॥

१३८६—वा०—भयादीनामिति वक्तव्यम् ॥

भयादिष्वर्त्तों की सिद्धि अच् प्रत्यय से कहना चाहिये । जिभी, भयम् । वृषु, वर्षम् । गपुंसकलिंग भाव में क्त प्रत्यय कहेंगे उस की निवृत्ति के लिये यह वार्त्तिक है परन्तु (वृषभो वर्षणात्) इस भाष्यवचन से वर्षण शब्द तो भाष में होता ही है ॥ १३८६ ॥

१३८७—वा०—कल्प्यादिभ्यः प्रतिषेधः ॥

कल्पि आदि धातुओं से अच् प्रत्यय का प्रतिषेध कहना चाहिये [कल्पि] यह णिजन्त [कृप्] सामर्थ्य है (कृप् + णिच् + घञ् + सु =) कल्पः । अर्थः । मन्त्रः । ये भी णिजन्तों से हैं । णिजन्त सब इवर्त्तान्त हो जाते हैं इस लिये कल्पि आदि से अच् * प्राप्त था उस के प्रतिषेध में घञ् हो जाता है ॥ १३८७ ॥

१३८८—वा०—जवसवौ छन्दसि वक्तव्यौ ॥

वेदविषय में जव, सव ये अच् प्रत्ययान्त कहने चाहिये [जु] सौत्र धातु है उस से (जु + अच् + सु =) जयः । होता है । जवोरस्तु से जवः । [पु] वा [ष] धातु से अच् हो कर। सवः । होता है । अयं से पञ्चीदनः सवः । यह अच् विधान अन्तोदात्त (सौदर ३४) स्वर के लिये है क्योंकि (जवः, सवः) प्रयोग अप् से भी सिद्ध थे ॥ १३८८ ॥

* किन्हीं नवीनपद्या वाणी का यह भी सिद्धान्त है कि (एरच्) यह अण्वर्त्तों से होता है अण्वर्त्तों से नहीं होता । सो उन का भाष्यविरुद्ध कथन है ।

१३८६—कृद्गौरप् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५७ ॥

कृत्कारान्त और उवर्णान्त धातुओं से अप् प्रत्यय हो । कृ, करः । गृ, शरः । बृ, यवः । लृ, लवः । पू, पवः (कृदु०) यहाँ कृ और उकार का अलग २ उच्चारण होने के लिये कृकार के साथ निर्देश है किन्तु तपर करण नहीं है ॥ १३८६ ॥

१३८७—ग्रहवृद्धनिश्चिगसश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५८ ॥

ग्रह, वृ, वृ, निश्चि, इम से अप् प्रत्यय हो । ग्रह घञ् और अच् का अपवाद है । ग्रह, ग्रहः । वृ, वरः । वृ, दरः । निस् + चि, निश्चयः । गमृ, गमः ॥ १३८७ ॥

१३८८—वा०—वशिरण्योश्चोपसंख्यानम् ॥

अप् प्रत्यय के विधान में वश् और रण धातु की भी गणना करना चाहिये वजनं वशः । सवशं सैन्धवम् । रणन्त्यस्मिन्निति, रणः । धनंजयं रणे रणे ॥ १३८८ ॥

१३८९—वा०—घञर्थे कविधानं स्यान्नापाव्यधिह्नियुध्यर्थम् ॥

स्या, स्ना, पा, व्यध, हन, युध आदि धातुओं के लिये घञर्थ (भाव, कर्त्ता-भिन्न कारक) में क प्रत्यय का विधान करना चाहिये । प्रतिष्ठन्तेस्मिन् धान्यानीति, प्रत्यः । प्रत्ये हि भवतः शृंगे । प्रस्नान्ति अस्मिन्निति प्रस्नः । प्रपिवन्त्यस्यामिति, प्रपा । आविध्यन्ति तेनाविधः । विघ्नन्ति तस्मिन्मनांसि, विघ्नः । आयुध्यन्ते तेनायुधम् ॥ १३८९ ॥

१३९०—वा०—द्विवचनप्रकरणे कजादीनां क उपसंख्यानम् ॥

क प्रत्यय के परे द्विवचनप्रकरण में कज् आदि धातुओं की गणना करना चाहिये । अर्थात् क प्रत्ययकी कजादिकों को हित्व हो । यह वार्त्तिक ॥ अ० ॥ १ । १२ । सूत्र के व्याख्यान में पड़ा है (कज् + क + सु =) चक्रम् (क्लिद् + क + सु =) चिल्लिदम् [क्लृ] ह्रस्वदीप्त्योः (क्लसु + क + सु =) चक्लसः ॥ १३९० ॥

१३९१—उपसर्गोऽदः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ५९ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो अद् धातु से अप् प्रत्यय हो (प्र + अद् + अप् + सु =) इस अवस्था में ॥ १३९१ ॥

१३९२—घञपोश्च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३८ ॥

घञ् और अप् प्रत्यय परे हो तो अद् धातु की घस्त्व आदेश हो । घस्त्व आदेश होकर । प्रघसः । जहाँ उपसर्ग पूर्व न है वहाँ भी (अद् + घञ् + सु =) घासः । घञ् के परे घस्त्व आदेश हो जाता है ॥ १३९२ ॥

१३६६—नौ ण च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६० ॥

नि उपपद हो तो अद धातु से ण और अप् प्रत्यय हो (नि+अद+ण+सु=) न्यादः (नि+अद+अप्+सु=) निघसः ॥ १३६६ ॥

१३६७—व्यधजपारुपसर्ग ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६१ ॥

उपसर्गभिन्न जा व्यध और जप धातु उन से अप् प्रत्यय हो । व्यधः । जपः । अनुपसर्गग्रहण से वधा न हुआ । आध्याधः । आजापः । यहाँ घञ् प्रत्यय (१३३७) हो जाता है ॥ १३६७ ॥

१३६८—स्वनहसोर्वा ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६२ ॥

उपसर्ग उपपद न होती स्वन आर हस धातु से विकल्प कर के अप् प्रत्यय हो । स्वनः । खानः । हसः । हासः । विकल्प पक्ष में घञ् हो जाता है । अनुपसर्ग ग्रहण से यहाँ अप् नहीं होता । प्रखानः । प्रहासः ॥ १३६८ ॥

१३६९—यमः समुपनिविषु च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६३ ॥

सम्, उप, नि, वि उपसर्ग उपपद हो वा नहो तो यम धातु से विकल्प कर के अप् प्रत्यय हो । संयमः । संवामः । उपयमः । उपयामः । नियमः । नियामः । वियमः । वियामः । यमः । यामः । विकल्प पक्ष में घञ् हो जाता है ॥ १३६९ ॥

१४००—नो गदनदपठस्वनः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६४ ॥

नि उपसर्ग उपपद होतो गद, मद, पठ, स्वन इन धातुओं से विकल्प कर के अप् प्रत्यय हो । निगदः । निगादः । निनदः । निनादः । निपठः । निपाठः । निस्वनः । निस्वानः ॥ १४०० ॥

१४०१—क्षणो वीणायां च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६५ ॥

नि उपसर्ग उपपद हो वा न होतो क्षण धातु से तथा वीणाअर्थविषयकाञ्चोक्षण धातु उस से अप् प्रत्यय विकल्प कर के हो । और भी उपसर्गों के ग्रहण के लिये वीणा अर्थविषयक से विधान है । क्षण, निक्षणः । निक्षानः । क्षणः । क्षाणः । वीणा अर्थ में प्रकाशः । प्रकाशः । इन सब से अन्यत्र । अतिक्रान्तो वर्धते ॥ १४०१ ॥

१४०२—नित्यं अणः परिमाणे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६६ ॥

परिमाण गत्यर्थान हो तो पण धातु से नित्य अप् प्रत्यय हो [पण] व्यवहार से सुतीक्ष्ण मूलकपणः । शाकपणः । वैचले आदि के लिये परिमाण से मूरी वा शाक आदि की जो गड़िया बांधना उस को कहते हैं । परिमाण से अग्यत्र पाणः ॥ १४०२ ॥

१४०३—अदोऽपसर्गः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६७ ॥

उपसर्ग उपपद न होतो मद् धातु से अप् प्रत्यय हो । विद्यामदः । धनमदः । कुलमदः । अनुपसर्गग्रहण से यहाँ न हुआ । उभ्यादः । प्रसादः ॥ १४०३ ॥

१४०४—प्रमदसंमदौ हर्षे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६८ ॥

प्रमद, संमद वे दोनों हर्ष अर्ष में निपातन हैं । [मदी] हर्षे प्रमदः । संमदः । हर्षग्रहण से यहाँ न हुआ । प्रमादः । संमादः ॥ १४०४ ॥

१४०५—समुदोरजः पशुषु ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६९ ॥

सम् और छद् उपसर्ग उपपद ही तो पशुविषय में वर्तमान अज धातु से अप् प्रत्ययही [अज] गतिघेषणयोः सम् पूर्वक अजधातु समुदाय अर्थ की कहता है । पशूनां समजः । पशुओं का समुदाय । पशूनां मुदजः । पशुओं को प्रेरणा देना अर्थात् हाँकना आदि । पशुग्रहण से यहाँ नहीं होता । ब्राह्मणानां समाजः । आर्यसमाजः । त्रिविद्यासमुदाजः ॥ १४०५ ॥

१४०६—अक्षेपुग्लहः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७० ॥

अक्षविषय में अक्ष धातु से अप् प्रत्ययान्त ग्लहयह निपातन है । अक्षस्यग्लहः । पाशाक्षी का ग्रहण करना । अक्ष धातु से (१२८०) से अप् प्रत्यय सिद्ध है । तथापि उस के एक को लकारादेश करने के लिये यह निपातन किया है । अक्ष ग्रहण से यहाँ न हुआ । क्लेशग्रहः ॥ १४०६ ॥

१४०७—प्रजनने सस्रैः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७१ ॥

प्रजन (प्रजननगर्भधारण) विषय में स्र धातु से अप् प्रत्यय हो । गवामुपसरः प्रजननगर्भधारण कराने के लिये गौ के समीप बैल का जाना अवसरः । प्रसरः । इत्यादितो (१४०५) स्र से होते ॥ १४०७ ॥

१४०८—ह्यः संप्रसारणं च न्यभ्युपविषु ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७२ ॥

नि, अभि उप, विभि उपपद होती छेप् धातु से अप् प्रत्यय और उस को संप्रसारणं हा । (नि + छेप् + अप् + सु =) निहवः । (अभि + छेप् + अप् + सु =) अभिहवः (उप + छेप् + अप् + सु =) उपहवः (वि + छेप् + अप् + सु =) विहवः अन्यत्र (प्र + छेप् + वज् + सु =) प्रव्रायः । घञ् होजाता है ॥ १४०८ ॥

१४०९—आह्वि युद्धे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७३ ॥

युद्ध अभिधेय होतो आह् पूर्वक छेप् धातु से अप् प्रत्यय और उस को संप्रसारण हो । आह्वयन्ते संह्या भटा अस्मिन्निति, आहवः । युद्ध से अन्यत्र आह्वयः ॥ १४०९ ॥

१४१०—निपानमाहावः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७४ ॥

जो निपान अभिधेय होतो आहाव यह निपातन है । निपियन्त्यस्मिन् जलमिति, निपानम् । जल धरन का स्थान । यहाँ आङ्पूर्वकस्त्रेण धातु से अप् प्रत्यय तथा उस को संप्रसारण और वृद्धि होगी निपातन है ॥ १४१० ॥

१४११—भावेऽनुपसर्गस्य ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७५ ॥

भाव वाच्य हो तो उपसर्गरहित स्त्रेण धातु से अप् प्रत्यय और उस को संप्रसारण हो । ज्ञानं एषः । एषे हवे शूरमिन्द्रम् । यहाँ भावग्रहण से प्रकृत कर्त्ता भिन्न कारक को अनुवृत्ति नहीं होती है ॥ १४११ ॥

१४१२—हनश्च वधः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७६ ॥

उपसर्गरहित हन् धातु से भी अप् प्रत्यय और उस प्रत्यय के साथ हन् को वध आदेश भाष में हो । यहाँ अकार का संबन्ध आदेश के साथ नहीं है किन्तु आदेश तो अप् से द्वितीय विधान है सो हो ही जायगा इस से चकारग्रहण से प्रकरण के अनुसार दूसरा षञ् प्रत्यय भी होता है (हन् + अप् + सु =) वधः । वध आदेश अन्तादात्त है इस से अनदात्त (सौव० २४) अप् प्रत्यय के साथ एकादेश (संधि १२८) भी उदात्त ही (सौव० ८५) होता है (हन् + षञ् + सु =) वातः । वधो दस्यूनाम् । वातः शत्रूनाम् ॥ १४१२ ॥

१४१३—मूर्त्तौ घनः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७७ ॥

मूर्त्ति (कठिनपन) वाच्य हो तो हन् धातु से अप् प्रत्यय और हन् को घन आदेश हो । अन्नघनः । बहूँ को सघनता । दधिघनः । दधि की कठिनाई अर्थात् उस का अत्यन्त जमना । घन शब्द णव मूर्त्ति (कठिनाई) मान में होता है तो । घनं सैन्धवम् । घनं दधि । इत्यादि प्रयोग कैसे हों गे क्यों कि । घन यह सैन्धव वा दधि का गुण हुआ । इस लिये गुण से गुणों की विवक्षा (घन शब्द से तद्वर्जनिष्ठ दधि आदि का कथन) हो तो उक्त प्रयोग हों गे ॥ १४१३ ॥

१४१४—अन्तर्घ्नो देशे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७८ ॥

देश अभिधेय हो तो अन्तर् पूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय और उस को घन आदेश हो । अन्तर्घ्नः । यह बाहीकनामकदेशों में किसी देश का नाम है । इस शब्द की पाठान्तर से भी मानते हैं । अन्तर्घ्नः । देश से अन्यत्र । अन्तर्घातः ॥ १४१४ ॥

१४१५—अगारैकदेशे प्रवणः प्रघाणश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ७९ ॥

अगार (गृह) के एक देश में प्रवण, प्रघाण ये निपातन हैं । गृह के द्वार देश में दा कोठे होने चाहिये । एक भीतर दूसरा बाहर उन में से जो बाहर का

कोठा है उस अर्थ में ये निपातन हैं । प्रविशद्भिर्जनैः प्रकर्षेण हन्यत इति प्रघणः । प्रघाणः । यहाँ कर्म में अप् तथा घञ् प्रत्यय और हन् को घन आदेश निपातन है । अगारैकदेश से अन्यत्र । प्रघातः ॥ १४१५ ॥

१४१६—उद्ध्वनोत्थाधानम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८० ॥

अत्थाधान (जपर स्थापन करना) गम्यमान हो तो उद्ध्वन यह निपातन है । जर्ध्वं हन्यतेऽपिन् लाष्ठानीति, उद्ध्वनः । यह जिस काठ पर धर के दूसरे काठ को गढ़ते हैं उस का नाम है । यहाँ उद्धपूर्वक हन् धातु से अप् और उस को घन आदेश निपातन है ॥ १४१६ ॥

१४१७—अपघनोऽङ्गम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८१ ॥

अङ्ग अभिधेय हो तो अपघन यह निपातन है । अङ्ग शरीर के अवयव मात्र का नाम है परन्तु यहाँ हाथ पैर का ग्रहण है । अपहृत्यनेनेति, अपघनः । पाणिः पादो वा । यहाँ अपपूर्वक हन् से कारण में अप प्रत्यय हन् को घन आदेश निपातन है । अन्यत्र । अपघातः ॥ १४१७ ॥

१४१८—करणोऽयो विद्रुषु ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८२ ॥

अयम्, वि, द्रु उपपद होते हन् धातु से कारण में अप् प्रत्यय और हन् को घन आदेश हो । अयः (लोहः) हन्यतेनेनेति अयोघनः । विघनः । द्रुघनः । इस शब्द को पाठास्तर से भी मानते हैं । द्रुघणः (८७०) से शत्व होजाता है ॥ १४१८ ॥

१४१९—स्तम्बे क च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८३ ॥

स्तम्ब शब्द उपपद होता हन् धातु से कारण में क और अप् प्रत्यय और अप् के संनियोग में हन् को घन आदेश हो । क, स्तम्बो हन्यतेऽनेन, स्तम्बघ्नः । अप्, स्तम्बघनः । कारण से अन्यत्र । स्तम्बस्य हननं, स्तम्बघातः ॥ १४१९ ॥

१४२०—परौ घः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ८४ ॥

परि उपपद होता हन् धातु से कारण में अप् प्रत्यय और हन् को घ आदेश हो । परितः सर्वतो हन्यतेऽनेनेति परिघः ॥ १४२० ॥

१४२१—परिश्च वाङ्कयोः ॥ अ० ॥ ८ । २ । २२ ॥

घ और अङ्ग शब्द परे होते परि के रेफ को विकल्प कर के लकारादेश हो । परिघः । पलिघः । पर्यङ्कः । पल्यङ्कः । यहाँ (पारिभाषि० १) परिभाषा के अनुसार (घ) इस स्वरूप का ग्रहण है घसंज्ञा का ग्रहण नहीं है ॥ १४२१ ॥

१४२२—उपपन्न आश्रये ॥ अ० ॥ ३।३। ८५ ॥

आश्रय अर्थ में उपपन्न यह निपातन है। आश्रय शब्द से यहाँ सामीप्य का ग्रहण है। पर्वतेनोपहन्यते तत्सामीप्येन गम्यत इति, पर्वतोपपन्नः। ग्रामीपन्नः। पर्वत, के निकट २ जाना। यहाँ उपपूर्वक हन् धातु से अप् प्रत्यय और हन् की उपधा का लोप निपातन और कुत्व (३०४) सूत्र से होता है ॥ १४२२ ॥

१४२३—संवोद्धौ गणप्रशंसयोः ॥ अ० ॥ ३।३। ८६ ॥

गण (समूह) और प्रशंसा अर्थ में यथासंख्य कर के संघ, उद्ध ये निपातन हैं। संहननं संघः। गवां संघः। यहाँ सम्पूर्वक हन् से भाव में अप् प्रत्यय और टिलोप निपातन है। उत्कृष्टो हन्यते ज्ञायत इत्युद्धौ मनुष्यः। यहाँ गतित्व से हन् धातु को ज्ञानार्थ मान कर उस से कर्म में अप् और पूर्वषत् टिलोप हो जाता है ॥ १४२३ ॥

१४२४—निघो निमित्तम् ॥ अ० ॥ ३।३। ८७ ॥

निमित्त अभिधेय हो ती निघ यह निपातन हो। सब प्रकार से जो मित (परिपूर्णता की प्राप्त) हो वह निमित्त कहाता है। निर्विशेषेण हन्यन्ते ज्ञायन्त इति निघा वृत्ताः। निघाः शालयः। निघाः यवाः। निमित्त से अन्यत्र निघातः ॥ १४२४ ॥

१४२५—डुतः क्लिः ॥ अ० ॥ ३।३। ८८ ॥

डु, जिस का इत् गया हो उस धातु से भावादिकों में क्लि प्रत्यय हो। क्लिर्मप् नित्यम्। इस सूत्र में नित्यग्रहण से क्लि प्रत्ययविषयक विग्रह मप् से अलग नहीं होता जैसे। डुपचप्, पचनेन निर्घृत्तं पक्लिमम्। पचने से सिद्ध हो गया। [डुकृज्] करणे कृत्रिमम् [डुवप्] दीज संताने। उपचिमम् ॥ १४२५ ॥

१४२६—टुतोऽयुच् ॥ अ० ॥ ३।३। ८९ ॥

टु जिस का इत् गया हो उस धातु से भावादिकों में अयुच् प्रत्यय हो [टुवेष्ट] कंपन। वेपनं वेपयुः। टुओश्चि, छययुः ॥ १४२६ ॥

१४२७—यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ॥ अ० ॥ ३।३। ९० ॥

भाव और अकर्त्ता कारक में यज आदि धातुओं से नङ् प्रत्यय हो। यज, यजनं यज्ञः। टुयाचृ, याचनं याच्ना [यती] प्रयत्ने। यत्नः [विच्छ] गती। विग्रहः। यहाँ छ की श् आदेश होजाता और नङ् के क्त्वात्करण से गुण नहीं होता। प्रच्छ, प्रश्नः। यहाँ संप्रसारण (२८६) प्राप्त है सो (७४८) सूत्र में प्रश्न शब्द के पढ़ने से नहीं होता ॥ १४२७ ॥

१४२८—स्वप्नो नन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६१ ॥

स्वप् धातु से नन् प्रत्यय हो [जिव्यप्] स्वपनं स्वप्नः ॥ १४२८ ॥

१४२९—उपसर्गो षोः क्तिः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६२ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो पुसंज्ञकी से कि प्रत्यय हो । प्रधानं, प्रदिः । प्रधानं, प्रधिः । विधानं विधिः । संधानं संधिः । अन्तर्धानं, अन्तर्धिः । आधिः । व्याधिः । १४२९ ॥

१४३०—कर्मण्यधिकरणे च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६३ ॥

कर्म उपपद हो तो पुसंज्ञक धातुओं से अधिकरण में कि प्रत्यय हो । ज्ञानि धीयन्तेऽस्मिन्निति, ज्ञाधिः । वारिधिः । तीयधिः । पयोधिः । यशासि धीयन्ते-स्मिन्निति यशोधिः । इषुधिः ॥ १४३० ॥

१४३१—स्त्रियां क्तिन् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६४ ॥

स्त्रीलिङ्गविषयक भावादिकों में धातु से क्तिन् प्रत्यय हो । घञ्, अच्, अप् इन सब का अपवाद है । कुञ्ज, करणं कृतिः । विज्, वितिः ॥ १४३१ ॥

१४३२—या०—क्तिस्त्रावादिभ्यः ॥

आमृ आदि धातुओं से भावादिकों में क्तिन् प्रत्यय हो । आप्तिः । राप्तिः । दीप्तिः यहाँ अङ् १४४८ प्रत्यय प्राप्त था उस के बाधने के लिये क्तिन् का विधान है ॥ १४३२ ॥

१४३३—या०—स्तूयञौषितुभ्यः क्त्वरणे ॥

स्तू, यज, इष टुञ् इन धातुओं से करण में क्तिन् प्रत्यय कहना चाहिये । स्तूयतेऽनयेति, स्तूतिः । इषयतेऽनयेति, इष्टिः । स्तूयतेऽनयेति, इष्टिः । स्तूयतेऽनयेति, स्तूतिः ॥ १४३३ ॥

१४३४—या०—स्त्रास्त्राज्याहाभ्यो निः ॥

ज्ञो, स्त्री, ज्या, ओहाक्, ओहाङ् इन धातुओं से नि प्रत्यय कहना चाहिये । ज्ञानिः । स्त्रानिः । उद्यानिः । ज्ञानिः ॥ १४३४ ॥

१४३५—या०—कृकारत्वादिभ्यः क्तिन् निष्ठावत् ॥

कृकारान्त और [लूज्] छेदने आदि गणपठित धातुओं से क्तिन् प्रत्यय को निष्ठा के तुल्य कहना चाहिये । कृ, कोणिः । कृ, गोर्णिः । लूज्, लूनिः । धूनिः । यहाँ क्तिन् के निष्ठावद्भाव से (व्यादि०) सूष से निष्ठा के तुल्य क्तिन् के तकार को नकारादेश हो जाता है ॥ १४३५ ॥

१४३६—व्यागामापन्नो भावे ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६५ ॥

व्या आदि धातुओं से लिंगलोविषयक भाव में क्तिन् प्रत्यय हो । यह अङ् का अपवाद है । ष्टा, प्रस्थितिः । उपस्थितिः । संस्थितिः । [गै] ग्रह् । संगीतिः । उद्गीतिः । पा, प्रपीतिः । दुपचप्, पक्तिः ॥ १४३६ ॥

१४३७—मन्त्रे वृषे वपचसगविदभूवीरा उदात्तः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६६ ॥

मन्त्रविषय में वृष आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्ग भाव में क्तिन् प्रत्यय हो और वह उदात्त भी हो । वृष, वृष्टिः । इषु, इष्टिः । दुपचप्, पक्तिः । जन, मतिः । विह, विप्तिः । भू, भूतिः । वी, वीतिः । रा, रातिः । यद्यपि धातुभाव से क्तिन् विहित भी है तथापि उदात्त के लिये यह विधान है ॥ १४३७ ॥

१४३८—ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकौर्त्तयश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६७ ॥

ऊति आदि गृह्य क्तिन् प्रत्ययान्त अस्तादात्त निपातन हैं । ऊतिः । यहाँ अव धातु से क्तिन् और अव को जठ् (ज्वर०) आदेश० । यूतिः । जूतिः । यु और जु से क्तिन् और उन को दीर्घासातिः । यहाँ [पो] प्रत्ययान्त के को क्तिन् के परे (यति०) प्राप्त जो इकारादेश उस का अभाव निपातन से हो जाता है । वा क्तिन् के परे [वन] धातु को आकारादेश (जनसग०) हो जाता है । हेतिः । यहाँ क्तिन् के परे हन् को हि आदेश वा [हि] गतौ वृद्धौ च । धातु को गुणादेश निपातन है । कौर्त्तिः । यहाँ [कृत] संशब्दने से क्तिन् प्रत्यय होता है ॥ १४३८ ॥

१४३९—वजयजोभावे क्यप् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ६८ ॥

वज और यज धातु से स्त्रीलिङ्ग भाव में क्यप् प्रत्यय हो सो उदात्त हो । वज, वज्या । यज, इत्या । (२८३) सप्रसारण० ॥ १४३९ ॥

१४४०—संज्ञायां समञ्जननिप्रदनिप्रतजनविदजुञ्शीङ्भुजिष्ठाः ॥

अ० ॥ ३ । ३ । ६९ ॥

संज्ञाविषय में सम्पूर्वेक जन आदि धातुओं से स्त्रीलिङ्गविषयक भाव और कर्त्तृप्रजित कारक में क्यप् प्रत्यय हो । समञ्जन, समञ्जति यस्यां सा (सम् + अज + क्यप् + स =) इस अवस्था में (१५५) सूत्र से अज को वीभाव प्राप्त हुआ उस के निषेध के लिये अगला वार्तिक है ॥ १४४० ॥

१४४१—वा०—वजयोः प्रतिषेधे क्यपुपसंख्यानम् ॥

वज् और अप् प्रत्यय के परे अज धातु को वी भाव के प्रतिषेध में क्यप् प्रत्यय का भी उक्तसंख्यान करना चाहिये । इस से वी भाव का प्रतिषेध हो गया समन्वा सभा निषद, निषोदन्त्वस्यांसा, निषद्या । दूकान । निपत, निपतन्वस्यां,

पत्या । खंदकीलीभूमि । मन, मन्यन्तेऽनयेति, मन्त्या, । गलपार्श्वशिरा । विद,
दन्त्यनयेति विद्या । पुज्, सवनं, सुत्या । अभिषवः । शौङ् श्रुतेऽस्यामिति श्रुत्या ।
भरणं, भरन्त्यनया वा भृत्या । इण्, ईयते गम्यतेऽनया सा, इत्या । शिविका ।
लकी ॥ १४४१ ॥

१४४२—कृज् श च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०० ॥

कृज् धातु से स्त्रीलिङ्गविषयक भावादिकों में श औरक्यप् प्रत्यय हो । क्रिया
(३८) कृत्या ॥ १४४२ ॥

१४४३—वा०—कृज् श चेति वा वचनम् ॥

(कृज् श च) यहाँ विकल्प भी ग्रहण करना चाहिये । जिस से क्तिन् प्रत्यय
हो । कृतिः ॥ १४४३ ॥

१४४४—इच्छा ॥ अ० ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०१ ॥

इष् धातु से भाष में श प्रत्यय और यक् (७१८) का अभाव निपातन है ।
(इष् + श + सु =) इच्छा (२७३) ॥ १४४४ ॥

१४४५—अत्यल्पमिदमुच्यते इच्छेति-वा०—इच्छापरिचर्यापरिस-
र्यामृगयाऽष्टाट्यानामुपसंख्यानम् ॥

इच्छा इतना निपातन अत्यन्तान्यून है इससे इच्छा, परिचर्या, परिसर्या, मृगया,
प्रत्या, इन शब्दों का उपसंख्यान करना चाहिये । परिचर्यादिकों में श प्रत्यय
र.उस के परे यक् (७१८) भी होता है । परिचर, परिचरणं, परिचर्या ।
कार । परिसृ, परिसरणं परिसर्या । रिंगना । यहाँ गुण भी निपातन से है [मृग]
विषये । चुरादि अदन्त है (मृग + णिच् + यक् + श + सु =) मृगया । यहाँ
त के परे (१७०) णिलोप हो जाता है [अट] गतौ (अट + यक् + श +
=) अट्या । यहाँ (व्य) भाग को द्वित्वादेश, तथा हलादिःशेष होकर दीर्घ
जाता है ॥ १४४५ ॥

१४४६—वा०—जागत्तरकारो वा ॥

जागृ धातु से अ प्रत्यय विकल्प कर के हो । जागरा (३६२) जागर्या ॥ १४४६ ॥

१४४७—अ प्रत्ययात् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०२ ॥

प्रत्ययान्त धातु से स्त्रीविषयक भावादिकों में अ प्रत्यय हो (कृज् + सन् +
+ सु =) चिकौर्षा । पिपासा । कण्डूया । इत्यादि ॥ १४४७ ॥

१४४८—गुरोश्च हलः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०३ ॥

गुरुमान् जो हलन्त धातु उस से स्त्रीलिंग में अ प्रत्यय हो । ईहा । ऊहा । गुरुग्रहण से यहाँ न हुआ । भज, भक्तिः । शक्तृ शक्तिः । हल् ग्रहण से यहाँ न हुआ । चितिः । नीतिः । प्रीतिः ॥ १४४८ ॥

१४४९—षिद्धभिदादिभ्योङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०४ ॥

ष जिन का इत् संज्ञक हो उन से और भिद् आदि धातुओं से स्त्रीलिंग में अङ् प्रत्यय हो । नपूष, नपा । समूष, जमा [भिदिर्] विदारणे भेदनं भिदा । भिदा विदारण इति वक्तव्यम् । विदारण अर्थ में (भिदा) यह प्रयोग हो । अन्यत्र । भित्तिः । होता है । छिदिर्, छिदा । छिदा ईधीकरण इति वक्तव्यम् । दो भाग करने अर्थ में (छिदा) यह हो । अन्यत्र छित्तिः । होता है । (आङ् + ऋ + अङ् + सु =) आरा । यहाँ (सन्धि० ११८) सूत्र से द्विवि० । आरा शस्त्रासिति वक्तव्यम् । शस्त्री (जो भाषा में आरा प्रसिद्ध है उस) अर्थ में (आरा) यह प्रयोग हो । अन्यत्र । आर्त्तिः । होता है । धृज्, ध्रियते धार्यते वा जलमनयेति, धारा । धारा प्रपात इति वक्तव्यम् । अत्रन्त गिरने (जो भाषा में धारा प्रसिद्ध है उस) में (धारा) यह प्रयोग हो । अन्यत्र । धृतिः । होता है । गुहू, गुहा । गुहा गिर्योपध्वोरिति वक्तव्यम् । गिरि अर्थात् (पर्वत) के एकादेश और आवधि अर्थ में (गुहा) यह प्रयोग हो । अन्यत्र । तिग् प्रत्ययान्त । गूढि । होता है ॥ १४४९ ॥

१४५०—चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०५ ॥

चिन्ति आदि धातुओं से स्त्रीलिंग में अङ् प्रत्यय हो । यह युच् का अपवाद है [चिति] स्मृत्याम् । चिन्ता [पूज] पूजायाम् । पूजा [कथ] वाक्यप्रवक्षे । कथा [कुम्बि] आच्छादने । कुम्बा [चर्च] अध्ययने । चर्चा ॥ १४५० ॥

१४५१—आतश्चोपसर्ग ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०६ ॥

उपसर्ग उपपद हो तो आकारान्त धातु से स्त्रीलिंग में युच् प्रत्यय हो । उपधा अवस्था । अत् और अन्तर् इन की उपसर्गवृत्ति है । अडा । अन्तर्डा ॥ १४५१ ॥

१४५२—ण्यासअन्यो युच् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०७ ॥

णिजन्त, आस, अन्य इन से स्त्रीलिंग में युच् प्रत्यय हो । (कृज् + णिच् + युच् + सु =) कारणा । हारणा । आस, आसना । [अन्य] विमोचनप्रतिहर्षयोः । क्रादिः । अन्य, अन्यना ॥ १४५२ ॥

१४५३—वा०—युच्प्रकरणे षट्ठिदन्तिविहित्यः उपसंख्यानम् ॥

युच्प्रकरण में षट्ठि, वन्ति, विद इन धातुओं से भी युच् का उपसंख्यान करना चाहिये [षट्ठ] चलन सुदादिः । षट्ठना । वन्ति, वन्दना । विद, वेदना ॥ १४५३ ॥

१४५४—वा०—इषिनिच्छार्थस्य ॥

युच् के प्रकरण में इच्छा अर्थ से रहित जो षट् धातु उस को भी उपसंख्यान करना चाहिये । अन्विष्यत इति अन्वे पणा ॥ १४५४ ॥

१४५५—वा०—परीषा ॥

युच्प्रकरण में परि से परे अनिच्छार्थक इष् धातु का विकल्प करके उपसंख्यान करना चाहिये । पर्येषणा । परीष्टिः । अन्यां परीष्टिं चर । अन्यां पर्येषणां चर ॥ १४५५ ॥

१४५६—रोगाख्यायां खुल् बहुलम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०८ ॥

रोग की आख्या गम्यमान हो तो स्त्रीलिंग में धातु से बहुल करके खुल् प्रत्यय हो । [उच्छृदिर्] दीप्तिदेवनयोः । प्रच्छिंका [बह] प्रापणे प्रवाहिका [र्ष] अश्रयणे । विचर्षिका । बहुलग्रहण से कहीं नहीं भी होता । शिरोर्तिः ॥ १४५६ ॥

१४५७—वा०—धात्वर्थनिर्देशे खुल् ॥

धात्वर्थनिर्देश अर्थात् क्रिया के निर्देश में धातु से खुल् प्रत्यय कहना चाहिये [आस] उपवसने । आसिका । का नामासिका अन्येष्वीहमानेषु । औरों के काम करते हुए क्या बैठक । यहाँ उपवेशन क्रिया का कथन करना है । का नाम शायिका अन्येष्वधीयानेषु । औरों के पढ़ते हुए क्या सोना । तथा यहाँ भी शयनक्रिया का कथन है ॥ १४५७ ॥

१४५८—वा०—इक्षितौ धातुनिर्देशे ॥

धातुके लङ्नेमात्रमें इक् और शिप् प्रत्यय कहना चाहिये । पचेन्नूहि । पचत नूहि । (१४५६) इस के बहुल विषय से कहीं नहीं भी होता है जैसे । कजः शस । यद्यपि यह शिप् कर्त्ता में नहीं भी होता तथापि शित् करण से शित् के परे शप् आदि विकरण होते ही हैं जैसे । अक्षतरः । इत्यादि ॥ १४५८ ॥

१४५९—वा०—वर्णात्कारः ॥

वर्ण के निर्देश में वर्ण से कार प्रत्यय कहना चाहिये । अकारः । ककारः । मकारः । बहुलविषय से कहीं नहीं भी होता जैसे । अस्व ची । कहीं वर्णसमुदाय

से भी होता है। एवकारः। कित्विषयक प्रयोजनों के अभाव से कार प्रत्यय के ककार की इत् संज्ञा नहीं होती और कृत् अधिकार में विधान से इस कार प्रत्यय की कृत् संज्ञा होती है इस से। अकारः। आदि में कृदन्त खान कार प्रातिपदिका संज्ञा आदि कार्य होते हैं ॥ १४५६ ॥

१४६०-वा०-रादिफः ॥

र वर्ण के निर्देश में र से इफ प्रत्यय कहना चाहिये। रफः ॥ १४६० ॥

१४६१-वा०-मत्वर्थीच्छः ॥

मत्वर्थ शब्द से छ प्रत्यय कहना चाहिये। मत्वर्थीयः। यहाँ छ प्रत्यय के परे अ संज्ञा के बिना भी भाष्यकार के (मत्वर्थीयः) इस शब्द के पढ़ने से वा बहुल-भाव से छ के पूर्व अकार का लोप हो जाता है ॥ १४६१ ॥

१४६२-वा०-इणजादिभ्यः ॥

अज आदि धातुओं से इण प्रत्यय कहना चाहिये [अज] गतिशेषणयोः आजिः [अत] सातत्यगमने आतिः। अद्, आदिः ॥ १४६२ ॥

१४६३-वा०-इञ् वपादिभ्यः ॥

वप आदि धातुओं से इञ् प्रत्यय कहना चाहिये [वुवप] वीजसंताने। वाप्तिः। वासिः। वादिः ॥ १४६३ ॥

१४६४-वा०-इक् कृष्यादिभ्यः ॥

कृष आदि धातुओं से इक् प्रत्यय कहना चाहिये [कृष] विलेखने। कृषिः। [कृ] विलेपे किरिः [गृ] निगरणे [गृ] शब्दे वा गिरिः ॥ १४६४ ॥

१४६५-वा०-संपदादिभ्यः क्षिप् ॥

संपद आदि धातुओं से क्षिप् प्रत्यय कहना चाहिये (सम् + पद + क्षिप् + सु =) संपत्। विपत्। आपत्। प्रतीपत्। परिसीदन्ति जना अस्यां सा परिषत्। बहुलभाव से क्षिन् (१४३१) भी होता है। संपत्तिः। विपत्तिः। इत्यादि ॥ १४६५ ॥

१४६६-संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३। ३। ११६ ॥

स्त्रीलिंगविषयक संज्ञा में धातु से खुल् प्रत्यय हो [अञ्जो] आसर्हने उद्दालकपुत्रभञ्जिका [वह] प्रापणे। वारणपुत्रवाहिका ॥ १४६६ ॥

१४६७-विभाषाख्यानपरिप्रश्नयोरिञ् च ॥ अ० ॥ ३। ३। ११० ॥

परिप्रश्न (पूछना) आख्यान (कहना) अर्थात् उस का उत्तर देना गम्यमान होती स्त्रीलिंग में धातु से इञ् और खुल् विकल्प कर के हो। दूसरे पक्ष में यथा-

प्राप्त प्रत्यय होती है। प्रथम प्रश्न तदनंतर उसका उत्तर होता है परन्तु पक्षपात्तर होने से सूत्र में आख्यान शब्द का पूर्वनिपात है। त्वं का कारिमकार्षीः। त्वं का कारिणामकार्षीः। कां क्रियामकार्षीः। कां कृतिमकार्षीः। तूने कौन किया किई। अहं सर्वा कारिमकार्षम्। सर्वा कारिणामकार्षम्। सर्वा क्रियामकार्षम्। सर्वा कृतिमकार्षम्। मैंने सब क्रिया करलिई। इत्यादि ॥१४६७॥

१४६८—पर्यायार्हस्योत्पत्तिषु एवुच् ॥ अ० ॥ ३।३।१११ ॥

पर्याय (परिपाटीकर्म) अर्ह (योग्यता) ऋण (दूसरे का द्रव्य धारण करना) उत्पत्ति (जन्म) ये अर्थ गम्यमान ही तो स्त्रीलिंग में धातु से एवुच् प्रत्यय विकल्प कार के हो। पर्याय, तव शायिका। तुझारा सोना। मम शायिका। मेरा सोना। अर्ह, त्वमर्हसि दुग्धपायिकाम्। तू योग्य है दूध पीने को। ऋण, मम शायिका धारय। मेरी शायिकाजी तू लिये रह। उत्पत्ति, मम शायिकामुदपादि। मेरे लिये शायिकाजी बना। इसी प्रकार। ओदनभोजिका। अग्रगामिका। अग्रयासिका। इन्दुभक्षिका। आदि बहुत प्रयोग बन सकते हैं। द्वितीय पक्ष में। तव चिकीर्षा। मम चिकीर्षा। तव क्रिया। मम क्रिया। इत्यादि ॥१४६८॥

१४६९—आक्रोशे नञ्यनिः ॥ अ० ॥ ३।३।११२ ॥

आक्रोश (कोशना) गम्यमान हो ओर नञ् उपपद होता धातु से स्त्रीलिंग में अनि प्रत्यय हो। यह क्रिन् आदि का अपवाद है। अजीवनस्ति शठ भूयात्। आक्रोश से अन्यद। अजीवनमस्यरोगिनः। यहाँ ल्युट् हो जाता है। नञ्पक्ष से यहाँ न हुआ। ऋतिस्ति वषण भूयात्। इसी सूत्र तक (भाव, अकर्तरि, कारके) इन की अनुवृत्ति है ॥१४६९॥

१४७०—नपुंसके भावे क्तः ॥ अ० ॥ ३।३।११४ ॥

नपुंसकलिङ्गविषयक भाव में धातु से क्त प्रत्यय हो [हसे] हसने। हसितम्। [पह] पर्वणे। सहितम् ॥१४७०॥

१४७१—ल्युट् च ॥ अ० ॥ ३।३।११५ ॥

नपुंसकलिङ्ग भाव में धातु से ल्युट् प्रत्यय हो। कञ्, करणम्। पठ, पठनम्। शीङ्, शयनम् ॥१४७१॥

१४७२—कर्मणि च येन संस्थशात्कर्तुः शरीरसुखम् ॥

अ० ॥ ३।३।११६ ॥

स्वार्थ करने से जिस से कर्ता को शरीर का सुख हो ऐसा कर्म उपपद हो तो धातु से ल्युट् प्रत्यय हो यह। पूर्वसूत्र (१४७१) से सिद्धथापरन्तु उपपदसमास होने के

लिये विधान है। पयःपानं सुखम्। कर्मग्रहण से यहाँ न हुआ। तूखिकाया उत्थानं सुखम् चहांतूलीका शब्द अपादान है। संस्पर्शग्रहण से यहाँ न हुआ। अग्निजुखरुयो-पासनं सुखम्। कर्मग्रहण से यहाँ न हुआ। गुरोः स्त्रापनं सुखम्। यहाँ गुरु शब्द कर्म है। शरीरग्रहण से यहाँ न० पुत्रस्य परिष्वजनं सुखम्। यहाँ सुख मन्त्रसौ प्रीति है। सुख ग्रहण से यहाँ न हुआ। कण्टकानां महर्नं दुःखम् ॥ १४७२ ॥

१४७३—जा बी ॥ अ० ॥ २।४।५७ ॥

यु अर्थात् ल्युट्प्रत्यय हरे हो तो अज धातु को बी आदेश विकल्प करके हो (प्र + अज + ल्युट् + लु =) प्रवपणम्। प्राजमन् ॥ १४७३ ॥

१४७४—करणाधिकरणयोश्च ॥ अ० ॥ ३।३।११७ ॥

करण और अधिकरण में धातु से ल्युट्प्रत्यय हो। ओवृद्धू, प्रहवतीश्यानि येन च प्रथमप्रह्वनः कुठारः। दुह, गां दोग्रिध यस्यां सा गोदोहनी। खाली ॥ १४७४ ॥

१४७५—पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ॥ अ० ॥ ३।३।११८ ॥

संज्ञा अभिधेय हो तो पुलिङ्ग विषयक करण और अधिकरण में धातु से प्राय करके घप्रत्यय हो [घमो] रोगे। अमन्ति रुग्णन्यनेन, अमः। रोगः। आक्षुर्वन्त्यस्त्रिभित्ति, आक्षरः। आलीयन्ते स्त्राप्यन्ते पदार्था अस्त्रिभित्ति, आलयः। पुंसिग्रहण से यहाँ नहीं होता। प्रसाधनम्। संज्ञाग्रहण से यहाँ नहीं होता। प्रहरणा दण्डः ॥ १४७५ ॥

१४७६—छादेर्वेऽद्युपसर्गस्य ॥ अ० ॥ ६।४।८६ ॥

दो उपसर्गों से रक्षित जो छादि अङ्ग उस को उपधा को ह्रस्व आदेश हो। दन्ता च्छाद्यन्तेऽनेनेति दन्तच्छदः। उरच्छदः। घटः। अद्व्युपसर्गग्रहण से यहाँ उपधा को ह्रस्व नहीं होता। समपच्छादः। अदिप्रभृत्युपसर्गस्येति वक्तव्यम्। महाभाष्य दो आदि उपसर्गबुद्धको निषेध करना चाहिये समुपातिच्छादः ॥ १४७६ ॥

१४७७—गोचरसंचरवहव्रजव्यजापणनिगमाप्रच ॥ अ० ॥ ३।३।११९ ॥

संज्ञा अभिधेय हो तो पुलिङ्गविषयक करण और अधिकरण में घ प्रत्यया न्त गोचर, संचर, वह, व्रज, व्यज, आपण, निगम ये निपातन हैं। चर, गावश्चर-न्यस्त्रिभित्ति, गोचरो देशः। संचरन्त्यस्त्रिभित्ति, संचरो मार्गः। वह, वहन्ति तेन, वहः। स्तन्यः। व्रज, व्रजो। मार्गः। गावो वृजन्त्यस्त्रिभित्ति, वृजो शोष्ठः। गीडा व्यजन्ति तेन, व्यजः। स्तान् दन्त। ताड़ की डार वा ताड़का व्यजना। यहाँ निपातन से घीभाव (१५५) नहीं होता। आपणन्ते व्यवहरन्तेऽस्मिन्निति, आपणः। पण्यखानम्। दूकान। निगम्यन्तेनेन पदार्था इति, निगमोवेदः। यहाँ चकार अगुक्त के ससुच्चय के लिये है। कपति तेन, कपः। निकषः ॥ १४७७ ॥

१४७८—अवे दृखोर्घञ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२० ॥

पुंलिङ्गविषयक संज्ञा दाख्य ही और अव उपपद ही तो करण और अधिकरण में धातु से घञ् प्रत्यय ही । पिछले व (१४७५) प्रत्यय का अपवाद है । अवतारः । अवस्तारः । जवनिका (ओट कनात) यहां (प्रायः) शब्द की अनुवृत्ति करके (१४७५) कहीं असंज्ञा में भी होता है । अवतारः सागरस्य सागरका उतरना ॥ १४७८ ॥

१४७९—हलञ्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२१ ॥

संज्ञा दाख्य ही तो हलञ्च धातु से पुंलिङ्गविषयक करण और अधिकरण में घञ् प्रत्यय ही । आरमन्त्यस्मिन्निति, आरामः । माग । अपमृज्यन्ते रोगा अनेनेति, अपामार्गः । चिरचिरा । विदन्ति तत्त्वज्ञानाश्चनेनेति, वेदः ॥ १४७९ ॥

१४८०—वा०—यञ्चिधौ अवहाराधारावायानामुपसंख्यानम् ॥

घञ् के विधान में अवहार आधार आवाय इन शब्दों का भी उपसंख्यान करना चाहिये । अध्विज्यन्तेस्मिन्निति, अवहारः । आध्विज्यन्तेस्मिन्निति, आधारः । वा + वेञ्, एत्य तस्मिन् वयन्ति आवायः ॥ १४८० ॥

१४८१—अध्यायन्यायोद्यावसंहाराश्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२२ ॥

संज्ञा दाख्य ही तो पुंलिङ्गविषयक करण और अधिकरण में घञ् प्रत्ययान्त अध्याय आदि शब्द निपातन हैं । अधीङ्, अधीयतेस्मिन्निति, अध्यायः । नि + ण् नीयतेऽनेन व्यवहारा इति न्यायः । उद् यु, उद्बुवन्ति अस्मिन्निति उद्यावः । सम् + हृञ्, संह्विज्यन्तेनेन भटादय, इति संहारः ॥ १४८१ ॥

१४८२—उदङ्कोऽनुदको ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२३ ॥

उदकभिन्न संज्ञाविषय में उदङ्क यह निपातन है । घृतमुदच्यतेस्मिन्निति, घृतोदङ्कः । घृत जिसमें निकाले वह घृतोदङ्क कहावे । यहां उद् पूर्व अच् धातु से घञ् प्रत्यय निपातन से और (८४३) इस सूत्र से कुत्व तथा परसवर्ण (२६४) हो जाता है । अनुदकग्रहण से यहां न हुआ । उदकोदच्यनः जल धरने का पात्र ॥ १४८२ ॥

१४८३—जालसानायः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२४ ॥

जाल दाख्य ही तो आनाय यह निपातन है । आनीयन्तेऽस्तस्यादयोऽनेनेति, आनायः । धीवर आदि जनों का जाल । जाल से अन्यत्र । आनयनः ॥ १४८३ ॥

१४८४—खन् घञ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२५ ॥

खन् धातुसे करण और अधिकरण में घ और घञ् प्रत्यय हैं। आ + खन्, आखन्ः। आखानः। इस खन् से जो घ प्रत्यय विधान किया है इस में घ् पढ़ना अनर्थक है क्योंकि घित् कार्य खन् को नहीं प्राप्त है इस से घित्करण सामर्थ्य से घ प्रत्यय और धातुओं से भी होता है जैसे भज, भगः। पद, पदम्। इत्यादि ॥ १४८४ ॥

१४८५—वा०—खनो उडरेकीकवकाः ॥

खन् धातु से उ, डर, इक, इकवक ये प्रत्यय कहने चाहिये। उ, आखः। डर, आखरः। इक, आखनिकः। इकवक, आखनिकवकः ॥ १४८५ ॥

१४८६—ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२६ ॥

कृच्छ्र (दुःख) और अकृच्छ्र (सुख) अर्थ में वर्तमान जो ईषत्, दुर्, सु सी उपपद हैं तो धातु से खल् प्रत्यय है। यह प्रत्यय (८१४) सूत्र के अनुसार भाव और कर्म में होता है (ईषत्, दुर्, सु) इन में दुर् के साथ कृच्छ्र और ईषत् तथा सु के साथ अकृच्छ्र अर्थ की योग्यता है। ईषत्करः। दुष्करः। सुकरः कटो भवता। ईषत्तमः। दुर्गमः। सुगमः। इत्यादि। ईषद् आदि के ग्रहण से यहां न हुआ। कृच्छ्रेण कटः कार्यः। कृच्छ्राकृच्छ्रार्थग्रहण से यहां न हुआ। ईषत्कार्यः ॥ १४८६ ॥

१४८७—वा०—निमिमौलियां खलचोः प्रतिषेधः ॥

खल् और अच् प्रत्यय के परे निमि, मौ, ली इन धातुओं के एच् को आकारादेश न हो। यहां अच् यह (१२८५, ८७५) सूत्र विहित अचों का ग्रहण है। खल्। नि + डुमिज्, ईषत्त्रिमयः। दुर्निमयः। सुनिमयः। अच् निमयो वृत्ते। निमयः पुरुषः। इसी प्रकार ईषत्प्रमयः। सुप्रमयः। ली, ईषद्विलयः। इत्यादि समझना चाहिये ॥ १४८७ ॥

१४८८—उपसर्गात् खल् घञोः ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६७ ॥

खल् और घञ् प्रत्यय परे ही तो उपसर्ग से ही परे लभ धातु को नुम् आगम हो। खल्, ईषत्प्रलभः। दुष्प्रलभः। सुप्रलभः। घञ्, उपालभः। उपसर्गग्रहण से यहां न हुआ। ईषत्लभः। लाभः ॥ १४८८ ॥

१४८९—न सुदुर्भा केवलान्ध्याम् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ६८ ॥

खल्, घञ् परे ही तो केवल सु, और दुर् से परे लभ धातु को नुम् न हो। सुलभः। दुर्लभः। केवलग्रहण से यहां होता है सुप्रलभः। अतिदुर्लभः (अतिसुलभम्, अतिदुर्लभम्) ये तो सु अति की कर्मप्रवचनीय संज्ञा में होंगे। जैसे सुलभ-मतिक्रान्तम्। अतिसुलभम्। इत्यादि ॥ १४८९ ॥

१४६०—कर्त्तृकर्मणोश्च भूकजोः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२७ ॥

कर्त्ता और कर्म ये यथाक्रम से उपपद हों तथा ईषत् आदि भी उपपद हों तो भू और कज् धातु से खल् प्रत्यय हो । खल् कर्त्तृकर्मणोश्चार्थयोः । महा० यह खल् प्रत्यय अर्थ प्रर्थात् अभूततद्भाव अर्थ में कर्त्ता और कर्म ही तो कहना चाहिये । यहाँ ईषदादिकों से परे कर्त्ता कर्म और उन से परे धातु का प्रयोग होता है । जैसे अनाद्येन भवता ईषदाद्येन शक्यं भवितुम्, ईषदाद्यन्मवं भवता (१०३५) से सुम् । अनाद्येन भवता दुःखेनाद्येन भवितुं शक्यं दुराद्यन्मवं भवता । अनाद्येन भवता सुखेनाद्येन भवितुं शक्यम्, स्वाद्यन्मवं भवता । अनाद्येन भवता कर्त्तुं शक्य, ईषदाद्यं करः । अनाद्यं दुःखेनाद्यं कर्त्तुं शक्य, दुराद्यं करः । अनाद्यं सुखेनाद्यं कर्त्तुं शक्य, स्वाद्यं करः । अर्थ कहने से आद्यं न सुभूयते इत्यादि में नहीं सीता ॥ १४६० ॥

१४६१—आतो युच् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२८ ॥

कृच्छ, अकृच्छार्थ, ईषत् आदि उपपद हों तो आकारान्त धातु से युच् प्रत्यय हो । ईषत्यानः सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः ॥ १४६१ ॥

१४६२—छन्दसि गत्यर्थेभ्यः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १२९ ॥

वेदविषय में कृच्छ, अकृच्छार्थ, ईषत् आदि उपपद हों तो गति अर्थ वाले धातुओं से युच् प्रत्यय हो । (सु+उप+वद्=) सुपसदनोऽग्निः । सुपसदनमन्तरिक्षम् । इत्यादि ॥ १४६२ ॥

१४६३—अन्येभ्योऽपि दृश्यते ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १३० ॥

वेदविषय में कृच्छाकृच्छार्थ ईषदादि उपपद हों तो गत्यर्थकों से अन्य जो धातु हैं उन से भी युच् प्रत्यय देखा गया है । सुदीहनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम् । सुवेदनामकृणोद् ब्रह्मणे गाम् ॥ १४६३ ॥

१४६४—भाषायां शासियुधिदृशिधृषिभ्यो युच् ॥

भाषा (शोक) में कृच्छाकृच्छार्थ ईषदादि उपपद हों तो शासि, युधि, दृशि, धृषि इन धातुओं से युच् प्रत्यय कहना चाहिये । दुःशासनः । दुर्योधनः । दुर्दर्शनः । दुर्दर्पणः । इत्यादि ॥ १४६४ ॥

* (स्वाद्यं भूयते) यह कथादत्त ने प्रत्युदाहरण दिया है—सी उन का सत्त प्रलाप है क्यों कि जहाँ खल् प्रत्यय नहीं है वहाँ धातु से अलग उपसर्ग का प्रयोग नहीं होता किन्तु (ते प्राग्वातोः) सूच के अनुसार पूर्व ही प्रयोग होता है ।

१४६५—वा०—मृषेष्टवेति वक्तव्यम् ॥

उक्तविषय में मृष धातु से भी युच् प्रत्यय कहना चाहिये । दुर्मर्षणः ॥ १४६५ ॥

१४६६—आवश्यकप्रसङ्गयोर्णिनिः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७० ॥

आवश्यक और आवश्यक (ऋण लेना) अर्थ युक्त कर्ता वाच्य हो तो धातु से णिनि प्रत्यय हो । अवश्यकारी । मतदायी । यहाँ (सामा-मयूर०) से समास होता है ॥ १४६६ ॥

१४६७—कृत्याञ्च ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७१ ॥

आवश्यक और आवश्यक अर्थ में धातु से कृत्य सञ्चक प्रत्यय हो । भवतावश्यं गुहः सेव्यः । भवतावश्यं सहस्रं देयम् ॥ १४६७ ॥

१४६८—क्लिच्क्लौ च संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १७४ ॥

संज्ञा गम्यमान हो तो आशीर्षाद चर्ध में धातु से क्लिच् और क्ल प्रत्यय हो । भूतिर्भवतात् । भूतिनामवाणां । यहाँ (तितुषत०) इस सूत्र से इट् न हुआ क्ल प्रत्यय संज्ञा में । जैसे ब्रह्म एनं देयात्, ब्रह्मदत्तः । ईश्वरदत्तः ॥ १४६८ ॥

१४६९—क्लिचि दौर्घञ्च ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३६ ॥

क्लिच् प्रत्यय परे हो तो अनुदात्तोपदेश (अनिट्) तथा वनति और तनोति आदि अर्धा के अनुनासिक का लोप तथा उन की उपधा को दौर्घ न ह । अनुदात्तपदेश, यच्छतीति यन्तिः । आ काव्यो से निवृत्ति को प्राप्त होता है वह यन्ति कहता है । यन्तिर्यच्छतात् । यन्ति नामवाणा निवृत्त हो । वनु, वनुते, वन्तिः । वन्तिर्वनुतात् । तनु, तन्तिस्त्वनुतात् इत्यादि ॥ १४६९ ॥

१५००—सनः क्लिचि लोपश्चास्यान्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ४५ ॥

क्लिच् प्रत्यय के परे सन् धातु की आकारादेश और सस का लोप विकल्प करके हो । सन्, सातिः । सतिः । सन्तिः । सनुतात् ॥ १५०० ॥

१५०१—तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्कध्यैक-

ध्यैन्तवैतवेङ्कतधिनः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६ ॥

वेदविषय में तुमुन्प्रत्यय के अर्थ में धातु से से, सेन्, असे असेन्, क्से, कसेन्, अध्यै, अध्येन्, कध्यै, कथ्यैन्, शध्यै, शध्यैन्, तवै, तवेङ्, तवेन् ये प्रत्यय हैं ।

तुमर्थ से भाव*लिया जाता है। से।वच्, वच्ते। वक्तुं प्राप्त था।यहां वच् धातु से से प्रत्यय (सन्धि० ३०२) कुत्व और ष (५६) आदेश होजाता है। वच्ते रायः। सेन्। एषे। इण् धातु को सेन् प्रत्यय के परे गुण (२१) और षत्व होजाता है। तावामेषे रथानाम्। असे, असेन्,। जीव, कृत्वे दद्याय जीवसे। शारदा जीवसे धाः। कसे, प्र+इण्, प्रेषे भगाय। कसेन्, शिज्, गवामिव श्रियसे। अध्ये, अध्यैन्। उप+आङ्+चर, कर्मण्युपाचरध्वे। कध्ये, आङ्+ङ्, इन्द्राग्नी आहुवध्यै। कध्यैन्। शिज् श्रियध्यै। शध्यै, मदी+णिच्, राधसः सह मादयध्यै। यहाँ शध्यै के परे शप् होकर णिच् को गुण हो जाता है। शध्यैन्, पा, वायवे पिवध्यै। तवै [पा] पाने सोममिन्द्राय पातवै। तवेङ् पूङ्, दशमे मासि सूतवै। तवेन् गन्तु, स्वर्देवेषु गन्तवै॥ १५०१ ॥

१५०२—प्रयैरोहिष्यैअव्ययिष्यै ॥ अ० ॥ ३। ४। १० ॥

वेदविषय में प्रयै, रोहिष्यै, अव्ययिष्यै ये शब्द तुमर्थ में निपातन किये हैं। प्रयै। यहाँ प्रपूर्वक या धातु से कै प्रत्यय और आलोप (२४४) होजाता है। प्रयै देवेभ्यः। प्रयातुम् प्राप्त था। रोहिष्यै। यहाँ रुह धातु से इष्यै प्रत्यय होता है। अपामोषधीनां रोहिष्यै। रोहितुं प्राप्त था। अव्ययिष्यै। यहाँ नज्पूर्वक व्यय धातु से इष्यै प्रत्यय होता है। अव्ययितुं प्राप्त था॥ १५०२ ॥

१५०३—दृशे विख्ये च ॥

वेदविषय में तुमर्थ में दृशे विख्ये ये निपातन हैं। दृश धातु से के प्रत्यय होजाता है। दृशे विश्वाय सूर्यम्। वि+ख्या, से के प्रत्यय हुआ। विख्ये त्वा हरामि॥ १५०३ ॥

१५०४—शक्नि णमुल्कमुलौ ॥ अ० ॥ ३। ४। १२ ॥

वेदविषय में शक्नु धातु उपपद हो तो तुमर्थ में धातु से णमुल् और कमुल् प्रत्यय हों। णमुल्, वि+भज्, अग्निं वै देवा विभाजं नाशक्नुवन्। विभक्तुं प्राप्त था णित् से वृद्धि हो जाती है। कमुल्, अप+लुप्, अपलुपं नाशक्नुवन्। अपलोतुं प्राप्त था॥ १५०४ ॥

१५०५—ईश्वरे तोसुन्कसुनौ ॥ अ० ॥ ३। ४। १३ ॥

वेदविषय में ईश्वर शब्द उपपद हो तो धातु से तोसुन् और कसुन् प्रत्यय हो। ईश्वरो विचरितोः। विचरितुं प्राप्त था। ईश्वरोभिचरितोः। अभिचरितुम्। प्राप्त था। ईश्वरो विलिखः। विलिखितुम् प्राप्त था॥ १५०५ ॥

* तुमुन् प्रत्यय किसी विशेष अर्थ में नहीं कहा और अनिर्दिष्टार्थाय प्रत्ययाः स्वार्थं भवन्ति जिन प्रत्ययों का विशेष अर्थ न कहा है वे स्वार्थ में होते हैं स्वार्थ धातुओं का भावमान है इस से तुमर्थ करके भाव का यदप्य है

१५०६—कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वन् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १४ ॥

वेदविषय में कृत्यार्थ (भाव, कर्म) में धातु से तवै, केन् केन्य, त्वन् ये प्रत्यय हैं। तवै । स्तृच्छ, स्तृच्छितवै । स्तृच्छितव्यम् । अनु+इण्, अन्वेतवै । अन्वेतव्यम् । केन् । अव+गाह्, नावगाहे । नावगाहितव्यम् । केन्य । श्रु+सन, श्रुश्रूषेख्यः । श्रुश्रूषितव्यम् । त्वन् । डुकृञ्, कर्तृव हविः । कर्तृव्यम् प्राप्त था ॥ १५०६ ॥

१५०७—अवचक्षे च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १५ ॥

वेदविषय में कृत्यार्थ में अवपूर्वक चक्षिङ् धातु से एण् प्रत्यय निपातन है। रिपुषा नावचक्षे । अवख्यातव्यम् । प्राप्त था ॥ १५०७ ॥

१५०८—भावलक्षणे स्थेक्कुञ्चद्विचरिहृतमिजनिस्थस्तोसुन् ॥

अ० ॥ ३ । ४ । १६ ॥

वेदविषय में भावलक्षण (क्रिया जिस से लक्षित हो उस अर्थ) में वर्तमान स्था, इण्, कृञ्, वदि, चरि, हु, तमि, जनि इन धातुओं से तुमर्थ में तोसुन् प्रत्यय है। सम्+स्था, संस्थातावेद्यांसौदन्ति। समाप्तिपर्यन्त वेदीमें ठहरते हैं यहाँ संस्थिति अर्थात् समाप्ति से ठहरना क्रिया लखौगई इस लिये सम्पूर्वकस्था धातु से तोमन् प्रत्यय हुआ। इसी प्रकार अगले प्रयोग भी समान चाहिये। उद्+इण्, पुरासूर्यमुदेतीराधेयः । अप+आङ्+कृञ्, पुरा बलानामपाकस्तीः । प्र+वद्, पुरा प्रवदितोदन्नी प्रहीतव्यम् । प्र+चर, पुरा प्रचरितोरागनीध्रे हीतव्यम् । हु, आहीतीरप्रमत्तस्तिष्ठति। तसु, आतमितीरासीत् । जनो, काममाविजनितीः संभवाम ॥ १५०८ ॥

१५०९—सृपितृदोः कसुन् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १७ ॥

वेदविषय में भावलक्षण में वर्तमान सृपि और तृद धातु से तुमर्थ में कसुन् प्रत्यय हो । सृप, पुराक्रूरस्य विसृपो विरपृग्नि । तृद, पुरा जर्तृस्य आतृदः ॥ १५०९ ॥

१५१०—अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १८ ॥

प्रतिषेध अर्थ वाले अलं और खलु उपपद हैं तो प्राचीनों के मत में धातु से क्त्वा प्रत्यय हो । कृत्प्रत्ययान्त अव्यय भाव में होते हैं इस से क्त्वा को भाव में जानना चाहिये। डुदाञ्, अलं दत्वा । मतदेओ । पठ, खलु पठित्वा । मतपठो । अलं खलु-ग्रहण से यहाँ न हुआ । माकार्पीत् । वह मत करे। प्रतिषेधग्रहण से यहाँ न हुआ। अलंकारः । आभूषण । यहाँ प्राचां ग्रहण सत्कार के लिये है । क्योंकि वासरूपविधि से यथाप्राप्त अन्य प्रत्यय हो ही जायगा । जैसे अलं रोदनेन ॥ १५१० ॥

१५११—उदीचीं जाडो व्यतीहारे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १६ ॥

उदीचीं के मत में व्यतीहार (उलट पलट होना) अर्थ में वर्तमान में धातु से जा प्रत्यय हो (अप + मेङ् + क्ता + सु =) यहां (कुगति०) सूत से समास होकर ॥ १५११ ॥

१५१२—समासेऽनञ्पूर्वे ल्यो ल्यप् ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३७ ॥

नञ् पूर्वका समास न हो तो क्ता के स्थान में ल्यप् आदेश हो । इस से (क्ता) को ल्यप् आदेश हो । कर (अप + मेङ् + ल्यप् + सु =) इस अवस्था में ॥ १५१२ ॥

१५१३—सयतेरिदन्त्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७० ॥

ल्यप् परे हो तो आकारान्त मेङ् धातु का इकारादेश विकल्प करके हो (सन्धि० ५८) इस सूत्र के अनुसार मेङ् के अन्त्य को इकार हो कर (सन्धि० २०२) तुक् हो जाता है । जैसे । अपमित्य याजते । वस्त्र आदि को उलटते पलटते मांगता है । जहां इकार न हुआ वहां आत्व (२४२) हो जाता है । जैसे अपमाय यावते । यहां पूर्वकाल को प्रतीति नहीं है इस से यह क्त्वा विधान किया क्योंकि पूर्वका में क्त्वा (१५१६) विधान करेंगे । उदीचीं के ग्रहण से औरी के मत में पूर्वकालि क्ता भी मेङ् धातु से होता है जैसे । याचित्वा अपमयते ॥ १५१३ ॥

१५१४—क्तापि छन्दसि ॥ अ० ॥ ७ । १ । ३८ ॥

वेदविषय में अनञ्पूर्वसमास में क्ता और ल्यप् होती क्त्वा को आदेश हो । कृष्ण वासी यजमानं परिधापयित्वा । प्रत्यक्षमर्कं प्रयर्थयित्वा । ल्यप्, उङ्, जुहोि ग्रहण से भी दोनों आदेश हो जाते तथापि यहां क्ता ग्रहण सर्वोपाधिकी निह लिये है । इस से असमास में भी ल्यप् होता है । अर्चयान् देवान् गतः ॥ १५

१५१५—परावरयोगे च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । २० ॥

पर से पूर्व का और अवर अर्थात् पूर्व से पर का योग गम्यमान हो तो धा से क्ता प्रत्यय हो । परयोग, अप्राप्य ग्रामं पर्वतः स्थितः । ग्राम को न पाकर पर्व रहा । अर्थात् ग्राम से परे पर्वत है । यहां प्रपूर्वक आङ् धातु से क्ता प्रत्यय फि प्रादिसमास (सामा० कुगति०) होने से ल्यप् आदेश होकर नञ्समास होता है परावरयोग, अतिक्रम्य पर्वतं ग्रामः स्थितः । पर्वत को अतिक्रमण करके ग्राम रहा । अर्थात् पर्वत ग्राम से पहिले है ॥ १५१५ ॥

१५१६—समानकृत् कयोः पूर्वकाल ॥ अ० ॥ ३ । ४ । २१ ॥

जिन का समान कर्त्ता है ऐसे जो धातु उन में जो पूर्व काल विषयक अर्थ वर्तमान धातु उस से क्त्वा प्रत्यय हो । भुक्त्वा व्रजति । भोजन करके जाता है । यहां भोजन क्रिया प्रथम करना है इस से भुज धातु से क्त्वा प्रत्यय हो गया । इ-

प्रकार । स्नात्वा पठति । इत्यादि समझना चाहिये (समानकर्तृकयोः) यह द्विवचन अतन्त्र है इस से । स्नात्वा पीत्वा भुक्त्वा पठित्वा गच्छति । इत्यादिको में भी क्त्वा प्रत्यय होता है । समानकर्तृकग्रहणसे यहां नहुआ । वर्धति मेघे देवदत्तो गतः । पूर्वकालग्रहण से यहां न हुआ । गच्छन् पठति । जाता पठता है । यहां पूर्वकालता नहीं तथा । सुखं व्यादाय स्वप्ति । यहां भी पूर्वकालता नहीं क्योंकि सोने वाले का सुख सोनिके पीछे फैलता है तथापि सुख फैले पीछे जो निद्रा है उससे सुख का फैलना पूर्वकाल में है इस से पूर्वकालता सिद्ध है क्योंकि सोनेवाला सुख फैले पीछे दो घड़ी अवश्य सोवेगा ॥ १५१६ ॥

१५१७—क्त्वि स्कन्दस्यन्दोः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ३१ ॥

इका प्रत्यय परे होता स्कन्द और स्यन्द धातु के उपधानकार का लोप न हो [स्कन्दिर्] गतिगोषणयोः । स्कत्वा [स्यन्द] प्रत्ययणे यह ऊर्द्ध है इस से परे क्त्वा को विकल्प करके इट् होगा जिस पक्ष में इट् नहीं होता उस पक्ष में (१३६) प्राग जो न लोप उस का निषेध हो गया । स्यन्त्वा । और जहां इट् होता है वहां ॥ १५१७ ॥

१५१८—न क्त्वा सेट् ॥ अ० ॥ १ । २ । १८ ॥

सेट् (इट्सहित) क्त्वा प्रत्यय कित् संज्ञक न हो । इस से कित् संज्ञा का निषेध हो कर नलोप भी नहीं होता । जैसे स्यन्दित्वा । शयित्वा । सेट् ग्रहण इस से है कि । क्त्वा । हत्वा इत्यादि में कित् निषेध नहीं ॥ १५१८ ॥

१५१९—मृडमृदगुधकुषक्लिशवदवसः क्त्वा ॥ अ० ॥ १ । २ । ७ ॥

मृड, मृद, गुध, कुष, क्लिश, वद, और वस धातु से परे सेट् का कित् संज्ञक हो । अकिले सूत्र से कित् संज्ञा का निषेध था इस लिये विधान किया । मृडित्वा [क्लिश] विवाधने क्लिशित्वा (स्वरि०) क्लिष्टा । वद, उदित्वा (२८३) वस, उषित्वा ॥ १५१९ ॥

१५२०—नोपधात्फफान्ताडा ॥ अ० ॥ ६ । २ । २३ ॥

नकार जिस के उपधा में तथा य और फ अक्षरों में ही उस धातु से परे सेट् का कित् संज्ञक विकल्प कर के हो । यास्त, अश्रित्वा । अन्यित्वा । फान्त, गुफित्वा । गुफित्वा । नोपधग्रहण से । कोषित्वा । यहां कित् संज्ञा का विकल्प नहीं होता किन्तु (१५१८) इस से नित्य कित् संज्ञा का निषेध हो कर गुण हो जाता है ॥ १५२० ॥

१५२१—वञ्चिलुञ्च्युतञ्च ॥ अ० ॥ १ । २ । २४ ॥

वञ्चि, लुञ्चि, ऋत् इन धातुओं से परे सेट् का विकल्प करके कित् संज्ञक हो । [वञ्चु] गतौ वञ्चित्वा । वचित्वा [लुञ्च] अपनयने लुचित्वा । लुञ्चित्वा । ऋत, यह सूत्र धातु है । ऋतित्वा । अर्षित्वा ॥ १५२१ ॥

१५२२-लघिसुषिकृशः काश्यपस्य ॥ अ० ॥ १। २। २५ ॥

काश्यप आचार्य के मत में लघु, मृषि और कृषि धातु से परे सेट् का विकल्प कर के कित् संज्ञक हो। जित्, लघित्वा। तर्षित्वा। मृत्, मृषित्वा। मषित्वा। कृत्, कृषित्वा। कृषित्वा। क्षित्वा। घातित्वा। लिखित्वा। लिखित्वा (५११) उषित्वा। वसित्वा (११०३) अक्षित्वा (११०४) लुभित्वा। लोभित्वा (११०५) ॥ १५२२ ॥

१५२३-जृषश्चोः क्ति ॥ अ० ॥ ७। २। ५५ ॥

जृ और जृषच् धातु से क्ता का इट् आगम हो। जृप्, जरीत्वा (२६४) जरित्वा। आजृषच्, वृषित्वा ॥ १५२३ ॥

१५२४-उदितो वा ॥ अ० ॥ ७। २। ५६ ॥

जिस का उकार इत् संज्ञक हो उस धातु से परे क्त्वा का इट् विकल्प करके हो। उषु, उषित्वा शान्त्वा (५८७) ॥ १५२४ ॥

१५२५-क्रकश्च क्त्वि ॥ अ० ॥ ६। ४। १८ ॥

भलादि क्त्वा प्रत्यय परे होते कृम् धातु की उपधा को विकल्प करके दीर्घ हो। कृम्, कृम्त्वा। क्राप्त्वा सन्धि० २५६ २६४) भलादि ग्रहण से यच्चा उपधा लोप न हुआ। क्रामित्वा (१५२४) ॥ १५२५ ॥

१५२६-जान्तनयां विभाषा ॥ अ० ॥ ६। ४। ३२ ॥

जकार जिन के अन्त में हो उन अङ्गों और नश अंग की उपधा का लोप विकल्प करके हो [भङ्गी] आमर्दने। भङ्गा। भङ्क्त्वा। रङ्गरक्त्वा। रङ्क्त्वा। नश, नष्टा। यहाँ (४०८) लुप् होता है उस का एकपक्ष में लोप हो गया। और दूसरे पक्ष में न हुआ। जैसे। नष्टा (४०७) सूत्र से पक्ष में। नशित्वा। खात्वा (३६४) दा, दित्वा। पा, पित्वा। मा, मित्वा। स्था, स्थित्वा। इन सभी में (१२०७) सूत्र से इकार०। डुधाज्, हित्वा (१२०८) ॥ १५२६ ॥

१५२७-जहातेस् ॥ अ० ॥ ७। ४। ४३ ॥

वेदविषय में जहाति (आहाक्) अंग को विकल्प करके हि आदेश हो [आहाक्] त्यागे। हित्वा। और [आहाड्] गती। इस का। हात्वा। होगा। अद्, जग्धा। (१२१६) सूत्र से जग्धि आदेश हो जाता है ॥ १५२७ ॥

१५२८-वा ल्यपि ॥ अ० ॥ ६। ४। ३८ ॥

ल्यप् प्रत्यय परे हो तो अनुदात्तोपदेश वनति और तनोत्यादि अंगों के अनुनासिक का लोप विकल्प करके हो। यह व्यवस्थित विभाषा है इस से मकारान्त

अङ्गों के अनुनासिक का लोप विकल्प करके तथा औरों के निय होता है । जैसे । मान्त अङ्ग गम्, आगत्य । आगम्य । नम्, प्रणत्य । प्रणम्य । मान्ती से अन्यत् । हन्, प्रहृत्य । मन्, प्रमृत्य । वन्, प्रवृत्य (पारिभा० ४६) परिभाषा के अनुसार ल्यप् के विषय में (हि, दध्, आ, इत्, दीर्घ, इट्) ये विधि क्त्वा प्रत्यय के आश्रय से होने वाले अन्तरङ्ग भी हैं पर नहीं होते किन्तु क्त्वा को बहिरङ्ग ल्यप् आदेश हो जाता है । जैसे । हि, विधाय (१२०८) दध् प्रदाय (१२११) आ, प्रखन्य ३८४) इत्, प्रस्थाय । दीर्घ प्रकृष्य ५८७) प्रदीव्य (४६) ॥ १५२८ ॥

१५२८—न ल्यपि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ६६ ॥

ल्यप् परे हो तो घुसंज्ञक, मा, स्था, गा, पा, जहाति (ओहाक्) और सा इन अंगों को ईकारादेश न हो । घेट्, प्रधाय । माङ्, प्रमाय । स्था, प्रस्थाय । गै, प्रगाय [पा] पाने प्रपाय । प्रहाय । घो, प्रसाय [मीज्] हिंसायाम् प्रमाय [डुमिज्] प्रक्षेपणे । निमाय [दीङ्] क्षये । अवदाय । इन में आत्व० (३८८) [लौङ्] श्लेषणे दिलाय (४००) आत्व हो जाता । दूसरे पक्ष में । विलीय । विचर + णिच्, विचार्य । यहाँ णिलोप (१७७) ॥ १५२८ ॥

१५३१—ल्यपि लघुपूर्वात् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५६ ॥

ल्यप् परे हो तो पूर्व जो लघु हो उस से परे णि के स्थान में अय् आदेश हो । वि + गण + णिच्, विगणय्य । प्रणमय्य । यहाँ णकार का अकार पूर्व है उस से उत्तर णि को अय् आदेश हो जाता है किन्तु लोप (१७७) नहीं होता लघुपूर्वग्रहण से यहाँ न हुआ । संप्रथृज् + णिच्, संप्रथार्य गतः ॥ १५३० ॥

१५३१—विभाषापः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५७ ॥

आमृ धातु से परे णि को अय् आदेश विकल्प करके हो । प्र + आमृ + णिच् प्रापय्य प्राय्य वा पठति । यहाँ णिलोप (१७७) हो जाता है ॥ १५३१ ॥

१५३२—जनिता संज्ञे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५३ ॥

संज्ञविषय में णिलोप से जनिता यह निपातन है । यो नः पिता जनिता । यहाँ जन् धातु से इडादि टच् प्रत्यय के परे णिलोप निपातन से होता है । संज्ञ से अन्यत्र । जनयिता । हीगा ॥ १५३२ ॥

१५३३—श्रमिता यज्ञे ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५४ ॥

यज्ञ कर्म में णिलोप से श्रमिता यह निपातन है । शृतं हविः श्रमितः । यह संबुद्धिविषय में प्रयोग है । यहाँ श्रु धातु से टच् प्रत्यय के परे णिच् का लोप हो जाता है यज्ञ से अन्यत्र । श्रमयिता । यज्ञ प्रयोग हीगा ॥ १५३३ ॥

१५३४—युसुवोदीर्घकृन्दसि ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५८ ॥

ल्यप् परे हो तो वेदविषय में यु और सु धातु को दीर्घादेश हो । यु, दात्य-
नुपूर्व विषय । यहाँ विपूर्वक यु धातु को ल्यप् के परे दीर्घ० । मृड् यत्राद्यो दक्षिणा
परिप्लूय । यहाँ परिपूर्वक सु को दीर्घ० । वेदसे अन्यत्र । संयुत्य । संप्लुत्य ॥ १५३४ ॥

१५३५—क्षियः ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ५९ ॥

ल्यप् परे होतो क्षि धातु को दीर्घादेश हो । प्रक्षीय । संक्षीय ॥ १५३५ ॥

१५३६—ल्यपि च ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४१ ॥

ल्यप् परे होतो ल्य धातु को संप्रसारण न हो । प्र+वेज्, प्रदाय तिष्ठति ॥ १५३६ ॥

१५३७—ज्यञ्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४२ ॥

ल्यप् परे होतो ज्या धातु को भी संप्रसारण न हो [ज्या] वयोहानौ । प्रज्या-
योपरमते । बुद्धा हो कर सब कामों से निवृत्त होता है ॥ १५३७ ॥

१५३८—व्यञ्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४३ ॥

ल्यप् के परे व्या धातु को भी संप्रसारण न हो [व्यञ्] संवरणे । उपव्याय ॥ १५३८ ॥

१५३९—विभाषा परेः ॥ अ० ॥ ६ । १ । ४४ ॥

ल्यप् परे होतो परि उपसर्ग से परे व्यञ् धातु को विकल्प करके संप्रसारण
हो । परिबीय । यहाँ संप्रसारण किये पीछे तुक् (संधि० २७३) सूत्र से प्राप्त उस
को बाध कर (हलः) सूत्र से दीर्घादेश हो जाता है ॥ १५३९ ॥

१५४०—आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । २२ ॥

आभीक्ष्ण्य (वार २ होना) अर्थ गन्धमान हो तो समानकर्तृक धातुओं में
को पूर्वकाल में वर्तमान धातु है उस से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय भी हो ॥ १५४० ॥

१५४१—वा०—आभीक्ष्ण्ये द्वे भवत इति वक्तव्यम् ॥

आभीक्ष्ण्य * अर्थ में वर्तमान जो शब्द है उसको द्विवचन हो । जैसे । भुज,
भोजं भोजं व्रजति । भुज, भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति । स्मृ, स्मारं स्मारं पठति । स्मृत्वा २

* (नित्यशेषयोः) इस मत्व से से जा द्विवचन होता है वह नित्य अर्थात् क्रिया के अविच्छिन्न होने में
होता किन्तु वार २ होने में नहीं होता है जैसे किमीने कहा । सर्ज वति जीवति । यहाँ यह अर्थ प्रतीत होगा
कि वह जीवता ही है । किन्तु जी के मरता फिर मर के जीवता वह नहीं प्रतीत होगा । भुक्त्वा भुक्त्वा व्रज-
ति । भोजं भोजं व्रजति । यहाँ भोजन करता फिर जाता है फिर भोजन करता फिर जाता है यह भोजन
क्रिया का वार २ होना प्रतीत होता है । इस क्रिये क्रिया के वार २ होने में (नित्यशेषयोः) से द्विवचन
नहीं प्राप्त था इस से आभीक्ष्ण्य अर्थ में द्विवचन का विधान किया ।

पठति यहाँ पूर्वसूच से णमुल् प्रत्यय होकर क्त्वा और णमुल् प्रत्ययान्त की द्विवचन हो जाता है ॥ १५४१ ॥

१५४२—न यद्यानाक्काङ्क्षे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । २३ ॥

यद् शब्द उपपद ही और अनाकाङ्क्ष वाक्य हो तो धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय न हो । जिस वाक्य में अगली पिछली दो क्रिया रहें और वह कुछ परधी भाकाङ्क्षा न करे उस का यहाँ ग्रहण है । जैसे । यदयं पठति ततः पचति जब यह पढ़ लेता है तदनन्तर पाक करता है । यहाँ यदयं पठति इस अंग में जो पठनक्रिया है उस का कुछ पचन की आकाङ्क्षा नहीं है । अनाकाङ्क्षग्रहण से यहाँ निषेध नहीं होता । यदयं पठित्वा गच्छति ततः परमेव प्रसौदति । जब यह पढ़ के जाता है तदनन्तर ही प्रपन्न होता है । यदयं बालः आवं आवं विस्मरति ततः परमेव पापुच्छति । इत्यादि ॥ १५४२ ॥

१५४३—विभाषाग्रेप्रथमपूर्वेषु ॥ अ० ॥ ४ । ४ । २४ ॥

अग्रे प्रथम पूर्व ये उपपद ही तो समानकर्तृकों में जो पूर्वकाल में वर्तमान धातु है उस से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय विक्षल्य करके हों । यह आप्राप्त विभाषा है अग्रे पठित्वा गच्छति अग्रेपाठं गच्छति प्रथमं पठित्वा गच्छति । प्रथमपाठं गच्छति । पूर्व पठित्वा गच्छति पूर्वपाठं गच्छति । विभाषाग्रहण इस लिये है कि जब क्त्वा, णमुल् नहीं होते तब लट् आदि प्रत्यय होते हैं जैसे अग्रे पठति ततो व्रजति । आभीक्ष्ण्य अर्थ में तो पूर्वविप्रतिषेध से नित्य क्त्वा और णमुल् होते हैं जैसे । अग्रे पठित्वा पठित्वा गच्छति । अग्रे पाठं पाठं गच्छति । इत्यादि ॥ १५४३ ॥

१५४४—कर्मण्यक्रोशे क्षजः खमुज् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २४ ॥

आक्रोश गम्यमान हो और कर्म उपपद हो तो समानकर्तृकों में जो पूर्व काल में वर्तमान धातु उस से खमुज् प्रत्यय हो । चारंकारमाक्रोशति । चोर कहि कर कोशता है । यहाँ क्षज् धातु उच्चारण अर्थ में है ॥ १५४४ ॥

१५४५—खादुमि णमुल् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । २६ ॥

खादु शब्द के अग्रे वाले शब्द उपपद ही तो समानकर्तृकों में जो पूर्वकाल में वर्तमान धातु है उससे णमुल् प्रत्यय हो । खादुंकारं भुङ्क्ते । संपन्नं कारं भुङ्क्ते । लवणं कारं भुङ्क्ते । यहाँ संपन्न और लवण शब्द खादु शब्दके पर्याय वाचक हैं । खादुमि भान्तनिगतं क्रियते ईकाराभावायम् । व्यन्तस्य च मकारार्थम् । महाभाष्य० । ३ । ४ । २६ । खादु शब्द से ईकार का अभाव और व्यन्त खादु शब्द को मकारान्त रहने के लिये (खादुमि) यहाँ खादु शब्द को मकारान्त

निपातन किया है (ईकार) स्त्रीलिंग की विषया में ङीष् प्रत्यय से प्राप्त है । जैसे । स्नाहीं कृत्वा यवागं भुङ्क्ते । यहां (स्त्रीण० ७६) इस सूत्र से उकारान्त गुणवाची स्नादु शब्द से ङीष् प्राप्त था सो न हुआ (च्यन्त) अच्चादु स्वादु कृत्वा भुङ्क्ते । खान्दुंकारं भुङ्क्ते । अब णमुल् का अधिकार है सो समानकर्तृकों में जो पूर्वकाल में वर्तमान धातु है उससे प्रायः होता है ॥ १५४५ ॥

१५४६—अन्यथैव कथमित्थं सु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । २७ ॥

जो सिद्ध कृज् धातु का अप्रयोग हो और अन्यथा, एवं, कथं, इत्थं ये उपपद हो तो कृज् धातु से णमुल् प्रत्यय हो । जो कृज् धातु के प्रयोग के बिना भी अभीष्ट अर्थ वाक्य से कहा जाय तो कृज् के प्रयोग को भी अप्रयोग के तुल्य समझना चाहिये जैसे । अन्यथाकारं पठति शिचाविरहो बालः । शिचा से रहित बालक अन्यथा अर्थात् उच्चारणादि नियम से रहित पढ़ता है यह अर्थतो । अन्यथा पठति शिचाविरहो बालः । इस वाक्य से भी होता है । इस लिये पूर्व वाक्य में सिद्ध कृज् धातु का अप्रयोग समझना चाहिये । सिद्धाप्रयोगग्रहण से यहां णमुल् नहीं होता । शिरोन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते । शिर को और ढंग से करके भोजन करता है । यह अर्थ शिरोन्यथा भुङ्क्ते । इस वाक्य से न होगा ॥ १५४६ ॥

१५४७—यथातथयोरसूयाप्रतिवचने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । २८ ॥

सिद्ध कृज् धातु का अप्रयोग हो । असूयाप्रतिवचनगम्यमान हो और यथा, तथा शब्द उपपद हो तो कृज् धातु से णमुल् प्रत्यय हो । असूया अर्थात् जो न सहन करके दूसरे की निन्दा करना उस का प्रतिवचन उत्तर । जैसे कथं तत्र पठित्यसि । यथाकारं पठित्यामि तथाकारं पठित्यामि किं तवानेन । कैसे वहां पढ़ेगा । जैसे पढ़ेगा वैसे पढ़ेगा तुम्हको इस से क्या । असूयाप्रतिवचन के ग्रहण से यहां न हुआ । यथा कृत्वाहं पठित्यामि तथात्वं द्रक्ष्यसि । सिद्धाप्रयोग के ग्रहण से यहां न हुआ । शिरो यथा कृत्वाहं भोक्ष्ये किं तवानेन ॥ १५४७ ॥

१५४८—कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये ॥ अ० ॥ ३ । ४ । २९ ॥

कर्म उपपद हो तो साकल्य अर्थ में दृश् और विद् धातु से णमुल् प्रत्यय हो । पुस्तकदर्शं पठति । अर्थात् जो जो पुस्तक देखता है उस २ को पढ़ लेता है । भिक्षुवेदं ददाति । जिस २ भिखारी की जानता पाता विचारता उस २ को देता है । ब्राह्मणवेदं भोजयति (विद्) से ज्ञान लाभ और विचार इन अर्थों वाले विद् धातु का ग्रहण है । साकल्य ग्रहण से यहां न हुआ पुस्तकं दृष्ट्वा पठति ॥ १५४८ ॥

१५४६—यावति विन्दजीवोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३० ॥

यावत् उपपद हो तो विन्द लृ और जीव धातु से णमुल् प्रत्यय हो । यावद्वदं भुङ्क्ते । अर्थात् जितना पाता है उतना भोजन करता है । यावज्जीवमधीते जितना जीवता है उतना अध्ययन करता है ॥ १५४६ ॥

१५५०—चर्मोदरयोः पूरेः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३१ ॥

चर्म और उदर उपपद हीं तो णिजन्त पूरि धातु से णमुल् प्रत्यय हो । पूरो + णिच्, चर्मपूरमाच्छादयति । चास पूरा ढापता है । अर्थात् जितना शरीर का चास है सत्र ढापता है । उदरपूरं भुङ्क्ते । उदर पूरा भोजन करता है ॥ १५५० ॥

१५५१—वर्षप्रमाण जलोपश्चास्यान्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३२ ॥

प्रकृति प्रत्यय के समुदाय से जो वर्षा का प्रमाण गम्यमान हो तो कर्मोपपद णिजन्त पूरो धातु से णमुल् प्रत्यय हीं और इस पूरो धातु के जकार का लोप भी विकल्प करके ही । गोःपदं गोष्पदं गोष्पदम् पूरयित्वा वृष्टो मेघः, गोष्पदपूरं वृष्टो मेघः । जलोपपक्ष में । गोष्पदप्रं वृष्टो मेघः । गौ के खुर पूरा कर मेघ बरसा । अन्य ग्रहण इसलिये है कि धातु ही के जकार का लोप हो उपपद के जकार का न हो । जैसे मूषिकाविलपूरं वृष्टो मेघः । मूषिकाविलप्रं वृष्टो मेघः ॥ १५५१ ॥

१५५२—चेलोक्तोपेः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३३ ॥

वर्षा का प्रमाण गम्यमान हो और चेल शब्दार्थक कर्म उपपद हो तो णिजन्त क्लूयो धातु से णमुल् प्रत्यय हो । चेलोक्तोपं वृष्टो मेघः । वसनोक्तोपं वृष्टो मेघः । चौरोक्तोपं वृष्टो मेघः । कपड़ा भिगोने भर मेघ बरसा ॥ १५५२ ॥

१५५३—निमूलसमूलयोः कषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३४ ॥

निमूल और समूल कर्म उपपद हीं तो कष धातु से णमुल् प्रत्यय हो । निमूलं कषति, निमूलकार्ष कषति । जड़ को छाड़ के जैसे काटता हो वैसे काटता है । समूलं कषति समूलकार्ष कषति । जड़ समेत जैसे काटता हो वैसे काटता है । यहाँ से कषादिकों का प्रकरण है इन में यथाविधि अनुप्रयोग अर्थात् जिस धातु से णमुल् विधान करें उसी धातु का पीछे प्रयोग होता है । और इस प्रकरण में पूर्वकाल की अनुवृत्ति नहीं है ॥ १५५३ ॥

१५५४—शुष्कचूर्णरुक्षेषु पिषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३५ ॥

शुष्क, चूर्ण, रुक्ष ये कर्म उपपद हीं तो पिष धातु से णमुल् प्रत्यय हो । शुष्कपे
पिनष्टि । सूखा पीसता हो वैसे पीसता है । चूर्ण पेवं पिनष्टि । रुक्षपेवं पिनष्टि ॥ १५५४ ॥

१५५५—समूलाकृतजीवेषु हन् कृञ् ग्रहः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३६ ॥

समूल अकृत जीव ये कर्म उपपद हीं तो यथासंख्य करके हन्, कृञ् और ग्र
धातु से णमुल् प्रत्यय हो । समूलघातं हन्ति । मूल समेत जैसे मारता हो वै
मारता है । अकृतकारं करोति । न किये को जैसे कारता हो वैसे करता है । जी
ग्राहं गृह्णाति । जीव का ग्रहण करता हो वैसे ग्रहण करता है ॥ १५५५ ॥

१५५६—करणे हनः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३७ ॥

करण उपपद हीं तो हन् धातु से णमुल् प्रत्यय हो । पादेन हन्ति, पादघा
हन्ति । यष्टिकाघातं हन्ति । लात वाल ठ से मारता हो वैसे मारता है ॥ १५५६ ॥

१५५७—स्नेहने पिषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३८ ॥

स्नेहनार्थात् जिससे सचिक्कन करे ऐसा करण उपपद हीं तो पिष धातु
णमुल् प्रत्यय हो । उदपेवं पिनष्टि । तैलपेवं पिनष्टि । कषायपेवं पिनष्टि । उदव
तैल, और कषाय अर्थात् कधीला बर्बुर आदि के कटे हुए रस से जैसे पीसत
हो वैसे पीसता है ॥ १५५७ ॥

१५५८—हस्ते वर्तिग्रहोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ३९ ॥

हस्तवाची करण उपपद हीं तो निजन्त वृत्त और ग्रह धातु से णमुल् प्रत्य
हो । हस्तेन वर्तयति । हस्तवर्तं वर्तयति । करवर्तं वर्तयति । हस्तेन गृह्णाति, ह
ग्राहं गृह्णाति । करग्राहं गृह्णाति ॥ १५५८ ॥

१५५९—स्वे पुषः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४० ॥

स्वप्नार्थक करण उपपद होती पुष धातु से णमुल् प्रत्यय हो । स्वप्
आत्मा आत्मीय ज्ञाति और धन का वाची है । स्वेन पुष्णाति, स्वपोषं पुष्णाति । आ
पोषं पुष्णाति । पितृपोषम् । मातृपोषम् । धनपोषम् । रैपोषम् पुष्णाति ॥ १५५९ ॥

१५६०—अधिकरणे बन्धः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४१ ॥

अधिकरणवाची उपपद होती बन्ध धातु से णमुल् प्रत्यय हो । चक्रे बध्ना
चक्रबन्धं बध्नाति । शट्कबन्धं बध्नाति । मुष्टिवन्धं बध्नाति । पहिये गाड़ी वा स
में बांधता हो वैसे बांधता है ॥ १५६० ॥

१५६१—संज्ञायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४२ ॥

संज्ञाविषय में बन्ध धातु से णमुल् प्रत्यय हो । कौच इव बध्नाति कौचबन्धं बध्नाति । कौचबन्धं बध्नाति । मयूरिका बन्धं बध्नाति । अटालिकाबन्ध बध्नाति । ये बन्धनई के नाम हैं । कौच पक्षी मोरिनो और अटारो के समान बांधना हो वैसे बांधता है ॥ १५६१ ॥

१५६२—कर्त्तृजीवपुरुषयोर्नशिवहोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४३ ॥

कर्त्तृवाचक जीव और पुरुष शब्द उपपद ही तो यथासंख्य करके नश्च और वह धातु से णमुल् प्रत्यय हो । जीवनाशं नश्यति । जीव सो नष्ट होता है । पुरुष बाहं वहति । पुरुष की बहाई वहता है अर्थात् पुरुष जैसे जहां तहां वस्तु लेजाने लेआने में वहता रहता है वैसे वहता है । कर्त्तृवाचक के ग्रहण से यहां न हुआ । जीवेन नष्टः । पुरुषेष्टोः । यहाँ जीव और पुरुष ये कारण हैं इस से णमुल् न हुआ । किन्तु क्त प्रत्यय हो जाता है ॥ १५६२ ॥

१५६३—जदूर्ध्वशुषिपूरोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४४ ॥

जदूर्ध्वशब्द कर्त्तृवाचक उपपद होतो शुष और पूरी धातु से णमुल् प्रत्यय हो । जर्ध्वशोषं शुषति । जपर की सूखता हो वैसे सूखता है । हृच्च आदि जपर ही को खड़े २ शुषते हैं । जर्ध्वपूरं पूर्यते षटः । जपर की पूरा होता हो वैसे षट पूरा होता है अर्थात् षट आदि का जपर को मुख होतो वर्षा आदि की जल से परि-पूर्ण भर जाता है ॥ १५६३ ॥

१५६४—उपमाने कर्त्तृणि च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४४ ॥

उपमानवाची कर्त्ता वा कर्म उपपद होतो धातु से णमुल् प्रत्यय हो । कर्म, वृत्तमिव निदधाति वृत्तनिधायं निदधाति जलमाची के समान धरता हो वैसे जल को धरता है । कर्त्ता, अजइव नश्यति अजनाशं नश्यति । छेरी के समान नष्ट होता हो वैसे नष्ट होता है ॥ १५६४ ॥

१५६५—कषादिषु यथाविध्यनुप्रयोगः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४६ ॥

उक्तकषादिकों में यथाविधि अनुप्रयोग हो । अर्थात् जिस २ धातु से णमुल् कहा है उसी का पीछे से प्रयोग हो । इसी क्रम से कषादि की में उदाहरण दिये हैं जैसे । निमूक्तकाषं कषति इत्यादि ॥ १५६५ ॥

१५६६—उपदंशस्तृतीयायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४७ ॥

तृतीयान्त उपपद हो तो समानकर्त्तृकी में जो पूर्वकाल विषयक अर्थ में

उपपूर्वक दंश धातु उस से णसुल् प्रत्यय हो । यहाँ से णसुल् के प्रकरण की समाप्ति तथा पूर्वकाल का संबन्ध है । मूलकेनोपदंश्च भुङ्क्ते मूलकोपदंश्च मूलकेनोपदंश्च भुङ्क्ते । मूरी को काटके उससे भोजन करता है । यहाँ मूलकमुपदंशति । इस अदृष्टा में मूलकशब्द उपदंश धातु का कर्म भी है तथापि भुजि क्रिया का करण होने से तृतीयान्त होजाता है । यद्यपि मूलक शब्द का उपपद के साथ शाब्दसंबन्ध नहीं है तथापि कर्म होनेसे उसका अर्थकृतसंबन्ध है । इतने ही सामर्थ्य से (मूलक टा + उपदंश्च) इस से णसुल् प्रत्यय होता है और (सामा० तृतीया०) इस सूत्र सामर्थ्य से उपपद समास होता तथा प्रागे भी उसी सूत्र से विकल्प करके उपपद समास होता है ॥ १५६६ ॥

१५६७—हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४८ ॥

तृतीयान्त उपपद हो तो अनुप्रयोग जो धातु उस से जिन का समान कर्म है उन हिंसार्थकों से णसुल् प्रत्यय हो । दण्डोपघातं गाः कलयति । दण्डेनोपघातं गाः कलयति दण्ड से पोटाकर गौओंकी गिनता है । दण्डनाडं हृषं वध्नाति । दण्डेनोपघातं हृषं वध्नाति । समानकर्मकग्रहण से यहाँ नहीं होता । अश्वं दण्डेनोपहत्य गाः कलयति । यहाँ उपपूर्व हन् और कल धातु का एक कर्म नहीं है ॥ १५६७ ॥

१५६८—सप्तम्यां चोपपीडरूपकर्षः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ४९ ॥

सप्तम्यन्त और तृतीयान्त उपपद हो तो उपपूर्वक पीड रूप और कर्ष धातु से णसुल् प्रत्यय हो । पार्श्वोपपीडं शिते । पार्श्वोरुपपीडं शिते । पांजर की ओर में दाव कर सीता है । पार्श्वार्यामुपपीडं शिते । पांजर से दावकर सीता है । वजीपरोधं गाः कलयति । वृज उपरोधं गाः कलयति । गोड़ा में रोक कर गौओंकी गिनता है । वजिनोपरोधं गाः कलयति । गोड़ासे रोक कर गौओंकी गिनता है । पाण्यएकषं धानाः संगृह्णाति । पाण्युपकर्षं धानाः संगृह्णाति । हाथ में मीज कर धानों का संग्रह करता है । पाणिनोत्कर्षं धानाः संगृह्णाति हाथ से मीज कर धानों का संग्रह करता है ॥ १५६८ ॥

१५६९—समासत्तौ ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५० ॥

समासत्ति (संनिकट) अर्थ गम्यमान हो और तृतीयान्त वा सप्तम्यन्त उपपद हो तो धातु से णसुल् प्रत्यय हो । केशग्राहं युध्यन्ते । केशेषु ग्राहम् । केशे ग्राहं युध्यन्ते । हस्तग्राहम् । हस्तेषु ग्राहम् । हस्तैर्ग्राहं युध्यन्ते । अर्थात् युद्ध की प्रवृत्ति से अत्यन्त निकट हो कर लड़ते हैं ॥ १५६९ ॥

१५७०—प्रमाणे च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५१ ॥

प्रमाण गम्यमान हो और द्वितीयान्त वा सप्तम्यन्त उपपद हो तो धातु से णसुल् प्रत्यय हो । दाङ्गुलोत्कर्षम् । दाङ्गुल उत्कर्षम् । दाङ्गुलेनोत्कर्षम् । वा काष्ठं क्विन्ति । दो अंगुल के प्रमाण में वा दो अंगुल के प्रमाण से काष्ठ को काटता है इत्यादि ॥ १५७० ॥

१५७१—अपादाने परीक्षायाम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५२ ॥

अपादान उपपद हो तो परीक्षा (सकओर से चाँहना) अर्थ में धातु से णसुल् प्रत्यय हो । शय्याया उच्यते, शय्योत्थायं धावति । खाट से उठा और भजा अर्थात् और कुछ काम नहीं देखता है । जहाँ परीक्षा नहीं है वहाँ नहीं होता जैसे आसनादु त्थाय गच्छति ॥ १५७१ ॥

१५७२—द्वितीयायां च ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५३ ॥

द्वितीयान्त भी उपपद हो तो परीक्षा अर्थ में धातु से णसुल् प्रत्यय हो । यष्टिग्राहं युध्यन्ते । लोष्टग्राहं युध्यन्ते । युद्ध कौ शीघ्रता में और शस्त्रों को छोड़ लाठी वा डेल लेकर युद्ध करते हैं ॥ १५७२ ॥

१५७३—अपगुरोर्णमुलि ॥ अ० ॥ ६ । १ । ५३ ॥

णसुल् परे हो तो अपपूर्वक गुरी धातु के एच् को विकल्प करके आकारादेश हो [गुरी] उच्यमने । असिमपगूर्य युध्यन्ते, अस्यपगोरम् । अस्यपगारं युध्यन्ते ॥ १५७३ ॥

१५७४—स्वाङ्गेऽभ्रुवे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ५४ ॥

अभ्रुव (अस्थिर) स्वाङ्गवाची द्वितीयान्त उपपद हो तो धातु से णसुल् प्रत्यय हो । अक्षिनिकाणं जल्यति । आंख निकाल कर कहता है । भ्रूविक्षेपं कथयति । भौंहों को फरका कर कहता है । अभ्रुव ग्रहण से यहाँ न हुआ । उत्त्रिप्य शिरः कथयति । शिर पटक के कहता है ॥ १५७४ ॥

१५७५—परिक्षिप्यमाने च ॥ अ० । ३ । ४ । ५५ ॥

परि क्षिप्यमान अर्थात् सब प्रकार से विशेष पीड़ा को प्राप्त जो स्वाङ्ग तद्वाचक जो द्वितीयान्त सो उपपद हो तो धातु से णसुल् प्रत्यय हो । उरःपेषं युध्यन्ते । छाती पीसते लड़ते हैं । उरः प्रतिपेषं युध्यन्ते । शिरःपेषं युध्यन्ते । शिरः प्रतिपेषं युध्यन्ते । समस्त शिर पीसे लड़ते हैं । यह भ्रुवार्थ आरम्भ है ॥ १५७५ ॥

१५७६—विशिपतिपदिस्क्रन्दां व्याप्यमानासेव्यमानयोः ॥ अ० ॥ ३।४।५६ ॥

व्याप्यमान (व्याप्ति को प्राप्त) और आसेव्यमान (सेवा को प्राप्त) अर्थ गम्यमान ही द्वितीयान्त उपपद होते। विश आदि धातुओं से णमुल् प्रत्यय ही। विश आदि क्रियाओं से जो गेह्णादि द्रव्यों का निश्शेष सबन्ध है सो यहाँ व्याप्ति और क्रिया का जो बार-बार होना वह आसेवा समझनी चाहिये। द्रव्य में व्याप्ति और क्रिया में आसेवा रहती है। विश, गेह्णानुप्रवेशमास्ते। घर २ में प्रवेश करके बैठता है। वा घर में पैठ २ बैठता है। यहाँ समास से ही व्याप्ति और आसेवा उक्त है। इस से (नित्य०) सूत्र से णमुल् प्रत्ययान्त का द्विवचन नहीं होता और उपपदसमास का जहाँ विकल्प पक्ष है वहाँ व्याप्ति अर्थ में द्रव्य को द्विवचन और आसेवा में क्रिया को द्विवचन होता है। जैसे व्याप्ति, गेहं गेहमनुप्रवेशमास्ते। आसेवा, गेहमनुप्रवेशमनुप्रवेशमास्ते। पति, गेहानुप्रपातमास्ते। गेहं गेहमनुप्रपातमास्ते। गेहमनुप्रपातमनुप्रपातमास्ते। गेहानुप्रपादमास्ते। गेहं गेहमनुप्रपादमास्ते। गेहमनुप्रपादसनुप्रपादम्। स्क्रन्दिर, गेहानुस्कन्दमास्ते। गेहं गेहमवस्कन्दम्। गेहमवस्कन्दमवस्कन्दम्। व्याप्यमान आसेव्यमान अर्थों के ग्रहण से यहाँ न हुआ। गेहमनुप्रविश्य भुङ्क्ते। आसेवा आभीक्ष्ण्य है और आभीक्ष्ण्य अर्थ में णमुल् कहा है इस लिये यह सूत्र द्वितीयोपपद होने से उपपद समास के लिये है ॥ १५७६ ॥

१५७७—अस्यतिट्षोः क्रियान्तरे कालेषु ॥ अ० ॥ ३।४।५७ ॥

कालवाची द्वितीयान्त उपपद होते क्रिया का व्यवधान कराने वाला जो अर्थ उस में वर्तमान जो अस्यति, ट्ष, धातु उन से णमुल् प्रत्यय ही [असु] चपचे द्रव्यहात्यासंगाः पाययति। हाहमत्यासं गाः पाययति। दो दिन छोड़ के गौओं को पियाता है। यहाँ द्रव्यह शब्द कालवाची द्वितीयान्त है। अतिपूर्वक अस धातु पान क्रिया के व्यवधान में वर्तमान है। इसी प्रकार द्रव्यह तर्षं गाः पाययति। द्रव्यहं तर्षं गाः पाययति। यहाँ भी जानना चाहिये। अस्यति ट्ष, ग्रहण से यहाँ न हुआ। द्रव्यहमुषोष्य भुङ्क्ते। क्रियान्तरग्रहण से यहाँ न हुआ। अहरत्यस्य मगधान् गतः। कालग्रहण से यहाँ न हुआ। योजनमत्यस्य जलं पिबति। यहाँ अध्वविषयक योजन शब्द उपपद है ॥ १५७७ ॥

१५७८—नाम्न्यादिशिग्रहोः ॥ अ० ॥ ३।४।५८ ॥

द्वितीयान्त नाम शब्द उपपद हो तो आङ्पूर्वक दिश् और ग्रह धातु से णमुल् प्रत्यय ही। नामादिष्ठाचष्टे, नामादिगमाचष्टे। नामगृहीत्वाचष्टे, नामग्राहमाचष्टे नामउच्चारण कर वा नाम लेकर कहता है ॥ १५७८ ॥

१५७६—अव्यये यथाभिप्रेताख्याने कृञ् कृत्वाणमुलौ ॥३॥४॥५६॥

अयथाभिप्रेताख्यान (अभिप्रायविरुद्ध अर्थात् अप्रिय वाक्य को ऊचे स्वर से कहना और प्रिय वाक्य को नीचे स्वर से कहना अर्थगम्यमान हो और अव्यय उपपद हो तो कृञ् धातु से कृत्वा और णमुल् प्रत्यय हो । उच्चैः कृत्य । उच्चैः कृत्वा । उच्चैः कार-मप्रियमाचष्टे । नीचैः कृत्य । नीचैः कृत्वा । नीचैः कारम् । प्रियं ब्रवीति अप्रिय यको ऊचे स्वर से और प्रिय को नीचे स्वर से अर्थात् धीरे से कहता है । यहां कृत्वा ग्रहण (त्वा च) इस सामासिक सूच से समास होने के लिये है ॥ १५७६ ॥

१५८०—तिर्य्यच् अपवर्गे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६० ॥

अपवर्ग (समाप्ति) अर्थ गम्यमान हो और तिर्य्यच् शब्द उपपद हो तो कृञ् धातु से कृत्वा और णमुल् प्रत्यय हो । तिर्य्यक् कृत्य तिर्य्यक्कृत्वा तिर्य्यक्कारं कार्यं गतः । कार्य को समाप्त करके गया । जहां अपवर्ग न है वहां नहीं होते । तिर्य्यक् कृत्वा (१५१६) काष्ठं गतः । काठ को तिरछा करके गया । यहां समाप्तिकथन नहीं है ॥ १५८० ॥

१५८१—स्वाङ्गे तस्प्रत्यये कृञ्चोः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६१ ॥

तस् प्रत्ययान्त स्वाङ्ग वाचो उपपद हो तो कृञ् धातु से कृत्वा और णमुल् प्रत्यय हो । सुखतः कृत्य गतः । सुखतः कृत्वा गतः । सुखतः कारं गतः । सुख से कर गया । पृष्ठतो भूय । पृष्ठतो भूत्वा । पृष्ठतो भावं गतः । पीठ से हो के गया । स्वाङ्गग्रहण से यहां न हुये । सर्वतः कृत्वा गतः । तस् ग्रहण से यहां न० । मुखीकृत्य गतः । यहां (स्त्रेण०८५६) चि प्रत्यय होता है ॥ १५८१ ॥

१५८२—नाधार्यप्रत्यये च्यर्थे ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६२ ॥

च्यर्थ नाधार्यप्रत्ययान्त शब्द उपपद हो तो कृञ् और भू धातु से कृत्वा और णमुल् प्रत्यय हो । अनाग नाना कृत्वा गतः, नाना कृत्वा गतः । नानाकृत्य गतः । नानाकारं गतः । घोड़े को बहुत करके गया विनाकृत्वा गतः । विनाकृत्य गतः । विनाकारं गतः । नानाभूय गतः । नानाभूत्वा गतः । नानाभावं गतः । विनाभूय गतः । विनाभूत्वा गतः । विनाभावं गतः । द्विधाकृत्य । द्विधाकृत्वा । द्विधाकारं गतः । द्विधाभूय । द्विधाभूत्वा । द्विधाभावं गतः । द्वैधं कृत्य । द्वैधं कृत्वा । द्वैधं कारं गतः । द्वैधं भूय । द्वैधं भूत्वा । द्वैधं भावं गतः । प्रत्ययग्रहण से यहां नहीं होते । हिरक् कृत्वा विना करके । पृथक् कृत्वा गतः । अलग करके गया । च्यर्थग्रहण से यहां न० । नानाकृत्वा काष्ठानि गतः । काठी को फैला के गया ॥ १५८२ ॥

१५८३—तूष्णीमि भुवः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६३ ॥

तूष्णीं शब्द उपपद हो तो भू धातु से क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो । तूष्णींभूत्वा । तूष्णींभावं स्थितः । चुप होकर ठहर रहा ॥ १५८३ ॥

१५८४—अन्वच्यानुलोम्ये ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ६४ ॥

अन्वच् शब्द उपपद हो तो भू धातु से आनुलोम्य (अनुकूलपन अर्थात् दूसरे के चित्तकी प्रसन्नता रखने) अर्थ में क्त्वा और णमुल् प्रत्यय हो । अन्वग्भूय आस्ते । अन्वग्भूत्वास्ते । अन्वग्भाषमास्ते । दूसरे के अनुकूल होकर बैठता है । आनुलोम्य ग्रहण से यहां नहीं होते । अन्वग् भूत्वा (१५१६) पठति । पीछे होकर पढ़ता है ॥ १५८४ ॥

इत्याख्यातः प्रचारितगिराख्यात आख्यातिकेन

प्रोक्तः पातञ्जलस्य मतं प्रेक्ष्य दाक्षीणतस्य ।

वेदाधौनान्नियतविषयस्थानमारोध योगान्

विज्ञायन्तां निगमवचनान्याशु जिज्ञासुभिर्यत् ॥ १ ॥

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृत आख्यातिको

ग्रन्थः पूर्तिमगात् ॥

भूमिका

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	२	उस	उन	५	८	युरुणुचुणुजुणु	युरुणुचुणुजुणु
३	२	संभवित	संभावित (नोट)			इन कः	इन सात
४	२७	युरुणुचुणुजुणु	युरुणुचुणुजुणु	६	३	सास्ते	सान्ते
४	२६	न्ताश्वा	न्ताश्च	७	८	दश	दिश

आख्यातिक

५	१	दीर्घी	दीर्घी	८४	३	संस्थानेबन्धुषु	संस्थाने
१२	२१	अभवतम्	अभवत			बन्धुओं का समूह	बन्धुषु च
१३	२०	अदेश	आदेश				समूहऔरबन्धुचेष्टा
१८	२८	वा	व	८४	१७	[टुवम]	[टुवसु]
२१	४	असिद्ध	असिद्ध (नोट)	८७	३	गूह्यन्ताः	गूह्यन्ताः
२१	६	स्थानित्	स्थानिवत् (नोट)	८४	७	वधासिष्ट	अधासिष्ट
२३	१४	क्लिन्दिता	क्लिन्दिता	८४	१०	ग्लयातु	ग्लायतु
२३	२०	प्रा है	प्राप्त है	८६	४	तिष्ठान्ति	तिष्ठन्ति
२५	८	उदात्तेत	अनुदात्तेत	८८	२७	सूर्यात्	सूर्यात्
३०	२२	क्षमहे	क्षमहे	१००	७	स्ययेते	स्ययेते
३१	२०	श्रीक्रीताम्	श्रीक्रीताम्	१०४	१	अत्मने	आत्मने
३६	२७	अलुचुत्	अलुचुत्	१०७	११	सत्यात्	सज्यात्
३७	२३	आच्छेत्	आच्छेत्	११०	१८	[टुवप]	[टुवप]
४२	१५	औटीत्	आटीत्	११०	२८	उवाह	उवाह
४५	१	लाद्यत्	लद्यात्	१११	२	अवाचात्	अवाचीत्
		[कडि]	[कड]	११२	१८	लिट	लिटि
५४	३०	एत्वाभ्यस	एत्वाभ्यास	११८	६	व्यक्तयां	व्यक्तायां
५५	४	यातुट्	यासुट्	१२०	२	ख्याप्यति	ख्यास्यति
६१	४	चारिषति	चारिषाति	१२१	१८	चसंमे	चकंमे
६२	२५	पर्वपि	पर्वति	१२२	१८	अवादेश	अयादेश
८२	१७	समी दर्शने	शमी दर्शने	१४०	८	अविभताम्	अविभीताम्

शुद्धिपत्रम् ॥

१४३	११	धत्ता	धत्तः	२६४	२०	उसर्ग	उपसर्ग
१४७	२०	पुष्य	पुष्प	२६४	२३	उसर्ग	उपसर्ग
१५०	२३	अचूरिष्टि	अचूरिष्ट	२६७	२७	हिषाहस्तं	हिषाहस्तं
१५२	२५	परर्थन्त	पर्यन्त	२७३	२६	[हुदाज्]	[हुदाज्]
१५४	२५	पृष्यति	हृष्यति	२८३	२२	से	सस्त
		पृष्याति	हृष्याति	२८५	८	तिलोकं	पतिलोकम्
		पृष्यतु	हृष्यतु	२८८	२२	श्लोकारः	श्लोककारः
१५५	१	अदाप्सीत्	अदाप्सीत्	३०४	१२	ध्वंसते	ध्वंसते
१५७	२१	क्लेदिता	क्लेदिता	३१२	२८	कित्	कृिप्
१५८	१५	सिञ्	षिञ्	३१७	२१	पक्कान्	पक्कवान्
१५८	१०४	दिवादिगणः	स्वादिगणः	३१८	१८	अधमर्ण्य	आधमर्ण्य
१६०	१०४	दिवादिगणः	स्वादिगणः	३२८	२१	धैभ्यश्च	धैभ्यः
१६१	१७	गतौ च	गतौ च	३३२	२४	तद्गुरु	सगुरुः
१६३	८	अभञ्जत	अभृञ्जत	३३४	१३	नुचापस-	चानुपसर्गस्य
१६३	२८	जज्जा	लज्जा			गंस्य	
१६६	२	और	चौर	३३६	८	अयासौ	आयासौ
१६७	११	तंघात	संघात	३३६	१५	दद्याति	दद्यति
१८०	२१	अशु	अश	३३८	८	वासक	वासकपन्याये
१८२	७	बलना	बोलना			न्याये	
१८१	२	सामान्य	सामान्य	३३८	१६	प्रत्यय	प्रत्यय
१८६	२५	दयति	०	३४१	२२	स्त्र,	सृ
२१२	३	अदेश	आदेश	३४१	२५	कन्	किन्
२१२	२५	अत्व	आत्व	२४८	६	भोक्तुम्	भोक्तुम्
२२५	६	भाषता	भवता	३६३	१०	ज्ञानर्थ	ज्ञानार्थ
२२६	८	विक्रीणीते	विक्रीणीते	३७४	१०	सीता	हीता
२२८	१२	संगत	संगति	३७७	१५	समना	समभना
२४५	१४	रुन्धतस्त्य	रुन्धतस्त्य	३७८	१६	समासर्ग	समास ही तो
२४७	२७	ध्ववसामः	ध्ववसाम			क्ताऔर	क्ताक्ताऔर
२४८	२७	लिप्समान	लिप्समान			ल्यप् ही	ल्यप्
२५२	७	न्तव्यः	गन्तव्यः			तो क्ताकी	
२५४	२	नावक-	नावक-			आप्राप्त	अप्राप्त
		ल्यामि	ल्ययामि	३८३	१४	य की	की
२५६	१	मे	ने (नोट)	३८१	६		

विज्ञापन

नीचे लिखे पुस्तक वैदिक यंत्रालय प्रयाग में मिलेंगे

१	पंचमहायज्ञविधि	१)
२	वर्णोच्चारणशिखा	२)
३	संस्कृतवाक्यप्रबोध	३)
४	व्यवहारभानु	४)
५	संधिविषय	५)
६	नामिक	६)
७	कारकोय	७)
८	सामासिक	८)
९	स्त्रैणतादित	९)
१०	अव्ययार्थ	१०)
११	आख्यातिक	११)
१२	सौवर	१२)
१३	पारिभाषिक	१३)
१४	भ्रमोच्छेदन	१४)
१५	अनुभ्रमोच्छेदन	१५)
१६	सत्यधर्मविचार मेला चांदापुर	१६)
१७	आर्योद्देश्यरत्नमाला	१७)
१८	गोकरुणानिधि	१८)
१९	स्वामिनारायणमतखंडन गुजराती	१९)
२०	स्वामिनारायणमतखंडन संस्कृत और गुजराती	२०)
२१	गोतम अहल्या कथा	२१)
२२	शास्त्रार्थकाशी	२२)

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

एकादशो भागः ॥

॥ सौवरः ॥

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीज्ञतव्याख्यासहितः ।

पाणिनिसुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यामष्टसो भागः ।

पठनपाठनव्यवस्थायामेकादशं पुस्तकम् ।

मनशी समर्थदान के प्रबंध से
वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ ।

—०००—

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि

इस की रजिस्ट्री कराई गई है ॥

संवत् १९३८ कार्तिक कृष्ण १

पहिली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ९)

॥ अथ भूमिका ॥

— २ * ६ —

इस सौवर ग्रंथ के बनाने का मुख्य प्रयोजन यही है कि जिस से सब मनुष्यों की उदात्तादि स्वरों की व्यवस्था का बोध यथार्थ हो जावे । जब तक उदात्तादि स्वरों की ठीक २ नहीं जानते तबतक लौकिक वैदिक वाक्यों वा छन्दों का स्पष्ट प्रिय उच्चारण गान और ठीक २ अर्थ भी नहीं जान सकते । और उच्चारण आदि के यथार्थ होने के बिना लौकिक वैदिक शब्दों से यथार्थ सुखलाभ भी किसी को नहीं होता । देखो इस विषय में प्रमाण ॥

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह सवाग्व-
ज्जो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥ १ ॥

जो शब्द अकारादि वर्णों के स्थान प्रयुक्त पूर्वक उच्चारण नियम और उदात्तादि स्वरों के नियम से विरुद्ध बोला जाता है उस को मिथ्याप्रयुक्त कहते हैं क्यों कि जिस अर्थ को जताने के लिये उस का प्रयोग किया जाता है उस अर्थ को वह शब्द नहीं कहता किन्तु उस से विरुद्ध अर्थान्तर को कहता है । इस लिये उच्चारण किया हुआ वह शब्द अभीष्ट अभिप्राय को नष्ट करने से वज्र के तुल्य वाणी रूप होकर यजमान अर्थात् शब्दार्थसम्बन्ध की सङ्गति करने वाले पुरुष ही को दुःख देता है । अर्थात् प्रयोक्ता के अभिप्राय को बिगाड़ देना ही उस को दुःख देना है । जैसे (इन्द्रशत्रुः) शब्द स्वर के विरोध से ही विरुद्धार्थ हो जाता है । इन्द्र-शत्रुः । यहां तत्पुरुष समास में तो अन्तोदात्त होता है इन्द्र अर्थात् सूर्य का शत्रु मेव बढ़ कर विजयी हो । (इन्द्रशत्रुः) यहां बहुव्रीहि समास में पूर्वपद प्रकृति स्वर से आद्युदात्त स्वर होता है । और शत्रु शब्द का अर्थ यही है कि शान्त करने वा काटने वाला । प्रमाण निरुक्त का—इन्द्रोऽस्य शमयिता वा शातयिता वा । सो तत्पुरुष समास में तो इन्द्र नाम सूर्य का शत्रु शान्त करने वाला मेघ आया और बहुव्रीहिसमास में सूर्य जिस का शत्रु शान्त करने वा काटने वाला है ऐसा अन्य-पदार्थ मेघ आया । जो पुरुष सूर्य का शान्त करने वाला मेघ है इस अभिप्राय से इन्द्रशत्रु शब्द का उच्चारण किया चाहता है तो उस को अन्तोदात्त उच्चारण करना चाहिये परन्तु जो वह आद्युदात्त उच्चारण कर देवे उस का अभिप्राय नष्ट हो जावे क्योंकि आद्युदात्त उच्चारण से बहुव्रीहि समास में मेघ का शान्त करने वा-

काटने वाला सूर्य ठहरेगा । इस लिये जैसा अपना इष्ट अर्थ हो वैसे स्वर और वर्ण का नियमपूर्वक ही उच्चारण करना चाहिये । जब मनुष्य को उदात्तादि स्वरों का ठीक २ बोध हो जाता है तब स्वर लगे हुए लौकिक शब्दों के नियत अर्थों को शीघ्र जान लेता है जैसे किसी एक शब्द की आद्युदात्त स्वरयुक्त देखा तो जान लेगा कि असुक अर्थ में असुक जित् वा नित् प्रत्यय हुआ है इस लिये इस का यही अर्थ होना चाहिये इससे विरुद्ध अर्थ नहीं हो सकता ऐसा निश्चय स्वरज्ञ पुरुष को हो जाता है । जैसे । सकर्त्ता । सकर्त्ता । इन दो वाक्यों में दो प्रकार के स्वर होने से दो ही प्रकार के अर्थ होते हैं पहिले वाक्य में लुट् लकार की क्रिया है । अर्थ—बहु अगले दिन करे गा । और दूसरे में लृट् लृट् प्रत्ययान्त शब्द है । अर्थ—बहु करने वाला पुरुष है । इसी प्रकार इत्यादि एक प्रकार के शब्दों का अर्थ भेद स्वरव्यवस्था के जानने से ही निकलता है जो स्वरव्यवस्था का बोध न हो तो अर्थों का लौट पीट व्यभिचार हो जाने से बड़ा अन्धेर फैल जावे । इसी प्रकार समासों के पृथक् नियत स्वरों का जान के उन २ समासों के नियत अर्थों को शीघ्र जान लेता है अर्थात् उदात्तादि स्वरज्ञानके विना अर्थ की भ्रान्ति नहीं छूटती । और उदात्तादि स्वर बोध के विना वेदमंत्रों का गान और उच्चारण भी यथार्थ नहीं हो सकता क्यों कि षड्जादिस्वर गानविद्या में उपयोगी होते हैं वे उदात्तादि के विना नहीं हो सकते । जैसे—

उच्चौ निषाद गांधारौ नीचाट्षमधैवतौ । शेषास्तु स्वरिताज्ञेयाः ।

षड्जमध्यमपंचमाः ॥ १ ॥

यह वचन याज्ञवल्क्यशिक्षा का है । षड्जादिकों में निषाद और गांधार तो उदात्त के लक्षण से ऋषभ और धैवत अनुदात्त के लक्षण से तथा षड्ज मध्यम और पंचम ये तीनों स्वरितस्वर से गाये जाते हैं । उदात्तादि के विना वेदमंत्रों का उच्चारण भी प्रिय नहीं लगता और जब उदात्तादि के सहित उच्चारण किया जाता है तब अतिप्रिय मनोहर उच्चारण होता है । इस ग्रन्थ में स्वरव्याख्या संक्षेप से की है परन्तु जो मुख्य २ स्वरविषय के पाणिनीय अष्टाध्यायीसूत्र हैं वे सब इस में लिख दिये हैं और सब अष्टाध्यायी की वृत्ति में लिखे जायंगे ॥

इति भूमिका ॥

स्थान महाराणा जी का उदयपुर }
संवत् १८३८ आश्वि ० व० १३ }

(स्वामी) दयानन्दसरस्वती

॥ अथ सौवरः ॥

—८*३—

१—महाभाष्य—स्वयं राजन्त इति स्वरा अन्वग्भवति व्यञ्जनम् ॥

स्वर उन को कहते हैं कि जो बिना किसी के सहाय से उच्चारित और स्वयं प्रकाशमान और व्यञ्जन वे कहते हैं कि जिन का उच्चारण स्वर के आधीन हो ॥ १ ॥

२—उच्चैरुदात्तः ॥ अ० ॥ १ । २ । २६ ॥

किसी एक मुख के स्थान में जिस अच् का ऊँचे स्वर से उच्चारण हो वह उदात्त संज्ञक होता है । जैसे । औपग्वः । यहाँ अण् प्रत्यय का अकार उदात्त हुआ है ॥ २ ॥

महाभाष्य—३—आयामो दारुण्यमणुता

खस्येत्यच्चैःकराणि शब्दस्य ॥

उदात्त स्वर के उच्चारण में इतनी बातें होनी चाहिये (आयामः) शरीर के सब अवयवों को रोक लेना अर्थात् ढीले न रखना (दारुण्यम्) शब्द के निकलते समय तीखा रुखा स्वर निखले और (अणुता खस्य) कण्ठ को रोक के बोलना चाहिये फैलाना नहीं । ऐसे प्रयत्नों से जो स्वर उच्चारण किया जाता है वह उदात्त कहाता है । यही उदात्त का लक्षण है ॥ ३ ॥

४—नीचैरनुदात्तः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३० ॥

जो किसी एक मुख स्थान में नीचे प्रयत्न से उच्चारण किया हुआ स्वर है उस को अनुदात्त कहते हैं । जैसे । औपग्वः । यहाँ जिन के नीचे तिर्की रेखा है वे तीनों वर्ण अनुदात्त हैं ॥ ४ ॥

महाभाष्य—५—अन्वसर्गो मारद्वमुक्ता खस्येति

नीचैःकराणि शब्दस्य ॥

अनुदात्त उच्चारण में (अन्वसर्गः) शरीर के अवयवों को शिथिल कर देना (मारद्वम्) कोमलता सिग्ध उच्चारण करना (उक्ता खस्य) और कण्ठ को कुछ फैला के बोलना । इस प्रकार के प्रयत्न से उच्चारण किये स्वर को अनुदात्त कहते हैं यही इस का लक्षण है ॥ ५ ॥

६—समाहारः स्वरितः ॥ १ । २ । ३१ ॥

उदात्त और अनुदात्त गुण का जिस में मेल हो वह अच् स्वरित संज्ञक होता

है। जो उदात्त स्वर है उस का कोई चिन्ह नहीं होता किन्तु बहुधा स्वरित वा अनुदात्त से पूर्व ही उदात्त रहता है। अनुदात्त वर्ण के नीचे जैसा (क) यह तिर्छा चिह्न किया जाता है और स्वरित के ऊपर (क) ऐसा खड़ा चिह्न किया जाता है। दो वस्तु को मिला के जो बनता है उस का तीसरा नाम रखते हैं। जैसे श्वेत और काला ये रंग अलग २ होते हैं परन्तु जो इन दोनों को मिलाने से उत्पन्न होता है उस को (कलमाष) खाखो वा आसमानी कहते हैं इसी प्रकार यहां भी उदात्त और अनुदात्त गुण पृथक् २ हैं परन्तु जो इन दोनों को मिलाने से उत्पन्न हो उस को स्वरित कहते हैं ॥ ६ ॥

७—तस्यादित उदात्तमर्द्धस्वम् ॥ अ० ॥ १।२।३२ ॥

जो पूर्व सूत्र में स्वरित विधान किया है उस के तीन भेद होते हैं। ह्रस्वस्वरित, दीर्घस्वरित और प्लुतस्वरित। सो इन स्वरितों की आदि में आधी मात्रा उदात्त होती और सब अनुदात्त रहती हैं जैसे । क । क॒न्या । श॒क्ति॒के॒ श॒क्ति॒ । यहां ह्रस्व दीर्घ और प्लुत तीनों क्रम से स्वरित हुए हैं। इस सूत्र में ह्रस्व के कहने से यह सन्देह होता है कि दीर्घस्वरित और प्लुतस्वरित में उदात्त का विभाग न होना चाहिये क्योंकि ह्रस्व संज्ञा से दीर्घ प्लुत संज्ञा भिन्न कालिक है। इसी लिये अर्द्धह्रस्व शब्द के आगे प्रमाण अर्थ में मात्रच् प्रत्यय का लोप महाभाष्यकार ने माना है कि ह्रस्व का अर्द्धभागमात्र अर्थात् आदि की आधी मात्रा ह्रस्व दीर्घ प्लुत किसी में हो उदात्त होजाती है। इस सूत्र के उपदेश करने में प्रयोजन यह है कि जो मिली हुई चीज होती है उस में नहीं जाना जाता कि कौनसा कितना भाग है। जैसे दूध और जल मिला दे तो यह नहीं विदित होता कि कितना दूध और कितना जल है तथा किधर दूध और किधर जल है इसी प्रकार यहां भी उदात्त और अनुदात्त मिले हुए हैं इस कारण जाना नहीं जाता कि कितना उदात्त और कितना अनुदात्त और किधर उदात्त और किधर अनुदात्त है। इस लिये सब के मित्र ही के पाणिनि महाराज ने इस सूत्र का उपदेश किया है जिस से ज्ञात हो जावे कि इतना उदात्त इतना अनुदात्त तथा इधर उदात्त और इधर अनुदात्त है (प्रश्न) जो पाणिनि महाराज सब के ऐसे परम मित्र थे तो इस प्रकार की और बातें क्यों नहीं प्रसिद्ध कीं। जैसे । स्थान करण प्रयत्न नादानुप्रदान आदि (उत्तर) जब व्याकरण अष्टाध्यायी बनाई गई थी उस से पूर्व ही शिवा आदि कई ग्रन्थ बन चुके थे। जिन में स्थान करण आदि का प्रकार लिखा है क्यों कि शब्द के उच्चारण में जितने साधन हैं वे मनुष्य को प्रथम ही जानने चाहिये। और जो बातें उन ग्रन्थों में लिख चुके थे उन को फिर अष्टाध्यायी में भी लिखते

तो पिष्टपेषणदोषवत् पुनरुक्त दोष समझा जाता । इस लिये जो बातें वहां नहीं लिखीं वे यहां प्रसिद्ध की हैं । तथा गणना से भी व्याकरण तीसरा वेदाङ्ग है इस लिये पाणिनि जी महाराज ने सब कुछ अच्छा ही किया है । जो इस सूत्र का प्रयोजन और इस पर प्रश्नोत्तर लिखें है सो सब महाभाष्य में स्पष्ट करके इसी सूत्र पर लिखे हैं * ॥ ७ ॥

८—एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ ॥ अ० ॥ १ । २ । ३३ ॥

दूर से अच्छे प्रकार बल से बुलाने अर्थ में उदात्त अनुदात्त और स्वरित इन तीनों स्वरों का एकश्रुति अर्थात् एक तार अवण हो पृथक् २ सुनने में न आवे ऐसा उच्चारण करना चाहिये । जैसे । आगच्छ भो माणवक देवदत्त ३ । यहां उदात्तानुदात्तस्वरित का पृथक् २ अवण नहीं होता । दूरात् ग्रहण इस लिये है कि । आगच्छ भो भवदेव । यहां उदात्त अनुदात्त और स्वरितों का अलग २ उच्चारण होता है ॥ ८ ॥

९—उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः ॥ अ० ॥ ८ । ४ । ६६ ॥

सब स्वरप्रकरण में यह सामान्य नियम समझना चाहिये कि जो उदात्त से परे अनुदात्त हो तो उसको स्वरित हो जाता है । जैसे । ऋतेन । यहां (ते) उदात्त है उस से परे नकार अनुदात्त को स्वरित हो जाता है । ऋतेन । तथा । गार्ग्यः । यहां गा उदात्त है और (ग्य) अनुदात्त था उस को (र्ग्य) स्वरित हो जाता है । इसी प्रकार उदात्त से परे जहां २ स्वरित आता है वहां २ सर्वत्र असंख्य शब्दों में इसी सूत्र से अनुदात्त को स्वरित जानना चाहिये । और जहां उदात्त से परे अनेक अनुदात्त हों वहां एकको स्वरित औरों को जो होना चाहिये सो आगे लिखेंगे । उदात्त से परे जो अनुदात्त उस से परे उदात्त वा स्वरित होने में विशेष इतना है कि—॥ ९ ॥

१०—नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् ॥

अ० ॥ ८ । ४ । ६७ ॥

उदात्त से परे जिस अनुदात्त को स्वरित विधान किया है यदि उस से परे

* (तस्यादित०) इस सूत्र के व्याख्यान में काशिकाकार जयादित्य और भट्टोजिदीक्षित आदि जीनों ने लिखा है कि इस सूत्र में ऋस्वग्रहण शास्त्रविरुद्ध है सो यह केवल उन की भूल है क्यों कि जो ऋस्वग्रहण का कुछ प्रयोजन नहीं होता तो महाभाष्यकार अवश्य प्रसिद्ध कर देते उन्हीं ने तो की इस में सन्देह हो सकता है उस का समाधान किया है कि अर्हंरुख शब्द के आगे मात्रच् प्रत्यय का लोप जानो जिस से दीर्घ पुंत् स्वरितमें भी उदात्त का विभाग हो जावे । ऋस्वस्यार्हमर्हंरुखम् । एक मात्रा का ऋस्व है उस की आधी मात्रा जो आदि में है वह उदात्त और शेष इस से परे सब अनुदात्त है यह बात इस (अर्हंरुख) के ग्रहण ही से जानी गई ॥

उदात्त वा स्वरित हो तो उस अनुदात्त को स्वरित न हो । परन्तु गार्ग्य, काश्यप, गालव इन ऋषियों के मत को छोड़ के अर्थात् इन तीनों के मत में तो उस अनुदात्त को भी स्वरित हो जावे कि जिस से परे उदात्त वा स्वरित हो । परन्तु यह गार्ग्य आदि ऋषियों का मत वेद में प्रवृत्त नहीं होता क्योंकि वेद सनातन हैं वहां किसी का मत नहीं चलता । लौकिकप्रयोगों में गार्ग्य आदि का मत चल जाता है । वेद में सर्वत्र उदात्त स्वरितोदय हो तो भी अनुदात्त ही बनारहता है जैसे । कस्य नूनं कतमस्यान्तानां मनामहे चारु देवस्य नाम । यहां । देवस्य नाम । नाम शब्द आद्युदात्त के परे होनेसे भी 'व' उदात्त से परे 'स्य' अनुदात्त को स्वरित नहीं हुआ । तथा । नव्यं तदुक्त्यम् । यहां तकार उदात्त से परे दु अनुदात्त की आगे 'क्य' स्वरित होने से भी स्वरित नहीं होता । इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये । लौकिक उदाहरण । गार्ग्य ऋषिः । यहां गार्ग्य और ऋषि दोनों शब्द आद्युदात्त हैं । ऋकार उदात्त के उदय में अनुदात्त 'ग्य' को स्वरित नहीं होता । गार्ग्य ऋषिः । और गार्ग्य आदिके मत में । गार्ग्य ऋषिः । ऐसा भी होता है । अब एकश्रुतिस्वरविषय में लिखते हैं ॥ १० ॥

११—यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु ॥ अ० । १ । २ । ३४ ॥

यज्ञकर्म अर्थात् यज्ञ संबन्धी कर्म करने में जो मंत्र पढ़े जाते हैं वहां उदात्त अनुदात्त और स्वरित को एकश्रुतिस्वर ही उदात्तादि का पृथक् अवण न हो परन्तु जप करने में तथा न्यूङ्ख किसी प्रकार के वेद के स्तोत्रों का नाम है वहां और सामवेद में उदात्तादि के स्थान में एकश्रुति न हो किन्तु तीनों स्वर पृथक् बोले जावें जैसे । सभिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्वोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ १ ॥ इत्यादि मंत्र होम करते समय स्वरभेद के बिना ही पढ़े जाते हैं । तीनों स्वर के विभाग से वेदमंत्रों का पाठ होना चाहिये इस कारण यज्ञकर्म में भी पृथक् उच्चारण प्राप्त था इस लिये इस सूत्र का आरम्भ है ॥ ११ ॥

१२—उच्चैस्तरां वा वषट्कारः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३३ ॥

जो यज्ञकर्म में वषट्कार शब्द है वह विकल्प करके उदात्ततर ही और पक्ष में एकश्रुति स्वर होता है । जैसे । वषट्कारैः सरस्वती । वषट्कारैः सरस्वती । यहां उदात्त और एकश्रुति दोनों का चिह्न न होने से एक ही प्रकार का स्वर दीख पड़ता है परन्तु उच्चारण में भेद जान पड़ता है ॥ १२ ॥

१३—विभाषा छन्दसि ॥ अ० ॥ १ । २ । ३६ ॥

वेदमंत्रों के सामान्य उच्चारण करने में उदात्त अनुदात्त और स्वरित को एक-

श्रुति स्वरविकल्प करके होता है । एकश्रुतिपक्ष में उदात्तादि का भिन्न २ उच्चारण नहीं होता । सो ये दो पक्ष तीन वेदों में घटते हैं । सामवेद में तीनों स्वर भिन्न २ उच्चारण किये जाते हैं क्योंकि (११) सूत्र से सामवेद में एकश्रुति होने का निषेध कर चुके हैं ॥ १२ ॥

१४ - न सुब्रह्मण्यायां स्वरितस्य तूदात्तः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३७ ॥

जो सुब्रह्मण्या ऋचा में यज्ञकर्म में पूर्वसूत्र से एकश्रुति स्वर प्राप्त है सो न ही किन्तु जो उस में स्वरित वर्ण हैं उन के स्थान में उदात्त हो जावे । सुब्रह्मण्या एक ऋचा का नाम है । उस का व्याख्यान शतपथब्राह्मण में तृतीय काण्ड तृतीय प्रपाठक के प्रथम ब्राह्मण में सत्रहवीं कण्डिका से लेके बीसवीं कण्डिका पर्यन्त किया है । उस ऋचा में जित ने शब्द हैं उन सब में स्वर का विशेष नियम समझना चाहिये ॥

भा०—सुब्रह्मण्यायामोकार उदात्ता भवति ॥

सुब्रह्मन् शब्द से साध्वर्ष में यत् प्रत्यय होके स्वरितान्त होता है । उस का टाप् और आकार के साथ एकादेश हो के स्वरित हो उस स्वरित को इस सूत्र से उदात्त आदेश हो जाता है और तीन वर्ण अनुदात्त रहते हैं । सुब्रह्मण्योम् ॥

भा०—आकार आख्याते परादिश्च वाक्यादौ च द्वे द्वे ॥

जहां आख्यात क्रिया परे हो वहां उस से पूर्व का आकार और उस क्रिया का आदि वर्ण उदात्त होता है जैसे । इन्द्र आगच्छ । हरिव आगच्छ । यहां ऐसा समझो कि (इन्द्र) और (हरिवः) शब्द आमंत्रित होने से आयुदात्त हैं उन के दूसरे वर्ण अनुदात्त हैं उन को उदात्त से परे स्वरित होजाता है । उस स्वरित को इस सूत्र से उदात्त करते हैं । इस प्रकार इन्द्र शब्द सब उदात्त और हरिव शब्द में भी जो दो उदात्त और वकार अनुदात्त है उस को पूर्व उदात्त के असिद्ध मानने से स्वरित नहीं होता । आगच्छ । में आकार तो प्रथम ही उदात्त है उस से परे दोनों अक्षर अनुदात्त हैं । आकार उदात्त से परे गकार अनुदात्त को स्वरित हो के इस सूत्र से स्वरित को उदात्त हो जाता है । इस प्रकार । इन्द्र आगच्छ इस वाक्य में एक ककार अनुदात्त और चार वर्ण उदात्त रहते हैं तथा । हरिव आगच्छ इस वाक्य में वकार ककार दो वर्ण अनुदात्त और चार वर्ण उदात्त रहते हैं । सुब्रह्मण्यो ३ मिन्द्र आगच्छ हरिव आगच्छ मेधातिथ्यो मे षट्षण्णश्वस्य मे ने गौरावस्कृन्दिन्नहल्यायै जार । कौशिकब्राह्मणगीतमनुवाण श्वः सुत्यामागच्छमध्वन् ॥ १ ॥ मेधातिथ्यो मे ष । यहां आमंत्रित मे ष शब्द के परे पूर्व सुबन्त को पराङ्गवत्

आद्युदात्त ही के सब अक्षर अनुदात्त हो जाते हैं। फिर 'म' उदात्त से परे 'धा' अनुदात्त को स्वरित होकर उस स्वरित को इस सूत्र से उदात्त होके आदि में दो उदात्त और चार वर्ण अनुदात्त रहते हैं। इसी प्रकार । वृषण्श्वस्यमे न । गौरावस्कन्दिन् । अहल्याये जार । कौशिकब्राह्मण गीतम् ब्रुवाण । इन सब में दोर आदि में उदात्त और सब वर्ण अनुदात्त रहते हैं। श्वस् और सुत्या शब्द अन्तोदात्त हैं। श्वस् उदात्त शब्द से परे सु अनुदात्त को स्वरित होके उदात्त हो जाता है इस प्रकार तीनों उदात्त रहते हैं। श्वः सुत्याम् । आगच्छ मध्वन् । यहां भी उदात्त आकार से परे गकार अनुदात्त को स्वरित होके उदात्त हो जाता है। मध्वन् शब्द आमंत्रित के होने से सब अनुदात्त हो जाता है। यहां जितने पदों का व्याख्यान किया है वे सब सुब्रह्मण्या ऋचा के ही हैं। अब आगे एक अपूर्व बात लिखते हैं कि जो इस सूत्र से भी सिद्ध नहीं है ॥ १४ ॥

१५—वा०—सुत्यापराणामन्तः॥

सुत्या शब्द जिन से परे हो उन को अन्तोदात्त हो। इति सुत्याम् । यह सुत्याम् यहां इति, यह शब्दों को अन्तोदात्त होके उस से परे 'सु' अनुदात्त को स्वरित और स्वरित को उदात्त हो जाता है ॥ १५ ॥

१६—वा०—असावित्यन्तः ॥

वाक्य में जो प्रथमान्त पद है वह अन्तोदात्त हो। गार्ग्यो यजते । गार्ग्य शब्द प्रथम आद्युदात्त प्राप्त है उस का बाधक यह अन्तोदात्त हो के उस उदात्त से परे यकार को स्वरित और स्वरित को इस से उदात्त हो जाता है और (यजते) क्रिया में अन्त्य के दो वर्ण अनुदात्त हो जाते हैं ॥ १६ ॥

१७—वा०—असुष्येत्यन्तः ॥

असुष्य यह षष्ठी के एक वचन का सकेत है। जो षष्ठीकवचनान्त पद है वह अन्तोदात्त हो जैसे। दाक्षेः पिता यजते । यहां दाक्षि शब्द षष्ठी का एकवचन है उस इज् प्रत्ययान्त को आद्युदात्तस्वर प्राप्त है उस को अन्तोदात्त हो जाता है और पिता शब्द लृच् प्रत्ययान्त होने से अन्तोदात्त ही है। अन्तोदात्त दाक्षि शब्द से परे 'पि' अनुदात्त को स्वरित हो के उदात्त और अन्तोदात्त पितृ शब्द से परे अनुदात्त यकार को स्वरित होकर उदात्त हो जाता है। इस प्रकार मध्य में चार उदात्त तथा आदि में एक अन्त में दो अनुदात्त रहते हैं। जैसे दाक्षेः पिता यजते ॥ १७ ॥

१८—वा०—स्थान्नस्योपोत्तमंचान्त्यश्च ॥

जहां षष्ठी का एकवचनस्थान्त हो वहां उपोत्तम अर्थात् तृतीय वा चतुर्थ वर्ण

उदात्त होता है और उस शब्द को भी अन्तोदात्त हो जाता है । गार्ग्यस्य पिता यजते । यहां तृतीय वर्ण (स्य) और द्वितीय (ग्य) को उदात्त और (पिता यजते) यहां पूर्ववत् उदात्त होता है । इस लिये पांच वर्ण मध्य में उदात्त और आदि में एक अन्त में दो अनुदात्त रहते हैं । जैसे । गार्ग्यस्य पिता यजते । वात्स्यस्य पिता यजते ॥ १८ ॥

१६—वा०—वा नामधेयस्य ॥

जो किसी के नामवाची स्यान्त षष्ठ्येकवचन में उपोत्तम तृतीय वर्ण आदि हैं वे विकल्प करके उदात्त होते हैं पक्ष में जैसा प्राप्त है वैसा बना रहता है । देव दत्तस्य पिता यजते । यहां दत्तस्य ये तीनों उदात्त और । पिता यजते । यहां पूर्ववत् उदात्त होके मध्य में छः वर्ण उदात्त और आदि अन्त में दो अनुदात्त हो जाते हैं जैसे । देवदत्तस्य पिता यजते । यज्ञदत्तस्य पिता यजते । और पक्ष में देवदत्त शब्द अन्तोदात्त है सो ज्यों का त्यों ही बना रहता है और । पिता यजते यहां पूर्ववत् स्वरित को उदात्त हो जाता है जैसे । देवदत्तस्य पिता यजते ॥ १९ ॥

२०—देवब्रह्मणोरनुदात्तः ॥ अ० ॥ १ । २ । ३८ ॥

भा०—देवब्रह्मणोरनुदात्तत्वमेके ॥

पूर्वसूत्र से सुब्रह्मण्या ऋचा में देव और ब्रह्मन् शब्द के स्वरित को उदात्त पाता है सो न ही किन्तु उस स्वरित को अनुदात्त ही होजावे । भाष्यकार का अभिप्राय यह है कि जो देव और ब्रह्मन् शब्द को अनुदात्त कहते ही सो किन्हीं आचार्यों का मत है अर्थात् विकल्प करके होना चाहिये । देव और ब्रह्मन् शब्द आमंत्रित हैं इस से विशेषवचन आमंत्रित ब्रह्मन् शब्द के परे पूर्व आमंत्रित देव शब्द को विकल्प करके अविद्यमानवत् होने से पर आमंत्रित को जहां एक पक्ष में निघात नहीं होता । वहां दोनों आमंत्रित को आयुदात्त होकर उदात्त से परे दूसरा २ वर्ण स्वरित हो के उस को फिर इस सूत्र से अनुदात्त हो जाता है जैसे । देवा ब्रह्माणः । और दूसरे पक्ष में जहां पूर्व आमंत्रित को विद्यमान मानते हैं वहां पर आमंत्रित को निघात हो कर पूर्व आमंत्रित को आयुदात्त हो जाता है पीछे 'दे' उदात्त से परे 'वा' अनुदात्त को स्वरित हो के जिन के मत में अनुदात्त होता है वहां तो । देवाब्रह्माणः । ऐसा प्रयोग और जिन के मत में स्वरित को अनुदात्त नहीं होता वहां पूर्व सूत्र से स्वरित को उदात्त हो कर । देवा ब्रह्माणः । ऐसा प्रयोग होता है । और जिन आचार्यों का ऐसा मत है कि देव और ब्रह्मन् शब्द समानाधिकरण सामान्य वचन हैं वहां येही दो प्रयोग होते हैं क्योंकि अविद्यमानवत् का निषेध होने से पर आमंत्रित को नित्य ही निघात हो जाता है ॥ २० ॥

२१—स्वरितात्संहितायासनुदात्तानाम् ॥ अ० ॥ १ । २ । ३६ ॥

स्वरित से परे संहिता में एक दो और बहुत अनुदात्तों की भी पृथक् २ एक श्रुति स्वर होता है ॥

भा०—एकशेषनिर्देशोऽयम् । अनुदात्तस्य चानुदात्तयो-
श्चानुदात्तानामिति ॥

भाष्यकार का अभिप्राय यह है कि जो इस सूत्र में बहुवचनान्त अनुदात्त शब्द पड़ा है उस में एकशेष समझना चाहिये अर्थात् एक दो और बहुत अनुदात्तों की भी पृथक् २ कार्य होता है जैसे । अग्निमींके पुरोहितम् । यहाँ 'मीं' स्वरित से परे एक 'के' अनुदात्त की एकश्रुति स्वर हुआ है । एकश्रुति का नियम यही है कि स्वरित से परे उस पर कोई चिह्न नहीं होता (होता है रत्नधातमम्) यहाँ 'तां' स्वरित से परे दो रेफ अनुदात्त वर्णों की एकश्रुति स्वर हुआ है तथा । इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि । यहाँ से स्वरित वर्ण है उस से परे द्वि पर्यन्त सब अनुदात्त हैं उन सब की एकश्रुति स्वर इस सूत्र से हुआ है । संहिताग्रहण इस लिये है कि । इमम् । मे । गङ्गे । यमुने । सरस्वति । शुतुद्रि । यहाँ पृथक् २ पदों का अवसान होने से एकश्रुति स्वर न हुआ ॥ २१ ॥

२२—उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः ॥ अ० ॥ १ । २ । ४० ॥

उदात्त और स्वरित जिस से परे हों उस अनुदात्त की एकश्रुति स्वर न हो किन्तु सन्नतर अर्थात् अनुदात्ततर ही जावे । पूर्वसूत्र से सामान्य विषय में एकश्रुति स्वर प्राप्त है उस का इस सूत्र से विशेष विषय में निषेध किया है जैसे । अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिः । यहाँ ऋषि शब्द आद्युदात्त के परे भिस् विभक्ति की एकश्रुति स्वर प्राप्त है सो न हुआ । किन्तु उस की अनुदात्ततर होगया । तथा । मरुतः क्व सुविता । यहाँ क्व शब्द स्वरित के परे 'त' अनुदात्त की स्वरित नहीं होता किन्तु अनुदात्ततर ही जाता है ॥ २२ ॥

२३—आद्युदात्तञ्च ॥ अ० ॥ ३ । १ । २ ॥

धातुओं वा प्रातिपदिकों से जितने प्रत्यय होते हैं उन सब के लिये यह उक्तर्ग सूत्र है कि सब प्रत्यय आद्युदात्त हों । जो एकाक्षर के ही प्रत्यय हैं वे आद्यन्तवद्भाव से उदात्त होजाते हैं जैसे । प्रियः । यहाँ एकाक्षर क प्रत्यय किया है । आम् । निर्वक्तः । यहाँ इकवक प्रत्यय आद्युदात्त हुआ है । इस के अपवाद विषय में अन्य प्रत्ययस्वरविधायक सूत्र बहुत हैं उन में से थोड़े यहाँ भी आगे लिखे हैं ॥ २३ ॥

२४—अनुदात्तौ सुप्पितौ ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३ ॥

जो सुप् अर्थात् सु आदि इकौस और पित् प्रत्यय हैं वे अनुदात्त हों जैसे । सोमसुतौ । सोमसूतः । यहाँ सुप् में औ तथा जस् अनुदात्त हों के उदात्त से परे स्वरित होगये हैं । भवति । पचति । इत्यादि । यहाँ शप् और तिप् पित् प्रत्यय होने से अनुदात्त हुए हैं ॥ २४ ॥

२५—अनुदात्तं पदमेकवर्जम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १५८ ॥

स्वर प्रकरण में यह परिभाषा सूत्र सर्वत्र प्रवृत्त होता है । जो दो वा अनेक कितने ही पदों का समास होता है वह भी एक पद कहता है । स्वर प्रकरण में जिस एक पद में उदात्त वा स्वरित जिस वर्ण को विधान करें उस से पृथक् जितने वर्ण हों वे सब अनुदात्त हो जावे । इस बात को स्वरण सब स्वर प्रकरण में रखना चाहिये । इस सूत्र का प्रयोजन महाभाष्यकार दिख लाते हैं ॥

का०—आगमस्य विकारस्य प्रकृतेः प्रत्ययस्य च ।

पृथक्स्वरनिवृत्त्यर्थमेकवर्जं पदस्वरः ॥

गोकार्थः । आगम, विकार, प्रकृति और प्रत्यय का पृथक् स्वर न होने के लिये इस सूत्र का आरम्भ किया है । आगम जो टित् कित् भित् चिन्ह के साथ अपूर्व उपजन हो जाता है । उस का पृथक् स्वर ही जावे । जैसे । चत्वारः । अनङ्गाहः । यहाँ चतुर् और अनङ्ग शब्द को आम् आगम हुआ है उसी का पृथक् स्वर रहता और प्रकृतिस्वर को निवृत्ति हो जाती है । अर्थात् प्रकृति और आगम के दोनों स्वर एकपद में एक साथ नहीं रह सकते । विकार जो किसी वर्ण वा शब्द को आदेश हो जाता है । जैसे । अस्थ्ना । दध्ना । अस्थनि । दधनि । यहाँ अस्थि और दधि शब्दप्रथम आद्युदात्त हैं यथात् तृतीयादि अजादि विभक्तियों में इन को अनङ् आदेश ही के प्रकृति और आदेश के दो स्वर प्राप्त हैं सो नहीं होते किन्तु प्रकृतिस्वर को बाध के आदेश का उदात्त स्वर हो जाता है । प्रकृति धातु वा प्रातिपदिक जिस से प्रत्यय उत्पन्न होते हैं जैसे । गोपायति । धूपायति । यहाँ प्रकृतिस्वर गोपाय धूपाय धातु को अन्तीदात्त और प्रत्ययस्वर आय प्रत्यय को आद्युदात्त दो स्वर प्राप्त हैं सो न ही किन्तु प्रत्ययस्वर को बाध के प्रकृतिस्वर हो जावे । प्रत्यय जो धातु वा प्रातिपदिक से परे विधान किया जाता है जैसे । कर्त्तव्यम् । तैत्तिरीयः । यहाँ क धातु और तित्तिरि प्रातिपदिक से तव्य और क प्रत्यय हुआ है प्रकृति और प्रत्यय के दोनों स्वर प्राप्त हैं सो न ही किन्तु प्रकृतिस्वर को बाध के प्रत्यय का आद्युदात्त स्वर हो जावे ॥ २५ ॥

वा०—२६—सतिशिष्टस्वरबलीयस्त्वञ्च ॥

भा०—सत्येकस्मिन् स्वरे विशिष्टो द्वितीयः स्वरः बलवान् भवति ॥

सतिशिष्ट वह कहाता है कि एक स्वर के वर्तमान में द्वितीय विशेष विधान किया जावे वही बलवान् रहता है । प्रथम का स्वर निवृत्त हो जाता और पश्चात् विहितस्वर प्रधान रहता है ॥

भा०—तच्चानेकप्रत्ययसमासार्थम् ॥

सतिशिष्ट का प्रयोजन यह है कि अनेक प्रत्यय और अनेक समासों में उत्तरोत्तर स्वर बलवान् होते जावें । जैसे अनेक प्रत्यय । औपगवः । यहां उपगुं शब्द से अण् हुआ है उसी का स्वर रहता है । औपगव शब्द से त्व । औपगवत्वम् । यहां स्वर का बाधक त्व प्रत्यय का स्वर । औपगवत्वमेव, औपगवत्वकम् । यहां त्व प्रत्यय के स्वर का बाधक क प्रत्यय का स्वर रहता है तथा । पुरुणां राजा, पौरवः । यहां अण् प्रत्यय का स्वर प्रकृतिस्वर का बाधक । पौरयस्यापत्यम् । इज् । आद्युदात्त पौरविः । तस्य युवापत्यं फक् । अन्तोदात्त । पौरवायणः । पौरवायणानां समूहः वुज् । आद्युदात्त । पौरवायणकम् । पौरवायणकानां छात्राः । पौरवायणकीयाः । यहां छ प्रत्यय आद्युदात्त । पौरवायणकीयैः प्रोक्तमधीयते तेषां, पौरवायणकीयाः । अण् का स्वर अन्त में रहता है । इसी प्रकार बहुत कुछ प्रत्ययमाला बन सकती है । अनेक समास । वीरश्वासी राजा, वीरराजः । टच्-अन्तोदात्त । वीरराजस्य पुरुष वीरराजपुरुषः । वीरराजपुरुषस्य पुत्रः, वीरराजपुरुषपुत्रः । वीरराजपुरुषपुत्रः प्रधानो येषां ते, वीरराजपुरुषपुत्र प्रधानाः । यहां पूर्वपद प्रकृतिस्वर होता है । इसी प्रकार के इन से बहुत बड़े समास हो सकते हैं । और उन के स्वर भी तदनुकूल हो जावेंगे ॥ -६॥

वा०—२७—विभक्तिस्वरान्नञ्स्वरो बलीयान् ॥

विभक्ति स्वर से नञ् स्वर बलवान् होता है जैसे । न तिस्रः, अतिस्रः । यहां विभक्तिस्वर-नञ् विभक्ति को उदात्त प्राप्त है उस का बाधक नञ्स्वर पूर्वपद प्रकृतिभाव हो जाता है ॥ २७ ॥

वा०—२८—विभक्तिनिमित्तस्वराच्च नञ्स्वरो बलीयानिति वक्तव्यम् ॥

विभक्ति जिस का निमित्त है उस को जो स्वर होता है उस को बाध के नञ् स्वर होना चाहिये । जैसे । अचत्वारः । अननङ्गाहः । यहां विभक्ति को मान के जो आम् आगम होता है उस का बाधक नञ् प्रकृतिस्वर हो जाता है ॥ २८ ॥

२६-डिनत्यादिर्नित्यम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६७ ॥

जित् नित् प्रत्ययों के परे पूर्व प्रकृति की आयुदात्त स्वर ही । यह सूत्र (२४) सूत्र का अपवाद है । और इस के अपवाद आगे कुछ लिखेंगे । उदाहरण । जित्-यज्-ब्राह्मण्यम् । चार्तुर्वर्ण्यम् । चैलोक्तम् । यज्-गार्ग्यः । शाकल्यः । माधव्यः । बाभ्रव्यः । इत्यादि । इज्-दार्जिः । सौधातकिः । वैद्यासकिः । फिज्-तैकायनिः । कैतवायनिः । इत्यादि । नित् । वुन्-वासुदेवकः । अर्जुनकः । ठन् वस्त्रिकः । कन्-द्रव्यकः । इत्यादि शब्द आयुदात्त हो जाते हैं ॥ २६ ॥

३०-कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १५६ ॥

घञन्त कर्ष धातु और आकारवान् घञन्त शब्दों के अन्त में उदात्त स्वर ही । कर्षे धातु के कहने से भ्वादिगण वाले का ग्रहण होता है । गुणनिषेध वाले तुदादि का ग्रहण नहीं होता । जैसे । कर्षः । त्यागः । रागः । दायः । धायः । पाकः । पाठः । इत्यादि । आकारवान् कहने से कर्ष को नहीं प्राप्त था इस लिये पृथक् ग्रहण किया है । आकारवान् ग्रहण इस लिये है कि । मर्त्यः । योगः । यहां न ही ॥ ३० ॥

३१-उञ्छादीनां च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६० ॥

उञ्छ आदि गणपठित शब्दों की अन्तोदात्त स्वर ही । जैसे । उञ्छः । स्तेञ्छः । जुञ्जः । जुल्यः । इन चार घञन्त शब्दों में आयुदात्त प्राप्त था सो न हुआ । जुपः । व्युधः । ये दो शब्द अप् प्रत्ययान्त हैं इन को भी आयुदात्त स्वर प्राप्त था ॥

गणसूत्र-युगः कालविशेषे रथाद्युपकरणे च ॥ १ ॥

युग शब्द कालविशेष अर्थात् कलियुग हापरयुग इत्यादि वा पीढ़ी तथा रथ आदि के उपकरण अर्थात् अश्वय जुआ आदि अर्थ में अन्तोदात्त होता है अन्यत्र नहीं होता । युगः । घञन्त होने से आयुदात्त प्राप्त था ॥

सू०-गरो दूष्ये ॥ २ ॥

दूष्य अर्थात् विष अर्थ में गर शब्द अन्तोदात्त ही । जैसे । गरः । अन्यत्र आयुदात्त रहे गा ॥

सू०-वेगवेदवेष्टबन्धाः करणे ॥ ३ ॥

करण कारक में प्रत्यय किया हो तो घञन्त वेग आदि चार शब्द अन्तोदात्त ही विद्यजते येन स, वेगः । वेष्टि येन स, वेदः । वेष्टते येन स वेष्टः । बध्नाति येन स बन्धः । और भाव वा अधिकरण में प्रत्यय हो गा तो आयुदात्त ही समझे जावे गे ॥

सू०—सुयुद्रुवश्च कृन्दासि ॥ ४ ॥

किवन्त स्तु आदि तीन धातुओं की अन्तोदात्तस्वर हो। जैसे। परिष्टुत्। सुयुत्। परिद्रुत्। यहाँ उपसर्गों की प्रकृतिभाव प्राप्त था ॥

सू०—वर्त्तनिः स्तोत्रे ॥ ५ ॥

जो स्तुति प्रकरण में वर्त्तनि शब्द पड़ा हो तो अन्तोदात्त स्वर हो जैसे। वर्त्तनिः। अन्यत्र अनि प्रत्यय आयुदात्त होने से मध्यादात्त स्वर हो गा। वर्त्तनिः।

सू०—श्वभेदरः ॥ ६ ॥

श्वभ अभिधेय हो तो दर शब्द अन्तोदात्त हो। जैसे। दरः। अन्यत्र आयुदात्त ही समझा जाता है जैसे। दरः॥

सू०—साम्बतापो भावगर्हायाम् ॥

भावगर्हा अर्थात् धात्वर्थ की निन्दा में साम्ब और ताप शब्द अन्तोदात्त हैं। जैसे। साम्बः। तापः। अन्यत्र। आयुदात्त ही समझे जावेंगे ॥

सू०—उत्तमशश्चत्तमौ सर्वत्र ॥

उत्तम और शश्चत्तम ये दोनों शब्द सामान्य अर्थों में अन्तोदात्त हैं जैसे। उत्तमः। शश्चत्तमः। तथा। भुजः। मन्थः। भोगः। देहः। इत्यादि ॥ ३१ ॥

३२—अनुदात्तस्य च यतोदात्तलोपः ॥ अ० ॥ ६।१।१६१ ॥

जिस अनुदात्त के परे उदात्त का लोप हो उस अनुदात्त को उदात्त हो। जैसे। औपगव-ई। यहाँ ई अनुदात्त के परे अन्तोदात्त औपगव शब्द के अन्त्य वर्ण का लोप हो कर ईकार उदात्त हो जाता है। औपगवी। तथा। दाक्षायणी। प्राक्षायणी। कुमारी। इत्यादि। अस्थन्, दधन् शब्द दोनों अन्तोदात्त हैं तृतीयादि अजादि विभक्तियों में उपधा अकार का लोप हो कर। अस्था। दधा। अस्थे। दध्ने। इत्यादि। इसी प्रकार इस सूत्र का बहुत विषय है जहाँ कहीं अनुदात्त के परे उदात्त का लोप हो वहाँ सर्वत्र इसी से उदात्त समझा जावेगा। यत्र ग्रहण इस लिये है कि। भार्गवः। भार्गवी। भृगवः। यहाँ जस् विभक्ति के आने से प्रथम ही प्रत्यय का लुक् ही जाता है। उदात्त ग्रहण इस लिये है कि जहाँ अनुदात्त के परे अनुदात्त ही का लोप हो वहाँ उदात्त न हो ॥ ३२ ॥

३३—धातोः ॥ अ० ॥ ६।१।१६२ ॥

धातु की अन्तोदात्त स्वर हो। पचति। पठति। चिचीषति। तुष्टुषति। ऊर्णीति। पाप्न्यते। जागर्षि। गोपायति। इत्यादि इन में जित न अंग की धातु संज्ञा है उसी की अन्तोदात्त हुआ है ॥ ३३ ॥

३४—चितः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६३ ॥

चित् अर्थात् चकार इत् होके लोप जिसमें हो उस समुदाय को अन्तोदात्त स्वर हो। प्रत्यय के आद्युदात्त स्वर का अपवाद यह सूत्र है। घुरच्-भुङ्गुरः। भासुरः। मेदुरः। कौण्डिन्य को कुण्डिनच् आदेश। कुण्डिनाः। अकच् सर्वकः। उच्चकैः। नीचकैः। बहुच्-बहुकृतम्। बहुभुक्तम्। बहुपटु। इत्यादि ॥ ३४ ॥

३५—तद्धितस्य च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६४ ॥

जो तद्धित सञ्ज्ञक चित् प्रत्यय है वह अन्तोदात्त ही। जैसे। च्फज्। कौञ्जायनाः। भौञ्जायनः। इत्यादि। पूर्वसूत्र में चित् के कहने से यहां भी अन्तोदात्त ही जाता फिर इस सूत्र का पृथक् आरम्भ इस लिये किया है कि जहां दो अनुबन्धी भेदो स्वर प्राप्त हों वहां भी चित् का स्वर अन्तोदात्त ही हो। जैसे च्फज् प्रत्ययान्तों को हुआ ॥ ३५ ॥

३६—कितः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६५ ॥

जो तद्धित सञ्ज्ञक कित् प्रत्यय है वह अन्तोदात्त ही जैसे। फक्-नाडायनः। चारायणः। दात्रायणः। ठक्-रैवतिकः। आलिकः। कौहलिकः। पारिविकः ॥ ३६ ॥

३७—सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६८ ॥

जो सु अर्थात् सप्तमी के बहुवचन में एकाच् शब्द हो उस से परे जो तृतीयादि विभक्ति सो अन्तोदात्त ही जैसे। वाचा। वाग्भ्याम्। वाग्भिः। वाचे। वाचः। त्वचे। त्वचः। इत्यादि। सु ग्रहण इस लिये है कि। राज्ञा। राज्ञे। यहां न हो। एकाच् ग्रहण इस लिये है कि। किरिणा। गिरिणा। यहां विभक्ति उदात्त न हो। तृतीयादिग्रहण इस लिये है कि। वाचौ। वाचः। यहां न हो। विभक्तिग्रहण इस लिये है कि। वाक्तरा। यहां न हो। सप्तमी का बहुवचन सु इसलिये लिया है कि। त्वया। यहां भी विभक्ति उदात्त न हो ॥ ३७ ॥

३८—शतुरनुमोनद्यजादौ ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७३ ॥

नुमरहित जो शतृ प्रत्ययान्त प्रातिपदिक उस से परे जो नदीसञ्ज्ञक प्रत्यय और अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति वह उदात्त ही। नदीसञ्ज्ञक डीप्। तुदती। तुदतो। लुनती। इत्यादि अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति। लुनते। लुनतः। लुनतीः। लुनति। अनुमग्रहण इस लिये है कि। तुदन्ती। तुदन्ती। इत्यादि में नदी उदात्त न हो। नद्यजादिग्रहण इस लिये है कि तुददभ्याम्। तुददभिः। यहां विभक्ति उदात्त न हो ॥ ३८ ॥

३६—वा०—नद्यजाद्युदात्तत्वे बृहन्महतोरुपसंख्यानम् ॥

जो बृहत् और महत् शब्द से परे नदी और अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति है वह उदात्त हो जैसे । बृहती । महती । बृहता । बृहतं । महता । महते । इत्यादि । पृषत् । आदि शब्दों को शतृ प्रत्ययान्त के सब कार्य होते हैं । फिर इस वार्त्तिक के कहने का प्रयोजन यह है कि पृषत् आदि सब शब्दों से परे नदी और अजादी विभक्ति उदात्त न हो किन्तु बृहत् और महत् से ही हो ॥ ३६ ॥

४०—उदात्तयणो हल्पूर्वात् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७४ ॥

हल् वर्ण जिस के पूर्व हो ऐसा जो उदात्त के स्थान में यण उस से परे जो नदी संज्ञक प्रत्यय और अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति सो उदात्त हो जैसे नदी-कर्त्री । हर्त्री । पत्नी । लुवित्री । प्रसवित्री । इत्यादि । यहां सर्वत्र तच् अन्तोदात्त के स्थान में यण हुआ है । अजादि असर्वनामस्थान विभक्ति । कर्त्ता । कृत् । कर्त्ताः । लुवित्रा । लुवित्रे । लुवित्रोः । इत्यादि । यहां उदात्त ग्रहण इस लिये है कि कर्त्री । हर्त्री । कर्त्ता । हर्त्ता । यहां त्वन्त शब्दों के आयुदात्त न होने से अनुदात्त के स्थान में यण हुआ है । यहां हल्पूर्वग्रहण इस लिये है कि । बहुतित्वे । बहु-तित्वे । यहां उदात्त के स्थान में बहुतित्व शब्द के उकार को यण तो हुआ है परन्तु वह उदात्त केवल अच् था । फिर विभक्ति को उदात्त का निषेध होके आष्टमिक सूत्र से स्वरित होता है ॥ ४० ॥

४१—नकारग्रहणं च कर्त्तव्यम् ॥

जो नकारान्त से परे नदीसंज्ञक प्रत्यय हो वह उदात्त हो । वाक्पत्नी । चित्पत्नी । यहां उदात्त के स्थान में यण नहीं है ॥ ४१ ॥

४२—ऋस्वमुड्भ्यां मतुप् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७६ ॥

जो ऋस्वान्त अन्तोदात्त प्रातिपदिक और लुट् का आगम इन से परे जो मतुप् प्रत्यय होता वह उदात्त हो । पितृ प्रत्यय के अनुदात्त होने का यह अपवाद है । ह्रस्व । अग्निमान् । वायुमान् । भानुमान् । कूर्त्तमान् । इत्यादि । लुट् । अक्षयता । शीर्षयतः । मूर्धन्वती ॥ ४२ ॥

४३—वा०—सतुबुदात्तत्वे रेग्रहणम् ॥

रे शब्द से परे जो मतुप् होता वह भी उदात्त हो । अरेवाने तु नो विणः । यहां रेवान् शब्द में ह्रस्व के नहीं होने से नहीं प्राप्त था ॥ ४३ ॥

४४—वा०—त्रिप्रतिषेधश्च ॥

त्रि शब्द से परे मतुप् उदात्त नहीं । त्रिवती । यहां उदात्त न हुआ ॥ ४४ ॥

४५—नासव्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७७ ॥

मतुप् प्रत्यय के परे जो ङस् अङ्ग उस से परे षष्ठी का बहुवचन नाम् विभक्ति होता वह विकल्प कर के उदात्त हो । जैसे । अङ्गोनाम् । अङ्गीनाम् । वायूनाम् । मायूनाम् । तिष्ठणाम् । तिष्ठणाम् । चतुष्टणाम् । चतुष्टणाम् । यहां ह्रस्व ग्रहण इस लिये है कि । कुमारीणाम् । किशोरीणाम् । इत्यादि में विभक्ति उदात्त न हो ॥ ४५ ॥

४६—ङग्रन्तसि बहुलम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १७८ ॥

जो ङग्रन्त से परे नाम् होता वह बहुल कर के उदात्त हो अर्थात् कहीं हो और कहीं न हो । देवसेनानामभिभञ्जतीनाम् । यहां हो गई तथा । नदीनां पारिजयन्तीनां मरुतः । यहां विभक्ति उदात्त नहीं होती ॥ ४६ ॥

४७—तित्स्वरितम् ॥ अ० ॥ ६ । १ । १८५ ॥

जो तित् प्रत्यय है वह स्वरित हो । यह आयुदात्तप्रत्यय स्वर का अपवाद है । यत्-चिकीर्ष्यम् । जिहीर्ष्यम् । चिचीर्ष्यम् । तुष्ट्यम् । ख्यत्-कार्यम् । हार्यम् । इत्यादि ॥ ४७ ॥

४८—तास्यबुदात्तेन्ङिददुपदेशाल्लसार्वधातुकमबुदात्त—

महन्विङोः ॥ अ० ॥ ६ । १ । १८६ ॥

तास् प्रत्यय, अनुदात्तेत् धातु, डित् धातु, और अदुपदेश धातु इन से परे जो सार्वधातुक संज्ञक लकार के स्थान में तिप् आदि प्रत्यय वे अनुदात्त ही परन्तु यह कार्य ङुङ् और इङ् धातु को छोड़ के होवे क्यों कि ये दोनों डित् हैं । जैसे तास् प्रत्यय—कर्त्ता । कर्त्तारो । कर्त्तारः । अनुदात्तेत् । आस्ते । आसाते । आसते । डित् । शेते । सूते । द्रोधीते । वेवेते । अदुपदेश, पठतः । पठन्ति । पचतः । पचन्ति । तासि आदि से परे ग्रहण इस लिये है कि । सुनुतः । सुन्वन्ति । यहां न हो लसार्वधातुकग्रहण इस लिये है कि । सुपुवे । सुपुवाते । यहां न हो और ङुङ् तथा इङ् का निषेध इसलिये है कि हनुते । अधीते । यहां अनुदात्त न हो ॥ ४८ ॥

४९—लिति ॥ अ० ॥ ६ । १ । १९३ ॥

लकार जिस का इत् गया हो उस प्रत्यय से पूर्व उदात्त हो जैसे । चिकीर्षकः । जिहीर्षकः । यहां चिकीर्ष जिहीर्ष धातु से खुल् हुआ है । भौरिकिविधम् । यहां तद्धित का विधल् प्रत्यय है । ऐषुकारिभक्तः । और यहां तद्धित का भक्तल् प्रत्यय हुआ है इत्यादि ॥ ४९ ॥

५०—आमन्वितस्य च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १९८ ॥

जो आमन्वित अर्थात् सम्बोधन में प्रथमाविभक्त्यन्त शब्द ही उन के आयु-

दात्त स्वर हो जाता जैसे । अग्ने । वायो । इन्द्र । देवदत्त । देवदत्तो । देवदत्ताः । धनञ्जय । इत्यादि ॥ ५० ॥

५१—अतोऽनाद्यः ॥ अ० ॥ ६ । १ । २१३ ॥

तो स्वर वाले यत् प्रत्ययान्त शब्दों को आद्युदात्त स्वर हो परन्तु नो शब्द को छोड़ के । जैसे । देयम् । धेयम् । चेयम् । जेयम् । शरीरावयवाद्यत् । कण्ठाम् । ओष्ठाम् । जङ्घ्यम् । जिह्व्यम् । इत्यादि (तित्स्वरितम्) इस पूर्व लिखितसूत्र से ह्यच् प्रातिपदिकों को भी स्वरित पाता सो उस का अपवाद यह सूत्र है । ह्यच् ग्रहण इस लिये है कि । उरस्थम् । ललाट्यम् । नासिक्यम् । यहाँ आद्युदात्त न हो नो शब्द का निषेध इस लिये है कि । व्यम् । यहाँ भी आद्युदात्त नहीं ॥ ५१ ॥

५२—समासस्य ॥ अ० ॥ ६ । १ । २२३ ॥

समास किये शब्द मात्र को अतोऽनाद्य स्वर ही । अब समास के स्वर का थोड़ा सा विषय लिखा जाता है । समास के स्वर का सामान्य सूत्र यह है । और यह सब समास के स्वर का उत्सर्ग सूत्र है आगे सब प्रकरण इस का अपवाद है । राजपुरुषः । ब्राह्मणकम्बलः । नदीघोषः । पटहृशब्दः । वीरपुरुषः । परमेश्वरः । इत्यादि ॥ ५२ ॥

परिभा०—५३—स्वरविधौ व्यंजनमविद्यमानवत् ॥

उदात्तादि स्वरों के विधान में व्यंजन वर्णों को अविद्यमानवत् समझना चाहिये । जैसे । राजद्वषत् । ब्राह्मणममित् । यहाँ समासान्त हल् वर्ण के होने से उस हल् को उदात्त प्राप्त है उस को अविद्यमानवत् मान के उस में पूर्व वर्ण को उदात्त हो जाता है । इसी प्रकार और भी बहुत से प्रयोजन हैं । अब समास स्वर का विशेष नियम कुछ लिखते हैं ॥ ५३ ॥

५४—बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १ ॥

अ बहुव्रीहि समास में पूर्वपद का स्वर ही वह प्रकृति करके अर्थात् अतोऽनाद्य न हो व्यों का व्यो बना रहे । जैसे । स्थूलप्रपती । हिरण्यबाहुः । ब्रह्मचारिपरिस्कन्दः । स्नातकपुत्रः पण्डितपुत्रः । अध्यापकपुत्रः । इत्यादि ॥ ५४ ॥

५५—तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्यय-

द्वितीयाकृत्याः ॥ अ० ॥ ६ । २ । २ ॥

तत्पुरुष समास में जो तुल्यार्थ, तृतीयान्त, सप्तम्यन्त, उपमानवाची, अव्यय, द्वितीयान्त और कृत्य प्रत्ययान्त पूर्वपद हो तो उस में प्रकृतिस्वर हो । जैसे ।

तुल्यार्थ-तुल्यश्वेतः । तुल्यलोहितः । तुल्यमहान् । सुदृक्श्वेतः । सुदृग्लोहितः ।
यहां तुल्यार्थ शब्दों के साथ कर्मधारयतत्पुरुष समास हुआ है । द्वितीयातत्पुरुष
शङ्कुलया खण्डः, शङ्कुलाखण्डः । किरिकाणः । समभौतत्पुरुष-अक्षशौखः ।
पानशौखः । उपमानवाची-घनश्यामः । तडिद्वौरी । सुस्त्रीश्यामा । कुसुदश्वेनी ।
इत्यादि । अव्ययपर- ॥ ५५ ॥

वा०—५६-अव्यये नञ्कुनिपातानाम् ॥

अव्यय के कहने से सामान्य अव्यय का ग्रहण न हो इस लिये इस वार्तिक
से परिगणन किया है कि अव्ययों में नञ् कु और निपातों की ही पूर्वपद प्रकृति
स्वर हो । जैसे । नञ्-प्रवाहणः । अष्टषलः । कु-कुत्राहणः । कुष्टषलः । निपात-
निष्कोशाम्बिः । निर्वाणसिः । परिगणन इस लिये है कि । क्त्वात्कालकः
पीत्वास्थिरकः । यहां पूर्वपद प्रकृति स्वर न ही । द्वितीयान्त-सुहृत्सुखम् । सुहृत्
रमणीयम् । सर्वराजकलाणी । सर्वराजशोभना । यहां अत्यन्तसंयोग में द्वितीया
का समास है । कृत्यान्त-भोज्यञ्चतदुष्णञ्च भोज्योष्णम् । भोज्यलवणम् । पानीयशौ-
तम् । हरणीयचूर्णम् । इत्यादि ॥ ५६ ॥

५७-गतिरनन्तरः ॥ अ० ॥ ६ । २ । ४६ ॥

जो कर्मवाची क्तान्त उत्तरपद पर और अनन्तर अर्थात् समीपगति हो तो वह
प्रकृतिस्वर हो जैसे । प्रकृतः । प्रहृतः । इत्यादि । अनन्तरग्रहण इस लिये है
कि । अभ्युदृतम् । उपसमाहृतम् । इत्यादि में पूर्वपद प्रकृतिस्वर न ही । कर्म-
वाची का ग्रहण इस लिये है कि । प्रकृतः कटं देवदत्तः । यहां कर्त्ता में क प्रत्यय
है इस लिये नहीं होता यह पूर्वपद प्रकृतिस्वर पूरा हुआ अब पूर्वपद आद्युदात्त
आदि प्रकरण कुकर लिखेंगे ॥ ५७ ॥

५८-आदिरुदात्तः ॥ अ० ॥ ६ । २ । ६४ ॥

पूर्वपद आद्युदात्त होने के लिये यह अधिकार सूत्र है ॥ ५८ ॥

५९-णिनि ॥ अ० ॥ ६ । २ । ७६ ॥

णिनि प्रत्ययान्त उत्तर पद पर होता पूर्वपद आद्युदात्त हो जैसे । उष्णभोजी ।
शीतभोजी । स्थण्डिलशायी । पण्डितमानी । सोमयाजी । कुमारवाती । शीर्षघाती ।
फलहारी । पर्णहारी । इत्यादि ॥ ५९ ॥

६०-अन्तः ॥ अ० ॥ ६ । २ । ८२ ॥

पूर्वपद अन्तोदात्त प्रकरण में यह अधिकार सूत्र है ॥ ६० ॥

६१—सर्व गुणकात्सर्व्ये ॥ अ० ॥ ६ । २ । ६३ ॥

जो गुणों की संपूर्णता अर्थ में वर्तमान पूर्वपद सर्व शब्द हो तो वह अन्तीदात्त हो । जैसे । सर्वश्वेतः । सर्वकृष्णः । सर्वलोहितः । सर्वहरितः । सर्वश्यामः । सर्वसारङ्गः । सर्वकल्पायः । सर्वमहान् । इत्यादि ॥ ६१ ॥

६२—उत्तर पदादिः ॥ अ० ॥ ६ । २ । १११ ॥

उत्तरपदआद्युदात्तप्रकरण में यह अधिकार सूत्र है ॥ ६२ ॥

६३—अकर्मधारये राज्यम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १३० ॥

कर्मधारय समास से भिन्न तत्पुरुष समास में जो राज्य उत्तरपद होता वह आद्युदात्त हो जैसे । ब्राह्मणराज्यम् । क्षत्रियराज्यम् । यवनराज्यम् । कुक्षराज्यम् । इत्यादि अब उत्तरपद तथा उभयपद प्रकृतिस्वर के विषय में कुछ लिखते हैं ॥ ६३ ॥

६४—गतिकारकोपपदात्हात् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १३६ ॥

जो तत्पुरुषसमास में गति, कारक और उपपद से परे कदन्त उत्तर पद हो तो वह प्रकृतिस्वर ही जैसे । गति-प्रकारकः । प्रहारकः । प्रकरणम् प्रहरणम् । कारक-इष्टमप्रव्रचनः । पलाशशातलः । श्मश्रुकल्पनः । उपपद-इष्टकरः । दुःकरः । सुकरः । गतिकारकोपपदग्रहण इस लिये है कि । देवदत्तस्य कारको देवदत्त-कारकः । यहाँ नहीं ॥ ६४ ॥

६५—उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४० ॥

वनस्पति आदि समास किये हुए शब्दों में पूर्वपद उत्तरपद दोनों एक काल में प्रकृतिस्वर ही । वनस्पतिः । यहाँ वन और पति दोनों शब्द आद्युदात्त हैं । पति शब्द को समास में सुट् होजाता है । वृहस्पतिः । यहाँ भी सुट् हुआ है । शचीपतिः । तनूनपात् । नराशंसः । शुनःश्रेयः । शम्भुमर्कौ । लणावरुन्नी । बम्बा विश्ववयसौ । मर्त्युः ॥ ६५ ॥

६६—देवताहन्विच ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४१ ॥

देवतावाची शब्दों के हन्वसमास में एककाल में दोनों शब्द प्रकृतिस्वर ही । इन्द्रासोमी । इन्द्रावकणी । इन्द्रावृहस्पती । द्यावापृथिव्यौ । सोमारुद्रौ । इन्द्रापूर्णी । शुक्रामन्विनी । इत्यादि ॥ ६६ ॥

६७—अन्तः ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४३ ॥

उत्तरपद अन्तीदात्त प्रकरण में यह अधिकार सूत्र है ॥ ६७ ॥

६८—थायधञ्क्ताजविचकाणाम् ॥ अ० ॥ ६।२।१४४ ॥

गति, कारक और उपपद से परे जो थ, अथ, धञ्, क्त, अच्, अप्, इत् और क इतने प्रत्ययान्त शब्द उत्तरपद उन को अनुदात्त स्वर है। जैसे। थ-धुनीथः। अवभृथः। अथ-आवसथः। उपवसथः। घञ्। प्रभेदः। काष्ठभेदः। रज्जुक्केदः। क्त-दूरादागतः। विशुक्ताः। आतपशुक्ताः। अच्-प्रणयः। विनयः। विजयः। आश्रयः। व्यत्ययः। अन्वयः। इत्यादि। अप्-प्रलवः। प्रसवः। इत्-प्रलवित्रम्। प्रसवित्रम्। क-गोदः। कखलदः। शस्यः। गृहस्थः। वनस्थः। इत्यादि। अब इस के आगे अनुदात्त का प्रकरण संक्षेप से लिखते हैं ॥ ६८ ॥

६९—पदात् ॥ अ० ॥ ८।१।१७ ॥

यह अधिकार सूत्र है यहां से आगे पद से परे कार्य होगा ॥ ६९ ॥

७०—पदस्य ॥ अ० ॥ ८।१।१६ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है। यहां से आगे जो कार्य कहेंगे वह पद के स्थान में समझा जावेगा ॥ ७० ॥

७१—अनुदात्तं सर्वमपादादौ ॥ अ० ॥ ८।१।१८ ॥

यह भी अधिकार सूत्र है। अपादादि अर्थात् जो पाद की आदि में न हो किन्तु मध्य वा अन्त में होतो पद से परे सब पद अनुदात्त हो। यह अधिकार चलेगा ॥ ७१ ॥

७२—आमन्त्रितस्य च ॥ अ० ॥ ८।१।१९ ॥

जो पद से परे अपादादि में वर्तमान आमन्त्रित पद होतो वह सब अनुदात्त होवे। जैसे-पठसि देवदत्त। जुहोसि देवदत्त। आमन्त्रित पद को पूर्वोक्त (५०) सूत्र से अनुदात्त प्राप्त था इस लिये यह विधान है ॥ ७२ ॥

परिभाषा—७३—आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत् ॥ अ० ॥ ८।१।७२ ॥

पद से परे जिस पद को अनुदात्त आदि विधान करते हैं उस से पूर्व जो आमन्त्रित होतो उस को अविद्यमानवत् समझना चाहिये। अर्थात् पूर्व कुछ नहीं है ऐसा माना जावे जैसे। देवदत्त यज्ञदत्त। यहां यज्ञदत्त शब्द को पद से परे निघात नहीं हुआ। तथा। देवदत्त पचसि। यहां अविद्यमानवत् होने से क्रिया को निघात नहीं होता। तथा। देवदत्त तव ग्रामस्य देवदत्त मम ग्रामस्य। यहां पद से परे ते, मे, आदेश नहीं होते। इत्यादि ॥ ७३ ॥

७४-नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम् ॥

अ० ॥ ८ । १ । ७३ ॥

सामान्यवचन समानाधिकरण आमन्त्रितपद परे ही तो पूर्व जो आमन्त्रितपद है वह अविद्यमानवत् न हो जैसे । अग्ने' ब्रूतपते । अग्ने' गृहपते । पृथिवि' देवयजनि । अर्थात् पद से परे निघात आदि कार्य्य हो जावे । समानाधिकरण ग्रहण इस लिये है कि पूर्वसूत्र के विषय में यह सूत्र न लगे । सामान्यवचनग्रहण का प्रयोजन यह है कि । अग्ने' देव' सरस्वति' ईडे काव्ये' विहव्ये' । यहां पथ्योयवाचो शब्दों में न हो ॥ ७४ ॥

७५-विभाषितं विशेषवचने बहुवचनम् ॥ अ० ॥ ८ । १ । ७४ ॥

विशेषवचन समानाधिकरण आमन्त्रित पद परे ही तो पूर्व जो आमन्त्रितपद है वह विकल्प करके अविद्यमानवत् ही । जैसे । देवा' ब्रह्माणः । देवा' ब्रह्माणः । ब्राह्मणा' वैयाकरणाः । ब्राह्मणा' वैयाकरणाः । यहां अविद्यमानवत् पक्ष में दोनों पद के स्वर और विद्यमानवत् पक्ष में उत्तरपद निघात हो जाता है । इत्यादि । विशेषवचनग्रहण इस लिये है कि । माणवकु' जटिलक । यहां विकल्प न हो ॥ ७५ ॥

६६-युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्तावौ ॥

अ० ॥ ८ ॥ १ । २० ॥

षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के सह वर्तमान अपादादि में पद से परे जो युष्मद् अस्मद् पद उन को क्रम से वाम् और नौ आदेश हों और वे सब अनुदात्त हों । जैसे षष्ठीस्थ-ग्रामो' वां स्वम् । जुनपदो' नौ स्वम् । चतुर्थीस्थ-ग्रामो' वां दीयते । जुनपदो' नौ दीयते । द्वितीयास्थ-माणवको' वां पश्यति । माणवको' नौ पश्यति । इत्यादि । इस सूत्र में स्थग्रहण इस लिये है कि । दृष्टो मया युष्मत्पुत्रः । यहां षष्ठी का लुक् होजाने से आदेश और अनुदात्त नहीं होता ॥ ७६ ॥

७७-बहुवचनस्य वस्नसौ ॥ अ० ॥ ८ । १ । २१ ॥

षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया विभक्ति के सह वर्तमान अपादादि में पद से परे बहुवचनान्त जो युष्मद् अस्मद् पद उन को क्रम से वस् और नस् आदेश हों तथा वे सब अनुदात्त हों । जैसे । नमो' वः पितरः । नमो' वां देवाः । मनो' बधोः । मानो' गोषु मानो' अश्वेषु रौरिषः । शन्नः । इत्यादि ॥ ७७ ॥

७८-तेजयावैकवचनस्य ॥ अ० ॥ ८ । १ । २२ ॥

अपादादि में वर्तमान पद से परे जो एकवचनान्त युष्मद् अस्मद् पद उन को

ते, मे, आदेश हों और वे सब अनुदात्त हों जैसे । गुह^१स्ते^१ पण्डितः । गुह^२स्ते^२ पण्डितः ।
देहि^३ मे ददामि ते । इत्यादि ॥ ७८ ॥

७९—त्वामौ द्वितीयायाः ॥ अ० ॥ ८ । १ । २३ ॥

पद से परे अपादादि में वर्त्तमान द्वितीयैकवचनात् जो युष्मद् अस्मद् पद
उन को त्वा, मा, आदेश हों और वे सब अयुदात्त हों । जैसे । कस्त्वा युनक्ति सत्वा
युनक्ति । पुनन्तु^१ मा । इत्यादि ॥ ७९ ॥

८०—तिङ्ङतिङः ॥ अ० ॥ ८ । १ । २८ ॥

जो अपादादि में अतिङन्त पद में परे तिङन्त पद होती वह सब अनुदात्त हो
जावे । जैसे । त्वं पचसि । अहं पठामि । स गच्छति । तौ गच्छतः । इत्यादि ।
यहां तिङ्ग्रहण इस लिये है कि । शुक्लं वस्त्रम् । यहां नहीं होता । अतिङ्ग्रहण
इस लिये है कि । पठति । पचति । यहां न हो ॥ ८० ॥

८१—यावद्यथाभ्याम् ॥ अ० ॥ ८ । १ । ३६ ॥

जो यावत् और यथा से युक्त तिङन्त पद ही तो वह अनुदात्त न हो । यावद्
भुङ्क्ते । यथा भुङ्क्ते । यावद्धीते । यथाधीते । दे वदन्तः पचति यावत् । दे वदन्तः
पचति यथा । इत्यादि ॥ ८१ ॥

८२—यद्गृत्तान्नित्यम् ॥ अ० ॥ ८ । १ । ६६ ॥

जो यत् शब्द के प्रयोग से युक्त तिङन्त पद ही तो वह अनुदात्त न हो । जैसे
यो भुङ्क्ते । यं भोजयति । येन भुङ्क्ते । इत्यादि ॥ ८२ ॥

८३—गतिर्गतौ ॥ अ० ॥ ८ । १ । ७० ॥

जो गति से परे पूर्व गति ही तो वह निघात हो जानी है जैसे । अभ्युदरति
समुदानयति । उपसं व्यानयति । उपसंहरति । अभ्यवहरति । इत्यादि ॥ ८३ ॥

८४—उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोनुदात्तस्य ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४ ॥

जो उदात्त और स्वरित के स्थान में यण उस से परे अनुदात्त हो तो उस को
स्वरित ही जावे जैसे । सुप्त्वा । यहां सुप् शब्द अन्तोदात्त और विभक्ति अनुदात्त
है उस को स्वरित ही जाता है । नोचे जो ८ यङ् वक्त चिह्न होता है वह भी स्वरित
ही का चिह्न है । इसी प्रकार । पृथिव्यसि । यहां पृथिवी शब्द अन्तोदात्त है ।
उस से परे अकार अनुदात्त को स्वरित ही जाता है । स्वरित यण—सकृन्वि—आशा
खलपि—आशा । यहां सकृन्वि खलपि सप्रत्यन्त स्वरितान्त शब्द हैं उन के यण से
परे आकार अनुदात्त को स्वरित ही जाता है जैसे । सकृन्व्याशा । खलप्याशा ।
इत्यादि ॥ ८४ ॥

८५—एकादेश उदात्तेनोदात्तः ॥ अ० ॥ ८।२।५ ॥

उदात्त के साथ जो अनुदात्त का एकादेश है वह भी उदात्त ही हो जाता है । जैसे । अग्नी । वायू । यहाँ अग्नि वायु शब्द अनुदात्त हैं । उन का उदात्त विभक्ति के साथ एकादेश हुआ है । इसी प्रकार । हुनैः । प्रचैः । इत्यादि ॥

८६—स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ ॥ अ० ॥ ८।२।६ ॥

जो उदात्त के साथ एकादेश है वह पदादि अनुदात्त के परे विकल्प का स्वरित हो पद में उदात्त हो । सु-उत्थितः । सुत्थितः । सुत्थितः । वि-वृत्ते । वी-वृत्ते । वी-वृत्ते । इत्यादि ॥ ८६ ॥

इति श्रीमहयानन्दसरस्वतीनिर्मितः सौवरो ग्रन्थः समाप्तः ॥

सम्बत् १६३६ भाद्रशुक्ल १३ चन्द्रवार

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	१८	शत्रुः	शत्रुः
५	१५	ऋतेन	ऋतेन
५	१६	ऋतेन	ऋतेन
५	१७	गार्ग्यः	गार्ग्यः
५	१७	अनुत्त	अनुदात्त
६	१०	कथ्य	कथ्य
७	१५	सुब्रह्मण्योम्	सुब्रह्मण्योम्
७	२६	हरिव आगच्छ	हरिव आगच्छ
८	२८	दाक्षेः	दाक्षेः
१०	१४	शुतुद्रि	शुतु (१) द्वि
११	२४	धूपायति	धू (२) पायति
१२	११	पीरवः	पीरवः
१२	२२	पीरय	पीरव
१२	१५	पीरवातण	पीरवायण
१५	२	भङ्गुरः	भङ्गु (३) रः
१५	२७	लुन्तोः	लुन्तोः
१६	४	फिरि	फिर
१६	८	उदात्त	उदात्त
१६	१४	बृह	बृह (४)
१७	२७	ऐषुकारिभक्तः	ऐषु (५) कारिभक्तः
१८	५	कराव्यम्	कराव्यम्
१८	६	ओष्यम्	ओष्यम्
१८	१६	वीरपुरुषः	वीरपु (६) रुषः
१८	२५	अध्यापक पुत्रः	अध्यापक पुत्रः

(१) "उ" के नीचे स्वर चाहिये (२) "धू" के नीचे स्वर चा० (३) "ङ्गु" के नीचे स्वर चाहिये
 (४) "हृ" के नीचे स्वर चा० (५) "पु" के नीचे स्वर चा० (६) "पु" के नीचे स्वर चा०

१८	४	कुमुदश्रेणी	(७) कुमुदश्रेणी
१८	१८	देवदत्तः	देवदत्तः
२०	८	क्षत्रियराज्यम्	क्षत्रियराज्यम्
२१	५	दूरदागतः	दू (८) रादागतः
२१	२५	देवदत्त यज्ञदत्त	देवदत्त यज्ञदत्त
२२	१७	पर	परे
२२	२६	मनो	मानो
२२	२७	गोष्ठु मानो	गोष्ठु मानो
२३	५	अशुदात्त	आशुदात्त
२३	१४	भुङ्क्ते	भु (८) ङ्क्ते
२३	१४	देवदत्तः	देवदत्तः
२३	२०	अभ्युद्वरति	अभ्युद्वरति

७) "ङ्" के नीचे स्वर चा० (८) "दू" के नीचे स्वर चा० (९) "भु" के नीचे स्वर चाहिये ॥

— * —

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्त्वः ।

द्वादशो भागः ॥

पारिभाषिकः ।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां नवमो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।

प्रशिद्धतज्वालादत्तशर्मा संशोधितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां द्वादशं पुस्तकम् ।

मुनशी समर्थदान के प्रबन्धसे
वैदिक यन्त्रालय प्रयोग में मुद्रित हुआ ।

—000—

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि

इस की रजिस्ट्री कराई गई है ॥

संवत् १८९८ पीष कृष्ण ८

पहिली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य १)

॥ भूमिका ॥

— ३०६ —

संज्ञापरिभाषाविधिनिषेधनियमातिदेशाधिकाराख्यानि सप्तविधानि सूत्राणि भवन्ति । सत्यम् जानीयुर्यथा सा संज्ञा; यथा (वृद्धिरादैच्) इत्यादि । परितः सर्वतो भाष्यन्ते नियमायाभिस्ताः परिभाषाः; यथा (इकोगुणवृद्धौ) इत्यादि । यो विधीयते स विधिर्विधानं वा; यथा (सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु) इत्यादि । निषिध्यन्ते निवार्यन्ते कार्याणि यैस्ते निषेधाः; यथा (न धातुलोप आर्द्धधातुके) इत्यादि । नियम्यन्ते निश्चीयन्ते प्रयोगा यैस्ते नियमाः; यथा (अनुदात्तङित आत्मनेपदम्) इत्यादि । अतिदिश्यन्ते तुल्यतया विधीयन्ते कार्याणि यैस्तेऽतिदेशाः; यथा (आद्यन्तवदेकस्मिन्) इत्यादि । अधिक्रियन्ते पदार्था यैस्तेऽधिकाराः; यथा (कारके) इत्यादि । एषां सप्तविधानां सूत्राणां मध्याद्यतोऽयं परिभाषाणां व्याख्यानो ग्रन्थोऽस्ति तस्मात्पारिभाषिको वेदितव्यः ॥

सूत्र सात प्रकार के होते हैं (संज्ञा, परिभाषा, विधि, निषेध, नियम, अतिदेश अधिकार) अच्छे प्रकार जिस से जाने वह संज्ञा कहाती है जैसे (वृद्धिरादैच्) इत्यादि । जिन से सब प्रकार नियमों की स्थिरता की जाय वे परिभाषा सूत्र कहाते हैं जैसे (इकोगुणवृद्धौ) इत्यादि । जो विधान किया जाय वा जो विधान है वह विधि कहाता है जैसे (सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु) इत्यादि । निषेध उस को कहते हैं कि जिस से कार्यों का निवारण किया जाय जैसे (न धातुलोप आर्द्धधातुके) इत्यादि । नियम उन को कहते हैं कि जिन से प्रयोगों का निश्चय किया जाय जैसे (अनुदात्तङित आत्मनेपदम्) इत्यादि । जिस से किसी की तुल्यता लेकर कार्य कहें वह अतिदेश कहाता है जैसे (आद्यन्तवदेकस्मिन्) इत्यादि । और जिन से पदार्थों की विशेष अनुवृत्ति हो उन को अधिकार कहते हैं जैसे (कारके) इत्यादि । इन सात प्रकार के सूत्रों में से जिस लिये यह परिभाषाओं का व्याख्यान रूप ग्रन्थ है इस लिये इस का नाम पारिभाषिक रखा

है इन परिभाषाओं में से जो अष्टाध्यायीस्य परिभाषा सूत्र हैं वे संधिविषय में व्याख्या पूर्वक लिख दिये हैं यहाँ केवल महाभाष्यस्य परिभाषा सूत्रों का व्याख्यान है । परिभाषाओं का मुख्य तात्पर्य यही है कि दोषों का निवारण करके व्यवस्था कर देना । इसी लिये इस ग्रन्थ को बनाया है कि व्याकरण के संधि आदि प्रकरणों में जो २ संदेह पड़ते हैं वे इन परिभाषाओं के पठन पाठन से अवश्य निवृत्त हुआ करेंगे । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं । और इस में मूल परिभाषा के आगे जो संख्या पड़ी है वह अष्टाध्यायी के सूत्र की है उस सूत्र की व्याख्या में महाभाष्य में वह परिभाषा लिखी है । और परिभाषा के पहिले जो संख्या है वह इस ग्रन्थ की है ॥

इति भूमिका

स्थान महाराणा जी का उदयपुर
आश्विन शुक्ल संवत् १८३८

दयानन्द सरस्वती

अथ पारिभाषिकः ॥

—३*६—

परितो व्याष्टतां भाषां परिभाषां प्रचक्षते ।

सब ओर से लौकिक वैदिक और शास्त्रीय व्यवहार के साथ जिस का सम्बन्ध रहे अर्थात् उक्ततीनों प्रकार का व्यवहार जिससे सिद्ध हो उस को परिभाषा कहते हैं । इस परिभाषिक ग्रन्थ में प्रथम परिभाषा की भूमिका लिख कर आगे लक्ष्य अर्थात् उदाहरण लिख के पुनः मूल परिभाषा लिखेंगे । और उस के आगे उस का स्पष्ट व्याख्यान करेंगे । अब प्रथम पाणिनीय व्याकरण अष्टाध्यायी के प्रत्याहार सूत्रों में (अइउण्, लण्) इन दो सूत्रों में लोप होने वाला हल् णकार पढ़ा है इस णकार से (अण्) और (इण्) दो प्रत्याहार बनते हैं । सो जिन सूत्रों में अण् इण् प्रत्याहारों से काम लिया जाता है वहां सन्देह पड़ता है कि किन २ सूत्रों में पूर्व और किन २ में पर णकार से (अण्) तथा (इण्) प्रत्याहार जानें इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

१—व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम् ॥

लण् सूत्र पर ॥

जिस सूत्र वा वार्तिक आदि में सन्देह हो वहां व्याख्यान से विशेष बात का निश्चय कर लेना चाहिये किन्तु सन्देह मात्र के होने से सूत्र आदि ही की अन्यथा न जान लेंगे । जहां पृथक् २ देखे हुए दो पदार्थों के समान अनेक विरुद्ध धर्म एक में देख पड़ें और उपलब्धि अनुपलब्धि की अव्यवस्था हो अर्थात् जो पदार्थ है और जो नहीं है दोनों की उपलब्धि और दोनों की अनुपलब्धि होती है क्योंकि पदार्थों के साधारण धर्म को लेकर सन्देह होता है उन में से जब विशेष अर्थात् किसी एक का निश्चय हो जाता है तब सन्देह नहीं रहता जिन सूत्र आदि में सन्देह पड़ता है वहां उन में छः प्रकार का व्याख्यान करना चाहिये पदच्छेद, पदार्थ, अन्वय, भावार्थ, पूर्वपक्ष—शङ्का, उत्तरपक्ष—समाधान इन छः प्रकार के व्याख्यानों से संदेहों की निवृत्ति कर लेनी चाहिये (प्रश्न) जैसे प्रथम (दूलोपे

पूर्वस्य दीर्घोऽणः) इस सूत्र में (अण्) प्रत्याहार पूर्व णकार से लेना वा पर से यह संदेह है (उत्तर) इस में निस्संदेह पूर्व णकार से लेना चाहिये क्योंकि जो पर णकार से लिया जावे तो इस सूत्र में (अण्) का ग्रहण करना व्यर्थ है क्योंकि (अचश्च) इस सूत्र से ह्रस्व दीर्घ भूत अच् ही के स्थान में होते हैं इस से (अच्) की उपस्थिति होही जाती फिर (अण्) ग्रहण का यही प्रयोजन है कि इत्यादि सूत्रों में पूर्व णकार ही से लिया जावे (प्रश्न) और (अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः) इस सूत्र में (अण्) प्रत्याहार पूर्व णकार से वा पर णकार से लेना चाहिये (उ०) निस्संदेह पर णकार से (अण्) प्रत्याहार का ग्रहण है क्योंकि (उक्तं) इस सूत्र में ऋकार तपर इसी लिये पड़ा है कि (अचीकृतत्) इत्यादि प्रयोगों में ऋकार को ह्रस्व ऋकार ही आदेश हो अर्थात् सवर्णग्रहण (अणुदित्०) परिभाषा सूत्र से ह्रस्व का सवर्ण दीर्घ न हो जावे । जो पूर्व णकार से अण् ग्रहण होता तो पूर्व अण् में ऋकार के न होने से ऋकार को सवर्ण ग्रहण प्राप्त ही नहीं फिर तपर क्यों पड़ते । इस से स्पष्ट हुआ कि (अणुदित्०) इस सूत्र में पर णकार से और इसी एक सूत्र को छोड़ के अन्यत्र सब सूत्रों में पूर्व णकार से अण् ग्रहण है (प्र०) और (इण् कोः) इत्यादि जिनर सूत्रों में इण् प्रत्याहार पड़ा है वहां पूर्व वा पर णकार से ग्रहण करना चाहिये (उ०) यहां सर्वत्र निस्सन्देह पर णकार से इण् समझना चाहिये क्योंकि पूर्व से इण्प्रत्याहार में (इ, उ) दो ही वर्ण आते हैं सो जहां इन दो वर्णों से कार्य लिया है वहां (खोः) ऐसा इ उ को विभक्ति के साथ सन्धि करके पड़ा है यहां इण् पड़ते तो कुक् गौरव नहीं था किन्तु आधी मात्रा का लाघव ही था फिर इण् प्रत्याहार के न पढ़ने से निश्चय हुआ कि सर्वत्र पर णकार से इण् प्रत्याहार लिया जाता है । अन्यत्र भी जहां कहीं शिष्ट वचन में सन्देह पड़े वहां व्याख्यान से विशेष करके सत्य विषय का निश्चय कर लेना चाहिये किन्तु उस वचन की व्यर्थ जान के नहीं छोड़ देना चाहिये और सन्दिग्ध लौकिक व्यवहारों का भी विशेष व्याख्यान से निर्णय किया जाता है ॥ १ ॥

(सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः) यह गुण कार्य होने का काल है यहां (अलोन्यस्य, इकी गुणवृद्धी) इन दो परिभाषाओं की विधि सूत्र के साथ परिभाषा बुद्धिसे एक वाक्यता ही इस लिये कार्य काल परिभाषापक्ष, और जब (ह्यवरट्, हल्) यहां दो हकारों का उपदेश इत्यादि विषयों में सन्देह पड़े तब उस विषय के साथ सामान्यविषयक बुद्धि से परिभाषारूप व्याख्या की एकवाक्यता होवे । इस लिये यथोद्देश पक्ष है । इस से ये दोनों परिभाषा की गई हैं ॥

२—कार्यकालं संज्ञापरिभाषम् ॥

३—यथोद्देशं संज्ञापरिभाषम् ॥ अ० ॥ १ । १ । ११ ॥

(कार्यस्य कालः कार्यकालः कार्यकालः कालोऽस्य तत् कार्यकालम्, संज्ञा च परिभाषा च तत्संज्ञापरिभाषम्, उद्देशमनतिक्रम्य यथोद्देशम्) संज्ञा और परिभाषा का समय वही है जो कार्य करने का काल होता है उसी समय उनकी उपस्थिति होती है। जैसे दीपक एक स्थान पर रखा हुआ सबधर को प्रकाशित करता है वैसे परिभाषा भी एकदेश में स्थित ही कर सब शास्त्र के विषयों को प्रकाशित करती है इस में प्रमाण (परिभाषा पुनरेकदेशस्था सती कृत्स्नं शास्त्रमभिज्वलयति प्रदीपवत्, यथा प्रदीपः सुप्रज्वलितः सर्वं वेष्माभिज्वलयति) महाभाष्य० २ । १ । १ ॥ और यथोद्देशपक्ष से प्रयोजन यह है कि जिस विषय पर जिस परिभाषा का उच्चारण किया हो वह उस का उल्लंघन न करे अर्थात् उस विषय के अनुकूल उस की प्रवृत्ति होवे। इन दोनों पक्षों में भेद यह है कि काल पक्ष की परिभाषा किसी की दृष्टि में असिद्ध नहीं मानी जाती। और यथोद्देशपक्ष की परिभाषा असिद्ध प्रकरण में नहीं लगती ॥२।३॥

(दाधा घ्वदाप) इस सूत्र में अदाप् कहने से दाप् लबने धातु का निषेध हो सकता है फिर दैप् शोधने धातु की घुसंज्ञा हो जावे तो (अवदातंमुखम्) यहां अनिष्ट दत् आदेश प्राप्त है इसी लिये दैप् धातु की घुसंज्ञा इष्ट नहीं है इत्यादि प्रयोजनों के लिये यह परिभाषा की गई है ॥

४—अनेकान्ता अनुबन्धाः ॥ अ० ॥ १ । १ । २० ॥

पू, जू, डू, कू इत्यादि अनुबन्ध जिन धातु आदि के साथ युक्त होते हैं उन के एकान्त अर्थात् अवयव नहीं किन्तु वे अनुबन्ध उन धातु आदि से पृथक् हैं। इस से यह सिद्ध हुआ कि “दैप्” धातु की एजन्त मान कर आकारादेश किये पीछे दाप् मान कर इसी घुसंज्ञा का निषेध होता है इसी से (अवदातंमुखम्) यहां दोष नहीं आता ॥४॥

अव (अनेकाल् शित्सर्वस्य) इस सूत्र से (अनेकाल्) और (शित्) आदेश संपूर्ण के स्थान में होते हैं (इदम् इग्, अष्टाभ्य औश्) यहां (इग्) और औश् भी शकार के सहित अनेकाल् हैं फिर अनुबन्धों * के एकान्त पक्ष में शित् ग्रहण आपक है इस से यह परिभाषा निकली है ॥

* अनुबन्धों में एकान्त और अनेकान्त दोनों पक्ष माने जाते हैं तो अनेकान्तपक्ष में परिभाषा का प्रयोजन दिखादिया और एकान्तपक्ष इस लिये मानते हैं कि अनेकान्तपक्ष में कू जिस का इत् गवा हो वह कित् नहीं हो सकता क्योंकि कित् शब्द में वहुव्रीहि सनास से अन्य पदार्थ प्रत्यय के साथ ककार अनुबन्ध का मुख्य सम्बन्ध नहीं घटता और एकान्तपक्ष में घट जाता है और अनेकान्तपक्ष में शकार अनुबन्ध से शित् अनेकाल् नहीं हो सकता फिर एकान्तपक्ष के लिये ही अगली ५ । ६ । ७ तीनों परिभाषा हैं ॥

५—नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम् ॥ अ० ॥ १ । १ । ५५ ॥

अनुबन्ध के सहित जो अनेकाल् हो उस को अनेकाल् नहीं मानना किन्तु जो अनुबन्धरहित अनेकाल् हो वही अनेकाल् कहाता है इस से यह आया कि (इश्) आदि आदेश शित् होने में अनेकाल् नहीं होते तो (शित्) आदेश सार्थक हो कर स्वार्थ में इस परिभाषा का चरितार्थ हो गया और अन्यत्र फल यह है कि जो अर्वा शब्द को (अर्वणस्तसावनजः) इस सूत्र से (ट्) आदेश कहा है उस को ऋकार अनुबन्ध के सहित अनेकाल् मान लें तो सर्वादेश अनिष्ट प्राप्त हो अंत्य को इष्ट है अनुबन्धकृत अनेकाल् न होने से सर्वादेश नहीं होता इत्यादि अने कप्रयोजन हैं ॥ ५ ॥

अब इस पाँचवीं परिभाषा के एकान्त पक्ष में होने से दैप् धातु के पकार का लोप प्रथम हो गया क्यों कि लोपविधि सब से बलवान् है। लोप किये पीछे आकारादेश करने से (अदाप्) इस से घुसंज्ञा का निषेध नहीं हो सकता। और किसी प्रकार पकार का लोप प्रथम न करें तो अनुबन्धों के एकान्तपक्ष में दैप् धातु एजन्त नहीं पुनः आकारादेश नहीं प्राप्त है तो (अवदातं मुखम्) यहां घुसंज्ञा होनी चाहिये इस लिये ज्ञापकसिद्ध यह परिभाषा है ॥

६—नानुबन्धकृतमनेजन्तत्वम् ॥ अ० ॥ ३ । ४ । १६ ॥

अनुबन्ध के होने से एजन्त पक्ष की हानि नहीं होती (उदीचां माडो०) इस सूत्र में (मेड्) धातु का माड् निर्देश नहीं करते तो व्यतिहारग्रहण भी नहीं करने पड़ता क्यों कि मेड् धातु का व्यतिहार अर्थ ही है फिर (उदीचां मेडः) इतने छोटे सूत्र से सब काम निकल जाता तो बड़ा सूत्र करने से यह आया कि अनुबन्ध के बने रहते ही आकारादेश हो जाता है कि जैसे मेड् का माड् बन गया अर्थात् अनुबन्ध के होने से भी एजन्तत्व की हानि नहीं होती। जैसे कि मेड् में (ङ्) अनुबन्ध के बने रहते ही एच् निमित्त आकारादेश हो गया इस से यह परिभाषा स्वार्थ में चरितार्थ हुई और अन्यत्र फल यह है कि दैप् धातु को भी अनुबन्ध के वर्तमान समय ही में एजन्त मान कर आकारादेश हो जाता है फिर अदाप् निषेध के प्रवृत्त होने से घुसंज्ञा का प्रतिषेध होकर (अवदातं मुखम्) प्रयोग सिद्ध होता है ॥ ६ ॥

अब अनुबन्धों के एकान्तपक्ष में यह भी दोष आता है कि (अण्) और (क) प्रत्यय में (ण्, क्) अनुबन्धों के लगे होने से भिन्न रूप वाले समके जावे फिर सरूप प्रत्ययनित्य बाधक होते हैं अर्थात् अपवाद विषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति नहीं होती यह बात नहीं बनेगी इस से (गोदः, कम्बलदः) यहां

(अण्) का अपवाद (क) प्रत्यय हो जाता है इस अपवाद के विषय में उत्सर्ग अण् भी होना चाहिये इस लिये ज्ञापकसिद्ध यह परिभाषा है ॥

७—नानुबन्धकृतमसारूप्यम् ॥ अ० ॥ ३।१।१३६ ॥

जिन में अनुबन्ध मात्र का भेद हो, वे भिन्न रूप वाले असरूप नहीं कहते। (ददातिदधात्योर्विभाषा) इस सूत्र में विभाषाग्रहण इस लिये है कि (श) प्रत्यय के पक्ष में आकारान्त से विहित उत्सर्ग रूप (ण) प्रत्यय भी हो जावे और (अण्, क) प्रत्यय के समान (ण, श) प्रत्यय भी अनुबन्ध से असरूप और अनुबन्धरहित सरूप ही हैं फिर असरूप प्रत्ययों में तो (वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्) इस परिभाषा सूत्र से उत्सर्गापवाद विकल्प हो ही जाता फिर विभाषाग्रहण व्यर्थ हो कर यह जनाता है अनुबन्धमात्रभेद के होने से असारूप्य नहीं होता अर्थात् (ण, श) प्रत्यय असरूप नहीं हैं कि जो (वाऽसरूप०) परिभाषा से विभाषा हो जावे इस से विभाषा ग्रहण स्वार्थ में चरितार्थ और अन्यत्र फल यह है कि इसी से (गोदः, कम्बलदः) यहां (क) अपवाद के विषय में (अण्) उत्सर्ग भी नहीं होता ॥ ७ ॥

अब संज्ञा दो प्रकार की होती है एक तो जो वाच्य वाचक संकेत से किन्हीं विशेष प्रयोजनों के लिये किसी का कुछ नाम रख लेना उसको कृत्रिम संज्ञा कहते हैं और जो प्रकृति प्रत्यय के योग से यौगिक अर्थ होता है उसको अकृत्रिम संज्ञा कहते हैं। सो लौकिक व्यवहारों में तो यही रीति है कि जहां कृत्रिम और अकृत्रिम दोनों संज्ञाओं का सम्भव हो वहां कृत्रिम संज्ञा ली जावे अकृत्रिम नहीं। यथा (केनचिदुक्तं गोपालकमानयेति) जैसे किसी ने कहा कि गोपालक को लेना एक तो यहां गोपालक किसी निज मनुष्य का नाम है। और दूसरा जो कोई गौओं का पालन करे उस को गोपाल कहते हैं तो यह अर्थ किसी निज के साथ नहीं है। फिर इस कृत्रिमसंज्ञा वाले निज गोपालक का ही ग्रहण होता है ऐसे अब व्याकरण में जहां कृत्रिम और अकृत्रिम दोनों संज्ञाओं का सम्भव है जैसे धातु, प्रातिपदिक, बहुव्रीहि, तत्पुरुष, वृद्धि, गुण, सवर्ण, सम्प्रसारण, नदी इत्यादि शब्दों में कृत्रिम संज्ञा का ग्रहण हो वा अकृत्रिम का इस लिये यह परिभाषा है ॥

८—कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्यसम्प्रत्ययः ॥ अ० ॥ १।१।२३ ॥

जहां कृत्रिम और अकृत्रिम दोनों संज्ञाओं में कार्य होना सम्भव हो वहां कृत्रिमसंज्ञा में कार्य होना निश्चित रहे अकृत्रिम में नहीं इस से व्याकरण में भी धातु आदि कृत्रिम संज्ञाओं से कार्य लेने चाहिये सुवर्ण आदि धातु संज्ञक से नहीं ॥ ८ ॥

अब इस कृत्रिम परिभाषा के होने से दोष आते हैं कि जहाँ कृत्रिम संज्ञा के लेने से कुछ प्रयोन जसिद्ध नहीं होता जैसे (कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे) इस सूत्र में जो कृत्रिम कर्म संज्ञा का ग्रहण होवे तो (देवदत्तस्य धान्यं व्यतिलुनन्ति) यहाँ कर्त्ता को ईप्सिततम धान्य कर्म के होने से आत्मनेपद होना चाहिये वह यहाँ इष्ट नहीं है इस लिये यह परिभाषा है ॥

६—उभयगतिरिह भवति ॥ अ० ॥ १ । १ । २३ ॥

इस व्याकरण शास्त्र में दोनों प्रकार का बोध होता है अर्थात् कहीं कृत्रिम और कहीं अकृत्रिम का भी ग्रहण होता है जैसे (कर्मणि द्वितीया) यहाँ कृत्रिम कर्म संज्ञा और (कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे) कृषीबला व्यतिलुनन्ते । यहाँ अकृत्रिम क्रियारूप कर्म का ग्रहण है इस लिये (देवदत्तस्य धान्यं व्यतिलुनन्ति) यहाँ अकृत्रिम कर्म के होने से (आत्मनेपद) नहीं होता तथा (कर्त्तृकरणयोस्तृतीया) देवदत्तेन गामी गम्यते, रथेन गच्छति । यहाँ कृत्रिम करण संज्ञा और (शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेवेभ्यः करणे) शब्दं करोति शब्दायते । यहाँ अकृत्रिम करणसंज्ञा ली जाती है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६ ॥

(अध्येता, श्रयिता) इत्यादि प्रयोगों में इङ् और शीङ् धातु को गुणनिषेध होना चाहिये क्यों कि अनुबन्धों के एकान्तपक्ष में दोनों धातु डित् हैं और अनेकान्तपक्ष में अनुबन्ध पृथक् भी हैं इस में गुणनिषेध कार्य और इगन्त कार्य हैं ॥

१०—कार्यमनुभवन् हि कार्यो निमित्तत्वेनाश्रीयते ॥

कार्य करते हुए कार्यो का निमित्तगुण से आश्रय किया जाता है अर्थात् जिस के आश्रय से कार्य होता हो वही उसका निमित्त कार्यो होता है जैसे डित्त्व गुण का निमित्त इगन्त नहीं कि जो वह डित्त्व इगन्त से उत्पन्न हुआ हो जो डित्त्व का निमित्त इगन्त कार्यो होता तो अवश्य गुण का निषेध हो जाता (स्थण्डिलाच्छयितरि०) इस सूत्र में (शीङ्) धातु को गुणपठन प्रापक से यह परिभाषा निकली है तथा सन्नन्त यङन्त को कहा द्वित्व ऊर्ण धातु के नुभाग को हो जाता है क्योंकि सन् का निमित्त ऊर्ण धातु है (ऊर्णनविधति, ऊर्णनुविधति) इत्यादि ॥ १० ॥

(प्रणिदापयति, प्रणिधापयति) इत्यादि प्रयोगों में (दा, धा) रूप को कही हुई घुसंज्ञा पुगन्त (दाप्, धाप्) को न प्राप्त होने से घुसंज्ञक धातुओं के परे (प्र) उपसर्ग से उत्तर नि के नकार को एत्व न होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा की गई है ॥

११—अर्थवत् आगमस्तद्गुणीभूतोऽर्धवद्गुणेन गृह्यते * ॥ अ० ॥

१।१।२० ॥

जो अर्थवान् प्रकृति आदि को टिप् कित् और मित् आगम होते हैं वे उन्हीं प्रकृति आदि के स्वरूप भूत होने से उन्हीं के ग्रहण से ग्रहण किये जाते हैं अर्थात् वे पुक् आदि आगम प्रकृति आदि से पृथक् स्वतन्त्र नहीं समझे जाते इस से (प्रणिदा-पयति) आदि में पुगन्त की भी घु संज्ञा के होजाने से एत्व आदि कार्य होजाते हैं तथा (सर्वेषाम्) इत्यादि प्रयोगों में भी सुडादि आगमों के तद्गुणीभूत होने से (साम्) की भूलादि सुप् मान कर एकारादेश हो ही जाता है इसी प्रकार लोक में भी किसी प्राणी का कोई अङ्ग अधिक होजावे तो वह उसी के ग्रहण से ग्रहण किया जाता है ॥ ११ ॥

अब (पादः पत्) इस सूत्र से जो पाद शब्द को (पत्) आदेश कहा है यहाँ तदन्तविधि परिभाषा के आश्रय से (हिपात्, त्रिपात्) शब्दों को भी भसंज्ञा में (पत्) आदेश होता है उस पत् आदेश के अनेकाल् होने से हिपात् त्रिपात् संपूर्ण के स्थान में प्राप्त है सो जो संपूर्ण के स्थान में होवे तो (हिपदः, पश्य, त्रिपदः पश्य) इत्यादि प्रयोग न बन सकें इस लिये यह परिभाषा कही है ॥

१२—निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति ॥ अ० ॥ ६।४।१३० ॥

षष्ठी विभक्ति से दिखाये हुए स्थानी के स्थान में प्राप्त जो प्रथमानिर्दिष्ट आदेश वह निर्दिश्य मान अर्थात् सञ्कार वा वार्त्तिककार ने जितने स्थानी का निर्देश किया हो उसी के स्थान में हो अर्थात् तदन्तविधि से जो पूर्वपद वा अन्य उस के सदृश कोई आजावे तो उस सब के स्थान में न हो । इस से हिपात् शब्द में पाद मात्र को पत् आदेश हो जाता है (हि, त्रि) आदि वच जाते हैं इसी से (हिपदः पश्य) इत्यादि प्रयोग बन जाते हैं ॥ १२ ॥

अब (चेता, स्तोता) इन (प्रयोगों में) स्थानेऽन्तरतमः (इस सूत्र से प्रमाणकत आन्तर्यमाने तो झस्व इकार उकार के स्थान में अकार गुण प्राप्त है इस से अभीष्ट प्रयोगों की सिद्धि नहीं होती इस लिये यह परिभाषा की है ॥

* जो नागेश और भट्टोजिदीक्षित आदि नवीन लोग इस परिभाषा की (यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते) इस प्रकार की लिखते मानते और व्याख्यान भी करते हैं सो यह पाठ महाभाष्य से विरुद्ध महाभाष्य में यह परिभाषा ऐसी कहीं नहीं लिखी इसलिये इन लोगों का प्रमाद है ॥

१३—यत्नानेकविधमान्तर्यं तत् स्थानत एवान्तर्यं बलीयः ॥ अ० ॥

१।१।५० ॥

जहां अनेक प्रकार का अर्थात् स्थानकृत, अर्थकृत, गुणकृत और प्रमाणकृत यह चार प्रकार का आन्तर्य प्राप्त हो वहां जो स्थान से आन्तर्य है वही बलवान् होता है इस से प्रमाणकृत आन्तर्य के हठ जानने से स्थानकृत आन्तर्य के आश्रय से एकार ओकार गुण होकर (चेता, स्तोता) प्रयोग बन जाते हैं स्थानकृत आदि के विशेष उदाहरण सन्निधिविषय में लिख चुके हैं ॥ १३ ॥

(संख्याया अतिशदन्तायाः कन्) यहां ति और शत् जिस के अन्त में हां उस से कन् प्रत्यय का निषेध किया है। सो (कतिभिः क्रीतम्, कतिकम्) यहां भी त्यन्त से निषेध होना चाहिये और कन् प्रत्यय तो इष्ट ही है इस लिये यह परिभाषा है ॥

१४—अर्थवद्गृहणे नानर्थकस्य ॥ अ० ॥ ५।१।२२ ॥

अर्थवन् के ग्रहण होने में अनर्थक शब्दों का ग्रहण नहीं होता इस से अर्थवान् (ति) शब्द के ग्रहण में निरर्थक उतिप्रत्ययान्त के ति का ग्रहण नहीं होता इस से (कतिकम्) यहां कन् का निषेध नहीं हुआ। इसी प्रकार प्र शब्द से जड़ के परे वृद्धि कही है सो (प्र + जड़वान् = प्रोडवान्) यहां जड़ शब्द निरर्थक है इस लिये वृद्धि नहीं होती इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ४ ॥

अब अर्थवद्ग्रहणपरिभाषा के होने से भी) अमहान् महान् संपन्नो महद्भूत चन्द्रमाः) इस प्रयोग में महत् शब्द का आकारादेश होना चाहिये और आत्व के होने से अनिष्टसिद्धि प्राप्त है इस लिये यह परिभाषा है ॥

१५—गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः ॥ अ० ॥ ६।३।४६ ॥

जो गुणों से प्राप्त होवे वह (गौण) और जो गुणों से प्राप्त होवे वह (मुख्य) कहा जाता है उस गौण और मुख्य दोनों में एक काल में एक कार्य प्राप्त हो तो मुख्य में कार्य होवे और गौण में नहीं इस से (महद्भूतचन्द्रमाः यहां आकारादेश) नहीं होता क्यों कि यहां महत् शब्द अभूततद्भाव अर्थ में मुख्य और चन्द्रमा के साथ समानाधिकरण में गौण विशेषण है इसी प्रकार (अगौः, गौः संपद्यत, गोभवत्) यहां च्विप्रत्ययान्त गो शब्द निपातसंज्ञक है परन्तु मुख्य ओकारान्त निपात नहीं इस लिये (ओत्) सूत्र से प्रगृह्य संज्ञा नहीं होती इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ १५ ॥

अर्थवान् के ग्रहण में अनर्थक का ग्रहण नहीं होता यह कह चुके हैं सो (राज्ञा) राजन् शब्द में कनिन् प्रत्यय का अन् अर्थवान् है इस लिये अन्नन्तके अकार का लोप होना ठीक है और (साम्ना) यहां सामन् शब्द में मनिन् प्रत्यय का मन् अर्थवान् और अन् अनर्थक है इस समाधान के लिये यह परिभाषा है ॥

१६—अनिनख्यग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति ॥ अ० ॥ १ । १ । ७२ ॥

अन्, इन्, अस्, मन् ये जिन सूत्रों में ग्रहण हैं वहां अर्थवान् और अनर्थक दोनों से तदन्तविधि होता है। अन् में तो अर्थवान् और अनर्थक दोनों के उदाहरण दे दिये। इन् (दण्डी) यहां इनि प्रत्यय के अर्थवान् इन्नन्त को दीर्घ और (वाग्मी) यहां (मिनि) प्रत्यय के अनर्थक इन् को दीर्घ होता है। अस् (सुपयाः) यहां अर्थवान् (असुन्) प्रत्यय के अस् को दीर्घ और (पीतवाः) यहां पीत पूर्वक (वस्) धातु से क्तिप् हुआ है सो वस् में अनर्थक अस् को दीर्घ होता है। मन् (सुष्टु शर्म यस्याः सां सुग्रन्ता) यहां तो अर्थवान् मन्नन्त से ङीप् का निषेध है और (सुप्रथिमा) यहां इमनिच् प्रत्यय का इमन् अर्थवान् और मन् भाग निरर्थक को भी ङीप् का निषेध होता ही है ॥ १६ ॥

और आगे एक परिभाषा लिखें गे कि समीपस्थ का विधान वा निषेध होता है इस में यह दोष आता है कि जैसे (लिङ्सिचावात्मनेपदेषु) इस सूत्र की अनुवृत्ति (उच्च) इसमें आती है। सो जो समीपस्थ के विधि निषेध का नियम है तो आत्मनेपद की अनुवृत्ति आनी चाहिये क्यों कि आत्मनेपद की अपेक्षा में (लिङ्, सिच्) दूर है और (लिङ् सिच्) की अनुवृत्ति के बिना कार्यसिद्धि नहीं हो सकती इस लिये यह वक्ष्यमाण परिभाषा है ॥

१७—एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः ॥

जो एक सूत्र में निर्देश किये पद हैं उन की अन्य सूत्रों में एक साथ प्रवृत्ति और एक साथ निवृत्ति हो जाती है इस से (उच्च) सूत्र में लिङ् सिच् की भी अनुवृत्ति आ जाती है। इसी प्रकार अन्यत्र बहुत स्थलों के सूत्र वार्त्तिकों में यह रीति दीख पड़ती है कि जैसे कहीं दो पदों की अनुवृत्ति आती है उन में से जब एक को छोड़ना होता है तब द्वितीय पद को फिर के पढ़ते हैं तो यही प्रयोजन है कि उन दोनों पदों की अनुवृत्ति एक साथ ही चलती है उस में से एक को छोड़ के दूसरे पद की अनुवृत्ति नहीं जा सकती ॥ १७ ॥

अब इस पूर्व परिभाषा के हीने में यह दोष है कि (अनुगुत्तरपदे) इस सब सूत्र का अधिकार चलता है उस में अनुक् अधिकार तो आनङ् विधान से पूर्व २ रहता है फिर उत्तरपदाधिकार पाद पर्यन्त क्यों जावे इस लिये यह परिभाषा है

१८—एकयोगनिर्दिष्टानामप्येकदेशानुवृत्तिर्भवति ॥ अ० ॥ ४

१।२७ ॥

एक सूत्र में पृथक् पठित पदों में से भी कहीं एकदेश की अनुवृत्ति होती है इस से उत्तरपदाधिकार का पादपर्यन्त जाना सिद्ध हो गया । तथा (दामहाय नान्ताच्च) यहां पूर्वसूत्र से संख्या की अनुवृत्ति आती है और अव्यय की नहीं (पक्षातिः) इस सूत्र में पूर्वसूत्र से मूल शब्द की अनुवृत्ति आजाती है पाक व नहीं आती इत्यादि ॥ १८ ॥

(अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः) यहां प्रत्यय ग्रहण से सवर्ण का निषेध किया है इस का यही प्रयोजन है कि (सत्राशंसभिन्नतः) इत्यादि में उ आदिप्रत्यय अप सवर्णादीर्घ आदि के ग्राहक न हों सो जब स्त्रीप्रत्यय को छोड़ के अन्यदीर्घ प्रत्यय से किसी अर्थ की प्रतीति ही नहीं होती तो दीर्घप्रत्यय नहीं हो सकता इस लिये प्रत्यय ग्रहण के व्यर्थ होने से यह आपक होता है कि इस सूत्र में यौगिक प्रत्यय का निषेध है (प्रतीयते विधीयते भाव्यतेऽनेनाऽसौ प्रत्ययः, न प्रत्ययोऽप्रत्ययः) इसी व्याख्यान से यह परिभाषा निकली है ॥

१९—भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणम् ॥ अ० ॥ १।१।६६ ॥

जो विधान किया जाता है उस से सवर्णों का ग्रहण नहीं होता जैसे (त्यद दीनामः) यहां अकार का विधान किया है उस से दीर्घ सवर्णों का ग्रहण नहीं होता और (ज्यादादीयसः) यहां ईयसुन्प्रत्यय के ईकार की आकारादेश न कह किन्तु अकार कहते तो सवर्णग्रहण से दीर्घ हो ही जाता फिर निश्चित हुआ कि यहां भी पूर्ववत् भाव्यमान अकार सवर्ण ग्राही नहीं हो सकता इस लिये दीर्घ का ग्रहण इत्यादि ॥ ९ ॥

यदि भाव्यमान से सवर्णों का ग्रहण नहीं होता तो (दिवउत्, ऋतउत्) इस सूत्रों में भाव्यमान उकार को तपर करना व्यर्थ है । क्यों कि तपर करने का यही प्रयोजन है कि उकार तत्काल का ग्राहक ही अपने सवर्णों का ग्रहण न करे कि (अणुदित्०) परिभाषा से सवर्णग्रहण तो प्राप्त ही नहीं उकार तपर क्यों पड़ा इस लिये यह परिभाषा है ॥

२०—भवत्युकारेण भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणम् ॥ अ० ॥ ६ ।

१ । १८५ ॥

भाव्यमान उकार से सवर्णों का ग्रहण होता है इस से पूर्वोक्त उकार में तपर सार्थक हुआ और अन्यत्र फल यह है कि (अदसोऽसेर्दादुदोमः) यहां भाव्यमान ऋस्व उकार सवर्णों का ग्राही होता है तभी (अमूभ्याम्) आदि में दीर्घ उकारादेश हुआ ॥ २० ॥

(गवेहितं, गोहितम्) यहां समास में चतुर्थ्येकवचन प्रत्यय का लुक् किये पीछे (प्रत्ययलोपे०) सूत्र से प्रत्ययलक्षण कार्य मानें तो (गो) शब्द के ओकार को अवादेश प्राप्त है इस लिये यह परिभाषा है ॥

२१—वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम् ॥

वर्ण के आश्रय से जो कार्य कर्तव्य होतो प्रत्ययलक्षण न हो अर्थात् उस प्रत्यय को मान के वह कार्य न होवे इस लिये अच् को मान के अवादेश नहीं होता इत्यादि ॥ २१ ॥

(अतः कृकमिकंस०) इस सूत्र में कंस शब्द का पाठ व्यर्थ है क्योंकि उणादि में (कनेः सः) इस सूत्र से कम धातु का कंस शब्द बना है कम धातु के सामान्य प्रयोगों के ग्रहण में कंस शब्द का भी ग्रहण हो जाता फिर कंस शब्द क्यों पड़ा इस लिये यह परिभाषा है ॥

२२—उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि ॥ अ० ॥ १ । १ । ६१ ॥

उणादि प्रातिपदिक अव्युत्पन्न अर्थात् उनका सर्वत्र प्रकृति, प्रत्यय, कारक आदि से यौगिक यथार्थ अर्थ नहीं लगता अर्थात् उणादि शब्द बहुधा रूढ़ि होते हैं इस लिये (अतः कृकमिकंस०) सूत्र में कंसग्रहण सार्थक है । इसी प्रकार (प्रत्ययस्य लुक्०) इस सूत्र से (परश्व्य) शब्द का लुक् कहा हुआ उकार प्रत्यय होने से भी अव्युत्पन्नपक्ष मान के परशु शब्द के उकार का लुक् नहीं होता । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ २२ ॥

(देवदत्तश्चिकीर्षति) इत्यादि प्रयोगों में देवदत्त आदि शब्दों को सन्नन्त के धातु संज्ञा आदि कार्य प्राप्त हैं सो क्यों नहीं होते । जो देवदत्त के सहित सब वाक्य की धातु संज्ञा हो जावे तो (सुपोधातु०) इस सूत्र से जो देवदत्त के आगे विभक्ति है उस का लुक् प्राप्त होवे इस लिये यह परिभाषा है ॥

२३—प्रत्ययग्रहणे यस्मात्प्रत्ययो विहितस्तदादेस्तदन्तस्य च ग्रहणं भवति ॥ अ० ॥ १ । ४ । १३ ॥

जिस से जो प्रत्यय विधान किया हो वह जिस के आदि वा अन्त में हो उसी का ग्रहण ही और जो उस वाक्य में प्रत्यय विधि से पद पृथक् हो उस का सामान्य कार्य में ग्रहण न हो। इस से सन्नन्त की धातुसंज्ञा में देवदत्त का ग्रहण न हुआ तो विभक्ति का लुक् भी बच गया इसी प्रकार (देवदत्तो गार्ग्यः) यहां समुदाय की प्रातिपदिक संज्ञा हो तो मध्य विभक्ति का लुक् ही जावे तथा (ऋक्षस्य राज्ञः पुंश्वः) इस समुदाय की समास संज्ञा हो तो मध्यविभक्तियों का लुक् प्राप्त होवे इत्यादि इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं ॥२३॥

(येन विधिस्तदन्तस्य) इस परिभाषा सूत्र से (दृषत्सीर्णा, परिषत्सीर्णा) इत्यादि प्रयोगों में (रदाभ्यां निष्ठातीनः पूर्वस्य च दः) इस सूत्र से दृषद् परिषद् दकारान्त शब्दों से परे धातु के तकार को अनिष्ट नकारादेश प्राप्त है इस लिये यह परिभाषा है ॥

२४—प्रत्ययग्रहणे चापञ्चम्याः ॥ अ० ॥ १ । १ । ७२ ॥

जिन सूत्रों में प्रत्यय ग्रहण से कार्य होते हैं वहां पञ्चम्यन्त से परे वह कार्य नहीं अर्थात् पञ्चम्यन्त से परे प्रत्यय ग्रहण में तदन्तविधि नहीं है इस से (परिषत्सीर्णा) आदि में धातु के तकार को नकार आदेश नहीं होता इत्यादि ॥२४॥ कुमारीगौरितरा। इत्यादि प्रयोगों में तदन्तविधि माने तो कुमारी शब्द को भी ह्रस्व प्राप्त है इस लिये यह परिभाषा है ॥

२५—उत्तरपदाधिकारे प्रत्ययग्रहणे रूपग्रहणं द्रष्टव्यम् ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ५० ॥

(अनुगुत्तरपदे) जो षष्ठाऽध्याय के तृतीयपाद में प्रत्यय निमित्त कार्य है वहां स्वरूप का ग्रहण होना चाहिये अर्थात् तदन्तविधि नहीं इस से (कुमारी गौरितरा) यहां कुमारी शब्द को ह्रस्व नहीं होता और रूप ग्रहण से यह भी प्रयोजन है कि (हृदयस्य हृल्लेख्यदण्लासेषु) जो इस सूत्र में (२३) वीपरिभाषा के अनुकूल (यत्) और (अण्) प्रत्यय जिस से विहित हो उस उत्तरपद के परे पूर्व को कार्य हो जावे सो दृष्ट नहीं है। क्योंकि जो तदन्तविधि हो तो केवल हृदय शब्द से (हृदयम्, हृदयम्) प्रयोग नहीं बने इस में लेख ग्रहण ज्ञापक है कि अणन्त उत्तरपद का ग्रहण ही तो लेख शब्द (अण्) प्रत्ययान्त पृथग् ग्रहण व्यर्थ है। इस से यह निश्चित हुआ कि इस उत्तरपदाधिकार के प्रत्ययाश्रितकार्यविधायक सूत्रों में तदन्तविधि नहीं होती ॥ २५ ॥

(प्रत्ययग्रहणे०) इस २३ वी परिभाषा से (थङ्: संप्रसारणं पुत्रपत्न्योस्तत्पुरुषे) यहां तत्पुरुष में (पुत्र) और (पति) उत्तरपदों के परे (थङ्) को संप्रसारण कहा है तो (थङ्) का जो आदि वा थङन्त को कार्य होगा । इस से (कारीषगन्ध्यायाः पुत्रः कारीषगन्धीपुत्रः, कारीषगन्धीपतिः, वाराहीपुत्रः, वाराहीपतिः) इत्यादि प्रयोग तो सिद्ध हो जावेंगे परन्तु (परमकारीषगन्धीपुत्रः, परमकारीषगन्धीपतिः) इत्यादि प्रयोग नहीं सिद्ध होंगे क्यों कि जिस (कारीषगन्धि) शब्द से (थङ्) प्रत्यय विहित है तो वही जिस के आदि में ही ऐसे (थङ्) का ग्रहण हो सकता है और परम के सहित ग्रहण नहीं हो सकता इस लिये यह परिभाषा है ॥

२६—अस्त्रीप्रत्ययेनानुपसर्जनेन ॥ अ० ॥ ६ । १ । १३ ॥

(तदादि ग्रहणपरिभाषा) स्त्रीप्रत्यय और उपसर्जन को छोड़ के प्रवृत्त होवे इस से सामान्य स्त्रीप्रत्यय (परमकारीषगन्धीपुत्रः) इत्यादि में तदादि ग्रहण के दोष से संप्रसारण का निषेध नहीं होता और (कारीषगन्ध्यामतिक्रान्तोऽतिकारीषगन्ध्याः, अतिकारीषगन्ध्यास्य पुत्रः, अतिकारीषगन्ध्यापुत्रः) यहां थङन्त स्त्रीप्रत्यय उपसर्जन अर्थात् स्वार्थ में अप्रधान है इस लिये संप्रसारण नहीं होता इत्यादि ॥२६॥

(सुप्तिङन्तं पदम्) इस सूत्र में अन्तग्रहण व्यर्थ है क्योंकि जो (सुप्तिङ् पदम्) ऐसा सूत्र करते तो तदन्तविधिपरिभाषा से अन्त की उपलब्धि से (सुवन्त, तिङन्त) की पदसंज्ञा हो ही जाती फिर अन्तग्रहण व्यर्थ हो कर इस परिभाषा का ज्ञापक है ॥

२७—संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तविधिर्न भवति ॥ अ० ॥ १ ।

४ । १४ ॥

प्रत्ययों की संज्ञा करने में तदन्तविधि नहीं होती । इस से अन्तग्रहण सार्थक होना तो स्वार्थ में चरितार्थ है और अन्यत्र फल यह है कि (तरप्तमपीषः) यहां (तरप् तमप्) प्रत्ययान्त की (घ) संज्ञा नहीं होती जो तरप् प्रत्ययान्त की (घ) संज्ञा होजावे तो (कुमारीगौरितरा) यहां घसंज्ञक के परे कुमारी शब्द को ह्रस्व हो जावे सो इस परिभाषा से नहीं होता । और (कृत्तद्धितसमासाश्च) यहां कृत्तद्धित प्रत्ययों में अन्तग्रहण नहीं किया और प्रातिपदिक संज्ञा के होने से तदन्तविधि भी नहीं हो सकती इस लिये कृत्तद्धित में अर्थवान् की अनुवृत्ति करने से कृदन्त और तद्धितान्त ही अर्थवान् होते हैं केवल (कृत, तद्धित) नहीं क्योंकि (न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या न च केवलप्रत्ययः) इस महाभाष्य के

प्रमाण से प्रत्ययान्त ही अर्थवान् होता है । और (बहुच्) प्रत्यय प्रातिपदिक से नहीं होता किन्तु सुबन्त से पूर्व बहुच् कहा है बहुच् प्रत्यय के सहित जो समुदाय है वहां प्रातिपदिक संज्ञा होने की कुछ आवश्यकता नहीं है जे (बहुपटवः) यहां बहुच् के होने से पहिले ही अर्थवा पटु शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा तो सिद्ध ही है । फिर बहुच् प्रत्यय की विवक्षा में जिस विभक्ति और वचन का प्रयोग करना हो उस को रख के बहुच् प्रत्यय लाना चाहिये जैसे (पटु, ज, इस सुबन्त के पूर्व बहुच् आकर (बहुपटवः) प्रयोग सिद्ध हो गया । इसी प्रकार अन्य प्रयोगों में जान लेना चाहिये और (सर्वकः) (विश्वकः) इत्यादि में जो अकच प्रत्यय मध्य में होता है उस के आगे परिभाषा लिखी है कि (तदेकदेशभूतस्तदग्र ग्रहेण गृह्यते (सर्व) प्रातिपदिक के एक देश के मध्य में आया अकच उसी प्रातिपदिक के ग्रहण से ग्रहण किया जाता है ॥ २७ ॥

(२३) वी परिभाषा के होने में ये भी दोष हैं कि (अवतप्तेनकुलस्थितं त एतत्) यहां क्त प्रत्ययान्त स्थित शब्द के साथ सप्तम्यन्त का समास कहा है सो गतिसंज्ञक अव शब्द के सहित सप्तम्यन्त और कर्तृकारक वाची नकुल शब्द के सहित क्तान्त कृदन्त स्थित शब्द है इस कारण समास नहीं प्राप्त है इसलिये यह परिभाषा है।

२८—कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणं भवति ॥ अ० ॥

१।४।१३ ॥

जहां क्त प्रत्यय के ग्रहण से कार्य हो वहां उस कृदन्त के पूर्व गतिसंज्ञक और कारक हो तो भी वह कार्य हो जावे । इस से गति संज्ञक अव और कारक नकुल के होने से भी (समास हो जाता है तथा) सांकूटिनम् (यहां (इण् कृत्प्रत्ययान्त से (अण्) तद्धित होता है सो जो (कूटिन्) शब्द से करे तो उस के आदि को वृद्धि होवे इस परिभाषा से गतिसंज्ञक (सम्) के सहितके (अण्) के होने से (सम्) के सकार को वृद्धि होती है इत्यादि अनेक प्रयोजन (है गतिरनन्तरः) इस सूत्र में (अनन्तर) ग्रहण इस परिभाषा के होने में प्रापक है॥

(येन विधिस्तदन्तस्य) इस परिभाषा सूत्र में समान्य करके तदन्त विधिक है विशेषविषय में उस का अपवादरूप वक्ष्यमाण परिभाषा है ॥

२९—पदाङ्गाधिकारे तस्य तदन्तस्य च ॥ अ० ॥ १।१।७२ ॥

उत्तरपदाधिकार अर्थात् षष्ठाध्याय के तृतीयपाद में और अङ्गाधिकार में फि का कार्य विधान हो वा जिस के आश्रय हो उस का और वह जिस के अन्त

हो उन दोनों का ग्रहण होता है जैसे (इष्टकेषीकामालानां चित्तपूज्यभारिषु) इस सूत्र में (इष्टकचितं चिन्वीत) यहां उसी इष्टका शब्द को ह्रस्व और (पकेष्टकचितं चिन्वीत) यहां तदन्त को भी ह्रस्व होता है (इषीकतूलेन, मुञ्जेषीकतूलेन, मालभारिणी कन्या, उत्पलमालभारिणीकन्या) यहां भी इषीका और माला शब्द को दोनों प्रकार ह्रस्व हुआ है । अज्ञाधिकार में (सान्तमहतः संयोगस्य) महान् यहां उसी महत् शब्द को उपधा को दीर्घ और (परममहान्) यहां तदन्त को भी होता है इत्यादि अनेक उदाहरण महाभाष्य में लिखे हैं ॥ २८ ॥

(एकाच्चादे प्रथमस्य) यहां अनेकाच् धातु के प्रथम एकाच् अवयव को द्वित्व होता है जैसे (जजागार) यहां जा भाग को द्वित्व हुआ है । जो केवल एकाच् धातु है उस में प्रथम एकाच् अवयव कहां है जिस को द्वित्व हो जैसे (पपाच, इयाज) इत्यादि । तथा (एकाच्) शब्द में भी बहुव्रीहि समास है कि एक अच् जिस में हो अर्थात् अन्य एक वा अधिक हल् हों वह (एकाच्) अवयव कहा जाता है । सो जहां केवल एकही अच् धातु है जैसे (इयाय, आर) यहां (इ, ऋ) धातुओं को द्वित्व कैसे होसके इस लिये यह परिभाषा है ॥

३०—व्यपदेशिवदे कश्चिन् ॥ अ० ॥ १ । १ । २१ ॥

सत् निमित्त के होने से मुख्य जिस का व्यपदेश (व्यवहार) ही वह व्यपदेशी कहा जाता है और एक वह है जिस के व्यवहार का कोई सहायी कारण न हो उस एक में व्यपदेशी के तुल्य कार्य होता है इस से (एकाच्) धातु (पपाच) आदि में द्वित्व और केवल एक ही अच् धातु (इयाय, आर) आदि में भी द्विवचन हो जाता है । क्योंकि एकाच् और एक ही अच् धातु की अपेक्षा में अनेकाच् व्यपदेशी है तद् कार्य मानने से सर्वत्र द्वित्व होजाता है (आदेश प्रत्यययोः) इस सूत्र में प्रत्यय के अवयव सकार को मूर्धन्य कहा है सो (करिष्यति) आदि में तो ही जाता है । और (स देवान् यक्षत्) यहां यक्षत् क्रिया में केवल सिप् विवरण का सकार मात्र प्रत्यय है उस को (व्यपदेशिवद्भाव) मान के मूर्धन्य होता है । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं । लोक में भी यह व्यवहार होता है कि किसी के बहुत पुत्र हैं वहां तो ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठ का व्यवहार बनता है और जिस का एकही पुत्र है तो वहां उसी में ज्येष्ठ मध्यम और कनिष्ठ व्यवहार होता है ॥ ३० ॥

तद्धित में जैसे नडादि, गगादि और शिवादि इत्यादि प्रातिपदिकों से अपत्य आदि अर्थों में अण आदि प्रत्यय कहे हैं सो उत्तमनङ् परमगर्ग और महाशिव आदि प्रातिपदिकों से तत् तत् विधि में क्यों नहीं होते इस लिये यह परिभाषा है ॥

३१—ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिः प्रतिषिध्यते ॥

अ० ॥ ५ । २ । ८७ ॥

प्रत्यय का ग्रहण करने वाले प्रातिपदिक से तदन्तविधि नहीं होता इस लिये (उत्तमन्ड) और (परमगर्ग) आदि प्रातिपदिकों से (फक्) और (यज्) आदि प्रत्यय नहीं होते और इस परिभाषा के निकलने का ज्ञापक (पूर्वादिनिः, सपूर्वाच्च) ये दोनों सूत्र हैं क्योंकि जो पूर्व शब्द से विधान किया इनि प्रत्यय तदन्त से भी होजाता तो द्वितीय सूत्र व्यर्थ हो जाता फिर व्यर्थ हो कर यह ज्ञापक होता है कि यहां तदन्तविधि नहीं होता ॥ ३१ ॥

सूत्रान्त प्रातिपदिकों से (ठक्) और दशान्त आदि प्रातिपदिकों से (ड) आदि प्रत्यय कहे हैं सो (३०) वीं परिभाषा से (व्यपदेशिवद्भाव) मान कर केवल सूत्र और दश आदि से (ठक्) तथा (ड) आदि प्रत्यय क्यों नहीं हो जाते इस लिये यह परिभाषा है ॥

३२—व्यपदेशिवद्भावोऽप्रातिपदिकेन ॥ अ० ॥ १ । १ । ७२ ॥

व्यपदेशिवद्भाव की पूर्वाप्ति प्रातिपदिकाधिकार को छोड़ के होती है। इसलिये केवल सूत्र आदि शब्दों से ठक् आदि प्रत्यय नहीं होते और इस परिभाषा का ज्ञापक भी (पूर्वादिनिः, सपूर्वाच्च) ये दोनों सूत्र हैं क्यों कि जो यहां व्यपदेशिवद्भाव होता तो (पूर्वात्तादिनिः) ऐसा एक सूत्र कर देते तो सब काम सिद्ध हो जाता फिर पृथक् २ दो सूत्र करने से ज्ञात हुआ कि यहां व्यपदेशिवद्भाव नहीं होता ॥ ३२ ॥

(अचि शुधातु०) यहां (त्रियौ, भ्रुवौ) उहाहरणों में तो केवल (अच्) के परे (इयङ्, उवङ्) हो जाते हैं और (त्रियः, भ्रुवः) यहां (इयङ्, उवङ्) न होने चाहिये क्यों कि यहां केवल (अच्) परे नहीं है इस लिये यह परिभाषा है ॥

३३—अस्मिन् विधिल्लदादाबल्लग्रहणे ॥ अ० ॥ १ । १ । ७० ॥

जिस प्रत्याहाररूप पर विशेषण के आश्रय से विधि हो वह जिस के आदि में हो उस के परे वह कार्य होना चाहिये इस से अजादि प्रत्यय के परे (इयङ् उवङ्) होते हैं तो (त्रियः, भ्रुवः) यहां अजादि (जस्) में भी दोष नहीं आता। तथा (अवश्याय्यम्, अवश्याप्यम्) इत्यादि में (वान्ती यि प्रत्यये) सूत्र से वकारादि प्रत्यय के परे वान्तादेश हो जाता है (इको भल्ल) यहां भल्लादिसन् किया जाता है। इत्यादि इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं ॥ ३३ ॥

(तिथ्यपुनर्वसुर्नचत्रहस्ते बहुवचनस्य द्विवचनं नित्यम्) इस सूत्र में बहुवचन ग्रहण न करते तो भी प्रयोजन सिद्ध हो जाता। क्यों कि एक (तिथ्य) और दो (पुनर्वसु) इन तीन के होने से बहुवचन तो प्राप्त हो था फिर द्विवचन को कहने से उसी बहुवचन की प्राप्ति में द्विवचन हो जाता इस प्रकार बहुवचनग्रहण व्यर्थ हो कर ज्ञापक है कि (तिथ्य, पुनर्वसु) में कहीं एकवचन भी होता है वहां एकवचन को द्विवचन न हो इस लिये यह परिभाषा है ॥

३४—सर्वो हन्वो विभाषैकवद्भवति ॥ अ० ॥ १ । २ । ६३ ॥

दोहा अधिक किन्हीं शब्दों का हन्वसमास हो वह सब विकल्प करके एकवचन होता है। इस से तिथ्य पुनर्वसु के एकवचनपक्ष में द्विवचन हो इस लिये बहुवचनस्थानी का ग्रहण है। तथा इसी परिभाषा से (घटपटम्, घटपटौ, ईप-लोमकूलम्, साथोत्तरपदपदव्यनुपदम्) इत्यादि में भी एकवचन सिद्ध हो जाता है। समाहार हन्व सर्वत्र एक ही वचन होता है। और यह परिभाषा इतरतर-हन्वसमास में लगती है इसी से इस के उदाहरण भी सब इतरतरहन्व के दिये हैं ॥ ३४ ॥

(व्यत्ययी बहुलम्) इस से व्य आदि विकरणों का व्यत्यय होना सूत्रार्थ है। तथा (षष्ठीयुक्तशब्दसि वा) इस सूत्र से भी षष्ठीयुक्त पति शब्द को घि संज्ञा का वेद में विकल्प है इन दोनों में भाष्यकारने विभाग करके यह परिभाषा सिद्ध की है ॥

३५—वा ऋन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति ॥ अ० ॥ १ । ४ । ६ ॥

वेद में सब कार्य विकल्प करके होते हैं जैसे (दक्षिणायाम्) इस सप्तम्यन्त की प्राप्ति में (दक्षिणायाः) ऐसा प्रयोग होता है। इत्यादि अनेकप्रयोजन हैं ॥ ३५ ॥

किसी विद्यार्थी ने (अग्नी) ऐसा द्विवचनान्त शब्द उच्चारण किया जो उस का कोई अनुकरण करे कि (अग्नी इत्याह) तो यहां अनुकरण में साक्षात् द्विवचन के न होने से जो षष्ठ्य संज्ञा न होवे तो इकार के साथ संधि होना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

३६—प्रकृतिवदनुकरणं भवति ॥ अ० ॥ ८ । २ । ४६ ॥

जो अनुकरण किया जाता है वह प्रकृति के तुल्य होता है इस से (अग्नी) द्विवचनप्रकृति के तुल्य अनुकरण को आन के षष्ठ्य संज्ञा होने से संधि नहीं होती। और एकवचन बहुवचन में तो संधि होता है (कुमार्यलतक इत्याह) यहां (लतक) शब्द जो अनुकरण (लतक) के परे भी यणादेश होता है (हिः पचत्वित्याह) यहां

(हिः पचन्तु) शब्द के अनुकरण में भी अतिङ् से परे तिङ् पद निष्पात हो जाता है। (अर्थवदधातुरप्रत्ययः०) इस सूत्र में धातु का पर्युदास प्रतिषेध मानें कि धातु से अन्य अर्थवान् की प्रातिपदिक संज्ञा हो इस से चि आदि धातुओं के अनुकरण की प्रकृतिवत् होने से स्वाश्रय कार्य मान कर प्रातिपदिक संज्ञा हो जाती है फिर पंचमी विभक्ति के एकवचन में चिधातु को (इयङ्) आदेश नहीं प्राप्त है इस लिये धातु के अनुकरण की प्रकृतिवत् मान के (इयङ्) आदेश भी हो जाता है इस से (चियोदीर्घात्, परौ सुवोऽवज्ञाने, नेर्विशः) इत्यादि सब निर्देश ठीक बन जाते हैं ॥३६॥

(अवतु, पचतु) इत्यादि को पदसंज्ञा न होनी चाहिये क्योंकि तिङन्त की पद संज्ञा कही है यहां तो तिप् के इकार को उकार हो जाने से तिङ् नहीं रहा इस लिये यह परिभाषा है ॥

३७—एकदेशविकृतमनन्यवद्भवति ॥ अ० ॥ ४ । १ । ८३ ॥

जिस किसी का एक अवयव विपरीत हो जावे तो वह अन्य नहीं हो जाता किन्तु वही बना रहता है। इस से इकार के स्थान में उकार हो जाने से भी पद संज्ञा हो जाती है (प्राग्दीव्यतोऽण्) इस सूत्र से (दीव्यत्) शब्दपर्यन्त (अण्) प्रत्यय का अधिकार करते हैं और दीव्यत् शब्द कहीं नहीं है किन्तु (दीव्यति) शब्द है इस का एक देश इकार के जाने से (दीव्यत्) रह जाता है इसी ज्ञापक से यह परिभाषा निकली है। लोक में भी किसी लुत्ते का कान वा पूंछ काट लिया जावे तो उस को घोड़ा वा गधा नहीं कहते किन्तु कुत्ता ही कहते हैं इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ३७ ॥

(स्योनः) यहां (सिबु) धातु से उणादि (न) प्रत्यय के परे वकार को (जट्) होकर वकार को स्थानिवत् मानने से धातु के इकार को (लघूपधगुण) और उसी इकार को (यणादेश) दोनों प्राप्त हैं। इस में गुण पर और यणादेश (अन्तरङ्ग) है अब दोनों में से कौन सा कार्य होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

३८—पूर्वपरनित्यान्तरङ्गाऽपवादानामुत्तरोत्तरं वलीयः ॥

पूर्व से पर; पर से नित्य, नित्य से अन्तरङ्ग और अन्तरङ्ग से अपवाद ये सब पूर्व २ से उत्तर २ बलवा होते हैं। यह परिभाषा महाभाष्य के अभिप्रायानुकूल है अर्थात् इसी प्रकार की कहीं नहीं लिखी। पूर्व से पर बलवान् होना यह विषय (विप्रतिषेधे परं कार्यम्) इसी सूत्र का है जैसे (अत्रि) इस शब्द से

अपधित्याकार में ऋषिवाची होने से (अण्) प्राप्त और इकारान्तद्वाच् होने से ढक् प्राप्त है सो पूर्व (अण्) की बाध के परविहित (ढक्) होता है जैसे (अत्रे-पत्यम्, अत्रेयः) इत्यादि । भू धातु से लिट् लकार के णल् प्रत्यय के परे (भू + अ) इस अवस्था में हित्, यणादेश, उवङ्, गुण, वृद्धि और वुक् आगम ये सब प्राप्त हैं (द्विवचन) नित्य होने से पर यणादेश का बाधक है (उवङ्) अन्तरङ्ग होने से नित्य हित् का भी बाधक है और (उवङ्) का अपवाद (गुण) गुण का अपवाद (वृद्धि) और इन दोनों का अपवाद निरवकाश होने से (वुक्) होजाता है । इसी प्रकार अन्य भी बहुत प्रयोगों में यह परिभाषा लगती है (दुष्यति) यहां सन् प्रत्यय के परे (दिक्) धातु के वकार को जठ् किये पीछे द्विवचन और यणादेश दोनों प्राप्त हैं नित्य होने से द्विवचन होना चाहिये फिर नित्य द्विवचन से भी अन्तरङ्ग होने से यणादेश प्रथम होजाता है । इत्यादि ॥ ३८ ॥

(ईजतुः) यहां यज धातु से (अतुस्) प्रत्यय के परे हित् की बाध के परत्व से (संप्रसारण) होता है फिर हित् होना चाहिये वा नहीं इसलिये यह परिभाषा है ॥

३८—पुनः प्रसङ्गविज्ञानात् ऋड्वम् ॥ अ० ॥ १ । ४ । २ ॥

परत्व से वा अन्य किसी प्रकार से प्रथम बाधक कार्य होजावे । फिर जो उत्सर्ग कार्य की प्राप्ति हो तो उत्सर्ग भी होजावे । इस से (यज) धातु को संप्रसारण किये पीछे भी हित् होजाता है । इसी प्रकार परत्व से (हि) के स्थान में तातङ् आदेश होने से फिर हि को धि न होना चाहिये सो भी (तातङ्) के निषेध पक्ष में (हि) की (धि) होकर (भिन्धि) आदि प्रयोग बन जाते हैं इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ३८ ॥

लोक में यह रीति है कि तुल्य अधिकारी दो स्वामियों का एक भृत्य होता है तो वह आगे पीछे दोनों के कार्य किया करता है परन्तु जो उस भृत्य को दोनों स्वामी अनेक दिशाओं में एक काल में कार्य करने के लिये आज्ञा दें तो उस समय जो वह किसी का विरोधी न हुआ चाहै तो दोनों के कार्य न करें क्योंकि एक को एककाल में दो दिशाओं में जाके दो कार्य करना असम्भव है फिर जिस का पीछे करेगा वही अप्रसन्न होगा । इसी प्रकार सूत्रों में भी दो में जो बलवान् होगा वह प्रथम हो जावे गा और जो दोनों तुल्यबल वाले होंगे तो एक दूसरे को हठाने से लोक के तुल्य एक भी कार्य न होगा । जैसे स्त्री लिङ्ग में वर्तमान (त्रि, चतुर्) शब्द को सामान्य विभक्तियों में (त्रि, चतु) आदेश कहे हैं और (त्रि) शब्द को (आम्) विभक्ति के परे (त्रय) आदेश भी कहा है

फिर (विप्रतिषेधे परं कार्यम्) इस सूत्र से पर विप्रतिषेध मान के प्रथम (तिष्ठ) आदेश होगया । फिर उस को स्थानिवत् मान के (त्रय) आदेश भी होना चाहिये तो लीकवत् अनिष्ट प्रसङ्ग आजावे इस लिये यह परिभाषा है ॥

४०—सल्लङ्गतौ विप्रतिषेधे यद् बाधितं तद् बाधितमेव ॥ अ० ॥

१।४।२॥

एककाल में जब दो कार्यों की प्राप्ति होती है तब विप्रतिषेध में पर का कार्य होकर फिर दूसरे पूर्व सूत्र का कार्य प्रवृत्त नहीं हो सकता क्योंकि जो बाधक हुआ सो हुआ इस से फिर स्थानिवत् मान के (त्रय) आदेश नहीं होता इस कारण (तिष्ठणाम्) इत्यादि प्रयोग शुद्ध ठीक बन जाते हैं । और जो दूसरा कार्य भी पश्चात् प्राप्त हो और प्रथम हुआ कार्यकुल न बिगड़े तो (३८) वीं परिभाषा के अगुल्ल वह भी कार्य हो जावेगा ॥ ४० ॥

अब यह विचार भी कर्तव्य है कि धातुओं से परे जो लकारों के स्थान में तिप् आदि परस्मैपद और आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं वे पहिले ही किंवा विकरण ही आत्मनेपदादि के करने से प्रथम और पीछे भी विकरणों की प्राप्ति है इस से वे नित्य हैं । और आत्मनेपद परस्मैपद विधायक प्रकरण से परे भी विकरण ही हैं और विकरण किये पीछे आत्मनेपद नियम की प्राप्ति नहीं क्योंकि (अनुदात्तङित०) यह पंचमीनिर्दिष्ट कार्य व्यवधानरहित उत्तर को होना चाहिये विकरणों के व्यवधान से फिर आत्मनेपद नहीं पाता और जो आत्मनेपद निश्चय को अनवकाश माने सो भी नहीं क्योंकि अदादि और जुहीत्यादि गण में जहां विकरण विद्यमान नहीं रहते वहां और (लिङ्, लिट्) लकारों में (आत्मनेपद, परस्मैपद) का अवकाश ही है फिर (एधते, स्रद्धते) आदि में आत्मनेपद नहीं होसकता इस लिये यह परिभाषा है ॥

४१—विकरणेभ्यो नियमो बलीयान् ॥ अ० ॥ १।४।२॥

विकरणविधि से आत्मनेपद परस्मैपद नियमविधान बलीयान् है क्योंकि जो आत्मनेपद आदि के होने से पहिले विकरण ही होते हैं तो (आत्मनेपदेऽन्यतरस्याम्, पुषादिवृताद्युद्धितः परस्मैपदेयु) इन विकरणविधायकसूत्रों में आत्मनेपद के आन्वय से विकरणविधान क्यों किया इस से यह ज्ञापक है कि विकरणविधि से पहिले ही आत्मनेपद परस्मैपद नियम कार्य होते हैं । इस से (एधते, स्रद्धते) आदि में आत्मनेपद सिद्ध होगया इत्यादि प्रयोजन इस के हैं ॥ ४१ ॥

(न्यविशत, व्यक्तीणीत) यहां (नि, वि) उपसर्गों से परे (विश) और (क्ती) धातु से आत्मनेपद होता है सो विकरण आत्मनेपद और अट् आगम तीनों कार्य एक साथ प्राप्त हैं इन में से आत्मनेपद सब से पहिले होकर अब विकरण करने के पहिले और पीछे भी (अट्) प्राप्त है इस से अट् नित्य हुआ और विकरण भी अट् करने से पहिले तथा पीछे भी प्राप्त है तो विकरण भी नित्य हुए । जब दोनों नित्य हुए तो परत्व से अट् प्राप्त है । और अङ्ग कार्य अट् से विकरणों का होना प्रथम इष्ट है क्योंकि विकरण के आजाने पर सब की (अङ्ग) संज्ञा हो और अङ्ग संज्ञा के पश्चात् अट् आवे इस लिये यह परिभाषा है ॥

४२—शब्दान्तरस्य च प्राप्तुवन् विधिरनित्यो भवति ॥ अ० ॥ १।३।६० ॥

जो दो कार्य एकसाथ प्राप्त हों और वे दोनों नित्य ठहरते हों तो उन में एकविधि के होने से पहिले जिस शब्द को दूसरा विधि प्राप्त है और पहिले कार्य के होने पश्चात् वह विधि दूसरे शब्द को प्राप्त हो तो वह अनित्य होता है यहां (अट्) आगम पहिले तो केवल (विश) को प्राप्त है और विकरण किये पीछे विकरणसहित सब की अंग संज्ञा होने से सब को प्राप्त है इस लिये अट् अनित्य हुआ । फिर प्रथम विकरण हो कर पुनः प्रसंग मानने से (अट्) हा जाता है । इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ४२ ॥

(नृ कृत्वां भवः नाकुटः, नृपतेरपत्यं नार्पत्यः) यहां जो (नृ) शब्द को वृद्धि होती है उसी वृद्धिरूप आकार का सहचारी रेफ रहता है उस रेफ को खर् प्रत्याहार के परे (खरवसानयोर्विसर्जनीयः) इस सूत्र से विसर्जनीय होने चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

४३—असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे ॥ अ० ॥ ८।३।१५ ॥

४४—असिद्धं बहिरङ्गलक्षणमन्तरङ्गलक्षणे ॥ अ० ॥ ६।४।१३२ ॥

इन में से पहिली परिभाषा बहुधा व्यवहारकाल में प्रवृत्त होती और दूसरी बहुधा व्याकरणादिशास्त्रों में लगती है । बहिरंग कार्य करने में अन्तरंग कार्य असिद्ध हो जाता है । बहिर और अन्तर इन दोनों शब्दों के आगे जो अंग शब्द है वह उपकारकवाची और अंग शब्द के साथ दोनों शब्दों का बहुव्रीहि समास है (निमित्तसमुदायस्य मध्ये यस्य कार्यस्यांगमुपकारि निमित्तं वहिः कार्यान्तरापेक्षया दूरमधिकं वा वर्तते तद्वहिरङ्गं कार्यम्, एवं निमित्तसमुदायस्य मध्ये यस्य

कार्यस्याङ्गसुपकारिनिमित्तमन्तःकार्यान्तरापेक्षया सन्निहितं वा न्यूनं वर्तते तदन्तरङ्गं कार्यम्, तथा बहुपेक्षं वहिरङ्गमस्यापेक्षमन्तरङ्गम्) वहिरङ्ग उक्तं की कहते है कि प्रकृति, प्रत्यय, वर्ण और पद के समुदाय में जिस कार्य के उपकारी अवयव दूसरे कार्य को अपेक्षा से दूर वा अधिक हों। और अन्तरङ्ग वह कहता है कि प्रकृति आदि निमित्तों के समुदाय में जिस कार्य के उपकारी अवयव दूसरे कार्य को अपेक्षा से समीप वा न्यून हों। तथा जो बहुत निमित्त और व्याख्यान को अपेक्षा रखे वह वहिरङ्ग तथा थोड़े निमित्त और व्याख्यान को अपेक्षा रखे वह अन्तरङ्ग कहता है। इस लिये प्रायः अन्तरङ्ग कार्य प्रथम होता है और वहिरङ्ग असिद्ध हो जाता है। और कहीं २ वहिरङ्ग प्रथम हो भी जावे तो अन्तरङ्ग कार्यकी दृष्टि में असिद्ध अर्थात् नहीं हुआ सा ही रहता है। अब प्रकृत में (नार्कुटः, नार्पत्यः) यहां ककार पकार विसर्जनीय के निमित्त अन्तरङ्ग और वृद्धि का निमित्त तद्धित वहिरङ्ग है सो प्रथम वहिरङ्ग कार्य वृद्धि हो भी जाती है। परन्तु अन्तरङ्ग कार्य विसर्जनीय करने में वृद्धि के असिद्ध होने से रफ ही नहीं फिर विसर्जनीय किस को हो तथा (वाह जठ्) इस सूत्र में (जठ्) नहीं पढ़ते तो संप्रसारण की अनुवृत्ति आकर (प्रष्ठ + वाह् + णि + अस्) इस अवस्था में णि प्रत्यय के परे वकार को (उ) संप्रसारण और पूर्वरूप हो कर। (प्रष्ठ + उह + णि + अस्) इस अवस्था में उकार को ओकार (गुण) और उस ओकार के साथ वृद्धि एकादेश हो कर (प्रठीहः) आदि प्रयोग सिद्ध हो ही जाते फिर जठ् ग्रहण व्यर्थ हो कर यह ज्ञापक होता है कि (प्रठीहः) आदि में गुण करते समय संप्रसारण (असिद्ध) होता है अर्थात् यजादि प्रत्यय निमित्त भसंज्ञा और भ संज्ञा के आश्रय संप्रसारण होता है इस प्रकार बहुत अपेक्षा वाला होने से संप्रसारण वहिरङ्ग और (वि) प्रत्यय की मान के गुण अन्तरङ्ग है फिर अन्तरंग गुण करने में जब संप्रसारण असिद्ध हुआ तो गुण की प्राप्ति नहीं जब गुण नहीं हुआ तो वृद्धि हो कर (प्रठीहः) आदि प्रयोग भी नहीं बन सकते इस लिये जठ् ग्रहण करना चाहिये इसी जठ् ग्रहण के ज्ञापक से यह परिभाषा निकली है तथा (पचावेदम्, पचामेद्) यहां लोट् के उत्तम पुरुष के एकार को ऐकारादेश प्राप्त है सो ऐत्व अन्तरंग की दृष्टि में (आद्गुणः) सूत्र से हुआ गुण वहिरंग होने से असिद्ध है इस लिये वहां एकार ही नहीं तो ऐकार किस को हो। इत्यादि इस परिभाषा के असंख्य प्रयोजन हैं। लोक में भी अन्तरंग कार्य करने में वहिरंग असिद्ध ही माना जाता है जैसे। मनुष्य प्रातःकाल उठ कर पहिले निज गरीर संबंधी अन्तरंग कार्यों को करता है पीछे मित्री के और -

सवन्धियों के काम करता है क्यों कि मित्र आदि के कार्य निज शरीर की बहिरंग हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अन्तरंगबहिरंगलक्षण परिभाषा में ये दोष हैं कि (अनैर्दीव्यति अक्षयः, यः) यहां (दिव्) धातु से क्षिप् प्रत्यय के परे क्षिप् को आन के वकार होता है उस बहिरंग कठ् को असिद्ध मानें तो यणादेश नहीं हो सकता दोषों की निवृत्ति के लिये यह अगली परिभाषा है ॥

५ — नाजानन्तर्यं बहिष्प्रकृप्तिः ॥ अ० ॥ १ । ४ । २ ॥

दोनों अचों के समीपवा मध्य में कार्य विधान करते हैं वहां अन्तरंग लक्षण परिभाषा नहीं लगती इस से (अक्षयः) आदि में बहिरंग कठ् को सिद्ध नहीं माना तो यणादेश भी हो गया तथा (षत्वतुकोरसिद्धः) इस तुक् ग्रहण का यही प्रयोजन है कि (अधीत्य, प्रेत्य) इत्यादि प्रयोगों अन्तरंग और सवर्णदीर्घ तथा गुण एकादेश बहिरंग है जो तुक् अन्तरंग में बहिरंग एकादेश असिद्ध हो जाता तो तुक् हो ही जाता फिर तुग् एकादेश को असिद्ध करने में यह ज्ञापक निकला कि जो दो अचों के आश्रय कार्य हो वह अन्तरंग कार्य की दृष्टि में असिद्ध नहीं होता । इसी तुक् ज्ञापक से यह परिभाषा निकली है ॥ ४५ ॥

गोमान् प्रियो यस्य स गोमत्प्रियः यवत्प्रियः, गोमानिवाचरति गोमत्यते, इत्यादि प्रयोगों में समासाश्रित अन्तर्वर्तिनी विभक्ति का लुक् द्विपदाश्रय बहिरंग और (हल्ङ्यादि) सूत्र से प्राप्त सुलोप एकपदाश्रय होने से अन्तरंग बहिरंग का बाधक अन्तरंग हो जावे तो नम् आदि कार्य हो कर गोमत्-प्रयोग सिद्ध न हो किन्तु (गोमान् प्रियः) ऐसा प्राप्त होवे सो अनिष्ट है इस ह परिभाषा है ॥

—अन्तरङ्गानपि विधीन् बाधित्वा बहिरङ्गो लुक् भवति ॥

अ० ॥ ७ । २ । ६८ ॥

अन्तरंग विधियों का बाध के भी बहिरंग लुक् होता है अर्थात् जब अन्तर्वर्तिनी का लुक्समासाश्रय होने से बहिरङ्ग हुआ एकपदाश्रय सुलोप आदि अन्तरंग बाधक होगया तो (नलुमतांगस्य) इस सूत्र से नुम् आदि करने में प्रत्ययलक्षण ध हो कर (गोमत्प्रियः) इत्यादि प्रयोग बनजाते हैं तथा (प्रत्ययोत्तरपदयोश्च)

इस सूत्र का यही प्रयोजन है कि (त्वामिच्छति, त्वद्यति, मद्यति, तवपुत्रस्त्वपुत्रः, मत्पुत्रः त्वं नायोस्य त्वमाधः, ममाधः) इत्यादि प्रयोगों में (युष्मद्, अस्मद्) शब्दों को (त्व, म) आदेश हो जावे (त्वं नायोऽस्य) इस अवस्था में मध्यवर्तिनी विभक्ति का लुक् (त्व, म) आदेश होने के पहिले और पीछे भी प्राप्त होने से नित्य और (त्व, म) आदेश अन्तरंग हैं नित्य से अन्तरंग बलवान् होता है यह तो कश्चुके हैं । सो जो अन्तरंग होने से (त्व, म) आदेश पहिले हो जावे तो इस सूत्र का लुक् प्रयोजन न रहे क्योंकि वर्तमान विभक्ति के परे (त्वमावेकवचने) सूत्र से (त्व, म) होही जावेगी फिर व्यर्थ हो कर यह ज्ञापक हुआ कि अन्तरंग विधियों का भी बहिरंग लुक् बाधक होता है फिर जब बहिरंग लुक् पहिले हुआ तो सूत्र सार्थक रहा और इसी ज्ञापक से यह परिभाषा निकली ॥ ४६ ॥

(पूर्वेषुकामगमः) यहां (पूर्वेषुकामगमो) शब्द से तद्धित (अण्) प्रत्यय होता है (पूर्व + इप् + काम + गमो + अ) इस अवस्था में जो तद्धित प्रत्ययाश्रित बहिरङ्ग उत्तर पद वृद्धि से अन्तरङ्ग होने के कारण अकार इकार को गुण एकारादेश पहिले हो जावे तो पूर्वोत्तरपद के पृथक् २ न रहने और उभयाश्रय कार्य में अन्तादिवद्भाव के निषेध होने से (दिशोऽमद्राणाम्०) इस सूत्र से उभयपदवृद्धि नहीं हो सकती इत्यादिदोषों की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

४७-पूर्वोत्तरपदयोस्तावत्कार्यं भवति नैकादेशः ॥ अ०॥१।४।२ ॥

पूर्वोत्तरपदनिमित्तकार्य से अन्तरङ्ग भी एकादेश पहिले नहीं होता किन्तु पूर्वोत्तरपद निमित्त कार्य अन्तरङ्ग एकादेश से पहिले हो जाता है इस से (पूर्वेषुकामगमः) यहां अन्तरङ्ग मान कर प्रथम गुण एकादेश नहीं होता किन्तु पहिले उत्तरपद का वृद्धि हो कर वृद्धि एकादेश हो जाता है । यह भी परिभाषा (४५) वी परिभाषा की सहचारिणी है । इस का ज्ञापक यह है कि (नेन्द्रस्य परस्य) इस सूत्र में उत्तरपदवृद्धि का निषेध है कि उत्तरपद में इन्द्र शब्द को वृद्धि न हो जिस से (सोमिन्द्रः) प्रयोग सिद्ध हो जावे । सो जो सोम के साथ इन्द्र का एकादेश अन्तरङ्ग होने से पहिले हो जावे तो इन्द्र शब्द का इकार तो एकादेश में गया अन्त्य का अच् तद्धित प्रत्यय के परे लोप में गया फिर जब उत्तर पद इन्द्र शब्द में कोई अच् ही नहीं तो वृद्धि का निषेध क्यों किया इस से व्यर्थ हो कर यह ज्ञापक हुआ कि अन्तरङ्ग भी एकादेश पूर्वोत्तरपदकार्य के पहिले नहीं होता किन्तु अन्तरङ्ग का बाधक उत्तरपदवृद्धि पहिले होती है इस लिये उत्तरपद में इन्द्र शब्द को वृद्धि का निषेध किया है ॥ ४७ ॥

(प्रधाय, प्रस्थाय) इत्यादि प्रयोगों में (त्वा) प्रत्यय के स्थान में (ल्यप्) आदेश होता है सो ल्यप् होने से पहिले (प्रधा+त्वा) इस अवस्था में धा के स्थान में (हि) और (स्था) को इकारादेश तथा (त्वा) को (ल्यप्) भी प्राप्त है इस में हि आदि आदेश पर और अन्तरङ्ग हैं और ल्यप् बहिरङ्ग है सो पर और अन्तरङ्ग मान के हि आदि आदेश करलें तो (प्रधाय, प्रस्थाय) आदि प्रयोग नहीं बन सकें इस लिये यह परिभाषा है ॥

४८-अन्तरङ्गानपि विधीन बहिरङ्गो ल्यब् बाधते ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३६ ॥

अन्तरङ्ग विधियों का भी बहिरङ्ग ल्यबादेश बाध करता है । इस से (हि) आदि आदेशों को बाध के प्रथम (ल्यप्) हो गया फिर हि आदि की प्राप्ति नहीं तो (प्रदाय, प्रधाय, प्रस्थाय) आदि प्रयोग सिद्ध हो गये और (अदी जग्धिर्ल्यप्ति किति) इस सूत्र में ल्यप् का ग्रहण नहीं करते तो तकारादि प्रत्ययमात्र की अपेक्षा रखने वाला अद धातु को (जग्धि) आदेश अन्तरङ्ग होने के कारण पूर्वपद की अपेक्षा रखने वाले समासाश्रित बहिरङ्ग ल्यप् आदेश से प्रथम हो जाता फिर ल्यप् ग्रहण व्यर्थ हो कर इस का ज्ञापक हुआ कि (अन्तरङ्गविधियों को भी बाध के पहिले ल्यप् होता है) फिर तकारादि कित् न होने से (जग्धि) आदेश प्राप्त नहीं होता इस लिये ल्यप् ग्रहण किया है । यही ल्यप् ग्रहण इस परिभाषा के निकलने में ज्ञापक है ॥ ४८ ॥

(इयाय, इययिथ) इत्यादि प्रयोगों में पर होने से गुण वृद्धि और नित्य होने से द्वित्व प्राप्त है द्वित्व होने के पश्चात् (इ+इ+अ, इ+इ+इथ) इस अवस्था में परत्व से गुण वृद्धि और अन्तरङ्ग होने से सवर्णदीर्घ एकादेश प्राप्त है सो जो बलवान् होने से अन्तरङ्ग सवर्णदीर्घ एकादेश हो जावे तो (इयाय, इययिथ) आदि प्रयोग सिद्ध नहीं हो सकें इस लिये यह परिभाषा है ॥

४९-वारणादाङ्गं बलीयो भवति ॥ अ० ॥ ६ । ४ । ७८ ॥

वर्णकार्य से अङ्ग कार्य बलवान् होता है । यहां वर्णकार्य सवर्णदीर्घ एकादेश और अंगकार्य गुण वृद्धि हैं उस वर्णकार्य स अंगकार्य बलवान् होने से गुण वृद्धि प्रथम हो कर (इयाय, इययिथ) इत्यादि प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं (अभ्यासस्यासवर्णे) इस सूत्र में असवर्ण अच् के परे अभ्यास के इवर्ण उवर्ण को (इयङ्, उवङ्) आदेश कहे हैं सो जो गुण वृद्धि का बाधक एकादेश हो जावे तो अभ्यास से

परि असवर्ण अच् हो ही नहीं सकता फिर उस असवर्ण गुण वृद्धि किये अच् के परे (इयङ्, उवङ्) कहने में निश्चित ज्ञात हुआ कि (वर्णकार्य का बाधक अंग कार्य होता है) यही असवर्ण अच् के परे (इयङ्, उवङ्) का विधान इस परिभाषा के होने में प्रापक है ॥ ४६ ॥

यह बात प्रथम लिख चुके हैं कि अन्तरङ्ग से भी अपवाद बलवान् होता है (जुस् च) इस सूत्र से जो गुणविधान है सो (कङिति च) आदि निषेध प्रकरण का अपवाद है क्यों कि (भि) के डित् होने में उस के स्थान में जुस् भी डित् ही आदेश होता है सो जैसे (अविभयुः, अविभक्तुः) इत्यादि में निषेध का बाध जुस् में गुण होता है वैसे ही (चिनुयुः, सुनुयुः) यहां (यासट्) के आश्रय से प्राप्त गुणनिषेध का भी बाधक हो जावे तो (चिनुयुः, सुनुयुः) आदि प्रयोगों में गुण होना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

५०—येन नाप्राप्ते यो विधिरारम्भ्यते स तस्य बाधको भवति ॥

अ० ॥ १ । १ । ६ ॥

जिस कार्य की प्राप्ति में अपवाद का आरम्भ किया जाता है वह अपवाद उसी कार्य का बाधक होता है और जिसकी प्राप्ति अप्राप्ति में सर्वथा अपवाद का आरम्भ है उस का बाधक नहीं होता इस में यह आया कि (चिनुयुः, सुनुयुः) यहां दो डित् हैं एक सार्वधातुक जुस् प्रत्यय का और दूसरा यासट् का सो सार्वधातुकप्रत्ययाश्रित जो डित्व है उसी की प्राप्ति में प्राप्त गुण का निषेध है उस निषेध के ही प्राप्ति में जुस् के परे गुण कहा है और यासट् के डित्वनिमित्तप्राप्त निषेध के होने का न होने में उभयत्र जुस् के परे गुण कहा है क्योंकि (अविभयुः) आदि में यासट् के बिना केवल सार्वधातुक के आश्रयगुण का निषेध प्राप्त है इस लिये (चिनुयुः) आदि में गुण नहीं होता । इत्यादि इस परिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं ॥ ५० ॥

अब इस पूर्वी परिभाषा के विषय में यह विशेष विचार है कि (...) दरौ षठङ्घादन्तर्करणशृङ्गाच्च) यह सूत्र अगले (न क्रोडादिबह्वचः, क सहनषः) इन दो सूत्रों का अपवाद है और दोनों की प्राप्ति में इस का आरम्भ भी है यह परिभाषा के अनुकूल माना जावे तो सह, नञ् और विद्यमान पूर्वक शब्दों में निषेध का बाधक ङीप् प्रत्यय (सनासिका, अनासिका, विद्यमाननासिका) आदि में भी (ङीप्) प्रत्यय होना चाहिये तो ये प्रयोग नहीं बनसकें इस लिये यह परिभाषा है ॥

५१—पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधौन् बाधन्ते न परान् ॥

अ० ॥ ४ । १ । ५५ ॥

जो पहिले अपवाद और पीछे उत्तरग पढ़ा हो तो वह अपने समीपस्थ कार्य का बाधक हो और परविधि अर्थात् जिस के साथ व्यवधान है उस का बाधक नहीं होवे । इस में बह्वच लक्षण से प्राप्त (डौष्) के निषेध का बाधक हुआ और सह, नञ्, विद्यमान पूर्वक नासिका से प्राप्त डौष् के निषेध का बाधक नहीं हुआ । इस प्रकार (सनासिका, अनासिका) आदि प्रयोग सिद्ध हो गये । इसी प्रकार अन्यत्र भी इस का विषय जानना ॥ ५१ ॥

अब (नासिकोदरोष्ठ०) इस सूत्र में जो ओष्ठ आदि पांच संयोगोपध शब्द हैं उन से निषेध भी प्राप्त है उस का बाधक पूर्व परिभाषानहीं हो सकती क्योंकि (नासिकोदर०) सूत्र से भी संयोगोपध का निषेध पूर्व है (नासिकोदर०) सूत्र में नासिका और उदर शब्द तो सह आदि पूर्व होने से पर दोनों सूत्रों के अपवाद हैं और ओष्ठ आदि शब्द सह आदि पूर्व हों तो (सहनञ्) इस पर सूत्र के और सामान्य उपपद में (स्वाङ्गाच्चोप०) इस पूर्व सूत्र के भी अपवाद हों । सो दोनों के अपवाद होने चाहिये या किसी एक के । इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह पारिभाषा है ॥

५२—मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधौन् बाधन्ते नोत्तरान् ॥ अ० ॥

४ । १ । ५५ ॥

जो पूर्व पर दोनों और उत्तरग और मध्य में अपवाद पढ़ा होतो वह अपने से पूर्वविधि का बाधक होता है उत्तर का नहीं इस से (विम्बोष्ठी, विम्बोष्ठा दीर्घजङ्घी दीर्घजङ्घा) इत्यादि उदाहरणों में संयोगोपधलक्षण निषेध का बाधक होगया और (सदन्ता, अदन्ता, विद्यमानदन्ता) इत्यादि में पर सूत्र से प्राप्त निषेध की बाधा नहीं हुई । इसी प्रकार सर्वत्र योजना करलेनी चाहिये ॥ ५२ ॥

(सुडनपुंसकस्य) इस सूत्र में सुट् के सर्वनाम संज्ञा का निषेध है सो (कुण्डानि तिष्ठन्ति, बनानि तिष्ठन्ति) यहां भी जो नपुंसक के सुट् की सर्वनामस्थान संज्ञा का निषेध होजावे तो (नुम्) आदि होकर (कुण्डानि) आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं सो न होसकें इसलिये यह परिभाषा है ॥

५३—अनन्तरस्य विधिर्वा प्रतिषेधो वा ॥ अ० ॥ १ । १ । ४३ ॥

जिस में कुछ अन्तर न हो अर्थात् जो अत्यन्त समीप हो उस का विधि वा निषेध होता है दूरस्थ का नहीं । इस से सुट् करके जो सर्वनामस्थान संज्ञा की प्राप्ति है उसी का निषेध करता है (शि) की सर्वनामस्थानसंज्ञा का निषेध नहीं इस से (कुण्डानि) आदि प्रयोग बन जाते हैं । और (नेटि) सूत्र में इडादि सिच् के परे वृद्धि का निषेध होता है सो जो दूरस्थ वृद्धि का भी हो तो (अमार्जीत्, अलावीत्, अपावीत्) इत्यादि में भी वृद्धि का निषेध होना चाहिये इस परिभाषा से समीपस्थ हलन्तलक्षण वृद्धि का निषेध हो जाता है सामान्य करके नहीं इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ५३ ॥

(ददति, दधति) इत्यादि प्रयोगों में जो प्रत्ययादि भ्रकारको अन्तरंग होने से अन्तादेश प्रथम हो जावे तो अभ्यस्तसंज्ञकों से विहित प्रत्ययादि भ्रकार को अत् आदेश व्यर्थ और अनिष्ट प्रयोग सिद्ध होने लगें इस लिये ये परिभाषा हैं ॥

५४—नचापवादविषये उत्सर्गोऽभिनिविशते ॥

५५—पूर्व ह्यपवादा अभिनिविशन्ते पश्चादुत्सर्गः ॥

५६—प्रकल्प्य चापवादविषयमुत्सर्गः प्रवर्तते ॥ अ० ॥ ६ । १।५ ॥

ये तीनों परिभाषा अपवाद की व्यवस्था के लिये हैं अपवादविषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति नहीं होती । प्रथम अपवादों की और पश्चात् शेषविषय में उत्सर्गों की प्रवृत्ति होती है । अपवाद के विषय को छोड़ के अपने विषय में उत्सर्ग प्रवृत्त होते हैं । इस से यह आया कि अभ्यस्त संज्ञक से प्राप्त जो प्रत्ययादि भ्रकार को अत्, आदेश उस अपवाद के विषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति न होने से प्रथम अपवाद प्रवृत्त हुआ तो प्रत्ययादि भ्रकार को अत् आदेश हो कर (ददति, दधति) आदि प्रयोग सिद्ध हो गए । और जैसे अन्त आदेश का बाधक (पच्युः, अजागरः) आदि प्रयोगों में भ्रि को जुस् होता है वैसे (ऐप्सन्) आदि प्रयोगों में उत्सर्ग का विषय है उस में भ्रि को जुस् नहीं होता । अर्थात् अपवाद के विषय में उत्सर्ग की प्रवृत्ति नहीं होती और उत्सर्ग के विषय में अपवाद की प्रवृत्ति हा हो जाती है ॥ ५६ ॥

अब पूर्व परिभाषाओं से यह आया कि अपवादविषय में उत्सर्गों की प्रवृत्ति नहीं होती किन्तु स्वविषय में अपवाद उत्सर्ग का बाधक होता है तो (दीर्घोक्तिः) इस सूत्र में शक्ति ग्रहण व्यर्थ होता है क्योंकि जो सामान्य से अभ्यास को दीर्घ

कहते तो अनुनासिकान्त अकारोपध धातुओं के अभ्यास का दीर्घ का बाधक (नुक्) आगम हो कर अजन्त के न रहने से दीर्घ को प्राप्ति ही नहीं थी तो (यंयम्यते, रंरम्यते) आदि प्रयोग सिद्ध ही ही जाते फिर अकित्ग्रहण व्यर्थ हो कर इस वक्ष्यमाण पारिभाषा के निकलने में आपक है ॥

५७-अभ्यासविकारेष्वपवादा उत्सर्गान्न बाधन्ते ॥ अ० ॥ ७।४।८३ ॥

अभ्यास के आदेशविधानप्रकरण में अपवाद उत्सर्गों के बाधक नहीं होते तो जब दीर्घरूप उत्सर्ग का बाधक नुक्, न रहा तो (यंयम्यते) आदि में दीर्घ की प्राप्ति हुई इस लिये अकित् ग्रहण सार्थक हुआ यद्वा तो स्वार्थ में चरिताग्र और अन्यत्र फल यह है कि (डोढोक्थते, तोचोक्थते) इत्यादि प्रयोगों में, उत्सर्गरूप ङस्वका बाधक दीर्घ नहीं होता और जो ङस्व का अपवाद होने से औकार की औकार ही दीर्घ कर लेवे तो फिर ङस्व होकर गुण न होवे तो (डोढोक्थते) आदि प्रयोग भी सिद्ध न हों इत्यादि इस पारिभाषा के अनेक प्रयोजन हैं ॥ ५७ ॥

तच्छीलादि अर्थों में (तृन्) प्रत्यय खुल् का अपवाद है और (ण्वल्) तथा (तृन्) असरूप प्रत्यय भी हैं सो धात्वधिकार में असरूप प्रत्यय उत्सर्ग का बाधक विकल्प करके होता है पक्ष में उत्सर्ग भी हो जाता है अब (निन्दहिंसक्लिश०) इस सूत्र में (वुज्) प्रत्यय का (तृन्) अपवाद क्यों पड़ा क्योंकि तृन् के द्वितीय पक्ष में ण्वल् होकर (निन्दकः, हिंसकः) आदि प्रयोग बन ही जाते कि जो (वुज्) प्रत्यय के होने से बनते हैं और (निन्दकः) आदि में (ण्वल्, वुज्) का स्वर भी एक ही होता है एक (असूयक) शब्द के स्वर में तो (ण्वल्, वुज्) के होने से भेद पड़ेगा । ण्वल् का स्वर (असूयकः) वुज् का (असूयकः) और (निन्दकः) आदि में आयुदात्त ही रहेगा । फिर निन्द आदि धातुओं से वुज् विधान व्यर्थ हुआ इसलिये यह आपक सिद्ध पारिभाषा है ॥

५८-ताच्छीलिकेषु सर्व एव तृजादयो वाऽसरूपेण न भवन्ति ॥

अ० ॥ ३।२।१४६ ॥

तृच् आदि अपवादों के साथ असरूप उत्सर्ग रूप प्रत्यय तच्छीलाधिकारविहित अपवादों के पक्ष में नहीं होते । इस से तच्छीलाधिकारविहित तृन् के पक्ष में जब ण्वल् नहीं होसकता तो निन्द आदि धातुओं से वुज् विधान सार्थक होगया और (असूयकः) में स्वरभेद होने के लिये (वुज्) कहना आवश्यक ही है । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ५८ ॥

अथ धात्वधिकार में सर्वत्र वाऽसरूपविधि के मानने से (हसित, हसनं वा छात्रस्य शोभनम् यहां (क्त) और ल्युट् के विषय में घञ् (इच्छति भोक्तुम्) यहां (लिङ्, लोट्) और (द्रिष्टवान्: सोमा भवता) यहां (खल्) असरूप उत्कर्ग होने से प्राप्त हैं इस सन्देह को निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

५८—क्त्वा ल्युट् तुमुन् खलर्थेषु वाऽसरूपविधिर्नास्ति ॥ अ० ॥ ३।१।६४ ॥

क्त, ल्युट्, तुमुन् और खलर्थप्रत्ययों के विषय में असरूप उत्कर्ग प्रत्यय अपवाद पक्ष में नहीं होते इस से (हसितम्, हसनम्) आदि प्रयोगों के विषय में घञ् आदि उत्कर्ग प्रत्यय नहीं होते (अर्हे कृत्यतृचश्च) इस सूत्र में कृत्य और तृच् प्रत्यय नहीं कहते तो अर्ह अर्थ में कहे हुए लिङ् के साथ असारूप होने से अर्ह अर्थ में कृत्य और तृच् हो ही जाते फिर कृत्य और तृच् ग्रहण व्यर्थ होकर यह जनाते हैं कि (वाऽसरूपोऽस्ति याम्) यह परिभाषा अनिय है ॥ ५८ ॥

(हयश्चतोर्लङ् च) इस सूत्र में लङ् ग्रहण नहीं करते तो भूतानद्यतनपरोक्षकाल में विहित (लिट्) के साथ असरूप (लङ्) का समावेश हो ही जाता फिर लङ् व्यर्थ होकर इस परिभाषा का ज्ञापक होता है ॥

६०—लादेशेषु वाऽसरूपविधिर्न भवति ॥ अ० ॥ ३।१।६४ ॥

लकारार्थविधान में वाऽसरूपविधि नहीं होती । इस से लङ् लकार का ग्रहण सार्थक हुआ । और (लटः शतृशानचा०) यहां विकल्प को अनुवृत्ति इसी लिये करते हैं कि जिस से लिङ् का भी पक्ष में समावेश होजावे जा (वाऽसरूपविधि) होजाती तो लिङ् समावेश के लिये विकल्प नहीं लाने पड़ता इत्यादि अनेक प्रयोजन इस परिभाषा के समझने चाहिये ॥ ६० ॥

अथ (तस्मिन्निति, तस्मादित्युत्तरस्य) इन सूत्रों से सप्तमीनिर्दिष्टकार्य अव्यवहित पूर्व को और पंचमीनिर्दिष्ट उत्तर को होता है सो (इको यणचि) यहां सप्तमी निर्दिष्ट पूर्व को और (हान्तरूपसर्गेभ्योऽप ईत्) द्वीपम् । यहां पंचमीनिर्दिष्ट उत्तर को होता है । परन्तु जहां पंचमी और सप्तमी दोनों विभक्तियों का निर्देश हो वहां किस को कार्य होना चाहिये इस सन्देह को निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

६१—उभयनिर्देशे विप्रतिषेधान् पंचमीनिर्देशः ॥ अ० ॥ १।१।६६ ॥

जहां सप्तमी पंचमी दोनों विभक्तियों से निर्देश किया है वहां (तस्मिन्निति, तस्मादित्यु०) इन दोनों सूत्रों में पर विप्रतिषेध मान के पंचमीनिर्दिष्ट का कार्य

होना चाहिये जैसे (बहोर्लोपो भू च बहोः) यहाँ (बहु) शब्द पंचमौनिर्दिष्ट और (इष्टन्, इमनिच्, ईयसुन्) सप्तमौनिर्दिष्ट है यह बहु से परे इष्टन् आदि को वा इष्टन् आदि के परे बहु शब्द को कार्य होवे इस सन्देह की निवृत्ति इस परिभाषा से हुई कि पंचमौ निर्दिष्ट को कार्य होना चाहिये अर्थात् बहु से परे इष्टन् आदि को कार्य होवे सो पर को विहितकार्य अर्थात् ईयसुन् के आदि का लोप हो जाता है भूयान्, भूमा तथा (डम् ह्रस्वाच्च डमुण् नित्यम्) यहाँ डम् से परे अच् को वा अच् परे होतो डम् को कार्य हो यह सन्देह है । सो ह्रस्व से परे जो डम् उस से परे अच् को कार्य होता है (तिङ्ङितिङः) कुर्वन्नास्ति । इत्यादि बहुत सन्देह निवृत्त हो जाते हैं ॥ ६१ ॥

इस व्याकरणशास्त्र में (स्वरूपं शब्दस्या०) इस परिभाषा सूत्र के अलुक्कूल (पयस्कुम्भी, पयस्वात्री) इत्यादि प्रयोगों में विसर्जनौय को सकारादेश न होना चाहिये क्योंकि कुम्भ और पात्र आदि शब्दों के परे कहा है उन के स्वरूप ग्रहण होने से स्त्रीलिङ्ग में नहीं हो सकता । इस लिये यह परिभाषा है ॥

६२—प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं भवति ॥
अ० ॥ ४ । १ । १ ॥

प्रातिपदिक के परे वा प्रातिपदिक को जहाँ कार्य कहा हो वहाँ पठित लिङ्ग से विशेष लिङ्ग का भी ग्रहण होना चाहिये इस से (पयस्कुम्भी) आदि प्रयोग भी सिद्ध हो जाते हैं जैसे सर्वनाम को सुट् कहा है सो (येषाम्, तेषाम्) यहाँ तो होता ही है (यासाम्, तासाम्,) यहाँ भी हो जावे जैसे (कष्टं श्रितः कष्टश्रितः) यहाँ समास होता है वैसे (कष्टं श्रिता कष्टश्रिता) यहाँ भी होजावे जैसे (हस्तिनां समूहो हास्तिकम्) यहाँ ठक् ह ता है वैसे (हस्तिनीनां समूहो हास्तिकम्) यहाँ भी होजावे जैसे (ग्रामेवासौ) यहाँ सप्तमी का अलुक् होता है वैसे (ग्रामे वासिनी) यहाँ भी हो जावे इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६२ ॥

जब प्रातिपदिक के ग्रहण में लिङ्गविशिष्ट का भी ग्रहण होता है तो जैसे (युनः पश्य) यहाँ युवन् शब्द को सम्प्रसारण होता है वैसे (युवतीः पश्य) यहाँ स्त्रीलिङ्ग में भी होना चाहिये इत्यादि सन्देहों की निवृत्ति के लिये यह परि० ॥

६३—विभक्तौ लिङ्गविशिष्टग्रहणं न ॥ अ० ॥ ७ । १ । १ ॥

विभक्ति के आश्रय कार्य करने में पठित लिङ्ग से अन्य लिङ्ग का ग्रहण नहीं होता । इस से भसजाश्रय सम्प्रसारण युवति शब्द को नहीं होता तथा जैसे

(गोमान्, यवमान्) यहां नुस् और दीर्घ होते हैं वैसे (गोमती, यवमती) यहां ही वी से सर्वनामस्य विभक्त्याश्रित कार्य होने से नहीं होता जैसे (सखा, सखायौ) यहां सखि शब्द को आकारादेश होता है वैसे (सखी, सख्यौ, सख्यः) यहां स्त्रीलिङ्ग में विभक्त्याश्रित आकार नहीं होता इत्यादि इस परिभाषा के भी बहुत प्रयोजन हैं ॥ ६३ ॥

(तस्यापत्यम्) इस सूत्र में (तस्य) यह पुल्लिङ्ग षष्ठी का एक वचन और अपत्यशब्द नपुंसकलिङ्ग प्रथमैकवचननिर्देश किया है तो (कन्याया अपत्यं, कानीनः) यहां स्त्रीलिङ्ग शब्द से कानीन शब्द नहीं सिद्ध होना चाहिये और (द्वयोर्मातृनोरपत्यं द्वैमातुरः) यहां द्विवचन से प्रत्यय त्यत्ति भी नहीं होनी चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

६४—सूत्रे लिङ्गवचनमतन्त्रम् ॥ अ० ॥ ४।१।६२ ॥

जो सूत्र में लिङ्ग और वचन पढ़े हैं वे कार्य करने में प्रधान नहीं होते अर्थात् जहां स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिङ्ग वा नपुंसकलिङ्ग से तथा एकवचन, द्विवचन बहुवचन से निर्देश किये जावे वहां उसी पठित लिङ्ग वा वचन से कार्य लिया जाय यह नियम नहीं समझना चाहिये किन्तु एक किसी लिङ्ग वा वचन से शब्द पढ़ा हो तो सभी लिङ्ग वचनों से कार्य हो सकते हैं इस से (कानीनः, द्वैमातुरः) इत्यादि शब्द सिद्ध हो जाते हैं । इत्यादि अनेक प्रयोजन इस परिभाषा से सिद्ध होते हैं ॥ ६४ ॥

अब अन्वयन्त भृशादि प्रातिपदिकों में जो भू धातु के अर्थ में (व्यङ्) प्रत्यय होता है वह (क् दिवा भृशा भवन्ति) यहां भी भृश शब्द से होना चाहिये इत्यादि सन्देहों की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

६५—नञ्जिवयुक्तमन्यसदृशाधिकरणे तथा ह्यर्थगतिः ॥ अ० ॥

३।१।१२ ॥

वाक्य में जो नञ् युक्त पद है उस के समान जो वाक्य में युक्त और उस नञ् युक्त पदार्थ के सदृश धर्म वाला हो उस में कार्य विधान होना चाहिये ऐसा ही अग्रे लोक में प्रतीत होता है । अर्थात् वाक्य में जिस पदार्थ को जिस क्रिया का निषेध होवे उस पदार्थ के तुल्य धर्म वाले को उसी क्रिया का विधान कर लेना चाहिये । जैसे लोक में किसी ने कहा कि (अब्राह्मणमानय) ब्राह्मण से निब को लेआ तो ब्राह्मण से भिन्न जत्रियादि किसी मनुष्य को ले आता है क्यों कि ब्राह्मण के तुल्य धर्म वाला मनुष्य ही होता है किन्तु यह नहीं होता कि ब्राह्मण से इतर का संगवाने में मट्टी वा पत्थर आदि किसी पदार्थ को लेआ के अपना अभीष्ट

सिद्धि कर लेवे । इसी प्रकार शास्त्रों में भी जिस का निषेध किया हो उस के सदृश दूसरे का विधान करना चाहिये । यहां जो च्वि प्रत्ययान्त से अन्य भृशादि शब्दों से क्यङ् प्रत्यय विधान किया है वह च्वि प्रत्ययान्त के तुल्य अर्थ वाले भृशादिकों से क्यङ् होना चाहिये । च्वि प्रत्यय का अर्थ अभूततद्भाव है उसी अर्थ में क्यङ् होता है (अभृशो भृशो भवति, भृशाश्रते) इत्यादि (क्वदिवा भृशा भवन्ति) यहां अभूततद्भाव के न होने से (क्यङ्) नहीं होता । तथा (दधिच्छादयति, मधुच्छादयति) इत्यादि प्रयोगों में (तुक्) आगम को अभक्त मानें कि न पूर्वान्त और न परादि दोनों से पृथक् है तो अतिङ् से परे तिङ् पद को निघात होजावे । सो तुक् तिङ् से भिन्न तिङ् के तुल्य धर्म वाला पद नहीं है इस से निघात नहीं पावेगा और निघात होना इष्ट है इस लिये (तुक्) को अभक्त नहीं करना किन्तु पूर्वान्त ही करना चाहिये इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६५ ॥

(उपपदमतिङ्) इस सूत्र में अतिङ् ग्रहण का यही प्रयोजन है कि तिङन्त उपपद का समास न होवे सो जो (सुप्, सुपा) इन दोनों की अनुवृत्ति चली आती है तब तो तिङ् उपपद का समास प्राप्त ही नहीं फिर निषेधार्थ करना व्यर्थ हुआ इस लिये ऐसा ज्ञापक होना चाहिये कि असुबन्त के साथ असुबन्त का भी समास होता है तब तो अतिङ् ग्रहण सार्थक होता है इस लिये यह प० ॥

६६—गतिकारकोपपदानां कृद्धिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः ॥ अ० ॥ ४ । १ । ४८ ॥

गति, कारक और उपपद इन का कृदन्त के साथ सु आदि की उत्पत्ति से पहिले ही समास हो जाता है । यहां केवल सुप्रहित कृदन्त के साथ समास हुआ तो अतिङ् ग्रहण सार्थक होने से स्वार्थ में चरितार्थ हो गया । और अन्यत्र फल यह है कि गति, (सांकूटिनम्) यहां जो तद्धितोत्पत्ति से पहिले सम् और कूटिन् सुबन्तों का समास करके पीछे तद्धित उत्पन्न किया चाहें तो तद्धितोत्पत्ति की विवक्षा में कूटिन् शब्द की पृथक् पदसंज्ञा रहने से सम् शब्द की वृद्धि नहीं हो सकती । और जब सुप्रहित केवल कूटिन् कृदन्त के साथ समास होता है तब समाससमुदाय की एक पद संज्ञा हो कर तद्धितोत्पत्ति होने से सम् को वृद्धि हो जाती है । कारक, (या वस्त्रेण क्रीयते सा वस्त्रक्रीती, अश्वक्रीती) इत्यादि शब्दों में केवल क्रीत कृदन्त के साथ वस्त्र आदि शब्दों का समास हो कर करण पूर्व क्रीतान्त प्रातिपदिक से (डौष्) प्रत्यय हो जाता है । और जो सुबन्त के साथ ही समास नियम रहे तो समास की विवक्षा में ही अन्तरङ्ग होने से प्रकारान्त

क्रीत शब्द से टाप् होजावे पुनः अकारान्त हो जाने से अकारान्त से विहित डीप् प्रत्यय नहीं होवे तो (वल्लभीती) आदि प्रयोग भी सिद्ध न हो सकें । उपपद, (मापवापिणी, द्रीह्वापिणी) यहां प्रातिपदिकान्त नकार को एत्व होता है । सो जो सुबन्तों का ही समास करें तो समास की विवक्षा में ही नकारान्त (वापिन्) शब्द से डीप् हो कर पीछे समास हो तब उस डीवन्त (मापवापिनी) समुदाय की प्रातिपदिक संज्ञा होवे तो प्रातिपदिकान्त ईकार के होने से फिर एत्व नहीं हो सके । और जब केवल ह्रदन्त वापिन् शब्द के साथ समास होता है तब केवल मापवापिन् नकारान्त शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा हो कर डीप् होता है तो प्रातिपदिकान्त नकार को एत्व हो जाता है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६६ ॥

(उगिद्वां सर्वनामस्थानिऽधातोः) इस सूत्र में उगित् धातु के निषेध का यही प्रयोजन है कि (उग्रास्त्रत्, पर्णधत्) इत्यादि में नुम् आगम न हो सो यह प्रयोजन ता (अधु) धातु के ग्रहण से निकल जाता कि (उगित्) धातु का (नुम्) आगम हो तो अधु ही को हो इस नियम से अन्य उगित् धातु को नुम् होता ही नहीं फिर अधातु ग्रहण व्यर्थ हुआ इस के व्यर्थ होने रूपज्ञापक से यह परिभाषा निकली है ॥

६७—साम्प्रतिकाऽभावे भूतपूर्वगतिः ॥

जो पदार्थ वर्तमान काल में अपनी प्रथमावस्था से पृथक् हो गया हो तो उसी पूर्वावस्था के सखन्ध से उस को वर्तमान में भी कार्य्य हो जैसे (गोमन्तमिच्छति, गोमत्यति, गोमत्यते: क्तिप्, गोमान्) यहां प्रथम तो गोमान् प्रातिपदिक है पीछे उस से क्यच् हुआ तो धातु संज्ञा हुई फिर क्यच् प्रत्ययान्त से क्तिप् होने से धातु संज्ञा उस की बनी रही । सो पूर्व ही प्रातिपदिक संज्ञा के स्मरण से पीछे धातुसंज्ञा के बने रहते भी (नुम्) होता है अर्थात् अधातु निषेध नहीं लगता इस से अधातु निषेध भी सार्थक रहा । तथा (आत्मनः कुमारीमिच्छति, कुमारीयति, कुमारीयते: कर्त्तरि क्तिप्, कुमारी ब्राह्मणः, तस्मै कुमार्यै * ब्राह्मणाय) यहां कुमारी शब्द प्रथमावस्था में स्त्रीलिंग ईकारान्त है तब तो स्त्राख्य ईकारान्त नदी संज्ञा सिद्ध है पीछे जब पुल्लिङ्गवाची हो गया तब भी पूर्वावस्था के भूतपूर्व स्त्रीत्व को लेकर नदी संज्ञा हो के नदीसंज्ञा के कार्य्य भी होते हैं । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६७ ॥

० यहां भूतपूर्वगति परिभाषा के मानने से कार्य्य भी चल जाता तथा अन्यत्र भी सब काम चलता है फिर प्रथम ब्राह्मणाय । इत्यादि प्रयोगसिद्धि के लिये नदीसंज्ञा में (प्रथमलिङ्गग्रहणश्च) इस वार्तिक का भी कुछ प्रयोग भी रहा क्यों कि इस परिभाषा के होने से सब काम निकल जाते हैं । वार्तिक एकदेशी और परिभाषा सर्वदेशी ॥

बहुव्रीहिसमास में अन्य पदार्थ प्रधान होता है अर्थात् जिन दो वा अधिक पदों का समास किया जावे उन पदों से पृथक् पद वाच्य अन्य पदार्थ कहा जाता है जैसे (चित्रा गावो यस्य स चित्रगुः, श्वलगुः) यहां गौओं का विशेषण (चित्रगुण) और गौ इन दोनों पदों से भिन्न इन का स्वामी (चित्रगु) कहा जाता है इसी प्रकार (सर्व आदिर्येषां तानि सर्वादीनि) यहां सर्व और आदि दोनों शब्द से पृथक् अन्य पदार्थ लिया जावे तो सर्वशब्द की सर्वनाम संज्ञा नहीं हो सके इसलिये यह परिभाषा है ॥

६८-भवति हि बहुव्रीहौ तद्गुणसंविज्ञानमपि* ॥ अ० १।१।२७ ॥

बहुव्रीहि दो प्रकार का होता है एक (तद्गुणसंविज्ञान) और दूसरा (अतद्गुण संविज्ञान) तद्गुण संविज्ञान उस की कहते हैं कि जहां उस अन्य पदार्थ के साथ उस के निज गुणों का समवाय सम्बन्ध हो जैसे (लम्बकर्णः, तुङ्गनासिकः, दीर्घबाहुः, क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः) इत्यादि में अन्य पदार्थ का बोध कान आदि के सहित होता है। अतद्गुणसंविज्ञान वह है कि जिन पदों का समास किया जावे उन से अन्य पदार्थ का पृथक् सम्बन्ध बना रहे कि जैसे (चित्रगु) शब्द में दिखा दिया है। इस से सर्वादि में भी तद्गुणसंविज्ञान मान के सर्व शब्द की भी सर्वनाम संज्ञा हो जाती है। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये ॥ ६८ ॥

जहां समास की अन्तोदात्त स्वर कहा है वहां (ब्राह्मणसमित्, राजदृषत्) इत्यादि प्रयोगों के अन्त में तकार है तो विधान सामर्थ्य से उस व्यञ्जन को ही उदात्त हो जाना चाहिये इत्यादि सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परि० ॥

६९-हल्स्वरप्राप्तौ व्यञ्जनसंविद्यमानवद्भवति† ॥ अ० ॥ ६।१।२२३ ॥

व्यञ्जन की उदात्तादि स्वर प्राप्त होती वह व्यञ्जन अविद्यमानवत् होता है इस से (ब्राह्मणसमित्) आदि प्रयोगों में अन्य तकार को अविद्यमानवत् मान के इकार

* इस परिभाषा के आगे नागेश ने (चानुक्तं नीत्तरत्वं) यह परिभाषा लिखी है सी ठीक नहीं क्योंकि उस का मूल कहीं महाभाष्य से वा सूत्रों से नहीं निकलता। और न कोई उदाहरण मुख्य प्रयोजन का दिया।

† इस परिभाषा की नागेश भट्ट तथा अन्य लोग भी महाभाष्य से विरुद्ध लिखते पढ़ते हैं कि (स्वरविधौ व्यञ्जनसंविद्यमानवत्) ऐसा पाठ करने में महाभाष्यकार ने ये दोष भी दिखाये हैं कि उदात्तादि स्वरों के विधान मात्र में जो व्यञ्जन अविद्यमानवत् माना जावे तो (विद्युत्वात् वलाहकः) यहां विद्युत् के तकार को अविद्यमान मानें तो ऋ से परे नतप् की उदात्त स्वर (ऋतुण्डस्थां) सूत्र से प्राप्त है- इत्यादि अनेक दोष आवेंगे। और (हल्स्वरप्राप्तौ) इस प्रकार की परिभाषा में कोई दोष नहीं आता इस लिये नागेश आदि का मानना ठीक नहीं है ॥

को उदात्त हा जाता है। इस का ज्ञापक (यतोऽनावः) इस सूत्र में यत् प्रत्ययान्त ङाच् प्रातिपदिक की आद्युदात्त कहा है। और (नी) शब्द का निषेध इसी लिये है कि (नायम्) यहां आद्युदात्त नहीं सो जब आदि में नकार है तब स्वर के होने से आद्युदात्त प्राप्त ही नहीं फिर निषेध करने से यही प्रयोजन है कि उस नकार का भी स्वर प्राप्त होता है सो अविद्यमानवत् मान के आकार को हो जाता इस लिये निषेध किया। तथा अनुदात्तादि वा अन्तोदात्त से परे जो कार्य कहे हैं उन में जहां आदि और अन्त में व्यञ्जन हैं वहां उन कार्यों की प्राप्ति नहीं होगी वहां भी अविद्यमानवत् मान कर काम चल जाता है। और जो कदाचित् ऐसा मान लिया जावे कि उदात्तादि गुण व्यंजनों के ही हैं उन के संयोग से अर्चों के भी धर्म समझे जाते हैं सो नहीं बन सकता क्योंकि व्यंजन के बिना भी केवल अर्चों में उदात्तादि धर्म प्रसिद्ध हैं और अच्, के बिना व्यंजन का उच्चारण होना भी कठिन है इस लिये उदात्तादि गुण स्वतंत्र व्यंजनों के नहीं हो सकते। परन्तु यह बात तो माननी चाहिये कि अच् के संयोग से व्यंजन को भी उदात्तादि गुण प्राप्त हो जाते हैं। जैसे दो रंगे वस्त्रों के बीच एक श्वेत वस्त्र होता वह भी कुछ रंगित प्रतीत होता है ॥ ६६ ॥

(वामदेवाङ् ङाङ्ङी) इस सूत्र में ङात् औ ङा प्रत्यय ङित् इसी लिये पड़े हैं कि ङित् के परे वामदेव शब्द के टि भाग का लोप हो जावे सो (यस्येति च) सूत्र से तद्धित के परे भसञ्जक अवर्ण का लोप हो ही जाता फिर ङित् करण व्यर्थ हो कर इन परिभाषाओं के निकलने में ज्ञापक है ॥

७०—अननुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य ग्रहणम् ॥

७१—तदनुबन्धकग्रहणे नातदनुबन्धकस्य ग्रहणम् ॥ अ० ॥ ४।२।६ ॥

अनुबन्धरहित प्रयोगों के ग्रहण में अनुबन्धसहिती का ग्रहण नहीं हो सकता अर्थात् जहां यत् प्रत्यय डकार अनुबन्ध से रहित पड़ा है और ङात् में डकार की इत्संज्ञा होकर यत् ही रह जाता है जहां यत् और य प्रत्यय का ग्रहण किया है वहां (ङात्, ङा) प्रत्यय का ग्रहण न हो। और जिस अनुबन्ध से जो प्रत्यय पड़ा है उस में द्वितीय अनुबन्ध के सहित प्रत्यय का ग्रहण न हो अर्थात् यत् कहने से ण्यत् पङ् कहने से चङ्, और अच् कहने से णच् का ग्रहण न हो इस से यह

आया कि (ययतोश्चातदर्थे) इस स्वरविधायक सूत्र में नञ् से परे (य, यत्) प्रत्ययान्त को अन्तोदात्त स्वर होता है सो जा (द्यत्, ङ) का भी ग्रहण होवे तो (अवामदेवम्) यहाँ भी अन्त दात्त स्वर होजावे और पूर्वपद प्रकृतिस्वर इष्ट है इस लिये डित् ग्रहण का सार्थक होना स्वार्थ में चरितार्थ और अङ् के परे जो गुणआदि कार्य कहा है सो चङ् के परे नहीं होता और चङ् के परे जो द्वित्वादि कार्य कहा है सो अङ् के परे नहीं होता इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७० ॥ ७१ ॥

(णचः स्त्रियामञ्) यहाँ णच् प्रत्ययान्त से स्वार्थ में अञ् प्रत्यय कहा है सो (कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्) इस सूत्र से णच् प्रत्यय ता स्त्रीलिंग में ही विधान है फिर स्वार्थ में णच् प्रत्ययान्त से अञ् कहने से स्त्रीलिंग ही हा जाता क्यों कि स्वार्थिक प्रत्ययों के होने में प्रकृति के लिङ्ग और वचन की अनुवृत्ति होती है फिर स्त्रीग्रहण व्यर्थ हुआ इस लिये यह परिभाषा है ॥

७२-क्वचित्स्वार्थिका अपि प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्तन्ते ॥

अ० ॥ ५ । ३ । ६८ ॥

कहीं २ स्वार्थिक प्रत्यय भी प्रकृति के लिङ्ग वचनों को छोड़ देते हैं । जब प्रकृति के लिङ्ग वचन स्वार्थ प्रत्ययोत्पत्ति में सर्वत नहीं बने रहते तो (णचः स्त्रियामञ्) सूत्र में स्त्री ग्रहण सार्थक हो गया । तथा (अपकल्पम्) यहाँ नियत स्त्रीलिङ्ग बहुवचनान्त अप् शब्द से कल्पप् प्रत्यय स्वार्थ में हुआ है सो अपने लिङ्ग वचन छोड़ के नपुंसकलिङ्ग एकवचन रह जाता है तथा गुडकल्पाद्राच्चा, पयस्कल्पा यवागूः) यहाँ गुडपुंलिङ्ग और पयः नपुंसकलिङ्ग से कल्पप् प्रत्यय होकर स्त्रीलिङ्ग हो जाता है । और क्वचित् कहने से यह प्रयोजन है कि (बहुगु-डोद्राच्चा, बहुपयो यवागूः) इत्यादि में प्रकृति के अनुकूल ही लिङ्ग वचन रहते हैं इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७२ ॥

(प्रतिरंक्षाद्यस्तत्पुरुषे) इस सूत्र के अंक्षादिगण में राजन् शब्द पड़ा है तो उस का यही प्रयोजन है कि प्रति से परे तत्पुरुष समास में राजन् शब्द अन्त दात्त हो जावे सो जब प्रतिपूर्वक राजन् शब्द से तत्पुरुष समास में समासान्त टच् प्रत्यय प्राप्त है तब तो चित् होने से अन्तोदात्त हो ही जाता फिर राजन् शब्द का पाठ व्यर्थ हुआ इस लिये यह परिभाषा है ।।

७३—विभाषा समासान्तो भवति* ॥ अ० ॥ ६।२।१६७ ॥

समासान्त सब प्रत्यय विकल्प करके होते हैं तो प्रतिपूर्वक राजन् शब्द से जिस पक्ष में समासान्त टच् न हुआ वहां (प्रतिराजा) में भी अन्तोदात्त हो जावे इस लिये राजन् शब्द का अंशादिगण में पढ़ना सार्थक हो गया । तथा (द्वित्रिभ्यां पाठ्) इस सूत्र से भी बहुव्रीहिसमास में द्वित्रिपूर्वक मूर्ध् शब्द को अन्तोदात्त स्वर कहा है सो यहां भी द्वित्रिपूर्वक मूर्ध् से जब समासान्त व प्रत्यय विधान है तो प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त सिद्ध ही है फिर मूर्धन् शब्द का ग्रहण इसी लिये है कि समासान्त प्रत्यय विकल्प होते हैं सो जिस पक्ष में समासान्त नहीं होता (द्विमूर्धा, त्रिमूर्धा) यहां भी अन्तोदात्त स्वर हो जावे । इत्यादि प्रयोजनों के लिये यह परिभाषा है ॥ ७३ ॥

(शतानि, सहस्राणि) यहां जब सर्वनामस्थान शि के मान के नुम् आगम होता है तब (शतन्, सहस्रन्) शब्दों के नकारान्त हो जाने से (णान्तापट्) सूत्र से षट्संज्ञा होजावे तो (षड्भ्यो लुक्) सूत्र से शि का लुक् होना चाहिये इत्यादि समाधान के लिये यह परिभाषा है ॥

७४—सन्निपातलक्षणो विधिरनित्यं तद्विधातस्य ॥ अ० ॥ १।१।३६ ॥

जो एक के आश्रय से दूसरे का सख्य होना है वह सन्निपात कहाता है उसी सन्निपातसंबन्ध का जो निमित्त हो ऐसा जो विधि कार्य है वह उस अपने निमित्त के विधाने को अनिमित्त अर्थात् असमर्थ होता है । यहां शत, सहस्र शब्द से जस् आकर शि आदेश हुआ अब शि के आश्रय से शत शब्द को नुम् हो कर शतान्त हुआ अब जिस के आश्रय से शत को नान्तत्व गुण मिला उस नान्तत्व गुण से उसी का विधात करे यह ठीक नहीं इस से (शतानि, सहस्राणि) आदि में शि का लुक् नहीं होता तथा (इष, उवोष) यहां गल् प्रत्यय के आश्रय से (इष, उप) धातु का गुण होता है गुण होने से इजादि मान कर आम् प्राप्त है और

* इस परिभाषा की नागेश भट्ट ने ' समासान्तविधिरनित्यः ' ऐसा लिखा है सो महाभाष्य से विरुद्ध है जो कि अनित्य और विभाषा में बहुत भेद है अनित्य उस को कहते हैं कि जो कभी हो और कभी न हो और विकल्प के दो पक्ष सदा बने रहते हैं और इस परिभाषा की भूमि का भी (सुपथी नगरी) यह महाभाष्य का उदाहरण करके रक्का है कि पश्चिन् शब्द से (जनः त्रिधा) सूत्र से समासान्त कप् नहीं हुआ तो समासान्त अनित्य है । सो यह नहीं विचारा कि (न पूजनात्) सूत्र से (सुपथी नगरी) आदि सूत्रों में पूजनवाची समास से समासान्त का भिन्न भिन्न है जब कप् प्राप्त हो नहीं तो समासान्तविधि के अनित्य होने में (सुपथी नगरी) यह प्रमाण अब समर्थ हो सकता है । देखो व्याकरण में नागेश की किननी बड़ी भूल है ॥

आम् के होजाने से उस से परे लुक् कहा है तो उसी णल् का विधात हो कि जिस के आश्रय से इस उष इजादि हुए हैं इत्यादि इस की अनेक प्रयोजन हैं । और लोक के साथ भी इस परिभाषा का सम्बन्ध है कि जो पुरुष जिस धनाढ्य के धन से स्वयं धनवान् हुआ हो वह उसी धन से धनाढ्य का विधात करे यह बहुत विरुद्ध है अर्थात् ऐसा कभी न होना चाहिये कि जिस के संग से जो सामर्थ्य प्राप्त हो उस सामर्थ्य से उसी को नष्ट करे ॥ ७४ ॥

(पञ्चेन्द्राण्यो देवता अस्य स पञ्चेन्द्रः स्थालीपाकः) पञ्चेन्द्राणी शब्द से देवता अर्थ में विहित अण् प्रत्यय का (द्विगोर्लुगनप्रत्ये) सूत्र से लुक् हो कर (लुक्प्रति तनुकि) सूत्र से ईकार स्त्री प्रत्यय का भी लुक् हो जाता है । तब ङीष् के संयोग से आया जो आनुक् आगम उस का लुक् विधान किसी सूत्र से नहीं किया सो उस आनुक् का अवर्ण होता (पञ्चेन्द्रः) आदि शब्द सिद्ध नहीं हो सकें इस लिये यह परिभाषा है ॥

७५ — संनियोगशिष्टानामन्यतराऽभावे उभयोरप्यभावः ॥ अ० ॥

६ । ४ । १५३ ॥

जिस कार्य के होने में एक साथ दोका नियम हुआ हो उन में से जब एक का अभाव होजावे तब दूसरे का अपन आप अभाव होजाता है । जैसा किसी कार्यका नियम है कि देवदत्त यज्ञदत्त दोनों मिल के इस काम को करें सो जो देवदत्त न रहे तो यज्ञदत्त उस कार्य से स्वयं निवृत्त हो जाता है । इसी प्रकार यहां भी इन्द्र शब्द से स्त्री रूप कार्य की विवक्षा को ङीष् और आनुक् दोनों पूरी करते हैं सो जब ङीष् का अभाव होता है तब आनुक् भी वहां से निवृत्त हो जाता है । तथा (पञ्चाग्नाय्यो देवता अस्य स पञ्चाग्निः) यहां स्त्री प्रत्यय का लुक् होने के पश्चात् ऐकार आगम को भी निवृत्ति होजाती है । इस परिभाषा का तापक यह है कि (विल्वकादिभ्यश्च लुक्) इस सूत्र में विल्वकादि से परे छ प्रत्यय का लुक् कहा है और उसी छ प्रत्यय के संयोग से विल्वादि शब्दों को कुक् होता है । सो विल्वादिशब्दों से छ का लुक् कह देते तो कुक् आगम को भी निवृत्ति होजाता । इस लिये विल्वादि शब्दों को कुक् आगम के सहित पढ़ उन से परे छ प्रत्यय मात्र का लुक् कहा है । इस से सिद्ध हुआ कि आगमी की निवृत्ति में आगम की निवृत्ति होजाती है । तब कत कुगागम विल्वकादि से छ प्रत्यय का लुक् कहा है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७५ ॥

तदनुबन्धवत्तदर्थे० इस पूर्व लिखित परिभाषा के अनुसार अण् प्रत्यय के आश्रय कार्य है वह अण् प्रत्यय को जानने के लिये हीना चाहिये तो (कर्मस्ताच्छील्ये) इस सूत्र का यही प्रयोजन है कि ताच्छील्य अर्थ में अण् प्रत्यय पर होता तो कर्मन् शब्द के टि भाग का लोप हो सो (नस्तद्धिते) सूत्र से नान्त भ संज्ञक अङ्ग के टिका लोप सिद्ध ही है तो ताच्छील्य अर्थ में (कर्मः) प्रयोग बन ही जाता फिर यह सूत्र व्यर्थ हो कर इस परिभाषा का हानिकारक है ॥

७६—ताच्छीलिकेऽण् कृतानि भवन्ति ॥ अ० ॥ ६। ४। १७२॥

ताच्छील्य अर्थ में विहित अण् प्रत्यय के परे अण् प्रत्ययाश्रित कार्य भी होते हैं इस से यह आया कि (अन्) सूत्र से अण् प्रत्यय के परे अजन्त को प्रकृतिभाव कहा है सो ताच्छील्य अर्थ में अण् प्रत्यय के परे अजन्त कर्मन् शब्द को भी प्राप्त या इस लिये (कर्मस्ताच्छील्ये) सूत्र में टि लोप निपातन सार्थक हो गया यह स्वार्थ में चरितार्थ है। अन्यत्र फल यह है कि (चुरा शीलमस्याः सा चोरो, तपः शीलमस्याः सा तपसी) इत्यादि प्रयोगों में ताच्छीलिक अण् प्रत्ययान्त से (टिङ्ढाणञ्०) सूत्र में अण् प्रत्यय से कहां लोप हो जाता है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७६ ॥

(दाण्डिनाय०) इस सूत्र में औणहत्य शब्द निपातन किया है उस से यही प्रयोजन है कि (औणह्यो भावः औणह्यम्) यहां निपातन से तकारादेश हो जावे सो जो (हनस्तोऽचिन्तोः) सूत्र से षज् प्रत्यय के परे हन के नकार को तकारादेश हो जाता तो फिर निपातन करना व्यर्थ है इस लिये यह परिभाषा है ॥

७७—धातोः कार्यसुव्यमानं तत्प्रत्यये भवति ॥ अ० ॥ ७। २। ११४ ॥

जो धातु को कार्य कहा है वह उसी धातु से विहित प्रत्यय के परे हो अर्थात् धातु को कार्य प्रातिपदिक से विहित तद्धित के परे न हो। इस से हन् धातु को कहा तकारादेश औणहत्य में प्रातिपदिक से विहित तद्धित षज् के परे नहीं हो सकता। इसलिये औणहत्य में तकारादेश निपातन करना सार्थक हुआ और अन्यत्र फल यह है कि (औणह्यः) यहां अण् प्रत्यय के परे तकारादेश नहीं होता तथा (कंसप्रसिद्धभ्याम्) यहां प्रातिपदिक से विहित विभक्ति के परे रुज् धातु को कहीं दृष्टि नहीं होती (रज्जुष्टभ्याम्, देवदृष्टभ्याम्) यहां भलादि अकित् विभक्ति के परे रुज् धातु को अम् आगम नहीं होता। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७७ ॥

(नचिके, विज्जके, उच्चिके, नीचिकेः) यहां सर्वनाम और अव्यय संज्ञा नहीं होने चाहिये क्योंकि सर्वादि में सर्व विज्ज शब्द और अव्ययों में उच्चैस् नीचैस् शब्द पड़े हैं

सो जब शब्द के स्वरूप का ग्रहण होता है तो उक्त शब्दों की सर्वनाम और अव्यय संज्ञा कैसे होगी और संज्ञा के बिना सर्वनाम और अव्यय के कार्य भी नहीं हो सकते इसलिये यह परिभाषा है ॥

७८—तदेकदेशभूतस्तद्व्यग्रहणेन वृत्त्यते ॥ अ० ॥ १।१।७२ ॥

किसी के एकदेश में कोई अन्य आज्ञावे तो वह उसी के ग्रहण से ग्रहण किया जाता है इस से यहां मर्ब आदि शब्दों के मध्य में अकच् प्रत्यय आगया वह उसी के ग्रहण से ग्रहण किया गया तो सर्वनाम संज्ञा होगई । इसी प्रकार (उच्चकैः) आदि में अव्यय संज्ञा होना जानो । तथा (अहं पठामकि) यहां अतिङ् से परे तिङ्पद अनुदात्त भी हो जाता है । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७८ ॥

(गातिस्थाधुपा०) इस सूत्र में गाति निर्देश से तो अदादि के इण् धातु का ग्रहण होना ठीक है । परन्तु पा धातु के ग्रहण में संदेह है कि अलुक् विकरण आदि और लक् विकरण अदादि इन दोनों में से किस का ग्रहण किया जाने सो जो अदादि के पा धातु का भी ग्रहण होतो (अपासीदनम्) यहां भी सिच् का लुक् हो जाना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

७९—लुग्विकरणालुग्विकरणयोरलुग्विकरणस्यैव ग्रहणम् ॥
अ० ॥ ७।२।४४ ॥

लुग्विकरण और अलुग्विकरण के ग्रहण में जहां संदेह पड़े वहां अलुग्विकरण का ही ग्रहण होना चाहिये इस से उक्त (गातिस्था०) सूत्र में (पा जाने) अलुग्विकरण धातु का ग्रहण ही जाता है । और लुग्विकरण (पा रक्षणे) का ग्रहण नहीं होता । इस का ज्ञापक यह है कि (स्वरतिवृत्तिसूयति) इस सूत्र में (सूति, सूयति) दोनों के स्थान में सूङ् पढ़ते तो इङ्गी दोनों का ग्रहण हो जाता क्योंकि ये ही दोनों सूङ् हैं तोसरा नहीं परन्तु सूति लुग्विकरण अदादि और सूयति अलुग्विकरण दिवादि का है । इस से यही आया कि सामान्य सूङ् के पढ़ने से अलुग्विकरण सूयति का ग्रहण होता और सति का नहीं होता इस लिये पृथक् २ दोनों का निर्देश किया है इत्यादि इस के अनेक प्रयोजन हैं ॥ ७९ ॥

(हेरचडि) इस सूत्र में अभ्यास से परे हि धातु के हकार को कुत्व कहा है परन्तु वह कुत्व चङ् में नहीं सो चङ् णिजन्त से होता है उस चङ् के परे हि की अङ्गसंज्ञा ही नहीं किन्तु णिच् के सहित और णिच् के परे हि की अंग संज्ञा है और

अंगाधिकार में अंग को कार्य का विधान वा निषेध होता है इस चङ् के परे कुछ प्राप्त ही नहीं फिर निषेध क्यों किया इस लिये यह परिभाषा है ॥

८०—प्रकृतिग्रहण ग्यधिकस्यापि कुत्वं भवति ॥ अ० ॥ ७।३।५६ ॥

कुत्वप्रकरण में जहां मूलप्रकृति का ग्रहण है वहां णिच्सहित प्रकृति का भी ग्रहण हो जावे । इस से चङ् के परे निषेध सार्थक होगया और अन्यत्र फल यह है कि (प्रजिघाययिषति) यहां णिजन्त हि धातु को सन् प्रत्यय के परे कुत्व ही जाता है इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ८० ॥

(ज्यादादीयसः) इस सूत्र में जो ज्य से परे ड्यसुन् प्रत्यय को आकारादेश न कहते तो भी लोप की अनुवृत्ति आकर पर के आदि ईकार का लोप ही कर प्रकृत्यकारादि प्रत्यय के परे ज्य को दीर्घ होके (ज्यायान्) प्रयोग सिद्ध होही जावेगा फिर आकारादेश विधान व्यर्थ होने से यह परिभाषा है ॥

८१—अङ्गृष्टत्तेपुनर्दृत्तावविधिः ॥ अ० ॥ ६।४।१६० ॥

अंगाधिकार में कोई कार्य निष्पन्न हो गया हैतो फिर दूसरे कार्य में प्रवृत्ति होवे । इस से यह आया कि अंगाधिकार के एक ड्यसुन्लोप कार्य होने में फिर द्वितीय कार्य दीर्घ नहीं हो सकता इस लिये पूर्वोक्त (ज्यादादीयसः) सूत्र आकारादेश सार्थक होगया तथा (रीङ्कृतः) यहां जो दीर्घ रीङ् न कहते भी (मात्रौयति) आदि में अकृत्यकारादि प्रत्यय के परे दीर्घ हो जाता फिर दीर्घ रीङ् ग्रहण का यही प्रयोजन है कि रिङ् किये पीछे दीर्घ नहीं होसकता इस लिये दीर्घ रीङ् पढ़ना चाहिये । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८१ ॥

(परमात्मानं नमस्करोति नमस्यति वा) इत्यादि प्रयोगों में नमः शब्द के अग में चतुर्थी विभक्ति (नमःस्मिन्स्वाहास्वधाऽलंबषट्योगाच्च) इस सूत्र से जानो चाहिये सो इस समाधान के लिये यह परिभाषा है ॥

८२—उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्वलीयसी ॥ अ० ॥ २।३।१६ ॥

उपपदविभक्ति से कारकविभक्ति बलवान् होती है । उपपदविभक्ति वह कहा-
ती है कि जहां कर्मादि कारक व्यवस्था से किसी निज विभक्ति का नियम न किया
गया और जहां कर्मादि कारक व्यवस्था से नियत विभक्ति होती है उस को कारक
विभक्ति कहते हैं सो (परमात्मने नमः, गुरुवे नमः) इत्यादि में तो उपपदविभक्ति
चतुर्थी हो जाती और (परमात्मानं नमस्करोति) इत्यादि में उपपदविभक्ति

को बाध के कारकविभक्ति हो जाती है । तथा (गाः स्वामी वृजति) यहाँ स्वामी शब्द के योग में उपपदविभक्ति षष्ठौ समसो (स्वामोस्वराधिपति०) इस सूत्र से प्राप्त है परन्तु वृजति क्रिया में गौश्री को कर्मत्व होने से द्वितीयाविभक्ति हो जाती है । इत्यादि ॥ ८२ ॥

(मिमार्जिषति) यहाँ (मृज् + सन् + तिप् =) इस अवस्था में बह्वपेक्ष वृद्धि की अपेक्षा में अल्पापेक्ष अन्तरङ्ग होने से द्वित्व हो कर परत्व से अभ्यास कार्य हाँके (मिमृज् + सन् × तिप् =) इस अवस्था में इकार ऋकार दोनो को वृद्धि प्राप्त है सो जो अभ्यास का भी वृद्धि हो जावे तो ह्रस्व का अपवाद होने से फिर ह्रस्व नहीं हो सकता तो (मिमार्जिषति) आदि प्रयोग भी सिद्ध नहीं हो सकते इस लिये यह परि० ॥

८३—अनन्त्यविकारेऽन्त्यसदेशस्य कार्यं भवति ॥ अ० । ६।१।१३ ॥

जहाँ अनन्त्य और अन्त्य वर्ण के समीपस्थ दोनों वर्ण को जो कार्य प्राप्त हो वहाँ अन्त्य के समीपस्थ वर्ण को कार्य होना चाहिये और दूरस्थ व्यवहित पूर्व वर्ण को नहीं होवे इस से मिमार्जिषति में अभ्यास की वृद्धि नहीं हाँती तथा (अदोऽक्षति, अदमुयङ्) यहाँ क्षिप् प्रत्ययान्त अक्षु धातु के परे अदस् शब्द के टि भाग को अद्रि आदेश हाँ कर (अदद्राङ्) इस अवस्था में (अदसोऽसेर्दादु दो मः) इस सूत्र से दानो दकारों से परे उ और दकारों को मकार प्राप्त है सो इस परिभाषा से अन्त्य को हाँता है अनन्त्य पूर्व को नहीं इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८३ ॥

(देहि, धेहि) इत्यादि प्रयोगों में जो अभ्यास का लोप होता है सो अलोन्त्यविधि मान के अन्त्य अल् का ल प होवे तो (देहि, धेहि) आदि प्रयोग सिद्ध नहीं होसके इस लिये यह परिभाषा है ॥

८४—नानर्थकेऽलोन्त्यविधिरनभ्यासविकारे ॥ अ० ॥ १।१।६५ ॥

अनर्थक शब्द को कहा कार्य अन्त्य अल् को न हो परन्तु अभ्यास विकार की छोड़ के धातु को जो द्वित्व किया जाता है उस में एक भाग अनर्थक और दानो भाग सार्थक होते हैं क्यों कि वहाँ शब्दाधिक्य होने से अर्थाधिक्य नहीं हो जाता इस से अनर्थक अभ्यास का लोप अन्त्य अल् को न हुआ तो (देहि, धेहि) आदि प्रयोग सिद्ध हो गये । तथा (अय्यक्तानुकरणस्यात इती) इस से अत् भाग को कहा पर रूप इस परिभाषा के आश्रय से अन्त्य अल् को नहीं होता (घटत् + इति = घटिति, पटिति) इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८४ ॥

जैसे (ब्राह्मणश्च, ब्राह्मणी च ब्राह्मणी वत्सश्च वत्सा च वत्सौ) यहां स्त्री वाचक शब्द के साथ पुरुषवाची शब्द एक शेष रह जाता है वैसे (ब्राह्मणवत्सा च ब्राह्मणीवत्सश्च) यहां स्त्रीत्व और पुल्लिंग स्वरूप में अप्रधान और स्वस्वामिसम्बन्ध में प्रधान हैं इस लिये एक शेष नहीं होता इत्यादि। तथा लोक में भी और किसी ने किसी से पूछा कि यह कौन जाता है उसने उत्तर दिया कि राजा यद्यपि राजा के साथ सेनादि सब थे तथापि प्रधान राजा का ग्रहण होता और दो मनुष्यों का देवदत्त नाम हो तो उन में जो प्रधान होता है उसी से व्यवहार किया जाता है ॥ ८५ ॥

८५—प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्यसम्प्रत्ययः ॥

जहां प्रधान और अप्रधान दोनों में कार्य प्राप्त हो वहां प्रधान में कार्य होना निश्चित रहे अप्रधान में नहीं (ब्राह्मणवत्सा च ब्राह्मणीवत्सश्च) यहां स्त्रीत्व और पुल्लिंग स्वरूप में अप्रधान और स्वस्वामिसम्बन्ध में प्रधान हैं इस लिये एक शेष नहीं होता इत्यादि। तथा लोक में भी और किसी ने किसी से पूछा कि यह कौन जाता है उसने उत्तर दिया कि राजा यद्यपि राजा के साथ सेनादि सब थे तथापि प्रधान राजा का ग्रहण होता और दो मनुष्यों का देवदत्त नाम हो तो उन में जो प्रधान होता है उसी से व्यवहार किया जाता है ॥ ८५ ॥

स्वस्वादि गण में मातृ शब्द पड़ा है उस से डीप् प्रत्यय का निषेध किया है सो जननी वाचक है और परिमाण अर्थात् तालन करने वाली सामान्य स्त्री को भी मातृ कहते हैं सो दोनों का निषेध हो वा किसी एक का इस सन्देह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

८६—अवयवप्रसिद्धेः समुदायप्रसिद्धिर्बलीयसी ॥

अवयव की प्रसिद्धि से समुदाय की प्रसिद्धि बलवान् होती है। अवयव की प्रवृत्ति थोड़े अंग में और समुदाय की प्रवृत्ति बहुत अंग में होती है। इस कारण जननी वाचक मातृ शब्द के रूढ़ि होने से अवयव मान कर स्वस्वादिगण से डीप् का निषेध हो जाता है और परिमाण कर्तृवाचक मातृ शब्द के यौगिक होने से समुदायवाची मान कर स्वस्वादि गण से डीप् का निषेध नहीं होता अर्थात् परिमाणवाचक मातृ पुरुष हो तो (माता, मातारौ, मातारः) और स्त्री हो तो (मात्री, मात्र्यौ, मात्र्यः) ऐसे प्रयोग होंगे इस परिभाषा के इत्यादि प्रयोजन हैं ॥ ८६ ॥

(अचि विभाषा) इस सूत्र में गृ धातु के रेफ को लकारादेश होता है। सो जहां कण्ठवाचीगल शब्द है वहांभी लत्वका विकल्प होता गर शब्दभी कण्ठवाचक होजावे सो नियम से विरुद्ध है क्योंकि गर शब्द केवल विष का वाची और गल शब्द कण्ठ वाची है इन दोनों के अर्थ में लत्व के विकल्प से व्यभिचार होजाना चाहिये इस के समाधान के लिये यह परिभाषा है ॥

८७—व्यवस्थितविभाषयाऽपि कार्याणि क्रियन्ते ॥

व्यवस्थित विभाषा से भी कार्य किये जाते हैं। व्यवस्थित विभाषा उस को कहते हैं कि जिस कार्य का विकल्प किया हो वही कार्य किसी नियतार्थवाचक शिष्टप्रयुक्त शब्द में नित्य होजावे और किसी में होही नहीं और जहां सब प्रयोगों में उस कार्य का होना न होना दोनों भेद रहें तो उस को अव्यवस्थित विभाषा कहते हैं इस से कण्ठवाची गल शब्द में नित्य लत्व हो जाता है इस के उदाहरणों की कारिका महाभाष्य की यह है कि—

देवतातो गलो ग्राह इतियोगे च सङ्घिधिः ।

मिथस्ते न विभाष्यन्ते गवाक्षः संशितव्रतः ॥ १ ॥

(देवशासौ चातो देवतातः) यहां संज्ञावाचक चात शब्द में (नुदविदोन्दता०) इस सूत्र से निष्ठा के तकार को नकार नित्य हो नहीं होता और क्रियावाचक में ती (चाणम्, चातम्) दोनों होते हैं। गल शब्द का लिख दिया। सामान्य यौगिकवाची (गरः, गलः) दोनों ही होते हैं (विभाषा ग्रहः) इस सूत्र में ग्रह धातु से ण प्रत्यय होकर (ग्राहः) प्रयोग बनता है सो यह जल जन्तु की संज्ञा है इस में नित्य ण हो जाता है। और जहां नक्षत्र आदि लोकवाची में ग्रह शब्द अच् प्रत्ययान्त होगा वहां ण नहीं होता तथा (इति) शब्द के योग में सत् संज्ञक (गल्, शानच्) प्रत्यय विकल्प से प्राप्त भी हैं जैसे (हन्तीति पलायते, वर्धतीति धावति) यहां प्रथमासमानाधिकरण में व्यवस्थितविभाषा मान कर नित्य नहीं होते (गवाक्षः) यह भरोखा की संज्ञा है यहां गो शब्द को अवङ् आदेश विकल्प से प्राप्त है सो नित्यही हो जाता है। और जहां गौ के अन्न नेत्र का नाम होगा वहां (गवाक्षम्, गोअक्षम्, गोऽक्षम्) ये तीन प्रयोग होजावेंगे और (संशितव्रतः) यहां (शास्त्रैरन्यतरस्याम्) इस सूत्र से तादि कित् के परे शा धातु का विकल्प से प्राप्त इकारादेश नित्य होता है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८७ ॥

(आशंसायां भूतवच्च) इस सूत्र में प्रिय पदार्थ की इच्छा संबन्धी भविष्यत् काल में भूतवत् और वर्तमानवत् प्रत्यय कहे हैं अर्थात् भूतकालिक जिस अर्थ में प्रकृति से जो प्रत्यय कहा है वह प्रत्यय उसी अर्थ में उसी प्रकृति से होना चाहिये सो सामान्यभूत में निष्ठा और लुङ् आदि होते हैं और अनद्यतनभूत में लङ् तथा परोक्षानद्यतनभूत में लिट् होता है इस में यह संदेह है कि भूतवत् कहने से सामान्यभूतकालिक प्रत्ययों का अतिदेश होवे वा सामान्य विशेष दोनोंका। इस लिये यह परिभाषा है ॥

८८—सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः ॥

जहां सामान्य और विशेष दोनों का अतिदेश प्राप्त हो वहां विशेष का अतिदेश नहीं होता। इस से सामान्यभूत के अतिदेश में विशेष भूत में विहित लङ्, लिट् का अतिदेश नहीं होता इत्यादि ॥ ८८ ॥

(सनाशंसभिच्च उः) इस सूत्र में सन् धातु वा सन् प्रत्यय का ग्रहण होना चाहिये इस संदेह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

८९—प्रत्ययाप्रत्यययोः प्रत्ययस्यैव ग्रहणम् ॥ अ० ॥ ६ । ४ । १ ॥

जहां प्रत्यय और अप्रत्यय दोनों का एकस्वरूप होने से ग्रहण हो सकता हो वहां प्रत्यय ही का ग्रहण हो अप्रत्यय का नहीं। इस लिये सन् धातु का ग्रहण नहीं होता किन्तु सन् प्रत्ययान्त से उ प्रत्यय होता है तथा (चिचीषति, तष्ट्षति) यहां सन् के परे अजन्त का दीर्घ होता है सो (दधि सनोति, मधु सनोति) यहां सन् धातु के परे दीर्घ नहीं आवे। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८९ ॥

(विपराभ्यां जेः) इस सूत्र में वि परा पूर्वक जि धातु में आत्मनेपद कहा है सो (परा जयति सेना) यहां सेना शब्द के विशेषण परा शब्द में परे भी आत्मनेपद होना चाहिये इस संदेह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

९०—सहचरितासहचरितयोः सहचरितस्यैव ग्रहणम् ॥

सहचारी और असहचारी दोनों का जहां हो सकता हो वहां सहचारी का ही ग्रहण हो। और असहचारी का नहीं (विजयते, पराजयते) यहां आत्मनेपद होगया और (बहुवि जयति वनम्, परा जयति सेना) यहां न हुआ। क्योंकि जहां वि, परा, केवल उपसर्ग हैं वहां हो। यहां बहुविवन का और परा, सेना का विशेषण अर्थात् दोनों अनुपसर्ग हैं वहां आत्मनेपद नहीं होता। वन और सेना के विशेषण में वि और परा शब्द उपसर्ग के सहचारी नहीं है इस कारण वहां आत्मनेपद नहीं हुआ तथा (पंचम्यपाङ्परिभिः) यहां कर्मप्रवचनीय अप आङ् और परि के योग में पंचमी विभक्ति होती है सा वज्रनाथ अपशब्द के सहचर्य से (वृजंपरि विद्योतते विद्युत्) यहां लक्षण अर्थ में पंचमी विभक्ति नहीं होती। इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ९० ॥

जैसे (अहो आश्चर्यम्, उताहो इमे) इत्यादि में ओकारान्त निपात की प्रगृह्य संज्ञा हो कर प्रकृतिभाव हो जाता है वैसे (अतिरस्तिरः समपद्यत, तिरोऽभवत्) यहाँ च्विप्रत्ययान्त लाक्षणिक ओकारान्त की निपात संज्ञा होकर प्रगृह्य संज्ञा हो जावे तो प्रकृतिभाव होना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

६१—लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैवग्रहणम् ॥ अ० ॥ १।१।१५ ॥

लक्षण नाम जो सूत्र में कार्य हो कर बना हो वह लाक्षणिक और जो स्वाभाविक है वह प्रतिपदोक्त कहाता है। उन लाक्षणिक और प्रतिपदोक्त के बीच में जहाँ संदेह पड़े वहाँ प्रतिपदोक्त को कार्य हो और लाक्षणिक को नहीं इस से (तिरोऽभवत्) यहाँ लाक्षणिक ओकारान्त निपात की प्रगृह्य संज्ञा हो कर प्रकृतिभाव नहीं होता। तथा (आशिषा तरति, आशिषिकः) यहाँ इस भाग के लाक्षणिक होने से (इससुक्तान्तात्कः) सूत्र में ठक प्रत्यय की ककारादेश नहीं होता इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ६१ ॥

इस परिभाषा के होने में ये दोष हैं कि जो (दाधा घ्वदाप्) सूत्र में दाधा को घु संज्ञा होती है सो (देङ् रजणे, दाश्चखण्डने, घेट् पाने) आदि को घु संज्ञा नहीं होनी चाहिये क्योंकि (ड् दाज्, डु धाज्) प्रतिपदोक्त और देङ् आदि लाक्षणिक हैं इस संदेह की निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

६२—गाभादाग्रहणेवविशेषः ॥ अ० ॥ १।१।२० ॥

गा, सा, दा ये तीनों जिन सूत्रों में ग्रहण किये हैं वहाँ सामान्य करके लाक्षणिक और प्रतिपदोक्त दोनों का ग्रहण होता है इस से (देङ्) आदि लाक्षणिक धातुओं की भी घु संज्ञा हो जाती है (दैप्) धातु में पित् पढ़ने का यही प्रयोजन है कि जो दाप् को घु संज्ञा का निषेध है सो दै माच के पढ़ने से प्राप्त नहीं था इस लिये पित् किया सो जो लाक्षणिक दै माच की घु संज्ञा प्राप्त ही नहीं थी तो निषेध के लिये पित् क्यों पड़ा। इस से यह आया कि लाक्षणिक की भी घु संज्ञा होती है (घुमास्यागापाजहातिसां हलि) यहाँ सा कर के मेङ् आदि की भी ईकारादेश होता है (मीयते, मेमीयते) इत्यादि गा करके गे आदि भी लिये जाते हैं (गीयते, जगीयते) इङ् धातु के स्थान में जो गाङ् आदेश होता है उस का भी ग्रहण होता है जैसे (अद्यगीष्ट, अद्यगीषाताम्) इत्यादि बहुत प्रयोजन हैं ॥ ६२ ॥

(वृद्धिरादैच्) सूत्र में आ, ऐ, औ, इन तीनों की वृद्धि संज्ञा होती है। इस में यह संदेह होता है कि जो तीनों वर्ण की एक साथ वृद्धि संज्ञा हो जावे तो (कारकः) आदि में एक साथ तीनों वर्ण वृद्धि होने चाहिये। इस लिये यह परिभाषा है ॥

६३—प्रत्ययवयवं वाक्यपरिसमाप्तिः ॥ अ० ॥ १।१।१ ॥

वाक्य की समाप्ति प्रत्येक अवयव के साथ होती है अर्थात् जहाँ समुदाय की

वाक्य कहा है वहाँ वाक्यस्थ क्रिया जब प्रत्येक अवयव के साथ सम्बन्ध कर लेती है तब उस को पूर्ण वाक्य कहते हैं। जैसे किसीने कहा कि (देवदत्तयज्ञदत्त विष्णुमित्रा भोज्यन्ताम्) यद्यपि यहाँ यह नहीं कहा कि देवदत्त, यज्ञदत्त और विष्णुमित्र को पृथक् २ भोजन कराओ तथापि भोजन क्रिया प्रत्येक के साथ सम्बन्ध रखती है इसी प्रकार यहाँ आ, ऐ, औ को वृद्धि संज्ञा पृथक् कही है इसी से प्रत्येक वर्ण के साथ वृद्धि का सम्बन्ध पृथक् रहता है ऐसे ही गुण आदि संज्ञा भी प्रत्येक की होती है ॥ ८३ ॥

अब इस पूर्वोक्त परिभाषा से यह दोष आया कि जो (हलोऽमन्तराः संयोगः) यहाँ प्रत्येक वर्ण की संयोग संज्ञा रहे तो (निर्यायात्, निर्वायात्) यहाँ या, वा धातु को संयोगादि मान कर (वान्यस्य संयोगादेः) इस सूत्र से एकारादेश होना चाहिये इत्यादि अनेक दोष आवेंगे। इस लिये यह परिभाषा है ॥

८४—समुदाये वाक्यपरिसमाप्तिः ॥ अ० ॥ १ । १ । ७ ॥

कहीं ऐसा भी होता है कि समुदाय में वाक्य की परिसमाप्ति होवे अर्थात् वाक्यस्थ क्रिया का केवल समुदाय के साथ सम्बन्ध रहे। और प्रत्येक अवयव के साथ पृथक् २ सम्बन्ध न होवे जैसे राजा ने आज्ञा किई कि (गर्गाः शतन्दण्ड्यन्ताम्) यहाँ गर्गों पर सौ रुपये दण्ड कहा तो उन में प्रत्येक पर सौ २ दण्ड किया जावे वा समुदाय पर तो जैसे समुदाय पर एक दण्ड होता है वैसेही समुदित हलों की संयोगसंज्ञा होती है। इत्यादि अनेक प्रयोजन है ॥ ८४ ॥

(वृद्धिर्वादैच्) सूत्र में आ, ऐ, औ इन तीन दीर्घ वर्णों की वृद्धि संज्ञा की है फिर आकार तपर क्यों पढ़ा क्यों कि सवर्ण ग्रहण परिभाषा से अक्षरसमाग्राय का ही अणु सवर्ण ग्राहक है परन्तु जो अक्षरसमाग्राय में ह्रस्व पड़ते हैं उन्हीं का ग्रहण होना दीर्घों का नहीं फिर दीर्घ से सवर्ण ग्रहण की प्राप्ति ही नहीं और तपरकरण का यही प्रयोजन होता है कि तपर से भिन्नकालिक सवर्णों का ग्रहण न हो। इस के समाधान के लिये यह परिभाषा है ॥

८५—भेदज्ञा उदात्तादयः ॥ अ० ॥ १ । १ । १ ॥

जिस वर्ण के साथ जो उदात्तादि गुण लगता है वह उसको स्वभावसे भिन्न कर देता है परन्तु काल भेद नहीं होता। दीर्घ उदात्त, दीर्घ अनुदात्त, दीर्घ स्वरित इनमें काल का तो भेद नहीं परन्तु उच्चत्व, नीचत्व, समत्व आदिका भेद है सो जो आकार को तपर न पढ़ते तो भी अभेदकों का ग्रहण ही हो जाता फिर तपर से यही प्रयोजन है कि भिन्न धर्म वाले तात्कालिक उदात्तादि का भी ग्रहण हो जावे इस लिये आकार में तपरकरण सार्थक हुआ तथा अन्यत्र भी दीर्घ वर्णों को तपर पढ़ने का यही प्रयोजन है। और लोक में भी उदात्तादि का भेद देख पड़ता है जैसे कोई

विद्यार्थी उदात्त के स्थान में अनुदात्त बोले तो अध्यापक उस को शासन करता है कि तू अन्यथा क्यों बोलता है। सो जो उदात्तादि में भेद नहीं होता तो शासन भी नहीं बन सकता। और यह भी दृष्टान्त है कि एक जल शीत, उष्ण और खारी आदि भेदक गुणों के होने से भिन्न २ हो जाता है इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ८५ ॥

इस पूर्वोक्त विषय में ऐसे भी दृष्टान्त मिलते हैं कि एक देवदत्त बालक युवा वृद्धि आदि अवस्था गुणों और सुण्डजटिल आदि गुणों से वही बना रहता है कोई भिन्न नहीं हो जाता। इस से यह भी आया कि गुण अभेदक हैं और (यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिञ्च) इस सूत्र में यासुट् को उदात्त न कहते किन्तु उस को उदात्त ही पढ़ देते तो उदात्तादि गुणों के भिन्न २ होने से उदात्त के पढ़ने में अनुदात्त हो ही नहीं सकता फिर उदात्त ग्रहण व्यर्थ हुआ इस लिये यह परिभाषा है ॥

८६—अभेदका गुणाः ॥ अ० ॥ १।१।१ ॥

उदात्तादि गुण अभेदक होते हैं अर्थात् गुणों के स्वरूपको कुछ भी नहीं बदल सकते। इसी लिये (अख्यदधि०) इत्यादि सूत्रों में उदात्त वा अनुदात्त पढ़ा है जो उदात्तादि शब्दों से उदात्त नहीं पढ़ते तो अभेदक होने से विशेष गुणी का ज्ञान नहीं होता इस से उदात्तादि शब्दों का पढ़ना सार्थक होगया। इन गुणों के अभेदक पक्ष में दीर्घों को तपर पढ़ने का द्वितीय समाधान है (आदैच्) यहाँ तो आकरके तपर पढ़ने का यही प्रयोजन है कि तकारसे परे ऐ औ तपर माने जावे तो (महा प्रोजाः, महौजाः) यहाँ चार मात्रिक स्थानों के स्थान में चार मात्राओं का आदेश भी प्राप्त होता है सो न हो किन्तु द्विमात्रिक ही (ए, ऐ, ओ, औ) आदेश होवे इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं इन दोनों में गुणों का अभेदक पक्ष ही बलवान् है ॥ ८६ ॥

(सर्वादीनि सर्वनामानि) इस सूत्र में सर्वनाम शब्द में णत्व निषेध निपातन कया है सो उस को सूत्र में चरितार्थ होजाने से लौकिक प्रयोगविषय में सर्वनाम शब्द को णत्व होना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

८८७—बाधकान्येवहिनिपातनानि ॥ अ० ॥ १।१।२७ ॥

जिस अप्राप्त कार्य का विधान वा प्राप्त का निषेध निपातन से कर दिया हो वह सर्वथा बाधक हो जाता है फिर वह वैसा ही प्रयोग काल में भी रहेगा। इस से सर्वनाम आदि शब्दों में णत्व निषेध आदि कार्य सिद्ध हो जाते हैं ॥ ८७ ॥

(स्यन्त्यति) इस स्यन्द् धातु के प्रयोग में इट्का विकल्प अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग है सो जो अन्तरङ्ग कार्य करने में बहिरङ्ग असिद्ध माना जावे परस्मैपद में भी इट्का विकल्प होना चाहिये। इस सन्देह को निवृत्ति के लिये यह परिभाषा है ॥

६८—प्रतिषेधाश्च बलीयांसो भवन्ति ॥ अ० ॥ १।१।६३ ॥

पर, नित्य और अन्तरङ्गसे भी प्रतिषेध बलवान् होते हैं इससे अन्तरङ्गभीष्ट विकास को बाध के नित्य प्राप्त इष्ट का निषेध हो जाता है इत्यादि प्रयोजन है ॥ ६८ ॥

(अइउण्) आदि प्रत्याहार सूत्रों में जो (ण्, क्) आदि अनुबन्ध पड़े हैं उनका अच् के ग्रहण से ग्रहण किया जावे तो (दधिणकारोयति, जरोकरोति) इत्यादि में णकार ककार के परे इकार ईकार को यणादेश होना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

६९—सर्वविधिभ्यो लोपविधिर्बलीयान् ॥

सब विधियों से लोपविधि बलवान् होती है । इस से (ण्, क्) आदि अनुबन्धों का प्रत्याहार की प्रवृत्ति से पहिलेही लोप हो जाता है फिर अच् में णकार ककार के न रहने से (दधि णकारोयति, जरोकरोति) आदि में यणादेश नहीं होता । इत्यादि । और लोक में भी यही रीति है कि किसी का मृत्यु आजावे तो सब कामों का बाधक हो जाता है अर्थात् अदर्शन अग्रहण होता है ॥ ६९ ॥

(अर्थ प्रत्याययति स प्रत्ययः) जो अर्थ का निश्चय करावे वह प्रत्यय कहता है इस अर्थ के न होने से केवल स्वार्थ में विहितों की प्रत्यय संज्ञा नहीं होवे इस लिये यह परिभाषा है ॥

१००—अनिर्दिष्टार्थाश्च प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति ॥ अ० ॥ ३।२४।४ ॥

जिन प्रत्ययों की उत्पत्ति में कोई विशेष अर्थ नियत न किया हो वे स्वार्थ में ही अर्थात् प्रकृत्यर्थ के सहायक और बोधक रहें । इसी से वे प्रत्यय कहावे जैसे (गुप्तिज्किद्भ्यः सन्, यावादिभ्यः कन्) इत्यादि प्रत्यय स्वार्थ में होते हैं (जुगुप्सन्, यावकः) इत्यादि ॥ १०० ॥

(सुपिस्थः) इस सूत्रसे कर्त्ता में प्रत्यय होते हैं इस लिये (आखूनामुत्थानमाखूत्यः) इत्यादि प्रयोगों में भावमें क प्रत्यय नहीं हो सकता इस लिये यह परिभाषा है ॥

१०१—योगविभागादिष्टसिद्धिः ॥

जहां इष्ट कार्य की सिद्धि नहीं वहां योगविभाग करना चाहिये । और योगविभाग करके इष्ट कार्य साध लेना अनिष्ट नहीं होने देना (सुपि) इतना पृथक् सूत्र किया तो यह अर्थ हुआ कि सुबन्त उपपद होती आकारान्त धातु से क प्रत्यय हो इस से (कच्छेन पिबति, कच्छपः, कटाहपः, हाभ्यां पिबति, द्विपः) इत्यादि प्रयोग सिद्ध हुए पीछे (स्थः) इतना पृथक् किया तो यह अर्थ हुआ कि स्था धातु से सुबन्त उपपद होती क प्रत्यय हो यहां योगविभाग करके कर्त्ता से हटाया तो स्वार्थ भाव में आखूत्य आदि प्रयोग सिद्ध हो गये । इसी प्रकार सर्वत्र जानो ॥ १०१ ॥

लाघव गौरव का विचार सर्वत्र रहता है कि । जहां तक ही थोड़ा वचन पढ़के बहुत अर्थ निकालना परन्तु ॥

१०२—पर्यायशब्दानां लाघवगौरवञ्चर्चा नाद्रियते ॥

पर्याय शब्दों में थोड़े बहुत होने का विचार नहीं करते कि जहां थोड़े वचन से काम चल सकता है तो उस का पर्याय अधिक अक्षर का शब्द न पढ़ना जैसे (अन्यतरस्याम्, विभाषा, वा उभयथा) इत्यादि एकार्थ शब्दों में किसी को पढ़ दिया यह नियम नहीं कि इतना अधिक क्यों पढ़ा इत्यादि ॥ १०२ ॥

जो ज्ञापक रूप परिभाषाओं से कार्य सिद्ध होते हैं वहां सर्वत्र ज्ञापकसिद्ध को प्रवृत्ति नहीं होती इस लिये यह परिभाषा है ॥

१०३—ज्ञापकसिद्धं न सर्वत्र ॥

जैसे अर्थवान् और अनर्थक के ग्रहण में ज्ञापकसिद्ध परिभाषा से अर्थवान् को कार्य होता है सो अन्नन्त को कहा कार्य कनिन् प्रत्यय के परे सार्थक अन् को और सन् प्रत्यय के निरर्थक अन् को भी होते हैं ॥ १०३ ॥

त्रिपादी में हुआ कार्य सपादसप्तऽध्यायी में असिद्ध माना जाता है सो (द्रोष्ठा, द्रोष्ठा, द्रोढा, द्रोढा) यहां त्रिपादिस्थ (वा द्रुहसुह०) सूत्र से हकार को घ और ढ आदेश होते हैं सो जो द्वित्व करने में उस घ को असिद्ध माने तो द्वित्व के एकभाग में घ और द्वितीय भाग में ढ आदेश रहना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

१०४—पूर्वज्ञासिद्धीयसद्विर्वचने ॥ अ० ॥ ८।१।१ ॥

त्रिपादी का कार्य द्वित्व करने में असिद्ध न माना जावे इस से (द्रोष्ठा द्रोष्ठा) आदि में ढत्व नहीं होता तथा (नुन्नं नुन्नम्, नुत्तं नुत्तम्) यहां भी द्वित्व के एकभाग में न और एक में तकार प्राप्त है सो नहीं इत्यादि ॥ १०४ ॥

जैसे (गोषुस्वाम्यश्वेषु च) यहां एकस्वामी शब्द के योग में दोनों भिन्नाकृति शब्दों में एकाकृति सप्तमी विभक्ति होती है वैसे गो शब्द में सप्तमी और अश्व में षष्ठीविभक्ति क्यों नहीं होती इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०५—एकस्या आकृतेश्चरितः प्रयोगो द्वितीयस्यास्तृतीस्याश्च न भवति ॥ १।३।३६ ॥

जहां एक आकृति का प्रयोग चरितार्थ होता है वहां द्वितीय या तृतीय अन्यार्थ सत्त्व कारक का प्रयोग नहीं होता इस से वहां अश्व शब्द में षष्ठी नहीं

होसकती क्यों कि एकाकृति सप्तमी विभक्ति का चरितार्थ है और षष्ठी के होने से भिन्नार्थ भी सम्भव होजावे ॥ १०५ ॥

(विव्याध) इत्यादि प्रयोगोंमें परत्वसे (हलादिः शेषः) इस सूत्रसे अभ्यासके यकार का लोप होजावे तो वकारको संप्रसारण प्राप्त होता है इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०६—संप्रसारणं संप्रसारणाश्रयं च कार्यं बलौयो भवति ॥

अ० ॥ १ । १ । १७ ॥

जो संप्रसारण और संप्रसारण के आश्रय कार्य हैं वे दोनों बलवान् होते हैं इससे (हलादिः शेषः) सूत्र से प्राप्त परलोप को भी बाध के प्रथम यकार को संप्रसारण हो गया तो फिर (विव्याध) आदि प्रयोग बन गये । तथा (जुहुवतुः, जुहुवुः) यहां संप्रसारण और ह्रस्व धातु के आकार का अजादि आर्द्धधातुक के परे लोप भी प्राप्त है परत्व से लोप होना चाहिये बलवान् होने से संप्रसारण हो जाता है और संप्रसारण हुए पीछे भी आकारलोप तथा संप्रसारणाश्रय पूर्वरूप भी प्राप्त है परत्व से आकारलोप होना चाहिये बलवान् होने से संप्रसारणाश्रय पूर्वरूप होजाता है । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ १०६ ॥

जब शुक्ल नील आदि गुणवाचक शब्द अपने केवल गुणवाचकपन अर्थात् स्वतन्त्र अर्थ में पुल्लिङ्गादि किसी विशेष लिङ्ग वा एकत्वादि वचन का आश्रय करने से नहीं प्रतीत होते पुनः जब इन का द्रव्य के साथ समानाधिकरण हो तब कौन लिङ्ग वचन इन में होना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

१०७—गुणवचनानां हि शब्दानामाश्रयतो लिङ्गवचनानि भवन्ति ॥ अ० ॥ १ ॥ २ । ६४ ॥

गुणवाची शब्द जिस द्रव्यके आश्रित हैं उस द्रव्य वाचक शब्दके जो लिङ्गवचन हैं वे ही गुणवाचक शब्द के भी होजावे जैसे । शुक्लम् वस्त्रम् । शुक्ला शाटी । शुक्लः कम्बलः । शुक्लौ कंबलौ । शुक्लाः कंबलाः । इत्यादि इसी प्रकार सर्वत्र जानो ॥ १०७ ॥

जैसे । कष्टं श्रितः, कष्टश्रितः । इत्यादि में समास होजाता है वैसे । महत् कष्टं श्रितः । यहां भी समास होना चाहिये इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०८—सापेक्षसमर्थं भवति ॥ अ० ॥ २ । १ । १ ॥

जो पद विशेषविशेषणभाव से द्वितीय पद के साथ सम्बन्ध रखता हो वह सापेक्ष होने से समास होने में असमर्थ कहाता है उस का समास नहीं हो सकता । इस कारण महत् शब्द विशेषण के साथ कष्ट सापेक्ष होने से पर के साथ समास की प्राप्ति नहीं होता तथा (भार्या राज्ञः पुरुषो देवदत्तस्य) यहां

भार्या के साथ राजन् शब्द सापेक्ष विशेषण और देवदत्त विशेषण के साथ पुरुष सापेक्ष है इस लिये राजन् और पुरुष दोनों के परस्पर असमर्थ होने से समास नहीं होता । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ १०८ ॥

(परीयात्, अतीयात्) यहां परि-इयात् । दो इकार का दीर्घ एकारादेश हुआ है सो जो अन्तादिवत् मानें तो (एतेलिङि) सूत्र से उपसर्गों से परि इण् धातु को ह्रस्व प्राप्त है इसलिये यह परिभाषा है ॥

१०९—उभयत आश्रयेनान्तादिवत् ॥ अ० ॥ ६ । १ । ८५ ॥

पूर्व पर के स्थान में जो एकादेश हुआ है वह पूर्व पर दोनों के आश्रयकार्य की प्राप्ति में अन्तादिवत् न हो इस से (परीयात्, अतीयात्) आदि में ह्रस्व नहीं होता । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ १०९ ॥

जो टित्, कित्, मित् आगम हाते हैं उन में किसी टकारादि अनुबन्ध से कोई उदात्तादि विशेष स्वर का विधान नहीं किया है वहां क्या स्वर होना चाहिये इस लिये यह परिभाषा है ॥

११०—आगमा अनुदात्ता भवन्ति ॥ अ० ॥ ३ । १ । ३ ॥

टित् आदि आगम अनुदात्त होते हैं । यद्यपि यह बात है कि (अर्थवत् आगम०) इस परिभाषा के अनुकूल जो प्रत्यय वा प्रकृति का स्वर है वही आगम का भी हो तो एक पद में दो स्वर नहीं रहते इस लिये (भ्रुविता) इत्यादि में आगम भी अनुदात्त विधान किये हैं इस में ज्ञापक यह है कि (यासुट् परस्मैपदेषूदा०) इस सूत्र में उदात्तादि करने का यही प्रयोजन है कि आगम सब अनुदात्त होते हैं इस से उदात्त प्राप्त नहीं था और जो प्रत्यय को आद्युदात्त स्वर होता है वह आगम को नहीं प्राप्त था इस लिये उदात्त कहा इत्यादि ॥ ११० ॥

गुप्, तिज्, कित् सान आदि धातुओं से स्वार्थ में सन् प्रत्यय होता है उस सन् के नित्य होने से प्रथम गण में शुद्ध प्रयोग नहीं होता तो यह सन्देह होता है कि इन से आत्मनेपद हो वा परस्मैपद हो जो सन्नन्त से पहिले कोई पद विधान होता हो वह (पूर्ववत्सनः) इस सूत्र से सन्नन्त से भी हो जाता सो तो नहीं होता और सन्नन्तों में कोई विशेष अनुबन्ध भी नहीं है इस लिये यह परिभाषा है ॥

१११—अवयवे कृतं लिङ्गं तस्य समुदायस्य विशेषकं भवति यं समुदायं सोऽवयवो न व्यभिचरति ॥ अ० ॥ ३ । १ । ५ ॥

अवयव में किया हुआ चिह्न उस समुदाय का विशेषक होता है कि जिस को वह अवयव फिर न छोड़ देवे । इस से यह आया कि जिन गुप् आदि धातुओं

में जो अनुदात्तेत् चिह्न किया है उनका सन् के बिना कहीं पृथक् प्रयोग भी नहीं होता इस लिये गुण आदि धातुओं का अनुदात्तेत् सम्बन्ध का विशेषक ही के अर्थात् गुण आदि सम्बन्धी को भी अनुदात्तेत् मान कर आत्मनेपद ही (जुगुप्सते, मीमांसते) यहां आत्मनेपद होगया और जुगुप्सयति वा जुगुप्सयसे मीमांसयति वा मिमांसयते यहां णिजन्त समुदाय को णिच् छोड़ देता है इसलिये परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों होते हैं तथा पण धातु अनुदात्तेत् है उस के (पणायति) प्रयोग में आय प्रत्ययान्त से परस्मैपद ही होता है क्योंकि आत्मनेपद तो व्यवहार अर्थ में और एकपक्ष में आर्द्धधातुकविषय में चरितार्थ है (शतस्य पणते) पणायां चकार । पेणे । पेणाते । और आय प्रत्ययान्त समुदाय को पण छोड़ भी देता है । इसलिये आय प्रत्ययान्त से आत्मनेपद नहीं होता और लोक में भी बेल को किसी अवयव में दाग देते हैं तो वह चिह्न उस बेल का विशेषक होजाता है कि यह अङ्कित बेल है उसी अवयव का और सब साथ के बेलों का भी विशेषक नहीं होता ॥ १११ ॥

(अपृक्त एकाल् प्रत्ययः) इस सूत्र में एक ग्रहण का यही प्रयोजन है कि (द्विः, जागृविः) यहां वि प्रत्यय की अपृक्त संज्ञा नहीं सो जो एक ग्रहण न करते और अल् प्रत्यय कहते तो भी अनेकाल् में नहीं होती फिर एक ग्रहण व्यर्थ हुआ इस से यह ज्ञापका सिद्ध परिभाषा निकली ॥

११२—वर्णग्रहणे जातिग्रहणम् ॥ अ० ॥ १ । २ । ४१ ॥

वर्ण के ग्रहण में वर्ण जाति का ग्रहण होता है इस से एक ग्रहण तो सार्थक होगया क्योंकि अल् मात्र पढ़ते तो जाति ग्रहण होने अनेक अलों का ग्रहण होजाता फिर एक ग्रहण से नहीं हुआ और (धीप्सति, धिप्सति) यहां दम्भ धातु के दो हलों में भी हल्जाति मानकर (हलन्ताच्च) सूत्र से इक् समीप हल् मान के सन् प्रत्यय कित् हाजाता है । इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं ॥ ११२ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिजालकाचार्याणां श्रीयुतविरजानन्द
सरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्व्यानन्दसरस्वतीस्वामिना
विरचिते वेदाङ्गप्रकाशे द्वादशोऽष्टाध्यायां नवमश्च
पारिभाषिको ग्रन्थोऽलङ्कृतिसमाप्तः ॥

पृष्ठे	पङ्क्तौ	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	५	परिभा	पारिभा
५	६	शिता	शित
६	६	यस्तु	यस्त
८	२	नज	जम
१८	१८	शब्दजे	शब्दके
२१	१	अपधित्या	अपत्याधि
२३	२०	समुदया	समुदाय
२४	२	रङ्गं	रङ्गं
२५	१०	यवत्	यवमत्
३५	१	सिद्धि	सिद्ध
३८	२३	हैं	है
३८	२	दात	दात
४३	२४	सति	सूति
४६	१	छाण	छाण
८	१८	हंजा	संज्ञा
५०	३१	पङ्ता	पङ्ता

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

—ॐ—

तत्रत्यः ।

त्रयोदशो भागः ॥

धातुपाठः ।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां

दशमो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतसूचीपत्रेण सहितः ।

पण्डितज्वालादत्तशर्मा संशोधितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां त्रयोदशं पुस्तकम् ।

—०००—

मुन्शी समर्थदान के प्रबन्ध से

वैदिकयन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि

इस की रजिस्ट्री कराई गई है ॥

संवत् १९४० कार्तिकशुक्ला २

पहली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ॥)

विषयसूचीपत्रम् ॥

					पृष्ठ से	पृष्ठ तक
भूमिका	१	२
भवादयः	३	१५
अदादयः	१६	१८
जुहोत्यादयः	१८	१९
दिवादयः	१९	२१
स्वादयः	२२	
तुदादयः	२३	२५
रुधादयः	२६	
तनादयः	२७	
क्रादयः	२७	२८
चुरादयः	२९	३३
कण्डादयः	३४	

1	1	1	1	1	1	1
2	2	2	2	2	2	2
3	3	3	3	3	3	3
4	4	4	4	4	4	4
5	5	5	5	5	5	5
6	6	6	6	6	6	6
7	7	7	7	7	7	7
8	8	8	8	8	8	8
9	9	9	9	9	9	9
10	10	10	10	10	10	10
11	11	11	11	11	11	11
12	12	12	12	12	12	12
13	13	13	13	13	13	13
14	14	14	14	14	14	14
15	15	15	15	15	15	15
16	16	16	16	16	16	16
17	17	17	17	17	17	17
18	18	18	18	18	18	18
19	19	19	19	19	19	19
20	20	20	20	20	20	20
21	21	21	21	21	21	21
22	22	22	22	22	22	22
23	23	23	23	23	23	23
24	24	24	24	24	24	24
25	25	25	25	25	25	25
26	26	26	26	26	26	26
27	27	27	27	27	27	27
28	28	28	28	28	28	28
29	29	29	29	29	29	29
30	30	30	30	30	30	30
31	31	31	31	31	31	31
32	32	32	32	32	32	32
33	33	33	33	33	33	33
34	34	34	34	34	34	34
35	35	35	35	35	35	35
36	36	36	36	36	36	36
37	37	37	37	37	37	37
38	38	38	38	38	38	38
39	39	39	39	39	39	39
40	40	40	40	40	40	40
41	41	41	41	41	41	41
42	42	42	42	42	42	42
43	43	43	43	43	43	43
44	44	44	44	44	44	44
45	45	45	45	45	45	45
46	46	46	46	46	46	46
47	47	47	47	47	47	47
48	48	48	48	48	48	48
49	49	49	49	49	49	49
50	50	50	50	50	50	50
51	51	51	51	51	51	51
52	52	52	52	52	52	52
53	53	53	53	53	53	53
54	54	54	54	54	54	54
55	55	55	55	55	55	55
56	56	56	56	56	56	56
57	57	57	57	57	57	57
58	58	58	58	58	58	58
59	59	59	59	59	59	59
60	60	60	60	60	60	60
61	61	61	61	61	61	61
62	62	62	62	62	62	62
63	63	63	63	63	63	63
64	64	64	64	64	64	64
65	65	65	65	65	65	65
66	66	66	66	66	66	66
67	67	67	67	67	67	67
68	68	68	68	68	68	68
69	69	69	69	69	69	69
70	70	70	70	70	70	70
71	71	71	71	71	71	71
72	72	72	72	72	72	72
73	73	73	73	73	73	73
74	74	74	74	74	74	74
75	75	75	75	75	75	75
76	76	76	76	76	76	76
77	77	77	77	77	77	77
78	78	78	78	78	78	78
79	79	79	79	79	79	79
80	80	80	80	80	80	80
81	81	81	81	81	81	81
82	82	82	82	82	82	82
83	83	83	83	83	83	83
84	84	84	84	84	84	84
85	85	85	85	85	85	85
86	86	86	86	86	86	86
87	87	87	87	87	87	87
88	88	88	88	88	88	88
89	89	89	89	89	89	89
90	90	90	90	90	90	90
91	91	91	91	91	91	91
92	92	92	92	92	92	92
93	93	93	93	93	93	93
94	94	94	94	94	94	94
95	95	95	95	95	95	95
96	96	96	96	96	96	96
97	97	97	97	97	97	97
98	98	98	98	98	98	98
99	99	99	99	99	99	99
100	100	100	100	100	100	100

भूमिका ॥

—३:३:६—

यह ग्रन्थ यथार्थव्याख्यान और भूमिका के सहित आख्यातिक में छप चुका है परंतु उस में धातु अर्थों के सहित व्याख्यान के बीच २ में पढ़े हैं । इस कारण उस ग्रंथ में मूल का पाठ करना तथा घोष के कण्ठ स्थ करना अध्येताओं को कठिन पड़ता इस लिये यह मूल पुस्तक सूचीपत्र के सहित पृथक् छप वाते हैं । इस में एक प्रकार के जितने धातु हैं उन के आदि में उन की संख्या, आत्मनेपद, परस्मैपद तथा उदात्त और अनुदात्त भी रख दिया है । उदात्त से सेट् और अनुदात्त से अनिट् समझना चाहिये । उदात्तेत् से परस्मैपद और अनुदात्तेत् से आत्मनेपद तो समझा जाता है तथापि अति सुगमता के लिये आत्मनेपद परस्मैपद शब्द भी रख दिये हैं । इस से पढ़ने पढ़ाने हारे लोगों को बड़ी सुगमता होगी । परंतु धातुओं के रूप मूल पुस्तक पर लेना सेट् अनिट् आदि प्रकरणों के उपयुक्त सूत्रों को देख समझ के ही कर सकेंगे । क्योंकि कोई अनिट् धातु किसी विशेष प्रत्यय में सेट् और कोई सेट् धातु कहीं अनिट् भी हो जाता है । इस का सूचीपत्र भी साथ ही छपता है इस में तीन संकेत हैं पहिला, भ्वादिगण का (भ्वा०) अदादि का (अ०) जुहोत्यादि का (जु०) दिवादि का (दि०) स्वादि का (स्वा०) तुदादि का (तु०) रुधादि का (रु०) तनादि का (त०) क्रयादि का (क्र्या०) चुरादि का (चु०) और कण्वादि का (कं) लिखा है । दूसरा, आत्मनेपद का (आ०) परस्मैपद का (प०) और उभयपद का (उ०) लिखा है । तीसरा, सेट्

का (से०) वा अनिट् का (अ०) लिखा है। और नीचे के धातुओं में जहां पूर्व का ही संकेत है। वहां उस के बराबर नीचे बिन्दु दिये हैं। सूची में मूल धातुओं के आदि अनुबन्ध इस लिये छोड़ दिये हैं कि उन धातुओं के आद्यक्षर में संदेह न पड़े। और जो धातु उपदेश में प्रकारादि और प्रयोग काल में सकारादि हो जाते हैं। उन सब को सकारादि में लिखा है। क्योंकि वे सूत्रों से विशेष कार्य होने के लिये उपदेश हैं। दशों गण के अन्त में कश्चादि गण इस लिये छप वाया है कि यह बहुधा धातुओं से अर्थ विधान के सहित सम्बन्ध रखता है। धातुपाठविषयक विशेष व्याख्यान आख्यातिक की भूमिका और उस पुस्तक को देखने से विदित हो जावेगा ॥

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्येषु ।

इति भूमिका ।

स्थान महाराणा जी का }
उदयपुर

{ दयानन्दसरस्वती

अथ पाणिनिमुनिकृतधातुपाठाऽऽरम्भः ॥

—:ॐ:—

भूस्तत्तायाम् । उदात्त उदात्तेत् परस्मैभाषः ॥

अथ तवर्गीयान्ता एधादयः कथ्यन्ताः षट्त्रिंशदात्मनेभाषाः ॥

एध, वृद्धौ । स्पृध्वं, सङ्घर्षे । गाधू, प्रतिष्ठालिप्तयोर्ग्रन्थे च ।
वाधू, विलोडने । नाधू, नाधू, याञ्जोपतापैश्वर्याऽऽशीःषु ।
दध, धारणे । स्कुदि, आप्रवणे । श्विदि, श्वैत्ये । वदि, अभिवादन-
स्तुत्योः । भदि, कल्याणे सुखे च । यदि, स्तुतिमोदसदस्त्र-
कान्तिगतिषु । स्पदि, किञ्चिञ्चलने । क्लिदि, परि देवने । मुद,
हर्षे । दद, दाने । ध्वद, स्पर्धे, आस्वादने । उर्द, माने क्रीडा-
याञ्च । कुर्द, खुर्द, गुर्द, गुद, क्रीडायामेव । षूद, क्षरणे ।
क्राद, अव्यक्ते शब्दे । ह्लादी, सुखे च । स्वाद, आस्वादने । पर्द,
कुत्सितेशब्दे । यती, प्रयत्ने । युट्, जुट्, भासने । विधू, वेधू,
याचने । अथि, शैथिल्ये । ग्रथि, कौटिल्ये । क्त्थ, श्लाघायाम् ।
इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथाऽतादयः शुन्ध्यन्ता अष्टत्रिंशत्परस्मैभाषाः ॥

अत, सातत्यगमने । चिती, संज्ञाने । च्युतिर्, आसेचने ।
प्रच्युतिर्, क्षरणे । मन्थ, विलोडने । कुथि, पुथि, लुथि, मथि,
हिंसार्सक्लेशनयोः । प्रिधू, गत्याम् । प्रिधू, शास्त्रे साङ्गले च । खाद,
भक्षणम् । खद, स्पर्धे हिंसायाञ्च । वद, स्पर्धे । गद, व्यक्तायां वाचि ।
रद, विलेखने । मृद, अव्यक्ते शब्दे । अर्द, गतौ याचने च । नर्द,

गर्द, शब्दे । तर्द, हिंसायाम् । कर्द, कुत्सितेशब्दे । खर्द, दन्तशूके ।
अति, अदि, वन्धने । इदि, परस्मैस्वर्ये । विदि, भिदि, अवयवे ।
गडि, वदनैकदेशे । णिदि, कुत्सायाम् । टुनदि, समृद्धौ । चदि,
आल्हादने दीप्तौ च । चदि, चेष्टायाम् । कदि, क्रदि, क्लदि, आह्वाने
रोदने च । क्लिदि, परिदेवने । शुन्ध, सुडौ । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ कवर्गीयान्ताः ॥

शीकादयः प्रलाघगन्ता द्विचत्वारिंशदात्मनेभाषाः ॥

शीक, सेचने । लोक, दर्शने । श्लोक, संघाते । द्रेक, ध्रेक,
शब्दोत्साहयोः । रेक, शंकायाम् । सेकृ, स्नेकृ, स्रकि, अकि,
प्रलक्लि, गत्यर्थाः । शकि, शंकायाम् । अकि, लक्षणे । वकि,
कौटिल्ये । सकि, भण्डने । ककि, लौल्ये । कुक, वृक,
आदाने । चक, तृप्तौ प्रतिघाते च । ककि, वकि, सकि, अकि, वकि,
ढौक, चौकृ, ष्वक्क, वस्क, मस्क, टिकृ, टौक, तिकृ, तौक, रषि, लषि,
गत्यर्थाः । लषि, भोजननिवृत्तावपि । अषि, वषि, मषि,
गत्याक्षेपे । मषि, कैतवेच । राघृ, लाघृ, द्राघृ, ध्राघृ, सामर्थ्ये ।
द्राघृ, आयामे च । श्लाघृ, कथ्यने । इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ फक्कादयः शिषगन्ता द्विपञ्चाशत् परस्मैभाषाः ॥

फक्क, नीचैर्गतौ । तक्क, हसने । तकि, कच्छजीवने । वक्क,
भषणे । कख, हसने । ओखृ, राखृ, लाखृ, द्राखृ, ध्राखृ, शोषणाऽल-
सर्थयोः । शाखृ, प्रलाखृ, व्याप्तौ । उख, उखि, वख, वखि, मख,
मखि, णख, णखि, रख, रखि, लख, लखि, इख, इखि, ईख, वल्लु,
रगि, लगि, अगि, वगि, मगि, तगि, त्वगि, शगि, अगि, प्रलगि,
इगि, रिगि, लिगि, गत्यर्थाः । रिख, वख, वखि, शिखि, इत्यपि केचित् ।
त्वगि, कंपने च । युगि, जुगि, वुगि, वर्जने घघ, हसने । मषि,
भण्डने । लषि, शोषणे । शिषि, आप्राणे । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ चवर्गीयान्ताः ॥

वर्चादय ईजन्ता एकविंशतिरात्मनेभाषाः ॥

वर्च, दीप्तौ । षच, सेचने सेवने च । लोच, दर्शने । शच, व्यक्तायां वाचि । श्वच, श्वचि, गतौ । कच, बन्धने । कचि, काचि, दौमित्र-
न्धनयोः । मुच, मुचि, कल्कने । मचि, धारणेच्छायपूजनेषु । पचि,
व्यक्तीकरणे । ष्टुच, प्रसादे । ऋज, गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु । ऋजि,
भृजौ, भर्जने । एजृ, भेजृ, भ्राजृ, दीप्तौ । ईज, गतिकुत्सनयोः ।
इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ शुचादयो व्रज्यन्ता द्विसप्ततिः परस्मैभाषाः ॥

शुच, शोके । कुच, शब्देतारे । कुच, क्रुञ्च, गतिकौटिल्या-
ल्लोभावयोः । लुञ्च, अपनयने । अञ्च, गतिपूजनयोः । वञ्च, चञ्च,
तञ्च, त्वञ्च, म्रुञ्च, म्लुञ्च, म्रुच, म्लुच, गत्यर्थः । शुच, ग्लुच, कुज,
खुज, स्तेयकरणे । ग्लुञ्च, प्रसज, गतौ । गुज, गुजि, अव्यक्ते शब्दे ।
अर्च, पूजायाम् । म्लेच्छ, अव्यक्ते शब्दे । लच्छ, लार्च्छ, लक्षणे ।
वाच्छ, इच्छायाम् । आच्छ, आयामे । क्रीच्छ, लज्जायाम् ।
हुच्छ, कौटिल्ये । मुच्छ, मोहसमुच्छाययोः । स्फुच्छ, विष्टतौ ।
युच्छ, प्रसादे । उच्छ, उच्छे । उच्छी, विवासे । ध्रज, ध्रजि,
धृज, धृजि, ध्वज, ध्वजि, गतौ । कूज, अव्यक्ते शब्दे । अर्ज,
प्रर्ज, अर्जने । गर्ज, शब्दे । तर्ज, भर्त्सने । कर्ज, व्यथने । खर्ज,
पूजने च । अज, गतिपूजनयोः । तेज, पालने । खज, मध्ये ।
खजि, गतिवैकल्ये । एजृ, कंपने । टुओस्फूर्जा, वज्रनिर्घोषे ।
क्षि, क्षये । क्षीज, अव्यक्ते शब्दे । लज, लजि, भर्त्सने लाज,
लाजि, भर्त्सने च । जज, जजि, युद्धे । तुज, हिंसायाम् । तुजि,
पालने च । गज, गजि, गृज, गृजि, मुज, मुजि, शब्दार्थः । गज,
मदे च । वज, वज, गतौ । इति क्षिबर्जमुदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ टवर्गीयान्ताः

अट्टादयः शाब्दान्ताः षट्त्रिंशदात्मनेभाषाः ॥

अट्ट, अतिक्रमणहिंसनयोः । वेष्ट, वेष्टने । चेष्ट, चेष्टायां । गोष्ट, लोष्ट, सञ्जाते । घट्ट, चलने । स्फुट, विकसने । अटि, गतौ । वटि, एकचर्यायाम् । मठि, कठि, शोके । मुठि, पालने । हेठ, विवाधायाम् । एठ, च । हिडि, गत्यनादरयोः । हुडि, संघाते । कुडि, दाहे । बडि, विधाजने । सडि, च । झडि, परिभाषणे । पिडि, संघाते । मुडि, मार्जने । तुडि, तोडने । हुडि, वरणे । चडि, कोपे । शडि, रुजायां संघाते च । तडि, ताडने । पडि, गतौ । कडि, मदे । खडि, मग्न्ये । हेट्ट, होट्ट, अनादरे । वाड्ट, आत्माव्ये । द्राड्ट, धाड्ट, विशरणे । शाड्ट, प्रलाधायाम् । इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ शौडादयो गडाग्रन्ता द्वाशीतिः परस्मैभाषाः ॥

शौड्ट, गर्वे । पौड्ट, बन्धने । म्लेड्ट, मेड्ट, म्नेड्ट, उन्मादे । कटे, वर्षावर्णयोः । चटे, इत्येके । अट, पट, गतौ । रट, परिभाषणे । लट, वाल्ये । शट, रुजाविशरणगत्यवसादनेषु । वट, वेष्टने । किट, खिट, चासे । शिट, षिट, अनादरे । जट, झट, संघाते । भट, भृतौ । तट, उच्छ्राये । खट, काञ्चायाम् । णट, नृतौ । पिट, शब्दसंघातयोः । हट, दीप्तौ च । षट, अवयवे । लुट, विलोडने । चिट, परप्रैष्ये । विट, शब्दे । विट, आक्रोशे । हिट, इत्येके । इट, किट, कटी, गतौ । मडि, भूषायाम् । कुडि, वैकल्ये । मुट, पुट, मर्दने । चुडि, अल्पीभावे । मुडि, खंडने । पुडि, चेत्येके । रुटि, लुटि, स्तेये । रुठि, लुठि, इत्येके । स्फुटिर् विशरणे । पठ, व्यक्तायां वाचि । वठ, स्यौल्ये । मठ, मदनिवासयोः । कठ, कृच्छ्रजीवने । रठ, परिभाषणे । हठ, लुतिशठत्वयोः । बलात्कारे चेत्येके ।

रुठ, लुठ, उठ, उपधाते । ऊठ, इत्येके । पिठ, हिंसासंज्ञेशनयोः । शठ, कैतवे च । शुठ, प्रतिधाते । शुठीत्येके । कुठि, च । लुठि, आलस्ये प्रतीधाते च । शुठि, शोषणे । रुठि, लुठि, गतौ । चुड्ड भावकरणे । अड्ड, अभियोगे । कड्ड, कार्कश्ये । क्रौड्ड, विहारे । तुड्ड, तोडने । तूड्ड, इत्येके । हुड्ड, हूड्ड, होड्ड, गतौ । रौड्ड, अनादरे । रोड्ड, लोड्ड, उन्मादे । अड्ड, उद्यमने । लड्ड, विलासे । कड्ड, मदे । कडि, इत्येके । गडि, वदनैकदेशे ॥ इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ तवर्गीयान्तास्तिपादयः दृभ्यन्ताश्चत्वारिंशदात्मनेभाषाः ॥

तिपृ, तेपृ, टिपृ, टेपृ, क्षरणार्थाः । धिपृ, धेपृ, इत्यन्ये । तेपृ, कम्पने । ग्लेपृ, दैन्ये । टुपेपृ, कम्पने । केपृ, गेष्ट, म्लेष्ट च । सेपृ, रेपृ, लेपृ, गतौ । हेपृ, धेपृ च । चपृष, लज्जायाम् । कपि, चलने । रवि, अवि, लवि, शब्दे । लवि, अवसंसने च । कवृ, वर्णे । क्लीवृ, अधाष्ट्ये । क्षीवृ, मदे । शीभृकत्यने । चीभृ च । रेभृ, शब्दे । अभि, रभि, शब्दे । टभिस्कभि, प्रतिबन्धे । जभी, जृभि, गात्रविनासे । शल्भ, कत्यने । बल्भ, भोजने । गल्भ, धाष्ट्ये । अम्भु, प्रसादे । टुम्भु, स्तम्भे । इति तिपिवर्जमुदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ गुपादयः शुभ्यन्ता एकचत्वारिंशत्परस्मैभाषाः ॥

गुपू, रक्षणे । धूप, सन्तापे । जप, जल्प, व्यक्तायां वाचि । जप, मानसे च । चप सांत्वने । प्रप, समवाये । रप, लप, व्यक्तायां वाचि । चुप, मन्दायां गतौ । तुप, तुम्प, लुप, लुंप तुफ, तुम्फ, लुफ, लुम्फ, हिंसार्थाः । पर्प, रफ, रफि, अर्व, पर्व, लर्व, बर्व, मर्व, कर्व, खर्व गर्व, शर्व, षर्व, चर्व, गतौ । चर्व, अर्दने च । कुवि, आच्छादने । लुवि, तुवि, अर्दने । चुवि, वक्तृसंयोगे । पृभु, पृम्भु, हिंसायौ । प्रिभु, प्रिम्भु, इत्येके । शुभ, शुम्भ, भाषणे । हिंसायामित्यन्ये । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथाऽनुनासिकान्ताधिगन्ता दशात्मनेभाषाः ॥

विणि, घुणि, घृणि, ग्रहणे । घुण्, घूर्ण, भ्रमणे । पण, व्यव-
हारे स्तुतौ च । पन, च । भाम, क्रोधे । क्षमूष्, सहने । कम,
कान्तौ । इति धिग्यादय उदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथाणादयः क्रम्यन्तास्त्रिंशत्परस्मैभाषाः ॥

अण, रण, वण, भण, मण, कण, क्राण, व्रण, भ्रण, क्षण,
शब्दार्थाः । ओण, अपनयने । शोण, वर्णगत्योः । ओण, संवाते ।
प्रलोण च, । पैण, गतिप्रेरणश्लेषणेषु । प्रण, वण, शब्दे । कनौ,
दौप्तिकान्तिगतिषु । एन, वन, शब्दे । वन, पन, संभक्तौ । अम,
गत्यादिषु । द्रम, ह्रस्व, मीम, गतौ । मीम, शब्दे च । चम, क्कम,
जसु, क्षम, अदने । क्रम, पादविक्षेपे । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ प्रवर्गीयान्ता अयादयो रेवत्यन्ता सप्तत्रिंशदात्मनेभाषाः

अय, वय, पय, मय, चय, तय, णय गतौ । णय, रक्षणं च ।
दय, दानगतिरक्षणहिंसादानेषु । रय, गतौ । जयौ तन्तुसन्ताने ।
पूयौ, विशरणे, दुर्गन्धे च । क्रूयौ शब्दे उन्दे च । क्षायौ, विधूनने ।
स्फायौ, ओष्यायौ, वृद्धौ । ताय, सन्तानपालनयोः । शल, चलनसं-
वरणयोः । वल, वल्ल, संवरणे संचलने च । मल, मल्ल, धारणे । भल, भल्ल,
परिभाषणहिंसादानेषु । कल, शब्दसंख्यानयोः । कल्ल, अव्यक्ते शब्दे ।
तेवृ, देवृ, देवने । पेवृ, गेवृ, ग्लेवृ, पेवृ, मेवृ स्लेवृ, सेवने । शेवृ,
खेवृ, केवृ, इत्येके । रेवृ, स्रवगतौ । इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ मव्यादयोऽवत्यन्ताः सप्तनवतिः परस्मैभाषाः ॥

सूच्य, ईच्य, ईर्ष्य, इर्ष्यार्थाः । हय, गतौ । शुच्य, चुच्य,
अभिषवे । हृथ्य, गतिकान्त्योः । अल, भूषणयर्थाभिवारणेषु ।
जिफला, विशरणे । मौल, श्मौल, स्त्रौल, क्षौल, निमेषणे ।
पौल, प्रतिष्ठम्भे । णौल, वर्णे । शौल, सजाधौ । कौल, बन्धने ।

कूल, आवरणे । शूल, रुजायाम् । संघाते च । तूल, निष्कर्षे ।
 पूल, संघाते । मूल, प्रतिष्ठायाम् । फूल, निष्पत्तौ । चुल्ल, भाव-
 करणे । फुल्ल, विकसने । चिल्ल, शैथिल्ये भावकरणे च । तिल,
 तिल्ल, गतौ । वेलु, चेलु, केलु, खेलु, ज्वेलु, वेल्ल, चलने ।
 पेलु, फेलु, खिलु, पेलु, शेलु, गतौ । खल, संचलने । खल, संच-
 ये च । गल, अदने । षल, गतौ । दल, विहरणे । ज्वल, ज्वल्ल,
 आशुगमने । खोलु, खोर्षट्, गतिप्रतिघाते । धोर्षट्, गतिचातुर्ये ।
 त्वर, कृशगतौ । क्स्वर, कूर्कने । अभ्र, वभ्र, सभ्र, चर, गत्यर्थाः ।
 चर, भक्षण्ये च । षिवु, निरसने । ञि, जये । जीव, प्राणधारणे ।
 पीव, मीव, तीव, शीव, स्थौल्ये । क्षिवु, क्षेवु, निरसने । उर्वी,
 तुर्वी, युर्वी, दुर्वी, धुर्वी, हिंसार्थाः । गुर्वी, उल्लसने । मुर्वी,
 बन्धने । पुर्व, पर्व, सर्व, पूरणे । चर्व, अदने । भर्व, हिंसायाम् ।
 कर्व, खर्व, गर्व, दर्पे । अर्व, शर्व, पर्व, हिंसायाम् । हवि, व्याप्तौ ।
 प्रिवि, मिवि, णिवि, सेवने । सेचने चेत्येके । हिवि, दिवि, धिवि,
 जिवि, प्रीत्यनार्थाः । रिवि, रवि, धवि, गत्यर्थाः । कृवि, हिंसा-
 करणयोश्च । मव, बन्धने । अवरक्षणगतिक्कान्तिप्रोतितृप्तप्रवगम
 प्रवेशश्रवणस्वाभ्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्तवाप्स्रासिङ्गनहिंसादा-
 नभागवृद्धिषु । इति जयतिवर्जमुदात्ता उदात्तेतः ॥

धावु, गतिशुद्धयोः । उदात्तः स्वरितेदुभयतोभाषः ॥

अथोष्मान्ताः ॥

तत्र धुल्लादयो घुष्यन्ता द्विपञ्चाशदात्मनेभाषाः ॥

धुल्ल, धिल्ल, सन्दीपनक्लेशनजीवनेषु । वृल्ल, वरणे शिचविद्यो-
 पादाने । भिल्ल, भिक्षायामलाभे लाभे च । क्लेश, अव्यक्तायां वाचि ।
 बाधने च । दल्ल, वृद्धौ शीघ्राय च । दील्ल, सौन्दर्योपनयननियम-
 वतादेशेषु । ईल्ल, दर्शने । ईष, गतिहिंसादर्शनेषु । आप, व्यक्तायां
 वाचि । वर्ष, स्नेहने । गेषु, अन्विच्छायाम् । ग्लेषु, दूत्यन्ये ।

पेषु, प्रयत्ने । जेषु, शेषु, एषु, प्रेषु, गतौ रिषु, हेषु, केषु, अव्यक्ते
 शब्दे । काशु, शब्दकुत्सायाम् आसु, दीप्तौ । शासु, रासु, शब्दे ।
 सास, कौटिल्ये । भ्यस, भये । आङः शसि, इच्छायाम् । ग्रसु,
 ग्लसु, अदने । ईह, चेष्टायाम् । बहि, महि, वृद्धौ । अहि,
 गतौ । गर्ह, गल्ह, कुत्सायाम् । बर्ह, बल्ह, प्राधान्ये । वर्ह, बल्ह,
 परिभाषणहिंसाच्छादनेषु । लिह, गतौ । वेह, जेह, बाह,
 प्रयत्ने । द्राह, निद्राक्षये । निक्षेप इत्येके । काशु, दीप्तौ । जह,
 वितर्के । गाह, विलोडने । गृह, गल्हू, ग्रहणे । घुषि, काम्तिकरणे ॥
 इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ घुषिरादयोऽर्हन्त्यन्ता एक नवतिः परस्मैभाषाः ॥

घुषिर्, अविशब्दे । अक्षू, व्याप्तौ । तक्षू, त्वक्षू, तनकरणे ।
 उक्ष, सेचने । रक्ष, पालने । शिक्क्ष, चुम्बने । तृक्ष, पृक्ष, यक्ष, ।
 गतौ । वक्ष, रोषे । संघात इत्येके । मृक्ष, संघाते । म्वक्ष, इत्येके ।
 तक्ष, त्वचने । पक्ष, परिग्रह इत्येके । स्खर्क्ष, आदरानादरयोः ।
 काक्षि, बाक्षि, माक्षि, काङ्क्षायाम् । द्राक्षि, धाक्षि, ध्वाक्षि, घोर
 वासिते च । चूष, पाने । तूष, तुष्टौ । पूष, वृद्धौ । मूष, स्तेये ।
 लूष, रूष, भूषायाम् । शूष, प्रसवे । यूष, हिंसायाम् । जूष, च ।
 भूष, अलंकारे । ऊष, रुजायाम् । ईष, उक्ते । कष, खष, शिष,
 जष, क्षष, शष, वष, मष, कष, रिष, हिंसार्थाः । भष, भर्त्सने ।
 उष, दाहे । जिषु, बिषु, मिषु, सेचने । पुष, पुष्टौ । यिषु, प्रिलषु,
 मुषु, लुषु, दाहे । पृषु, वृषु, मृषु, सेचने । मृषु, सहने च । इतरौ
 हिंसासंक्लेशनयोश्च । घृषु, संघर्षणे । हृषु, अलीके । तुस, क्रस,
 लस, रस, शब्दे । लष, श्लेषणक्रीडनयोः । वस्लू, अदने । जर्ज,
 चर्च, भर्भ, परिभाषणहिंसातर्जनेषु । पिसु, पेसु, गतौ । हसे,
 हसने । गिश, समाधौ । मिश, मश, शब्दे । रोषकृते च । शष,
 गतौ । शश, लुतगतौ । शसु, हिंसायाम् । शंसु, स्तुतौ । चह, परि-

कल्कने । मृह, पूजायाम् । रृह, त्यागे । रृहि गतौ । दृह, दृहि,
वृह, वृहि, वृडौ । वृहि, शस्त्रे च । वृहिर् इत्येके । लृहिर, दुहिर,
उहिर, अर्दने, अर्ह, पूजायाम् ॥ इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ द्युतादयः कृपूपर्यन्ताः पञ्चविंशतिरात्मनेभाषाः ॥

द्युत, दीप्तौ । श्विता, वर्णं । ज्जिमिदा, स्नेहने । ज्जिष्विदा,
स्नेहनमोचनयोः । ज्जिच्छिदा, चेत्येके । रुच, दीप्तावभिप्रीतौ च ।
घुट, परिवर्तने । रुट, लुट, लुठ, उपघाते । शुभ, दीप्तौ । लुभ,
संचलने । श्मभ, तुभ, हिंसायाम् । संसु, ध्वंसु, अंसु, अवसंसने ।
ध्वंसु, गतौ च । भ्रशु, अंसु, अधःपतने, । संभु, विश्वासे । वृत्,
वर्तने । वृधु, वृडौ । शृधु, शब्दकुत्सायाम् । स्यन्दू, प्रस्रवणे । कृपू, सामर्थ्ये
(वृत्) * इति द्युतादय उदात्ता अनुदात्तेतः

अथ घटादयस्त्वरत्यन्ताः षोडशात्मनेभाषाः ॥

घट, चेष्टायाम् । व्यथ, भयसंचलनयोः । प्रथ, प्रख्याने । प्रस,
विस्तारे । मृद, मर्दने । स्खद, स्खदने । क्षजि, गतिदानयोः । दक्ष,
गतिहिंसनयोः । कृप, कृपायां गतौ च । कदि, क्रदि, क्कदि, वैकल्ये ।
वैकल्य इत्येके । कद, क्रद, क्कद, इत्यन्ये । जित्वरा, संभ्रमे ॥ इति
घटादय उदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ ज्वरादयः फ्रस्वाऽन्ताः सप्तपञ्चाशत् परस्मैभाषाः

ज्वर, रोगे । गड, संचने । हेड, वेष्टने । बट, भट, परिभाषणे ।
णट, नृतौ । षक, प्रतीघाते । अक, दृष्टौ । कखे, हसने । रगे, शंकायाम् ।
लगे, संगे । ऋगे, लृहगे, प्रगे, एगे, संवरणे । कगे, नोच्यते । क्रियासामा-
न्यार्थत्वात् अनेकार्थत्वादित्यन्ये । अक, अग, कुटिलायां गतौ ।
कण, रण, गतौ । चण, शण, अण, दाने च । शण, गतावित्यन्ये ।
अथ, कथ, क्रथ, क्कथ, हिंसार्थाः । वन, च । वनु च नोच्यते ।

* संपूर्णो द्युतादिर्वृतादिश्चेत्यर्थः ॥

उवल, दीप्तौ । हल, हल, संचलने । स्मृ, आध्याने । दृ, भये । नृ, नये । स्था, पाके । सारणतोषणनिशामनेषु स्था । कंपने, चलिः । छदि रुर्जने । जिह्वोन्मथने, लडिः । मदौ, हर्षग्लेपनयोः । ध्वन, शब्दे । दलि, बलि, स्खलि, रणि, ध्वनि, वपि, क्षप्रयश्च । स्वन, अवतंसने । घटादयो मितः । जनीजृप्कसुरंजोऽमन्ताश्च । उवल हल हल नमासनुपसर्गाद्वा । ग्लास्नावनुवमां च । न कस्यमिच-
माम् । शसोदर्शने । यमो, परिवेषणे । खदिरवपरिभ्यां च । फण, गतौ । वृत् * । इति उवरादय उदात्ता उदात्तेतः

राजु, दीप्तौ । उदात्तः स्वरितेदुभयतोभाषः ॥

टुभ्वाजु, टुभ्वाशु, टुभ्लाशु दीप्तौ । उदात्ता अनुदात्तेत आत्मनेभाषाः ॥

अथ स्यमादयः क्षुरत्यस्ताः सप्तविंशतिः परस्मैभाषाः ॥

स्यमु, खन, ध्वन, शब्दे । प्रम, एम, अवैक्ये । उवल, दीप्तौ चल, कंपने । जल, घातने । टल, टूल, वैक्ये । छल, स्थाने हल, विलेखने । गल, गन्धे । बन्धन इत्येके । पल, गतौ । बल, प्राणने धान्यावरोधे च । पुल, सहत्वे । कुल, संस्थाने बन्धुषु च । शल, हुल, पत्ल, गतौ । कथे, निष्पाके । प्रथे, गतौ । मथे, विलोडने । टुवम, उद्गिरणे । भमु, चलने । क्षर, संचलने । क्षुर, संचये । इति स्यमादय उदात्ता उदात्तेतः ।

अथ द्वावमुदात्तेतौ ॥

षह, मर्षणे । उदात्तोऽनुदात्तेत् ॥

रमु, क्रीडायाम् । अनुदात्तोऽनुदात्तेत् ॥

अथ षदादयः कसंताः सप्त परस्मैभाषाः ॥

षट्, विशरणगत्यवसादनेषु । शट्, शातने । क्रुश, आह्वाने रोदने चाकुच, संपर्चनकौटिल्यप्रतिष्ठभवि लेखनेषु । बुध, अवगमने ।

* घटादिर्गणः समाप्तः ।

रुहबीजजन्मनिप्रादुर्भावेच । कस, गतौ । कुचादय उदात्ताऽउदात्ते
तोऽरुहिस्त्वनुदात्तः ॥ वृत् ॥ इति ज्वलादिर्गणः ॥

अथ हिक्कादयो गूह्यन्ताः पञ्चचत्वारिंशदुभयतोभाषाः ॥

हिक्क, अव्यक्ते शब्दे । अंचु, गतौ याचने च । अचु, इत्येके, अचि,
इत्यपरे । टुयाचु, याञ्चायाम् । रेटु, परिभाषणे । चते, चदे,
याचने । प्रोषु, पर्याप्तौ । मिटु, मेटु, मेधाहिंसनयोः । मेधु, संगमे
च । मिधु, मेधु, मेधाहिंसयोरित्येके । मिधु, मेधु, इत्यन्ये । सिटु, णेटु,
कुत्सासन्निकर्षयोः । शूधु, मूधु, उद्धने । बुधिर, बोधने उर्बुधिर-
निशामने । वेणु, गतिज्ञानचिन्तानिशासनवादिष्वग्रहणेषु । वेनु,
इत्येके । खनु, अवदारणे । चीवृ, आदानसंवरणयोः । चायु, पूजा-
निशामनयोः । व्यय, गतौ । दाशु, दाने । भेषु, भये । गतावित्येके
भेषु, श्लेषु, गतौ । अस, गतिदौप्रदादनेषु । अषेत्येके । स्पश, बाध-
र्शनयोः । लष, कान्तौ । चष, भक्षणे । छष, हिंसायाम् भक्ष,
आदानसंवरणयोः । भक्ष, भूलक्ष, अदने । लक्ष, च । दासु, दाने ।
माहृ, साने । गुहृ, संवरणे । इति हिक्कादय उदात्ताः स्वरितेतः ॥

अथाऽजन्ताः शिञ्जादयो नयत्यन्ताः पञ्चोभयतोभाषाः ॥

शिञ्, सेवायाम् । उदात्तः स्वरितेत् । भृञ्, भरणे । हृञ्,
हरणे । धृञ्, धारणे । णीञ्, प्रापणे । इति भरत्यादयोऽनुदात्ताः
स्वरितेतः ॥

अथ घेटादयो जयत्यान्ताः षट्चत्वारिंशत्परस्मैभाषाः ॥

घेट्, पाने । ग्लै, श्लै, हर्षक्षये । द्यै, खप्ने । घ्रै, दप्तौ ।
ध्यै, चिन्तायाम् । रै, शब्दे । स्तयै, द्यै, शब्दसंघातयोः । खै, खदने ।
क्षै, जै, पै, क्षये । कै, गै, शब्दे । श्रै, श्रै, पाके । पै, ओषै, शोषणे । छै,
वेष्टने । ण्यै, वेष्टने । शोभायां चेत्येके । दैप्, शोधने । पा, पाने ।
प्रा, गन्धोपादाने । धमा, शब्दाग्निसंयोगयोः । छा, गतिनिवृत्तौ ।
स्ना, अभ्यासे । दाण्, दाने । हृ, कौटिल्ये । खृ, शब्दोपतापयोः ।

स्मृ, चिन्तायाम् । हृ, संवरणे । सृ, गतौ । षट्, गतिप्रापणयोः । गृ, घृ, सेचने । घृ, हृर्हने । स्तृ, गतौ । षु, प्रसवैश्वर्ययोः । श्रु, श्रवणे । घृ, स्तैर्ये । दु, दृ, गतौ । जि, जि, अभिभवे । इति धेटादयोऽनुदात्ताः ॥

अथ षिङ्ङादयो ङीङ्ङाङितः सप्तविंशतिरात्मनेभाषाः ॥

षिङ्, ईषद्वसने । गुङ्, अव्यक्ते शब्दे । गाङ्, गतौ । कुङ्, घुङ्, उङ्, ङुङ्, शब्दे । क्रुङ्, खुङ्, गुङ्, ङुङ्, चेत्याहुरन्ये । च्युङ्, ज्युङ्, जुङ्, प्रुङ्, लुङ्, गतौ । क्लुङ् इत्येके । रुङ्, गतिरेषणयोः । धृङ्, अवध्वंसने । मेङ्, प्रणिदाने । देङ्, रक्षण्ये । श्यैङ्, गतौ । प्यैङ्, वृद्धौ । वैङ्, पालने ।

इति षिङ्प्रभृतयोऽनुदात्ताः ॥

पूङ्, पवने । मूङ्, बन्धने । ङीङ्, विहायसागतौ । इति पूङादय उदात्ताः ॥

तृ, लवनसंतरणयोः । उदात्तः परस्मैभाषः ॥

अथ गुपादयो दृहृत्यन्ता अष्टावात्मनेभाषाः ॥

गुप, गोपने । तिज, निशाने । मान, पूजायाम् । वध, बन्धने । गुपादयश्चत्वार उदात्ता अनुदात्तेतः ॥

रभ, रामस्ये । डुलभष्, प्राप्तौ । ष्वञ्ज, परिष्वङ्गे । हृद, पुरीषोत्सर्गे । रभादयश्चत्वारोऽनुदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ ष्विदादयो मेहृत्यन्ताः पञ्चदश परस्मैभाषाः ॥

जिष्विदा, अव्यक्ते शब्दे । उदात्तः । स्कन्दिर, गतिशोषणयोः । यभ, मैथुने । णम, प्रहृत्वे शब्दे च । गम्लू, सृष्टू, गतौ । यम, उपरमे । तप, सन्तापे । त्यज, हानौ । षंज, संगे । दृशिर, प्रेक्षण्ये । दंश, दशने । कृष, विलेखने । दह, भस्मीकरणे । मिह, सेचने । स्कन्दादयोऽनुदात्ताः । इति ष्विदादय उदात्तेतः ॥

अथैकः परस्मैभाषः ॥

कित, निवासि रोगापनयने च । उदात्तेत् ॥

अथ द्वावुभयतोभाषौ ॥

दान, खंडने । शान, तेजने । स्वरितेतौ ॥

अथ पचादयो बह्व्यन्ता नवोभयतोभाषाः ॥

डुपचष्, प्राके । षच, समवाये । भज, सेवायाम् । रंज, रागे ।
शप, आक्रोशे । त्विष, दौष्टौ । यज, देवपूजासंगतिकरणदानेषु ।
डुवप, बीजसन्ताने छेदने च । बह्, प्रापणे ॥ इति पचादयो-
ऽनुदात्ताः स्वरितेतः सचतिस्तूदात्तः ।

अथैकः परस्मैभाषः ।

वस, निवासि । उदात्तेदनुदात्तः ।

अथ व्येजादयस्त्रय उभयतोभाषाः ।

वेज्, तन्तुसन्ताने । व्येज् संवरणे । ह्वेज्, स्पृष्टीयां शब्दे
च । व्येजादयोऽनुदात्ताः ।

अथ द्वौ परस्मैभाषौ ।

वद, व्यक्तायां वाचि । दृओन्वि, गतिवृद्धयोः इत्युदात्तौ । वृत् ।
इति यजादिर्गणः समाप्तः ।

इति शब्दविकरणा भ्यादयः समाप्ताः ॥

अथाऽदादिगणः ।

—३:३:६—

अथ द्वौपरस्मैभाषौ ।

अद, भक्षणे । हन, हिंसागत्योः । अनुदात्तावुदात्तेतौ ॥

अथ चत्वार उभयतोभाषाः ।

द्विष, अप्रीतौ । दुह, प्रपूरणे । दिह, उपचये । लिह, आस्वा-
दने । द्विषादयोनुदात्ताः खरितेतः ।

अथैक आत्मनेभाषः ॥

चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि । अयं दर्शनेऽपि । अनुदात्तेतोऽनुदात्तेत् ॥

अथ पृच्यन्ताः षोडशात्मनेभाषाः ।

ईर, गतौ कंप्ने च । ईड, स्तुतौ । ईश, ऐश्वर्ये । आस, उपवे-
शने । आडः, शासु, इच्छायाम् । वस, आच्छादने । कसि, गति,
शासनयोः । कस इत्येके । कश, इत्यन्ये । णिसि, चुंबने । णिजि, शुद्धौ ।
शिजि, अव्यक्ते शब्दे । पिजि, वर्णे । पूजौत्येके । वृजी, वर्जने ।
पूची, संपर्चने । इतीरादय उदात्ता अनुदात्तेतः ॥

अथ हावात्मनेभाषौ ॥

षूङ्, प्राणिगर्भविमोचने । शीङ्, स्त्रमे । उदात्तौ ॥

अथ पञ्च परस्मैभाषाः ॥

यु, मिश्रणे अमिश्रणे च । णु, स्तुतौ । रु, शब्दे । टु, क्षु, शब्दे ।
क्षु, तेजने । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथैक उभयतोभाषः ॥

जृञ्, आच्छादने । उदात्तः ॥

अथ पञ्च परस्मैभाषाः ॥

ष्णु, प्रस्रवणे । द्यु, अभिगमने । षु, प्रसवैश्वर्ययोः । कु, शब्दे । तु, गतिवृद्धिर्हिंसासु । इत्यनुदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ द्वावुभयतोभाषौ ॥

ष्टुञ्, स्तुतौ । ब्रूञ्, व्यक्तायां वाचि । इत्यनुदात्तौ ॥

अथैकोनविंशतिः परस्मैभाषा इङ्त्वात्मनेभाषः ॥

इण्, गतौ । इङ्, अध्ययने । इक्, स्मरणे । वी, गतिव्याप्तिप्र-
जनकान्त्यसनखादनेषु । या, प्रापणे । वा, गतिगन्धनयोः । भा, दीप्तौ ।
ष्णा, शौचे । आ, पाके । द्रा, कुत्सायां गतौ च । प्सा, भक्षणे । प्रा,
रक्षणे । रा, दाने । ला, आदाने । दाप्, लब्धने । ख्या, प्रकथने । प्रा,
पूरणे । मा, माने । वच, परिभाषणे । इत्यनुदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ चत्वारः परस्मैभाषाः ॥

विद्, ज्ञाने । अस, भुवि । मृजूष, शुद्धौ । रुदिर्, अशुविमो-
चने । इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथैकः परस्मैभाषः ॥

जिष्ण्वप्, शये । उदात्तेदनुदात्तः

अथ सप्त परस्मैभाषाः ।

श्वस, प्राणने । अन, चाजक्ष, भक्षहसनयोः । जागृ, निद्राक्षये ।
दरिद्रा, दुर्गतौ । चकासू, दीप्तौ । शासु, अनुशिष्टौ । इत्युदात्ता
उदात्तेतः ।

अथ द्वावात्मनेभाषौ ।

दीधीङ्, दीप्तिदेवनयोः । वेवीङ्, वेतिना तुल्ये । इत्युदात्तौ ।

अथ चयः परस्मैभाषाः ।

प्रस, प्रस्ति, खप्ते । वश, कान्तौ । इत्युदात्ताः उदात्तेतः ।
चर्करी तं च ।

अथैक आत्मनेभाषः ।

ऋड्, अपनयने । इत्यनुदात्तः ।

इति लुग्विकरणा अदादयः ॥

अथ जुहोत्यादिर्गणः

—३:६:४—

अथ चयः परस्मैभाषाः ।

हु, दानादनयोः । आदाने चेत्येके । जिभी, भये । हृ, लज्जायाम् ।
जुहोत्यादयो ऽनुदात्ताः ।

अथैकः परस्मैभाषः ।

पृ, पालनपूर्णयोः उदात्तः । ऋस्वान्तोयमित्येके ।

अथैक उभयतोभाषः ।

डुभृज्, धारणपोषणयोः । अनुदात्तः ॥

अथ हावात्मनेभाषौ ।

माङ्, माने शब्दे च । ओहाङ्, गतौ ।

अथैकः परस्मैभाषः ।

ओहाक्, त्यागे । अनुदात्तः ॥

अथ हावुभयतोभाषौ ॥

डुदाज्, दाने । डुधाज्, धारणपोषणयोः । अनुदात्तौ ।

अथ त्रय उभयतोभाषाः ।

णिजिर्, शौचपोषणयोः । विजिर्, पृथग्भावे । विष्लृ, व्याप्तौ ।
इति णिजादयोऽनुदात्ताः स्वरितेः ॥

अथ गणान्ताः परस्मैभाषाप्रकृतसाप्रचैकादश ॥

घृ, क्षरणदीप्तयोः । ऋ, प्रसह्यकरणे । ऋ, सृ, गतौ । इति प्रादय
प्रचत्वारोऽनुदात्ताः ॥

भस, भर्त्सनदीप्तयोः । उदात्त उदात्तेत् । कि, ज्ञाने ।
अनुदात्तः । तुर, त्वरणे । धिष, शब्दे । धन, धान्ये । जन, जनने ।
तुरादय उदात्ता उदात्तेतः । गा, स्तुतौ अनुदात्तः । कृन्सि
वृत् । इति श्लु विकरणा जुहोत्यादयः ॥

अथ द्विर्वादिर्गणः ॥

—:ॐ:—

अथ द्विवादयः षड्विंशतिः परस्मैभाषाः ॥

द्वि, क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्त्रप्रका-
न्तिगतिषु । ष्वि, तन्तुसन्ताने । स्त्रि, गतिशोषणयोः । ष्ठि, वृ,
निरसने । स्नुसु, अदने । आदान इत्येके । अदर्शन इत्यपरे ।
स्नसु, निरसने । कसु, क्षरणदीप्तयोः । व्युष, दाहे । सुष, च ।
नृती, गात्रविक्षेपे । तसी, उद्वेगे । कुष, पूतीभावे । पुष, हिंसा-
याम् । गुष, परिवेष्टने । क्षिप, प्रेरणे । अनुदात्तः । पुष्प, विकसने ।
तिम, तीम, छिम, छीम, आर्द्रिभावे । ब्रीड, चोदने लज्जायाञ्च
इष, गतौ । षह, षुह, चकथे । जृष, भृष, वयोहानौ । इति
द्विवादय उदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ द्वावात्मनेभाषौ ॥

षूङ्, प्राणिप्रसवे । दूङ्, परितापे । इत्युदात्तौ ॥

अथ दीङादय एकादश आत्मनेभाषाः ॥

दीङ्, क्षये । डीङ्, विहायसा गतौ । धीङ्, आधारे । मीङ्, हिंसायाम् । रीङ्, अवगणे । लीङ्, श्लेषणे । व्रीङ्, वृणोत्यर्थे । (वृत्) स्वादय ओदितः । पीङ्, पाने । माङ्, माने । ईङ्, गतौ । प्रीङ्, प्रीणने । इति दीङादय अनुदात्ता डीङ् तूदात्तः ॥

अथ चत्वारः परस्मैभाषाः ॥

शो, तनूकरणे । छो, क्लेदने । षो, अन्तकर्मणि । दो, अवखण्डने । श्यतिप्रभृतयोऽनुदात्ताः ॥

अथ पंचदशात्मनेभाषाः ॥

जनी, प्रादुर्भावे । दीप्ती, दीप्तौ । पूरी, अप्यायने । तूरी, गतित्वरणहिंसनयोः । धूरी, गूरी, हिंसागत्योः । घूरी, जूरी, हिंसावयोहान्योः । शूरी, हिंसास्तंभनयोः । चूरी, दाहे । तप, ऐश्वर्ये वा वृत्तु, वरणे । क्लिश, उपतापे । काशू, दीप्तौ । वाशू, शब्दे । इति तपिर्वर्जमुदात्ता अनुदात्तेतः ।

अथ द्वावुभयतोभाषौ ।

मृष, तितिक्षायाम् । ईशुचिर्, पूतीभावे । उदात्तौ स्वरितेतौ ।

अथ त्रय उभयतोभाषाः ।

णह, बन्धने । रंज, रागे । शप, आक्रोशे । इत्यनुदात्ताः स्वरितेतः ।

अथैकादशात्मनेभाषाः ।

पद, गतौ । खिद, दैन्ये । विद, सत्तायाम् । बुध, अवगमने । युध, संप्रहारे । अनोसध, क्लामे । अण, प्राणने । उदात्तः । मन, ज्ञाने । युज, ससाधौ । वृज, विसर्गे । लिश, अल्यीभावे । इत्यनुदात्ता अनुदात्तेतः ।

अथ गणान्ता एकसप्ततिः परस्मैभाषाः ।

राधोऽकर्मकादृद्धावेव । व्यध, ताडने । पुष, पुष्टौ । शुष, शो-
षणे । तुष, प्रीतौ । दुष, वैकृत्ये । श्लिष, आलिंगने । शक, विभा-
षितो मर्षणे । जिष्विदा, गात्रप्रक्षरणे । क्रुष, क्रोधे । क्षुष, बुभुक्षा-
याम् । शुष, शौचे । पिधु, संराद्धौ । इत्यनुदात्ता उदात्तेतः । रध,
हंसासंराध्योः । णश, अदर्शने । तप, प्रीणने । दप, हर्षणमोह-
योः । द्रुह, जिघांसायाम् । मुह, वैचित्ये । सुह, उद्गिरणे । णिह,
प्रीतौ । वृत् रधादयः । इत्युदात्ता उदात्तेतस्तृपिहपीत्वनुदात्तौ ।

अथ शमादयः ॥

शमु, उपशमे । तमु, कांक्षायाम् । दमु, उपशमे । अमु, तपसि
दे च । भमु, अनवस्थाने । क्षमूष, सहने । क्लमु, ग्लानौ ।
दौ, हर्षे । इत्यष्टौ शमादयः । असु, क्षेपणे । यसु, प्रयत्ने । जसु,
प्रेक्षणे । तसु, उपक्षये । दसु, च । वसु, स्तम्भे । वशादिरित्येके ।
पेद्यादिर्दन्त्यान्तो व्यस् इत्यग्ये । अयकारं बुस् इत्यपरे । व्युष,
भागे । लुष, दाहे । विस, प्रेरणे । कुस, संश्लेषणे । बुस, उत्सर्गे ।
उ, खण्डने । मसी, परिणामे । समी इत्येके । लुठ, विलोडने ।
व, समवाये । भृशु, भ्रंशु, अधःपतने । वृश, वरणे । कृश, तनू-
णे । अिटष, पिपासायाम् । हृष, तुष्टौ । रुष, रिष, हिंसा-
म् । डिप, क्षेपे । कुप, क्रोधे । गुप, व्याकुलत्वे । युपु, रुपु, लुपु,
मोहने । लुभ, गार्ह्ये । क्षुभ, संचलने । णभ, तुभ, हिंसायाम् ।
दू, आर्द्राभावे । जिमिदा, स्नेहने । जिह्विदा, स्नेहनमोचनयोः ।
मु, वृद्धौ । गृधु, अभिकांक्षायाम् । वृत् । इत्युदात्ता उदात्तेतः ।

इति श्यन्विकरणा दिवादयः ॥

अथ स्वादिर्गणः ॥

—:—

अथ स्वादयो दशोभयतोभाषाः ।

षुञ्, अभिषवे । षिञ्, बन्धने । शिञ्, निशाने । डुमिञ्, प्रक्षेपणे । चिञ्, चयने । स्तुञ्, आच्छादने । ठञ्, हिंसायाम् । वृञ्, वरणे । धुञ्, कंपने । दीर्घान्तोप्रीत्येके । इति वृञ् वर्ज-
मनुदात्ताः ।

अथ नव परस्मैभाषाः ।

टुट्, उपतापे । हि, गतौ वृद्धौ च । पृ, प्रीतौ । स्पृ, प्रीति
सेवनयोः । प्रीतिचलनयोरित्यग्ये । स्मृ, इत्येके । आसृ, व्याप्तौ ।
शक्लृ, शक्तौ । राध, साध, संसिद्धौ । इत्यनुदात्ताः ।

अथ द्वावात्मनेभाषौ ।

अशूङ् व्याप्तौ संघाते च । ष्टिष, आस्कन्दने । इत्युदात्तावनु-
दात्तेतौ ।

अथागणान्ताः षोडश परस्मैभाषाः ।

तिक, तिग, गतौ च । षष, हिंसायाम् । जिधृषा, प्रागल्भ्ये ।
दंभु, दंभने । ऋधु, वृद्धौ । छन्दसि । तृप, प्रीणन इत्येके । अह,
व्याप्तौ । दध, घातने पालने च । चमु, भक्षण्ये । रि, क्षि, चिरि,
जिरि, दाशु, द, हिंसायाम् । इत्युदात्ता उदात्तेतः ।

वृत् । इति श्रुविकरणाः स्वादयः ॥

अथ तुदादिर्गणः ।

—३:३:६—

अथ षड्भयतोभाषाः ।

तुद, व्यथने । गुद, प्रेरणे । दिश, अतिसर्जने । भस्ज, पाके क्षिप, प्रेरणे । कृष, विलेखने । इत्यनुदात्ताः स्वरितेतः ।

अथैकः परस्मैभाषः ।

ऋषी, गतौ । उदात्त उदात्तेत् ।

अथ चत्वार आत्मनेभाषाः ।

जुषी, प्रीतिसेवनयोः । ओषिजी, भयचलनयोः । ओलजी, ओलस्जी, व्रीडायाम् । इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ।

अथ व्रश्चादयश्चतुर्दशोत्तरशतं परस्मैभाषाः ।

ओव्रश्चू, छेदने । व्यच, व्याजीकरणे । उच्छि, उज्छे । उच्छी, विवासे । ऋच्छ, गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभावेषु । मिच्छ, उत्क्षेपे । जर्ज, चर्च, भर्भ, परिभाषणभर्त्सनयोः । त्वच, संवरणे । ऋच, स्तुतौ । उज, आर्जवे । उज्भ, उत्सर्गे । लुभ, विमोहने । रिफ, कथनयुद्धनिन्दाहिंसादानेषु । रिह, इत्येके । तृप, तृप, तृप्ता । तृफ, तृफेत्येके । तुप, तुंप, तुफ, तुंफ, हिंसायाम् । दृफ, दृफ, उत्क्षेपे । दृफ, इत्यन्ये । ऋफ, ऋफ, हिंसायाम् । गुफ, गुंफ, ग्रन्थे । उभ, उंभ, पूरणे । शुभ, शुंभ, शोभार्थे । दृभी, ग्रन्थे । चृती, हिंसाग्रन्थनयोः । विध, विधाने । जुड, गतौ । जुन, इत्येके । मृड, सुखने । पृड, च । पृण, प्रीणने । वृण, च । मृड, हिंसायाम् । तुण, कौटिल्ये । पुण, कर्मणि शुभे । मुण, प्रतिज्ञाने । कुण, शब्दोपकरणयोः । शुन, गतौ । दृण, हिंसागतिकौटिल्येषु । घृण, घूर्ण, भ्रमणे । घुर, ऐश्वर्यदीप्तोः । कुर, शब्दे । खुर, छेदने । मुर, संचेष्टने । क्षुर,

विलेखने । घुर, भीमार्थशब्दयोः । पुर, गमने । वृहू, उद्यमने ।
 वृहू, इत्येके । तृहू, पृहू, तृहू, हिंसार्थाः । इषु, इच्छायाम् ।
 मिष, स्पृह्यायाम् । किल, शैत्यक्रीडनयोः । तिल, स्नेहे । चिल,
 वसने । चल, विलसने । इल, स्वप्नक्षेपणयोः । विल, संवरणे ।
 विल, भेदने । णिल, गहने । हिल, भावकरणे । शिल, षिल,
 उज्ज् । मिल, श्लेषणे । लिख, अक्षरविन्यासे । कुट, कौटिल्ये ।
 पुट, संश्लेषणे । कुच, संकोचने । गुज, शब्दे । गुड, रक्षायाम् ।
 डिप, क्षेपे । कुर, छेदने । स्फुट, विकसने । मुट, आक्षेपप्रसर्दनयोः ।
 चुट, छेदने । तुट, कलहकर्मणि । चुट, कुट, छेदने । जुड, बन्धने ।
 कड, मदे । लुठ, संश्लेषणे । लुट, इत्येके । कृड, घनत्वे । कुड,
 वाल्ये । पुड, उत्सर्गे । घुट, प्रतिघाते । तुड, तोडने । धुड, स्फुड,
 संवरणे । खुड, कुड, इत्येके । स्फुर, स्फुरणे । स्फर, इत्येके । स्फुल,
 संचलने । स्फुड, चुड, व्रुड, संवरणे । क्रुड, भृड, निमज्जने ।
 इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथैक आत्मनेभाषः ॥

गुरी, उद्यमने । इत्युदात्तोऽनुदात्तेत् ।

अथ पंच परस्मैभाषाः ॥

गू, स्तवने । धू, विधूनने । गु, पुरीषोत्सर्गे । ध्रु, गतिस्थैर्ययोः ।
 ध्रुव, इत्येके । इत्याद्यावुदात्तावन्त्याश्चानुदात्ताः ।

अथ द्वावात्मने भाषौ । कूड, शब्दे । कुड, शब्द इत्येके । इत्युदात्तौ ।

(वृत्) इति कुटादिगणः समाप्तः ॥

अथ द्वावात्मनेभाषौ ॥

पृड, व्यायामे । मृड, प्राणत्यागे । इत्यनुदात्तौ ॥

अथ सप्त परस्मैभाषाः ॥

—:—:—

रि, पि, गतौ । धि, धारणे । क्षि, निवास गत्योः । इत्यनुदात्ताः
पू, प्रेरणे । कृ, विक्षेपे । गृ, निगरणे । इत्युदात्ताः ॥

अथ द्वावात्मनेभाषौ ॥

दृङ्, आदरे । धृङ्, अनवस्थाने । इत्यनुदात्तौ ॥

अथ षोडश परस्मैभाषाः ॥

प्रच्छ, क्षीप्सायाम् । वृत् । किरादयो वृतः ॥

सृज, विप्रर्गे । टुमस्जो, शुडौ । रजो, भङ्गे । भुजो, कौटिल्ये ।
कुप, स्पर्शे । रुश, रिश, हिंसायाम् । लिश, गतौ । स्पृश, संस्पर्शने ।
विच्छ, गतौ । विश, प्रवेशने । मृश, आसर्शने । णुद, प्रेरणे ।
षद्लृ, विशरणगत्यवसादनेषु । शद्लृ, शातने । इत्यनुदात्ता उदात्ते
तेतो विच्छिस्तुदात्तः ॥

अथ षड्भयतोभाषाः ॥

मिल, संगमे । मुच्लृ, मोचने । लुप्लृ, छेदने । विद्लृ, लाभे ।
लिप, उपदेहे । पिच, क्षरणे । इत्यनुदात्ताः खरितैतो मिलिस्तुदात्तः ॥

अथ त्रयः परस्मैभाषाः ॥

कृती, छेदने । खिद, परिघातने । पिश, अवयवे । इत्युदात्ता उदात्तेतः
खिदिस्वनुदात्तः । वृत् ।

इति शविकरणास्तुदादयः ॥

अथ रुधादिर्गणः ॥

—०—

अथ नवोभयतोभाषाः ॥

रुधिर्, आवरणे । भिदिर्, विदारणे । छिदिर्, द्वैधीकरणे ।
रिचिर्, विरेचने । विचिर्, पृथग्भावे । क्षुदिर्, संप्रेषणे । युजिर्,
योगे । उच्छृदिर्, दौष्टिदेवनयोः । उत्तृदिर्, हिंसानादरयोः ।
इत्यनुदात्ताः स्वरितेतः कृदितृदी तूदात्तौ ।

अथैकः परस्मैभाषः ।

कृती, क्लेदने । इत्युदात्त उदात्तेत् ।

अथैक आत्मनेभाषः ।

जिह्वी, दीप्तौ । उदात्तोऽनुदात्तेत्

अथ हावात्मनेभाषौ ।

खिद, दैग्ये । विद, विचारणे । इत्यनुदात्तावनुदात्तेतौ ।

अथ द्वादश परस्मैभाषाः ॥

शिष्टृ, विशेषणे । पिष्टृ, संचूर्णने । भंजो, आमर्दने । भुज,
पालनाभ्यवहारयोः । तृह, हिंसि, हिंसायाम् । उन्दी, क्लेदने । अञ्जु,
व्यक्तिस्वच्छणकान्तिगतिषु । तंचू, संकोचने । ओविजी, भयचल-
नयोः । वृजी, वर्जने । पृची, संपर्के । इत्युदात्ता उदात्तेतः ।
आद्याश्चत्वारस्त्वनुदात्ताः । वृत् ।

इति शनम्बिकरणा रुधादयः ॥

अथतनादिर्गणः ॥

—३:३:६—

अथसप्तोभयतोभाषाः ।

तनु, विस्तारे । षणु, दाने । क्षणु, हिंसायाम् । क्षिणु, च ।
जृणु, गतौ । तृणु, अदने । घृणु, दौष्टौ । इत्युदात्ताः स्वरितेतः ।

अथ द्वावात्मनेभाषौ ।

वनु, याचने । मनु, अवबोधने । इत्युदात्तावनुदात्तेतौ ।

अथैक उभयतोभाषः ।

डुञ्ज्, करणे । अनुदात्तः । वृत्

इत्युविकरणास्तनादयः ॥

अथ क्यदिर्गणः ।

—३:३:—

अथ सप्तोभयतोभाषाः ।

डुक्तीज्, द्रव्यविनिमये । प्रीज्, तर्पणे कान्तौ च । म्रीज्,
पाके । मीज्, हिंसायाम् । पिज्, बन्धने । स्कुज्, आप्रवणे ।
युज्, बन्धने । इत्यनुदात्ताः ।

अथ नवोभयतोभाषाः ।

क्लूज्, शब्दे । द्रूज्, हिंसायाम् । पूज्, पवने । मूज्,
बन्धने । लूज्, क्लेदने । स्तूज्, आच्छादने । कृज्, हिंसायाम् । वृज्,
वरणे । धूज्, कम्पने । इत्युदात्ताः ।

अथ आद्यो गृन्थात्यन्तास्त्रयोदश परस्मैभाषाः ।

ग्रृ, हिंसायाम् । पृ, पालनपूरणयोः । वृ, वरणे । स्तृ, हिंसायाम् भृ, भरणे । भृ, भर्त्सने । जृ, वयोहानौ । भृ, इत्येकोदृ, विदारणे । धृ, इत्यन्ये । नृ, नयाम्, हिंसायाम् । ऋ, गतौ । गृ, शब्दे । इति आद्य उदात्ताः ।

अथ दश परस्मैभाषाः ।

ज्या, वयोहानौ । व्री, वरणे । री, गतिरेषणयोः । ली, श्लेषणे । व्ली, वरणे । स्त्री, गतौ । वृत् । इति ष्वादयः ॥

क्षीप्, हिंसायाम् । म्नी, भये । ज्ञा, अवबोधने । बन्ध, बन्धने । इति ज्यादयोऽनुदात्ताः ।

अथैक आत्मनेभाषः ।

वृङ्, संभक्तौ । इत्युदात्तः । इति त्वादयः ।

अथ पञ्चविंशतिः परस्मैभाषाः ।

अन्य, विसोचनप्रतिहर्षयोः । मन्य, विलोडने । अन्य, ग्रन्थ, संदर्भे । कुन्य, संश्लेषणे । मृद्, लोदे । मृड, च । मृड, सुखे च । गुध, रोषे । कुप्र, निष्कर्षे । क्षुभ, सञ्चलने । गृभ, तुभ, हिंसायाम् । क्षिशू, विवाधने । अश, भोजने । उध्रस, उज्ज्हे । ईष, आभीक्ष्ण्ये । विष, विप्रयोगे । प्रुष, लुष, स्नेहनसेचनपूरणेषु । पुष, पुष्टौ । मुष, स्तेये । खच, भूतप्रादुर्भावे । खत्र, इत्येके । हिठ, च । इति अन्यादय उदात्ता उदात्तेतः ।

अथैक उभयतोभाषः ।

ग्रह, उपादाने । इत्युदात्तः स्वरितेत् । वृत् ।

इति प्रनाविकरणाः क्रयादयः ॥

अथ चुरादिर्गणः

—*—

अथ चुरादयस्तुष्यन्तास्त्रिषष्ट्युत्तरमेकशतमुदात्तेतः

परस्मैभाषाः ॥

चुर, स्तेये । चिति, स्मृत्यम् । यत्रि, सङ्कोचने । स्फुडि, परि-
हासे । लक्ष, दर्शनांकनयोः । कुट्टि, अनृतभाषणे । लड, उपसे-
वायाम् । मिटि, स्नेहने । ओलडि, उत्क्षेपणे । जल, अपवा-
रणे लज्जीत्येके । पीड, अवगाहने । नट, अवस्पन्दने । अथ, प्रयत्ने
प्रस्थान इत्येके । वध, संयमने । जर्ज, बलप्राणनयोः । पक्ष, परिग्र-
हे । वर्ण, वर्णने, वर्ण, चूर्ण, प्रेरणे । प्रथ, प्रख्याने । पृथ, प्रक्षेपे ।
पथ, इत्येके । षम्ब, संबन्धने । शम्ब, च । साम्ब, इत्येके । भक्ष, अदने ।
कुट्ट, क्लेदनभर्त्सनयोः । पूरण इत्येके । चुट्ट, चुट्ट, अल्पीभावे ।
अट्ट, पुट्ट, अनादरे । लुण्ठ, स्तेये । शठ, श्वठ, असंस्कारगत्योः ।
श्वठि, इत्येके । पिज, वुजि, तुजि, पिजि, लजि, लुजि, हिंसा-
वलादाननिकेतनेषु । पिस, गतौ । षान्त्व, सामप्रयोगे । श्वल्क,
वल्क, परिभाषणे । षिण्ह, स्नेहने । स्फिट, इत्येके । स्लिट, अना-
दरे । स्लिङ्, अनादर इत्येके । शिलष, श्लेषणे । पथि, गतौ । पिच्छ,
कुहने । छदि, संवरणे । अण, दाने । तड, आघाते । खड, खडि,
कडि, भेदने । कुडि, रक्षणे । गुडि, वेष्टने च । कुठि, गुठि, चेत्यन्ये ।
खुडि, खंडने । वटि, विभाजने । वडि, इत्येके । चडि, कोपे । मडि,
भूषायाम् । हर्षे च । भडि, कल्याणे । छर्द, वमने । पुस्त, वुस्त, आद-
रानादरयोः । चुद्, संचोदने । नक्क, धक्क, नाशने । चक्क, चुक्क,
व्यथने । जल, शौचकर्मणि । तल, प्रतिष्ठायाम् । तुल, उन्माने ।
दुल, उत्क्षेपे । पुल, महत्त्वे । चुल, समुच्छाये । मूल, रोहणे ।
वुल, निमज्जने । कल, विल, क्षेपे । विल, भेदने । तिल, स्नेहने ।

चल, भृतौ । पाल, रक्षणे । तूष, हिंसायाम् । शुल्ब, माने ।
 शूर्प, च । चुट, छेदने । मुट, संचूर्णने । पिश, नाशने । पडि, पसि,
 नाशने । वज, मार्गसंस्कारगण्योः । शुल्क, अतिस्पर्शने । चपि,
 गत्याम् । क्षपि, क्षान्त्याम् । क्षजि, कृच्छ्रजीवने । श्वर्त्त, गत्याम् ।
 श्वभ्र, च । क्षप, मित्र । क्षप, मारणतोषणनिशामनेषु । यम,
 च परिवेषणे । चह, परिकल्कने । बल, प्राणने । चिञ्, चयने ।
 रह, त्यागे । घट्ट, चलने । मुल्ल, संघाते । खट्ट, संवरणे । खट्ट,
 स्फिट्ट, चुवि, हिंसायाम् । पूल, सङ्घाते । पूर्ण, इत्येके । पुंस,
 अभिवर्द्धने । टकि, बन्धने । धूस, कान्तिकरणे । कौट, वरणे ।
 चूर्ण, संकोचने । पूज, पूजायाम् । अर्क, स्तवने । शुठ, आलस्ये ।
 शुठि, शोषणे । जुड, प्रेरणे । गज, मार्ज, शब्दार्थौ । मर्ज्ज, च । धृ,
 प्रस्रवणे । पचि, विस्तारवचने । तिज, निशाने । कृत, संशब्दे ।
 जर्ज्ज, वर्द्ध, छेदनपूरणयोः । कुवि, आच्छादने । कुभि, इत्येके ।
 लुवि, तुवि, अदर्शने । अर्द्दन इत्यन्ये । लूप, व्यक्तायां वाचि । लप,
 इत्येके । चुठि, छेदने । इल, प्रेरणे । मच्छ, म्लेच्छने । म्लेच्छ,
 मज्ज, छेदने । म्लेच्छ, अव्यक्तायां वाचि । ब्रूस, वर्द्ध, हिंसायाम् ।
 गर्द, गर्ज, शब्दे । गर्ध, अभिकांक्षायाम् । गुर्द, पूर्वनिकेतने । जसि,
 रक्षणे । ईड, स्तुतौ । जसु, हिंसायाम् । पिडि, संघाते । रुष, रोषे ।
 रुड, इत्येके । डिप, क्षेपे । टुप, समुच्छाये ॥ इत्युदात्ता उदात्तेतः ॥

अथ आकुस्माद् द्विचत्वारिंशदात्मनेभाषाः ॥

चित, संचेतने । दशि, दंशदर्शनयोः । दसि, दस, इत्येके । डप,
 डिप, संघाते । तचि, कुटुम्बधारणे । मत्रि, गुप्तपरिभाषणे । स्पृश,
 ग्रहणसंश्लेषणयोः । तर्ज, भर्त्स, तर्ज्जने । वस्त, गन्ध, अर्दने ।
 विष्क, हिंसायाम् । हिष्क, इत्येके । निष्क, परिमाणे । लल,
 ईप्सायाम् । कूण, संकोचने । तूण, पूरणे । भूण, आशाविशं-
 कयोः । शठ, प्रलाषायाम् । यक्ष, पूजायाम् । स्यम, वितर्के ।

गूर, उद्यमने । शम, लक्ष्म, आलोचने । लुट, छेदने । कुठ, इत्येके ।
कुत्स, अवक्षेपणे । गल, श्रवणे । भल, आभगुडने । कूट, आप्र
दाने । अवसादन इत्येके । कुट्ट, प्रतापने । वञ्चु, प्रलम्भने । वृष,
शक्तिबन्धने । मद, तृप्तयोगे । दिवु, परिकूजने । गृ, विज्ञाने ।
विद, चेतनाख्यान नवासेषु । मन, स्तम्भे । यु, जुगुप्सायाम् ।
कुस्म, नास्नोवा ॥ इत्युदात्ता अनुदात्तेतः ।

अथोभयतोभाषाः ।

चर्च, अध्ययने । बुक्क, भाषणे । शब्द, उपसर्गादाविष्कारे च ।
कण, निमीलने । जभि, नाशने । पूद, क्षरणे । जस, ताडने । पश,
बन्धने । अम, रोगे । चट, स्फुट, भेदने । घट, संघाते । हन्त्यर्था-
श्च । दिवु, मर्दने । अर्ज, प्रतियत्ने । घुषिर्, विशब्धने । आडः क्र-
सातत्ये । लस, शिल्पयोगे । तसि, भूष, अलङ्कारे । अर्ह, पूजा-
याम् । ज्ञा, नियोगे । भज, विश्राणने । शृधु, प्रसहने । यत, नि-
कारोपस्कारयोः । कल, गल, आस्वादने । रघ, इत्येके । रगेत्यन्ये
अञ्चु, विशेषणे । लिगि, चित्रीकरणे । मुद, संसर्गे । तस, धारण-
ग्रहणवारणेषु । उध्रस, उज्ज्वले । मुच, प्रमोचनमोदनयोः । वस,
स्नेहच्छेदापहरणेषु । चर, संशये । च्यु, हसनसहनयोः । भुवो,
अवकल्कने । मिश्रीकरण इत्येके । चिन्तन इत्यन्ये । कपेच्च ।

आस्वदः सकर्मकात् ।

ग्रस, ग्रहणे । पुष, धारणे । दल, विदारणे । पट, पुट, लुट, तुजि,
मिजि, पिजि, भजि, लघि, चसि, पिसि, कुसि, दसि, कुशि, घट, घटि,
बृहि, बह, बलह, गुप, धूप, विच्छ, चीव, पुथ, लोक्, लोच, राद, कुप,
तर्क, वृत्, वृधु, भाषार्थाः । रुट, लजि अजि, दसि, भृसि, रुषि, शीक,
नट, पुटि, निवि, रधि, लधि, अहि, रहि, महि, च । लडि, तड,
नल, च । पूरी, आष्यायने । रुज, हिंसायाम् । ष्वद, आस्वादने ॥

आधृषादा

युज, पृच, संयमने । अर्च, पूजायाम् । षह, मर्षणे । ईर,
क्षये । ली, द्रवीकरणे । वृजी, वर्जने । वृज्, आवरणे । जू, वयो-
हानौ । जिच, रिच, वियोजनसंपर्चनयोः । शिष, असर्वोपयोगे ।
तप, दाहे । तप, तप्तौ । कृदौ, सन्दीपने । चृप, कृप, दप, सन्दी-
पने । दृभी, भये । दृभ, सन्दर्भे । छद, संवरणे । अथ, मोक्षणे ।
मी, गतौ । ग्रन्थ, बन्धने । क्रथ, हिंसायाम् । स्वरितेदित्येके ।
शौक, आसर्षणे । चौक, च । अर्द, हिंसायाम् । अर्ह, पूजायाम् ।
आडः षट्, पट्यर्थे । शुन्ध, शौचकर्मणि । छद, अपवारणे । स्वरि-
तेत् । जुष, परितर्कणे । धृज्, कंपने । प्रौज्, तर्पणे । अन्य, ग्रन्थ,
सन्दर्भे । आलृ, लंभने । तनु, अङ्गोपकरणयोः । उपसर्गाच्चादैर्ध्वे ।
वद, सन्देशवचने । स्वरितेत् । वच, परिभाषणे । मान, पूजायाम् ।
भू, प्राप्तावात्मनेपदौ । गर्ह, विनिन्दने । मार्ग, अन्वेषणे । कठि,
शोके । मृज्, शौचालंकरणयोः । मृष, तितित्तायाम् । धृष, प्रस-
हने । इत्याधृषीयाः ॥

अथादन्ताः ।

कथ, वाक्यप्रबन्धे । वर, ईप्सायाम् । गण, संख्याने । शठ,
श्वठ, सस्यगवभाषणे । पट, वट, ग्रन्थे । रह, त्यागे । रङ्ग, गतौ ।
स्तन, गदौ, देवशब्दे । पत, गतौ । पष, अनुपसर्गात् । खर, आक्षेपे ।
रच, प्रतियत्ने । कल, गतौ संख्याने च । चह, परिकल्कने । मह,
पूजायाम् । सार, छप, अथ, दौर्बल्ये । सृह, ईप्सायाम् । भाम,
क्रोधे । सूच, पैशुन्ये । खेट, अक्षणे । खोट, इत्येके । छोट, क्षेपे ।
गोम, उपलेपने । कुमार, क्रीडायाम् । शील, उपधारणे । साम,
सान्त्वप्रयोगे । वेल, कालोपदेशे । काल, च । पल्पूल, ज्वनपव-
नयोः । वात, सुखसिजनयोः । गवेष, मार्गणे । वास, उपसेवायाम् ।
निवास, आच्छादने । भाज, पृथक्कर्मणि । समाज, प्रौतिदर्शनयोः ।

ऊन, परिहाने । ध्वन, शब्दे । कूट, परितापे । कूट, परिदाह इत्येके ।
सकेत, ग्राम, कुण, गुण, चामन्त्रणे । कूण, संकोचने । स्तेन, चौर्ये ॥

आगर्वादात्मनेभाषाः ।

पद, गतौ । गृह, ग्रहणे । मृग, अन्वेषणे । कुह, विस्मापने ।
शूर, वीर, विक्रान्तौ स्थूल, परिहृण्ये । अर्थ, उपयाज्यायाम् । सत्र,
सन्तानक्रियायाम् । गर्व, माने । इत्यागर्वायाः । सूत्र, वेष्टने ।
विमोचन, इत्यन्ये । मूत्र, प्रसवणे । रुद्र, पारुष्ये । पार, तीर,
कर्मसमाप्तौ । पुट, संसर्गोद्धेक, दर्शन इत्येके । कच, शैथिल्ये । कर्तृत्वप्येके ।

प्रातिपदिकाद्वात्वर्थे बहुलमिष्टवच्च ॥ तत्करोतितदाचष्टे ॥

तेनातिक्रामति ॥ धातुरूपं च ॥ कट करणाद्वात्वर्थ ॥

वष्कदर्शने । चित्र, चित्रौकरणे । कदाचिद्दर्शने । अंस, समा-
घाते । वट, विभाजने । वटि, लज्जि इत्येके । लज्ज, प्रकाशे । मिश्र,
सम्पर्के । सङ्ग्राम, युद्धे । अयमनुदात्तेत् । स्तोम, श्लाघायाम् ।
छिद्र, कर्णभेदने । अन्ध, दृष्ट्युपघाते । उपसंहार इत्यन्ये । दण्ड,
दण्डनिपातने । अङ्ग, पदे लक्षण्ये च । अङ्ग, च । सुख, दुःख, तत्-
क्रियायाम् । रस, आस्वादनस्नेहनयोः । व्यय, वित्तसमुत्सर्गे ।
रूप, रूपक्रियायाम् । छेद, द्वैधीकरणे । छेद, अपवारणे । लाभ,
प्रेरणे । वण, गात्रविचूर्णने । वर्ण, वर्णक्रियाविस्तारगुणवचनेषु ।

बहुलमेतन्निदर्शनम् । णिङङ्गान्तिरसने । श्वेताश्वाश्व
तरगालोडिताह्वरकाणामश्वतरे तकलोपश्च । पुच्छादिषु धात्वर्थ
इत्येव सिद्धम् ॥

इति चुरादयः ॥

अथ कंडादयः

—३:३:६—

कण्डूञ्, गात्रविघर्षणे । मन्तु, अपराधे । वल्गु, पूजामाधुर्ययोः । अस्, उपतापे । अस्त, अस्तूञ् इत्येके । लेट्, लोट्, धौत्ये पूर्वभावे स्वप्ने च । लेला, दीप्तौ । इरस् इरञ् इरञ् ईर्ष्यायाम् । उषस्, प्रभातभावे । वेद, धौत्ये स्वप्ने च । मेधा, आशुग्रहणे । कुषुभ, क्षये । मगध, परिवेष्टने । नीचदास्य इत्यन्ये । तन्तस्, पम्पस्, दुःखे । सुख, दुःख, तत्क्रियायाम् । सपर, पूजायाम् । अरर, आराकर्मणि । भिषज्, चिकित्सायाम् । भिषणज्, उपसेवायाम् । इषुध, शरधारणे । चरण, वरस्य, गतौ । चुरण, चौर्थे । तुरण, त्वरायाम् । भुरण, धारणपोषणयोः । गङ्गद, वाक्स्खलने । एला, केला, खेला, विलासे । वेला, श्रेला, इले, त्यन्ये । खेला, स्खलने च । अदन्तोयमित्येके । लिट्, अल्पकुत्सनयोः । लाट्, जीवने । हृणीङ्, रोषणे लज्जायाञ्च । महीङ्, पूजायाम् । रेखा, श्लाघासादनयोः । दुषस्, परताप परिचरणयोः । तिरस्, अन्तर्द्वौ । अगद, नीरोगत्वे । उरस्, वलार्थः । तरण, गतौ । पयस्, प्रसृतौ । संभूयस्, प्रभूतभावे । अस्वर, संवर, संभरणे । आकृतिगणोऽयम् ॥

इति धातुपाठे कंडादिगणः समाप्तः ॥

इति त्रयीयुतदयानन्दसरस्वतीस्वामिनाऽकारादिक्रमसूचीप्रज्ञेन
सह धातुपाठो यंचयितः ।

पौषवदि १० गुरुवारे

संवत् १६ ३६

सूचीपत्रम् ॥

अकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	अकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
अक ..	भा० प० से०	११	२२	अण ..	दि० आ० से०	२०	२३
अकि ..	" आ० "	४	१०	अत ...	भा० प० "	३	१७
अक्षू ..	" प० "	१०	११	अति ..	" " "	४	२
अग ..	" " "	११	२२	अद ..	अ० " "	१६	३
अगद ..	कां० " "	३४	१५	अदि ..	भा० " "	४	२
अगि ..	भा० " "	४	२१	अन ..	अ० " "	१७	२०
अवि ..	" आ० "	४	१३	अन्ध ..	तु० उ० "	३३	१६
अह्क ..	तु० उ० "	३३	१७	अवि ..	भा० आ० "	७	१२
अङ्ग ..	" " "	३३	१७	अभ्र ..	" प० "	८	८
अचि ..	भा० उ० "	१३	४	अभि ..	" आ० "	७	१३
अचु ..	" उ० "	१३	४	अम ..	" प० "	८	८
अज ..	" प० "	५	२०	अम ..	तु० उ० "	३१	१०
अजि ..	तु० उ० "	३१	२३	अम्बर ..	कां० प० "	३४	१६
अक्षु ..	भा० प० "	५	११	अय ..	भा० आ० "	८	१३
अक्षु ..	" उ० "	१३	४	अर्क ..	तु० प० "	३०	१०
अक्षु ..	तु० " "	३१	१५	अर्च ..	भा० " "	५	१४
अक्षू ..	रु० प० "	२६	१५	अर्च ..	तु० उ० "	३२	१
अट ..	भा० " "	६	१५	अर्ज ..	भा० प० "	५	१८
अट ..	" आ० "	६	३	अर्ज ..	तु० उ० "	३१	११
अट ..	तु० प० "	२८	१२	अर्थ ..	" " "	३३	५
अटि ..	भा० आ० "	६	४	अर्द ..	भा० प० "	३	२१
अड ..	" प० "	७	४	अर्द ..	तु० उ० "	३२	८
अड ..	" " "	७	६	अरर ..	कां० प० "	३४	०
अड ..	भा० प० "	८	६	अर्व ..	भा० " "	८	१३

अकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	इकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
अर्व	भा० प० से०	७	२१	इट	भा० प० से०	६	२०
अर्ह	" " "	११	३	इण्	अ० " अ०	१७	८
अर्हि	तु० उ० "	३१	१२	इदि	भा० " से०	४	२
अर्ह	" " "	३२	८	इन्धी	रु० आ० "	२६	१०
अल	भा० प० "	८	२४	इरज्	कं० " "	३४	४
अव	" " "	८	१६	इरज्	" " "	३४	४
अशु	क्रा० " "	२८	१६	इरस्	" " "	३४	४
अशूङ्	खा० आ० "	२२	१२	इल	तु० " "	२४	४
अष	भा० उ० "	१३	१२	इलः	तु० " "	३०	१५
अस	" " "	१३	१२	इला	कं० " "	३४	११
अस	अ० प० "	१७	१५	इवि	भा० प० "	८	१३
अंस	तु० उ० "	३२	१३	इष	दि० " "	१८	२०
असु	दि० प० "	२१	१२	इषु	तु० प० "	२४	२
असु	कं० " "	३४	३	इषुध	कं० " "	३४	८
असु	कं० प० "	३४	३	ई	अ० " अ०	१७	८
असुज्	" " "	३४	३	ईच	भा० आ० से०	८	२५
अह	खा० " "	२२	१६	ईख	" प० "	४	२०
अहि	भा० आ० "	१०	४	ईङ्	दि० आ० अ०	२०	६
अहि	तु० उ० "	३१	२४	ईज	भा० " से०	५	७
आक्षि	भा० प० "	५	१५	ईड	अ० आ० "	१६	१०
आप्तृ	खा० " अ०	२२	८	ईड	तु० प० "	३०	१८
आप्तृ	तु० उ० अ०	३२	११	ईर	अ० आ० "	१६	१०
आस	अ० आ० "	१६	१०	ईर	तु० उ० "	३२	१
इक्	अ० प० अ०	१७	८	ईर्य	भा० प० "	८	२३
इख	भा० " से०	४	२०	ईर्य	भा० " "	८	२३
इखि	" " "	४	२०	ईश	अ० आ० "	१६	१०
इगि	" " "	४	२२	ईष	भा० प० "	८	२५
इङ्	अ० आ० अ०	१७	८	ईष	" " "	१०	१८
				ईष	क्रा० प० "	२८	१६

उकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	उकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
इह	भा० आ० से०	१०	४	ऊर्णज्	अ० उ०	१७	२
उज्ज	" प०	१०	१२	ऊर्ज	जु० प० से०	३०	१३
उख	" "	४	१८	ऊष	भा० " "	१०	१८
उखि	" "	४	१८	ऊह	" आ० "	१०	७
उङ्	" आ० अ०	१४	६	ऊट	भा० आ० अ०	१४	१
उच	दि० प० से०	२१	१७	ऊ	जु० प०	१८	५
उच्छि	भा० " "	५	१७	ऊच	तु० " "	२४	१३
उच्छि	तु० " "	२३	११	ऊच्छ	" " "	२३	१२
उच्छी	भा० " "	५	१७	ऊज	भा० आ०	५	६
उच्छी	तु० " "	२३	११	ऊजि	" " "	५	६
उच्छृदिर्	रु० उ०	२६	५	ऊणु	त० उ०	२७	४
उज्ज	तु० प० से०	२३	१४	ऊधु	दि० प०	२१	२२
उठ	भा० " "	७	१	ऊधु	खा० " "	२२	१६
उठदिर्	रु० उ०	२६	५	ऊफ	तु० " "	२३	१७
उन्दी	रु० प०	२६	१५	ऊम्फ	" " "	२३	१७
उब्ज	तु० " "	२३	१४	ऊषी	" " प०	२३	६
उभ	" " "	२३	१८	ऊट्ट	का० आ०	८	२४
उभ	" " "	२३	१८	एजृ	भा० आ०	५	७
उहं	भा० आ०	३	१०	एजृ	" प०	५	२१
उषी	" प०	८	१०	एठ	" आ०	६	६
उरस्	कां० " "	२४	१५	एध	" " "	३	५
उष	भा० " "	१०	२०	एला	कां० प०	३४	१०
उषस्	कां० " "	३४	५	एषृ	भा० आ०	१०	१
उहिर्	भा० " "	११	३	ओखृ	" प०	४	१८
जठ	भा० प०	७	१	ओणृ	भा० " "	८	७
जन	जु० उ०	३३	१	ककि	भा० आ०	४	१०
कयी	भा० आ०	८	१४	ककि	" " "	४	११
ऊज्ज	जु० प०	२८	८				

ककारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	ककारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
कख	.. स्वा० प० से०	४	१८	कर्ज्ज	.. स्वा० प० से०	५	१८
कखे	.. " " "	११	२०	कर्त्त	.. चु० उ० "	३३	८
कगी	.. " " "	११	२१	कर्द	.. स्वा० प० "	४	१
कघ	.. " आ० "	५	४	कर्व	.. " " "	८	१३
कचि	.. " " "	५	४	कर्व	.. " " "	७	२२
कटी	.. " प० "	६	२१	कल	.. स्वा० आ० "	८	१८
कटे	.. " " "	६	१५	कल	.. चु० " "	२८	२४
कठ	.. " " "	६	२४	कल	.. " उ० "	३१	१४
कठि	.. " आ० "	६	५	कल	.. " " "	३२	२०
कठि	.. चु० उ० "	३२	१३	कल्ल	.. स्वा० आ० "	८	१८
कड	.. स्वा० प० "	७	६	कह	.. " " "	७	१२
कड	.. तु० " "	२४	१०	कश	.. आ० अ० "	१६	१२
कड्ड	.. स्वा० " "	७	४	कष	.. स्वा० प० "	१०	१८
कडि	.. " आ० "	६	१०	कस	.. " " "	१३	१
कडि	.. " प० "	७	६	कस	.. अ० आ० "	१६	१२
कडि	.. चु० " "	२८	१८	कसि	.. " " "	१६	११
कण	.. स्वा० " "	११	२३	काच्चि	.. स्वा० प० "	१०	१५
कण	.. " " "	८	६	काचि	.. " आ० "	५	४
कण	.. चु० उ० "	३१	८	काल	.. चु० उ० "	३२	२४
कण्डू	.. कं० प० "	३४	२	कास	.. स्वा० आ० "	१०	२
कत्थ	.. स्वा० आ० "	३	१४	काशृ	.. " " "	१०	७
कत्र	.. चु० उ० "	३३	८	काशृ	.. दि० आ० "	२०	१५
कथ	.. चु० उ० "	३२	१७	कि	.. जु० प० अ०	१८	७
कद्	.. स्वा० आ० "	११	१६	किट	.. स्वा० " से०	६	१७
कदि	.. " प० "	४	४	किट	.. स्वा० " "	६	२१
कदि	.. " आ० "	११	१५	कित	.. " " "	१५	२
कनी	.. " प० "	८	८	किल	.. तु० " "	२४	३
कपि	.. " आ० "	७	११	कीट	.. चु० " "	३०	८
कमु	.. " आ० "	८	३	कील	.. स्वा० " "	८	२६

ककारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	ककारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
कु	अ० प० अ०	१७	४	कुबि	चु० प० से	३०	१३
कुक्	भा० आ० से	४	११	कुभि	,, ,,	३०	१३
कुङ्	,, ,,	१४	५	कुमार	चु० उ० ,,	३२	२३
कुङ्	तु० ,,	२४	२०	कुर	तु० प० ,,	२३	२३
कुच	भा० प० से	५	१०	कुर	,, ,,	२४	८
कुच	,, ,,	१३	२५	कुर्द	भा० आ० ,,	३	११
कुष	तु० ,,	२४	७	कुल	,, प० ,,	१२	१६
कुञ्च	भा० ,,	५	१०	कुशि	चु० उ० ,,	३१	२१
कुजु	,, ,,	५	१२	कुष	क्रा० प० ,,	२८	१५
कुट	तु० ,,	२४	६	कुषुभ	कां० ,,	३४	५
कुट्ट	चु० ,,	२८	११	कुस	दि० ,,	२१	१५
कुट्ट	,, आ० ,,	३१	३	कुसि	चु० उ० ,,	३१	२१
कुठ	,, ,,	३१	१	कुस्म	,, आ० ,,	३१	६
कुठि	भा० प० ,,	७	२	कुह	चु० उ० ,,	३३	४
कुठि	चु० ,,	२८	१८	कुह्	तु० आ० ,,	२४	२०
कुड	तु० ,,	२४	१०	कूज	भा० प० ,,	५	१८
कुडि	भा० आ० ,,	६	७	कूट	चु० आ० ,,	३१	२
कुडि	,, प० ,,	६	२१	कूट	,, उ० ,,	३३	१
कुडि	चु० ,,	२८	१८	कूष	चु० आ० ,,	३०	२५
कुष	तु० प० ,,	२३	२१	कूष	,, उ० ,,	३३	२
कुष	चु० उ० ,,	३३	२	कूल	भा० प० ,,	८	१
कुस्म	,, आ० ,,	३१	२	कुञ्	खा० उ० अ०	२२	४
कुय	दि० प० ,,	१८	१७	कुञ्	त० उ० ,,	२७	८
कुन्य	क्रा० ,,	२८	१४	कुड	तु० प० से०	२४	१०
कुथि	भा० प० ,,	३	१८	कुती	,, ,,	२५	१८
कुद्रि	चु० ,,	२८	५	कुती	र० ,,	२६	८
कुप	दि० ,,	२१	१८	कुप	चु० उ० ,,	३२	२१
कुप	चु० उ० ,,	३१	२२	कू	भा० आ० ,,	११	१०
कुबि	भा० प० ,,	७	३३	कूपेक्ष	चु० उ० ,,	३१	१८

ककारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	ककारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
कवि	भा० प० से	८	१५	कसु	दि० प० से०	२१	११
कग	दि० " "	२१	१७	कण	भा० " "	८	६
कघ	भा० " अ०	१४	२३	कथे	" " "	१२	१७
कप	तु० उ० अ०	२३	४	चजि	" आ० "	११	१४
कृ	" प० से०	२५	३	चजि	तु० प० "	३०	४
कृञ्	क्रा० उ० से०	२७	१७	चणु	त० उ० "	२७	३
कृत	तु० प० "	३०	१२	चपिः	भा० प० "	१२	४
केष्ट	भा० आ० "	७	१०	चपि	तु० " "	३०	४
केह	भा० " "	८	२०	चमूष्	भा० आ० "	८	३
केला	कां० प० "	३४	१०	चर	" प० "	१२	१८
केलृ	भा० " "	८	४	चल	तु० " "	२८	२२
कै	" " "	१३	२३	क्षायी	भा० प० "	८	१५
कथ	" " "	११	२४	क्षिदि	" आ० "	३	८
कसु	" " "	१२	५	क्षिदि	" प० "	४	५
कसु	दि० " "	१८	१६	क्षिदू	दि० " "	२१	२१
कसर	भा० " "	८	८	क्षिथ	" आ० "	२०	१५
कथ	" " "	११	२४	क्षिगू	क्रा० प० "	२८	१६
कथ	तु० उ० "	२२	७	चि	भा० " अ०	५	२२
कद	भा० आ० "	११	१६	चि	खा० " अ०	२२	१७
क्रदि	" प० "	४	४	चि	तु० " अ०	२५	२
क्रदि	" आ० "	११	१५	चिणु	त० उ० से०	२७	३
क्रन्द	तु० उ० "	३१	११	चिप	दि० प० अ०	१८	१८
कप	भा० आ० "	११	१५	चिप	तु० उ० "	२३	४
कसु	" प० "	८	११	क्षिदा	भा० आ० से०	११	६
कथ	" " "	११	२४	क्षिदा	दि० प० "	२१	२१
कद	" आ० "	११	१६	चिवु	भा० " "	८	१०
क्रदि	भा० प० "	४	४	क्रीञ्	क्रा० उ० "	२७	१२
क्रदि	" आ० "	११	१५	क्रीडू	भा० प० "	७	४
कप	तु० प० "	३०	१४	क्रीडू	" आ० "	७	१२

ककारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	खकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
क्षीज ..	भा० प० से०	५	२२	खट ..	भा० प० से०	६	१८
क्षील ..	" " "	८	२५	खट्ट ..	बु० " "	३०	७
क्षीव ..	" आ० "	७	१३	खड ..	" " "	३८	१७
क्षीष् ..	क्रा० प० "	२८	८	खडि ..	भा० आ० "	६	१०
क्षुड् ..	भा० आ० "	१४	६	खडि ..	बु० प० "	२८	१७
क्षुव ..	" प० "	५	१०	खद ..	भा० " "	३	२०
क्षुड ..	तु० " "	२४	१३	खनु ..	" उ० "	१३	१७
क्षुध ..	दि० " अ०	२१	४	खर्ज ..	" प० "	५	१८
क्षुश ..	भा० प० से०	१२	२४	खर्द ..	" " "	४	१
क्षुड् ..	भा० आ० अ०	१४	७	खर्व ..	" " "	७	२२
क्षु ..	अ० प० से०	१६	१८	खर्व ..	" " "	८	१३
क्षु ..	" " "	१६	१८	खव ..	क्रा० " "	२८	१८
क्षिर् ..	रु० उ० अ०	२६	४	खल ..	भा० " "	८	५
क्ष ..	दि० प० "	२१	४	खष ..	" " "	१०	१८
क्ष ..	भा० आ० से०	११	७	खाट्ट ..	" " "	३	१८
क्ष ..	दि० प० "	२१	२०	खिट ..	" " "	६	१७
क्ष ..	क्रा० " "	२८	१५	खिद ..	दि० आ० अ०	२०	२२
क्ष ..	भा० " "	१२	१८	खिद ..	तु० प० से०	२५	१८
क्ष ..	तु० " "	२३	२३	खिद ..	रु० आ० अ०	२६	१२
क्ष ..	क्रा० उ० "	२७	१६	खुनु ..	भा० प० से०	५	१३
क्ष ..	भा० आ० "	८	२२	खुड ..	तु० " "	२४	१३
क्ष ..	" प० "	८	१०	खुडि ..	बु० " "	२८	१८
क्ष ..	" " "	८	४	खुर ..	तु० " "	२३	२३
क्ष ..	" " "	१३	२३	खुर्द ..	भा० आ० "	३	११
क्ष ..	" आ० "	८	३	खेट ..	बु० उ० "	३२	२२
क्ष ..	बु० उ० "	३२	२२	खेला ..	क्रा० प० "	३४	११
क्ष ..	क्रा० प० "	२८	१८	खेल ..	भा० " "	८	४
क्ष ..	भा० " "	५	२०	खेल ..	" " "	८	५
क्ष ..	" " "	५	२१	खेह ..	" आ० "	८	२०

स्वकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	गकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
खे	भा० प० अ०	१३	२२	गल	चु० आ० से	३१	२
खोट	चु० उ० से०	३२	२२	गल	” उ० ”	३१	१४
खोक्त	भा० प० ”	८	७	गल्ह	भा० आ० ”	१०	५
खोलृ	” ” ”	८	७	भरभ	” ” ”	७	१५
ख्या	अ० ” अ०	१७	१२	गवेष	चु० उ० ”	३२	२५
खुड	भा० आ० अ०	१४	६	गा	चु० प० अ०	१८	८
गज	” प० से०	५	२४	गाङ्	भा० आ० अ०	१४	५
गज	चु० प० ”	३०	११	गाष्ट	” ” से०	३	५
गजि	भा० ” ”	५	२४	गाह	” ” ”	१०	८
गड	” ” ”	११	१८	गु	तु० प० अ०	२४	१८
गडि	” ” ”	४	३	गुड	भा० आ० ”	१४	५
गडि	” ” ”	७	७	गुड	” ” ”	१४	६
गण	चु० उ० ”	३२	१७	गुज	” प० से०	५	१३
गद	भा० प० ”	३	२०	गुज	तु० ” ”	२४	७
गदगद	कां० ” ”	३४	१०	गुजि	भा० ” ”	५	१३
गदी	चु० उ० ”	३२	१८	गुठि	चु० ” ”	२८	१८
गन्ध	” आ० ”	३०	२३	गुड	तु० ” ”	२४	७
गन्ध	भा० प० अ०	१४	२१	गुडि	चु० ” ”	२८	१८
गर्ज	” ” से०	५	१८	गुण	” उ० ”	३३	२
गर्ज	चु० ” ”	३०	१७	गुद	भा० आ० ”	३	११
गर्द	भा० ” ”	४	१	गुध	दि० प० ”	१८	१८
गर्द	चु० ” ”	३०	१७	गुध	का० ” ”	२८	१५
गर्ह	” ” ”	३०	१७	गुप	भा० आ० ”	१४	१५
गर्व	भा० ” ”	७	२२	गुप	दि० प० ”	२१	१८
गर्व	” ” ”	८	१३	गुप	चु० उ० ”	३१	२२
गर्व	चु० उ० ”	३३	६	गुपू	भा० प० ”	७	१८
गर्ह	भा० आ० ”	१०	५	गुफ	तु० ” ”	२३	१७
गर्ह	चु० उ० ”	३२	१३	गुफ	” ” ”	२३	१७
गल	भा० प० से०	८	६	गुरी	तु० आ० ”	२४	१६

गकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	घकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
गुहं	भा० आ० से०	३	११	ग्लह	भा० आ० से०	१०	५
गुहं	चु० प०	३०	१७	ग्लह	" " "	१०	८
गुर्वी	भा० " "	८	११	ग्राम	चु० उ०	३३	२
गुह	" उ०	१३	१५	ग्ला	भा० प० अ०	१२	६
गूर	चु० आ०	३१	१	गुचु	" " से०	५	१२
गूरी	दि० " "	२०	१३	ग्लुचु	" " "	५	१२
गृ	भा० " अ०	१४	१	ग्लुचु	" " "	५	१३
गृज	" प० से०	५	२४	ग्लेपृ	" आ०	७	१०
गृजि	" " "	५	२४	ग्लेह	" " "	८	१८
गृधु	दि० प०	२१	२२	ग्लेषृ	" " "	८	२६
गृह	चु० उ०	३३	४	ग्ले	" प० अ०	१३	२१
गृह	भा० आ०	१०	८	घघ	" प० से०	४	२३
गृ	तु० प०	२५	३	घट	" आ०	११	१३
गृ	क्या० प०	२८	४	घट	चु० उ०	३१	१०
गृ	चु० आ०	३१	४	घट	" " "	३१	२१
गिपृ	भा० " "	७	१०	घटि	" " "	३१	२१
गेह	" " "	८	१८	घट्ट	भा० आ०	६	४
गेषृ	" " "	८	२८	घट्ट	चु० प०	३०	७
गे	" प० अ०	१३	२३	घस्तृ	भा० " अ०	१०	२३
गोम	चु० उ० से०	३२	२३	घिणि	" आ० से०	८	२
गोष्ट	भा० आ०	६	४	घुङ्	" " अ०	१४	६
ग्रन्थ	क्या० प०	२८	१३	घुट	" " से०	११	७
ग्रन्थ	चु० उ०	३२	१०	घुट	तु० प०	२४	११
ग्रन्थ	" " "	३२	७	घुण	भा० आ०	८	२
ग्रथि	भा० आ०	३	१४	घुण	तु० प०	२३	२२
ग्रस	चु० उ०	३१	२०	घुणि	भा० आ०	८	२
ग्रसु	भा० आ०	१०	३	घुर	तु० प०	२४	१
ग्रह	क्या० उ०	२८	२१	घुवि	भा० आ०	१०	८
ग्लसु	भा० आ०	१०	४	घुविर	" प०	१०	११

चकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	चकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
वुपिर्	चु० उ० से०	३१	११	वमु	खा० प० से०	२२	१७
वूर्ण	भा० आ०	८	२	वय	भा० आ०	८	१३
वूर्ण	तु० प०	२३	२२	वर	प०	८	८
वूरी	दि० आ०	२०	१३	वर	चु० उ०	३१	१७
वृ	भा०	१४	२	वर्करीतंच	अ० प०	१८	३
वृ	जु० प० से०	१८	५	वर्च	भा० प०	१०	२४
वृणि	भा० आ०	८	२	वर्च	चु०	३१	८
वृणु	त० उ०	२७	४	वर्च	तु०	२३	१३
वृषु	भा० प०	१०	२२	वरण	कां०	३४	८
व्रा	अ०	१३	२५	वर्ष	भा०	७	२२
वृङ्	आ०	१४	६	वर्ष		८	१२
वक्क	आ० से०	४	११	वल		१२	१४
वक	प०	११	२०	वल	तु०	२४	४
वकास	अ० से०	१७	२१	वल	चु०	३०	१
वचिङ्	आ०	१६	८	वलिः	भा०	१२	२
वक्क	चु० प० से०	२८	२१	वष	उ०	१३	१३
वच्चु	भा०	५	११	वह	प०	१०	२६
वट	चु० उ०	३१	१०	वह	चु० प०	३०	६
वटे	भा० प०	६	१५	वह	उ०	३२	२०
वडि	आ०	६	८	वायु	भा० उ०	१३	१०
वडि	चु० प०	२८	१८	चिज्	चु० प०	३०	६
वण	भा०	११	२३	चिज्	खा० उ० अ०	२२	४
वते		१३	५	चिट	भा० प० से०	६	२०
वदि	प०	४	३	चित	चु० आ०	३०	२१
वदे	उ०	१३	५	चिति		२८	४
वन	प०	११	२४	चिती	भा० प०	३	१७
वप		७	१८	चित्र	चु० उ०	३३	१३
वपि	चु० प० से०	३०	३	चिरि	खा० प०	२२	१७
वमु	भा०	८	१०	चिल	तु०	२४	३

[illegible]

जकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	जकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
जनी	.. भ्वा० प० से०	१२	५	जुड	.. चु० ,, से०	३०	११
जनी	.. दि० आ० ,,	२०	१२	जुट	.. भ्वा० आ० ,,	३	१३
जप	.. भ्वा० प० ,,	७	१८	जुन	.. तु० प० ,,	२३	१८
जप	.. ,, ,, ,,	७	१८	जुष	.. चु० उ० ,,	३२	१०
जभि	.. चु० उ० ,,	३१	८	जुषी	.. तु० आ० ,,	२३	८
जभी	.. भ्वा० आ० ,,	७	१४	जूरी	.. दि० ,, ,,	२०	१३
जमु	.. ,, प० ,,	८	११	जूष	.. भ्वा० प० ,,	१०	१७
जर्ज	.. ,, ,, ,,	१०	२३	जुभि	.. ,, आ० ,,	७	१४
जर्ज	.. तु० ,, ,,	२३	१३	जू	.. क्रा० प० ,,	२८	३
जल	.. चु० ,, ,,	२८	६	जू	.. चु० उ० ,,	३२	३
जल	.. भ्वा० ,, ,,	१२	१४	जूष	.. भ्वा० प० ,,	१२	५
जल्प	.. ,, ,, ,,	७	१८	जूष	.. दि० ,, ,,	१८	२०
जष	.. ,, ,, ,,	१०	१८	जिह्व	.. भ्वा० आ० ,,	१०	६
जसि	.. चु० ,, ,,	३०	१७	जिष	.. ,, ,, ,,	१०	१
जसु	.. ,, ,, ,,	३०	१८	जै	.. ,, प० अ०	१३	२३
जसु	.. ,, उ० ,,	३१	८	जप	.. चु० ,, से०	३०	५
जसु	.. दि० प० ,,	२१	१२	ज्वर	.. भ्वा० ,, ,,	११	१८
जागृ	.. अ० ,, ,,	१७	२०	ज्वल	.. ,, ,, ,,	१२	५
जि	.. भ्वा० ,, अ०	८	८	ज्वल	.. ,, ,, ,,	१२	१
जि	.. ,, आ० ,,	१४	३	ज्वल	.. ,, ,, ,,	१२	१३
जिवि	.. भ्वा० प० ,,	८	१५	ज्ञा	.. ,, ,, अ०	१२	२
जिरि	.. स्वा० ,, ,,	२२	१७	ज्ञा	.. क्रा० ,, ,,	२८	८
जिषु	.. भ्वा० ,, ,,	१०	२०	ज्ञा	.. चु० उ० ,,	३१	१३
जीव	.. ,, ,, ,,	८	८	ज्या	.. क्रा० प० ,,	२८	६
जुङ्	.. ,, ,, अ०	१४	७	जि	.. भ्वा० आ० ,,	१४	३
जुगि	.. ,, ,, से०	४	२३	जि	.. चु० उ० से०	३२	४
जुङ्	.. तु० ,, ,,	२३	१८	ज्यु	.. भ्वा० प० अ०	१४	७
जुड	.. तु० प० से०	२४	८	झट	.. ,, प० से०	६	१७
				झसु	.. ,, ,, ,,	८	११

अकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	अकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
अर्भा	स्वा० प० से०	१०	२४	अभ	दि० प० से०	२१	२०
अर्भा	तु० " "	२३	१३	अम	स्वा० " अ०	१४	२१
अव	स्वा० " "	१०	१८	अय	स्वा० आ० से०	८	१३
अव	" उ० "	१३	१३	अय	" " "	८	१३
अ	क्रा० प० "	२८	३	अल	" " "	१२	१५
अव	दि० " "	१८	२०	अश	दि० प० "	२१	६
टकि	तु० " "	३०	८	अस	स्वा० आ० "	१०	३
टल	स्वा० " "	१२	१४	अह	दि० उ० अ०	२०	२०
टिक्	" आ० "	४	१३	आसृ	स्वा० आ० से०	१०	२
टीक्	" " "	४	१२	अिक्	" प० "	१०	१२
टूल	स्वा० प० "	१२	१४	अिजि	अ० आ० "	१६	१२
डप्र	तु० आ० "	३०	२१	अिजिर्	तु० उ० अ०	१८	२
डिप	" " "	३०	२२	अिदि	स्वा० प० से०	४	३
डिप	" प० "	३०	१८	अिदृ	" उ० "	१३	७
डिप	तु० " "	२४	८	अिवि	" प० "	८	१४
डिप	दि० " "	२१	१८	अिल	तु० " "	२४	५
डोड	स्वा० आ० "	१४	११	अिश	स्वा० " "	१०	२५
डोड	दि० " "	२०	४	अिसि	अ० आ० "	१६	१२
डोल	स्वा० " "	४	१२	अिज्	स्वा० उ० अ०	१३	१८
अच	" प० "	१०	१२	अिव	स्वा० प० से०	८	१०
अख	" " "	४	२१	अिल	" " "	८	२६
अखि	" " "	४	२१	अु	अ० " से०	१६	१८
अट	" " "	६	१८	अुद	तु० उ० अ०	२३	३
अट	" " "	११	२०	अुद	" प० "	२५	१०
अद	" " "	३	२१	अु	" " से०	२४	१८
अद	तु० उ० "	३१	२२	अेदृ	स्वा० उ० "	१३	७
अभ	क्रा० प० से०	२८	१५	अेषृ	" अ० "	१०	१
अभ	स्वा० आ० "	११	८	तक्	" प० "	४	१७
				तकि	" " "	४	१७

तकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	तकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
तच	भा० प० से०	१०	१४	तिग	स्वा० प० से०	२२	१५
तचू	" " "	१०	११	तिज	भा० आ० "	१४	१५
तगि	" " "	४	२२	तिज	चु० प० "	३०	१२
तघु	" " "	५	१२	तिपृ	भा० आ० अ०	७	८
तज्चू	र० " "	२६	१६	तिम	दि० प० से०	१८	१८
तट	भा० " "	६	१८	तिरस्	कं० " "	३४	१४
तड	चु० उ० "	३१	२४	तिल	भा० " "	८	३
तड	" प० "	२८	१७	तिल	तु० " "	२४	३
तडि	भा० आ० "	६	८	तिल	चु० " "	२८	२४
तत्रि	चु० " "	३०	२२	तिल्ल	भा० " "	८	४
तनु	त० उ० "	२७	३	तीळ	" आ० "	४	१३
तनु	चु० " "	३२	११	तीम	दि० प० "	१८	१८
तन्तस्	कं० प० "	३४	६	तीर	चु० उ० "	३३	७
तप	दि० आ० अ०	२०	१४	तीव	भा० प० "	८	१०
तप	भा० प० "	१४	२२	तु	अ० " "	१७	५
तप	चु० उ० से०	३२	५	तुज	भा० " "	५	२३
तमु	दि० प० "	२१	१०	तुजि	" " "	५	२३
तय	भा० आ० "	८	१३	तुजि	चु० " "	२८	१३
तकं	चु० उ० "	३१	२३	तुजि	" उ० "	३१	२०
तर्ज	भा० प० "	५	१८	तुट	तु० प० "	२४	८
तर्ज	चु० आ० "	३०	२३	तुड	" " "	२४	११
तर्द	भा० प० "	४	१	तुडि	भा० आ० "	६	८
तरण	कं० " "	३४	१५	तुडू	" प० "	७	४
तल	चु० " "	२८	२२	तुण	तु० " "	२३	२०
तसि	" उ० "	३१	१२	तुद	" उ० अ०	२३	३
तसु	दि० प० "	२१	१३	तुप	भा० प० से०	७	२०
तापृ	भा० आ० "	८	१६	तुम्प	" " "	७	२०
तिक	स्वा० प० "	२२	१५	तुप	तु० " "	२३	१६
तिळ	भा० आ० "	४	१२	तुम्प	" " "	२३	१६

तकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	तकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
तुफ	भा० प० से०	७	२०	तृम्प	तु० प० से०	२३	१५
तुम्फ	" " "	७	२१	ढफ	" " "	२३	१६
तुफ	तु० " "	२३	१६	ढम्फ	" " "	२३	१६
तुम्फ	" " "	२३	१६	ढष	दि० " "	२१	१८
तुवि	बु० " "	३०	१४	ढह	रु० " "	२६	१५
तुवि	भा० " "	७	२३	तृह	तु० " "	२४	२
तुर्वी	" " "	८	११	ढहू	" " "	२४	२
तुभ	" आ० "	११	८	तृ	भा० " "	१४	१३
तुभ	क्रा० प० "	२८	१५	तेज	" " "	५	२०
तुभ	दि० " "	२१	२०	तेपृ	" आ० "	७	८
तुर	बु० " "	१८	८	तेपृ	" " "	७	८
तुल	बु० " "	२८	२२	तेवृ	" " "	८	१८
तुष	दि० " ष	२१	३	तीक	" " "	४	१२
तुस	भा० " से०	१०	२२	त्यज	" प० अ०	१४	२२
तुरण	कं० " "	३४	८	त्रकि	" आ० से०	४	११
तुहिर	भा० " "	११	२	त्रख	" प० "	४	२२
तुहु	" " "	७	५	त्रखि	" " "	४	२२
तुण	बु० आ० "	३०	२५	त्रदि	" " "	४	४
तुशी	दि० " "	२०	१२	त्रपिः	" " "	१२	४
तुल	भा० प० "	८	१	त्रपूष	" आ० "	७	११
तुष	" " "	१०	१६	त्रस	बु० उ० "	३१	१५
तुच	भा० " "	१०	१२	त्रसि	" " "	३१	२१
तुणु	त० उ० "	२७	४	त्रसी	दि० प० "	१८	१७
तुदिर	रु० " "	२६	५	त्रवू	भा० " "	१०	११
तुप	दि० प० "	२१	६	त्रगि	" " "	४	२१
तुम	स्वा० " "	२२	१६	त्रगि	" " "	४	२४
तुम	बु० उ० से०	३२	५	त्रच	तु० " "	२३	१३
तुम	तु० प० "	२३	१५	त्रघु	भा० " "	५	१२
				त्ररा	" आ० "	११	१६

श्रकारादयः	गणादयः	पु०	पं०	दकारादयः	गणादयः	पु०	पं०
त्तरा	.. कं० प० से०	३४	८	दसि	.. चु० आ० से०	३०	२१
त्तर	.. स्वा० प० ”	८	८	दसि	.. ” उ० ”	३१	२३
त्विष	.. ” उ० ”	१५	७	दसि	.. ” ” ”	३१	२१
त्रुट	.. चु० आ० ”	३१	१	दसु	.. दि० प० ”	२१	१३
त्रुप	.. स्वा० प० ”	७	२०	दह	.. स्वा० ” अ०	१४	२३
त्रुम्प	.. ” ” ”	७	२०	दाज्	.. जु० उ० ”	१८	२०
तुफ	.. ” ” ”	७	२१	दाण्	.. स्वा० प० अ०	१३	२६
तुम्फ	.. ” ” ”	७	२१	दान	.. ” उ० से०	१५	४
त्रैङ्	.. स्वा० आ० अ०	१४	८	दाप्	.. अ० प० अ०	१७	१२
थिष्ट	.. ” ” से०	७	८	दाशृ	.. स्वा० ” से०	२२	१८
थुङ्	.. तु० प० ”	२४	११	दाशृ	.. स्वा० उ० ”	१३	११
थुर्वी	.. स्वा० ” ”	८	११	दासृ	.. ” ” ”	१३	१४
थेपृ	.. ” आ० ”	७	८	दिवु	.. चु० आ० ”	३१	४
दञ्	.. ” ” ”	११	१४	दिवि	.. स्वा० प० ”	८	१४
दञ्च	.. ” ” ”	८	२४	दिवु	.. दि० ” ”	१८	१३
दव	.. स्वा० प० अ०	२२	१७	दिवु	.. चु० उ० ”	३१	११
दण्ड	.. चु० उ० से०	३३	१६	दिश	.. तु० ” अ०	२३	३
दद	.. स्वा० आ० ”	३	१०	दिह	.. अ० ” ”	१६	५
दध	.. ” ” ”	३	७	दीच	.. स्वा० आ० से०	८	२४
दम्भु	.. स्वा० प० ”	२२	१६	दीङ्	.. दि० आ० अ०	२०	४
दसु	.. दि० ” ”	२१	१०	दीधीङ्	.. अ० ” से०	१७	२४
दय	.. स्वा० आ० ”	८	१४	दीपी	.. दि० ” ”	२०	१२
दरिद्रा	.. अ० प० ”	१७	२१	दु	.. स्वा० प० अ०	१४	३
दल	.. चु० उ० ”	३१	२०	दु	.. स्वा० ” ”	२२	८
दल	.. स्वा० प० ”	८	६	दुःख	.. चु० उ० से०	३३	१७
दलिः	.. ” ” ”	१२	४	दुःख	.. कं० प० ”	३४	७
दंश	.. स्वा० प० अ०	१४	२३	दुर्वी	.. स्वा० ” ”	८	११
दशि	.. चु० आ० से०	३०	२१	दुल	.. चु० ” ”	२८	२३
दस	.. ” ” ”	३०	२१	दुवस्	.. कं० ” ”	३४	१४

दकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	धकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
दुष	दि० प० अ०	२१	३	द्राचि	भा० आ० से०	१०	१५
दुह	अ० उ० "	१६	५	द्रावृ	" प० "	४	१८
दुहिर	भा० प० से०	११	२	द्रावृ	" आ० "	४	१४
दूङ्	दि० आ० "	२०	२	द्रावृ	" " "	४	१५
दृङ्	तु० " अ०	२५	५	द्रावृ	" " "	६	११
दृप	दि० प० "	२१	६	द्रावृ	" " "	१०	७
दृप	चु० उ० से०	३२	५	द्विष	अ० उ० अ०	१६	५
दृफ	तु० प० "	२३	१६	द्वु	भा० प० "	१४	३
दृम्फ	" " "	२३	१६	द्वुण	तु० " से०	२३	२२
दृभौ	" " "	२३	१८	द्वुह	दि० " "	२१	७
दृभ	चु० उ० "	३२	६	द्वुज्	व्या० उ० अ०	२०	१६
दृभी	" " "	३२	६	द्वेक	भा० आ० से०	४	८
दृभी	तु० प० "	२३	१८	द्वै	" प० अ०	१३	२१
दृशिर	भा० " अ०	१४	२२	धक्क	चु० " से०	२८	२१
दृह	" " से०	११	१	धन	चु० " "	१८	८
दृहि	" " "	११	१	धवि	भा० " "	८	१५
दृ	" " "	१२	१	धज्	चु० उ० अ०	१८	२०
दृ	खा० " "	२२	१८	धावु	भा० " से०	८	१८
दृ	व्या० " "	२८	३	धि	तु० प० अ०	२५	२
दृफ	तु० " "	२३	१७	धित्त	भा० आ० से०	८	२२
देङ्	भा० आ० अ०	१४	८	धिवि	" प० "	८	१४
देव	" " से०	८	१८	धिष	चु० " "	१८	८
दैप्	" प० अ०	१३	२४	धीङ्	दि० आ० प०	२०	४
दो	दि० " "	२०	८	धुच्च	भा० " से०	८	२२
द्यु	अ० " "	१७	४	धुर्वी	" प० "	८	११
द्युत	भा० आ० से०	११	५	धुज्	खा० उ० अ०	२२	५
द्यौ	" प० अ०	१३	२१	धू	तु० प० से०	२४	१८
द्रम	" " से०	८	१०	धूज्	खा० उ० "	२२	५
द्रा	अ० प० अ०	१७	११				

धकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	नकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
धूज्	चु० उ० से०	२२	१०	ध्वन	चु० उ० से०	२३	१
धूज्	क्या० प०	२७	१८	ध्वनिः	श्वा० प०	१२	४
धूप	श्वा०	७	१८	ध्वंस	आ०	११	८
धूप	चु०	३१	२२	ध्वंस	आ०	११	८
धूरी	दि० आ०	२०	१३	ध्वा	प० अ०	१३	२५
धूस	चु० प०	३०	८	ध्वाचि	से०	१०	१५
धृङ्	श्वा० से०	१४	८	ध्वाखृ	आ०	४	१८
धृङ्	आ० अ०	२५	५	ध्वाङ्	आ०	६	११
धृज	प० से०	५	१८	ध्वाधृ	आ०	४	१५
धृजि	श्वा०	५	१८	ध्वाचि	प०	१०	१५
धृज्	उ० अ०	१३	१८	ध्रु	आ० अ०	१४	३
धृष	चु० से०	३२	१४	ध्रु	तु० प०	२४	१८
धृषा	स्वा० प०	२२	१५	ध्रुव	से०	२४	१८
धृ	क्या०	२८	३	ध्व	श्वा० अ०	१४	२
धृ	चु०	३०	११	ध्रिक्	आ० से०	४	८
ध्रिक्	उ०	३३	८	ध्रौ	प० अ०	१३	२२
ध्रिट्	श्वा० प०	१३	२१	ध्रै	आ०	१३	२१
ध्रिपृ	आ०	७	११	नक्वा	चु० से०	२८	२४
ध्रिर्क्	प०	८	७	नट	आ०	३१	२१
ध्रज	आ०	५	१७	नट	उ०	२८	७
ध्रजि	आ०	५	१७	नदि	श्वा० प०	४	३
ध्रण	आ०	८	८	नद्	आ०	३	२१
ध्रस	क्या०	२८	१६	नल	चु० उ०	३१	२५
ध्रस	चु० उ०	३१	१६	नाथृ	श्वा० आ०	३	६
ध्वज	श्वा० प०	५	१८	नाधृ	आ०	३	६
ध्वजि	आ०	५	१८	निवास	चु० उ०	३२	२६
ध्वण	आ०	८	६	निष्क	आ०	३०	२४
ध्वन	आ०	१२	३	नृती	दि० प०	१८	१७
ध्वन	आ०	१२	१३				

पकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	पकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
नृ ..	भा० प० से०	१८	१७	पल ..	भा० प० से०	१२	१५
नृ ..	क्रा० " "	२८	४	पल्लू ..	चु० उ० " "	३२	२४
पक्ष ..	भा० " "	१०	१४	पश ..	" " " "	३१	८
पक्ष ..	चु० " "	२८	८	पष ..	" " " "	३२	१८
पच ..	भा० उ० अ०	१५	६	पसि ..	" प० " "	३०	२
पचि ..	" आ० से०	५	५	पा ..	भा० " अ०	१३	२४
पचि ..	चु० प० " "	३०	१२	पा ..	अ० " " "	१७	११
पट ..	भा० " "	६	१५	पार ..	चु० उ० से०	३३	७
पट ..	चु० उ० " "	३१	२०	पाल ..	" प० " "	३०	१
पट ..	" " " "	३२	१८	पि ..	तु० " अ०	२५	२
पठ ..	भा० प० " "	६	२३	पिच्छ ..	चु० " से०	२८	१६
पडि ..	" आ० " "	६	८	पिज ..	" " " "	२८	१३
पडि ..	चु० प० " "	३०	२	पिजि ..	अ० आ० " "	१६	१३
पण ..	भा० आ० " "	८	२	पिजि ..	चु० प० " "	२८	१३
पत ..	चु० उ० " "	३२	१८	पिजि ..	" उ० " "	३१	२१
पतलु ..	भा० प० " "	१२	१७	पिट ..	भा० प० " "	६	१८
पय ..	चु० " "	२८	१०	पिठ ..	" " " "	७	१
पयि ..	" " " "	२८	१६	पिडि ..	" आ० " "	६	८
पये ..	भा० " "	१२	१७	पिडि ..	चु० प० " "	३०	१८
पद ..	दि० आ० अ०	२०	२२	पिवि ..	भा० " " "	८	१४
पद ..	चु० उ० से०	३३	४	पिश ..	तु० " " "	२५	१८
पन ..	भा० आ० " "	८	३	पिश ..	चु० " " "	३०	२
पम्पस् ..	कं० प० " "	३४	६	पिषलु ..	रु० " " "	२६	१४
पय ..	भा० आ० " "	८	१३	पिस ..	चु० " " "	२८	१४
पयस् ..	कं० प० " "	३४	१५	पिसि ..	" उ० " "	३१	२१
पि ..	भा० आ० " "	३	१२	पिसृ ..	भा० प० " "	१०	२४
पि ..	" प० " "	७	२१	पीड् ..	दि० आ० अ०	२०	६
पि ..	" " " "	७	२१	पीड ..	चु० प० से०	२८	७
पि ..	" " " "	८	१२	पीव ..	भा० " " "	८	१०

पकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	पकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
पील	भा० प० से०	८	२६	पूरी	चु० उ० से०	३१	२५
पुट	" " "	६	२१	पूर्ण	चु० प० "	३०	८
पुट	तु० " "	२४	७	पूल	भा० " "	८	२
पुट	चु० उ० "	३१	२०	पूल	चु० " "	३०	८
पुट	" " "	३३	८	पूष	भा० " "	१०	१६
पुटि	" " "	३१	२४	पृ	खा० " अ०	२२	८
पुट्ट	" प० "	२८	१२	पृङ्	तु० आ० "	२४	२३
पुड	तु० " "	२४	११	पृत्र	चु० उ० से०	३२	२
पुडि	भा० " "	६	२२	पृची	अ० आ० "	१६	१४
पुण	तु० " "	२३	२१	पृची	ख० प० "	२६	१७
पुष	दि० " "	१८	१७	पृजि	अ० आ० "	१६	१३
पुष	चु० उ० "	३१	२२	पृड	तु० प० "	२३	२०
पुषि	भा० प० "	३	१८	पृण	" " "	२३	२०
पुर	तु० " "	२४	१	पृथ	चु० " "	२८	८
पुवं	भा० " "	८	१२	पृषु	भा० " "	१०	२१
पुल	" " "	१२	१६	पृ	चु० " "	१८	१२
पुल	चु० " "	२८	२३	पृ	क्रा० " "	२८	२
पुष	भा० " "	१०	२०	पेह	भा० आ० "	८	१८
पुष	दि० " अ०	२१	२	पेलु	" प० "	८	५
पुष	क्रा० " से०	२८	१७	पेसृ	" आ० "	१०	१
पुष	चु० उ० "	३१	२०	पेसृ	" प० "	१०	२४
पुष्प	दि० प० "	१८	१८	पै	" " अ०	१३	२३
पुंस	चु० " "	३०	८	पैणु	" " से०	८	८
पुस्त	" " "	२८	२०	पौडु	" " "	६	१४
पूड	भा० " "	१४	११	प्रच्छ	तु० " अ०	२७	७
पूज	चु० " "	३०	१०	प्रथ	भा० आ० से०	११	१३
पूज	क्रा० उ० "	२७	१६	प्रथ	चु० प० "	२८	८
पूयी	भा० आ० "	८	१५	प्रस	भा० आ० "	११	१३
पूरी	दि० " "	२०	१२	प्रद्य	" उ० "	१३	१४

फकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	वकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
प्यायी	भा० आ० से०	८	१६	बद्	भा० प० से०	३	२०
प्रा	अ० प० अ०	१७	१२	बध	" आ० "	१४	१५
प्सा	" " "	१७	११	बन्ध	क्रा० " "	२८	८
प्लिह	भा० आ० से०	१०	६	बभ्र	भा० " "	८	८
प्रीड्	दि० आ० अ०	२०	७	बर्ब	" " "	७	२२
प्रीज्	क्रा० उ० अ०	२७	१२	बर्ह	" आ० "	१०	५
प्रीज्	चु० उ० से०	३२	१०	बल	" " "	१२	१५
प्री	क्रा० प० अ०	२८	७	बल	" प० "	८	१७
पुड्	भा० आ० "	१४	७	बल	चु० " "	३०	६
पुष	क्रा० प० से०	२८	१७	बलभ	भा० आ० "	७	१५
पुषु	भा० " "	१०	२१	बल्ल	" " "	८	१७
मुड्	" आ० अ०	१४	७	बल्ह	" " "	१०	५
मुष	दि० प० से०	१८	१६	बसु	दि० प० "	२१	१३
मुषु	भा० " "	१०	२१	बष	भा० " "	१०	१८
प्रेषृ	" आ० "	१०	१	बहि	" आ० "	१०	४
प्यैड्	" " "	१४	८	बाधृ	" " "	३	६
प्रोथृ	" उ० "	१३	६	बाहृ	" " "	१०	६
फक्क्	" प० "	४	१७	बिट	" प० "	६	२०
फण	" " "	१२	७	बिदि	" " "	४	२
फल	" " "	८	२	बिल	तु० " "	२४	५
फला	" " "	८	२५	बिषु	भा० " "	१०	२०
फुल्ल	" " "	८	३	बिस	दि० " "	२१	१५
फेलृ	" " "	८	५	बुक्क	भा० " "	४	१७
बज	" " "	५	२५	बुक्क	चु० " "	३१	८
बट	" आ० "	११	१८	बुगि	भा० " "	४	२३
बटि	" " "	६	५	बुध	" " "	१२	२५
बठ	" प० "	६	२४	बुध	दि० आ० अ०	२०	२२
बडि	" आ० "	६	७	बुधिर्	भा० उ० से०	१३	८
बण	" प० "	८	८	बुन्दिर्	" " "	१३	८

भकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	भकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
वुस	दि० प० से०	२१	१४	भल्ल	स्वा० आ० से०	८	१८
वुस	" " "	२१	१५	भष	" प० "	१०	१८
वुस्त	चु० " "	२८	२०	भस	जु० " "	१८	७
वृपु	स्वा० " "	१०	२१	भा	अ० " अ०	१७	१०
वृह	" " "	११	२	भाज	चु० उ० से०	३२	२६
वृहि	" " "	११	२	भाम	स्वा० आ० "	८	३
वृहि	चु० उ० "	३१	२२	भाम	चु० उ० "	३२	२२
वृहिरू	स्वा० प० "	११	२	भाष	स्वा० आ० "	८	२५
वृह	तु० " "	२४	१	भाष्ट	" " "	१०	२
वृह	स्वा० आ० "	१०	६	भिच	" " "	८	२३
वृज	" प० "	५	२५	भिदि	" प० "	४	२
वृण	" " "	८	६	भिदिरू	रु० उ० अ०	२६	३
व्रीड	दि० " "	१७	१८	भिषज्	कां० प० से०	३४	८
वृज्	अ० " "	१७	७	भिणज्	" " "	३४	८
भल्ल	चु० " "	२८	१०	भी	जु० " अ०	१८	८
भज	स्वा० उ० "	१५	६	भुज	रु० " से०	२६	१४
भज	चु० " "	३१	१३	भुरण	कां० प० "	३४	१०
भजि	" " "	३१	२१	भुवः	चु० उ० "	३१	१७
भज्जो	रु० प० "	२६	१४	भू	स्वा० प० "	३	३
भट	स्वा० " "	६	१८	भू	चु० उ० "	३२	१३
भट	" " "	११	१८	भूष	स्वा० प० "	१०	१८
भडि	" आ० "	६	७	भूष	चु० उ० "	३१	१२
भडि	चु० प० "	२८	२०	भृजी	स्वा० आ० "	५	७
भण	स्वा० " "	८	६	भृज	स्वा० उ० अ०	१३	१७
भदि	स्वा० आ० "	३	८	भृज्	जु० " "	१८	१४
भल्ल	चु० " "	३०	२३	भृड	तु० प० से०	२४	१३
भर्व	स्वा० प० "	८	१२	भृश	दि० " "	२१	१७
भज	स्वा० आ० "	८	१८	भृसि	चु० उ० "	३१	२३
भल्ल	चु० आ० "	३१	२				

मकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	मकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
भृ	क्रा० प० से०	२८	२	मधि	भा० आ० से०	४	१४
भृ	" " "	२८	३	मधि	" " "	४	१५
भृष	भा० उ० "	१३	११	मधि	" प० "	४	२४
भृष	" आ० "	१०	३	मधि	" आ० "	५	५
भृष	" प० "	८	६	मठ	" प० "	६	२४
भृसु	भा० " "	१२	१८	मठि	" आ० "	६	५
भृसु	दि० " "	२१	११	मठि	" " "	६	७
भृशु	" आ० "	११	८	मठि	" प० "	६	२२
भृशु	भा० " "	११	८	मठि	चु० " "	२८	१८
भृशु	दि० प० "	२१	१७	मण	भा० " "	८	६
भृसु	भा० आ० "	११	८	मत्रि	चु० " "	३०	२२
भृसुज	तु० उ० अ०	२३	३	मथि	भा० " "	३	१८
भृच	भा० " से	१३	१४	मथे	" " "	१२	१७
भृलच	" " "	१३	१४	मद	चु० आ० "	३१	४
भृजृ	" आ० "	५	७	मदि	भा० " "	३	८
भृजृ	" " "	१२	१०	मदी	" प० "	१२	३
भृजृ	" " "	१२	१०	मदी	दि० " "	२१	१२
भृलजृ	" " "	१२	१०	मन	" आ० आ०	२०	२३
भृी	क्रा० प० अ०	२८	८	मन	चु० " से०	३१	५
भृण	चु० आ० से०	३०	२५	मनु	त० " "	२७	६
भृजृ	भा० " "	५	७	मन्तु	कं० प० "	३४	२
भृषृ	" उ० "	१३	१२	मन्थ	भा० " "	३	१८
भृलषृ	" " "	१३	१२	मन्थ	क्रा० " "	२८	१३
मकि	" आ० "	४	११	मय्य	भा० " "	८	२४
मकि	" " "	४	१२	मय्य	" " "	८	८
मख	" प० "	४	२०	मय्य	" आ० "	८	१३
मखि	" " "	४	२१	मय्य	चु० प० "	३०	११
मगध	कं० " "	३४	६	मय्य	भा० " "	७	२२
मनि	भा० प० "	४	२२	मय्य	" " "	८	१२

मकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	मकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
मल	भा० आ० से०	८	१७	मिट्ट	भा० उ० से०	१३	६
मल्ल	" " "	८	१७	मिधृ	" " "	१३	७
मव	" प० "	८	१६	मिषि	" प० "	८	१४
मश	" " "	१०	२५	मिल	तु० " "	२४	६
मष	" " "	१०	१८	मिल	" उ० "	२५	१४
मसी	दि० " "	२१	१६	मिश	भा० प० "	१०	१५
मस्त	भा० आ० "	४	१३	मिअ	तु० उ० "	३३	१४
मस्जो	तु० प० अ०	२५	८	मिष	तु० प० से०	२४	३
मह	भा० " से०	११	१	मिषु	भा० " "	१०	२०
मह	तु० उ० "	३२	२०	मिह	" " अ०	१४	२३
महि	भा० आ० "	१०	४	मी	तु० उ० से०	३२	७
महि	तु० उ० "	३१	२४	मीड्	दि० आ० अ०	२०	४
महीड्	का० आ० "	३४	१३	मीज्	क्रा० उ० अ०	२७	१३
मा	अ० प० अ०	१७	१३	मीमृ	भा० प० से०	८	१०
माचि	भा० प० से०	१०	१५	मील	" " "	८	२५
माड्	तु० आ० अ०	१८	१६	मीव	" " "	८	१०
माड्	दि० " "	२०	६	मुच	" आ० "	५	५
मान	भा० " से०	१४	१५	मुच	तु० उ० "	३१	१६
मान	तु० उ० "	३२	१२	मुचि	भा० आ० "	५	५
मार्ग	" " "	३२	१३	मुचलृ	तु० उ० अ०	२५	१४
मार्ज	" प० "	३०	११	मुज	भा० प० से०	५	२४
माह	भा० उ० "	१३	१५	मुजि	" " "	५	२४
मेछ	तु० प० "	२३	१२	मुट	" " "	६	२१
मेजि	तु० उ० "	३१	२१	मुट	तु० " "	२४	८
मेज्	खा० " अ०	२२	३	मुट	तु० " "	३०	२
मिधृ	भा० " से०	१३	७	मुठि	भा० आ० "	६	५
मिदा	" आ० "	११	५	मुडि	" " "	६	८
मिदा	दि० प० "	२१	२१	मुड	" प० "	६	२२
मिदि	तु० " "	२८	६	मुण	तु० " "	२३	२१

मकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	मकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
सुद	.. स्वा० आ० से०	३	८	सुष	.. चु० उ० से०	३२	१४
सुद	.. चु० उ० ..	३१	१५	सुषु	.. स्वा० प० ..	१०	२१
सुर	.. तु० प० ..	२३	२३	सु	.. क्रा० ..	२८	४
सुर्क्षा	.. स्वा० ..	५	१६	मेड्	.. स्वा० आ० ..	१४	८
सुर्वी	८	११	मेडृ प० ..	६	१४
सुष	.. क्रा० ..	२८	१८	मेष्टृ उ० ..	१३	७
सुस	.. दि० ..	२१	१६	मेदृ	१३	६
सुस्त	.. चु० ..	३०	७	मेधा	.. कां० प० ..	३४	५
सुह	.. दि० ..	२१	७	मेधृ	.. स्वा० उ० ..	१३	६
सूड्	.. स्वा० आ० ..	१४	११	मेधृ	१३	७
सूज्	.. क्रा० उ० ..	२०	१६	मेष्टृ आ० ..	७	१०
सूत्र	.. चु० ..	३३	७	मेष्टृ	८	२०
सूल	.. स्वा० प० ..	८	२	स्रज प० ..	१०	१३
सूल	.. चु० ..	२८	२३	स्रज	.. चु० ..	३०	१६
सूष	.. स्वा० ..	१०	१६	स्रक्त	३०	१५
सृज	१०	१३	स्रद	.. स्वा० आ० ..	११	१४
सृग	.. चु० आ० ..	३३	४	स्रा प० अ०	१३	२६
सृड्	.. तु० .. अ०	२४	२३	स्रुचु से०	५	१२
सृजु	.. चु० .. से०	३२	१४	स्रुचु	५	१२
सृजूप	.. अ० प० अ०	१७	१५	स्रिड्	६	१४
सृड	.. तु० .. से०	२३	१८	स्रुचु	५	१२
सृड	.. क्रा० ..	२८	१४	स्रुचु	५	१२
सृड	२८	१४	स्रिक्त	५	१४
सृण	.. तु० ..	२३	२०	स्रिक्त	.. चु० ..	३०	१५
सृद	.. क्रा० ..	२८	१४	स्रिक्त	३०	१६
सृधु	.. स्वा० उ० ..	१३	८	स्रिड्	.. स्वा० ..	६	१४
सृश	.. तु० प० अ०	२५	१०	स्रिष्टृ आ० ..	७	१०
सृष	.. स्वा० .. से०	१०	२१	स्रिष्टृ	८	२०
सृष	.. दि० उ० ..	२०	१८	स्रिष्टृ प० अ०	१३	२१

यकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	रिफारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
यक्ष	.. चु० आ० से०	३०	२६	रगि	.. स्वा० प० से०	४	२२
यज	.. स्वा० उ० अ०	१५	७	रघ	.. चु० उ० ..	३१	१४
यत	.. चु० .. से०	३१	१३	रघि	.. स्वा० आ० ..	४	१३
यती	.. स्वा० आ० ..	३	१३	रघि	.. चु० प० ..	३१	२४
यभ	.. स्वा० प० अ०	१४	२१	रङ्ग उ० ..	३२	१८
यम	.. स्वा० प० ..	१४	२१	रच	३२	२०
यम	.. स्वा० प० से०	१२	७	रञ्ज	.. दि० उ० अ०	२०	२०
यम	.. चु०	३०	५	रञ्ज	.. स्वा०	१५	६
यसु	.. दि०	२१	१२	रट प० से०	६	१५
यत्रि	.. चु०	२८	४	रठ	६	२५
या	.. अ०	१७	१०	रण	८	६
याचृ	.. स्वा० उ० ..	१३	५	रण	११	२३
यु	.. अ० प० ..	१६	१८	रणिः	१२	४
यु	.. चु० आ० ..	३१	५	रद	३	२१
युगि	.. स्वा० प० ..	४	२४	रध	.. दि०	२१	५
युक्क	५	१७	रप	.. स्वा०	७	१८
युज	.. दि० आ० अ०	२०	२३	रफ	७	२१
युज	.. चु० उ० से०	३२	२	रफि	७	२१
युजिर्	.. रु० .. अ०	२६	४	रवि आ० ..	७	१२
युज्	.. क्रा०	२७	१४	रवि प० ..	८	१५
युट्ट	.. चु० प० से०	२८	११	रभ आ० ..	१४	१७
युट्ट	.. स्वा० आ० ..	३	१३	रभि	७	१४
युध	.. दि० .. अ०	२०	२२	रमु अ०	१२	२१
युपु प० से०	२१	१८	रय से०	८	१४
यूप	.. स्वा० आ० ..	१०	१७	रस प० ..	१०	२३
रञ्ज प० ..	१०	१२	रस	.. चु० उ० ..	३३	१८
रख	४	२१	रह	.. स्वा० प० ..	११	१
रखि	४	२१	रह	.. चु० उ० ..	३२	१८
रग	.. चु०	३१	१४	रह	.. चु०	३०	७

रेफारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	रेफारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
रहि	.. भ्वा० प० से०	११	१	रुट	.. चु० उ० से०	३१	२३
रहि	.. चु० .. ,	३१	२४	रुटि	.. भ्वा० प० ,	६	२२
रा	.. अ० .. अ०	१७	१२	रुठ	.. " " "	७	१
राखृ	.. भ्वा० .. से०	४	१८	रुठि	.. " " "	६	२३
राघृ	.. " आ० ..	४	१५	रुठि	.. " " "	७	३
राजृ	.. " उ० ..	१२	८	रुड	.. चु० .. "	३०	१८
राध	.. दि० प० अ०	२१	२	रुदिर्	.. अ० .. "	१७	१५
राध	.. स्वा० .. ,	२२	१०	रुध	.. दि० आ० अ०	२०	२३
रासृ	.. भ्वा० आ० से०	१०	२	रुधिर्	.. रु० उ० ..	२६	३
रि	.. तु० प० अ०	२५	१	रुपु	.. दि० प० से०	२१	१८
रि	.. भ्वा० .. ,	२२	१७	रुग	.. तु० .. अ०	२५	८
रिख	.. भ्वा० .. से०	४	२३	रुष	.. भ्वा० .. से०	१०	१८
रिगि	.. " " "	४	२३	रुष	.. " " "	१०	१७
रिच	.. चु० उ० ..	३२	४	रुष	.. दि० .. "	२१	१८
रिचिर्	.. रु० उ० अ०	२६	४	रुष	.. चु० .. "	३०	१८
रिफ	.. तु० प० से०	२३	१४	रुषि	.. " " "	३१	२३
रिवि	.. भ्वा० .. ,	८	१५	रुह	.. भ्वा० .. अ०	१३	१
रिश	.. तु० .. अ०	२५	८	रुच	.. चु० उ० से०	३३	७
रिष	.. भ्वा० .. से०	१०	१८	रुप	.. चु० .. "	३३	१८
रिष	.. दि० .. ,	२१	१८	रेक्क	.. भ्वा० आ० ..	४	८
रिह	.. तु० .. ,	२३	१५	रेखा	.. कं० प० ..	३४	१३
री	.. क्रा० .. अ०	२८	६	रेटृ	.. भ्वा० उ० ..	१३	५
रीड्	.. दि० आ० से०	२०	५	रेपृ	.. " आ० ..	७	११
रु	.. अ० प० ..	१६	१८	रेभृ	.. " " "	७	१३
रुड्	.. भ्वा० आ० अ०	१४	७	रेवृ	.. " " "	८	२०
रुच	.. " " से०	११	६	रेवृ	.. " " "	१०	१
रुज	.. चु० उ० ..	३१	२५	रै	.. भ्वा० प० अ०	१३	२३
रुजी	.. तु० प० ..	२५	८	रीडृ	.. " " से०	७	५
रुट	.. भ्वा० आ० ..	११	७	रीडृ	.. " " "	७	५

लकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	लकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
लज्ज	चु० आ० से०	३१	१	लर्व	” प० से०	७	२१
लघ	” प० ”	२८	५	लल	चु० आ० ”	३०	२४
लख	स्वा० ” ”	४	२१	लष	स्वा० उ० से०	१३	१३
लखि	” ” ”	४	२१	लस	” ” ”	१०	२३
लगि	” ” ”	४	२२	लस	चु० उ० ”	३१	१२
लगे	” ” ”	११	२१	लसजी	तु० आ० ”	२३	८
लघि	” आ० ”	४	१३	ला	अ० प० अ०	१७	१२
लघि	” ” ”	४	१४	लाखु	स्वा० ” से	४	१८
लघि	” प० ”	४	२५	लाघृ	” आ० ”	४	१५
लघि	चु० उ० ”	३१	२१	लाकि	” प० ”	५	१४
लघि	” ” ”	३१	२४	लाज	” ” ”	५	२२
लच्छ	स्वा० प० ”	५	१४	लाजि	” ” ”	५	२३
लज	” ” ”	५	२२	लाट	कां० ” ”	३४	१२
लज	चु० उ० ”	३३	१४	लाभ	चु० उ० ”	३३	१८
लजि	स्वा० प० ”	५	२२	लिख	तु० प० ”	२४	६
लजि	चु० ” ”	२८	१३	लिगि	स्वा० ” ”	४	२३
लजि	” उ० ”	३१	२३	लिगि	चु० उ० ”	३१	१५
लजी	तु० आ० ”	२३	८	लिट	कां० प० ”	३४	१२
लजी	चु० प० ”	२८	७	लिप	तु० उ० अ०	२५	१५
लट	स्वा० ” ”	६	१६	लिश	दि० आ० ”	२०	२४
लड	” ” ”	७	६	लिश	तु० प० ”	२५	८
लड	चु० ” ”	२८	५	लिह	अ० उ० ”	१६	५
लडिः	स्वा० ” ”	१२	३	ली	क्रा० प० ”	२८	६
लडि	चु० ” ”	२८	६	ली	चु० उ० से०	३२	३
लडि	” उ० ”	३१	२४	लीङ्	दि० आ० अ०	२०	५
लप	स्वा० प० ”	७	१८	लुजि	चु० प० से०	२८	१३
लपि	” आ० ”	७	१२	लुष	स्वा० ” ”	५	११
लपि	” ” ”	७	१२	लुट	” ” ”	६	१८
सभप्	” ” अ०	१४	१७	लुट	स्वा० आ० ”	११	७

लकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	लकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
लुट	तु० प० से०	२४	१०	लोट	कं० प० से०	३४	३
लुट	चु० उ० "	३१	२०	लोट्ट	भा० " "	७	५
लुटि	भा० प० "	६	२३	लोट्ट	" आ० "	६	४
लुठ	" " "	७	१	वक्ष	" प० "	१०	१३
लुठ	" आ० "	११	७	वकि	" आ० "	४	१०
लुठ	तु० प० "	२४	१०	वकि	" " "	४	१२
लुठ	दि० " "	२१	१६	वख	" प० "	४	२०
लुठि	भा० " "	६	२३	वखि	" " "	४	२०
लुठि	" " "	७	२	वगि	" " "	४	२२
लुठि	" " "	७	३	वधि	" आ० "	४	१४
लुणठ	चु० " "	२८	१२	वच	अ० प० अ०	१७	१३
लुथि	भा० " "	३	१८	वच	चु० उ० से०	३२	१२
लुप	दि० " "	२१	१८	वज	" प० "	३०	३
लुप्लु	तु० उ० अ०	२५	१४	वञ्च	भा० " "	५	११
लुबि	भा० प० से०	७	२३	वञ्चु	चु० आ० "	३१	३
लुबि	चु० " "	३०	१४	वट	भा० प० "	६	१६
लुभ	दि० " "	२१	२०	वट	चु० उ० "	३२	१८
लुभ	तु० " "	२३	१४	वट	" " "	३३	१४
लूज्	क्रा० उ० "	२७	१७	वटि	" प० "	२८	१८
लूष	भा० प० "	१०	१७	वटि	" उ० "	३३	१४
लूष	चु० " "	३०	१	वडि	" प० "	२८	१८
लोट	कं० " "	३४	३	वण	भा० " "	८	६
लैपृ	भा० आ० "	७	११	वद	" " "	१५	१६
लैला	कं० प० "	३४	४	वद	चु० उ० "	३२	१२
लौक	भा० आ० "	४	८	वदि	भा० आ० "	३	७
लौक	चु० उ० "	३१	२२	वध	चु० प० "	२८	८
लौचृ	भा० आ० "	५	३	वन	भा० " "	८	८
लौचृ	चु० उ० "	३१	२२	वन	" प० "	८	८
				वनु	" " "	११	२४

वकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	वकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
वनु ..	भा० प० से०	१२	६	वसु ..	दि० प० से०	२१	१३
वनु ..	त० आ० „	२७	६	वह ..	भा० उ० अ०	१५	८
वप ..	भा० उ० „	१५	८	वह ..	उ० „ से०	३१	२२
यम ..	„ प० „	१२	६	वा ..	अ० प० अ०	१७	१०
वम ..	„ „ „	१२	१८	वाञ्छि ..	भा० „ से०	१०	१५
वय ..	„ आ० „	८	१३	वाच्छि ..	„ „ „	५	१५
वर ..	उ० उ० „	३२	१७	वाडु ..	„ आ० „	६	११
वर्च ..	भा० आ० „	५	३	वात ..	उ० उ० „	३२	२५
वर्ण ..	उ० प० „	२८	८	वाहृतु ..	दि० आ० „	२०	१५
वर्ण ..	„ „ „	२८	८	वायु ..	„ „ अ०	२०	१५
वर्ण ..	„ उ० „	३३	२०	वास ..	उ० उ० से०	३२	२५
वरण ..	कां० „ „	३४	८	विच्छ ..	तु० प० „	२५	१०
वर्द ..	उ० प० „	३०	१३	विच्छ ..	उ० उ० „	३१	२२
वर्ष ..	भा० आ० „	८	२६	विचिर् ..	रु० „ अ०	२६	६
वर्ह ..	„ „ „	१०	५	विजिर् ..	जु० „ „	१८	२
वर्ह ..	उ० उ० „	३०	१६	विजी ..	तु० आ० से०	२३	८
वल्का ..	„ प० „	२८	१५	विजी ..	रु० प० „	२६	१६
वलिः ..	भा० „ „	१२	४	विट ..	भा० „ „	६	२०
वल्गु ..	„ „ „	१२	४	विष्टु ..	„ आ० „	३	१३
वल्गु ..	कां० „ „	३४	२	विद ..	अ० प० „	१७	१५
वल्ह ..	भा० आ० „	१०	५	विद ..	दि० आ० अ०	२०	२२
वल्ह ..	उ० उ० „	३१	२२	विद ..	रु० „ „	२६	१२
वश ..	अ० प० „	१८	२	विद ..	उ० „ से०	३१	५
वष्क ..	उ० उ० „	३३	१३	विद्लु ..	तु० उ० अ०	२५	१४
वस ..	भा० प० अ०	१५	११	विध ..	„ प० से०	२३	१८
वस ..	अ० आ० „	१६	११	विल ..	„ „ „	२४	४
वस ..	उ० उ० से०	३१	१६	विल ..	उ० „ „	२८	२४
वस्त्र ..	भा० आ० „	४	१३	विल ..	„ „ „	२८	२४
वस्तु ..	उ० „ „	३०	२३	विश ..	तु० „ अ०	२५	१०

वकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	वकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
विष	क्या० प० से	२८	१७	वेधृ	श्वा० आ० से०	३	१३
विष्णु	चु० उ० अ०	१८	२	वेद्	कां० प०	३४	५
विष्क	चु० आ० से०	३०	२४	वेनृ	श्वा० उ०	१३	८
विस	दि० प०	२१	१५	वेपृ	” आ०	७	१०
वी	अ० ” अ०	१७	८	वेल	चु० उ०	३२	२४
वीर	चु० उ० से०	३३	५	वेल्ल	श्वा० प०	८	४
वुजि	” प०	२८	१३	वेला	कां० ”	३४	११
वुल	” ”	२८	२४	वेल्ल	श्वा० ”	८	४
वृक	श्वा० आ०	४	११	वेवोड्	अ० ”	१७	२४
वृच	” ”	८	२२	वेष्ट	श्वा० आ०	६	३
वृङ्	क्रा० आ०	२८	११	वै	” प० अ०	१३	२३
वृजी	अ० ”	१६	१३	व्यच	तु० ” से०	२३	११
वृजी	रु० प०	२६	१७	व्यथ	श्वा० आ०	११	१३
वृजी	चु० उ०	३२	२	व्यध	दि० प०	२१	२
वृज्	स्वा० ”	२२	५	व्यय	श्वा० उ०	१३	११
वृज्	चु० ”	३२	२	व्यय	चु० ”	३३	१८
वृण	तु० प०	२३	२०	व्रण	चु० ”	३३	२०
वृतु	श्वा० आ०	११	८	व्रश्चू	” प०	२३	११
वृतु	चु० उ०	३१	१३	व्री	क्रा० ” अ०	२८	६
वृधु	श्वा० आ०	११	१०	व्रीड्	दि० आ०	२०	५
वृधु	चु० उ०	३१	२३	व्री	क्रा० प०	२८	७
वृथ	दि० प०	२१	१७	व्युष	दि० ” से०	१८	१६
वृष	चु० आ०	३१	३	व्युष	” ”	२१	१४
वृहि	” उ०	३१	२२	व्युस्	” ”	२१	१४
वृह्	तु० प०	२४	१	वृड	तु० ”	२४	१३
वृ	क्रा० ”	२८	२	वृस	चु० ”	३०	१६
वृज्	” उ०	२७	१७	व्येज्	श्वा० उ० अ०	१५	१३
वेज्	श्वा० ” अ०	१५	१३	शक	दि० प० अ०	२१	३
वेणृ	” ” से०	१३	८	शकि	श्वा० आ० से०	४	१०

शकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	शकारादयः	गणादयः	पृ०
शलृ	स्वा० प० अ०	२२	१०	शंस	भा० प० से०	१०
शगि	भा० " से०	४	२२	शाखृ	" " "	४
शच	" आ० "	५	३	शाडृ	" आ० "	६
शट	" प० "	६	१६	शान	" " "	१५
शट	" " "	६	१८	शासु	अ० " "	१६
शठ	" " "	७	१	शासु	" " "	१७
शठ	चु० " "	२८	१२	शिच	भा० " "	८
शठ	" आ० "	३०	२६	शिखि	" प० "	४
शठ	" उ० "	३२	१७	शिघि	" " "	४
शडि	भा० आ० "	६	८	शिजि	अ० आ० "	१६
शण	" प० "	११	२३	शिज्	स्वा० उ० अ०	२२
शण	" " "	११	२३	शिट	भा० प० से०	६
शद्लृ	" आ० "	१२	२४	शिल	तु० " "	२४
शद्लृ	तु० प० "	२५	११	शिष	भा० " "	१०
शप	भा० उ० अ०	१५	७	शिष	चु० उ० "	३२
शप	दि० " "	२०	२०	शिप्लृ	रु० प० अ०	२६
शस्व	चु० प० "	२८	१०	शीक	चु० उ० से०	३१
शम	" आ० से०	३१	१	शीक	" " "	३२
शद्	" उ० "	३१	८	शीक	भा० आ० "	४
शसु	दि० प० "	२१	१०	शीड्	अ० " "	१६
शर्व	भा० " "	७	२२	शीभृ	भा० " "	७
शर्व	" " "	८	१३	शील	" प० "	८
शल	" आ० "	१२	१७	शील	चु० उ० "	३३
शलभ	" " "	७	१५	शुच	भा० प० "	५
शव	" प० "	१०	२५	शुचिर्	दि० उ० "	२०
शश	" " "	१०	२६	शुच्य	भा० प० "	८
शप	" " "	१०	१८	शुठ	" " "	७
शसि	" आ० "	१०	३	शुठ	चु० " "	३०
शसु	" प० से०	१०	२६	शुठि	भा० " "	७

शकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	शकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
शठि ..	भा० प० से०	७	३	शौट्ट ..	भा० प० से०	६	१४
शठि ..	चु० " "	३०	११	शकि ..	" आ० "	३	८
शध ..	दि० " अ०	२१	५	शगि ..	" प० "	४	२२
शध्व ..	भा० " से०	४	५	शण ..	" " "	११	२३
शध्व ..	चु० उ० "	३२	८	शण ..	चु० " "	२७	१७
शन ..	तु० प० "	२३	२२	शथ ..	क्रा० " "	११	२४
शभ ..	भा० आ० "	११	७	शथ :	चु० " "	२८	७
शभ ..	" प० "	७	२४	शथ ..	" उ० "	३२	६
शभ ..	त० " "	२३	१८	शथ ..	" " "	३२	२१
शभ ..	भा० " "	७	२४	शथि ..	भा० आ० "	३	१४
शभ ..	त० " "	२३	१८	शथ्य ..	क्रा० प० "	२८	१३
शल्क ..	चु० " "	३०	३	शथ्य ..	चु० उ० "	३२	१०
शस्व ..	" " "	३०	१	शमु ..	दि० प० "	२१	१०
शव ..	दि० " अ०	२१	२	शमु ..	भा० आ० "	७	१५
शूर ..	चु० आ० से०	३३	५	शकि ..	" " "	४	१०
शूरी ..	दि० " "	२०	१४	शगि ..	" प० "	४	२२
शूर्प ..	चु० प० "	३०	२	शथ ..	" " "	११	२४
शूल ..	भा० " "	८	१	शकि ..	" आ० "	४	१२
शूष ..	" " "	१०	१७	शच ..	" " "	५	४
शुधु ..	भा० आ० "	११	१०	शचि ..	" " "	५	४
शुधु ..	" उ० "	१३	८	शठ ..	चु० " "	२८	१२
शुधु ..	चु० " "	३१	१३	शठ ..	" उ० "	३२	१८
शु ..	क्रा० प० "	२८	२	शठि ..	" प० "	२८	१३
शिला ..	का० " "	३४	११	शभ ..	" " "	३०	५
शिल ..	भा० " "	८	५	शत ..	" " "	३०	४
शेह ..	" आ० "	८	२०	शल ..	भा० " "	८	६
शे ..	" प० अ०	१३	२३	शलक ..	चु० " "	२८	१४
शो :	दि० " "	२०	८	शल ..	भा० " "	८	६
शोण ..	भा० " से०	८	७	शलस ..	अ० " "	१७	२०

पकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	सकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
आ	भा० ॥ अ०	१२	२	अच	भा० आ० से०	५	३
आ	अ० ॥ ॥	१७	११	अच	॥ उ० ॥	१५	६
आखृ	भा० ॥ से०	४	२०	अच्च	॥ आ० अ०	१४	२२
आवृ	॥ आ० ॥	४	१६	अट	॥ प० से०	६	१८
अिज्	॥ उ० ॥	१३	१७	अणु	त० उ० ॥	२७	३
अिषु	॥ प० ॥	१०	२०	सत्र	तु० आ० ॥	३३	५
अिष	दि० ॥ अ०	२१	३	षद	॥ उ० ॥	३२	८
अिष	तु० ॥ से०	२८	१६	षद्लृ	भा० प० अ०	१२	२४
अिषु	भा० ॥ ॥	१०	२०	षद्ल	तु० ॥ ॥	२५	११
अि	॥ ॥ ॥	१५	१६	षन	भा० ॥ से०	८	८
अिता	॥ ॥ ॥	११	५	षप	॥ ॥ ॥	७	१८
अिदि	॥ आ० ॥	३	७	सपर	कां० ॥ ॥	३४	७
अमील	॥ ॥ ॥	८	२५	सभाज	तु० उ० ॥	३२	२६
अीज्	का० उ० अ०	२७	१२	षम	भा० प० ॥	१२	१३
अयुतिर्	भा० प० से०	३	१८	समी	दि० ॥ ॥	२१	१६
अु	॥ ॥ अ०	१४	२	षम्ब	तु० ॥ ॥	२८	१०
अैङ्	॥ आ० ॥	१४	८	सम्भूयस्	कां० ॥ ॥	३४	१६
अै	॥ प० ॥	१३	२३	षर्ज	भा० ॥ ॥	५	१८
अीक	॥ आ० से०	४	८	षर्व	॥ ॥ ॥	७	२२
अीणृ	॥ प० ॥	८	७	षर्व	॥ ॥ ॥	८	१३
अीणृ	॥ ॥ ॥	८	८	संवर	कां० ॥ ॥	३४	१६
अ्वस्त	॥ आ० ॥	४	१३	षल	भा० ॥ ॥	८	१६
अिबु	॥ प० ॥	८	८	षल	॥ ॥ ॥	८	६
अिबु	दि० ॥ ॥	१८	१४	षस्ज	॥ ॥ ॥	५	१३
अिगे	भा० ॥ ॥	११	२१	षस	॥ ॥ ॥	१८	२
अघ	स्वा० ॥ ॥	२२	१५	षस्ति	॥ ॥ ॥	१८	२
अङ्केत	तु० उ० ॥	३३	२	षह	॥ आ० ॥	१२	२१
अङ्क्याम	॥ ॥ ॥	३३	१५	सह	दि० प० ॥	१८	२०
				षह	तु० उ० से०	३२	२

सकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	षकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
साध	खा० प० अ०	२२	१०	षूद	जु० उ० से०	३१	८
षान्व	चु० " से०	२८	१४	सूचं	भा० आ० "	१०	१४
साम	" उ० "	३२	२३	सूच्यं	" प० "	८	२३
साख	" प० "	२८	१०	सृ	" " अ०	१४	१
सार	" उ० "	३२	२१	सृ	जु० " "	१८	५
षिच	तु० " "	२५	१५	सृज	दि० आ० "	२०	२४
षिज्	खा० " अ०	२२	३	सृज	तु० प० से०	२५	८
षिज्	क्रा० " "	२७	१३	सृज्	भा० " "	१४	२१
षिट	भा० प० से०	६	१७	षृभु	" " "	७	२३
षिधु	" " "	३	१८	षृभु	" " "	७	२४
षिधु	दि० " "	२१	५	सेक	" आ० "	४	८
षिधू	भा० " "	३	१८	षेलु	" प० "	८	५
षिभु	" " "	७	२४	षेव	" आ० "	८	१८
षिभु	" " "	७	२४	षै	" प० "	१३	२३
षिल	तु० " "	२४	५	षी	दि० " अ०	२०	८
षिवु	दि० " "	१८	१४	स्कन्दिर्	भा० प० "	१४	२०
षु	भा० " अ०	१४	२	स्कभि	" आ० से०	७	१४
षु	अ० " "	१७	४	सखद	" " "	११	१४
षुज्	खा० उ० "	२२	३	सखल	" प० "	८	५
सुख	चु० " से०	३३	१७	सखलिः	" " "	१२	४
सुख	क्र० प० "	३४	७	ष्टक	" " "	११	२०
षुर	तु० " "	२३	२२	ष्टगी	" " "	११	२१
षुह	दि० " "	१८	२०	ष्टन	" " "	८	८
षू	तु० " "	२५	३	ष्टभि	" आ० "	७	१४
षूह	अ० आ० "	१६	१६	ष्टम	" प० "	१२	१३
षूह	दि० " "	२०	२	ष्ठल	" " "	१२	१४
सूच	जु० उ० "	३२	२२	स्तन	जु० उ० "	३२	१८
सूच	" " "	३३	६	स्रसु	दि० प० "	१८	१६
षूद	भा० आ० "	३	११	स्रस्व	भा० आ० "	३	५

सकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	सकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
स्पदि ..	भा० आ० से०	३	८	स्फट ..	बु० आ० से०	३०	८
स्पश ..	" उ० "	१३	१२	स्मिङ् ..	भा० " अ०	१४	५
स्फर ..	तु० प० "	२४	१२	स्मिङ् ..	बु० प० "	२८	१६
स्पन्तू ..	भा० आ० "	११	१०	स्मिट ..	" " से०	२८	१५
स्यम ..	बु० " "	३०	२६	स्मिबु ..	दि० " "	१८	१४
स्यमु ..	भा० प० "	१२	१३	ध्विदा ..	भा० आ० "	११	५
स्त्रकि ..	" आ० "	४	८	ध्विदा ..	" प० "	१४	२०
स्त्रामु ..	" " "	७	१४	ध्विदा ..	दि० " "	२१	४
स्त्रमु ..	" " "	११	८	ष्टीम ..	" " "	१८	१८
सुंसु ..	" " "	११	८	स्त्रील ..	भा० " "	८	२५
ध्वञ्ज ..	" " अ०	१४	१७	स्कुञ्ज ..	क्रा० उ० अ०	२७	१३
ध्वद ..	भा० " से०	३	१०	स्कुदि ..	भा० आ० से०	३	७
ध्वद ..	बु० उ० "	३१	२५	ष्टुव ..	" " "	५	६
स्वन ..	भा० प० "	१२	४	ष्टुज् ..	अ० उ० अ०	१७	७
स्वन ..	" " "	१२	१३	ष्टप् ..	बु० प० से०	३०	१८
ध्वप ..	अ० " अ०	१७	१८	ष्टुमु ..	भा० आ० "	७	१६
स्वर ..	बु० उ० से०	३२	१८	ष्टु ..	अ० प० अ०	१७	४
स्वर्द ..	भा० आ० "	३	१०	सुसु ..	दि० " से०	१८	१५
ष्टा ..	" प० अ०	१३	२५	सुङ्ग ..	" " "	२१	७
ष्ट्या ..	अ० " "	१७	११	स्फुट ..	भा० आ० "	६	४
स्ना ..	भा० " "	१२	६	स्फुट ..	तु० प० "	२४	८
स्फायी ..	" आ० से०	८	१६	स्फुट ..	बु० उ० "	३१	१०
स्वाद ..	" " "	३	१२	स्फुटिर् ..	भा० प० "	६	२३
ष्टिघ ..	स्वा० " "	२२	१२	स्फुड ..	तु० " "	२४	१३
ष्टिपृ ..	भा० " "	७	८	स्फुडि ..	बु० " "	२८	४
ष्टिम ..	दि० प० "	१८	१८	स्फुर ..	तु० " "	२४	१२
ष्णिह ..	" " "	२१	७	स्फुर्का ..	भा० " "	५	१६
ष्णिह ..	बु० " "	२८	१५	स्फुल ..	तु० " "	२४	१२
स्फिट ..	" " "	२८	१५	स्तु ..	भा० " अ०	१४	२

वकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०	हकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
अथूल	चु० उ० से०	२३	५	हय	भा० प० से०	८	२३
स्फूर्जा	भा० प०	५	२१	हर्य	" " "	८	२४
ष्टु	" " "	१०	१२	हल	" " "	१२	१५
ष्टुह	तु० " "	२४	२	हसे	" " "	१०	२४
स्तु	खा० उ० अ०	२२	४	हाक्	जु० " अ०	१८	१८
स्तु	" प० "	२२	८	हाड्	" भा० "	१८	१६
स्तुश	तु० " "	२५	८	हि	खा० प० "	२२	८
स्तुश	चु० आ० से०	३०	२२	हिक्क	भा० उ० से०	१३	४
स्तुह	" उ० "	३२	२१	हिट	" प० "	६	२०
स्तु	भा० प० अ०	१२	१	हिठ	क्रा० " "	२८	१८
स्तु	" " "	१४	१	हिडि	भा० आ० "	६	६
स्तु	खा० " "	२२	८	हिल	तु० प० "	२४	५
स्तु	भा० " "	१३	२६	हिवि	भा० " "	८	१४
स्तु	क्रा० " से०	२८	२	हिष्क	चु० उ० "	३०	२४
स्तुज	" उ० "	२७	१७	हिसि	र० प० "	२६	१५
ष्टेपु	भा० आ० "	७	८	हु	जु० " अ०	१८	८
स्तेन	चु० उ० "	३३	२	हुडि	भा० आ० से०	६	६
स्तेक	भा० आ० "	४	८	हुडि	" " "	६	८
स्त्यै	" प० अ०	१३	२२	हुडु	" प० "	७	५
ष्टै	" " "	१३	२३	हुडु	अ० भा० अ०	१८	५
ष्ट्यै	" " "	१३	२२	हुच्छी	भा० प० से०	५	१६
ष्ट्यै	" " "	१३	२४	हुल	" " "	१२	१७
स्तोम	चु० उ० से०	३३	१५	हुडु	" " "	७	५
हट	भा० प० "	६	१८	होडु	" " "	६	१०
हठ	" " "	६	२५	हु	" " अ०	१४	१
हद	" आ० अ०	१४	१७	ह	जु० " "	१८	५
हन	अ० प० "	१६	३	हज	भा० उ० "	१३	१८
हम्	भा० " से०	८	१०	हणीड्	क्रा० आ० से०	३४	१३
				हष	दि० प० "	२१	१८

हकारायः	गणादयः	पृ०	पं०	हकारादयः	गणादयः	पृ०	पं०
हृषु	भा० प० से०	१०	२२	हृगे	भा० प० से०	११	२१
हृठ	” आ० ”	६	६	हृस	” ” ”	१०	२३
हृह	” प० ”	११	१८	हृल	” ” ”	१२	१
हृहृ	” आ० ”	६	१०	हृल	” ” ”	१२	६
हृपृ	” ” ”	७	११	हृद	” आ० ”	३	१२
हृषु	” ” ”	१०	१	हृदी	” ” ”	३	१२
हृहृ	” प० ”	७	५	हृी	जु० प० अ०	१८	८
हृल	” ” ”	१२	१	हृीच्छ	भा० ” से	५	१५
हृल	” ” ”	१२	६	हृड्	अ० आ० अ०	१८	५
हृप	जु० ” ”	३०	१४	हृ	भा० प० से०	१३	२६
हृगे	भा० ” ”	११	२१	हृषु	” आ० ”	१०	१
हृस	” ” ”	१०	२२	हृज्	” उ० ”	१५	१३

इति

शुद्धिपत्रम् ॥

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	१३	अनिट्	अनिट्	२४	१०	श्लेषे	श्लेषणे
५	५	धारणे	धारणी	२८	१८	हिठ	हेठ
५	१०	कुच	कुच्च	३०	१	तृष	लृष
५	२२	भर्जने	भर्जने	३१	२५	आश्वा	आस्वा
६	१३	दाशीतिः	दाशीतिः	३२	३	क्षये	क्षेपे
८	६	वण	वण	३२	२६	समाज	सभाज
८	२२	०	मव्यवन्धने	३५	६	४	४
८	२३	पर्याप्ति	पर्याप्ति	३७	३५	२४	१३
१०	१२	ष्टच्च	ष्टृच्च	३७	४५	८	२४
११	२४	वनच	चनच	४०	३८	०	क्षमूषदि० प० से०
१६	८	दाक्षितो	दाक्षी	४२	३६	भलम्	गलम्
१८	८	हृ	ह्री	४३	१८	८	२८
१८	१६	०	अनुदाक्षी	४४	२३	०	०
१८	७	भर्त्सन	भर्त्सन	४६	२६	४	२३
२०	६	पीडू	पीडू	४६	२७	जुडू	जुड
२१	१३	०	व्युषविभागे	४६	३७	जृ	जृ
२१	१४	व्युषविभागे	०	४७	११	टूल	टूल
२२	१८	दृ	दृ	४८	२२	तृषत्तु०	०
२३	२०	मृड	मृण	५४	२५	पूड	पूड

इति

वेदाङ्गप्रकाशः ॥

— ३ * ८ —

ये पुस्तकें “वैदिकयंत्रालय” प्रयाग में रोक दाम भेजने से मिल सकते हैं:—

१	वर्णोच्चारणशिक्षा	३
२	संधिविषय	४
३	नामिक	५
४	कारकीय	६
५	सामासिक	७
६	स्त्रैणताद्वित	८
७	अव्ययार्थ	९
८	आख्यातिक	१०
९	सौवर	११
१०	पारिभाषिक	१२
११	धातुपाठ	१३
१२	गणपाठ	१४
१३	उणादिकोश	१५
१४	निघंटु	१६
	योग	१७

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

— ॐ —

तत्रत्यः ।

चतुर्दशो भागः ॥

गणपाठः ।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्याम्

एकादशो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।

पण्डितज्वालादत्तशर्मा संशोधितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां चतुर्दशं पुस्तकम् ।

मुन्शी समर्थदान के प्रबन्धसे

वैदिक ग्रन्थालय प्रयाग में मुद्रित हुआ

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि

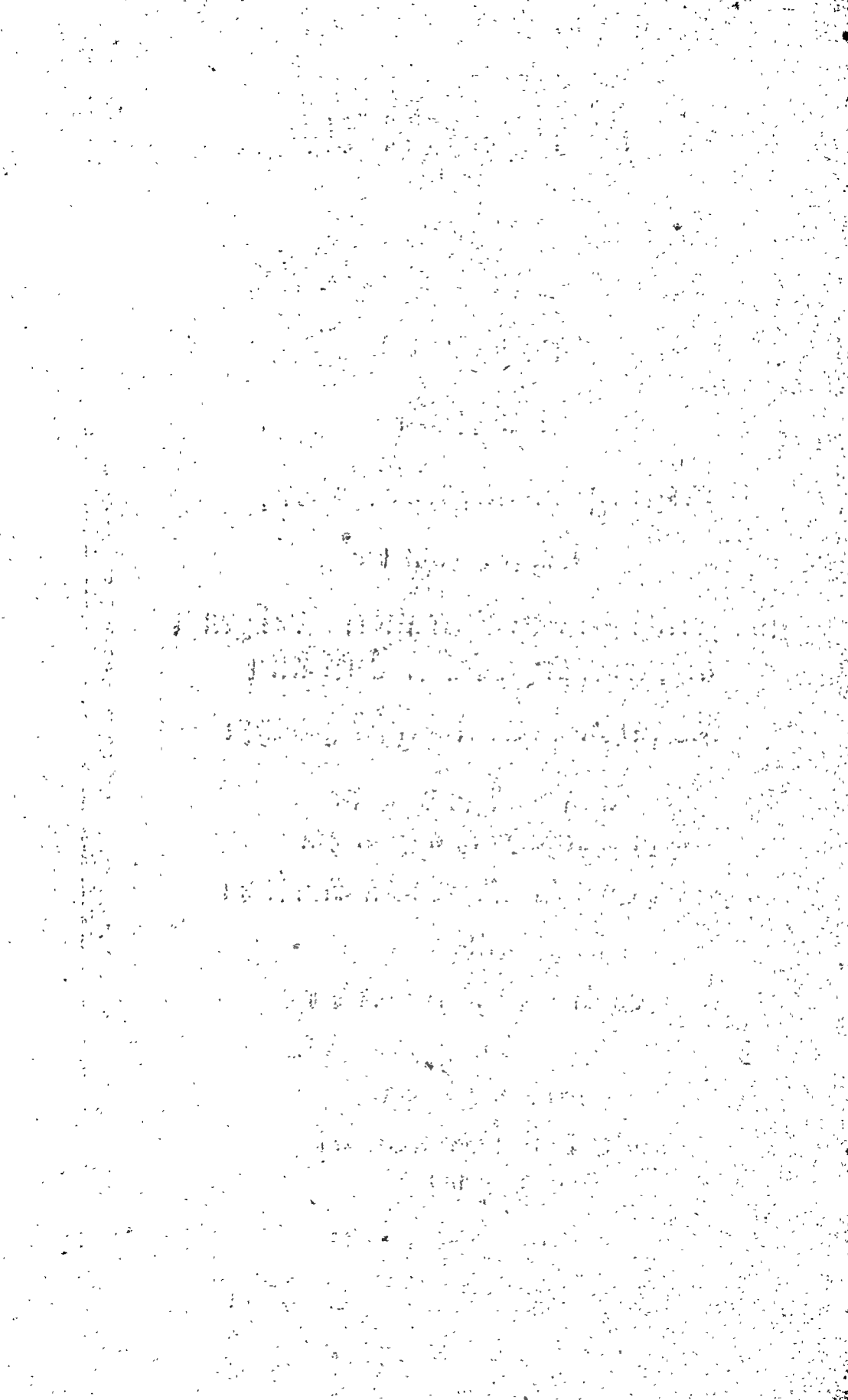
इस की रजिस्ट्री कराई गई है ॥

— ००० —

संवत् १८४० श्रावण कृष्ण १४

पहिली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ११)



अथ गणानां सूचीपत्रम् ॥

—३:३:६—

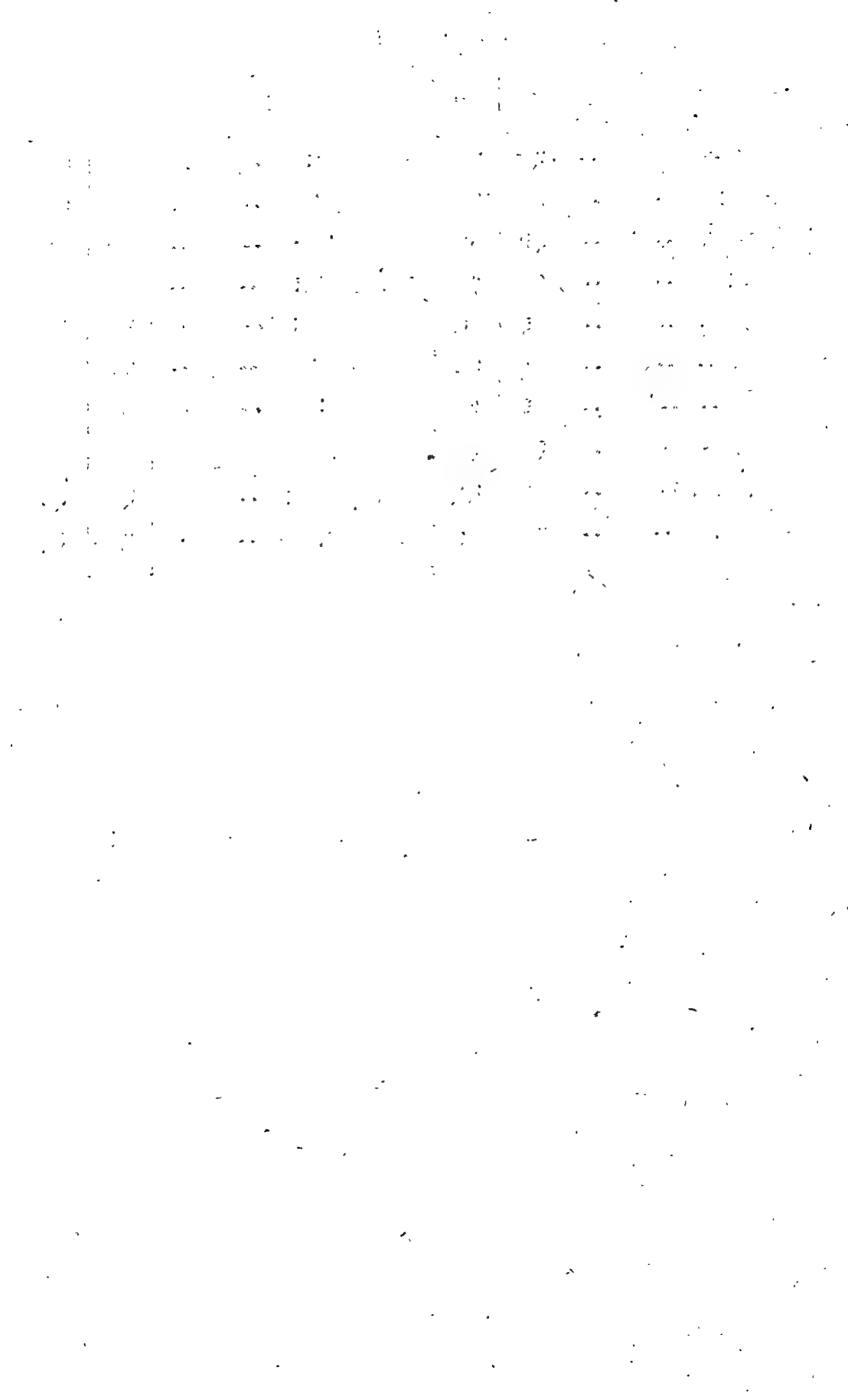
गणाः	पृ०	पं०	गणाः	पृ०	पं०
अ			उक्तरादयः	३०	४
अक्षयूतादयः	३७	१८	उत्तादयः	१८	२६
अङ्गुल्यादयः	४८	१२	उत्संगादयः	३७	१०
अजादयः	१६	५	उद्गात्रादयः	४३	६
अजिरादयः	५४	२०	उपकादयः	१४	८
अध्यात्मादयः	३३	२४	उरःप्रभृतयः	५०	२२
अनुप्रवचनादयः ..	४१	४	ऊ		
अनुशतिकादयः	५५	८	ऊर्च्यादयः	५	१३
अपूपादयः	३८	१२	क		
अर्धर्वादयः	११	१०	कगयनादयः	३४	५
अर्धमादयः	४७	३	कृश्यादयः	२८	३
अरौहणादयः	२७	२३	ऐ		
अश्मादयः	२८	१८	ऐषुकार्यादयः	२६	६
अश्वादयः	२१	१७	क		
अश्व्यादयः	५३	२७	कच्छादयः	३२	७
अश्व्यादयः	३८	२५	कडारादयः	१०	१०
अश्वपत्यादयः	१८	२०	कण्वादयः	३१	११
आ			कच्यादयः	३०	१७
आकर्षादयः	४५	१०	कथादयः	३८	१८
आचितादयः	५३	१३	कक्यादयः	५२	१५
आहिताग्न्यादयः ..	१०	४	कर्णादयः	२८	३
उ			कर्णादयः	४४	४
उक्थादयः	२६	१६	कल्याण्यादयः	२३	६
उक्थादयः	५०	२६			

गणाः	पृ०	पं०	गणाः	पृ०	पं०
कंयोजादयः	२४	१८	गङ्गादयः	३२	१३
कस्त्रादयः	५६	८	गुडादयः	३८	२४
क्रत्वादयः	५२	२१	गुह्यादयः	२३	८
क्रमादयः	२६	२१	गोपवनादयः	१३	८
कार्त्तिकीजपादयः ..	५१	१३	गोषदादयः	४५	४
काशादयः	२०	१०	गौरादयः	१६	१८
काश्यादयः	३१	१६	गौरादयः	५४	४
काष्ठादयः	५५	२१	घ		
किशरादयः	३८	४	घोषादयः	५२	८
किंशुलादयः	५४	१५	च		
कुक्कादयः	१८	२०	चतुर्वर्णादयः	४२	१५
कुम्भपदीप्रभृतयः ..	५०	१४	चादयः	४	११
कुमुदादयः	२८	१५	चिह्णादयः	५२	२४
कुमुदादयः	२८	७	चूर्णादयः	५३	४
कुर्वादयः	२३	१७	छ		
कुलालादयः	३५	११	छादयः	३८	८
कुम्भनादयः	५६	२५	छेदादयः	४०	१०
कृतापकृतादयः	७	१७	त		
कृशाश्वादयः	२७	२८	तन्नादयः	३४	२५
कोटरादयः	५४	१५	तारकादयः	४४	११
क्रोडादयः	१७	२३	तालादयः	३६	४
क्रौञ्चादयः	१८	१३	तिककितवादयः ..	१३	१४
ख			तिकादयः	२४	४
खण्डिकादयः	२५	८	तिष्ठद्गुप्रभृतयः ..	६	५
ग			तुदादयः	४६	२०
गम्यादयः	१५	८	तृणादयः	२८	१३
गर्गादयः	२१	४	तौल्य्यादयः	१२	१५
गवादयः	३८	४	द		
गवाश्वप्रभृतयः	१०	१८	दण्डादयः	४०	१५
			दधिपयआदयः	११	३

गणाः	पृ०	पं०	गणाः	पृ०	पं०
दामन्यादयः	४८	२०	प्रवृद्धादयः	५३	१७
दासीभारादयः	५१	२६	पात्रिसम्मितादयः	६	१८
द्वारादयः	५४	२७	पामादयः	४६	७
दिगादयः	३३	११	पाशादयः	२५	१४
द्विदण्डादयः	५०	४	प्रादयः	५	७
दृढादयः	४१	१७	पितृकादयः	४६	८
देवप्रथादयः	४७	२४	प्रियादयः	५४	१०
ध			पीलवादयः	४४	५
धूमादयः	३१	२५	पुरोहितादयः	४२	२०
न			पुष्करादयः	४७	१३
नडादयः	२०	४	पृष्ठादयः	४१	१०
नडादयः	३०	१३	प्रेक्षादयः	२८	१५
नद्यादयः	३०	२२	पैलादयः	१२	८
न्यङ्कादयः	५५	१४	ब		
निरुद्धादयः	५३	२१	बलादयः	२८	२७
निष्कादयः	३८	१८	बलादयः	४७	१८
प			ब्राह्मणादयः	४१	२४
पक्षादयः	२८	२८	विदादयः	२०	१८
प्रगदिनादयः	२८	८	विल्वादयः	३४	१७
प्रकृत्यादयः	१०	१४	वीक्षादयः	४६	१४
प्रज्ञादयः	४८	२१	भ		
प्रतिजनादयः	३८	१४	भर्गादयः	२४	२३
परिमुखादयः	३३	१८	भस्त्रादयः	३७	१४
पर्णादयः	३६	२६	भिचादयः	२५	४
पर्वादयः	४८	२६	भिदादयः	१५	१४
पलयादयः	३१	५	भीमादयः	१५	२२
पलाशादयः	३५	२२	भृशादयः	१४	२०
पक्षादयः	३६	१४	भौरिकादयः	२६	५

गणाः	पृ०	पं०	गणाः	पृ०	पं०
ल			वंशादयः	४०	५
मध्वादयः	२८	२५	वसंतादयः	२६	२५
मनोज्ञादयः	४३	२१	वह्नादयः	१७	१५
मयूरव्यंसकादयः	८	८	व्याघ्रादयः	७	६
महिष्यादयः	३७	२४	वाकिनादयः	२४	१३
मालादयः	५२	१८	वाह्नादयः	१८	८
य			विनयादयः	४८	१५
यवादयः	५६	४	विमुक्तादयः	४८	२२
यस्कादयः	१२	२५	व्युष्टादयः	४०	२०
याजकादयः	८	८	वृषादयः	५१	६
यावादयः	४८	१०	वेतनादयः	३७	४
युक्तारोह्यादयः	५२	३	श		
युवादयः	४३	१२	शण्डिकादयः	३४	१७
यौधेयादयः	२४	२४	शर्करादयः	४८	७
यौधेयादयः	४८	१	शरादयः	३५	२७
र			शरादयः	५४	२३
रजतादयः	३६	८	शाकपार्थिवादयः	८	३
रसादयः	४५	१७	शाखादयः	४८	३
राजदन्तादयः	८	१४	शङ्खरादयः	१८	५
राजन्यादयः	२५	१८	शिवादयः	२२	४
रिवत्यादयः	२३	१३	शुण्डिकादयः	३४	१२
ल			शुभादयः	२२	१७
लोमादयः	४६	६	श्रेण्यादयः	७	८
लोहितादयः	१५	५	श्रीण्डादयः	६	१५
व			श्रीनकादयः	३५	५
वनस्पत्यादयः	५३	८	स		
वरणादयः	२८	२०	संकलादयः	२७	५
वराहादयः	३८	१२	संकाशादयः	२८	२४

गणाः	पृ०	पं०	गणाः	पृ०	पं०
सख्यादयः	२८	२०	सिध्मादयः	४५	२१
संतापादयः	४०	२६	सिध्वादयः	३४	२३
संधिवेलादयः	३३	५	सुखादयः	४७	८
संपदादयः	१५	१८	सुतंगमादयः	२८	६
सर्वादयः	३	८	सुवास्वादयः	२७	१३
सवनादयः	५६	२०	सुषामादयः	५६	१४
स्वरादयः	३	१४	स्थूलादयः	४८	५
स्वस्वादयः	१६	१४	ह		
साक्षात्प्रभृतयः	५	२२	हरीतक्यादयः	३६	२०
स्वागतादयः	५५	४	हस्यादयः	५०	११



भूमिका ।

—0—

इस पुस्तक का नाम गणपाठ इस लिये है कि एकत्र मिला के बहुत २ शब्दों का समुदाय पठित है । यह पुस्तक पाणिनि मुनि जी का बनाया है इस के कार्य-कार अष्टाध्यायी के सूत्र हैं यद्यपि काशिकादि पुस्तककों में तत्तत् सूत्र पर गण-पाठ भी छप गया है तथापि बीच २ सूत्रों के दूर २ होने से गण भी दूर २ हैं इस से कष्टस्थ करना विचारना वा अनुवृत्तिकरना कठिन होता था इस लिये उस २ गणकार्य विधायक सूत्र को सार्थक लिख कर एक दो उदाहरण देके जहां २ एक ऐसा (:--) चिह्न बना के लिखा है वहां २ से गण पाठ का आरम्भ समझना चाहिये और जिस २ शब्द की विशेष व्याख्या अपेक्षित थी उस २ पर एक आदि अङ्क लिख और रेखा देकर नीचे विवरण (जिस को नोट कहते हैं) लिखा है । उस को भी यथायोग्य समझ लेना चाहिये इन के अर्थ अष्टाध्यायी निरुक्त निघंटु और उणादिकोष तथा प्रकृति प्रत्ययादि की जहा से समझ लेना योग्य हैं । यद्यपि भ्वादि और उणादि भी एक २ सूत्र पर गण हैं तो भी उन के बड़े और विलक्षण (१) होने से पृथक् श्रीपाणिनि मुनि जी ने लिखे हैं और सत्र के समान वार्त्तिक गण है उन को भी वार्त्तिक के आगे लिख दिया है जो साधारणता से व्याकरण के बोध युक्त हैं वे भी इन का रूप और अर्थ पढ़ पढ़ा सकते हैं ॥

अक्षमतिविस्तरेण विपश्चिह्नहरशिरोमणिषु ॥

स्थान महाराणा जी का उदयपुर }
मिति माघ शुक्ला १० सं० १८३८ }

दयानन्द सरस्वती

(१) भ्वादि धातु अनुबन्धसहित और उणादि में प्रकृतिप्रत्ययसाधुत्व पूर्वक लेख है और सर्वादि में सिद्ध शब्दों का पाठ अनुक्रम से है इसी लिये उन दोनों गणों से यह और इस से वे पृथक् २ रखे हैं ।



ओम्

अथ गणपाठः ।

*

१—सर्वादीनि सर्वनामानि ॥ अ० ॥ १ । १ । २७ ॥

सर्वादीनि प्रातिपदिकानि सर्वनामसंज्ञानि भवन्ति । सर्वे । सर्वस्मै । सर्वेषां नामानि सर्वनामानोति समासेनान्वर्थसंज्ञा विज्ञानात् सर्वो नाम कश्चिन् मनुष्यविशेषस्तस्मै सर्वाय देहीति सर्वनामसंज्ञा न भवति । अत एव विशेषणवाचकानि सर्वादीनि प्रातिपदिकानि विज्ञेयानि :-

सर्व । विश्व । उभ । उभय । उतर । उत्तम । इतर । अन्य । अन्यतर । त्व । त्वत् । नेम । सम (१) सिम (२) पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसंज्ञायाम् ॥ स्वमतिज्ञातिधनाख्यायाम् ॥ अन्तरस्वहिर्योगोपसंव्यानयोः ॥ त्वदातद् । यद् । एतद् । इदम् । अदस् । एक । द्वि । युष्मद् । अस्मद् । भवतु । किम् । इति सर्वादिर्गणः ॥

२—स्वरादिनिपातमव्ययम् ॥ अ० ॥ १ । १ । ३७ ॥

स्वरादयश्च निपाताश्चैषां समाहारः । स्वरादिनिपातमव्ययसंज्ञं भवति । निपाताश्चादयो वक्ष्यन्ते :-

स्वर् । अन्तर् । प्रातर् । एते अन्तीदात्ताः । पुनर् । आद्युदात्तः । सनुतर् । उच्चैस् । नीचैस् । शनैस् । ऋधक् । आरात् । ऋते । युगपत् । पृथक् । अन्तीदात्ताः । ह्यस् । श्वस् । दिवा । रात्रौ । सायम् । चिरम् । मनाक् । ईषत् । जोषम् । तूष्णीम् । बहिस् । आविस् । अवस् । अधस् । समया । निकषा । स्वयम् । नृषा । नक्तम् । नज् । हेतौ । अक्षा । इक्षा । सामि । ह्यप्रभृतयोऽप्यन्तीदात्ताः । वत् (३) सन् ।

(१) सूत्रान्तरे समानामिति निर्देशात्सर्वपर्यायस्यैव समशब्दस्य सर्वनामसंज्ञेयते तेन तुल्यवाचकस्य न भवति ॥

(२) इमानि त्रीणि सूत्राण्यष्टाध्याय्यामपि पठ्यन्ते । तत्र जसि विभाषा सर्वनामसंज्ञा । अत्र तु सामान्येन ॥

(३) वदिति तदन्तस्य वतिप्रत्ययान्तस्य ग्रहणम् । ब्राह्मणवत् । क्षत्रियवत् । स्थानिवत् । इत्यादि ॥

सनात् । सनत् । तिरस् । एत प्राद्युदात्ताः । अन्तरा । अयमन्तीदास्तः । अन्तरेण ।
ज्योक् । कम् । शम् । सना । सहसा । विना । नाना । स्वस्ति । स्वधा । अलम् ।
वषट् । अन्यत् । अस्ति । उपांशु । क्षमा । विहायसा । दीषा । सुधा । मिथ्या । (१)
क्तातोसुन्कसुनः । कृत्स्नकारान्तः सन्ध्यन्तरान्तोऽव्ययीभावश्च ॥ पुरा । मिथो । मिथस् ।
प्रवाहुकम् । आर्य्यहलम् । अभौक्षम् । साकम् । साईम् । समम् । नमस् । हिरक् ।
(२) तसिलादयः प्राक्पाशपः । शस्त्रभृतयः प्राक् समासान्तेभ्यः । मान्तः । कृत्वर्थः ।
तसिः । आर्घ्याली । प्रतान् । प्रशान् । इति खरादिर्गणः ॥

३—चादयोऽसत्त्वे ॥ अ० ॥ १ । ४ । ५७ ॥

अद्रव्यवाचकाश्चादयो निपातसंज्ञा भवन्ति । असत्त्वं इति किम् । पशुर्वैपुरुषः ।
अत्र पशुशब्दस्य द्रव्यवाचकत्वादव्ययसंज्ञा न भवति ।

च । वा । ह । अह । एव । एवम् । नूनम् । शश्वत् । युगपत् । सूपत् । कूपत् ।
कुवित् । नेत् । चेत् । चण् । कश्चित् । यत्र । नह । हन्त । माकिम् । नकिम् । माह ।
नज् । यावत् । तावत् । त्वा । त्वै । है । रे । औषट् । दौषट् । स्वाहा । वषट् ।
स्वधा । ओम् । किल । तथा । अथ । सु । स्म । अस्मि । अ । इ । उ । ऋ । लृ ।
ए । ऐ । ओ । औ । अम् । तक । उज् । उकज् । वेलायाम् । मात्रायाम् । यथा ।
यत् । यम् । तत् । किम् । पुरा । अहा । धिक् । हाहा । हे । है । प्याट् ।
पाट् । थाट् । अहो । उताहो । हो । तुम् । तथाहि । खलु । आम् । आहो ।
अशो । ननु । मन्ये । मिथ्या । असि । ब्रूहि । तु । नु । इति । इव । वत् ।
चन । वत । इह । आम् । शम् । कम् । अनुकम् । नहिकम् । हिकम् । सुकम् ।
सत्यम् । क्ताम् । वाकिर । नकिर् । आङ् । अ । मा । नो । ना । वाकिरादयः ।
प्रतिषेधे । उत । दह । अवा । इहा । सुधा । नोचेत् । नचेत् । नहि । जात ।
कथम् । कुतः । कुत्र । अव । अनु । हाहो । हैहा । ईहा । आहोस्वित् । क्स्वट् ।
खम् । दिध्या । पशु । षट् । सह । आनुषक् । अङ्ग । फट् । ताजक् । अये । अरे ।
चटु । वाट् । कुम् । खुम् । घुम् । हुम् । आईम् । शीम् । स म् । वै । त्वे । तुवै ।
न्वै । नुवै । अध । अधम् । स्मि । अच्छ । अदल् । दह । हिहे । हैहै । नौ । म ।

(१) क्तादीनामष्टाध्यायां सूत्रपाठे ग्रहणमस्ति । तेषामेवात्र खरादिषु परि-
गणनं कृतम् । न कश्चिद्विशेषः ॥

(२) तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिरिति सूत्रेण येषामव्ययसंज्ञा तेषामेव तद्धितप्रत्य-
यानामत्र विस्पष्टार्थं परिगणनम् ॥

आम् । शस् । शुकम् । शम् । वव । वात् । डिकम् । हिनुक । वशम् । शिकम् ।
श्वकम् । सनुकम् । नुकम् । अन्त । द्यौ । सुक् । भाजक् । अले । वट् । वाट् । किम् ।
उपसर्गविभक्तिस्वरप्रतिरूपकाश्च निपाताः (१) इति चादिर्गणः ॥

४—प्रादयः ॥ अ० ॥ १ । ४ । ५८ ॥

असत्त्ववाचकाः प्रादयो निपातसंज्ञा भवति । परानृणति । पराजयते इत्यादि ।
असत्त्व इति किम् । परा जयति सेना । अत्रोपसर्गसंज्ञयात्मनेपदं माभूत् :-
प्र । परा । अप । सम् । अनु । अव । निस । निर् । दुस् । दुर् । वि । आङ् । नि ।
अधि । अपि । अति । सु । उत् । अभि । प्रति । परि । उप । इति प्रादयः ॥

५—ज्ययादिच्विडाचश्च ॥ अ० ॥ १ । ४ । ६१ ॥

ज्ययादयः शब्दाश्च्यन्ताडाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञा भवन्ति । च्वि । शक्ती-
कृत्य । शक्तीकृतम् । डाच् । पटपटाकृत्य । पटपटाकृतम् । जरीकृत्य । शक्ती करोति
। पटपटाकरोति जरीकरोति । इत्यादि :-

जरी उररी । प्राप्ती । ताली । आताली । वेताली । धूसी । शकला । संशकला ।
धंसकला । भ्रंशकला ॥ शकलादयो हिंसायाम् ॥ गुरुगुधा पीडार्थे ॥ सजूः सहार्थे ॥
फलू । फली । विल्ली । आल्ली । इति विकारे ॥ आलोष्टी । कराली । केवाली ।
शेवाली । वर्षाली । मसमसा । मसमसा । एते हिंसायाम् । वषट् । वीषट् । औषट् ।
खाहा । खधा । बन्धा । प्रादुस् । अत् । आवित् । इत्यूयादयः ॥

६—साक्षात्प्रभृतीनि च ॥ अ० ॥ १ । ४ । ७४ ॥

साक्षादादीनि प्रातिपदिकानि कर्जयोगे विभाषा गतिसंज्ञानि भवन्ति ।
असाक्षात् साक्षात्कृत्वा । साक्षात्कृत्य । साक्षात्कृत्वा । इत्यादि :-

साक्षात् । मिथ्या । चिन्ता । भद्रा । लीचना । विभाषा । सम्पत्का । आस्था । अमा । अद्या
प्राजय्या । प्राजरुहा । वीजय्या । वीजरुहा । संसर्या । अर्थे । लवणम् । उणम् ।
शीतम् । उदकम् । आर्द्रम् (२) अग्नी । वशे । विकम्पने । विहसने । प्रहसने ।
प्रतपने । प्रादुस् । नमस् । आविस् । इति साक्षात्प्रभृतयः ॥

(१) उपसर्गप्रतिरूपकाः । अवदत्तम् । विदत्तम् । प्रदत्तम् । अत्राच उपसर्गादि-
ति तत्त्वं न भवति । विभक्ति प्रतिरूपकाः । चिरेण । चिरात् । चिराय । इत्यादयः ।
स्वरप्रतिरूपकाः :- अ । इ । उ । ऋ । ए । ओ । इत्येवमादयः ॥

(२) लवणादय आर्द्रपर्यन्ताः शब्दा गतिसंज्ञासम्बन्धेन मकारान्ता निपात्यन्ते
नतु सर्वत्र ॥

७—तिष्ठद्गुप्रभृतौनिच ॥ अ० ॥ २ । १ । १७ ॥

तिष्ठद्गुवाद्यः समुदायाः कृतसमासा अव्ययीभावसंज्ञका विभाषयानिपात्यन्ते । तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले दोहनाय स तिष्ठद्गु कालविशेषः । खलेयवादीनि प्रथमान्तानि विभक्त्यन्तरेण नैव संबध्यन्ते । अन्यपदार्थैश्च काले वर्तन्ते ।

तिष्ठद्गु । वहद्गु । आश्रयीगवम् । खलेयवम् । खलेवुसम् । नूनयवम् । लूयमानयवम् । पूतयवम् । पूयमानयवम् । संहृतयवम् । संक्रियमाणयवम् । संहृतवुसम् । संक्रियमाणवुसम् । एते कालशब्दाः । समभूमि । समपदाति । सुषमम् । विषमम् । निष्पमम् । दुष्पमम् । अपरसमम् । आश्रयीसमम् । ग्राह्यम् । प्रथम् । प्रमृगम् । प्रदक्षिणम् । अपरदक्षिणम् । सम्प्रति । असम्प्रति । पापसमम् । पुण्यसमम् । इच्छकर्मव्यतिहारे (१) इति तिष्ठद्गुप्रभृतयः ॥

८—सप्तमी शौण्डैः ॥ अ० ॥ २ । १ । ४० ॥

शौण्डैरिति बहुवचनादेव गणनिर्देशः । सप्तम्यन्तसुवन्तं शौण्डादिभिः सह विभाषा समस्यते सप्तमी तत्पुरुषश्च स समासो भवति । अक्षेषु धूर्त्तोऽवधूर्त्तः । अक्षकितवः । इत्यादि :-

शौण्ड । धूर्त्तः । कितव । व्याड । प्रवीण । संवीत । अन्तर । अधिपटु । पण्डित । कुशल । चपल । निपुण । संख्याड । मन्य । समीर । इति शौण्डादयः ॥

९—पात्रेसंमितादयश्च ॥ अ० ॥ २ । १ । ४८ ॥

पात्रे संमितादयः समुदायाः क्षेपे गम्यमाने सप्तमीतत्पुरुषसंज्ञा निपात्यन्ते :- (२) पात्रेसंमिताः । पात्रेबहुलाः । उदरकिमिः । कूपकच्छपः । कूपचूर्णकः । प्रवटकच्छपः । कूपमण्डूकः । कुम्भमण्डूकः । उदपानमण्डूकः । नगरकाकः । नगरवायसः । मातरिपुरुषः । पिण्डीशरः । गेहेशूरः । गेहेनर्दो । गेहेक्ष्वेडी । गेहेविजिती । गेहेव्याडः । गेहेहृत्तः । गेहेधृष्टः । गर्भहृत्तः । आखनिकवकः । गोष्ठेशूरः । गोष्ठेविजिती । गोष्ठेक्ष्वेडी । गेहेमेही । गोष्ठेपटुः । गोष्ठेपण्डितः । गोष्ठेप्रगल्भः । कर्णेष्टिभिः । कर्णेचुरचुरा । आकृतिगणोयम् ॥

(१) कर्मव्यतिहारार्थे समासान्तो इच्छप्रचयान्ता अपि शब्दा अव्ययीभावसंज्ञा भवन्ति । दण्डादण्डि । मुसलामुसलि । नखानखि । केशाकेशि । इत्यादि ॥

(२) येष्वगणे कान्तास्तत्र क्षेप इति पूर्वसूत्रेणैव सिद्धे पुनः पाठो युक्तारोह्यान्तर्गत पात्रेसंमितादीनां पूर्वपदाद्युदात्तार्थः ॥

१०—उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ॥ अ० ॥ २।१।५६॥

सामान्यधर्मस्याप्रयोगे सत्युपमेयवाची सुबन्तमुपमानवचनैर्व्याघ्रादिभिः सह विभाषा समस्यते। स समानाधिकरणतत्परुषः समासो भवति व्याघ्र इव पुरुषः पुरुषव्याघ्रः। पुरुषसिंहः। इत्यादि। सामान्याप्रयोग इति किम्। पुरुषो व्याघ्र इव शूरः। उपमानोपमेयप्रधानो धर्मः शूरत्वमत्र प्रयुज्यतेऽतः समासनिषेधः :-

व्याघ्र। सिंह। ऋच। ऋषभ। चन्दन। वृच। वृष। वराह। हस्तिन्। कुक्षर। रुच। पृषत्। पुण्डरीक। बलाहक (१) आकृतिगणोऽयम्। इति व्याघ्रादयः ॥

११—श्रेण्यादयः कृतादिभिः ॥ अ० ॥ २।१।५६॥

श्रेण्यादयः सुबन्ताः कृतादिभिः समानाधिकरणैः सह विभाषा समस्यन्ते। अश्रेण्यः श्रेण्यः कृताः श्रेणिकृताः (२) एककृतावसन्ति वणिजः। इत्यादि :-

श्रेणि। एक। पूग। कुण्ड। राशि। विशिख। निचय। निधान। इन्द्र। देव। मुण्ड। भूत। श्रवण। वदान्य। अध्यापक। ब्राह्मण। क्षत्रिय। पटु। पण्डित। कुशल। चपल। निपुण। कृपण। इति श्रेण्यादयः। कृत। मित। मत। भूत। उक्त। समानात। समानात। समाख्यात। सभावित। अवधारित। निराकृत। अवकल्पित। उपकृत। उपाकृत। आकृतिगणोऽयम्। इति कृतादयः ॥

१२—वा०—कृतापकृतादीनामुपसंख्यानम् (३) ॥ २।१।६०॥

कृतापकृतम्। भुक्तविभुक्तम्। पीतविपीतम्। गतप्रत्यागतम्। यातानुयातम्। क्रयाक्रयिका। पुटापुटिका। फलाफलिका। मानोन्मानिका। इति कृतापकृतादयः॥

(१) अत्राकृतिगणेनेदमपि सिद्धं भवति। मुखं पद्ममिव, मुखपद्मम्। मुखकमलम्। करकिसलयम्। पार्थिवचन्द्रः ॥

(२) अत्र श्रेण्यादिषु स्वार्थवचनमिति वार्त्तिकेन च्यर्थलाभः। यदा च च्यन्ताः श्रेण्यादयस्तदा च्विप्रत्ययान्तानां गतिसंज्ञत्वात्कुगतिप्रादय इति नित्यसमासः श्रेणीकृताः। इत्यादि ॥

(३) अनञ्विशिष्टक्तास्तेनापि समासो यथा स्यादिति वार्त्तिकम्। कृतं चापकृतं च कृतापकृतं। वार्त्तिकोपरि तत्सूत्रसंख्या सर्वत्र धरिष्यते। यस्योपरि महाभाष्ये वार्त्तिकमस्ति ॥

१३—वा०—समानाधिकरणाधिकारे शाकपार्थिवादीनामु-
पसंख्यानमुत्तरपदलोपश्च (१) २ । १ । ई६ ॥

शाकभोजी पार्थिवः शाकपार्थिवः । कुतपसौश्रुतः । अजातीत्वलिः । यष्टि-
मौदगत्यः । इत्यादि ॥

१४—मयूरव्यंसकादयश्च ॥ अ० ॥ २ । १ । ७२ ॥

मयूरव्यंसकाः समुदायाः कृतसमासाः समानाधिकरणतत्पुरुषसंज्ञकानिपात्यन्ते
चकारो निश्चयार्थः । परममयूरव्यंसकइतिसमासान्तरं न भवति :—

मयूरव्यंसकः । क्वात्रव्यंसकः (२) । काम्बोजमुण्डः । यवनमुण्डः । (३)
कृन्दसि । हस्तेगृह्य । पादेगृह्य । लाङ्गुलेगृह्य । पुनर्दाय ॥ (४) एहीडादयोऽन्यप-
दार्थे ॥ एहीडम् । एहियवं वर्तते । एहिवाणिजाक्रिया । अपेहिवाणिजा । प्रेहिवाणिजा ।
एहिस्वागता । अपेहिस्वागता । प्रेहिस्वागता । एहिद्वितीया । अपेहिद्वितीया । प्रोहकटा ।
अपोहकटा । प्रोहकर्दमा । अपोहकर्दमा । उद्धरचूडा । आहरचैला । आहरवसना ।
आहरवनिता । कृन्तविचक्षणा । उद्धरोत्सृजा । उद्धमविधमा । उत्पचविपचा ।
उत्पतनिपेता । उच्चावचम् । उच्चनीचम् । अपचितोपचितम् । अवचितपराचितम् ।
निश्चप्रचम् । अकिंचनम् । स्नात्वाकालकः । पीत्वास्थिरकः । भुक्त्वा सुहितः । प्रोष्य
पापीयान् । उत्पत्यव्याकुला । निपत्यरोहिणी । निषस्त्रश्यामा । अपेहिप्रवसा ।
इहपञ्चमी । इहद्वितीया । जहिकर्मणा बहुलमाभोक्ष्ये कर्त्तारंचाभिदधाति (५) ।

(१) शाकपार्थिवादिषु समानाधिकरणतत्पुरुषः समासो यथा स्यात् । पूर्वस-
मासे यदुत्तरपदं तस्य च लोपः । यथा दृष्टं विज्ञेयम् ॥

(२) मयूर इव व्यंसकाधूर्त्ता मयूरव्यंसकः । क्वात्र इव व्यंसकः । काम्बोज इव
मुण्डः । इत्युपमानसमासापवादीऽयं समासः ॥

(३) अतीऽप्येचत्वारः शब्दाश्चकृन्दसि वेदविषये निपात्यन्ते ॥

(४) त्वं यस्येडामन्नं सुतिं वा—एहि प्राप्नुहि तत्, एहीडम् । एवमेहियवादिषु
यथाप्रयोगमर्थानुकूलः समासो ज्ञेयः ॥

(५) जहिक्रियाऽऽभोक्ष्येऽर्थे स्वेनैव कर्मणा सह बहुलंसमस्यते समाससमुदा-
यश्च कर्त्तृवाचको भवति । त्वंजोडंजहि, इति जहजोडस्त्वम् । उज्जहिजोडः ।
जहिस्त्वः । इत्यादि । आख्यातः क्रियाशब्द आख्यातेनैव सहसमस्यते । अश्नीत
च पिवति च, इति समासेकते प्रातिपदिकसंज्ञायक्रियाविशेषणे टाप् । अश्नीत
पिवतां । इत्यादि ॥

जहिजोडः । उज्जहिजोडः । जहिस्तम्बः । उज्जहिस्तम्बः । (आख्यातमाख्यातेन क्रियासातये) ॥ अग्नीतपिबता । पचतमृज्जता । खादतमोदता । खादताचमता । आहरनिवपा । आवपनिष्किरा । उत्पचविपचा । भिन्दिहलवणा । छिन्दिहविचक्षणा । पचलवणा । पचप्रकूटा । (१) इतिमयूरव्यंसकादयः ॥

१५—याजकादिभिश्च ॥ अ० ॥ २ । २ । ६ ॥

षष्ठान्तं सुवन्तं याजकादिभिः सुवन्तैः सह समस्यते स षष्ठीतत्पुरुषः समासो भवति । ब्राह्मणयाजकः । क्षत्रिययाजकः । प्रतिषेधबाधकमिदं सूत्रम् :—

याजक । पूजक । परिचारक । परिषेचक । परिवेषक । स्नातक । अध्यापक । उत्सादक । उद्वर्तक । हर्तृ । दर्तक । हाट । पोड । भर्तृ । रथगणक । पतिगणक । इति याजकादयः ॥

१६—राजदन्तादिषु परम् ॥ अ० । २ । २ । ३१ ॥

राजदन्तादिषु परमुपसर्जनं प्रयोक्तव्यम् । पूर्वनिपातापवादः । दन्तानां राजा, राजदन्तः । अनेन दन्तशब्दस्य पूर्वनिपातो बाध्यते । :-

राजदन्तः । अश्वेवणम् । लिमवासितम् । नरनमुषितम् । सित्तसंसृष्टम् । मृष्ट-
लुञ्घितम् । अवक्लिन्नपक्वम् । अपिंतीमम् । उप्तगाढम् । उलूखलमुसलम् । तण्डु-
लकिण्वम् । दृषदुपलम् । आरग्वायनवन्धकी । चित्ररथवाह्नीकम् । आवल्यश्मकम् ।
शूद्रार्थम् । स्नातकराजानो । विश्वक्सेनार्जुनी । अक्षिभुवम् । दारगवम् । धर्मार्थो ।
अर्थधर्मो । कामार्थो । अर्थकामो । शब्दार्थो (२) । अर्थशब्दो । वैकारिमतम् ।
गजबीजम् । गोपालधानीपूलासम् । पूलासककरण्डम् । स्थूलपूलासम् । उशीर-
बीजम् । सिञ्चास्थम् । चित्रास्नाती । भार्यापती । जायापती (३) । जम्पती ।
दम्पती । पुत्रपती । पुत्रपशू । केशश्मश्रू । श्मश्रुकेशो । शिरोबीजम् ।
सर्पिर्मधुनी । मधुसर्पिणी । आद्यन्तो । अन्तादो । गुणवृद्धो । वृद्धिगुणो । इति
राजदन्तादयः ॥

(१) अविहितलक्षणस्तत्पुरुषो मयूरव्यंसकादिषु द्रष्टव्यः ॥

(२) धर्मादिषु भयमिति वार्त्तिकेन कृतद्वन्द्वयोर्द्वयोरपि पर्यायेण पूर्वनिपा-
तः । अत्र गणान्तेऽपि केशादयो धर्मादिषु द्रष्टव्याः ॥

(३) अत्र जायाशब्दस्य जम्भावो दम्भावश्च निपात्यते । अस्मिन् गणे सर्वेषु
समासेषु उपसर्जनमनुपसर्जनं वा निपात्यते । सर्वेषां च यथाप्राप्तानामपवादः ॥

१७—वाऽऽहिताग्न्यादिषु ॥ अ० ॥ २ । २ । ३७ ॥

आहिताग्न्यादिषु निष्ठान्तस्य विभाषा पूर्वनिपातो भवति पक्षे च परनिपातः ।
आहितोऽग्निर्गर्धन स :-

आहिताग्निः । अग्न्याहितः । जातपुत्रः । पुत्रजातः । जातदन्तः । जातश्मश्रुः । तैलपी-
तः । घृतपीतः । ऊटभार्यः । गतार्थः । आकृतिगणोऽयम् (१) । इत्याहिताग्न्यादयः ॥

१८—कडाराः कर्मधारये ॥ अ० ॥ २ । २ । ३८ ॥

कर्मधारये समामे कडारादयः शब्दा विभाषा पूर्वं प्रयोक्तव्याः । कडारश्चासौ
जैमिनिश्च कडारजैमिनिः । जैमिनिकडारः । इत्यादि । कडारादीनां गुणवाचका-
दिशेषणस्य पूर्वनिपातः प्राप्तः स बाध्यते :-

कडार । गडुल । काण । खज्ज । कुण्ड । खज्जर । खलति । गौर । वृह ।
भिज्जुक । पिङ्गल । तनु । बटर । इति कडारादयः । कर्मधारय इति किम् ।
कडारपुरुषोग्रामः । अत्र बहुव्रीहौ माभूत् ॥

१९—वा०—तृतीयाविधाने प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् (२) ॥ २ । ३ । १८ ॥

प्रकृति । प्राय । गोत्र । सम । विषम । हिद्दीण । पञ्चक । साहस्र । आकृति-
गणोऽयम् । इति प्रकृत्यादयः ॥

२०—गवाश्वप्रभृतौनि च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ११ ॥

गवाश्वप्रभृतौनि कर्तृकवद्भावानि द्वन्द्वरूपाणि सिद्धानि प्रातिपदिकानि निपा-
त्यन्ते । गौश्चाश्वश्च :-

गवाश्वम् । गवाविकम् । गवैडकम् । अजाविकम् । अजैडकम् । कुजवामनम् ।
कुजकैरातम् । पुत्रपौत्रम् । श्वचण्डालम् । स्त्रीकुमारम् । दासीमाणवकम् । शा-
टीपिच्छकम् । उष्ट्रखरम् । उष्ट्रशशम् । मूत्रशक्तम् । मूत्रपुरीषम् । यक्षन्नेदः ।
मांसशोणितम् । दर्भशरम् । दर्भपूतीकम् । अर्जुनशिरीषम् । तणोलपम् । दासीदा-
सम् । कुटीकुटम् । भागवतीभागवतम् (३) । इति गवाश्वप्रभृतयः ॥

(१) अत्राकृतिगणेन गडुकण्डादयोऽपि द्रष्टव्याः । कण्डेगडुः । गडुकण्डः ।
गडुशिराः । इत्यादि ॥

(२) प्रकृत्यादिभ्यस्तृतीयादिभक्तिर्यथा स्यात् । कर्तृकरणाभावादप्राप्ता विधीयते ।
प्रकृत्याऽभिरूपः । प्रकृत्या दर्शनीयः । इत्यादि ॥

(३) अत्र गणे यथोच्चारित एव द्वन्द्वो द्रष्टव्यः । तेन रूपान्तरेण भवति । गोश्वम् ।
गोश्वौ । अत्र पशुद्वन्द्वो विभाषैकवद् भवति ॥

२१—न दधिपयआदीनि ॥ अ० ॥ २ । ४ । १४ ॥

दधिपयआदीनि शब्दरूपाणि द्वन्द्वे नैकवद्भवन्ति :-

दधिपयसी । सर्पिर्मधुनी । मधुसर्पिणी । ब्रह्मप्रजापती । शिववैश्रवणी । स्कन्दविशाखी । परिव्राट्कौशिकी । परिव्राजककौशिकी । प्रवर्ग्योपसदी । शक्तकण्ठी । इध्मावर्हिणी । दीचातपसी । अज्ञातपसी । मेधातपसी । अध्ययन-तपसी । उलूखलपुसले । आद्यावसाने । अदामेधे । ऋक्सामे । वाङ्मनसे । इति दधिपयआदयः ॥

२२—अर्द्धर्चाः पुंसि च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ३१ ॥

अर्द्धर्चादयः शब्दाः पुंसि चान्नपुंसके च भावन्ते :-

अर्द्धर्चे । गोमय । कषाय । कार्षापण । कुतप । कपाट । शङ्ख । चक्र । गूथ । यूथ । ध्वज । कवच । पद्म । गृह । सरक । कंस । दिवस । यूप । अन्धकार । दण्ड । कमण्डलु । मण्ड । भूत । द्वीप । द्यूत । चक्र । धमे । कमेन् । मोदक । शतमान । यान । नख । नखर । चरण । पुच्छ । दाडिम । हिम । रजत । सक्तु । पिधान । सार । पात्र । घृत । सैन्धव । औषध । आढक । चषक । द्रोण । खलीन । पात्रीव । पटिक । वार । वाण । प्रोश । कपित्थ । शुष्क । शील । शृत्व । सोधु । कवच । रेणु । कपट । सौकर । सुसल । सुवर्ण । यूप । चमस । वर्ण । चौर । कर्ष । आकाश । अष्टापद । मङ्गल । निधन । निर्वास । जम्भ । वृत्त । पुस्त । क्षेडित । शृङ्ग । शृङ्खल । मधु । मूल । मूतक । शराव । शाल । वप्र । विमान । सुख । प्रग्रीव । शूल । वज्र । कर्पट । शिखर । कल्क । नाट । मस्तक । वलय । कुसुम । तण । पङ्क । कुण्डल । किरीट । अर्बुद । अङ्गुश । तिमिर । आश्रम । भूषण । इलकस । मुकुल । वसन्त । तडाग । पिटक । विटङ्क । माष । कोश । फलक । दिन । दैवत । पिनाक । समर । स्थाणु । अनीक । उपवास । शाक । कर्पास । चषाल । खण्ड । दर । विटप । रण । वल । मल । मृणाल । हस्त । सूत्र । ताण्डव । गाण्डीव । मण्डप । पटह । सौध । पार्श्व । शरीर । फल । छल । पुर । राष्ट्र । विश्व । अम्बर । कुटिम । मण्डल । ककुद् । तोमर । तोरण । मञ्चक । पुङ्ख । मध्य । बाल । बल्मीक । वर्ष । वस्त्र । देह । उद्यान । उद्योग । स्नेह । खर । सङ्गम । निष्क । क्षेम । शूक । छत्र । पवित्र । यौवन । पानक । मूषिक । वल्कल । कुञ्ज । विहार । लोहित । विषाण । भवन । अरण्य । पुलिन । दृढ । आसन । ऐरावत । शूर्प । तीर्थ । लोमश । तमाल । लोह । दण्डक । शपथ । प्रतिसर । दारु । धनुस् । मान । तङ्ग । वितङ्ग । मव । सहस्र । ओदन । प्रवाल । शकट । अपराह्ण । नौड । शकल । कुणप । मुण्ड । पूत । मरु । लोमन । लिङ्ग । सीर । क्षत । ऋण । कडार । पूर्ण । पणव । विशाल ।

वुस्त । पुस्तक । पल्लवानिगडाखल । स्थूल । शार । नाल । प्रवर । कटक । कण्टक ।
काल । कुमुद । पुराण । जाल । स्कंधाललाटाकुडुम । कुशलाविडङ्ग । पिण्याक ।
आर्द्र । हला योधाविग्वाकुकुट । कुडप । खण्डल । पञ्चक । वसु । उद्यम । स्तन ।
स्तेन । क्षत्र । कलह । पालक । वर्चस्क । कूर्च । तण्डक । तण्डुल । इत्यर्हर्चादयः ॥

२३—पैलादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ २ । ४ । ५६ ॥

पैलादिप्रातिपदिकेभ्यो युवप्रत्ययस्य लुग्भवति । पैलाया अपत्यं पैलः । तस्य
युवापत्यमिति फिज् तस्य लुक् । पैलः पिता । पैलः पुत्रः । एवं शालङ्किः । इत्यादि ।

पैल । शालङ्कि । साल्यकि । साल्यकामि । दैवि । औदमज्जि । औदव्रजि ।
औदमेघि । औदबुद्धि । दैवस्थानि । पैङ्गलायनि । राणायनि । रौहक्षिति । भौलि-
ङ्गि । औद्गाहमानि । औज्जिहानि । रागक्षति । राणि । सौमनि । ऊहमानि ।
तद्राजाच्चाणः (१) आकृतिगण्यम् इतिपैलादयः ॥

२४—न तौत्वलिभ्यः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६१ ॥

तौत्वल्यादिभ्यः परस्य युवप्रत्ययस्य लुङ् न भवति तुत्वलस्य गोत्रापत्यं
तौत्वलिः । तस्ययुवापत्यं तौत्वलायनः :-

तौत्वलि । धारणि । रावणि । पारणि । दैलीपादेवलि । देवमति । दैवयज्ञि
प्रावाहणि । माम्भातकि । आनुहारति । खाफलिक । आनुमति । आहिंसि । आसु
रि । आयुधि । नेमिषि । आसिबन्धकि । वैकि । पौष्करसादि । वैरकि । वैलकि
वैहति । वैकर्णि । कारेणुपालि । कामलि । राम्भकि । आसुराहति । प्राणाहति
पौष्कि । कान्दकि । दौषकगति । आन्तराहति । इति तौत्वल्यादयः ॥

२५—यस्कादिभ्यो गोत्रे ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६३ ॥

यस्कादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः परस्यास्त्रीलिङ्गस्य बहुवचनेवर्त्तमानस्य गोत्रप्रत्य-
यस्य लुग्भवति यदि तेनैव गोत्रप्रत्ययेन कृतं बहुत्वं भवेत्तदा । यस्कस्य गोत्रापत्यं
यास्कः । यास्कौ । यस्काः । लभ्याः । तेनैवेति किम् । प्रियो यास्कौ येषां ते प्रिययास्काः
अस्तियामिति किम् । यास्क्यः स्त्रियः । गोत्र इति किम् । यास्काश्छात्राः । :-

यस्क । लभ्य । दुह्य । अयःस्थूण । ढणकर्ण (२) । सदामत्त । कम्बल-
भार । अहिर्योग । कर्णाटक । पर्णाडक । पिण्डीजङ्घ । बक्सकथ (३) ।

(१) यज्ञानाराजवाङ्मः । तस्ययुवापत्यम् वाङ्मः । अंगस्यापत्यमांगः पिता पुत्री वा ॥

(२) यस्कादिपञ्चभ्यः शिवादित्वादण् ॥

(३) सदामत्तादिसप्तभ्य इज् ॥

वस्ति । कटु । विथि । कटु । अजवस्ति । मित्रयु (१) । रत्नामुख । जङ्घारथ ।
मन्यक । उत्कासकटुकमन्यक । पुष्करसद् । विषपुट । उपरिमेखल । क्रोष्टुमान् ।
क्रोष्टुपाद । शीर्षमाय (२) । खरप (३) । पदक । वर्मक (४) । भन्दन (५) ।
भडिल । भण्डिल । भडित । भण्डित (६) । इति यस्मादयः ॥

२६—नगोपवनादिभ्यः ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६७ ॥

गोपवनादिप्रातिपदिकेभ्यः परस्य गोत्रप्रत्ययस्य बहुवचनविभक्तौ लुङ् न भवति
यच्चोश्चेति प्राप्नो लुक् प्रतिषिध्यते । गोपवनस्य गोत्रापत्यं गोपवनः । गोपनी ।
गोपवनाः । :-

गोपवन । शिथु । बिन्दु । भाजन । अश्वे । अवतान । श्यामाक । श्वापण ।
इत्यष्टौ विदाद्यन्तर्गता गोपवनादयः ॥

२७—तिककितवादिभ्यो द्वन्द्वे ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६८ ॥

तिकादिभ्यः कितवादिभ्यश्च परस्य गोत्रप्रत्ययस्य द्वन्द्वसमासे बहुवचनविभक्तौ
लुग्भवति । तैकानयश्च कितवायनयश्चैत्यत्र तिकादिभ्यः फिज् तस्य लुक् :-

तिककितवाः । वङ् खरभण्डोरथाः (७) उपकलमकाः (८) पफकनरकाः ।
वकनखखगुदपरिणद्धाः (९) । अब्जककुभाः (१०) । लाङ्गशान्तमुखाः (११)

(१) वस्त्यादिषड्भ्यो गृष्ट्यादित्वाद् टज् ॥

(२) रत्नामुखादिकेभ्य इज् ॥

(३) खरपशब्दान्नडादित्वात्फक् ॥

(४) पदकवर्मकाभ्यामिज् ॥

(५) भन्दनशब्दाच्छिवादित्वादण् ॥

(६) भडिलादिचतुर्भ्योऽश्वादित्वात् फज् ॥

(७) वाङ् खरयश्च भाण्डोरथयश्चेतीज् ॥

(८) औपकायनश्च लामकायनश्चेति नडादित्वात् फक् ।

(९) पाफकयश्च नारकयश्च, वाकनखयश्च, श्वागुदपरिणद्धयश्च सर्वेभ्योऽत
इज् तस्य लुक् ॥

(१०) औब्जयश्च, इज् । काकुभाश्च, शिवादित्वादण् । तयोर्लुक् ॥

(११) लाङ्गयश्च शान्तमुखयश्च, इज् तस्य लुक् ॥

उरसलङ्घटाः (१) । भ्रष्टककपिष्ठलाः । कृष्णाजिनकृष्णसुन्दराः (२)
अग्निवेशदासेरकाः (३) ॥ इतितिककितवादयः ॥

२८—उपकादिभ्योऽन्यतरस्यामदन्वे ॥ अ० ॥ २ । ४ । ६६ ॥

उपकादिप्रातिपदिकेभ्यः परस्य गोत्रप्रत्ययस्य बहुवचनविभक्तौ इन्वे चाहन्वे च
विभाषा लुगभवति । अदन्वग्रहणं इन्वाधिकारनिवृत्त्यर्थम् । एतेषां मध्ये तयो इन्व
स्तिककितवादिषु पठिताः । उपकलमकाः । भ्रष्टककपिष्ठलाः । कृष्णाजिनकृष्ण
सुन्दराः । तेभ्यः पूर्वसूत्रेणैव नित्यलुगभवति । अदन्वेत्वनैव विकल्पः । उपकाः । औ
पकायनाः । लमकाः । लामकायनाः । शेषाणां इन्वेऽदन्वे च विकल्पः :-

उपक । लमक । भ्रष्टक । कपिष्ठल । कृष्णाजिन । कृष्णसुन्दर । पण्डारक ।
अण्डारक । गङ्क । सुपर्यक । सुपिष्ट । मयूरकर्ण । खारौजङ्घ । शलाबल । पत-
ञ्जल । कठेरणि । कुषीतक । काशकृत्स्न । निदाघ । कलश्रीकण्ठ । दामकण्ठ । कृष्ण
पिङ्गल । कर्णक । पर्णक । जटिलक । बधिरक । जन्तुक । अनुलोम । अर्धपिङ्गलक ।
प्रतिलोम । प्रतान । अनभित । चूडारक । उदङ्क । सुधायुक । अवन्धक । पदञ्चल ।
णनुपद । अपजग्ध । कमक । लेखाम्भ । कमन्दक । पिञ्जल । मयूरकर्ण । मदाघ ।
कदामत्त । इत्युपकादयः ॥

२९—भृशादिभ्यो भुव्यच्चेर्लोपश्च हलः ॥ अ० ॥ ३ । १ । १२ ॥

अच्यत्तेभ्यो भृशादिप्रातिपदिकेभ्यो भवत्यर्थे क्यङ् प्रथमो भवति हलन्तानां
चान्त्यलोपः । अभृशो भृशो भवतीति भृशायते । सुमनायते । अच्वेरिति किम् ।
भृशीभवति । अत्र मा भूत् :-

भृश । शीघ्र । मन्द । चपल । पण्डित । उत्सुक । उन्मनस् । अभिमनस् ।
सुमनस् । दुर्मनस् । रहस् । रेहस् । शश्वत् । बृहत् । वेहत् । नृषत् । शुधि ।
अधर । ओजस् । वर्चस् । विमनस् । रमन् । हन् । रोहत् । शुचिस् । अजरस् ।
इति भृशादिः ॥

(१) औरसायनश्च, तिकादित्वात् फिञ् । लाङ्कटयश्च, इज् तयोर्लुक् ॥

(२) भ्राष्टकयश्च, कापिष्ठलयश्च । काष्णाजिनयश्च काष्णसुन्दरयश्च । अत
इज् तस्यलुक् ॥

(३) अग्निवेशश्च, गर्गादित्वाद् यञ् । दासेरकयश्च, अत इज् तयोर्लुक् ।

३०—लोहितादिडाज्भ्यः क्यष् ॥ अ० ॥ ३ । १ । १३ ॥

अच्यन्तेभ्यो लोहिताभ्यो डाजन्तेभ्यश्च भवत्यर्थे क्यष् प्रत्ययो भवति । अलोहितो लोहितो भवति लोहितायते । लोहितायति । अपटपटा पटपटा भवति पटायति । पटपटायते :-

लोहित । नील । हरित । पीत । मद्गु । फेन । मन्द । आकृतिगणत्वान् । वर्मन् । निद्रा । करुणा । कृपा । इति लोहितादयः ॥

३१—भविष्यति गम्यादयः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३ ॥

गम्यादयः शब्दा भविष्यति काले साधवो भवन्ति । ग्रामंगमी :-

गमौ । आगामी । प्रस्थायी । प्रतिरोधी । प्रतिबोधी । प्रतियोधी । प्रतियोगी ॥ प्रतियायी । आयायी । भायी । इति गम्यादयः ॥

३२—षिद्भि दादिभ्योऽङ् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०४ ॥

षिद्भ्यो भिदादिभ्यश्च धातुभ्यः स्त्रियामङ् प्रत्ययो भवति । जृष्-जरा । वपा । भिदादयः पठ्यन्ते :-

भिदा (१) । छिदा । विदा । क्षिपा ॥ गुहा गिर्योषभ्योः ॥ अद्वा । मेधा । गोधा । आरा । हारा । कारा । क्षिया । भारा । धारा । रेखा । लेखा । चूडा । पीडा । वपा । वसा । सृजा ॥ कर्पेः संप्रसारणं त्व ॥ कृपा ॥ भिदा, विदारणे ॥ छिदा, द्वैधीकरणे ॥ आरा, शस्त्राम् ॥ धारा प्रपाते । इति भिदादयः ॥

३३—वा०—संपदादिभ्यः क्तिप् (२) ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १०८ ॥

संपत् । विपत् । प्रतिपत् । आपत् । परिषत् । इति संपदादयः ॥

३४—भौमादयोऽपादाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७४ ॥

भौमादयः शब्दा उणादिस्था अपादानकारके निपात्यन्ते :-

भौमः । भौष्मः । भयानकः । वरुः । चरुः । भूमिः । रजः । संस्कारः । संक्रन्दनः । प्रपतनः । समुद्रः । सुचः । सुक् । खलतिः ॥ इति भौमादयः ॥

(१) भिदादिगणेष्वर्थे नियमः स महाभाष्यकारेणैव कृतोऽस्ति । विदारणा-
दन्यार्थे भित्तिरिति सर्वत्रार्थान्तरे क्तिन् ॥

(२) संपदादिगणपठितेभ्य एव स्त्रियां क्तिप् प्रत्ययो भवति । संपदादिश्चा-
कृतिगणो विज्ञेयः । कल्लुटो बहुलमिति बहुलवचनात् क्तिन्नपि भवति । संपत्तिः ।
विपत्तिः । इत्यादि ॥

३५—अजाद्यतष्टाप् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ४ ॥

अजादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽकारान्ताच्चस्त्रियां टाप् प्रत्ययो भवति । अजा । देवदत्ता । अदितितपरकणं तत्कालार्थम् । कीलालपाः, ब्राह्मणौ । अत्र टाप् न भवति । अजादिग्रहणं तु जात्यादिलक्षणस्य ङीष्वादेर्बाधनार्थम् :-

अजा । एडका । चटका । अश्वा । मूषिका (१) । बाला । होडा । पाका । वत्सा । मन्दा । विलाता । पूर्वापहरणा । अपरापहरणा (२) ॥ संभस्त्राजिनशणपिण्डेभ्यः फलात् ॥ संफला । (३) भस्त्रफला । अजिनफला । शणफला । पिण्डफला ॥ सदच्काण्डप्रान्तशतैकेभ्यः पुष्यात् ॥ (४) सत्पुष्या । प्राक्पुष्या । प्रत्यक्पुष्या । काण्डपुष्या । प्रान्तपुष्या । शतपुष्या । एकपुष्या ॥ शूद्राचामहत्पूर्वा जातिः ॥ (५) क्रुञ्चा । उष्णिहा । देवविशा (६) ज्येष्ठा । कनिष्ठा । मध्यमा । (७) कोकिला । (८) मूलान्नजः । (९) अमूला । इत्यजादयः ॥

३६—न षट्स्वस्त्रादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । १ । १० ॥

षट्संज्ञकेभ्यः स्वस्त्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रीप्रत्ययो न भवति । सप्त । अष्ट । स्वसा । दुहिता । ननान्दा । याता । माता । तिस्रः । चतस्रः । इति स्वस्त्रादयः ॥

३७—षिट्गौरादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ४१ ॥

षिट्भ्यो गौरादिभ्यश्च । प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति नर्सकी । खनकी । रजकी । गौरादिभ्यः । गौरी मत्स्यः । गौर । मत्स्यः । मनुष्यः । शृङ्ग । हयः । गवयः । मुकयः । ऋष्यापुट । द्रुणः । द्रोणः । हरिणः । कणः । पटरा । उकणः । आमलकः । कुबलः । बदरः । बिम्बः । तर्कारः । शर्कारः । पुष्करः ।

(१) अजादिभ्यः पञ्चभ्यो जातिलक्षणे यो ङीष् प्राप्तः स बाध्यते ॥

(२) बालादिभ्यः षट्भ्यो वयसि ङीप् प्राप्तः ॥

(३) आभ्यां टिल्लक्षणे ङीप् प्राप्तः ॥

(४) सप्तादिभ्यः फलात् सप्तादिभ्यश्च पुष्याद् बहुव्रीहौ यः प्राक् कर्णेति सूत्रेण ङीष् प्राप्तः स बाध्यते ॥

(५) अमहत्पूर्वाच्छूद्रशब्दाज्जातो टाप् । शूद्रा । पुंयोगे तु ङीषेव शूद्रस्य स्त्री शूद्री । अमहदिति किम् । महाशूद्री ॥

(६) क्रुञ्चादितिभ्योऽप्राप्तष्टाब् विधिः ॥

(७) ज्येष्ठादिभ्यस्त्रिभ्यः पुंयोगे ङीष् प्राप्तोऽनेन बाध्यते ज्येष्ठस्य भार्या ज्येष्ठा ॥

(८) कोकिलशब्दाज्जातिलक्षणे ङीष् प्राप्तः ॥

(९) मूलशब्दाद् बहुव्रीहौ प्राक् कर्णेति ङीष् प्राप्तः । नास्ति मूलमस्या सांभूमौ ॥

शिखण्ड । सुषम । सलन्द । गडुज । आनन्द । सपाट । सृगेठ । आठक । शङ्कुल ।
सूर्म । सुव । सूर्य । पूष । मूष । घातक । सकलूक । सरलक । मालक । मालत ।
साखक । वेतस । अतस । पृस । मह । मठ । छेद । खन् । तचन् । अनडुही । अनड्वाही ।
एषण । करणे । देह । काकादन । गवादन । तेजन । रजन । लवण । पान । मेघ ।
गौतम । आप । स्थण । भौरि । भौलिक । भौलिङ्गि । औद्गाहमानि । आलिङ्गि ।
आपिच्छिक । आरट । टोट । नट । नाट । मूलाट । ज्ञातन । पातन । पावन ।
आस्तरण । अधिकरण । एख । अधिकार । आग्रहायणी । प्रत्यवरोहिणी । सेवन । सुमङ्-
गलात्संज्ञायाम् । सुन्दर । मण्डल । पट । पिण्ड । विटक । कुर्द । गूर्द । पाण्ड । लोफाण्ड ।
कन्दराकन्दल । तरुण । तलुन । दृढत् । महत् । सौधर्म् । रोहिणी । नक्षत्रे रेवती । नक्षत्रे ।
विकल । निष्कल । पुष्कल ॥ कटाच्छोणिवचने ॥ पिङ्गल । भट्ट । दहन । कन्द ।
काकण । पिप्यर्यादयश्च । पिप्यली । हरीतकी । कोशातकी । शमी । करीरी ।
पृथिवी । क्रोधी । मातामह (१) । पितामह । इति गौरादयः ॥

३८—वह्नादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ४५ ॥

वह्नादिप्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां वा ङीष् प्रत्ययी भवति । वह्नी । बहुः ।
बहु । पञ्चति । अकृति । अञ्चति । अंहति । वहति । शकटि ॥ शक्तिः शस्त्रे ॥
शारि । वारि । गति । अहि । कपि । मुनि । यष्टि ॥ इतः प्राण्यङ्गात् ॥ कृतिकारा-
दक्षिनः ॥ सर्वतोऽक्षिन्नर्यादित्येके (२) ॥ चण्ड । अराल । कमल । कृपाण । विकट ।
विशाल । विशंकट । भुज । ध्वज ॥ चन्द्रभागाश्रयाम् ॥ चन्द्रभागी । कल्याण ।
उदार । पुराण । अहम् ॥ इति वह्नादयः ॥

३९—न क्रोडादिवह्नवः ॥ अ० ॥ ४ । १ । ५६ ॥

क्रोडाद्यन्ताद् वह्नजन्ताच्च प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीष् प्रत्ययेन न भवति ।
स्त्राङ्गादिति प्राप्तः प्रतिषिध्यते । शोभनक्रोडा । शोभनखुरा । पृथुजघनाः—
क्रोड । खुर । बाल । शफ । गुद । घोण । नख । मुख । भग । गल । आकृ-
तिगणोऽयम् । इति क्रोडादयः ॥

(१) अत्र ङामहच् प्रत्ययस्य पित्वादेव ङीषि सिद्धे पुनः पाठेन पित्तक्षणस्यङ्गी-
षोऽनित्यत्वं आप्यते तेन दंष्ट्रा, इति सिद्धं भवति । पृथिवीशब्दे औणादिकः पिवन्
प्रत्ययस्य पित्वान् ङीषि सिद्धे उणादीनामव्युत्पन्नत्वज्ञापनार्थः पाठः ॥

(२) इकारान्तात् प्राण्यङ्गवाचकान् ङीष् भवति । अङ्गुली । इकारान्तात्
कदन्तात् स्त्रियां ङीष् । कृषी । भूमी । वापी । केषांचिन्मते क्षिप्रधिकारस्यादि
कारान्तमात्रादेव ङीष् न भवति । तदा कृषिः । वापिः । इत्येव ॥

४०—शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ७३ ॥

शार्ङ्गरवादिभ्योऽजन्तेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ङीन् प्रत्ययो भवति ।
शार्ङ्गरवी । वैदी । जातिग्रहणमत्रानवर्त्तते तेन जातिलक्षणो ङीष्ऽनेन बाध्यते
न पुंयोगलक्षणः :-

शार्ङ्गरव । कापटव । गौगुलव । ब्राह्मण । गौतम । कामण्डलेय । ब्राह्मकृतेय ।
आनिचेय । आनिधेय । आशोकेय । वात्स्यायन । माञ्जायन । कैकसेय । काथ ।
शैव्य । एहि । पर्येहि । आशमरथ्य । औदपान । अराल । चण्डाल । वतण्ड ।
भोगवन्नीरिमतोः संज्ञायाम् ॥ भोगवती । गौरिमती ॥ नृनरयोर्वृद्धिश्च ॥ नारी ।
इति शार्ङ्गरवादयः ॥

४१—क्रौड्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ८० ॥

क्रौड्यादिप्रातिपदिकेभ्यः स्त्रियां ञङ् प्रत्ययो भवति । अगुरुपोक्षमार्थं आरम्भः ।
क्रौड्या । लाड्या :-

क्रौडि । लाडि । व्याडि । आपिशलि । आपक्षिति । चौपयत । चैटयत ।
शैकयत । वैल्वयत । वैकल्ययत । सौधातकि ॥ सूतात् युवत्याम् ॥ सूत्या, युवतिः ॥
भोज, क्षत्रिये ॥ भोज्या, क्षत्रिया । भौरिकि । भौलिकि । शालमलि । शालास्थलि ।
कापिष्ठलि । गौकक्ष्य ॥ इति क्रौड्यादयः ॥

४२—अश्वपत्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ८४ ॥

अश्वपत्यादिप्रातिपदिकेभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेष्वण् प्रत्ययो भवति । पत्युत्तर-
पदात् प्राप्तस्य खस्यापवादः । आश्वपतम् । शतपतम् :-

अश्वपति । शतपति । धनपति । गणपति । राष्ट्रपति । कुलपति । गृहपति ।
धान्यपति । पशुपति । धर्मपति । सभापति । प्राणपति । जेवपति । स्थानपति ।
यज्ञपति । धन्वपति । अधिपति । बन्धुपति । इत्यश्वपत्यादयः ॥

४३—उत्थादिभ्योऽञ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ८६ ॥

उत्थादिभ्यः प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेष्वञ् प्रत्ययो भवति । औक्तः । औदपानः ।
अणस्तदपवादानां च बाधकः :-

उक्त । उदपान । विकर । विनोद । महानद । महानस । महाप्राण । तरुण ।
तलुन । वष्क यासे (१) ॥ धेनु । पृथिवी । पंक्ति । जगती । त्रिष्टुप् । अनुष्टुप् ।

(१) वष्कयशब्दादसे ऽर्थात् केवालादेवाञ् । तदन्तात्त्वणैव भवति ॥

जनपद । भरत । उशीनर । ग्रीष्म । पीलु । कुल । उदस्थान, देशे ॥ षष्ठ, दंष्ट्रे (१) ॥
भक्तकौथ । रथन्तर । मध्यन्दिन । बृहत् । महत् । सत्वन्तु (२) । कुरु । पञ्चाल ।
इन्द्रावसान । उष्णिक । ककुप् । सुवर्ण । सुपर्ण । देव । श्रीध्मादच्छन्दसि (३) ॥
इत्युक्तादयः ॥

४४—बाह्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । ६६ ॥

बाह्यादिशब्देभ्योऽपत्यसामान्ये इज् प्रत्ययो भवति । बाहोरपत्यं बाहविः । सौ-
मित्रिः । इत्यादि :-

बाहु । उपबाहु । विवाकु । शिवाकु । वटाकु । उपविन्दु । वृक्ष । चूडाला ।
मूषिका । बलाका । भगला । छगला । ध्रुवका । ध्रुवका । सुमित्रा । दुर्मित्रा । पुष्क-
रसत् । अनुहरत् । देवशर्मन् । अग्निशर्मन् । कुनासन् । सुनासन् । पञ्चन् । सप्तन् ।
अष्टन् ॥ अमितीजसः सलोपश्च (४) ॥ उदञ्चु । शिरस् । शराविन् । क्षेमह-
विन् । शङ्खलातोदिन् । खरनादिन् । नगरमर्दिन् । प्राकारमर्दिन् । लोमन् ।
अजीगर्त्त । कृष्ण । सलक । युधिष्ठिर । अर्जुन । साम्ब । गद । प्रद्युम्न । राम ।
उदङ्कः संज्ञायाम् ॥ सम्भूयोन्मसोः सलोपश्च ॥ (५) ॥ आकृतिगणोऽयम् (६) ॥
इति बाह्यादयः ॥

४५—गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्चफज् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ६८ ॥

गोत्रसंज्ञकेऽपत्ये वाच्ये कुञ्जादिभ्यश्चफज् प्रत्ययो भवति । इजोऽपवादः । कु-
ञ्जस्य गोत्रापत्यं कौञ्जायन्यः । कौञ्जायन्यौ । कौञ्जायनाः । स्वार्थे जप्रस्तस्य
तद्भाजत्वाद्द्विषु लुक् । गोत्र इति किम् । कुञ्जस्यानन्तरापत्यं कौञ्जिः :-

कुञ्ज । व्रध्न । शङ्ख । भस्मन् । गण । लोमन् । शठ । शाक । शाकट । शुण्डा ।
शुभ । विपाश । स्तन्य । स्तम्भ । शुम्भा । शिव । शुभंया । इति कुञ्जादयः ॥

(१) उदस्थानशब्दादेशार्थ एवाज् । अन्यार्थेऽप्येव भवति । एवमन्यत्रापि ॥

(२) अत्र सत् शब्दान्ततुप्-सत्वन्, तु, अव्ययम् । सत्वतोऽपत्यं सात्वताः ॥

(३) अत्र छन्दःशब्देन वृत्तं गृह्यते न तु वेदः । ततोऽन्यत्राज् ॥

(४) अमितीजसोऽपत्यमामितीजिः ॥

(५) सम्भूयसोऽपत्यं साम्भूयिः । आम्भिः ॥

(६) सूत्रस्थवकारेणात्राकृतिगणत्वं बोध्यते । तेन । जाम्बिः । ऐन्द्रशब्धिः ।

आजधेनविः । आजवन्धविः । औडुलोमिः । इत्यादिष्विज् सिद्धो भवति ॥

४६—नडादिभ्यः फक् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ६६ ॥

नडादिप्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्ये फक् प्रत्ययो भवति । नडस्य गोत्रापत्यं नाडायनः । चारायणः :-

नड । चर । बक । मुञ्ज । इतिक । इतिश । उपक । लमक ॥ शलङ्कु शलङ्कश्च (१) ॥ समल । वाजप्य । तिक । अग्निशर्मन् वृषगणे । प्राण । नर । सायक । दास । मित्र । द्वीप । पिङ्गर । पिङ्गल । किङ्कर । किङ्गल । कातर । कातल । काश्य । काश्यप । काव्य । अज । अमुष्य ॥ कृष्णरथौ ब्राह्मणवासिष्ठयोः (२) ॥ अमित्र । लिगु । चित्र । कुमार ॥ क्रोष्टु क्रोष्टश्च (३) ॥ लोह । दुर्ग । स्तम्भ । शिंशपा । अग्र । तण । शकट । समनस् । सुमत । मिमत । ऋक् । जत् । युगन्धर । हंसक । दण्डिन् । हस्तिन् । पंचाल । चमसिन् । सुकृत्य । स्थिरक । ब्राह्मण । चटक । बदर । अश्वक । खरप । कासुक । ब्रह्मदत्त । उदुम्बर । शोण । अलोह । दण्ड । एक । वानव्य । शावक । नाव्य । अन्वजत् । अन्तजन । इत्तरा । अंशक । अश्वला । अध्वरादण्डय । इति नडादयः ॥

४७—अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । १०४ ॥

विदादिप्रातिपदिकेभ्यो गोत्रापत्येऽञ् प्रत्ययो भवति । येऽत्र गणेऽनृषिवाचकास्तेभ्यस्त्वनन्तरापत्य एव । विदस्य गोत्रापत्यं वैदः । पुत्रस्यानन्तरापत्यं पौत्रः । दीहित्रः :-

विद । उर्व । कश्यप । कुशिक । भरद्वाज । उपमन्यु । किलालप । किदर्भ । विश्वानर । ऋष्टिषेण । ऋतभाग । हर्यश्व । प्रियक । आपस्तम्ब । कूचवार । शरदत् । शुनक । धेनु । गोपवन । शिशु । बिन्दु । भाजन । अश्वावतान । श्यामाक । श्यामाक । श्यापर्ण । हरित । किन्दास । वह्यरज । अर्कलूष । बभ्योष । विष्णुवृद्ध । प्रतिबोध । रथन्तर । रथीतर । गविष्ठिर । निषाद । मठर । ऋद । पुनर्भू । पुत्र । दुहितृ । ननानृष्ट । परस्त्री, परशुच (४) ॥ किता । सम्बक । शावली । श्यायक । अलस । इति विदादयः ॥

(१) शलङ्कु शब्दस्य शलङ्कादेशः । शलङ्कोऽपत्यं शलङ्कायनः ॥

(२) कृष्णस्यापत्यं कार्णायनो ब्राह्मणः । राणायनो वासिष्ठः ॥

(३) क्रोष्टोरपत्यं क्रौष्टः ॥

(४) परस्त्रिया अपत्यं पारश्वः

४८—गर्गादिभ्यो यञ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । १०५ ॥

गर्गादिभ्योऽन्तरे गोत्रापत्ये यञ् प्रत्ययो भवति । गार्ग्यः । अनन्तरापत्ये तु गार्गि-
रित्येषः—

गर्ग । वत्स । वाजाऽसे (१) संकृति । अज । व्याघ्रपात् । विद्भृत् । प्राचीनयोग ।
अगस्ति । पुलस्ति । रेभ । अग्निवेश । शङ्ख । शठ । धूम । अषट् । चमस । धनञ्जय ।
मनस । वृक्ष । विश्वावसु । जनमान । लोहित । संशित । बभ्रु । मण्डु । मनु ।
अलिगु । शङ्खु । लिगु । गुलु । मन्तु । जिगीषु । मनु । तन्तु । मनायी । भूत ।
कथक । कष । तण्ड । वतण्ड । कपि । कत । कुरुकत । अनडुह् । कण्व । शकल ।
गोकक्ष । अगस्त्य । कुण्डिन । यज्ञवल्क । उभय । जात । विरोहित । वृषगण । रङ्ग-
गण । शण्डिल । वण । कचुलुक । मुहल । मुसल । पराशर । जतूकर्ण । मन्त्रित ।
संहित । अश्मरथ । शर्कराक्ष । पूतिमाष । स्थूण । अररक । पिङ्गल । कृष्ण । गोलुन्द ।
उलूक । तितिक्ष । भिषज् । भडित । भण्डित । दल्भ । चिकित । देवह । इन्द्रह ।
एकलू । पिप्पलू । वृदग्नि । जमदग्नि । सुलोभिन् । उकट्य । कुटीगु ॥ इतिगर्गादयः ॥

४९—अश्वादिभ्यः फञ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ११० ॥

अश्वादिभ्यो गोत्रापत्ये फञ् प्रत्ययो भवति । आश्वायनः । आशमायनः । येस्मिन्
गणेऽपत्यैकप्रत्ययान्ताः पठ्यन्ते तेषु सामर्थ्याद्युनिप्रत्ययो विज्ञायते :—

अश्व । अश्मन् । शङ्ख । विद् । पुट । रोहिण । खज्जूर । । खज्जूल ।
पिञ्जूर । भडिल । भण्डिल । भडित । भण्डिता । भण्डिक । प्रहृतरामोद । क्षत्र । ग्रीवा ।
काश । गोलाङ्क्य । अर्क । स्वन । ध्वन । पाद । चक्र । कुल । पवित्र । गोमिन् ।
श्याम । धूम । धूम्र । वाग्मिन् । विश्वानर । कुट । वेश । आत्रेय । नक्ष । तड ।
नड । ग्रीष्म । अर्ह । विशम्य । विशाला । गिरि । चपल । चुनम । दासक । वैव्य ।
धर्म । आनडुह्य । पुंसिजात । अर्जुन । शूद्रक । सुमनस् । दुर्मनस् । चान्त ।
प्राच्य । कित । काण । चुम्प । अविष्टा । वीक्ष्य । पविन्दा । कुल । आतव ।
कितव । शिव । खदिर ॥ आत्रेय, भारद्वाज । भारद्वाज, आत्रेये (२) ॥ पथ ।
कण्ठ्य । युव । सूनु । कर्कटक । रुक्ष । तरुक्ष । तलुच । प्रसुल । विलम्ब । विष्णुज ।
इत्यश्वादयः ॥

(१) असेऽसमासे वाजशब्दाद्यञ् । सुवाजस्यापत्यं सौवाजिः । अत्र यञ् न भवति ॥

(२) आत्रेयशब्दाद् भारद्वाजगोत्रे फञ् । आत्रेयायणो भारद्वाजः । भारद्वाज-
शब्दादात्रेयगोत्रे फञ् । भारद्वाजायन आत्रेयः ॥

५०—शिवादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । १ । ११२ ॥

शिवादिभ्यः सामान्यापत्येऽण् प्रत्ययो भवति । यथाप्राप्तानामिजादीनामणप-
वादानां च बाधकः । शिवस्यापत्यं शैवः :-

शिव । प्रौष्ठ । प्रोष्ठिक । चण्ड । भण्ड । जम्भ । मुनि । सन्धि । भूरि । कुठार ।
अनभिस्तान । अनभिग्लान । ककुत्स्थ । कङ्कोड । लेख । रोध । खञ्जन । कोहड ।
पिष्ट । हेहय । खञ्जार । खञ्जाल । सुरोहिका । पर्ण । कङ्कष । परिल । वतण्ड ।
तृण । कर्ण । क्षीरहृद् । जलहृद् । परिषिक । जटिलिक । गोफिलिक । बधिरिका ।
मज्जोरका । वृष्णिक । रेख । आलेखन । विश्रवण । खण । वर्त्तनाक्ष । पिटक । पिटाक ।
तृचाक । नभाक । कर्णनाभ । जरत्कार । उत्क्षिपा । रोहितिक । आर्यश्वेत ।
सुपिष्ट । खर्जूरकर्ण । मसूरकर्ण । तूणकर्ण । मयूरकर्ण । खडरक । तक्षन् । ऋष्टि-
षेण । गङ्गा । विपाशा । यस्क । लह्य । द्रुव । अयःस्थूण । भलन्दन । विरूपाक्ष ।
भूमि । इला । सपत्नी ॥ ह्यचो नद्याः ॥ त्रिवेणी, त्रिवणं च (१) । कङ्कवय । कबोध ।
परल । ग्रीवाक्ष । गोभिलिक । राजल । तडाक । वडाक । इति शिवादयः ॥

५१—शुभ्रादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । १२३ ॥

शुभ्रादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्येऽण् प्रत्ययो भवति । यथा प्राप्तमिजादीनामपवादः ।
शुभ्रस्यापत्यं शौभ्रेयः :-

शुभ्र । विष्टपुर । ब्रह्मकृत । शतद्वार । शतावर । शलाका । शालाचल ।
शलाकाभू । लेखाभू । विमाट । विधवा । ककसा । रोहिणी । ककुमिणी । दिशा ।
शालूक । अजवस्ति । शकन्धि । लक्षणश्यामयोर्वसिष्ठे (२) ॥ गोधा । ककलास ।
अणौव । प्रवाहण । भरत । भारत । भारम । मृकण्डु । मघष्टु । मकष्टु । कपूर् ।
इतर । अन्यतर । आलौठ । सुदत्त । सुचक्षस् । सुनामन् । कद्रु । तुद्र । अकंशाप ।
कुमारिका । किशोरिका । कुवेणिका । जिह्वाशिन । परिधि । वायुदत्त । ककल ।
खट्वर । अम्बिका । अशोका । शुद्धपिङ्गला । खड्गोन्मत्ता । अनुदृष्टि । जरतिन् ।
बलिबर्दिन् । विग्रज । वीज । श्वन् । अग्रमन् । अग्र । अजिर । स्थूल । सृकण्डू ।
मकथु । यमष्टु । कष्टु । सृकण्ड । मृकण्ड । गुद । रुद्र । कुशेरिका । शकल ।
शवल । उग्र । अजिनः ॥ इतिशुभ्रादयः ॥

(१) स्त्रीवाचकाद् ह्यच इति सूत्रेण ढक् प्राप्तः स नदीवाचकान्माभूत् । रेवाया
अपत्यं रैवः । त्रिवेण्यास्त्रिवणादेशो विशेषः । त्रिवेण्या अपत्यं त्रैवणः ॥

(२) लक्षणस्यापत्यं लाक्षण्येयो वसिष्ठः । श्यामाया अपत्यं श्यामियो वसिष्ठः ।
मानुषो वाचकात् श्यामाशब्दादण् प्राप्तः सोऽनेन बाध्यते ॥

५२—कल्याणादीनामिनङ् ॥ अ० ॥ ४ । १ । १२६ ॥

कल्याणादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति तस्मिन् सति इनडादेशः ।
कल्याणा अपत्यं काल्याणिनेयः । सौभागनेयः (१) । :-

कल्याणी । सुभगा । दुर्भगा । बन्धकी । अनुदृष्टि । अनुसृष्टि । जरती । वली-
वर्दी । ज्येष्ठा । कनिष्ठा । मध्यमा । परस्त्री । इति कल्याणादयः ॥

५३—गृध्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । १३६ ॥

गृध्यादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ढञ् प्रत्ययो भवति । अणादीनामपवादः । गृष्टे-
रपत्यं गाष्टैयः । :-

गृष्टि । हृष्टि । हलि । वलि । विथि । कुद्रि । अजवस्ति । मितयु । फलि ।
अलि । दृष्टि । इति गृध्यादयः ॥

५४—रेवत्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । १ । १४६ ॥

रेवत्यादिभ्योऽपत्ये ढक् प्रत्ययो भवति । ढगादीनामपवादः । रेवत्या अपत्यं रेवतिकः :-
रेवती । अश्वपाली । मणिपाली । डारपाली । हुकवञ्चिन् । हुकग्राह । कर्णग्राह ।
दण्डग्राह । कुकुटाक्ष । हुकवन्धु । चामरग्राह । ककुदाक्ष ॥ इति रेवत्यादयः ॥

५५—कुर्वादिभ्यो ण्यः ॥ अ० ॥ ४ । १ । १५१ ॥

कुर्वादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये ण्यः प्रत्ययो भवति । कुरोरपत्यं कौरयः । काव्यः :-
कर । गर्ग । मङ्गुष । अजमारक । रथकार । वावदूक । सम्राजः चत्रिये (२)
कवि । मति । वाक् । पितृमत् । इन्द्रजालि । दामोऽयौषि । गणकारि । कैशोरि । कापि-
ज्जलादि । कुट । शलाका । मुर । एरक । अन्न । दर्भ । केशिनी । वेनाच्छन्दसि ॥
शूर्पणाय । श्यावनाय । श्यावरथ । श्यावपुत्र । सत्यंकार । बडभीकार । शङ्खु । शाक ।
पथिकारिन् । मूढ । शकन्धु । कर्त्तृ । हर्त्तृ । शाकिन् । इनपिण्डी । विस्फोटक ।
काक । सफाण्टक । शाकिन् । घातकि । धेतुजि । बुद्धिकार । वामरथस्य कण्वादिवत्
स्वरवर्जम् (३) इतिकुर्वादयः ॥

(१) कल्याणादिभ्यो ढक् तु सिद्ध आदेशार्थं वचनम् । ह्रदुभसिन्ध्वन्त इत्यु-
भयपदवृद्धिः ॥

(२) सम्राट्शब्दात् चत्रिये वाच्येऽण् भवति सम्राजोऽपत्यं साम्राज्यः चत्रियः ॥

(३) वामरथगव्यान् ण्य प्रत्ययो भवति कण्वादिवच्च स्वरजकार्यमतिदिश्यते ।
कण्वादयो गर्गाद्यन्तर्गतास्तेभ्यः शेषिकोऽण् । यथा काराव्यस्येमे छात्राः काण्वाः ।
एवं वामरथादपि शेषिकोऽण् वामरथस्य छात्रा वामरथाः । बहुवचने यञ्वण्खोऽपि
लुक् । वामरथाः । यजश्चेति ङीप् । वामरथी । इत्यादि स्वरस्वन्तोदात्त एव ॥

५६—तिकादिभ्यः फिज् ॥ अ० ॥ ४ ॥ १ । १५४ ॥

तिकादिप्रातिपदिकेभ्योऽपत्ये फिज् प्रत्ययो भवति । तिकस्यापत्यं तैकायनिः ।
केतवायनिः :-

तिक । कितव । संज्ञा । बालाशिखा । उरस् । शाढ्य । सैन्धव । यमुन्द । रूप्य ।
ग्राम्य । नील । अमित्र । गौकक्ष्य । कुर । देवरथ । तैतिल । ओरस । कौरव्य ।
भौरिकि । भौलिकि । चौपयत । चैटयत । शैकयत । चैतयत ध्वाजवत । चन्द्रमस् ।
शुभ । गङ्गा । वरेण्य । सुयामन् । आरब्ध । वल्लका । खल्य । वृष (१) । लोमक ।
उदन्य । यज्ञ । ऋथ । भीत । जाजल । रस । लावक । ध्वजवद । वसु । वन्धु ।
आवन्धका । सुयामन् ॥ इति तिकादयः ॥

५७—वाकिनादीनां कुक् च ॥ अ० ॥ ४ । १ । १५८ ॥

वाकिनादिशब्देभ्योऽपत्ये फिज् प्रत्ययो भवति । तत्सन्नियोगेन चैषां कुगागमः
वाकिनस्यापत्यं वाकिनकायनिः :-

वाकिन । गारिध । कार्कट्य । काक । लङ्का ॥ चर्मिर्वर्मिणीर्नलोपश्च (२) ।
इति वाकिनादयः ॥

५८—वा०—कम्बोजादिभ्यो लुग्वचनम् ॥ ४ । १ । १७५ ॥

कम्बोजादिशब्देभ्योऽपत्ये तद्राननि विहितस्य लुग्भवति । कम्बोजस्यापत्यं तद्रा
जो वा कम्बोजः :-

कम्बोज । चोल । केरल । शक । यवन । इति कम्बोजादयः ॥

५९—न प्राच्यभर्गादियौधेयादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । १ । १७८ ॥

प्राच्यत्तत्रियवाचकेभ्यो भर्गादिभ्यो यौधेयादिभ्यश्चोत्पन्नस्य तदाजप्रत्यस्य लुङ्
न भवति । अतश्चैति प्राप्तः प्रतिषिध्यते । प्राच्य । पञ्चालानां राज्ञी पाञ्चाली ।
वैदेही । भार्गी । यौधेयी :-

भर्ग । करुष । केकय । कश्मीर । साल्व । सुस्थाल । उरश । कौरव्य । इति भर्गा
दयः ॥ यौधेय । शौम्नेय । शौक्रेय । ग्रावाण्य । वार्त्तेय । धार्त्तेय । त्रिगर्त्त । भरता
उशीनर । इतियौधेयादयः ॥

(१) फिज् प्रत्ययसम्बन्धे वृषशब्दस्य यकारान्तत्वं महाभाष्ये कृतम् । वृषस्या
पत्यं वार्यायनिः ॥

(२) चार्मिकायणिः वार्मिकायणिः ।

६०—भिच्चादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ३८ ॥

षष्ठी समर्थभिच्चादिभ्यः समूहार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । अजादिवाधनार्थ-
मण्यङ्गणम् । भिच्चाणां समूहो भैक्षम् । गार्भिणम् :-

भिच्चा । गार्भिणी । चैत्र । करीष । अंगार । चर्मिन् । धर्मिन् । चर्मन् । धर्मन् ।
सहस्र । युवति । पदाति । पङ्क्ति । अथर्वन् । अर्वन् । दक्षिणा । भूत । विषय ।
ओत्र ॥ वृच्चादिभ्यः खण्डः (१) ॥ वृक्षखण्डः । वृक्ष । तरु । पादप । इति भिच्चादयः ।

६१—खण्डिकादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ४५ ॥

खण्डिकादिभ्यः समूहार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । खण्डिकानां समूहः खण्डिकम् :-
खण्डिका । वडवा ॥ क्षुद्रकमालवातसेनासञ्ज्ञायाम् ॥ (५) भिक्षुक । शुक ।
उलूक । श्वन । युग । अहन् । वरत्रा । हलवन्ध । इति खण्डिकादयः ॥

६२—पाशादिभ्यो यः ॥ अ० ॥ ४ । २ । ४६ ॥

षष्ठीसमर्थपाशादिभ्यः समूहार्थे यः प्रत्ययो भवति । पाशानां समूहः पाश्या
रज्जुः । तण्ड्या :-

पाश । तण्ड । धूम । वात । अंगार । पोत । बालक । पिटक । पिटाक । शकटा
हल । नड । वन । पाटलका । गल । इति पाशादयः ॥

६३—राजन्यादिभ्यो वुञ् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ५३ ॥

राजन्यादिप्रातिपदिकेभ्यो विषयो देश इत्येतस्मिन्नर्थे वुञ् प्रत्ययो भवति ।
राजन्यानां विषयो देश, राजन्यकः :-

राजन्य । देवयान । शालङ्कायन । जालन्धरायण । आत्मकामेय । अश्वरीष
पुत्र । वसाति । वैल्वान । शैलूष । उदुस्वर । वैल्ववल । आर्जुनायन । संप्रिय ।
दाक्षि । जर्णनाभ । आप्रीत । अन्नौड । वैतिल । वाक्क (३) । इति राजन्यादयः ॥

(१) खण्डशब्दः पुस्तकान्तरपठितो न सर्वत्र क्वचित्तु वृच्चादिभ्यः षण्डः ।
इतिपाठः । वृक्षषण्डः ॥

(२) क्षुद्राश्च मालवाश्चेति क्षत्रियहन्तः । ततः पूर्वेणैवाजिसिद्धे गोत्रवुञ् वाधनार्थं
वचनम् । क्षुद्रकमालवानां समूहः क्षौद्रकमालवी सेना । सेनासञ्ज्ञेतिनियमार्थम् ।
अन्यत्राञ् न भवति । क्षौद्रकमालवकम् ॥

(३) अयमाकृतिगणस्तेन मालवानां विषयो देशः, मालवकः । वैराटकः ।
वैगर्त्तकः । इत्यादयः शब्दाः सिद्धा भवन्ति ॥

६३—भौरिक्याद्येषुकार्यादिभ्यो विधल्भक्तलौ ॥ अ० ॥ ४।२।५४ ॥

विषयो देश इत्येतस्मिन् विषये षष्ठीसमर्थेभ्यो भौरिक्यादिभ्य एषुकार्यादि-
भ्यश्च यथासंख्यं विधल्भक्तलौ प्रत्ययौ भवतः । अणोऽपवादः । भौरिकीणां विषयो
देशः, भौरिकिविधः । एषुकारिभक्तः ॥

भौरिकि । भौलिकि । वैपेय । चेटयत । काणिय । वाणिजक । कालिज ।
वालज्यक । शैकयत । वैकयत । इति भौरिक्यादयः ॥ एषुकारि । सारस्यायन ।
चान्द्रायण । द्वाचायण । व्यायण । ओढायन । जीलायन । खाढायन । सीवीर ।
दासमित्रि । दासमित्रायण । शौद्रायण । दाचायण । शयण्ड । तार्क्ष्यायण । शौभा-
यण । सायण्डि । शौण्डि । वैश्वमाणव । वैश्वधेनव । नद । तुण्डदेव । अलायत ।
श्रीलालायत । शौण्ड । शयाण्ड । वैश्वदेव ॥ इत्येषुकार्यादयः ॥

६५—क्रतूक्खादिसूत्रान्ताट् ठक् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ६० ॥

तदधीते तद्देत्यस्मिन् विषये क्रतुविशेषवाचिभ्य उक्थादिभ्यः सूत्रान्ताश्च
प्रातिपदिकाट् ठक् प्रत्ययो भवति । अणोऽपवादः । अग्निष्टोममधीते वेद वा,
आग्निष्टोमिकः । वाजपेयिकः । औक्थिकः । वार्त्तिकसूत्रमधीते, वार्त्तिकसूत्रिकः
सांग्रहसूत्रिकः :-

उक्थ । लोकायत । न्याय । न्यास । निमित्त । पुनरुक्त । निरुक्त । यज्ञ । चर्चा ।
धर्म । क्रमेतर । सूत्रण । संहिता । पद । क्रम । संघात । वृत्ति । संग्रह । गुणागुण ।
आयुर्वेद ॥ द्विपदी, ज्योतिषि (१) ॥ अनुपद । अनुकल्प । अनुगुण । इत्युक्थादयः ॥

६६—क्रमादिभ्यो वुन् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ६१ ॥

तदधीते तद्देत्यर्थे क्रमादिभ्यो वुन् प्रत्ययो भवति । क्रममधीतेऽक्रमकः पदकः :-
क्रम । पद । शिक्ता । मीमांसा । सामन् । इति क्रमादयः ॥

६७—वसन्तादिभ्यश्चक् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ६२ ॥

तदधीते तद्देत्यस्मिन् विषये वसन्तादिप्रातिपदिकेभ्यश्चक् प्रत्ययो भवति ।
यस्य सप्तहचरितो ग्रन्थो वसन्तस्तमधीते वेद वा स वासन्तिकः । वार्षिकः । एवं सर्वत्र :-

वसन्त । वर्षा । शरद । हेमन्त । शिशिर । प्रथम । गुण । चरम । अनुगुण ।
अपर्वन् । अथर्वन् ॥ इति वसन्तादयः ॥

(१) द्विपदी ज्योतिःशास्त्रमधीते जानाति वा स द्विपदिकः ॥

६८—संकलादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । ७५ ॥

संकलादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकोऽण् प्रत्ययो भवति । अणोऽपवादः । पुष्कलं सन्तीति पौष्कलो देशः । सिकताया अदूरभवो ग्रामः सैकतः । यथा स वमर्थसंबन्धः :-

संकल । पुष्कल । उदय । उदुप । उत्पुट । कुम्भ । विधान । सुदच । सुदर । सुभूत । सुनेत्र । सुपिङ्गल । सिकता । पूतीकी । पूलास । कूलास । पलाश । निवेश । गवेश । गम्भीर । इतर । शर्मन् । अहन् । सोमन् । विमन् । वरुण । बहु । सद्योज । अभिषिक्त । गोभृत् । राजभृत् । गृह । भृत । भक्त । माल । (हत्) इति संकलादयः ॥

६९—सुवास्वादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ७७ ॥

सुवास्वादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकोऽण् प्रत्ययो भवति । अणोऽपवादः । सुस्तोरदूरं नगरं, सौवास्तवम् । सौवास्तवौ । नदी :-

सुवास्तु । वरुण । भण्डु । खण्डु । कण्डु । सेचालिन् । कपूर्दिन् । शिखण्डि । गतं । कर्कश । शटीकर्ण । कृष्ण । कर्क । कर्कन्मूमती । गोह्य । गाहि । अहिसक् । (हत्) इति सुवास्वादयः ॥

७०—वुञ्छण्कठजिलसेनिरठञ्णययफक्फिजिञ्अककठवे । अरीहणकशाम्भश्यकुमुदकाशटणप्रेक्षाश्चखिसंकाशवलपक्षक । सुतङ्गमप्रगदिन्वराहकुमुदादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । २ । ८० ॥

अरीहणादिसप्तदशगणस्थप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिका वुजादयः सप्तदशैव प्रत्ययथासंख्येन भवन्ति । आदिशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते । यथासम्भवमर्थसम्बन्धः । अरीहणादिभ्यो वुञ् । शिरीषाणामदूरभवो ग्रामः शैरीषकः । अरीहणानां निवृत्तिदेश आरीहणकः :-

अरीहण । द्रुवण । खदिर । सार । भगल । उलन्द । सांपरायण । क्रीडयण । भास्त्रायण । मेवायण । जैगर्त्तायन । रायस्पोष । विपय । उदृष्ट । खाडायन । खण्ड । वीरण । काशकृत्स्न । जाम्बवन्त । शिंशपा । किरण । वैव । वैमतायन । मेमतायण । सौसायन । शाण्डिल्यायन । शिरीष । बधि । वैगर्त्तायण । गोमतायण । सौमतायण । खाण्डायण । विपाश । सुयज्ञ । जम्बु । सुश । इत्यरीहणादयः ॥ कशाश्वादिभ्यश्छण् । कार्शाश्चीयः । अरिष्टेन निर्हतमारिष्टीयम् । कशाश्च । अरिष्ट । अरीश्च । वेष्मन् । विशाल । रोमक । शवल । कु । रोमन् । वर्वर । सुकर । सूकर । प्रतर । सदृश । पुरग । सुख । धूम । अजि

विनता । वनिता । अवनत । विकुशास । अरुस् । अवयास । अयावस् । मीदुगल ।
इति कृशाश्चादयः ॥ ऋश्यादिभ्यः कः ॥ न्यग्रोधानामदूरभवं वनं न्यग्रोधकम् :-

ऋश्य । न्यग्रोध । शिरा । निलीन । निवास । निधान । निवात । निवह ।
विवह । परिगूढ । उपगूढ । उत्तराश्मन् । स्थूलबाहु । खदिर । शर्करा । अनडुह ।
परिवंश । वेणु । वीरण । खण्ड । परिवृत्त । कर्दम । अंशु । इति ऋश्यादयः ॥ कुमु-
दादिभ्यश्च ॥ बल्वजाः सन्त्यस्मिन् स बल्वजिको देशः :-

कुमुद । शर्करा । न्यग्रोध । उल्कट । इल्कट । गर्त्त । बीज । अश्वत्य । बल्वज । परिवाप ।
शिरीष । यवाष । कूप । विकङ्कत । कण्टक । कङ्कट । संकट । पलाश । त्रिक । कत ।
दशग्राम । इति कुमुदादयः ॥ काशादिभ्य इलः । काशाः सन्ति यत्र स काशिलो देशः :-

काश । वाश । अश्वत्य । पलाश । पीयूष । विश । विस । तण । नर । चरण ।
कर्द्दम । कर्पूर । कण्टक । गूह । आवास । नड । वन । बधूल । बर्बर । इति का-
शादयः ॥ तण्णादिभ्यः णः ॥ तण्णानि यत्र सन्ति स तण्णो देशः :-

तण । नड । वुस । पर्ण । वर्ण । चरण । अर्ण । जन । बल । लव । वन ।
इति तणादयः ॥ प्रेक्षादिभ्यः इनिः । प्रेक्षयानिर्वृत्तः प्रेक्षी :-

प्रेक्षा । हलका । फलका । बन्धुका । ध्रुवका । क्षिपका । न्यग्रोध । इकुट ।
बुधका । संकट । कूपका । कर्कटा । सुकटा । मङ्कट । सुक । महा । इति प्रेक्षादयः ॥
अश्मादिभ्योरः । अश्मनानिर्वृत्तः, अश्मरः :-

अश्मन् । यूष । रूषासीन । दर्भा । वृन्दा । गुडा । खण्ड । नगा । शिखा । यूथ । रुष । नद । नख ।
काट । पाम । इत्यश्मादयः ॥ सख्यादिभ्यो ढञ् । सखायः सन्त्यत्र साखियो देशः :-

सखि । सखिदत्त । वायुदत्त । गोहित । गोहिल । भल्ल । पाल । चक्रपाल ।
चक्रवाल । छगल । अशोक । करवीर । सौकर । सकर । सरस । समल । चर्क ।
वक्रपाल । उशीर । सुरस । रोह । तमाल । कदल । समल । इति सख्यादयः ॥

संकाशादिभ्यो ण्यः । सांकाश्यम् । काम्पिल्यस्यादूरभवो ग्रामः काम्पिल्यः :-

संकाश । काम्पिल्य । समीर । कश्मर । शूरसेन । सुपथिन् । सकथच । यूष ।
अंश । राग । अश्मन् । कूट । मलिन । तीर्थ । अगस्ति । विरत । चिकार । विरहा ।
नासिका । इति संकाशादयः ॥ बलादिभ्यो यः प्रत्ययः । बलेन निर्वृत्तो बल्यः :-

बल । वुल । तुल । डल । डुल । कवल । वन । कुल । इति बलादयः ॥ पक्षा-
दिभ्यः फक् प्रत्ययः । पक्षेण निर्वृत्तः पाक्षायणः :-

पक्ष । तुष । अण्ड । कम्बलिक । चित्र । अश्मन् । अतिस्वन् ॥ पथिन्, पन्थच
(१) ॥ कुम्भ । सीरज । सीरक । सरक । सलक । सरस । समल । रोमन् ।

(१) पंथोऽदूरभवं वनं पान्थायतनम् ॥

लोमन् । हंसका । लोमक । सकण्डक । अस्तिबल । यमल । हस्त । सिंहक ।
इति पञ्चादयः ॥ कर्णादिभ्यः फिज् प्रत्ययः । कर्णस्य निवासः कार्णायनिः :-

कर्ण । वसिष्ठ । अलुश । शल । डुपद । अनडुह्य । पाञ्चजन्य । स्थिरा ।
कुलिश । कुक्षी । जीवन्ती । जित्व । आण्डीवत् । अर्क । लूष । स्फिक् । ज्ञावत् ।
इतिकर्णादयः ॥ सुतङ्गमादिभ्य इज् प्रत्ययो भवति । सुतङ्गमेन निर्वृत्तः सौतङ्गमिः

सुतङ्गम । मुनिचित्त । विप्रचित्त । महापुत्र । प्रवेत । गडिक । शुक्र । विग्र ।
बीजवापिन् । श्वन् । अर्जुन । अजिर । जीव । इति सुतङ्गमादयः ॥ प्रगदिनादिभ्यो
ज्यः प्रत्ययो भवति । प्रगदिनो यत्र सन्ति स प्राग्यो देशः :-

प्रगदिन् । मगदिन् । शरदिन् । कलिव । खडिव । गडिव । चूडार । मार्जार
कीविदार ॥ इति प्रगदिनादयः ॥ वराहादिभ्यः कक् प्रत्ययः । वराहाः सन्ति-
यत्र स वाराहको देशः । पालाशकः :-

वराह । पलाश । शिरीष । पिनङ्ग । स्थूण । विदग्ध । विदग्ध । विभग्न । वाहु ।
खदिर । शर्करा । विनङ्ग । निवङ्ग । विरुङ्ग । मूल । इति वराहादयः ॥ कुमुदादिभ्योऽठक्
प्रत्ययो भवति । कुमुदाः सन्ति यस्मिन् देशे स कौमुदिको देशः :-

कुमुद । गोमय । रथकार । दशग्राम । अश्वत्थ । शास्त्राली । कुण्डल । मुनिस्थूल ।
कूट । मुचुकर्ण । कुन्द । मधुकर्ण । शुचिकर्ण । शिरीष । इति कुमुदादयः ॥

७१—वरणादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । ८२ ॥

वरणादिप्रातिपदिकेभ्य उत्पन्नस्य चातुरर्थिकप्रत्ययस्य लुब् भवति वरणानाम-
दूरभवं नगरं वरणाः :-

वरणाः । पूर्वौगोदी । पूर्वैणगोदी । अपरैणगोदी । आलिङ्ग्यायन । पर्णी । शृङ्गी ।
शस्त्रलयः । सदाखी । वणिकि । वणिक । जालपद । मथुरा । उज्जयिनी । गया ।
तक्षशिला । उरशा । आकृत्या (१) । इति वरणादयः ॥

७२—मध्वादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । ८६ ॥

मध्वादिशब्देभ्यश्चातुरर्थिको मतुप् प्रत्ययो भवति । मध्वस्मिन्नस्तीति मधुमान् :-

मधु । विस । स्थाणु । मुष्टि । हृष्टि । इक्षु । वेणु । रम्य । ऋक्ष । कर्कन्धुशमी ।
किरीर । हिमा । किशरा । शर्पणा । मरुत् । मरुव । दार्वाघाट । शर । इष्टका । तक्षशि-
ला । शक्ति । आसन्दी । आसुति । शलाका । आमिधी । खडा । वेटा । इति मध्वादयः ॥

(१) अत्र सूत्रस्थचकारेणाकृतिगणत्वं बुध्यते । तेन कटुकवदर्थ्या अदूरभवो
ग्रामः कटुकवदरी । शिरीषाः । काष्ठी इत्यादिषु लुप् सिद्धो भवति ॥

७३—उत्करादिभ्यश्चः ॥ अ० ॥ ४ । २ । ६० ॥

उत्करादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकश्चः प्रत्ययो भवति । यथासंभवमर्थसंबन्धः ।
अर्काणामदूरभवो ग्रामः, अर्कीयः :-

उत्कर । सफल । संकर । शफर । पिप्पल । पिप्पलीमूल । अश्मन् । अर्क ।
पर्ण । सुपर्ण । खलाजिन । इडा । अरिन । तिक । कितव । आतप । अनेक ।
पलाश । तणव । पिचुक । अश्वत्थ । शकाचुद्र । भस्त्रा । विशाला । अवरोहित ।
गर्त । शाल । अन्य । जन्या । अजिन । मञ्च । चर्मन् । उत्क्रोश । शान्त । खदिर ।
शूर्पणाय । श्यावनाय । नैव । वक । नितान्त । हृद्य । इन्द्रहृद्य । भार्द्रहृद्य । अर्जुन-
हृद्य । इत्युत्करादयः ॥

७४—नडादीनां कुक् च ॥ अ० ॥ ४ । २ । ६१ ॥

नडादिप्रातिपदिकेभ्यश्चातुरर्थिकश्चः प्रत्ययो भवति तस्मिन् सति कुगागमश्च ।
यथासंभवमर्थसंबन्धः । नडाः सन्ति यत्र तत्रडकीयं वनम् :-

नड । प्लव । विरव । वेणु । वेत । वेतस । तृण । इक्षु । काष्ठ । कपोत ।
क्रुञ्चाया क्लृप्तत्वं च (१) ॥ तच्चञ्चलोपश्च ॥ इति नडादयः ॥

७५—कत्त्यादिभ्यो ढक्ञ् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ६५ ॥

कत्त्यादिशब्देभ्यः शेषार्थे ढक्ञ् प्रत्ययो भवति । कत्तौ भवः काल्लेयकः :-
कत्ति । उन्धि । पुष्कर । पुष्कल । मोदन । कुम्भी । कुण्डिन । नगर । वल्ली ।
भक्ति । माहिष्मती । चर्मखती । वर्मती । ग्राम । उल्या । कुल्याया यलोपश्च (२) ॥
इति कत्त्यादयः ॥

७६—नद्यादिभ्यो ढक् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ६७ ॥

नद्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषिको ढक् प्रत्ययो भवति । नद्यां भवं नादेयम् :-
नदी । मही । वाराणसी । आवस्ती । कौशास्वी । नवकौशाम्बी । काशफरी ।
खादिरी । पूर्वनगरी (३) । पावा । मावा । साल्वा । दावा । दास्वा । वासेनकी ।
वडवाया हृषे ॥ इति नद्यादयः ॥

(१) क्रुञ्चाः सन्त्यस्मिन् तत् क्रुञ्चकीयं वनम् । तच्चकीयो ग्रामः ॥

(२) कुल्यां भवः काल्लेयकः । यकारलोपः ॥

(३) पूर्वनगर्यां भवः पूर्वनगरियः । अत्र-पूः । वन । गिरि । इतिपाठात्तरम् ।
तदा-पौरियम् । वानेयम् । गैरियमिति विभक्तं रूपत्रयं सिध्यति ॥

७७—प्रस्थोत्तरपदपलद्यादिकोपधादण् ॥ अ० ॥ ४ । २ । ११० ॥

प्रस्थोत्तरपदात् पलद्यादिभ्यः कोपधाच्च प्रातिपदिकादण् प्रत्ययो भवति शैषिकः ।
मद्रीप्रस्थे भवो माद्रीप्रस्थः । माहकीप्रस्थः । पलद्यां भवः पालदः । पारिषदः ।
कोपधात् । नैलोनकः । :-

पलदी । परिषत् । यकृल्लोमन् । रोमक । कालकूट । पटञ्चर । वाहीक । कल-
कीट । मलकीट । कमलकीट । कमलभिदा । कमलकीर । बाहुकीट । नैतकी ।
परिखा । शूरसेन । गोमती । उदपान । पक्ष । कललकीट । कललकीकटा । गोष्ठी ।
नैधिकी । नैकेती । सकृल्लोमन् । इति पलद्यादयः ॥

७८—कण्वादिभ्यो गोत्रे ॥ अ० ॥ ४ । २ । १११ ॥

गोत्रप्रत्ययान्तकण्वादिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिकोऽण् प्रत्ययो भवति । काण्यस्ये-
मे काण्वाशूक्षाः । गर्गाद्यन्तर्गताः कण्वादयः । अतएवात्र न लिख्यन्ते ॥

७९—काश्यादिभ्यश्छञ्जिठौ ॥ अ० ॥ ४ । २ । ११६ ॥

काश्यादिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिकौ छञ्जिठौ प्रत्ययौ भवतः । प्रत्यययोर्यकार
विपर्ययभेदात् स्त्रीप्रत्यये विशेषः । छञन्तान् ङीप् जिठान्तात् तु टावेव भवति ।
काश्यां भवः काशिकः । काशिकौ । काशिका :-

काशि । चेदि । वैदि । संज्ञा । संवाह । अच्युत । मोहमान । शकुलाद । हस्ति-
कर्षू । कुदामन् । कुनामन् । हिरण्ये । करण । गोधाशन । भौरिकि । भौलिङ्गि ।
अरिन्दम । सर्वमित्र । देवदत्त । साधुमित्र । दासमित्र । दासग्राम । सौधावतान ।
युवराज । उपराज । सिन्धुमित्र । देवराज । आपदादिपूर्वपदान्तात् कालान्तात् ॥
आपत्कालिकौ । आपत्कालिका । और्ध्वकालिकौ । और्ध्वकालिका । तात्कालिकौ ।
तात्कालिका । इति काश्यादयः ॥

८०—धूमादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । १२७ ॥

देशवाचिभ्यो धूमादिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिको वुञ् प्रत्ययो भवति । षणोऽपवादः
धूमे भवो धीमकः :-

धूम । खण्ड । खडण्ड । शशादन । आर्जुनाद । दाण्डायनस्थली । माहकस्थली
घोषस्थली । माषस्थली । राजस्थली । राजगृह । सत्रासाह । भक्षास्थली । मद्रकूल
गर्तकूल । आज्जीकूल । ह्याहाव । त्राहाव । संहोय । वर्वर । वर्चगर्त । विदेह ।
आनर्त । माठर । पाथेय । घोष । शिथ । मित्र । वल । आरात्री । धार्तरात्री ।

अवयात । तीर्थ । कूलात्कौवीरेषु ॥ समुद्रान्नावि मनुष्ये च (१) ॥ कुचि । अन्त-
रीप । द्वीप । अरुण । उज्जयिनी । दक्षिणापथ । साकेत । मानवल्ली । वल्ली । सुराज्ञी ।
इति धूमादयः ॥

८१—कच्छादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । १३३ ॥

कच्छादिदेशवाचि प्रातिपदिकेभ्यः शैषिकोऽण् प्रत्ययो भवति । वुजादेरपवादः ।
काच्छे भवः काच्छः :-

काच्छ । सिन्धु । वर्ण । गन्धार । मधुमत् । कम्बोज । कश्मीर । सात्व । कुरु ।
रङ्कु । अणु । अण्ड । खण्ड । द्वीप । अनूप । अजवाह । विजापक । कुलून ।
इति कच्छादयः ॥

८२—गहादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । २ । १३८ ॥

गहादिप्रातिपदिकेभ्यः शैषिकश्छः प्रत्ययो भवति अणञोरपवादः । अन्तःस्थे भव
अन्तःस्थीयः :-

गह । अन्तःस्थ । सम । विषम । मध्यमधमं चाण् चरणे (२) उत्तम । अङ्ग ।
वङ्ग । मगध । पूर्वपक्ष । अपरपक्ष । अधमशाख । उत्तमशाख । समानशाख । एक-
ग्राम । एकवृक्ष । एकपलाश । इध्वय । इध्वनीक । अवस्यन्दी । अवस्कन्द । काम-
प्रस्थ । खाडायनि । खाण्डायनी । कावेरणि । कामवेरणि । शैशिरि । शीङ्गि ।
आसुरि । आहिंसि । आमित्रि । व्याडि । वैदर्जि । भौजि । आङ्गशि । आनृशंसि ।
सौवि । पारकि । अग्निशर्मन् । देवशर्मन् । औति । आरटकि । वाल्मीकि । जेमह-
डिन् । उत्तर । अन्तर ॥ मुखपार्श्वतसोर्लोपः ॥ जनपरयोः कुक् च ॥ देवस्य च ॥
वैणुकादिभ्यश्छण् (३) ॥ इति गहादयः ॥

(१) समुद्रशब्दान्नावि मनुष्ये च वाच्ये वुज् । समुद्रे भवा सासुद्रिका नौः ।
सासुद्रिकी मनुष्यः । अन्यत्र सासुद्रं जलम् ॥

(२) अस्यैव सूत्रस्य शेषवार्त्तिकप्रमाणेन पृथिवीमध्यशब्दस्य मध्यमादेशश्च-
रणेऽभिधेये निवासलक्षणोऽण् प्रत्ययः । अन्यत्र तु छ एव । पृथिवीमध्येनिवास एषां
ते माध्यमाश्चरणाः । चरणादन्यत्र । मध्ये भवो मध्यमीयः ॥

(३) मुखपार्श्वयोस्तसन्तयोरन्त्यलोपः । मुखतो भवं मुखतीयम् । पार्श्वतीयम् ।
जने भवो जनकीयः । परकीयः । देवो भक्तिरस्य देवकीयः । वैणुकादिराकतिगणः ।
वैणुकदेशे भवो वैणुकीयः । वैरेणकीयः । पालाशकीयः ॥

८३—सन्धिवेलाद्यतुनक्षत्रेभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १६ ॥

सन्धिवेलादिभ्य ऋतुभ्यो नक्षत्रेभ्यश्च कालवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः शेषिकोऽण् प्रत्ययो भवति । ठञोऽपवादः । अण्यहणं वृद्धाच्छस्य बाधनार्थम् । सन्धिवेलायां जातः सान्धिवेलः । ग्रै मः । तैषः । पीषः :-

सन्धिवेला । सन्ध्या । अमावास्या । त्रयोदशी । चतुर्दशी । पंचदशी । पूर्णिमासी । प्रतिपत् ॥ संवत्सरात् फलपर्वणोः ॥ सांवत्सरं फलम् । सांवत्सरं पर्व ॥ इति सन्धिवेलादयः ॥

८४—दिगादिभ्यो यत् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ५४ ॥

सप्तमीसमर्थदिगादिप्रातिपदिकेभ्यो भवार्थे यत् प्रत्ययो भवति । अणश्चस्य चापवादः । दिशि भवं दिश्यम् :-

दिश । वर्ग । पूर्ण । गण । पक्ष । धाव्या । मित्र । मेघा । अन्तर । पथिन् । रहस् । अलौक । उखा । साविन् । आदि । अन्त । मुख । जघन (१) । मेघ । यूथ । उदकाक्षंज्ञायाम् (२) न्याय । वंश । अनुवंश । विश । काल । अप् । आकाश । इति दिगादयः ॥

८५—वा०—उपप्रकरणे परिमुखादिभ्य उपसंख्यानम् ॥ ४ । ३ । ५६ ॥

अव्ययीभावसंज्ञकेभ्यः परिमुखादिप्रातिपदिकेभ्यो उपप्रत्ययो भवति । नियमार्थं वार्त्तिकमिदम् । सूत्रेण सामान्याव्ययीभावाद उच्यते । निगम्यते । परिमुखं भवं पारिमुख्यम् । पारिहन्यम् । नियमादिह न भवति । उपकूलं भवमौपकूलम् :-

परिमुख । परिहनु । पर्योष्ठ । पर्युलू । औपमूल । खल । परिसीर । अनुसीर । उपसीर । उपस्थल । उपकलाप । अनुपथ । अनुखड्ग । अनुतिल । अनुशीत । अनुमाष । अनुयव । अनुयू । अनुवंश । अनुखड्ग । इति परिमुखादयः ॥

८६—वा०—अध्यात्मादिभ्यश्च ॥ ४ । ३ । ६० ॥

अध्यात्मादिभ्यो भवार्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । अध्यात्मं भवमाध्यात्मिकम् :-

अध्यात्म । अधिदेव । अधिभूत । आकातिगणोयऽम् । इत्यध्यात्मादयः ॥

(१) मुखजघनशब्दाभ्यां शरीरावयवत्वादेव यति सिद्धे पुनरत्र दिगादिषु पाठोऽशरीरावयवार्थः । सेनामुखे भवः सेनामुख्यम् । सेनाजघन्यम् । सेनाया अग्र पश्चाद्भागौ गृह्येते । तदन्तविधिना यत् ॥

(२) उदके भवा उदका रजखला । संज्ञाग्रहणादिह न भवति । उदके भव औदको मतस्यः ॥

८७—अण् ऋगयनादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ७३ ॥

षष्ठीसप्तमीसमर्थेभ्य ऋगयनादिप्रातिपदिकेभ्यो भवव्याख्यानयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति । ऋगयने भवमार्गयनः । तस्य व्याख्यानो वा । अणग्रहणं बाधकबाधनार्थम् वास्तुविद्याया व्याख्यानो ग्रन्थो वास्तुविद्यः । अत्र ह् प्रत्ययो माभूत् :-

ऋगयने । पदव्याख्यान । छन्दोमान । छन्दोभाषा । छन्दोविचिति । न्याय । पुनरुक्त । व्याकरण । निगम । वास्तुविद्या । अङ्गविद्या । क्षत्रविद्या । उत्पात । उत्पाद । संवत्सर । मुहूर्त्त । निमित्त । उपनिषद् । शिक्षा । छन्दोविजिनी । व्याय । निरुक्त । विद्या । उद्याव । भिक्षा । इति, ऋगयनादयः ॥

८८—शुण्डिकादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ७६ ॥

पंचमीसमर्थशुण्डिकादिप्रातिपदिकेभ्य आगतार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । शुण्डिका-
दागतः शौण्डिकः :-

शुण्डिक । कृकण । स्थण्डिल । उदपान । उपल । तीर्थ । भूमि । दण । पर्ण ।
इति शुण्डिकादयः ॥

८९—शण्डिकादिभ्यो ज्यः ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ८२ ॥

प्रथमासमर्थशण्डिकादिप्रातिपदिकेभ्योऽभिजन ऽभिधेये ज्यः प्रत्ययो भवति
शण्डिकोऽभिजनोऽस्य स शण्डिक्यः :-

शण्डिक । सर्वकेश । सर्वसेन । शक । सट । रक । शङ्ख । बोध । इति
शण्डिकादयः ॥

९०—सिन्धुतक्षशिलादिभ्योऽणञौ ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ८३ ॥

प्रथमासमानाधिकरणेभ्यः सिन्ध्वादिभ्यस्तक्षशिलादिभ्यश्चाभिजनार्थे यथासं-
ख्यमणञौ प्रत्ययो भवतः । सिन्धुरभिजनोऽस्य स सिन्धवः । तक्षशिलाऽभिजनोऽस्य
स ताक्षशिलः । प्रत्ययभेदः स्वरभेदार्थः :-

सिन्धु । वणु । गन्धार । मधुमत् । कम्बोज । कश्मीर । साल्व । किष्किन्धा ।
गन्धिका । उरस । दरत् । कुलून । दिरसा । इति सिन्ध्वादयः ॥

तक्षशिला । वत्सोद्धरण । कौमेदुर । काण्डवारण । ग्रामणी । सरालक । कंस ।
किन्नर । संकुचित । सिंहकोष्ठ । कर्णकोष्ठ । बर्वर । अवसान । इतितक्षशिलादयः ॥

६१—शौनकादिभ्यश्चन्द्रसि ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १०६ ॥

तृतीयासमर्थशौनकादिप्रातिपदिकेभ्यश्चन्द्रसि वेदे प्रोक्तार्थे णिनिः प्रत्ययो भवति । छाणोरपवादः । शौनकेन प्रोक्तमधीयते, शौनकिनः । वाजसनेयिनः । चन्द्रसीति किम् । शौनकीया शिञ्जा । अत्र चन्द्र एव भवति :-

शौनक । वाजसनेय । साङ्गरव । शाङ्गरव । सपेय । शाखेय । खाडायन । स्कन्द । स्कम्भ । देवदत्तशठ । रज्जुकण्ठ । रज्जुभार । कठशाड । कशाय । तलवकार । पुरुषासक । अश्वपेय । स्कम्भ । इति शौनकादयः ॥

६२—कुलालादिभ्यो वुञ् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ११८ ॥

तृतीयासमर्थकुलालादिप्रातिपदिकेभ्यो वुञ् प्रत्ययो भवति । कृतमित्येतस्मिन्नर्थे संज्ञायां गम्यमानायाम् । कुलालेन कृतं कौलालकम् । वारुडकम् :-

कुलाल । वरुड । चण्डाल । निषाद । कर्मार । सेना । सिरिध्र । सेन्द्रिय । देवराज । परिषत् । बधू । रुह । ध्रुव । रुद्र । अनडुह् । बृहन्न । कुम्भकार । श्वपाक । इति कुलालादयः ॥

६३—वित्वादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । ११६ ॥

षष्ठीसमर्थवित्वादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति वित्त्वस्य विकारोऽवयवो वा वैत्वः :-

वित्त्व ॥ व्रीहि । काण्ड । मुद्ग । मसूर । गोधूम । इक्षु । वेणु । गवेधुका (१) कर्पासी । पाटलो । कर्कम्भू । कुटीर ॥ इति वित्त्वादयः ॥

६४—पलाशादिभ्यो वा ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १४१ ॥

पलाशादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरञ् प्रत्ययो भवति । पलाशस्य विकारः पालाशम् । खादिरम् :-

पलाश । खदिर । शिंशपा । स्यन्दन । करीर । शिरीष । यवास । विकङ्कत । इति पलाशादयः ॥

६५—नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १४४ ॥

वृद्धभ्यः शरादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भक्ष्याच्छादनयोर्विकारावयवयोर्भाषायां विषये नित्यं मयट् प्रत्ययो भवति । वृद्ध-आन्त्रमयम् । शालमयम् । शरमयम् । दर्भमयम् :-

शर । दर्भ । मृत् । कुटी । तण । सोम । वल्बज । इति शरादयः ॥

(१) अस्मात्कोपधाञ्चैत्यणि सिद्धे पुनःपाठो मयड् बाधनार्थः एतस्मिन् पक्षेऽपि मयण् भाभूदिति ॥

६६—तालादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १५२ ॥

तालादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरण् प्रत्ययो भवति । तालस्य विकारः तालं धनुः । अन्यत्र तालमयम् । वृद्धत्वान्मयट् :-

तालाबनुषि । बार्हिण । इन्द्रालिष । इन्द्रादृश । इन्द्रायुध । चाप । श्यामाक । प्रीयुचा ॥ इति तालादयः ॥

६७—प्राणिरजतादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १५४ ॥

प्राणिवाचिभ्यो रजतादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवयोरञ् प्रत्ययो भवति । कपोतस्य विकारः कापोतम् । राजतम् :-

रजत । सीस । लोह । उदुम्बर । नीच । नील । दारु । रोहितक । बिभीतक । कपोत । दारु । तीव्रदारु । त्रिकण्टक । कण्टकार । इति रजतादयः ॥

६८—प्लक्षादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १६४ ॥

प्लक्षादिप्रातिपदिकेभ्यो विकारावयवत्वेन विवक्षिते फलेऽभिधेयेऽण् प्रत्ययो भवति । प्लक्षस्य विकारः प्लाक्षम् नैययोधम् :-

प्लक्ष । न्ययोध । अश्वत्थ । इङ्गदी । शिग्रु । कर्कन्धु । कर्कन्तु । ऋक्रतु । वृहती । काक्ष । तुरुर ॥ इति प्लक्षादयः ॥

६९—हरीतक्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ४ । ३ । १६७ ॥

हरीतक्यादिप्रातिपदिकेभ्यः फलेऽभिधेये प्रत्ययस्य लुक् भवति । लुकि प्राप्ते लुपो विधानं युक्तवद्भावार्थम् । हरीतक्याः फलं हरीतकी । हरीतक्याः फलानि हरीतक्यः (१) :-

हरीतकी । कीशातकी । नखरजनी । नखररजनी । शफ्कण्डी । शाकण्डी । दाडो । दोडो । दडो । श्वेतपाकी । अर्जुनपाकी । काला । द्राक्षा । ध्वाङ्क्षा । गर्गरिका । कण्टकारिका । शेफालिका ॥ इति हरीतक्यादयः ॥

१००—पर्पादिभ्यः षन् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १० ॥

पर्पादिभ्यश्चरतीत्यर्थे षन् प्रत्ययो भवति । षकारो ङीष्पर्थः । पर्पेण चरति, पर्पिकः । पर्पिकी :-

पर्प । अश्व । अश्वत्थ । रथ । जाल । न्यास । व्यास ॥ पादः पञ्च ॥ पदिकः ॥ इति पर्पादयः ॥

(१) हरीतक्यादिषु व्यक्तिर्भवति युक्तवद्भावेनेति वार्त्तिकेन लिङ्गस्यैवयुक्तवद्भावो न तु वचनस्य ॥

१०१—वेतनादिभ्यो जीवति ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १२ ॥

तृतीयासमर्थवेतनादिप्रातिपदिकेभ्यो जीवतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । वेतनेन जीवति, वेतनिकः :-

वेतन । वाह । अर्द्धवाह । धनुर्दण्ड (१) । जाल । वेस । उपवेस । प्रेषण । उपस्ति । सुख । शय्या । शक्ति । उपनिषत् । उपवेष्ट । स्तक् । पाद । उपस्थान । इति वेतनादयः ॥

१०२—हरत्युत्सङ्गादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १५ ॥

तृतीयासमर्थोत्सङ्गादिप्रातिपदिकेभ्यो हरतीत्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । उत्सङ्गेन हरति, औत्सङ्गिकः :-

उत्सङ्ग । उडुप । उत्पत । पिटक । उडप । पिटाक । इत्युत्सङ्गादयः ॥

१०३—भस्त्रादिभ्यः षन् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १६ ॥

भस्त्रादितृतीयासमर्थप्रातिपदिकेभ्यो हरतीत्यर्थे षन् प्रत्ययो भवति । भस्त्रया हरति, भस्त्रिकः । भस्त्रिकी :-

भस्त्रा । भरट । भरण । भारण । शीर्वभार । शीर्वभार । अंसभार । अंनेभार । इति भस्त्रादयः ॥

१०४—निर्वृत्तेऽच्यूतादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १८ ॥

अच्यूतादितृतीयासमर्थप्रातिपदिकेभ्यो निर्वृत्तेऽर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । अच्यूतेन निर्वृत्तम्, आच्यूतिकं वैरम् :-

अच्यूत । जानुप्रहत । जङ्घाप्रहत । पादस्वेदन । कण्ठकमर्दन । गतागत । यातोपयात । अनुगत । इत्यच्यूतादयः ॥

१०५—अण् महिष्यादिभ्यः ॥ अ० ॥ ४ । ४ । ४८ ॥

षष्ठीसमर्थमहिष्यादिप्रातिपदिकेभ्यो धर्म्यमित्यर्थे ण् प्रत्ययो भवति । महिष्या धर्म्यं माहिषम् :-

महिषी । प्रजावती । प्रलेपिका । विलेपिका । अनुलेपिका । पुरोहित । मणिपाली । अनुचारक । होतृ । यजमान । इति महिष्यादयः ॥

(१) अत्र संघातविग्रहीतयोर्यङ्गं भवति । धनुर्दण्डेन जीवति धानुर्दण्डिकः । धनुषा जीवति धानुष्कः । दण्डिकः ॥

१०६—किशरादिभ्यः षन् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । ५३ ॥

प्रथमासमानाधिकरणकिशरादिप्रातिपदिकेभ्यः पण्यमित्यर्थे षन् प्रत्ययो भवति ।
गन्धविशेषवाचकाः किशरादयः । किशराः पण्यमस्य, किशरिकः । किशरिकी :-

किशर । नरद । नलद । सुमङ्गल । तगर । गुग्गुल । उशीर । हरिद्रा । हरि-
द्रायणी ॥ इति किशरादयः ॥

१०७—कृत्रादिभ्यो णः ॥ अ० ॥ ४ । ४ । ६२ ॥

प्रथमासमानाधिकरणकृत्रादिप्रातिपदिकेभ्यः शीलमित्यर्थे णः प्रत्ययो भवति ।
इव शब्दस्यात्र लोपो द्रष्टव्यः । कृत्रमिव शीलमस्य सकृत्तः शिष्यः । कृत्रवद्बुद्धरत्नकः :-

कृत्र । बुभुक्षा । शिक्षा । पुरीष । स्था (१) । तुरा । उपस्थान । ऋषि । कर्मन् ।
विश्वधा । तपस् । सत्य । अनृत । शिविका । इति कृत्रादयः ॥

१०८—प्रतिजनादिभ्यः खञ् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । ६६ ॥

सप्तमीसमर्थप्रतिजनादिप्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यस्मिन्नर्थे खञ् प्रत्ययो भवति ।
प्रतिजने साधुः, प्रातिजनीनः । जने जने साधुरित्यर्थः :-

प्रतिजन । इदंयुग । संयुग । समयुग । परयुग । परकुल । परस्य कुल । असु-
प्यकुल । सर्वजन । विश्वजन । पञ्चजन । महाजन । इति प्रतिजनादयः ॥

१०९—कथादिभ्यः ठक् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १०२ ॥

सप्तमीसमर्थकथादिप्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यर्थे ठक् प्रत्ययो भवति । कथायां
साधुः काथिकः :-

कथा । विकथा । वितण्डा । कुटचित् । जनवाद । जनेवाद । वृत्ति । सदृग्दृष्ट-
गुण । गण । आयुर्वेद । इति कथादयः ॥

११०—गुडादिभ्यः ठञ् ॥ अ० ॥ ४ । ४ । १०३ ॥

सप्तमीसमर्थगुडादिप्रातिपदिकेभ्यः साधुरित्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । गुडे
साधुः, गौडिक इतुः :-

गुड । कुल्माष । सक्तु । अपूप । मांसौदन । इतु । वेणु । संयाम । संघात ।
प्रवास । निवास । उपवास ॥ इति गुडादयः ॥

(१) अत्र ख्यग्रहणेन सोपसर्गस्य ग्रहणमिष्यते । आस्था शीलमस्य स, आस्थः ।
सांस्थः । आवस्थः ॥

१११—उगवादिभ्यो यत् ॥ अ० ॥ ५ । १ । २ ॥

उवर्णान्ताद् गवादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्क्रीतीयेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति।
इकवे हितं शाङ्कव्यम् दारु । गवे हितं गव्यम् :-

गो । हविस् । वहिस् । खट । अष्टका । युग । सिधा । स्वक् ॥ नाभि नभं च ॥
। संप्रसारणं वाच दीर्घत्वं तत्तनियोगेन चान्तोदात्तत्वम् (१) ॥ शून्यम् । शून्यम् ॥
वसोऽनङ् च ॥ जधन्यः । कूपः । उदर । खर । स्वद । अचर । विष । स्कन्द ।
वा । इति गवादयः ॥

११२—विभाषा हविर्पूपादिभ्यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । ४ ॥

हविर्विशेषवाचिभ्योऽपूपादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्क्रीतीयेष्वर्थेषु विभाषा यत्
प्रत्ययो भवति । पक्षे कः । पुरोडाशाय हिताः पुरोडाश्याः पुरोडाश्या वा तण्डुलाः
पूयेभ्यो हितं, अपूप्यम् । अपूपीयम् :-

अपूय । तण्डुल । अभ्यूप । अभ्योष । पृथुक । अभ्येष । अर्गल । मुसल । सपा
ट्क । कर्णवैष्टक । किण्व ॥ अन्नविकारिभ्यश्च (२) ॥ पूप । स्थूणा । पीप । अश्व ।
। कट । अयःस्थूण । ओदन । अबोष । प्रदीप । इत्यपूपादयः ॥

११३—असमासे निष्कादिभ्यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । २० ॥

असमस्तेभ्यो निष्कादिप्रातिपदिकेभ्य आर्हीयेष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति । निष्कं
रेमाणमस्य तन्नैष्किकम् । असमासे किम् । परमनैष्किकम् । अत्र ठञ्स्वरभेदः :-
निष्क । पण । पाद । माष । बाहद्रोण । षष्टि । इति निष्कादयः ॥

११४—गोद्यचोऽसंख्यापरिमाणान्वादेर्यत् ॥ अ० ॥ ५ । १ । ३६ ॥

संख्यापरिमाणान्वादिविवर्जिताद् गोशब्दाद् हाचश्च प्रातिपदिकाद्यत् प्रत्ययो
भवति । तस्य निमित्तं संयोगोत्पातावित्यर्थः । गोर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा गव्यः ।
च-धनस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा । धन्यम् । स्वर्ग्यम् । यशस्यम् । आयुष्यम् ।
व्या-पद्धानां निमित्तं पञ्चकम् । परिमाण-प्रास्थिकम् । अश्वादिः-प्रास्थिकम् ।
यत् न भवति :-

अश्व । अश्वमन् । गण । ऊर्णा । उमा । वसु । वर्ष । भङ्ग । इत्यश्वादयः ॥

(१) नाभये हितो नभ्योऽन्वः । नभ्यमप्लवनम् । यस्तु शरीरावयववाची नाभि
द्वस्ततः शरीरावयवादिति यति कृते नाभये हितं नाभ्यम् तैलमिति भवति ।
कारस्यानुक्तसमुच्चयार्थात्वात्तद्वित इति लोपो न भवति ॥

(२) अन्नविकारवाचिभ्यो यत् प्रत्ययो भवति । शङ्कुलीभ्यो हितं शङ्कुल्यम् ।
प्यम् । ओदन्यम् ॥

११५—तद्धरतिवहत्यावहतिभारादंशादिभ्यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । ५० ॥

द्वितीयासमर्थाद् वंशादिभ्यः परस्माद् भारशब्दाद्धरत्यादिषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति । वंशभारं हरति वहत्यावहति वा, वांशभारिकः । कौटजभारिकः । भारादिति किम् । वंशं हरति । वंशादिभ्य इति किम् । ब्रीहिभारं हरति । अत्र मा भूत् :-
वंश । कुटज । बलवज । मूल । अक्ष । स्थूणा । अश्वमन् । अश्व । इक्षु । खट्वा । इति वंशादयः ॥

११६—छेदादिभ्यो नित्यम् ॥ अ० ॥ ५ । १ । ६४ ॥

द्वितीयासमर्थं छेदादिप्रातिपदिकेभ्यो नित्यमर्हतीत्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति । छेदनं नित्यमर्हति । छेदिकः :-

छेद । मेद । दोह । दोहावर्त । कर्ष । संप्रयोग । विप्रयोग । प्रेषण । संप्रश्न । विप्रकर्ष । विराग । विरंगं च । वैरङ्गकः । इति छेदादयः ॥

११७—दण्डादिभ्यो यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । ६६ ॥

द्वितीयासमर्थं दण्डादिप्रातिपदिकेभ्योऽर्हतीत्यर्थे यः प्रत्ययो भवति । दण्डमर्हति, दण्डयः :-

दण्ड । सुसल । मधुपर्क । कशा । अर्घ । मेधा । मेघ । युग । उदक । वध । गुहा । भाग । इभ । इति दण्डादयः ॥

११८—व्युष्टादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ५ । १ । ६७ ॥

सप्तमीसमर्थं व्युष्टादिप्रातिपदिकेभ्यो दीयते कार्यमित्येतयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति । व्युष्टे दीयते कार्यं वा वैयुष्टम् :-

व्युष्ट । नित्य । निष्क्रमण । प्रवेशन । तीर्थ । संव्रम । आस्तरण । संग्राम । संघात । अग्निपद । पीलुमूल । प्रवास । उपसंक्रमण । दीर्घ । उपवास । इति व्युष्टादयः ॥

११९—तस्मै प्रभवति संतापादिभ्यः ॥ अ० ॥ ५ । १ । १०१ ॥

चतुर्थीसमर्थं संतापादिप्रातिपदिकेभ्यः प्रभवतीत्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति । संतापाय प्रभवति, सान्तापिकः :-

सन्ताप । संनाह । संग्राम । संयोग । संपराय । संपेष । निष्पेष । निसर्ग । असर्ग । विसर्ग । उपसर्ग । उपवास । प्रवास । संघात । संमादन । संतु ॥ मांसोदनादिगृहीतादपि । मांसोदनिकः । मांसिकः । औदनिकः ॥ निर्घोष । सर्ग । संपात । संवाद । संवेशन । इति संतापादयः ॥

१२०—अनुप्रवचनादिभ्यः प्रकृः ॥ अ० ॥ ५ । १ । १११ ॥

प्रथमासमानाधिकरणानुप्रवचनाप्रातिपदिकेभ्यः प्रयोजनमित्यर्थः कृः प्रत्ययो भवति अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य, अनुप्रचनीयम् :—

अनुप्रवचन । उत्थापन । प्रवेशन । अनुप्रवेशन । उपस्थापन । संवेशन । अनुवेशन । अनुवचन । अनुवादन । अनुवासन । आरम्भण । आरोहण । प्ररोहण । अन्वारोहण । इत्यनुप्रवचनादयः ॥

१२१—पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ॥ अ० ॥ ५ । १ । १२२ ॥

षष्ठीसमर्थपृथ्वादिप्रातिपदिकेभ्यो भावेर्थे इमनिच् प्रत्ययो वा भवति । वावचन मणादेः समवेशार्थम् । पृथोर्भावः प्रथिमा । पार्थिवम् । पृथुत्वम् । पृथुता :—

पृथु । मृदु । महत् । पटु । तन । लघु । बहु । साधु । वेणु । आसु । बहुल । गुरु । दण्ड । ऊरु । खण्ड । चण्ड । बाल । अकिंचन । हीड । पाक । वत्स । मन्द । स्वादु । क्लृप्त । दीर्घ । प्रिय । वृष । ऋजु । क्षिप्र । लुद्र । इति पृथ्वादयः ॥

१२२—वर्णदृढादिभ्यः ष्यज् च ॥ अ० ॥ ५ । १ । १२३ ॥

वर्णविशेषाचिभ्यो दृढादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावेष्ण्यच् चादिमनिच् प्रत्ययो भवति । शुक्लस्य भावः शौक्लाम् । शुक्लिमा । शुक्लत्वम् । शुक्लता । दाढ्यम् । दृढिमा । दृढत्वम् । दृढता :—

दृढ । परिवृढ । भृश । क्लृप्त । चक्र । आस्र । लवण । ताम्र । अम्ल । शीत । उष्ण । जड । बधिर । पण्डित । मधुर । मूर्ख । मूक । विर्यातलाभमतिमनःशार-
दानाम् ॥ समो मतिमनसोर्जवने (१) ॥ बाल । तरुण । मन्द । स्थिर । बहुल । दीर्घ । मूढ । आकृष्ट । इति दृढादयः ॥

१२३—गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च ॥ अ० ॥ ५ । १ । १२४ ॥

गुणवचनेभ्यो ब्राह्मणादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावे कर्मणि चाभिधेये ष्यज् प्रत्ययो भवति । जडस्य भावः कर्म वा जाड्यम् । ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा ब्राह्मण्यम् :—

ब्राह्मण । वाडव । माणव । चीर । मूक । आराधय । विराधय । अपराधय । उपराधय । एकभाव । द्विभाव । त्रिभाव । अन्यभाव । समस्थ । विषमस्थ । परमस्थ ।

(१) वेः परेभ्योयातादिभ्यः ष्यज् । वैद्यात्यम् । वैलाभ्यम् । वैसत्यम् । वैमनस्यम् । शारद्यम् । समः पराभ्यां मतिमनोभ्यां वेगेऽर्थे ष्यज् । साम्नात्यम् । साम्नस्यम् ॥

मध्यमस्थ । अनीश्वर । कुशल । कपि । चपल । अक्षेत्रज्ञ । निपुण । अर्हन्तो नुम् च ॥
 आर्हन्त्यम् । संवादिन् । संवेशिन् । बहुभाषिन् । बालिश । दुष्पुरुष । कापुरुष ।
 दायाद । विशसि । धूर्त । राजन् । संभाषिन् । शीर्षपातिन् । अधिपति । अलस ।
 पिशाच । पिशुन । विशाल । गणपति । धनपति । नरपति । गडुल । निव । निधान ।
 विष । सर्ववेदादिभ्यः स्वार्थे (२) ॥ चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च ॥ चातुर्वेद्यम् । स्वभाव ।
 निघातिन् । विघातिन् । राजपुरुष । विशस्ति । विशाय । विशात । विजात ।
 नयात । सुहित । दीन । विदग्ध । उचित । समग्र । शली । तत्पर । इदम्पर ।
 यथातथा । पुरस् । पुनः । पुनर् । अभीक्ष्ण । तरतम । प्रकाम । यथाकाम ।
 निष्कुल । स्वरज । महाराज । युवराज । सम्राज् । अविदूर । अपिशुन । अनृशंसा
 अग्रथातथ । अग्रथापुर । स्वधर्म । अनुकूल । परिमाण्डल । विश्वरूप । ऋत्विज् ।
 उदासीन । ईश्वर । प्रतिभू । सच्चि । मानुष । आस्तिक । नास्तिक । युगपत् ।
 पूर्वापर । उत्तराधर । इति ब्राह्मणादयः ॥

१२४-वा०-चातुर्वर्ण्यादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम् ॥ अ० ॥ ५ । १ । १२४

चत्वार एव वर्णाश्चातुर्वर्ण्यम् । चातुराश्रमम् :—

चतुर्वर्ण्यं । चतुराश्रम । त्रिलोक । त्रिस्वर । षड्गुण । सेना । सन्निधि । समीप ।
 उपमा । सुख । इति चतुर्वर्णादयः ॥

१२५—प्रत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् ॥ अ० ॥ ५ । १ । १२८ ॥

षष्ठीसमर्थेभ्यः प्रत्यन्तेभ्यः पुरोहितादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावकर्मणोर्यक्
 प्रत्ययो भवति सेनापतेर्भावः कर्म, सा सेन्यापत्यम् । प्राजापत्यम् । पुरोहितस्य भावः
 कर्म वा, पौरोहित्यम् :—

पुरोहित । राजन् । संग्रामिक । एषिक । वमित । खण्डिक । दण्डिक । कृत्रिक ।
 मिलिक । पिण्डिक । बाल । मन्द । स्तनिक । चडितिक । कृषिक । पूतिक । पत्रिक ।
 प्रतिक । अजानिक । सलनिक । सूचिक । राक्षर । सूचक । पत्रिक । सारथिक । जलिक ।
 सूतिक । अञ्जलिक । शर्मिक । चर्मिक । कर्मिक । शीलिक । मूलिक । तिलिका ।
 तिथिक । अञ्जतिका । ऋषिक । पुत्रक । पथिक । प्रचिक । प्रविक । परिचक
 पूजनिक ॥ राजाऽसे (१) । मूचिक । स्वरिक । चडिक ॥ इति पुरोहितादयः ॥

(१) सर्वे एव वेदाः सार्ववेद्यम् । सार्वलीक्यम् । सार्वराज्यम् । सार्वगुण्यम् ।
 आकृतिगणोऽयम् ॥

(२) राज्ञो भावः कर्म वा राज्यम् । समासेतु ब्राह्मणादित्वात्पञ्च सीराज्यम् ॥

१२६—प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गातादिभ्यो ऽञ् ॥ अ० ॥ ५ ।

१ । १२६ ॥

प्राणभृज्जातिभ्यो वयोवचनेभ्य उद्गातादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावकर्मणोरञ् प्रत्ययो भवति । अश्वस्य भावः कर्म वा, आश्वम् । औष्ट्रम् । कौमारम् । कैशोरम् । औद्गात्रम् :-

उद्गाढ । उन्नेह । प्रतिहर्तृ । रथगणक । पक्षिगणक । पत्रिगणक । सुष्ठु । दुष्ठु । अध्वर्यु । वधू ॥ सुभग मंत्रे (१) ॥ प्रशारह । होह । पोह । कर्त्तृ । इत्युद्गातादयः ॥

१२७—हायनान्त्युवादिभ्यो ऽण् ॥ अ० ॥ ५ । १ । १३० ॥

हायनात्तेभ्यो युवादिभ्यश्च षष्ठीसमर्थप्रातिपदिकेभ्यो भावकर्मणोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति । हिहायनस्य भावः कर्म वा, हिहायनम् । यूनो भावः कर्म वा, यौवनम् :-

युवन् । स्थविर । होह । यजमान । कमण्डलु ॥ पुरुषाऽसे (२) ॥ सहृत् । याह । अवण । कुस्त्री । सुस्त्री । सहृदय । सुम्नाह । हपल । दुम्नाह ॥ हृदयाऽसे (३) ॥ चेतज्ञ । कृतक । परिव्राजक । कुशल । चपल । निपुण । पिशुन । सब्रह्मचारिन् । कुतूहल । अनृशंस । भ्राह् । कृचुक । कन्दुक । दुःस्त्री । दुर्हृदय । दुर्हृत् । मिथुन । कुलली । महस् । कतक । कितव । पोत ॥ इति युवादयः ॥

१२८—हन्द्मनोज्ञादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । १ । १३३ ॥

हन्द्मसंज्ञकेभ्यो मनोज्ञादिभ्यश्च षष्ठीसमर्थप्रातिपदिकेभ्यो भावकर्मणोरर्थयोरुञ् प्रत्ययो भवति । गोपालपशुपालानां भावः कर्म वा, गौपालपशुपालिका । शैथोपाध्यायिका । मनोज्ञस्य भावः कर्म वा, मानोज्ञकम् :-

मनोज्ञ । कल्याण । प्रियरूप । कान्दस । क्रात । मेधाविन् । अभिरूप । आव्य । कुलपुत्र । ओत्रिय । चोर । धूर्त । वैश्वदेव । युवन् । ग्रामपुत्र । ग्रामखण्ड । ग्रामकुमार । असुष्यपुत्र । असुष्यकुल । शतपुत्र । कुशल । बहुल । अवश्य । अहोपुरुष ॥ इति, मनोज्ञादयः ॥

(१) सुभगस्य भावः सौभगो मंत्रः ॥

(२) पुरुषस्य भावः कर्म पौरुषम् सुपुरुषत्वमिति समासे ॥

(३) हार्दयम् । समासे तु परमहृदयत्वमित्येव ॥

१२८—तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुण्वजाहचौ
॥ अ० ॥ ५ । २ । २४ ॥

पील्वादिभ्यः कर्णादिभ्यश्च षष्ठीसमर्थं प्रातिपदिकेभ्यो यथासंख्यं पाकमूलयोरर्थयोः
कुण्वजाहचौ प्रत्ययो भवतः । पीलूनां पाकः पीलुकुणः । कर्णस्य मूलं, कणजाहम् :-

पीलु । कर्कन्धु । शमी । करौर । कुवल । बदर । अश्वत्थ । खदिर । इति पील्वादयः ॥

कर्ण । अक्षि । नख । मुख । मख । केश । पाद । गुल्फ । भ्रूभङ्गा । दन्त ।

ओष्ठ । पृष्ठ । अङ्गुष्ठ ॥ इति कर्णादयः ॥

१३०—तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् ॥ अ० ॥ ५ । २ । ३६

प्रथमासमर्थेभ्यस्तारकादिप्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठाथे इतच् प्रत्ययो भवति ।

तारकाः संजाता अस्य, तारकितं नभः । पुष्पितो वृक्षः संजातग्रहणप्रकृतिविशेषणम् :-

तारका । पुष्प । मुकुल । कण्टक । पिपासा । सुख । दुःख । ऋजीष । कुड्मल ।

सूचक । रोग । विचार । तन्द्रा । वेग । पुच्छा । अद्वा । उत्कण्ठ । भर । द्रोह । गर्भा-

दप्राणिनि (१) ॥ फल । उच्चार । स्तवक । पल्लव । खण्ड । धेनुष्या । अभ्र । अङ्-

गारक । अङ्गार । वर्णक । पुलक । कुवलय । शैवल । गर्व । तरङ्ग । कल्लोल ।

पण्डा । चन्द । स्तवक । सुदा । राग । हस्त । कर । सौमन्त । कर्दम । कज्जल ।

कलङ्क । कुतूहल । कन्दल । आन्दोल । अभ्यकार । कोरक । अद्भुर । रामाक्ष ।

हर्ष । उत्कर्ष । क्षुधा । ज्वर । गोर । दोह । शास्त्र । सुकुर । तिलक । वुभुक्षा ।

निद्रा । तारकादिराकृतिगणः ॥ इति तारकादयः ॥

१३१—विमुक्तादिभ्योऽण् ॥ अ० ॥ ५ । २ । ६१ ॥

अध्यायानुवा कयोरभिधेययोर्विमुक्तादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थेऽण् प्रत्ययो भवति ।

विमुक्तं वर्तते ऽस्मिन् स वैमुक्तोऽध्यायो ऽनुवाको वा । देवासुरः :-

विमुक्त । देवासुर । वसुमत । सत्वत् । उपसत् । दशार्हपयस् । हविर्धान ।

मित्री । सोमापूषन् । अग्नाविष्णू । वृत्रहति । इडा । रक्षोऽसुर । सदसत् । परिषा-

दक् । वसु । मरुत्वत् । पत्नीवत् । महीयल । सत्वत् (२) । दशार्ह । वयस् । पतत्रि ।

सोम । महित्री । हेतु । अस्यहत्य । दशार्ण । उर्वशी । सुपर्ण । इति विमुक्तादयः ॥

(१) गर्भिताः शालयः । अप्राणिनीतिवचनाद् गर्भिणी भार्या । इत्यत्रेति च न भवति ॥

(२) सत्वदिति शब्दोऽस्मिन् गणे द्विवारं पठ्यते । यद्येकस्तालव्यादिर्भवेत्तदा तु युक्तं
नन्यथा ग्रामादिकः पाठः ॥

१३२—गोषदादिभ्यो वुन् ॥ अ० ॥ ५ । २ । ६२ ॥

अध्यायानुवाकयो रभिधेययोर्गोषदादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे वुन् प्रत्ययो भवति ।

गोषदशब्दोऽस्मिन्नस्ति, गोषदकोऽध्यायोऽनुवाको वा । इषेत्वकः :-

गोषद । इषे त्वा । मातरिखन् । देवस्य त्वा । देवीरापः । कृष्णोऽस्याखरेष्टः ।
दैवी धियम् । रत्नो हण । अञ्जन । प्रभूत । प्रवृत्त । दृशान । युञ्जान । सहस्रशीर्षा ।
वार्तस्यते । कशाख । स्वाहाप्राण । प्रसुस्त ॥ इति गोषदादयः ॥

१३३—आकर्षादिभ्यः कन् ॥ अ० ॥ ५ । २ । ६४ ॥

आकर्षादिभ्यः सप्तमीसमर्थप्रातिपदिकेभ्यः कुशल इत्यर्थे कन् प्रत्ययो भवति ।

आकर्षे कुशल आकर्षकः :-

आकर्ष । त्कर । पिप्रासा । पिचण्ड । अशनि । अश्मन् । विचय । चय । जय ।
आचय । अय । नय । निपाद । गद्गद । दीप । ऊद । ऊाद । ह्याद । शकुनि ।
पिशाच । पिण्ड ॥ इत्याकर्षादयः ॥

१३४—रसादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ६५ ॥

प्रथमासमानाधिकरणरसादिप्रातिपदिकेभ्योऽस्यास्त्यस्मिन्नियर्थे मतुप् प्रत्ययो
भवति । रसादिगुणवाचकेभ्योऽन्ये मत्वर्थीयाः प्रत्यया माभूवन्निति सत्तारम्भः । रूपिणी
कन्येत्यत्र तु शोभापरत्वं रूपस्य । रसोऽस्मिन्नस्तीति, रसवान् । रूपवान् :-

रस । रूप । गन्ध । स्पर्श । शब्द । स्नेह । गुणात् । एकाचः (१) ॥ इति रसादयः ॥

१३५—सिध्मादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ६७ ॥

सिध्मादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे विकल्पेन लच् प्रत्ययो भवति । सिध्मोऽस्या-
स्तीति सिध्मलः । सिध्मवान् । अत्र पक्षे मतुबिध्यते नत्वत इनिठनी :-

सिध्म । गडु । मणि । नाभि । जीव । निष्पाव । पांसु । सक्तु । हनु । मांस । परशु ॥
पाणिधमन्योर्दीर्घश्च ॥ पाणीलः । धमनीलः । पर्ण । उदक । प्रज्ञा । मण्ड । प्राश्व ।
गण्ड । ग्रन्थि । वातदन्तबलललाटगलोनामूढ च ॥ वातूलः । दन्तूलः । बलूलः ।
ललाटूलः । गलूलः ॥ जटाघटाकालाः क्षेपे ॥ जटालः । घटालः । कालालः । सक्-
थि । कर्ण । स्नेह । शीत । श्याम । पिङ्ग । पित्त । शुष्क । पृथु । सृदु । मज्जु ।
पत्र । चटु । कपि । कण्डु । संज्ञा । क्षुद्रजन्तुपतापाक्षेप्यते । क्षुद्रजन्तुः । यूकालः ।
मक्षिकालः । उपताप-विचर्चिकालः । विपादिकालः । मूर्च्छालः । इति सिध्मादयः ॥

(१) अत्र गुणशब्दो रसादीनां विशेषणम् । एकाच् शब्दादपि मतुव् भवति
नत्वत इनिठनी । खवान् । खवान् ॥

१३६—लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ॥ अ० ॥

। २ । १०० ॥

लोमादिभ्यः पामादिभ्यः पिच्छादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे यथासंख्यं श, इलच् इत्येते प्रत्यया भवन्ति । लोमान्यस्य सन्तीति लोमशः । लोमवान् । पामयतेऽस्य स पामनः । पामवान् । पिच्छमस्यास्तीति पिच्छलः । पिच्छलवान् :- लोमन् । रोमन् । बल्गु । बभ्रु । हरि । कपि । शुनि । तरु । इति लोमादयः । मन् । वामन् । हेमन् । श्लेष्मन् । कटु । बलि । श्रेष्ठ । पलल । सामन् । आङ्गत्कल्याणे ॥ शाकीपलालीदद्व्रा ङ्गस्त्वं च ॥ विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाक्तेः ॥ लक्ष्म्या अच् (१) ॥ इति पामादयः ॥ पिच्छ । उरस् । ध्रुवका । जुवका । जट्टाकालात् क्षेपे (२) ॥ वर्ण । उदक । पङ्क । प्रज्ञा । इति पिच्छादयः ॥

१३७—व्रीह्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ११६ ॥

प्रथमासमानाधिकरणव्रीह्यादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे इनिठनौ प्रत्ययो भवतः । ह्योऽस्य सन्तीति व्रीही । व्रीहिकः । व्रीहिमान् :- व्रीहि । माया । शिखा । मेखला । संज्ञा । बलाका । माला । वीणा । वडवा । टका । पताका । कर्मन् । चर्मन् । हंसा (३) । यवखद । कुमारी । नौ (४) । र्षान्नजः ॥ अशीर्षी । अशीर्षिका । इति व्रीह्यादयः ॥

१३८—तुन्दादिभ्य इलच्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । ११७ ॥

तुन्दादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे इलच् चकारादिनिठनौ मतुप् च प्रत्यया भवन्ति । द्योऽस्यास्तीति तुन्दिलः । तुन्दी । तुन्दिकः । तुन्दवान् :- तुन्द । उदर । पिचण्ड । घट । यव । व्रीहि । स्वाङ्गादिद्वौ च (५) ॥ इति०

१) अङ्ग शब्दात्कल्याणे नः प्रत्ययः । कल्याणकरमंगं शरीरमस्याः सा, अङ्गता । शाकिनः । पलालिनः । दद्रुणः । विषु-अच् इत्यवस्थायां नः प्रचयस्तदेवोत्तरपदस्याज् भागस्य लोपः । विष्वगस्यास्तीति विषुणः । लक्ष्मी अस्यास्तीति लक्ष्मणः । (२) कुत्सिता जटा अस्य सन्तीति जटिलः । एवं घटिलः । कालिलः ॥ (३) शिखादिभ्य इतिरेवेत्येते नतु ठक् ॥ (४) यवखदादिभ्यङ्गेवेत्येते शेषादुभयम् ॥

(५) विहङ्गयुपाधिभूतात् स्वाङ्गवाचिनः प्रातिपदिकादिलच् । दीर्घा नाङ्गाऽस्यास्तीति नासिकिलः । लम्बौर्कर्णौ यस्य स कर्णिलः । ओष्ठिलः ॥

१३६—अश्र आदिभ्योऽच् ॥ अ० ॥ ५ । २ । १२७ ॥

अश्र आदिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थेऽच् प्रत्ययो भवति । अश्रस्य दिद्यन्तेस, अश्रसः—
अश्रम् । उरम् । तुन्द । चतुर । पलित । जटा । घटा । अम्न । कर्दम । आमा ।
सवण । खाङ्गादीनात् ॥ वर्णात् (१) ॥ आकृतिगणोऽयम् । इत्यश्र आदयः ॥

१४०—सुखादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । २ । १३१ ॥

सुखादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे इनिः प्रत्ययो भवति । मतुवादीनामपवादः ।
सुखमस्यास्तीति सुखी । दुःखी :—

सुख । दुःख । तृप् । कृच्छ्र । आम्न । प्रलीक । करुणा । कृपण । सोढ । प्रमीप ।
शील । हल ॥ माला जेपे (२) ॥ प्रणय । इति सुखादयः ॥

१४१—पुष्करादिभ्यो देशे ॥ अ० ॥ ५ । २ । १३५ ॥

पुष्करादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे देशेऽभिधेये इनिः प्रत्ययो भवति पुष्करोऽ
स्मिन्नीति पुष्करी देशः । पद्मी वा । देश इति किम् । पुष्करवान् हस्ती :—

पुष्कर । पद्म । उत्पल । तमाल । कुमुद । नड । कपित्थ । विस । मृणाल ।
कर्दम । शालूक । विगर्ह । करीष । शिरीष । यवास । प्रवास । हिरण्य । कौरव ।
कल्लोल । तरङ्ग । वयस । इति पुष्करादयः ॥

१४२—बलादिभ्यो मतुवन्यतरस्याम् ॥ अ० ॥ ५ । २ । १३६ ॥

बलादिप्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे विकल्पेन मतुप् पञ्च इनिः ठक् तु न भवति ।
बलमस्यास्तीति बलवान् । बली :—

बल । उत्साह । उद्भाव । उद्वास । उद्दाम । शिखाबल । वृग्मूल । दंश । कुल ।
आयाम । व्यायाम । उपयाम । आरोह । अवरोह । परिणाह । युद्ध ॥ इति बलादयः ॥

१४३—देवपथादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । ३ । १०० ॥

देवपथादिप्रातिपदिकेभ्यो द्वितीये प्रतिकृतौ संज्ञायां च विहितस्य कन् प्रत्ययस्य
लुक् भवति । देवपथस्येव प्रतिकृतिः, देवपथः । हंसपथः :—

देवपथ । हंसपथ । वारिपथ । जलपथ । राजपथ । शतपथ । सिंहगति ।
उष्ट्रीवा । चामरञ्जु । रञ्जु । हस्त । इन्द्र । दण्ड । पुष्प । मत्स्य । रथपथ ।
शङ्कुपथ । सिंहपथ । आकृतिगणोऽयम् । इति देवपथादयः ॥

(१) हीनशब्दात्परस्मात् खाङ्गादजिव स्यान्नतु मतुवादिः । अस्मिभ्यां हीनो
हीनाक्षः । हीनहस्तः । हीनबाहवः । वर्णादिति श्वेतादेर्यहणंनत्वकारादेः । श्वेतो
वर्णोऽस्यास्तीति श्वेतः । नीलः । कालः । पीतः । हरितः । इत्यादि ॥

(२) कुत्सिता मालाऽस्यास्तीति माली । मतुस्माभूत् । प्रणयौ ॥

१४४—शाखादिभ्यो यत् ॥ अ० ॥ ५ । ३ । १०३ ॥

शाखादिप्रातिपदिकेभ्यो इवार्थे यत् प्रत्ययो भवति । शाखेव शाख्यः । सुख्यः :-
शाखा । मुख । जघन । शृङ्ग । मेघ । चरण । स्कन्ध । शिरस् । उरस् । अग्र
शरण । इति शाखादयः ॥

१४५—शर्करादिभ्यो ऽण् ॥ अ० ॥ ५ । ३ । १०७ ॥

शर्करादिप्रातिपदिकेभ्यो इवार्थे ऽण् प्रत्ययो भवति । शर्करेव, शर्करम् :-
शर्करा । कपालिका । पिष्टिका । कनिष्ठिक । कपिष्ठिक । पुण्डरीक । शत-
पत्र । गोलोमन । गोपच्छ । नरालि । नकुल । सिकता । इति शर्करादयः ॥

१४६—अङ्गुल्यादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । ३ । १०८ ॥

अङ्गुल्यादिप्रातिपदिकेभ्यः इवार्थे ऽङ्गुल्यो भवति । अङ्गुलिर्वा
ङ्गुलिकः :-

अङ्गुलि । भरुज । बभ्रु । वलगु । मण्डर । मण्डल । शङ्कुल । कपि । उदञ्चित ।
गोणी । उरस् । शिखा । कुलिश । इत्यङ्गुल्यादयः ॥

१४७—दामन्यादितिगर्त्तषष्ठाच्छः ॥ अ० ॥ ५ । ३ । ११६ ॥

दामन्यादिभ्यस्त्रिगर्त्तषष्ठाच्छः इत्येवार्थे ऽङ्गुल्यो भवति । त्रिगर्त्तः षष्ठी येषां ते त्रिगर्त्तषष्ठाः । दामन्येव दानीयः । दामनीयौ ।
दामन्यः । तद्राजत्वाद बहुवचने लुक् ॥ त्रिगर्त्तषष्ठाः । कौण्डोपरथएव, कौण्डोपरथीयः ।
अन्यत्पूर्ववत् । दाण्डिक । कोष्टिक । जालमानि । बह्वगुमा जानकि । इति त्रिगर्त्तषष्ठाः ।
अत्र जानकिरित्यस्यैव त्रिगर्त्त इति नामान्तरम् :-

दामनी । औलपि । आकिदन्ती । काकरन्ति । काकदन्ति । शत्रुन्तपि । सार्व-
सेनि । विन्दू । मौजजायन । उलभ । सावित्रीपुत्र । अच्युतन्ति । कोकतन्ती । तुलभ ।
देववापि । औतकी । अपच्युतकी । कर्की । पिण्ड ॥ इति दामन्यादयः ॥

१४८—पश्वादिभ्यो यौधेयादिभ्यामणञौ ॥ अ० ॥ ५ । ३ । ११७ ॥

पश्वादिभ्यो यौधेयादिभ्यश्चायुधजीविसंघवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे ऽणञौ
प्रत्ययो यथासंख्यं भवतः । पशुर्देव, पार्श्वः । यौधेयः :-

पशु । असुर । रक्षस् । वाल्हीक । वयस् । मरुत् । दशार्ह । पिशाच । विशाल ।
अग्नि । कार्षापण । सत्वत् । वसु । इति पश्वादयः ॥

यौधेय । कौशेय । क्रीशेय । शौक्रेय । शौभ्रेय । धार्तेय । वार्तेय । जावालेय ।
त्रिगर्त । भरत । उशीनर । इति यौधेयादयः ॥

१४६—स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन् ॥ अ० ॥ ५ । ४ ३ ॥

स्थूलादिप्रातिपदिकेभ्यः प्रकारवचनेद्यौत्येकन् प्रत्ययो भवति । स्थूलप्रकारः, स्थूलकः :-
स्थूल । अणु । माष । इषु ॥ कृष्णतिलेषु ॥ यवक्रीहिषु ॥ इक्षु तिलपायकालाव-
दाताः सुरायाम् ॥ गोमूत्र आच्छादने ॥ सुराया अहौ ॥ जीर्णशालिषु । पत्रमूले
समस्तव्यस्ते (१) कुमारी पुत्र । कुमार । श्वशुर । मणि ॥ इति स्थूलादयः ॥

१५०—यावादिभ्यः कन् ॥ अ० ॥ ५ । ४ । २६ ॥

यावादिप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति । याव एव, यावकः :-
याव । मणि । अस्थि । चण्ड । पीतस्तम्ब । ऋतावुष्णशीते । पशौ लूनविशते ।
अणुनिपुणे । पुत्रकृत्रिमे ॥ स्नात वेदसमाप्तौ ॥ शून्यरित्ते । दानकुत्सिते ॥ तनुसूत्रे ॥
(२) । इयसश्च ॥ अयस्कः । ज्ञात । कुमारीक्रीडनकानिच । इति यावादयः ॥

१५१—विनयादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । ४ । ३४ ॥

विनयादिप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे ठक् प्रत्ययो भवति । विनय एव, वैनयिकः :-
विनय । समय । उपायाद् भ्रस्त्रत्वं च । औपयिकः । संगति । कथंचित् । अक-
स्मात् । समयाचार । उपचार । समाचार । व्यवहार । सम्प्रदान । समुत्कर्ष । समूह ।
विशेष । अत्यय । अस्थि । कण्डु । इति विनयादयः ॥

१५२—प्रज्ञादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । ४ । ३८ ॥

प्रजानातीति प्रज्ञः । प्रज्ञादिप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति । प्रज्ञ एव
प्रज्ञः । प्राज्ञी स्त्री । यस्यास्तु प्रज्ञा विद्यते सा प्राज्ञा भवति :-

प्रज्ञ । वणिक् । उग्रिक् । उष्णिक् । प्रत्यच । विहस् । विदन् । षोडन् । षोडश ।
विद्या । मनस् । औत्र शरीरे । औत्रम् । जुह्वत् । कृष्ण मृगे । कार्ण्यः । चिकीर्षत् ।
चौर । शक् । योध । वक्षस् । चक्षुस् । धूर्त । वस् । एत् । मरुत् । क्रुड् । राजा ।
सत्वन्तु । दशार्ह । वयस् । आतुर । असुर । रक्षस् । पिशाच । अशनि । कार्षापण ।
देवता । बन्धु ॥ इति प्रज्ञादयः ॥

(१) कृष्ण प्रकाराः कृष्णकास्तिलाः । यवका क्रीहयः । इक्षुका । तिलका ।
पायका । कालका । अवदातका वासुरा । मूत्रकमाच्छादनम् । सुराकः सर्पः ।
जीर्णकाः शालयः । पत्रकंसमस्तम् । मूलकं व्यस्तम् ॥

(२) उष्णकः, शीतको वा ऋतुः । नूनकः, विघातको वा पशुः । अणुको निपुणः । पुत्रकः
कृत्रिमः । स्नातको वेदपारगः । शून्यकं रित्तम् । कुत्सितं दानं दानकम् । तनुकं सूत्रम् ॥

१५३—हिदण्डादिभ्यश्च ॥ अ० ॥ ५ । ४ । १२८ ॥

हिदण्डादिशब्देषु बहुव्रीहिसमासे समासान्तश्च प्रत्ययो निपात्यते । हाभ्यां दण्डाभ्यां हन्यतेऽसौ हिदण्ड । अव्ययीभावसमासे परिगणनमतो व्ययत्वम् । एवं हिमुसलि :-

हिदण्ड । हिमुसलि । उभाज्जलि । उभयाज्जलि । उभाकर्णि । उभयाकर्णि । उभादन्ति । उभयादन्ति । उभाहस्ति । उभयाहस्ति । उभापाणि । उभयापाणि । उभावाहु । उभयावाहु (१) । एकपदि । प्रोक्षपदि । आव्यपदि । सपदि । निक्षु-
चकर्णि । संहतपुच्छि ॥ इति हिदण्डादयः ॥

१५४—पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः ॥ अ० ॥ ५ । ४ । १३८ ॥

हस्त्यादिवर्जितादुपमानात्परस्य पादशब्दस्य लोपो बहुव्रीहौ । व्याघ्रपादाविव
पादावस्य, स व्याघ्रपात् । अहस्त्यादिभ्य इति किम् । हस्तिपादः :-

हस्तिन् । कटोला । गण्डीला । गण्डोलक । महिला । दासी । गणिका । कुसूल । इति०

१५५—कुम्भपदीषु च ॥ अ० ॥ ५ । ४ । १३९ ॥

कुम्भपदीप्रभृतयः कृतपादसमासान्तलोपाः समुदाया बहुव्रीहौ समासे निपात्यन्ते :-

कुम्भपदी । शतपदी । अष्टापदी । जालपदी । एकपदी । मालापदी । सुनि-
पदी । गोधापदी । गोपदी । कलशीपदी । छतपदी । दासीपदी । निष्पदी । आ-
र्द्रपदी । कुणपदी । कृष्णपदी । द्रोणपदी । द्रुपदी । शक्यपदी । सूयपदी । पञ्च-
पदी । अर्वपदी । स्तनपदी । स्थूलपदी । सूत्रपदी । कलहंसपदी । द्विपदी । विष-
पदी । सुपदी । सूकरपदी । सूचीपदी । इति कुम्भपदीप्रभृतयः ॥

१५६—उरः प्रभृतिभ्यः कप् ॥ अ० ॥ ५ । ४ । १५१ ॥

उरः प्रभृत्यन्ता बहुव्रीहेः समासान्तः कप् प्रत्ययो भवति । व्यूढसुरोऽस्य स व्यूढो-
रक्तः । प्रियसर्पिष्कः :-

उरस् । सर्पिस् । उपानह् । पुमान् । अनङ्वान् । नीः । पयः । लक्ष्मीः । दधि ।
मधु । शालिः ॥ अर्धावजः ॥ अनर्थकः । इत्युरः प्रभृतयः ॥

१५७—उज्झादीनाञ्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । १६० ॥

उज्झादीनां शब्दानामन्त उदात्तः स्वरौ भवति :-

उज्झ । ज्ञेच्छ । जज्ज । जल्य । जप । व्यध । वध ॥ युगकालविशेषे रथाशु-

(१) अत्रीभयत्र निपातनादिचप्रत्यस्यलोपः । प्रत्ययलक्षणेन चाव्ययीभावसंज्ञाभवत्येषा
अत्रापिकेचिच्छब्दात्पुरुषसमासान्ता निपात्यन्ते । तैर्ऽर्थसंगत्या ज्ञेयाः ॥

पकरणे च ॥ गरो दूष्येऽवन्तः ॥ वेगवेदचेष्टबन्धाः करणे ॥ स्तुयुद्गुवप्रकृन्दसि । परि-
ष्टुत् । संयुत् । परिदुत् ॥ वर्त्तनिः स्तोत्रे ॥ श्वमेदरः ॥ साम्बतापी भावगर्हायाम् ॥
उत्तमशश्वत्तमौ सर्वत्र ॥ भक्तमन्यभोगदेहाः ॥ इत्युच्छादयः ॥

१५८—वृषादीनाञ्च ॥ अ० ॥ ६ । १ । २०३ ॥

वृषादीनामादिरुदात्तो भवति :-

वृषः । जनः । ज्वरः । ग्रहः । हयः । गयः । नयः । तयः । पयः । वेदः । अंशः ।
दवः । सूदः । गुहा ॥ शमरणौ संजारायां संमतौ भावकर्मणोः ॥ मंत्रः । शान्तिः ।
कामः । यामः । आरा । धारा । कारा । वृष्टः । कल्पः । पादः ॥ आकृतिगणोऽयम् ।
अविहितलक्षणमाद्युदात्तत्वं वृषादिषु द्रष्टव्यम् ॥ इति वृषादयः ॥

१५९—कार्तिकौजपादयश्च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ३७ ॥

कृतहन्वसमासाः कार्तिकौजपादयः शब्दाः पूर्वपदप्रकृतिस्वर भवन्ति । कृतस्या-
पत्यं कार्तिकः । कुजपस्यापत्यम् कौजपः । कार्तिकश्च कौजपश्च :-

कार्तिकौजपौ । सावर्णिमाण्डूकीयौ । आवन्त्यश्मकाः । पैलश्यापर्ण्ययाः । पैलश्या-
पर्ण्ययौ । कपिश्यापर्ण्ययाः । शैतिकार्त्तिकाचालेयाः । कटुकवार्त्तिलेयौ । शाकलशुनकाः ।
शाकलसणकाः । शुनकधात्रेयाः । सणकवाभ्रवाः । आर्चाभिमौद्गलाः । कुन्तिसुराष्ट्राः ।
चितिसुराष्ट्राः । तण्डवतण्डाः । गर्गवत्साः । अविमत्तकामविद्धाः । बाभ्रवशालङ्-
कायनाः । बाभ्रवदानच्युताः । कठकालापाः । कठकौथुमाः । कौथुमलीकाक्षाः ।
स्त्रीकुमारम् । मौदपैष्यलादाः । मौदपैष्यलादाः । द्विपाठः समासान्तोदात्तार्थः ।
वत्सजरत् । सौश्रुतपार्थवाः । जरामृत्यू । याज्यानुवाक्ये ॥ इति कार्तिकौजपादयः ॥

१६०—कुरुगार्हपतरिक्तगुर्वसूतजरत्यश्लीलदृढरूपापारेवड-
वातैतिलकद्रुःपण्यकम्बलोदासीभाराणाञ्च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ४२ ॥

कुरुगार्हपत, रिक्तगुरु, असूतजरती, अश्लीलदृढरूपा, पारेवडवा, तैतिलकद्रु,
पण्यकम्बल इत्येषां समासानां दासीभारादीनां च पूर्वपदं प्रकृतिस्वरं भवति ।
कुरुणां गार्हपतं कुरुगार्हपतम् । रिक्तो गुरुः रिक्तगुरुः । असूता जरती, असूतज-
रती । अश्लीला दृढरूपा । अश्लीलादृढरूपा । दास्या भारो दासीभारः :-

दासीभारः । देवहृतिः । देवजूतिः । देवसूतिः । देवनीतिः । वसुनीतिः । ओ
षधिः । चन्द्रमाः । अविहितलक्षणः पूर्वपदप्रकृतिस्वरो दासीभारादिषु द्रष्टव्यः ॥

१६१—युक्तारोह्यादयश्च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ८१ ॥

युक्ता रोह्यादिषु पूर्वपदमाद्युदात्तं निपात्यते :-

युक्तारोहो । प्रागतरोहो । प्रागतयोधो । आगतवञ्चो । आगतनर्दो । आगतप्रहारी ।
आगतमत्स्या । चीरहोता । भगिनीभर्ता । ग्रामगोधुक् । अश्वत्रिरात्रः । गर्गत्रिरात्रः ।
व्युष्टत्रिरात्रः । शणपादः । समपादः । एकश्रितिपात् ॥ पात्रेसम्मितादयश्च ॥ इति०

१६२—घोषादिषु च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ८५ ॥

घोषादिषु चोत्तरपदेषु परेषु पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति :-

दाक्षिघोषः । दाक्षिकटः । दाक्षिपल्लवः । दाक्षिवल्लभः । दाक्षिह्रदः । दाक्षि-
वदरी । दाक्षिपिङ्गलः । दाक्षिमिशङ्गः । दाक्षिशालः । दाक्षिरत्नः । दाक्षिशिल्पी ।
दाक्ष्यश्वत्थः । कुन्ददण्डम् । दाक्षिशाल्मली । आश्रममुनिः । शाल्मलिसुनिः । दाक्षि-
पुंसा । दाक्षिकूटः । इति घोषादयः ॥

१६३—प्रस्थेऽष्टद्वयमकर्कादीनाम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । ८७ ॥

प्रस्थ उत्तरपदेककर्कादिरहितमष्टद्वयं पूर्वपदमाद्युदात्तं भवति । इन्द्रप्रस्थः । कुण्ड-
प्रस्थः । अवृद्धमिति किम् । दाक्षिप्रस्थः । अकर्कादीनामिति किम् । कर्काप्रस्थः :-
कर्को । मघो । मकरो । कर्कसू । शमी । करीरा । कटुकं । कुरल । कवलावरद ॥ इति०

१६४—मालादीनां च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ८८ ॥

प्रस्थ उत्तरपदे मालादय आद्युदात्ता भवन्ति । मालाप्रस्थः । शालाप्रस्थः :-
माला । शाला । शोणा । द्राक्षा । क्षीमा । चामा । काष्ठी । एक काम । इति०

१६५—क्रत्वादयश्च ॥ अ० ॥ ६ । २ । ११८ ॥

सोऽन्तरपदस्थाः क्रत्वादयो बहुव्रीहौ समासे आद्युदात्ता भवन्ति । सुक्रतुः :-
क्रतु । दृशीक । प्रतीक । प्रपूर्ति । हव्य । भग । इति क्रत्वादयः ॥

१६६—आदिचिह्नादीनाम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १२५ ॥

कस्यान्ते नपुंसकेतत्पुरुषेचिह्नादिपूर्वपदानामादिरुदात्तो भवति चिह्णकन्यम् :-
चिह्ण । मडर । मडुर । वैतुल । पटक् । वैडालिकर्णः । वैतालिकर्णः ।
कुक्कुट । चिक्कण । चिक्कण ॥ इति चिह्णादयः ॥

१६७—चूर्णादीन्यप्राणिषट्थाः ॥ अ० ॥ ६ । २ । १३४ ॥

तत्पुरुषसमासेऽप्राणिवाचिनः षष्ठ्यान्तात्पराणि चूर्णादीन्युत्तरपदानि आद्यु-
दात्तानि भवन्ति । मुद्गस्य चूर्णं मुद्गचूर्णम् :-

चूर्णं । करिप । करिव । शाकिन । शाकट । द्राक्षा । तूस्त । कुन्दम । दलप
चमसौ । चकन । चकन । चील ॥ इति चूर्णादीनि ॥

१६८—उभे वनस्पत्यादिषु युगपत् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४० ॥

वनस्पत्यादिषु समासेषूभे पूर्वोत्तरपदे युगपत्प्रकृतिस्वरे भवतः :-
वनस्पतिः । वृद्धस्पतिः । शचीपतिः । तनूनपात् । नराशंसः । शुनःशेषः । शण्डामकौ
लृणावरुत्री । बम्बाविश्ववयसौ । मर्मल्युः । इति वनस्पत्यादयः ॥

१६९—संज्ञायामनाचितादीनाम् ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४६ ॥

संज्ञायां विषये गतिकारकोपपदात्परं क्तान्तमुत्तरपदमन्तोदात्तं भवति । आचि-
तादीन् वर्जयित्वा । संभूतः । धनुष्खाता । अनाचितादीनामिति किम् :-

आचितम् । पर्याचितम् । आस्थापितम् । परिगृहीतम् । निरुक्तम् । प्रतिपन्नम्
प्रक्षिष्टम् । उपहतम् । उपस्थितम् । संहिताऽगवि ॥ इत्याचितादयः ॥

१७०—प्रवृद्धादीनां च ॥ अ० ॥ ६ । २ । १४७ ॥

प्रवृद्धादिशब्दानां क्तान्तमुत्तरपदमन्तोदात्तं भवति । प्रवृद्धयानम् :-
प्रवृद्धो वृषलः । प्रयुक्ताः सक्तवः । आकर्षेऽवहितः । अवहितो भोगेषु । खट्वारूढः ।
कुविशस्तः । आकृतिगणत्वात् पुनरुत्स्यूतं वासोदेयम् । पुनर्निष्कृतो रथः । इति ०

१७१—निरुदकादीनि च ॥ अ० ॥ ६ ॥ २ । १८४ ॥

निरुदकादीनि च शब्दरूपाण्यन्तोदात्तानि निपात्यन्ते :-

निरुदकम् । निरुलपम् । निरुपलम् । निर्मशकम् । निर्मशिकम् ।
निष्कालकः । निष्कालिकः । निष्पेपः । दुस्तरौपः । निस्तरौपः । निस्त-
रौकः । निरजिनम् । उदजिनम् । उपाजिनम् ॥ परैर्हस्तपादकेशकर्षाः । परि-
हस्तः । परिपादः । परिकेशः । परिकर्षः । आकृतिगणोऽयम् ॥ इति निरुदकादयः ॥

१७२—प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे ॥ अ० ॥ ६ । २ । १८३ ॥

तत्पुरुषसमासे प्रतेरुत्तरा अंश्वादयोऽन्तोदात्ताभवन्ति । प्रतिगतेशुः प्रत्यंशुः । :-
अंशु । जना राजन् । उष्ट्रारोटका । अजिरा । आर्द्रा । अवण । कृत्तिका । अर्द्ध । पुर ॥ इत्यंश्वादयः ॥

१७३—उपाद् यजजिनमगौरादयः ॥ अ० ॥ ६ । २ । १६४ ॥

उपादुत्तरं यच्छब्दरूपमजिनं च तत्पुरुषसमासे गौरादिवर्जितमन्तोदात्तं भवति ।
उपगतौ देवमुपदेवः । उपसोमः । उपाजिनम् । अगौरादय इति किम् । उपगौरः :-
गौरानैषातैल । लेटा । लोटा । जिह्वा । कृष्णा । कन्या । गुडा । कल्यापाद । इति गौरादयः ॥

१७४—स्त्रियाः पुं वद्भाषितपुंस्कादनुङ् समानाधिकरणे
स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ३४ ॥

भाषितपुंसकशब्दात्परस्य समानाधिकरणस्तौलिङ्गे पूरणीप्रियादिवर्जिते
उत्तरपदे परतः पुंशब्दस्यैवरूपं भवति । दर्शनीया भार्या यस्य स दर्शनीयभार्यः ।
दीर्घजङ्घः । अप्रियादिस्त्रितिकिम् । कल्याणीप्रियः :-

प्रिया । मनोज्ञा । कल्याणी । सुभगा । दुर्भगा । भक्तिः । सविवा । अम्बा ।
कान्ता । चान्ता । समा । चपला । दुहिता । वामा ॥ इति प्रियादयः ॥

१७५—वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलकादीनाम् ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ११७ ॥

वन, गिरि, इत्येतयोश्चत्तरपदयोः परयोर्यथासंख्यं कोटरादीनां किंशुलादीनां
च संज्ञायां विषये दीर्घो भवति । कोटरावणम् । किंशुलकागिरिः :-

कोटर । मिश्रक । पुरक । सिधुक । सारिक । इति कोटरादयः ॥ किंशुलक ।
सारवक । अज्जन । लोहित । कुक्कुट । इति किंशुलकादयः ॥

१७६—मतौ बह्वचोऽनजिरादीनाम् ॥ अ० ॥ ६ । ३ । ११८ ॥

मतौ प्रत्यये परतोऽनजिरादिवर्जितस्य बह्वचो दीर्घो भवति संज्ञायां विषये । उदुम्ब-
रावती । मग्नकावती । अमरावती । अनजिरादीनामिति किम् :-

अनिरवती । खदिरवती । पुलिनवती । हंसकारणवती । चक्रवाकवती । इत्यनजिरादयः ॥

१७७—शरादीनां च ॥ अ० ॥ ६ । ३ । १२० ॥

संज्ञायां विषये मतौ परतः शरादीनां च दीर्घो भवति । शरावती । वंशावती :-
शर । वंश । धूम । अहि । कपि । मणि । मुनि । शुचि । हनु । इति शरादयः ॥

१७८—द्वारादीनां च ॥ अ० ॥ ७ । ३ । ४ ॥

द्वारादीनां य्वाभ्यामुत्तरस्याचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्न भवति । किन्तु वाभ्यां
पूर्ववैजागमौ भवतः । द्वारेनियुक्तः, द्वारारिकः । स्वरमधिकृत्य क्तो ग्रन्थः, सीवरः :-
द्वार । स्वर । व्यस्कथ । खस्ति । स्फुरकत । खादुमृदु । खन् ख । इति द्वारादयः ॥

१७६—स्वागतादीनां च ॥ अ० ॥ ७।३।७ ॥

स्वागतादीनां शब्दानां य्वाभ्यां पूर्वा जित् णित् कित् तद्धिते परत एजागमौ न भवतः । हृदिसुभवत्येव । स्वागतमित्याह स्वागतिकः । स्वध्वरेण चरति, स्वाध्वरिकः :- स्वागत । स्वध्वर । स्वङ्ग । व्यङ्ग । व्यङ्ग । व्यवहार । स्वपति । इति स्वागतादयः ॥

१८०—अनुशतिकादीनां च ॥ अ० ॥ ७।३।२० ॥

जितिणितिकित्चित्तद्धिते परतोऽनुशतिकादिशब्दानां पूर्वपदस्योत्तरपदस्याचामादेरचः स्थाने हृदिर्भवति । अनुशतिकस्येदमानुशतिकम् :-

अनुशतिक । अनुहोड । अनुसंवत्सर । अङ्गारवेणु । असिहृत् । वध्योग । पुष्करसत् । अनुहरत् । कुरुकत । कुरुपञ्चाल । उदकशङ्ख । इहलोक । परलोक । सर्वलोक । सर्वपुरुष । सर्वभूमि । प्रयोग । परस्त्री । राजपुरुषात् यजि ॥ सूतनड ॥ आकृतिगणोऽयम् (१) ॥ इत्यनुशतिकादयः ॥

१८१—न्यङ्क्कादीनां च ॥ अ० ॥ ७।३।५३ ॥

न्यङ्क्कादिषु कुत्वं निपात्यते । नितरामश्नुतीति :-

न्यङ्कुः । मदगुः । भृगुः । दूरेपाकः । फलेपाकः । क्षणेपाकः । फलेपाका । दूरेपाकुः । फलेपाकुः । तक्रम् । वक्रम् । व्यतिषङ्गः । अनुषङ्गः । अवसर्गः । उपसर्गः । मेघः । श्वपाकः । मांसपाकः । कपोतपाकः । उलूकपाकः । संज्ञायामर्घः । अवदाघः । निदाघः (२) । न्ययोधः ॥ इति न्यङ्क्कादयः ॥

१८२—पूजनात्पूजितमनुदात्तकाष्ठादिभ्यः ॥ अ० ॥ ८।१।६७ ॥

पूजनवाचिभ्यः काष्ठादिभ्यः परं पूजितमुत्तरपद मनुदात्तं भवति । काष्ठवासावध्यापकः काष्ठावध्यापकः :-

काष्ठ । दारुण । अमातापुत्र । अयुत । अङ्गुत । अनुक्त । भृश । घोर । परम । सु । अति । अनुज्ञात । कल्याण । वेश ॥ इति काष्ठादयः ॥

१८३—मादुपधाच्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः ॥ अ० ॥ ८।२।६ ॥

मकारान्ताभकारोपधादवर्णान्तादवर्णोपधाच्च परस्य मतुपोमकारस्य वकारादेशो भवति नतु यवादिभ्यः परस्य मस्य वो भवति । मान्तात् किंवान् । शंवान् ।

(१) अत्राकृतिगणेनेदमपि सिद्धं भवति । अभिगममर्हति, अभिगामिकः । अधिदेवे भवमाधिदैविकम् । आधिभौतिकम् । आध्यात्मिकम् । चतस्रएव विद्याः, चातुर्वेद्यम् । स्वार्थेऽथज् ।

(२) अर्घ, अवदाघ, निदाघ, इति त्रिषु शब्देषु संज्ञायामिव कुत्वंम् । अन्यत्र अर्हः । अवदाहः । निदाहः ॥

मकारोपधात् । शमीवान् । दाडिमौवान् । अवर्णान्तात् । वृक्षवान् । खट्वावान् ।
अवर्णोपधात् । यशस्वान् । भास्वान् । मादुपधाच्चेति किम् । अग्निमान् । अयवा-
दिभ्य इति किम् । यवमान् :-

यव । दल्लि । कर्मि । भूमि । कृमि । कुष्मा । वशा । द्राक्षा । वृक्षा । वेशा ।
ध्रजि । ध्वजि । सस्त्रि । वजि । व्रजि । शस्त्रि । सिञ्जि । हरित् । ककुत् । गरत् ।
इक्षु । मधु । द्रुम । मण्ड । धूम । आकृतिगणोऽयम् ॥

१८४—कस्कादिषु च ॥ अ० ॥ ८० । ३ । ४८ ॥

कस्कादिशब्देषु विसर्जनोपस्य सः षो वा कवर्गं पवर्गयोः परतः :-

कस्कः । कौतस्कृतः । भ्रातृष्पुत्रः । शुनस्कर्णः । सद्यस्कालः । सद्यस्क्रीः । स-
द्यस्कः । कांस्कान् । सर्पिष्कुण्डिका । घनुष्कपालम् । बर्हिष्पूलम् । यजुष्पात्रम् ।
अयस्कण्डः । मेदस्त्रिण्डः । आकृतिगणोऽयम् । इति कस्कादयः ॥

१८५—सुषामादिषु च ॥ अ० ॥ ८० । ३ । ६८ ॥

सुषामादिषु सकारस्य मूर्धन्यादेशो निपात्यते । शोभनं सामयस्यासी सुषामा ब्राह्मणः :-

सुषामा । निष्षामा दुष्प्रेधः । सुषन्धिः । दुष्पन्धिः । निषन्धिः । सुष्ठु । दुष्ठु ।
गौरिषक्थः संज्ञायाम् ॥ प्रतिष्णिका । जलाषाहम् । नौषेवनम् । दुन्दुभिषेवनम् ॥
अविहितलक्षणी मूर्धन्यः सुषामादिषु द्रष्टव्यः । इति सुषामादयः ॥

१८६—नरपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् ॥ अ० ॥ ८३ । १११० ॥

रेफपरस्य सकारस्य सृपिसृजिस्पृशिस्पृहि सवानादेशीनां सस्य मूर्धन्यादेशो न
भवति । पर, विस्वसिका । विस्रव्धः । विसृपः । विसर्जनम् । सुसृष्टम् । निसृष्टम् :-
सवने सवने । सूते सूते । सामे सामे । सवनमुखे सवनमुखे । अनुसवनमनुस-
वनम् । वृहस्पतिसवः । शकुनिसवनम् । संवत्सरे संवत्सरे । मुसलं मुसलम् । गोसनिम् ।
अश्वसनिम् । इति सवनादयः ॥

१८७—क्षुभ्नादिषु च ॥ अ० ॥ ८० । ४ । ३६ ॥

क्षुभ्ना इत्यादि शब्देषु नरस्य णकारादेशो न भवति । यथाप्राप्तिनिषेधः :-

क्षुभ्नाति । क्षुभ्नीतः । क्षुभ्नन्ति । नूनमन । नन्दिन् । नन्दिनानगर । नरी-
नृत्यते । तृप्नु । नर्त्तन । गहन । नन्दन । निवेश निवाश । अग्नि । अनूप ॥
आचार्यादणत्वं च ॥ आचार्यभोगीनः । आचार्यानी ॥ हायन ॥ इरिकादिभ्यः
वनोत्तरपदेभ्यः संज्ञायाम् ॥

इरिका । तिमिर । समीर । कुवेर । हरि । कर्मार । क्षुभ्नादिराकृतिगणः ॥
इति क्षुभ्नादयः ॥ समाप्तत्वायं ग्रंथः ॥

अथ गणपाठशुद्धिपत्रम् ॥

पृष्ठे	पङ्क्तौ	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	३	पुस्तककी	पुस्तकी
४	६	कत्वर्थः	कत्वर्थः
१३	७	गौपनी	गौपवनी
१५	२	लोहिताभ्यो	लोहितादिभ्यो
१८	१६	०	गौलक्ष्य
२३	१३	हार	हार
२६	८	०	विश्वदेव
२८	१२	विदग्ध	विजग्ध
३३	१	द्युतु	द्युतु
३७	८	सङ्गि	सङ्गि
३८	३	शाङ्क्यम्	शाङ्क्यम्
२८	२४	न	न
४०	८	केदनं	केदं
४०	११	वैरङ्गकः	वैरङ्गिकः
४२	१०	परिमाण्डल	परिमण्डल
४२	१८	सासैन्यापत्यम्	वासैनापत्यम्
४८	२०	प्रज्ञः	प्राज्ञः
५१	२२	तैतिल	तैतिल
५१	२५	अश्लील	अश्लील
५२	२	पूश्	पूर्व
५४	१६	०	भज्जन

॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

—ॐ—

तत्रत्यः ।

पंचदशो भागः ॥

उणादिकोषः ।

पाणिनिमुनिप्रणीतायामष्टाध्याय्यां

द्वादशो भागः ।

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतव्याख्यासहितः ।

मण्डितज्वालादत्तशर्माणा संशोधितः ।

पठनपाठनव्यवस्थायां पञ्चदशं पुस्तकम् ।

—०००—

मुन्शी समर्थदान के प्रबन्ध से

वैदिकयन्त्रालय प्रयाग में मुद्रित हुआ

इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

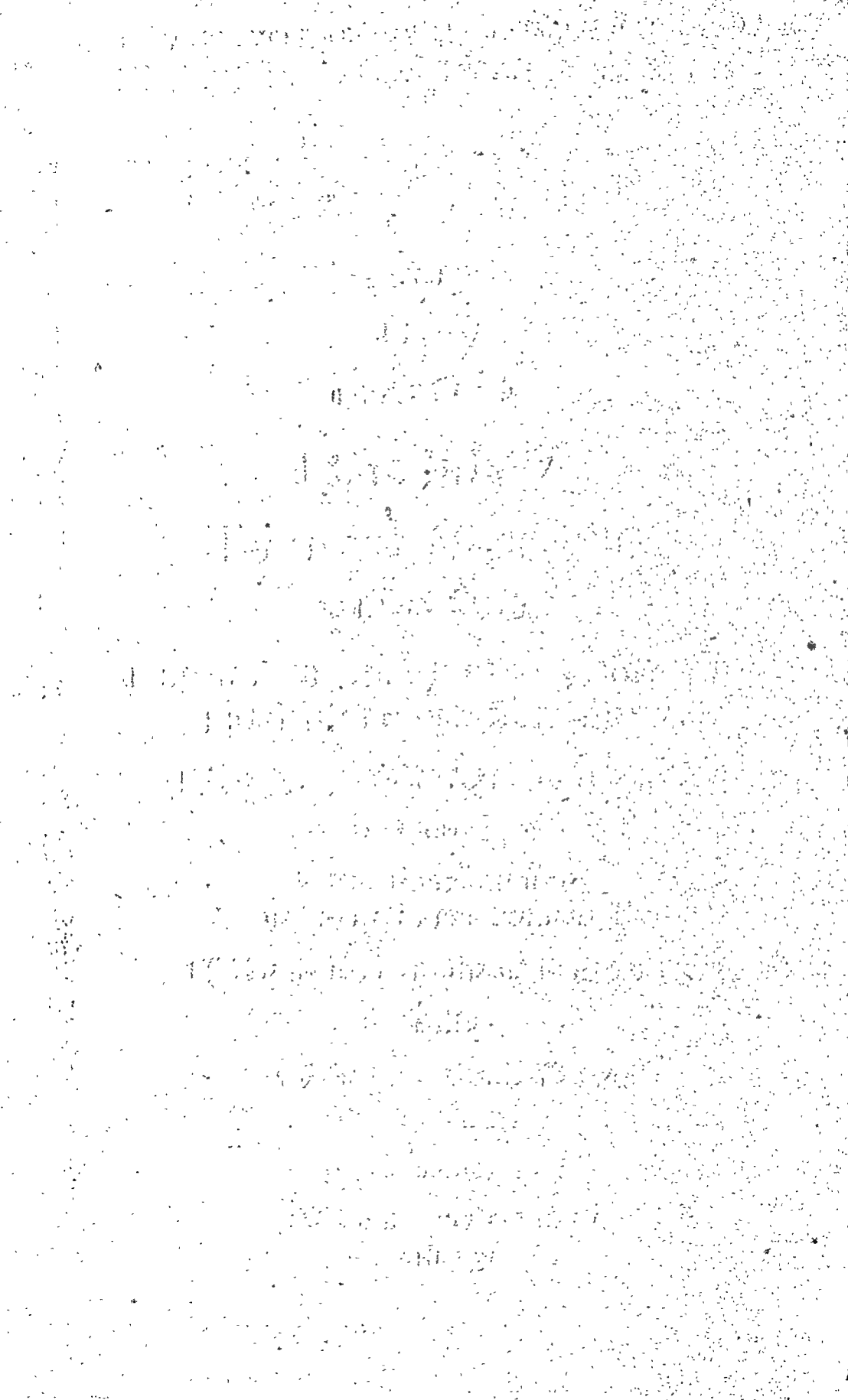
क्योंकि

इस की रजिस्ट्री कराई गई है ॥

संवत् १८४० आश्विनकृष्ण ३

पहली बार १००० पुस्तक छपे

मूल्य ॥॥)



अथ भूमिका ॥

सब उणादिगणस्थ शब्द इस वक्ष्यमाण एक सूत्र की विशेष व्याख्या में हैं ॥

उणादयो बहुलम् ॥ अ० ॥ ३ । ३ । १ ॥

वर्त्तमान काल में विहित धातुओं से उणादि प्रत्यय बहुल करके होते हैं ॥

भूतेऽपि दृश्यन्ते ॥ अ० ॥ ३ । ३ । २ ॥

और कहीं २ भूतकाल में भी इन का विधान दीख पड़ता है ॥

भविष्यति गम्यादयः ॥ अ० ॥ ३ । ३ । ३ ॥

और गमी आदि गणपठित वक्ष्यमाण शब्द भविष्यत्काल में ही होते हैं । उणादि प्रत्ययों के होने के लिये यह तीनों काल का नियम है । गम्यादि शब्द । गमी । आगामी । प्रस्थायी । प्रतिरोधी । प्रतिबोधी । प्रतियोधी । प्रतियोगी । प्रतियायी । आयायी । भावी । इन से अन्य शब्द भूत और वर्त्तमान अर्थों के बोधक होते हैं । अब जितनी प्रकृतियों से जितने उणादि प्रत्यय कहे हैं उतने ही जानना चाहिये वा कुछ विशेष । इस लिये—

बाहुलकं प्रकृतेस्तनुदृष्टेः प्रायसमुच्चयनादपि तेषाम् ।

कार्यसंशेषविधेश्च तदुक्तं नैगमरूढिभवं हि सुसाधु ॥ १ ॥

नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम् ।

यन्न प्रदार्थविशेषसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम् ॥ २ ॥

संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ।

कार्याद्विद्यादनुबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥ ३ ॥ महाभाष्ये

इसी सूत्र की व्याख्या में महाभाष्यकार पतञ्जलिमुनि उणादि पाठ की व्यवस्था बांधते हैं कि (बाहुलकम्) उणादि पाठ में थोड़े से धातुओं से प्रत्यय विधान किया है सो बहुल के होने से वे प्रत्यय अन्य धातुओं से भी होते हैं । इसी प्रकार प्रत्यय

भी थोड़े से संकेतमात्र पड़े हैं। सत्प्रयोगों में देख के इन से अन्य भी नवीनप्रत्ययों की कल्पना कर लेनी चाहिये। जैसे (ऋफिडः) इस शब्द में ऋधातु से फिड प्रत्यय समझा जाता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये। तथा जितने शब्द उणादिगण से सिद्ध होते हैं उन में जितने कार्य सूत्रों से प्राप्त हैं वे सब नहीं होते यह भी बहुलग्रहण का ही प्रताप है। इस में यदि कोई ऐसा प्रश्न करे कि उणादिपाठ में जितने धातुओं से जितने प्रत्यय विधान किये और शब्दों की सिद्धि में जितने कार्य सूत्रों से हो सकते हैं उन से अधिक वा न्यून क्यों होते हैं। तो इस का उत्तर यह है कि (नैगम०) वैदिक शब्द और लौकिक संज्ञा शब्द ये सब अच्चे प्रकार सिद्ध नहीं हो सकते। इस लिये पूर्वोक्त तीन प्रकार के कार्य उणादिगण में बहुल वचन से होते हैं इस बहुल के होने से अनेक प्रकार के सहस्रों शब्द सिद्ध होते हैं ॥ १ ॥

संज्ञा शब्द वे ही कहाते हैं जो किसी निज वाच्य के साध संबंध रखें फिर उन की सिद्ध करने से क्या प्रयोजन है क्योंकि वे संज्ञाशब्द जिस निज अर्थ के बोधक हैं उस का बोध तो प्रकृति प्रत्ययार्थ संबंध के बिना भी कराते ही हैं वही पश्चात् होगा इस लिये (नामच०) इस विषय में निरुक्तकारों और व्याकरणों में शाकटायन ऋषि का ऐसा मत है कि सब संज्ञा (रूढि) शब्द प्रकृति प्रत्ययार्थ के संबंध से यौगिक तथा योगरूढता से अर्थों के बोधक होते हैं। इन से भिन्न अन्य ऋषियों के मतानुसार सब संज्ञा शब्द रूढि अर्थात् अव्युत्पन्न होते हैं। अब जहां शब्दों में प्रकृतिप्रत्यय कुछ भी नहीं जान पड़ता वहां (प्रत्ययतः०) यदि प्रत्यय जान पड़े तो धातु की कल्पना और धातु जान पड़े तो नवीन प्रत्यय की कल्पना कर लेनी चाहिये। इस प्रकार उन शब्दों का अर्थ ज्ञान कर लेना चाहिये ॥ २ ॥ संज्ञा शब्दों में धातुओं का रूप पूर्व भाग में और शब्द के पर भाग में धातु से परे प्रत्यय की कल्पना करनी चाहिये। और जिस शब्द में जिस अनुबन्ध का कार्य देख पड़े वैसे ही सानुबन्धक धातु वा प्रत्ययों की जहा करनी चाहिये। अर्थात् आत्मनेपद देख पड़े तो अनुदात्तेत् वा डित् धातु जानना और जो आद्युदात्त स्वर हो तो जित् वा नित् प्रत्यय की कल्पना करनी चाहिये। यह कल्पना सर्वत्र नहीं करनी किन्तु वैदिक वा लौकिक सत्प्रयुक्त शब्दों के अर्थ ज्ञान के लिये शब्द के पूर्व भाग में धात्वर्थ की और पर भाग में प्रत्ययार्थ की कल्पना करनी चाहिये। यह सब संबंध ऋषि लोगों ने इस लिये बांधा है कि अगाध शब्दसागर की ग्राह व्याकरण से भी नहीं मिल सकती। जो कहें कि ऐसा व्याकरण क्यों नहीं बनाया

कि जिस से शब्दसागर के पार पहुँच जाते तो यह समझना चाहिये कि कितने ही पोथा बनाते और जन्म जन्मान्तरों भर पढ़ते तो भी पार होना दुर्लभ ही था इस लिये यह पूर्वोक्त व्याकरण से सब प्रबन्ध जताया है ॥ ३ ॥ उणादिगण में कारक व्यवस्था का यह नियम है कि—

दाशगोत्रौ संप्रदाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७३ ॥

यह सूत्र सामान्य क्तदन्त का नियामक है कि दाश और गोत्र शब्द औणादिक हो वा अष्टाध्यायी से सिद्ध हों परन्तु प्रत्ययसंप्रदान कारक में ही हों । इस नियम से ये दोही शब्द संप्रदान में होते हैं अन्य नहीं ॥

भीमादयोऽपादाने ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७४ ॥

भीमादि शब्दों में अपादान कारक में ही प्रत्यय होते हैं। भीमादि शब्द औणादिक हैं जैसे—भीमः । भीष्मः । भयानकः । वरुः । चरुः । भूमिः । रजः । संस्कारः । संक्रन्दनः । प्रपतनः । ससुद्रः । स्नुचः । स्नुक् । खलतिः । इति भीमादिगणः ॥

ताभ्यामन्यत्रोणादयः ॥ अ० ॥ ३ । ४ । ७५ ॥

उन संप्रदान और अपादान दोनों कारकों से भिन्न अन्य कारकों में उणादि प्रत्यय होते हैं । व्युत्पन्न पक्ष में उणादि प्रत्ययान्त शब्दों के यौगिक होने से प्रत्ययों को कृतसंज्ञक मान के कर्त्ता में प्राप्त हैं इस लिये यह कारक नियम है । और भाव में भी उणादि प्रत्यय होते हैं । संप्रदान और अपादान को छोड़ के अन्य कारकों में तो उणादि प्रत्ययों का यथेष्ट विधान है परन्तु बहुलवचन से कहीं संप्रदान में भी कोई प्रत्यय कर दिये हों तो चिन्ता नहीं । इस उणादिगण की एक वृत्ति छपी भी है परन्तु वही पोपलौला आदि का जगड्जाल बहुत और प्रयोजन थोड़ा सिद्ध होता है । इस लिये यह कोष बनाना पड़ा । इस ग्रंथ में सूत्रों का पाठ तथा अर्थ बहुधा सुगम है इसी लिये प्रति सूत्र का अर्थ वृत्ति में नहीं किया और जहाँ कुछ कठिन जान पड़ा वहाँ खोल दिया है । अनुवृत्ति भी बहुधा जनादी है । इस का मूल ऊपर २ पृथक् इस लिये छप वाया है कि अध्येता लोगों को पाठ करने और घोषण से कण्ठस्थ करने में सुगमता रहेगी । जो अंक सूत्र के अन्त में लिखा है वही नीचे वृत्ति के आदि में डाल दिया है । इस से बड़ी सुगमता होगी । इस में विशेष करके लौकिक शब्द और सामान्य से वैदिक लौकिक दोनों ही सिद्ध किये हैं । निष्पण्डु में जित ने वैदिक शब्द हैं उन में से बहुती का

निर्वचन वृत्ति में मिले गा । सो दोनों की अकारादि सूची को देख के खोज लेना चाहिये । निर्वचन तो सब शब्दों का कर दिया है परन्तु वे धातुगणानुबंध और अर्थ के सहित यहां नहीं लिखे हैं क्यों कि ग्रंथ बहुत बड़ जाता इस लिये धातु के प्रयोग से गण अनुबंध तथा उस के पर्याय शब्द से धातु के अर्थ का बोध कर लेना चाहिये । संस्कृत में वृत्ति बना ने का यही प्रयोजन है कि जो लोग पठन पाठन व्यवस्था के पहिले पुस्तकों को पढ़ेंगे उन के लिये संस्कृत कुछ कठिन नहीं होगा । और संस्कृत भी सरल ही बनाया है । कई शब्दों के अर्थ इति शब्द लगा कर भाषा में भी खोल दिये हैं ॥

इति भूमिका

स्थान महाराणा जी का उदयपुर }
माघकृष्ण १ संवत् १८३८

दयानन्दसरस्वती

ओ३म् ॥

अथोणादिकोषः ॥

—३*६—

कृवापाजिमिस्त्रदिसाध्यशूभ्य उण् ॥१॥ कारुः । वायुः । पा
जायुः । मायुः । स्वादुः । साधुः । आशु । आशुः ॥ १ ॥

कृन्दसौणः ॥ २ ॥ आयुः ॥ २ ॥

दसनिजनिचरिचटिरहिभ्यो जुण् ॥३॥ दारु । सानु । जा
चारु । चाटु । राहुः ॥ ३ ॥

(१) करोतीति कारुः कर्सां शिल्पी वा । वातिं गच्छति जानाति वेति
पवनः परमेश्वरो वा । पाति रक्षति स पायूरक्षकः गुदेन्द्रियं वा । जयत्यभिभ
तिरस्करोति शत्रूनि जायुः शूरः । जयति रोगानिति जायुरौषधं वैद्यो वा ।
मिनोति प्रक्षिपति स मायुः । अथवा मिनोति प्रक्षिपत्यूष्माणमिति मायुः पि
गां विकृतां वाचं मिनोतीति गोमायुः शृगालः । स्वद्यते भोक्तुमभीप्स्यते तत्
भोज्यमन्नं वा । साध्नोति धर्म्यं कर्मेति साधुः सज्जनः । अश्रुते व्याप्नोति त
श्रीघ्नम् । अश्रुते सद्योऽऽध्वानमित्याशुरश्वः । वाऽऽस्यते भुज्यते श्रीघ्नमित्याशु
ब्रीहिः बहुलवचनात्—स्नाति शोधयत्यङ्गानीति स्नायुर्नाडी वा । कक्ष्यते लोलय
भवति येनेति काकुः । भयादिः ध्वनेर्विकारो वा । हल्यते क्षिद्यतेऽन्नमने
हालुः । दन्तो वा । वसति जगदस्मिन् वा सर्वस्मिन् यो वसति स वासुरीश्वरः । इत्य

(२) वेद इण् धातोरुण् । एति प्राप्नोति सर्वानित्यायुर्जीवनकालः । स
द्वितीयपादे वक्ष्यते ॥

(३) दीर्यते भिद्यत इति दारु काष्ठं वा । सनति संभजति सनोति द
वा स सानुः । पर्वतैकदेशश्चङ्गबुधमार्गवात्यापर्णवनानि च सानूनि वा । ज
ऽस्मात्सज्जानु जङ्घाया उपरिभागा वा । जनिवध्योश्चैति प्रतिषिद्धाऽप्यनुवन
सामर्थ्याद्बृद्धिर्भवति । चरति चचुरादिष्विति चारु शोभनम् । चटति भिनत्तीति
प्रियं वचो वा । रहति त्यजति दोषानिति राहुः । ग्रहविशेषो वा ॥

किंजरयोः श्रिणः ॥ ४ ॥ किंशारुः । जरायुः ॥ ४ ॥

चोरश्चलः ॥ ५ ॥ तालु ॥ ५ ॥

कृके वचः कश्च ॥ ६ ॥ कृकवाकुः ॥ ६ ॥

भृमृशौडृतृचरित्सरितनिधनिमिमस्त्रिभ्य उः ॥ ७ ॥ भरुः ।
मरुः । शयुः । तरुः । चरुः । त्सरुः । तनुः । धनुः । मयुः । मज्जुः ॥ ७ ॥

अणश्च ॥ ८ ॥ अणुः ॥ ८ ॥

धान्ये नित् ॥ ९ ॥ अणवः ॥ ९ ॥

(४) किं श्रूयतेऽनेनेति किंशारुः धान्यविशेषो वा । जरां जीर्णतामेति जरायुः ।
गर्भाशयो गर्भावरणं वा ॥

(५) तृधातोर्जुण् रेफस्य लत्वम् । तरन्ति निःसरन्ति वर्णा यत इति तालु मुखे-
कदेशः । बाहुलकात् । अर्थे प्राप्यते इत्यालु भक्ष्यं कन्दं वा । भृणाति स्वतापेन हृदयति
पदार्थानिति भालुः सूर्यः । शृणाति चित्तं हिनस्तीति शालुः । कषायद्रव्यं वा ।
इत्यादि ॥

(६) कृकोपपदाद्वधातोर्जुण् । कृकेन कण्ठेन वक्षीति कृकवाकुर्यवनादिर्मयूरो वा

(७) भरति विभर्त्ति वेति भरुः । स्वामी । म्रियन्ते भूतान्यस्मिन्निति मरुर्नि-
र्जलो देशो वा । श्रितेऽसौ शयुः शयनशीलः । यस्तरति येन वा स तरुः वृक्षो वा ।
चरति चर्यतेऽग्निना भक्ष्यत इति चरुः । यज्ञपात्रो वा । त्सरति कुटिलं गच्छतीति
त्सरुः । खड्गमुष्टिर्वा । तन्यन्ते कर्माण्यनेनेति तनुः शरीरं स्वल्पं वा । धन्यते धनं
प्राप्यतेऽनेनेति धनुः शास्त्रं शस्त्रं वा । मिनोति सुशब्दं प्रक्षिपतीति मयुः वानरो
वा । मज्जति शुद्धो भवतीति मज्जुः जलप्लवो पक्षी वा । न्यङ्कादित्वात्कुत्वम् ।
बाहुलकात्-गण्डति स गण्डुः वदनैकदेशः । उपधानम्-तक्रिया इतिप्रसिद्धं तैलं वा

(८) अणति शब्दयतीत्यणुः । अतिसूक्ष्मं वा । अत्र चकारग्रहणादा-कटिति
जिह्वां विकारयतीति कटू रसः । वटति गुणकर्माणि विभजतीति वटुः । द्विजसुतो वा

(९) अणन्ति शब्दायन्ते येस्तऽणवोऽत्रविशेषा वा निष्करणमाद्युदात्तस्वरार्थम् ।

शृश्वुस्त्रिहितप्यसिवसिहनिक्लिदिवन्धिमनिभ्यश्च ॥ १० ॥ शरुः ।
 स्वरुः । स्नेहुः । तपुः । असुः । वसुः । हनुः । क्लेदुः । बन्धुः । मनुः ॥ १० ॥
 स्यन्देः सम्प्रसारणं धञ्च ॥ ११ ॥ सिन्धुः ॥ ११ ॥
 उन्देरिच्चादेः ॥ १२ ॥ इन्दुः ॥ १२ ॥
 ईषेः किञ्च ॥ १३ ॥ इषुः ॥ १३ ॥
 स्कन्देः सलोपश्च ॥ १४ ॥ कन्दुः ॥ १४ ॥
 सृजेरसुम् च ॥ १५ ॥ रज्जुः ॥ १५ ॥

(१०) अत्र चादुप्रत्ययोनिदितिसंबन्धः । एवमर्थ एव पृथक्पाठः । शृणाति-
 हिनस्ति येनेति शरुरायुधं क्रीपो वा । स्वर्यन्त उपतप्यन्ते प्राणिनोऽनेनेति स्वरुर्वज्रम् ।
 स्निहति यस्मिन् स स्नेहव्याधिर्वा । अग्निं प्राप्य यत्नपते लज्जितमिव भवतीति
 तत् च सौमिकं रंगं वा । अस्यति प्रक्षिपति वायुमित्यसुः प्राणः । असुं प्राणं राति
 ददातीत्यसुरो मेघः । वस्त आच्छादयति दुःखं येन तदसु धनं वा । वसन्ति प्राणिनो
 येषु ते वसवोऽग्न्यादयोऽष्टौ । हन्यतेऽनेनेति हनुः कपोलावयवः प्रहरणं मृत्युर्वा ।
 क्लिद्यत्यार्द्रां करोति चित्तमिति क्लेदुश्चन्द्रमावाप्रेम्णा बध्नातीति बन्धुः सज्जनो वा ।
 मन्यते चराचरं जगज्जानातीति मनुरोश्वरः मनुतेऽवबुध्यते शास्त्रमिति मनुर्विद्वान्
 राजर्षिः । बहुलवचनात् । विन्दत्यवयवी भवतीति बिन्दुः परिमाणं जलादिकणो वा ।

(११) स्यन्दन्ते प्रस्रवन्त्युदकान्यस्मिन्निति सिन्धुः ॥

(१२) उन्धधातोरुः प्रत्यय आदिवर्णस्येकारादेशश्च । उन्त्त्यार्द्रां करोति पदार्था-
 नितीन्दुश्चन्द्रमा वा ॥

(१३) अत्र चकारादिच्चेत्यनुवर्तते तेन दीर्घस्य ऋसो भवति ईषति गच्छति
 हिनस्ति वा शत्रूनि, इषुर्वाणो वीरो वा । किच्चाद् गुणाऽभावः ॥

(१४) स्कन्दति गच्छति शृण्वति वा येन स कन्दुः कुमारानां क्रीडायै गेद-
 इति प्रसिद्धं वा ॥

(१५) अत्र पूर्वसूत्रात्सलोप इत्यनुवर्तते । धातोरसुमागम आदिसकारलोपश्च ।
 पुनर्ऋकारस्य यणादेश आगमसकारस्य जश्त्वं च । सृजन्त्युदकानिस्सारणायेति
 रज्जुर्जलोदरणं वा ॥

कृतेराद्यन्तविपर्यञ्च ॥ १६ ॥ तर्कुः ॥ १६ ॥

नावञ्चेः ॥ १७ ॥ न्यङ्कुः ॥ १७ ॥

फलिपाटिनमिमनिजनां गुक्पटिनाकिधतञ्च ॥ १८ ॥ फल्गुः ।
पटुः । नाकुः । मधुः । जतुः ॥ १८ ॥

वलेर्गुक्च ॥ १९ ॥ बल्गुः ॥ १९ ॥

शः कित्सन्वञ्च ॥ २० ॥ शिशुः ॥ २० ॥

यो द्वे च ॥ २१ ॥ ययुः ॥ २१ ॥

कुर्भञ्च ॥ २२ ॥ बभ्रुः ॥ २२ ॥

(१६) आद्यन्तविपर्ययोर्थादादौ तकारोऽन्ते ककारः । उञ्च प्रत्ययः कृन्तति
छिनत्ति वस्त्रादिकमनेन स तर्कुः । कर्त्तनौ वा ॥

(१७) ये नितरामञ्चन्ति गच्छन्ति ते न्यङ्कुवो जातिविशेषाः पशवो वा ॥

(१८) उग्रप्रत्यये फलधातोर्गुगागमः फलति निष्पद्यते स फल्गुः असारो वा
नपुंसके फल्गु फलम् । पाटिधातोः पटिरादेशः । पाटयति ज्ञापयति सदसत्पदार्थान्
स पटुर्वाग्मी विशारदो वा । नमधातोर्नाकिरादेशः नमतीति नाकुः । बरमीको वा
मनधातोर्धकारादेशः । मन्यन्ते विशेषेण जानन्ति यस्मिन् स मधुश्चैतो मासः ।
मधूको मयं चोन्द्रं पुष्परसो वा । जनधातोस्तकारादेशः । जायते प्रादुर्भूयतेऽनेनेति
जतु लाक्षा वा ॥

(१९) वलते प्राणयतीति वल्गुः । नपुंसके वल्गु शोभनम् ॥

(२०) सन्वद्भावादृ द्वित्वादिकम् । श्यति तनूकरोति पित्रोः शरीरमिति
शिशुर्जालकं वा ॥

(२१) अत्र सन्वदित्यनुवर्तमानेपि द्विग्रहणमभ्यासेत्वनिहृत्यर्थम् । यान्ति प्राप्नु-
वन्ति देशान्तरमनेनेति ययुरश्वो वा ॥

(२२) अत्र द्वे इत्यनुवर्त्तते भृधातोः कुः प्रत्ययो द्वित्वं च । विभर्त्ति सर्वमिति
वभ्रुः नकुलः पिंगलो वा । सूत्रे चकारग्रहणादन्यधातुभ्योऽपि कुः प्रत्ययस्तेषां द्वित्वं च
भवति । तद्यथा । करोतीति चक्रुः कर्त्ता । हन्तीति जघ्रुर्हन्ता । पाति रक्षतीति
पपुः पालकः । इत्यादि ॥

पृभिदिव्यधिगृधिधृषिहृषिभ्यः ॥ २३ ॥ पुरुः । भिदुः । विधुः ।
गृधुः । धृषुः । हृषुः ॥ २३ ॥

ऊग्रोरुच्च ॥ २४ ॥ कुरवः । गुरुः ॥ २४ ॥

अपटुः सुषु स्यः ॥ २५ ॥ अपठुः । दुष्टुः । सुष्टुः ॥ २५ ॥

रपेरिच्चोपधायाः ॥ २६ ॥ रिपुः ॥ २६ ॥

अर्जिदृशिकम्यमिपंसिबाधामृजिपशितुक्धुक्दीर्घहकाराश्च ॥ २७ ॥
ऋजुः । पशुः । कन्तुः । अन्तुः । पांसुः । बाहुः ॥ २७ ॥

(२३) एभ्यः कुः । पिपत्तिं पालयति पूरयति वा स पुरुः । बहुरिन्द्रियं वा
भिनत्तीति भिदुर्वज्रं वा । विध्यति दुर्गन्धिं दिवसं वेति विधुः कर्पूरं चन्द्रमा वा ।
व्यधेर्ग्रहज्येति सम्प्रसारणम् । गृध्नोत्यभिकाङ्क्षते येन स गृधुः कामो वा । धृष्णीति
प्रगल्भो भवतीति धृषुर्दक्षः । हृषयति स हृषुर्हर्षकः । दृशीति पाठान्तरे दृशुर्दर्शकः ॥

(२४) यः करोति येन वा स कुरुः । कुरवो राजानो वा । गृणाल्युपदिशति वेद-
शास्त्रविद्यामाचारं च स गुरुः सर्वेषां गुरुत्वादीश्वरः । आचार्यः पिता वा ॥

(२५) अप, दुः, सु, इत्येतेषूपपदेषु स्थाधातोः कुः । अपतिष्ठतीत्यपठुर्वामभागः
प्रतिकूलः पदार्थो वा निन्दितस्तिष्ठतीति दुष्टुरविनीतः । सुतिष्ठतीति सुष्टु शोभ-
नम् । सर्वत्र सुषामादित्वात् षत्वम् ॥

(२६) अनिष्टं रपति वदतीति रिपुः शत्रुः । चकारग्रहणात्कुप्रत्यये परे इका-
रादेश एव समुच्चोयते ॥

(२७) कुप्रत्यये सति—अर्ज्यादिप्रकृतौनामृज्यादय आदेशा भवन्ति अर्जयति
संचिनोति गुणानिति, ऋजुः कोमलो वा । पश्यति सर्वमिति पशुः पश्यन्ति येन वा स
पशुरग्निः । पश्यति जानाति स्वार्थमिति पशुर्गवादिः । कमधातोस्तुक् । कामयन्ते यं स
कन्तुः कामो वा । अमधातोर्धृक् । अमति रुजति गच्छति वेत्यन्धुः क्षूपो वा । अस्मिन्
सूत्रे चकारग्रहणादबहुलवचनाद्वा अमधातोर्वुगागमोऽपि भवति अमन्ति गच्छन्ति
चेष्टन्ते प्राणिनो येन तदम्बु जलम् । पंसयति नष्टमिव भवतीति पांसुर्धूलिर्वा
पंसधातोर्दीर्घः । जेत्यर्थं चिरकालात्संचितं गोमयं वा । इत्याद्येवार्थेषु पांशुरिति
तालव्यान्तोऽपि शब्दो दृश्यते । बाध्यन्ते विलोड्यन्ते पदार्था याभ्यां तौ बाहू भुजौ ।
प्रायेणा यं दिवचनान्तः ॥

प्रथिव्यदिवस्त्रजां संप्रसारणं सलोपश्च ॥ २८ ॥ पृष्ठुः । मृदुः ।
 भृगुः ॥ २८ ॥
 लंघिवंघोर्नलोपश्च ॥ २९ ॥ लघुः । बहुः ॥ २९ ॥
 जर्णीतेर्जुलोपश्च ॥ ३० ॥ जरुः ॥ ३० ॥
 सहति ह्रस्वश्च ॥ ३१ ॥ उरु ॥ ३१ ॥
 प्रिलघेः कश्च ॥ ३२ ॥ प्रिलकुः ॥ ३२ ॥
 आङ्परयो खनिशृम्यां डिच्च ॥ ३३ ॥ आखुः । परशुः ॥ ३३ ॥
 हरिमितयोर्द्रुवः ॥ ३४ ॥ हरिद्रुः । मितद्रुः ॥ ३४ ॥

(२८) प्रथ्यादिभ्यः कुः प्रत्ययस्तस्मिन् सति प्रथिव्यद्वयोः संप्रसारणं सलोपश्च प्रपते कौर्त्तिः वा विस्तारयति स पृथुराजविशेषो विस्तीर्णः पदार्थो वा । मृदते मृदितुं शक्यते स मृदुर्मादकः । कोमलं वा । भृज्जति तपसा शरीरमिति भृगुर्कृषिः प्रतापो वा । न्यङ्कादित्वात्कुत्वम् ॥

(२९) लंघिवंघिभ्यां कुरनयोर्नलोपश्च । लङ्घति गन्तुं शक्नोतीति लघुः स्वल्पो वा । अस्यैव, बालमूललघ्वसुरालमङ्गुलीनां वालोरत्वमापद्यत इति वार्त्तिकेन रेफः । रघू राजविशेषः । बंहतेवर्धतेऽन्येभ्य इति बहुः । प्रचुरः संख्या वा ॥

(३०) जर्णीत्याच्छादयति यां सा जरुर्जङ्घा । कुप्रत्यये नुभागलोपः ॥

(३१) जर्णुधातोः कुप्रत्ययस्तस्मिन् नुभागलोप जकारस्य ऋस्वत्वं च जर्णीत्याच्छादयत्यल्पानित्युक्तं महत् ॥

(३२) प्रिलयति पदार्थैः सह संवध्यते स प्रिलकुः । परवशी ज्योतिषं वा ॥

(३३) आसमन्तात्खनति भूमिमित्याखुर्मेषको वराहो वा परान् शत्रून् शृणाति हिनस्ति येन स परशुः । शस्त्रभेदः कुठारो वा पृषोदरादित्वादकारलोपे पूर्वार्थ एव पशुरपि दृश्यते ॥

(३४) हरिणाऽश्वेन वा द्रवति गच्छतीति हरिद्रुः । दारु हरिद्रा वा । मितं परिमितं द्रवतीति मितद्रुः शोभनगमनो वा ॥

शते च ॥ ३५ ॥ शतद्रुः ॥ ३५ ॥

खरुशङ्कुपीयुनीलङ्गुलिगु ॥ ३६ ॥

मृगय्वादयश्च ॥ ३७ ॥ मृगयुः । देवयुः । मित्रयुः ॥ ३७ ॥

मन्दिवाशिमथिचतिचङ्क्यङ्किम्य उरच् ॥ ३८ ॥ मन्दुरा ।

वाशुरा । मथुरा । चतुरः । चङ्कुरः । अङ्कुरः ॥ ३८ ॥

(३५) शतधा बहुप्रकारैर्द्रवति गच्छतीति शतद्रुः । नदीभेदो गङ्गा वा । अत्र बाहुलकात्केवलादपि द्रुधातोः कुप्रत्ययो दृश्यते । यं द्रवन्ति कार्यार्थं प्राणिनः प्राप्नुवन्तीति स द्रव्यः शाखा वा । द्रवः शाखा अस्मिन् सन्तीति द्रुमो वृक्षः (द्युद्भ्यां मः) इति सूत्रेण मत्वर्थीयो मः प्रत्ययः ॥

(३६) खरु इत्येवमादयश्शब्दाः कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्त । खनधातोः कुर्नस्य रः । खनति शरीरमिति खरुः कामः । दन्तः संहर्ता दर्पोऽश्वो वा । श्वेतार्थे तु वाच्यवत् यथा खरुरियं ब्राह्मणौ । खरु कुलम् खरुः पुमान् । यं दृष्ट्वा शङ्कते सन्दिग्धो भवतीति तत् शङ्कु विषम् । कौलं शस्त्रं संख्या वृक्षभेदो जलभेदः पापं ख्याण्वर्वा । पिबति पाति वा स पीयुः कालः काको वा । कुप्रत्यये धातोरौकारादेशो युगागमश्च । नितरां लङ्गति गच्छतीति नीलङ्गुः । क्रिमिजातिभ्रमरः पुष्पं वा । कुप्रत्यये उपसर्गस्य दीर्घत्वम् । सर्वत्र लगति संगच्छते तत् लिङ्ग चित्तं वा लगे धातोरुपधाया इत्वम् । बाहुलकात् खंजति गमने विकलो भवतीति पङ्गुः । गतिहीनो वा कुप्रत्यये खज्जधातोः पङ्गादेशः । खगम्येनान्यगम्यान् हन्तीति हिङ्गुर्वणिग्द्रव्यम् ॥

(३७) मृगयुप्रभृतयः कुप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते मृग, देव, मित्र, कुमार, अध्वर इत्येतेषु प्रपदेषु या प्रापण इत्यस्मात् कुप्रत्ययो भवति । मृगान् याति प्राप्नोतीति मृगयुर्व्याधः देवान् विदुषो याति स देवयुर्धार्मिकः । मित्रान् यातीति मित्रयुर्लोकव्यवहारवित् । कुमारवस्थां यातीति कुमारयुः राजपुत्रो वा । अध्वरं यज्ञं यातीत्यध्वर्युर्याजकः । अध्वरस्यान्यलोपश्च बहुलवचनात् कोहयति विस्मापयतीति कुहुः । यस्यां चन्द्रो न दृश्यते साऽमावास्या वा कुहः पण्डति गच्छतीति पाण्डुः रङ्गविशेषो राजविशेषो वा । पीलति प्रतिष्ठमनोति निरुणद्धि जीवानिति पीलुर्हस्तोऽङ्गः काणुः परमाणवः पुष्पाणि वा । मंजिः सौत्रो धातुस्तस्मात्कुः । मंजति चित्सं प्रसादयतीति मंजु शोभनम् । एवं निषण्ट पलाण्डु कर्करेटु करेटु डमरु प्रभृतयः शब्दा अप्यत्रैव दृष्टव्या आकृतिगणत्वादस्य ॥

(३८) मन्दते स्तीति माद्यति वा यस्यां सा मन्दुरा । अश्वशाला वा । वाश्यते शब्दं करोतीति वाशुरा रात्रिर्वा । मथति विलोडयतीति मथुरा नगरी वा ।

व्यथेः सम्प्रसारणं धः क्विञ्च ॥ ३९ ॥ विधुरः ॥ ३९ ॥

मकुुरददुरौ ॥ ४० ॥

मङ्गुरादयश्च ॥ ४१ ॥ मङ्गुरः । कबुरः । बन्धुरः । कुक्कुरः ।
कुक्कुरः ॥ ४१ ॥

असेरुरन् ॥ ४२ ॥ असुरः ॥ ४२ ॥

चतते याचते स चतुरो दत्तः कुशलो वा । चङ्क इति सौत्रो धातुः । चङ्कति
सर्वतो भ्रमति येन स चङ्कुरो रथो वा । अङ्क्यते । लङ्क्यते निःसृतं दृश्यते सोऽङ्कुरो
वीजात्पादो वा । अत्र खजूरादिवक्ष्यमाणगणेन, । ऊर प्रत्ययेऽङ्कूर इत्यपि ।
अर्थः स एव ॥

(३९) व्यथति विभेति यस्मात् स विधुरोऽत्यन्तवियोगः शरीरत्यागी वा । संप्र-
सारणे सति गुणनिषेधाय क्त्वम् । बाहुलकात्प्रकारस्य धकारो न तेन विधुर
इत्यपि सिद्धं भवति । विधुरश्चौरो दुष्टो वा ॥

(४०) मङ्कुरददुरावुरच्प्रत्ययान्तौ निपात्येते । मङ्कतेऽलङ्करोति येन स मङ्कुरो
दर्पणो वा । मङ्कधातोर्नलोपः । बाहुलकाच्चातीरकारस्योकारे कृते दर्पणार्थ एव
मुक्कुर इत्यपि सिद्धम् । दृणाति विदारयत्युष्णमिति ददुरो मेघो मण्डूको वाद्यभेदः
पर्वतभेदः वा।उरचि दृधातोर्द्विवचनमभ्यासस्य रुगागमो धातोऽष्टिलोपश्च निपात्येते॥

(४१) मद्गुरप्रभृतयः शब्दा उरजन्ता निपात्यन्ते । माद्यति हृष्यतीति मद्गुरो
मत्स्यभेदो वा धातोर्गुगागमः कवतेवर्णविशेषो भवतीति स कबुरः श्वेतो दुष्टो वा
धातोर्गुगागमः । वध्नाति मादवेन स बन्धुरो नम्रः सुन्दरो वा । खजूरादित्वादूर-
प्रत्ययेपि बन्धुर उक्तार्थ एव । चिन्वन्त्येकौकुर्वन्ति यांस्ते चिकुराः । अत्र धातोः
कुगागमः । कौकत आदौ परपदार्थमिति कुक्कुरः कुक्कुरः श्वा । एकार्थौ । विकल्पे-
नात्र कुगागमो निपातनम् अतति निरन्तरं गच्छतीति, आतुरोऽग्रान्तः । धातीरा-
दौदीर्घः । वान्ति सृगान् प्राप्नुवन्ति यथा सा वागुरा सृगबन्धनी सृगबन्धनार्थंजालम्
अत्र धातोर्गुगागमो निपातनम्।शक्नोति तरितुमिति शकुलोमत्स्यः।वङ्कतेर्कुटिलो
भवतीति वकुलो वृक्षभेदो वा । अत्रोभयत्र प्रत्ययरिफस्य लत्वम् । वङ्केर्नलोपश्च ॥

(४२) अस्यति प्रक्षिपति धर्मं शुभगुणांश्च सोसुरः । मेघोदुर्जनादिर्वा । निष्कर-
णमायुदात्तस्वरार्थम् ॥

मसेश्च ॥ ४३ ॥ मसुरा ॥ ४३ ॥

शावशेराप्तौ ॥ ४४ ॥ श्वशुरः ॥ ४४ ॥

अविमह्योष्टिषच् ॥ ४५ ॥ अविषः । महिषः ॥ ४५ ॥

अमेदीर्घश्च ॥ ४६ ॥ आमिषम् ॥ ४६ ॥

रुहेर्द्विषच् ॥ ४७ ॥ रौहिषम् ॥ ४७ ॥

तवेर्णिद्वा ॥ ४८ ॥ ताविषी । तविषी ॥ ४८ ॥

नञि व्यधेः ॥ ४९ ॥ अव्यधिषः ॥ ४९ ॥

किलेर्बुक्च ॥ ५० ॥ किल्बिषम् ॥ ५० ॥

(४३) मस्यन्ति मुष्टु तथा परिणमन्ते ते मसुरा द्विदलविशिषाः । अत्रैव पंचमपादे मसधातीकुरन् प्रत्यये मसूर इत्यपि सिद्धम् । एकार्थाविमौ द्विदलानेषु मसूर इति प्रसिद्धम् ॥

(४४) शु इति शीघ्राण्यवाचिन्युपपद आप्तौ गम्यमानार्थाः शूङ्धातीकुरन् शु शीघ्रमश्नत आप्नोति जामाता यं स श्वशुरः । दम्पत्योः पिता ॥

(४५) यत्रावन्ति नद्यो गच्छन्ति स अविषः समुद्रः । महति पूजयति स्वपुरुषार्थेन इति महिषो महान् राजा वा तद्योगान्महिषो राज्ञी पशुविशिषो वा । अवति प्रीणाति प्राणिन इत्यविषी नदी वा ॥

(४६) टिषच् । असन्ति गच्छन्ति येन तदामिषं मांसं वा । अथवाऽमन्ति रोगिणो भवन्ति येन भक्षितेन तदामिषम् । इत्येकार्थः ॥

(४७) टिषच् रुहन्त्युत्पद्यन्त यानि तानि रौहिषाणि वृणानि । रौहिषो मृगभेदो वा ॥

(४८) तव इति सौत्रो धातुस्तस्माद्विषच् णिद्विकल्पेन भवति तवतीति ताविषी तविषी नदी बलं सेना भूमिर्दा ॥

(४९) न व्यथत इत्यव्यधिषः समुद्रः सूर्यो वा । अव्यधिषी पृथिवी रात्रिर्वा ॥

(५०) किलति क्रीडति विचारशून्यतया कार्येषु प्रवर्तते यत् तत् किल्बिषं पापम्

सलिकल्यनिमहिभडिभण्डिशण्डिपिण्डितुण्डिकुकिभूभ्य इ
लच् ॥ ५४ ॥ सलिलम् । कलिलम् । अनिलः । महिलः । भडि-
लः । भण्डिलः । शण्डिलः । पिण्डिलः । तुण्डिलः । कोकिलः ।
भविलः ॥ ५४ ॥

कमेः पञ्च ॥ ५५ ॥ कपिलः ॥ ५५ ॥

गुपादिभ्यः कित् ॥ ५६ ॥ गुपिलः । तिजिलः । गुहिलः ॥

मिथिलादयश्च ॥ ५७ ॥ मिथिला ॥ ५७ ॥

(५४) सल्यादिभ्य इलच् । सलति गच्छतीति सलिलम् । जलं वा । कलति
संख्याति तत् कलिलम् । मित्रं दुःखेन साध्यं गहनमिति वा । अनिति जीवति
जीवयति वा स अनिलः । वायुर्वा । यो महयति यं महयन्ति येन वा मह्यते पूज्यते
स महिलः पुमान् । महिलं स्थानम् । महिला स्त्री वा । बाहुलकादिलच् इकार-
स्कारे सति महेला स्त्री इत्यपि सिद्धं भवति । भड इति सौत्रो धातुः । भडति
हिनस्तीति भडिलः शूरो वा । भडति परिचरति स्वामिनमिति भडिलः सेवकः ।
इत्यादि । भण्डयति परिहसति येन स भण्डिलः । कल्याणं वा । शण्डति रोगयुक्तो
भवतीति शण्डिलः । ऋषिविशेषो वा यस्य गोचापत्यं शाण्डिल्य इति प्रसिद्धम् ।
पिण्डति सङ्घातं करोति स पिण्डिलः गणको वा । तुण्डति तोडति पृथक् करोति
स तुण्डिलः । उडनाभिर्जनो वा । कीकृत आदत्तेऽसौ कोकिलः । पक्षिविशेषो वा ।
यो भवति स भविलः । भवितुं योग्यो वा । बाहुलकात् कुटति कौटिल्यं करोति
स कुटिलः क्रूरकर्मा वा ॥

(५५) कमेरिलच् मस्य पः कामयतेऽसौ कपिलः । वर्णभेदो मुनिविशेषो वा ॥

(५६) इलच् कित्वं गुणनिषेधार्थम् । गोपायति रक्षति प्रजा इति गुपिलः । राजा
वा । तेजते तीक्ष्णकरोति वा तिज्यते सह्यते सर्वैः स तिजिलः । चन्द्रमा वा । पूजितु-
मादत्तुं योग्यः पूजिलो विद्वान् । शीषयति सर्वमिति शुषिलो वायुः । देवते प्रकाशयति
धर्ममिति देविलो धार्मिको वा गूह्यते ह्यक्षराच्छादितो भवतीति गुहिलं वनं वा ॥

(५७) मिथिलादय इलच् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते मथ्यते या सा मिथिला मथ्यन्ते
शत्रवो यत्र सा मिथिला विदेहानां राज्ञां नगरी वा । अकारस्येत्वं निपात्यते । गच्छन्ति
प्राप्नुवन्ति यां सा गतिला वेत्रलता वा । गमेस्तकारान्तादेशः । या तद्धति क्लृप्तेण
जीवति सा तकिला । नलोपः । ओषधिर्वा । चमति भक्षयतीति चण्डिला काचिन्नदी
वा । धातोर्दुर्गागमः । यः पथति निरन्तरं गच्छति स पथिलः पथिको वा । इत्यादि ॥

पतिकठिकुठिगडिगुडिदंशिभ्य एरक् ॥५८॥ पतेरः । कठेरः ।
कुठेरः । गडेरः । गुडेरः । दशेरः ॥

कुम्बेर्नलोप्रश्च ॥ ५९ ॥ कुबेरः ॥

शदेस्तश्च ॥ ६० ॥ शतेरः ॥

मूलेरादयः ॥ ६१ ॥ मूलेरः । गुहेरः । सुहेरः ॥

कवेरोतच् पश्च ॥ ६२ ॥ कपोतः ॥

भातेर्डवतुप् ॥ ६३ ॥ भवान् ॥

कठिच्चकिभ्यामोरन् ॥ ६४ ॥ कठोरः । चकारः ॥

(५८) पतति गच्छतीति पतेरो गन्ता पक्षी वा कठति कृच्छ्रेण जीवतीति कठेरः ।
कारागारिको वा कठेरोऽपि कृच्छ्रजीवी पर्णासो वा । कटहर इति प्रसिद्धम् ।
गडति सिंचतीति गडेरः मेघो वा गुडति रक्षति स गुडेरो रक्षकः । दशति दंष्ट्रा-
भ्यामिति दशेरः । हिंसको जीवो वा । अनुनासिकलोपः ॥

(५९) कुम्बत्यन्यानाऽऽच्छादयति कुबेरः । धनाध्यक्षो विद्वान् वा इदित्वादप्राप्ता-
नलोपः एरकि विधीयते ॥

(६०) शीयते शतयति दुःखाकरोतीति शतेरः शत्रुर्वा धातोर्दकारस्य तकारादेशः ॥

(६१) मूलेरादय एरक्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । यो मूलति सर्वोपरि तिष्ठति
स मूलेरः । भूपतिर्वा । गुधति सर्वतो वेष्टयतीति । गुहेरः । रक्षको वा । गृहते येन
स गुहेरः लोहघातनो वा मुह्यति विक्षिप्त इव भवतीति मुह्येरो मूर्खः । मुह्यन्नेन
वृषभादिरिति वा सुहेरः कणमर्दनादौ वृषभमुखवन्धनम् सुहिर इत्येव भाषायां प्रसिद्धम् ॥

(६२) ओतच् प्रत्ययो वकारस्य पकारः कवते विचित्रवर्णो भवतीति कपोतः ।
पक्षिभेदो वा ॥

(६३) भाति दीप्तो भवति दीपयति वा स भवान् । सर्वनामवाचकः सर्वनाम-
संज्ञकश्चाऽयं शब्दः ॥

(६४) कठति कृच्छ्रेण जीवति येन स कठोरः कठिनः पूर्णो वा चकते लप्यति
स चकारः पक्षिविशेषो वा ॥

किशोरादयश्च ॥ ६५ ॥ किशोरः । सहोरः ॥ ६५ ॥

कपिगडिगण्डिकटिपटिभ्यश्चोलच् ॥ ६६ ॥ कपोलः । गडोलः । गण्डोलः । कटोलः । पटोलः ॥ ६६ ॥

मीनातेरुर्न ॥ ६७ ॥ मयूरः ॥ ६७ ॥

स्यन्देः संप्रसारणं च ॥ ६८ ॥ सिन्दूरम् ॥ ६८ ॥

सितनिगमिमसिसच्यविधाञ्कुशिम्यस्तुन् ॥ ६९ ॥ सेतुः । तन्तुः । गन्तुः । मस्तुः । सक्तुः । ओतुः । धातुः । क्रोष्टुः ॥ ६९ ॥

(६५) किशोरादयश्च ओरन् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । किंशृणाति हिनस्तीति किशोरः । अश्वशावको वा । किमो मलोपः श्रुधातोष्टिलोपश्च निपातनम् । सोढुंशीलः सहोरः साधुर्वा । गायति शब्दं करोतीति गौरः । अरुणे श्वेते पीते निर्मले च वाच्यलिङ्गः । गौरः कुमारः । गौरी कन्या । गौरं कुलम् । गौरं कमलम् । गौरः सर्पपः । इत्यादि । गैधातोराकारादेशे कृत ओरना सह वृद्धेकादेशः । आयादेशस्त्वात्वाप्राप्तौ भवति ।

(६६) कम्पते चलति स कपोलः । वदनैकदेशो वा । सूत्रे निर्देशादेव नलोपः । गडति सिंचति स गडोलः । गण्डति स गण्डोलः । वदनैकदेशो वा । गडोलगण्डोलौ गुडकपर्यायौ वा । कटति वर्षत्याहणोति वा स कटोलः कटुबालो वा । पटति गच्छति स पटोलः । फलविशेषो वस्त्रविशेषो वा । बाहुलकात् कण्डति माद्यतीति कण्डोलः । चाण्डालो वा ॥

(६७) मीनाति हन्तीति मयूरः । पक्षिविशेषो वा । धातोर्गुणादेशः । बहुलवचनात् मीनातेरात्त्वनिषेधः ॥

(६८) स्यन्दते प्रस्रवति तत् सिन्दूरम् । रक्तचूर्णं वृक्षभेदो वा । इत्यादि । उरन् प्रत्यये यकारस्य संप्रसारणम् ॥

(६९) सिनोति बध्नातीति सेतुः । समुदो वा । (तितुवतश्च० इतीट्निषेधः । तनोति विस्तृणोतीति तन्तुः । सूत्रं वा । वरामुत्तमां विद्यां तनोति स वरतन्तुर्मुनिः । वरतन्तुना प्रोक्तो वारतन्तवीर्यो ग्रन्थः । गच्छतीति गन्तुः । पथिको वा । समन्ताद्गच्छति भ्रमतीति, आगन्तुरग्यागतो वा । मस्यति परिणमतीति मस्तुः । दधनि निरस्यतमुदकं वा । सच्यन्ते समवेताः क्रियन्ते ते सक्तवः । पक्तयवादिचूर्णं वा । अवति रचनादिकं करोति स ओतुः । विडालो वा । अव धातोर्ज्वरत्वर इति सूत्रेणोपधावकारयोरुठ् । दधाति धरति पोषति वा स धातुः । अग्रमनो विकारः । सुवर्णादिः शरीरस्थवातादिर्वा । क्रोशत्याह्वयति रोदिति वा स क्रोष्टुः । कष्टा शृगालो वा ।

वसेरगारे श्विञ्च ॥ ७० ॥ वास्तु ॥ ७० ॥

पः क्विञ्च ॥ ७१ ॥ पीतुः ॥ ७१ ॥

अत्तेश्च तुः ॥ ७२ ॥ ऋतुः ॥ ७२ ॥

कस्मिन्निजनिगाभायाहिभ्यश्च ॥ ७३ ॥ कन्तुः । मन्तुः । ज-
न्तुः । गातुः । भातुः । यातुः । हेतुः ॥ ७३ ॥

चायः कौ ॥ ७४ ॥ केतुः ॥ ७४ ॥

आप्नोतेर्ऋस्वश्च ॥ ७५ ॥ अप्तुः ॥ ७५ ॥

कृञ् कतुः ॥ ७६ ॥ क्रतुः ॥ ७६ ॥

एधिवह्योश्च तुः ॥ ७७ ॥ एधतुः । वहतुः ॥ ७७ ॥

(७०) वसन्ति प्राणिनो यत्र तद्वास्तु गृहं वा । अगारादन्यत्र णित्वाभावः ।
वसन्ति येन तद्वस्तु द्रव्यं वा ॥

(७१) पिवत्युदकादिकं, पाति प्राणिनो रक्षति वा स पीतुः । अग्निः सूर्यो
वा । कित्वादीत्वम् ॥

(७२) चकारान्तुः किद्भवति पुनः पुनर्ऋच्छति गच्छत्यागच्छतीति ऋतुः ।
वसन्तादिः स्त्रीणां रजःपतनकालो वा ॥

(७३) कामयते येन स कन्तुः कामश्चित्तं वा मन्यते जानाति वा येन स मन्तुः ।
अपराधो वा । जन्यते शरीरादिधारणेन प्रादुर्भवति स जन्तुर्जीवः । गायति षड्जा-
दिस्ररानाऽऽलापयति स गातुर्गायकः । गाते गच्छतीति गातुः पथिको वा । भृङ्ग-
गन्धर्वौ वा । भाति प्रकाशयतीति भातुः सूर्यो वा । याति प्रापयतीति यातुः । अध्वगः
कालो वा । हिनोति येन यो वा कार्यरूपेण वर्धतेऽसौ हेतुः कारणम् ॥

(७४) चायते पूजयति निशामयति आवयति वा स केतुः । ग्रहः पाताका वा
धूमकेतुरुत्पातः ॥

(७५) आप्नोति व्याप्नोति सर्वान् पदार्थानिति, असुः । शरीरं वा तुप्रत्यये आप्नु-
धातोर्ऋस्त्वम् ॥

(७६) कृञ् धातोः कतुः प्रत्ययो भवति यः क्रियते यया करोति वेति क्रतुः ।
प्रज्ञा यज्ञो वा कित्वाद् यण् गुणाऽभावश्च ॥

(७७) एधते वर्द्धतेऽसावेधतुः । पुरुषो वा । वहति भारमिति वहतुः । अन-
द्भान् वा । चित्करणमन्तोदात्तार्थम् ॥

जीवेरातुः ॥ ७८ ॥ जीवातुः ॥ ७८ ॥

आटकन् वृद्धिश्च ॥ ७९ ॥ जैवाटकः ॥ ७९ ॥

कषिचमितनिधनिसर्जिखर्जिभ्य ऊः स्त्रियाम् ॥ ८० ॥ कर्षूः ।

चमूः । तनूः । धनूः । सर्जूः । खर्जूः ॥ ८० ॥

मृजेर्गुणश्च ॥ ८१ ॥ मर्जूः ॥ ८१ ॥

खड्डेडुड्वा ॥ ८२ ॥ खड्डूः । खडूः ॥ ८२ ॥

वह्वेर्धश्च ॥ ८३ ॥ वधूः । ८३ ॥

कषेष्टश्च ॥ ८४ ॥ कच्छूः ॥ ८४ ॥

णित्कशिपद्यत्तेः ॥ ८५ ॥ काशूः । पादूः । आरूः ॥ ८५ ॥

अणो डश्च ॥ ८६ ॥ आडूः ॥ ८६ ॥

(७८) जीव्यते येन यो वा जीवति स जीवातुः । जीवनसौषधं वा ॥

(७९) जीवधातोराटकन् प्रत्ययस्तस्मिन् सति वृद्धिश्च भवति । यो जीवति पूर्णावस्थापर्यन्तं स जैवाटक आमुष्मान् निशाकरो वा ॥

(८०) कृथादिभ्य ऊः प्रत्ययः कर्षत्याकर्षति पदार्थानिति कर्षूः शुष्क-
गोमयोऽग्निर्नदी वा । चमति भक्षयतीति चमूः । शत्रुभक्षिणी सेना वा । तनोति
कार्याणि येन सा तनूः शरीरं वा दिधति धनमर्जयति स तनूः शस्त्रं वा । सर्जति,
उपार्जति कार्याणीति सर्जूः वैश्यो वा । खर्जति पीडयतीति खर्जूः । कण्डूर्वा ॥

(८१) माष्टिं शोधयतीति मर्जूः । शुद्धिर्वा । ऊप्रत्ययस्याकिच्त्वान्नित्यापि
प्राप्ता वृद्धिर्गुणेन बाध्यते ॥

(८२) खडति भिनत्तीति खड्डूः । खडूः । बाहुकृश्मोराभूषणं मृतशय्या वा ।

(८३) वहति सुखानि प्रापयतीति वधूः । नवोटा स्त्री वा ॥

(८४) कषति हिनस्ति दुःखयतीति कच्छूः पामा वा । खाज इति प्रसिद्धा ।
षकारस्य छकारः ॥

(८५) कश्यादिभ्य ऊ णिङ्भवति । कष्टे गच्छति शास्ति वेति काशूः । विकल-
धातुर्जनः शक्तिर्वा पद्यन्ते गच्छन्ति यया सा पादूः । उपानहौ वा ऋच्छति प्राप्नोति
स आरूः पिङ्गलो वा ॥

(८६) अणति शब्दयतीति, आडूः । णस्य डः । जलगामि द्रव्यं वा ॥

लम्बेर्नलोपच ॥ ८७ ॥ अलावूः ॥ ८७ ॥

के अ एरङ् चास्य ॥ ८८ ॥ कशेरुः ॥ ८८ ॥

वो दुट् च ॥ ८९ ॥ तर्दूः ॥ ८९ ॥

दरिद्रातेर्यालोपश्च ॥ ९० ॥ दद्रूः ॥ ९० ॥

नृतिशृङ्गोः कूः ॥ ९१ ॥ नृत्तः । शृङ्गः ॥ ९१ ॥

ऋतेरम् च ॥ ९२ ॥ रतूः ॥ ९२ ॥

अन्दूदृक्फूजम्बूकम्बूकफेलूककम्बूदिधिषू ॥ ९३ ॥

(८७) ऊप्रत्यये लम्बधातोर्नलोपो भवति । न लम्बतेऽधो न स्रवति गच्छति सा अलावूः । तुम्बी वा ॥

(८८) ककारोपपदात् शृ धातोरूप्रत्ययस्तस्मिन् प्रकृतेरङादेशः । कष्टे शास्ति स कशेरुः । लणकन्दं वा । बहुलवचनादूप्रत्ययस्य ह्रस्वे कृते कशेरुरिति ह्रस्वान्तोऽपि दृश्यते ॥

(८९) तरति येन यया वा स तर्दूः दारुहस्तः पुरुषो यष्टिर्वा । तृधातोर्दुर्गागमः ।

(९०) दरिद्राधातोरूप्रत्यये (इ, आ) इत्येतयोर्वर्णयोर्लोपः । दरिद्राति दुर्गतिं करोतीति दद्रूः कुष्ठभेदो वा । मृगश्वादित्वात् (रि, आ) इत्यनयोर्लोपे दद्रुरित्यपि सिद्धम् । अत्र सूत्रेऽपि (रि आ) इत्येतयोर्लोपे दद्रुरिति भवति ॥

(९१) नृत्यतीति नृत्तूर्नर्तकः शर्धते कुत्सितं शब्दयतीति शृङ्गः अपानवायुर्वा । प्रत्ययस्य कित्वाद् गुणनिषेधः ॥

(९२) ऋत इति सौत्रो धातुः ऋतीयते घृणां करोतीति रतूः सत्यं दिव्यनदी वा । धातोर्मागमः ॥

(९३) अन्दूप्रभृतयः शब्दाः कूप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । अन्दति बध्नाति येन यया वा सा अन्दूः हस्तिबन्धनी शृङ्खला वाजंजीर इति प्रसिद्धा । दृम्फश्चुत्कष्टं क्षेपं ददातीति दृम्फूः सर्पजातिर्वा । जमन्ति भक्षयन्ति या सा जम्बूः वृक्षविशेषजातिर्वा । धातोर्दुर्गागमः । बहुलकादूप्रत्ययस्य ह्रस्वे कृते जम्बुरित्यपि दृश्यते । कामाते स कम्बूः परद्रव्यापहारी वा । धातोर्बुक् । कफं श्लेष्माणं लात्याददातीति कफेलूः । ओपधिधिशेषो वा । एकारान्तत्वं ऋप्रत्ययस्य निपातनम् कर्कं कण्टकं दधाति धरतीति कर्कन्धूः । वदरीफलं वा । कित्वादाकारलोपः । उपपदस्य नुगागमो निपातनम् । दिधिं धेयेमिन्द्रियदौर्वल्यात्स्यति त्यजतीति दिधिषूः । पुनर्भूर्वा निपातनात् षत्वम् ।

मृगोरुतिः ६४ ॥ मरुत् । गरुत् ॥ ६४ ॥

ग्रो मुट्च ॥ ६५ ॥ गर्मुत् ॥ ६५ ॥

हृषेरुलच् ॥ ६६ ॥ हृषुलः ॥ ६६ ॥

हृसृरुहियुषिभ्य इतिः ॥ ६७ ॥ हरित् । सरित् । रोहित् । योषित् ॥ ६७ ॥

ताडेरुलुक् च ॥ ६८ ॥ तडित् ॥ ६८ ॥

शमेठः ॥ ६९ ॥ शण्डः ॥ ६९ ॥

कमेरठः ॥ १०० ॥ कमठः ॥ १०० ॥

रमेठ्हिञ्च ॥ १०१ ॥ रामठम् ॥ १०१ ॥

शमेः खः ॥ १०२ ॥ शङ्खः ॥ १०२ ॥

(६४) म्रियते मारयति वा स मरुत् मनुष्यजातिः पवनो वा । गिरति निगलतीति गरुत् पक्षो वा ॥

(६५) गिरति येन तत् गर्मुत् सुवर्णं लणजातिभेदो वा ॥

(६६) हृषति तुष्टो भवतीति हृषुलः । मृगः कामी वा । बाहुलकात् चटति वर्षत्याहणीति वा स चटुलः शोभनो वा ॥

(६७) आहरति गृह्णाति द्रव्यमिति हरित् दिक् वर्णस्तृणमश्वविशेषो वा । सरति गच्छतीति सरित् नदी वा । रोहति प्रादुर्भवतीति रोहित् लताविशिष्टा हरिणी वा । युष इति सौत्रो धातुः अथवा जुष इत्यस्य वर्णविकारेण पाठः । जुष्यते सेव्यते प्रीणयति वा सा योषित् स्त्री वा ॥

(६८) ताडयति पीडयतीति तडित् । विद्युद्वा । प्रत्ययलक्षणेन शिलोपेऽपि वृद्धिः स्यादिति लुग्विधीयते ॥

(६९) शास्यति शान्तो भवतीति शट्ठः स्वतन्त्रो वृषभः । सांड इति प्रसिद्धः । नपुंसकं वा ॥ ॥

(१००) कामयतेऽसौ कमठः कच्छपो वा । कमठमिति भाण्डभेदो वा । बाहुलकात् । जीर्यत्ववस्थाहीनो भवतीति जरठः पाण्डुरङ्गो वा । शमठः । शान्तो वा

(१०१) रमतेऽसौ रामठं हिङ्गु वा अठ प्रत्यये रमधातोर्द्विः ॥

(१०२) शाम्यतीति शङ्खः । निधिभेदः । जलजं ललाटास्थि वा । बहुलवचनात् खकारस्येत्संज्ञा न भवति ॥

कण्ठः ॥ १०३ ॥ कण्ठः ॥ १०३ ॥

कलस्तपच्च ॥ १०४ ॥ तपला ॥ १०४ ॥

शमेर्वच्च ॥ १०५ ॥ शवलः ॥ १०५ ॥

वृषादिभ्यश्चिचत् ॥ १०६ ॥ वृषलः ॥ १०६ ॥

कमेवुक् ॥ १०७ ॥ कम्बलः ॥ १०७ ॥

लङ्गे वृद्धिश्च ॥ १०८ ॥ लाङ्गलम् ॥ १०८ ॥

(१०३) कणति येन शब्दं करोतीति कण्ठः । गलो ध्वनिर्वा ॥

(१०४) तपधातोः कलप्रत्ययः । तप्यति यथा सा तपला लता वा । अत्र सूत्रे चकारग्रहणात् तपधातोरपि कलप्रत्ययस्तेन तपला इत्यपि सिद्धम् । तपला तिलफला इत्योषधिविशेषपर्यायो । बाहुलकात् काम्यतेऽसौ कमलः । कमलं पद्मं वा । उदकं तान्त्रमौषधं च । मृगभेदः कमलः । कमला श्रीपतिप्रिया वा । मण्डति भूषयति प्रतिपादयति वा स मण्डलः । मण्डलं चक्राकारं देशभेदो विस्वः कदम्बः कुष्ठं यज्ञभेदः श्वा च । कुण्डति दहतीति कुण्डलम् । वलयं पाशं कर्णभूषणं वा । पटति गच्छतीति पटलः । अक्षिरोगस्तिलकं वा । इत्यादि । ह्यति छिनत्ति पराऽभिप्रायमिति क्लमः ॥

(१०५) शपत्याक्रोशति स शवलः वर्णभेदो वा ॥

(१०६) वृषादिधातुभ्यः कलप्रत्ययश्चिञ्चति । वर्षति सिञ्चतीति वृषलः शूद्रो वा । तस्य स्त्री वृषली । कोशति श्लिष्यति कोशति व्यवहर्तुं जानातीति वा कुशलो निपुणः कुशलं जेममिति वा । बाहुलकाद्गुणे कोशल इति देशभेदो वा । पलति गच्छति येन तत् पललम् । तिलचूर्णं पङ्कं मांसं वा । दौव्यत्यधर्मिणो विजिगीषतीति देवलो धार्मिकः । सरति सर्वत्र गच्छतीति सरलः । अकुटिल उदारो वा । धावति गच्छति शुद्धो भवति वा स धवलः । श्वेतः शुद्धो वा । धातुधातोर्बाहुलकाद्भ्रमत्वम् । वृषादेराकृतिगणत्वात् केवलकवलतरलानलजम्बलपेशलमर्दलादयोऽपि शब्दादष्टव्या मुस्यति खण्डयति मोषयति चोरयति वा स मुसलः । मुषलो वा । मुशलं मुसलमिति लोहायभागि कुट्टनसाधनम् । मुषलश्चोरो वा ॥

(१०७) काम्यतेऽभीप्स्यते यः स कम्बलः । ऊर्णाविकार उदकं वा । कमधातोः कलप्रत्यये वुक् ॥

(१०८) लङ्गन्ति प्राप्नुवन्ति, अन्नादिकं येन तत् लाङ्गलम् । हलं वा । बाहुल्यवचनात् । कन्दत्याद्यति सा कदली । वृक्षभेदः केला इति प्रसिद्धा वा । बाहुलकाद्धान्तीर्नलीपः ॥

कुटिकशिकौतिभ्यो मुट् च ॥ १०६ ॥ कुट्मलम् । कश्मलम् ।
कोमलम् ॥ १०६ ॥

मृजेष्ठिलोपश्च ॥ ११० ॥ मलम् ॥ ११० ॥

चुपेरञ्चोपधायाः ॥ १११ ॥ चपलम् ॥ १११ ॥

शकिशस्योर्नित् ॥ ११२ ॥ शकलम् । शमलम् ॥ ११२ ॥

छो गुम्प्रस्त्रश्च ॥ ११३ ॥ छगलः ॥ ११३ ॥

जमन्ताड् डः ॥ ११४ ॥ दण्डः । रण्डा । खण्डः । मण्डः ।

वण्डः । अण्डः । प्रण्डः । गण्डः । चण्डः । पण्डः । पण्डा ॥ १०४ ॥

(१०६) कुटादिभ्यो विहितस्य कलप्रत्ययस्य मुट् । कुटतीति कुट्मलः ।
बाहुलकात् । कुण्डति दहतीति कुड्मलः । किञ्चद्विकसितपुष्पनाम्नी वा । कष्टे
गच्छति शास्ति वा स कश्मलः कश्मलं कश्मलं पापं वा । कौतिशब्दयतीति कोमलः ।
कोमलं मृदु जलं वा । बाहुलकात् । पिङ्क्ते वर्णयतीति पिङ्गलः । वर्णभेदो वा ।

(११०) यन् सृज्यते शोध्यते तन्मलम् । पुरीषं पापम् । कृपणः पुरुषो वा ।
सृजधातोऽष्टिलोपः ॥

(१११) चोपति मन्दं मन्दं गच्छति स चपलः । क्षणिकं शीघ्रं वा । चपला
पिप्पली विद्युद्वा । धातोरुकारस्याकारादेशः ॥

(११२) शक्नोतीति शकलः । खण्डो मत्स्यभेदो वा । शाम्यतीति शमलः । अशुद्धं वा ॥

(११३) च्छाति छिनत्तीति छगलः । छागो वर्करो वा । धातोरुङ्गागमो ह्रस्वश्च ॥

(११४) जमिति प्रत्याहारग्रहणम् । ज, म, ड, ण, न इत्येते वर्णा अन्तेऽस्य

तस्माड् डः प्रत्ययो भवति बहुलवचनाद्विस्मयानिषेधः । दाम्यन्त्युपशाम्यन्त्यनेन

स दण्डः । यष्टिभेदो वा । रमतेऽसौ रण्डा विधवा नारी वा । खण्डतेऽवदीर्यतेऽसौ

खण्डः । विभागी मिष्टभेदो वा । खाण्ड इति प्रसिद्धः भिन्नः पदार्थो वा । मन्यते जानाती-

ति मण्डः । मण्डा धात्री समाख्याता मण्डं पक्वोदनोदकम् । वनति शब्दयति

संभजति वा । स वण्डः । छिन्नहस्तको वा । अमन्ति संप्रयोगं प्राप्नुवन्ति येन सोऽण्डः

प्राण्यङ्गावयवो वा । सनीति ददातीति षण्डः । नपुंसको वनं गोपः सङ्घातो वा

गच्छतीति गण्डः । कपोलव्याधिविशेषो वा । चणति ददातीति चण्डः । हिंसकस्त्रीवो

वा । कोपना स्त्री चण्डी । चडिकोप इत्यस्य घञन्तोपि चण्डः क्रोधी । पणयति व्यव

हरति स्त्रीति वा स पण्डः । नपुंसकः पण्डा बुद्धिर्वा । फणति गच्छत्यनेति फण्डः ।

पत्या फण्डमुदरं वा ॥

क्वादिभ्यः कित् ॥ ११५ ॥ कुण्डम् । काण्डम् । गुडः । घुण्डः ॥ ११५ ॥
 स्याचतिमृजेरलच्वाल्जालीयचः ॥ ११६ ॥ स्यालम् । चात्वालः
 मार्जालीयः ॥ ११६ ॥

पतिचण्डिभ्यामालज् ॥ ११७ ॥ पातालम् । चण्डालः ॥ ११७ ॥
 तमिविशिविडिमृणिकुलिकपिपलिपञ्चिभ्यः कालन् ॥ ११८ ॥
 तमालः । विशालः । विडालः । मृणालम् । कुलालः । कपालम् ।
 पलालम् । पञ्चलाः ॥ ११८ ॥

(११५) कवर्गादिधातुभ्यो ङः किद् भवति । कुणति शब्दयत्युपकरोति वा स
 कुण्डः । पत्नी जीवति पुरुषान्तरादुत्पन्नः पुत्रो जलाधारविशेषो वा । कुण्डा कुण्डि-
 का वा । गवतेऽव्यक्तशब्दं करोतीति गुडः । गोः ल इच्छुपाको वा । घोणते भ्राम्य-
 तीति घुण्डः । भ्रमरो वा । काम्यते जनैस्तत्काण्डम् । ग्रंथेकदेशः । परिमाणविशेषो
 वाणोऽवसरो वा ॥

(११६) तिष्ठन्त्यस्मिन् तत्स्यालम् । पात्रभेदे वा याल इति प्रसिद्धम् । स्याली
 स्रपादिपचनी । गौरादित्वान् डौष् । चतधातोर्वालज् । चतते याचतेऽसौ
 चात्वालः । चात्वालं यद्भकुण्डं दर्भो वा । मृजेरालीयच् । मार्जालीति मार्जालीयः ।
 विडालो वा ॥

(११७) पतन्ति गच्छन्ति यत्र स पातालो देशः पादस्य तले वर्तत इति वा ।
 पातालः पृषोदरादित्वात् सिद्धः चण्डति कुप्यतीति चाण्डालः मातङ्गो वा । चण्डं
 कुपितमलं भूषणमस्येति समासेऽपि चण्डालः सिद्धः ॥

(११८) ताम्यन्ति काङ्क्षन्ति यं स तमालः वृक्षभेदो वा । विशति सर्वत्रेति
 विशालः । विशाला मानिनी भार्या विशालः सुन्दरः पुमा । विशालोज्जयिनी
 प्रोक्ता विशालं च वृहद् गृहम् । विडत्याक्रोशतीति विडालः । मार्जारी वा । स्त्री
 विडाली मृणति हिनस्तीति मृणालः मृणालं पद्ममूलं वा । कोलति सङ्घातयतीति
 कुलालः । कुम्भकारो वा । कम्पते येन तत्कपालम् । नृशिरो घटखण्डो वा । पल्यते
 प्राप्यतेऽसौ पलालः । निष्फलानि व्रीहितणानि वा । प्यार इति प्रसिद्धम् । पञ्चति
 व्यक्तं करोतीति पञ्चालः । देशविशेषो वा । बहुलवचनात् शोधनीरपि कालन् ।
 श्यन्ति सूक्ष्माणि कार्याणि कुर्वन्त्यत्र सा शाला गृहम् ॥

पतेरङ्गच् पक्षिणि ॥ ११६ ॥ पतङ्गः ॥ ११६ ॥
 तरत्यादिभ्यश्च ॥ १२० ॥ तरङ्गः । लवङ्गः ॥ १२० ॥
 विडादिभ्यः कित् ॥ १२१ ॥ विडङ्गः । मृदङ्गः । कुरङ्गः ॥ १२१ ॥
 सृवृजोर्द्विभ्यश्च ॥ १२२ ॥ सारङ्गः । वारङ्गः ॥ १२२ ॥
 गन् गम्यद्योः ॥ १२३ ॥ गङ्गा । अद्गः ॥ १२३ ॥
 क्वापूखडिभ्यः कित् ॥ १२४ ॥ क्वागः । पूगः । खङ्गः ॥ १२४ ॥
 भृञ् भृज् कित् च ॥ १२५ ॥ भृङ्गः ॥ १२५ ॥

(११६) पक्षिण्यभिधेये पतधातोर्ङ्गच् प्रत्ययो भवति पतति गच्छतीति पतङ्गः पक्षी पक्षिणीत्युच्यमानेऽपि बाहुलकात् । पतङ्गः सूर्योऽग्निरश्वः शलभः शालिभेदी वा । इत्यादीनामपि नामानि भवन्ति ॥

(१२०) तरति प्रवत्यनेन स तरङ्गः । जलोर्मिर्वस्त्रं भङ्गा वा । लुनात्यनेन स लवङ्गः । ओषधिवर्षा । तरत्याद्याकृतिगणः ॥

(१२१) विडत्याक्रोशतीति विडङ्गः । ओषधिविशेषो वा । मृदनाति यं स मृदङ्गः । वाद्यभेदी वा । किरति विजिपतीति कुरङ्गः । हरिणो वा । कुरङ्गो हरिणो स्त्रियां गौरादित्वान् ङीष् । बाहुलकाद् ऋकारस्योत्वं रपरत्वं च ॥

(१२२) सृवृज्भ्यामङ्गच् धातोर्द्विभ्यश्च । सरति सर्वत्र गच्छतीति सारङ्गः । पक्षी हरिणो भृङ्गो वा । यो वृणोति गृह्णाति स वारङ्गः खङ्गादिमुष्टिर्वा । बाहुलकात् । नृणाति नयति स नारङ्गः । रसः पिप्यली वृक्षफलभेदी वा ॥

(१२३) गच्छतीति गङ्गा । नदीभेदी वा । अग्नि वाऽयते भक्ष्यतेऽसावद्गः । पुरोडाशो वा । बाहुलकात् । अमगत्यादिष्वित्यस्मादपि गन् । गच्छति प्राप्नोति कर्माणि विषयान् वा येन तदङ्गम् । गात्रमुपायः प्रतीकमप्रधानं देशविशेषो वा ॥

(१२४) क्वादिभ्यो गन् किद् भवति क्विनसीति क्वागः । वर्करो वा । पूयते सुखं येन स पूगः । क्रमुकः फलविशेषः सुपारोति प्रसिद्धः । समूहा वा । खडति भिनत्ति येन स खङ्गः । शस्त्रं गण्डकः—गेंडा इति प्रसिद्धः । बाहुलकात् सेट्यनाद्विद्यते स पिङ्गः । चंचलमनाः हारमध्यस्थो मणिर्वा । बहुलवचनादेव सत्त्वनिषेधः ॥

(१२५) भृज्धातोर्भृन् प्रत्ययः कित् तस्य च नुट् विभक्तिं धरति पुष्यति वा स भृङ्गः । अमरो वा ।

शृणातिर्ङ्स्वञ्च ॥ १२६ ॥ शुङ्गः ॥ १२६ ॥

गण् शकुनौ ॥ १२७ ॥ शार्ङ्गः ॥ १२७ ॥

मुदिग्रोर्गङ्गौ ॥ १२८ ॥ मुद्गः । गर्गः ॥ १२८ ॥

अण्डन् कृष्टभृजः ॥ १२९ ॥ करण्डः । सरण्डः । भरण्डः
वरण्डः ॥ १२९ ॥

शृद्भसोऽदिः ॥ १३० ॥ शरत् । दरत् । भसत् ॥ १३० ॥

दृणातेः पुष्पस्वञ्च ॥ १३१ ॥ दृषत् ॥ १३१ ॥

(१२६) कित् नुट् चेत्यनुवर्त्तते शृणाति हिर्नास्ति येन तत् शृङ्गम् दृषभादि-
विषाणं पर्वतायं मत्स्यभेद ओषधिभेदः सुवर्णभेदो वा ।

(१२७) गण्प्रत्ययस्य णित्त्वाद्भातोर्द्विः पूर्ववद्नुट् च । शृणातीति शार्ङ्गः पक्षी
बाहुलकात्प्रत्ययस्यादावकारागमेन शारङ्ग इत्यपि सिद्धं भवति ॥

(१२८) मुद्धातीर्गङ् । मोदतेऽसौ मुद्गः अन्नभेदो वा । मुद्गान् लाति गृह्णा-
तीति मुद्गलो मुनिः । यस्य गोत्रापत्यं मीद्गल्य इति प्रसिद्धम् । गृणात्युदिश-
तीति गर्गः । ऋषिविशेषो वा । गृधातीर्गः प्रत्ययः ॥

(१२९) कृजादिभ्योऽण्डन् प्रत्ययः । क्रियतेऽसौ करण्डः पुष्पभाण्डभेदः करण्डो
वंशविकारपात्रम् । पिटारी इति प्रसिद्धा । सरति गच्छतीति सरण्डः पक्षी वा ।
विभर्त्ति पुष्पतीति भरण्डः स्वामी । वृणोति स्वीकरोतीति वरण्डः । सुखरोगः सन्दोहो
वा । बाहुलकात् तरति येन स तरङ्गः । जलतरणसाधनं वा । वनति संभजति
धर्ममिति वतण्डः । ऋषिविशेषो वा । धातोस्तकारान्तादेशः । क्लमति भक्षयतीति
क्लमण्डः । मातापितृशून्यो वा । शिंतेऽसौ शयण्डः । विषयो वा । इत्यादयः शब्दा
बाहुल्यवचनादेव सिद्धा भवन्ति ।

(१३०) शृद्भसधातुस्योऽदिः प्रत्ययः शृणाति हिर्नास्तिस्मिन्निति शरत् । काल-
विशेष ऋतुर्वा । दीर्यतेऽसौ दरत् हृदयं कूलं वा । विभस्ति भत्सेयति प्रकाशते वा ।
स भसत् जघनं वा । बाहुलकात् पर्षति स्मिन्निति प्रीतिकरं प्रसन्नं भवति चित्तमस्यां
सा पर्षत् । सभा समाजो वा ॥

(१३१) दीर्यतेऽसौ दृषत् । पाषाणो वा । अदिप्रत्यये धातोः पुक् इत्स्वागमश्च
भवति ।

त्यजितनियजिभ्यो ङित् ॥ १३२ ॥ त्यद् । तद् । यद् ॥ १३२ ॥

एतेस्तुट् च ॥ १३३ ॥ एतद् ॥ १३३ ॥

सत्तेरटिः ॥ १३४ ॥ सरट् ॥ १३४ ॥

लङ्घनेर्लोपश्च ॥ १३५ ॥ लघट् ॥ १३५ ॥

पारयतेरजिः ॥ १३६ ॥ पारक् ॥ १३६ ॥

प्रथेः कित्सम्प्रसारणं च ॥ १३७ ॥ पृथक् । १३७ ॥

भियः षुग्व्रस्वश्च ॥ १३८ ॥ भिषक् । १३८ ॥

युष्यसिभ्याम्भदिक् ॥ १३९ ॥ युष्मद् । अस्मद् । १३९ ॥

अर्त्तिस्तुसुहुसृधृक्षिक्षुभायावापदियक्षिनीभ्यो मन् ॥ १४० ॥

अर्म्मः । स्तोमः । सोमः । होमः । सर्म्मः । धर्मः । क्षेमम् ।

क्षोमम् । भामः । यामः । वामः । पद्मम् । यक्ष्मः । नेमः । १४० ॥

(१३२) त्यजति क्लेशादिहीनो भवतीति त्यद् । तनुते विस्तृतो भवतीति तद्
यजति सर्वैः पदार्थैः संगतो भवतीति यत् । ब्रह्मणो नामानि त्रयाणि । त्यदादीनां
सर्वनामसंज्ञा भवति तेन सामान्यवाचकास्त्यदादयः ।

(१३३) इण्धातोर्दिः प्रत्ययस्तस्य तुडागमश्च । एति प्राप्नोतीत्येतत् । अस्यापि
सर्वनामसंज्ञा ।

(१३४) सरति गच्छतीति सरट् । वायुर्मैवो वा । सुधातोर्दिः प्रत्ययः ॥

(१३५) लङ्घनि शोषयतीति लघट् । वायुर्वा । धातोर्नलोपः ॥

(१३६) पारयति कर्म समापयतीति पारक् सुवर्णं वा । क्षीरादिकात्पारिधा-
तोर्दिः प्रत्ययः ॥

(१३७) प्रथयति संघाताद्विस्तृतो भवतीति पृथक् नानात्वं वा । स्वरादिपाठा-
दथयत्वम् ॥

(१३८) विभेत्यसौ भिषक् । वैद्यो वा सुमङ्गलभेषजांश्चेति निपातनाहुने
कृते भेषजम् । भेषजमेव भेषज्यम् ॥

(१३९) योषति सेवतेऽसौ युष्मद् । युषसौत्रो धातुः । अश्रयति प्रक्षिपत्यन्यमि-
त्यस्मद् । सर्वनामवाचकाविभौ ॥

(१४०) ऋच्छति प्राप्नोति सोऽर्मः । चक्षुरोगो वा । स्तौति येन स स्तोमः ।
सङ्घातो वा सवत्यैश्वर्यहेतुर्भवतीति सोमः । कर्पूरश्चन्द्रमा वा । ह्रयते दीयतेऽसौ

जहातेः सन्वदाकारलोपश्च ॥ १४१ ॥ जिह्वः । १४१ ॥

अवतेष्टिलोपश्च ॥ १४२ ॥ ओम् । १४२ ॥

ग्रसेराच ॥ १४३ ॥ ग्रामः । १४३ ॥

अविसिविसिशुषिभ्यः कित् ॥ १४४ ॥ जमम् । स्यूमः ।

सिमः । शुष्मम् ॥ १४४ ॥

इषियुधौन्विदसिष्याधूसूभ्यो मक् ॥ १४५ ॥ इष्मः । युष्मः ।

इष्मः । दक्षः । श्यामः । धूमः । सूमः । १४५ ॥

होमः । यज्ञो वा । स्थियते गम्यते स समो गमनम् । ध्रियते सुखप्राप्तये सेव्यते स धर्मः । पक्षपातरहितो न्यायः सत्याचारो वा । चयत्यज्ञानं नाशयतीति चेमम् । कुशलं वा चीति शब्दयतीति चीमम् । वस्त्रभेदो वा । दुकूलमतसीकुसुमं च । भाति प्रकाशते ऽसौ भामः । क्रोधः सूर्यो दीप्तिर्वा । यायते प्राप्यते स यामः । प्रहरो वा । वाति गच्छति ग्रन्थं वा गृह्णातीति वामः । शोभनः दुष्टः पार्श्वभेदो वा । पद्यते प्राप्नोतीति पद्मम् । कमलं निधिः शङ्खो वा । यच्चयते पूजयतीति यक्षः । राजरोगो वा नयतीति नेमः । प्रकारमूलं वा । अर्द्धवाची तु सर्वनामसंज्ञकः ॥

(१४१) मन्वित्यनुवर्तते । जहाति त्यजतीति जिह्वः । कुटिलो मन्दो वा ॥

(१४२) मन् प्रत्ययस्य टिलोपो धातोरुपधावकारयोरुठ् । अवति रक्षादिकं करोतीति ओम् । प्रणव आरम्भोऽनुमतिर्वा । चादिषु पाठादस्याव्ययत्वम् ॥

(१४३) मन् । ग्रसतेऽस्ति यो वा ग्रस्यते स ग्रामः । शालासमुदायः प्राणिनिवासो वा । संग्रामो युद्धं वा । शालीनां ग्रामः समूहः शालिग्रामः । एवं शब्दग्रामग्रामो गानविद्यायां स्वरभेदश्च ॥

(१४४) मन्-कित् । अवति रक्षणादिकं भवति यत्र तत् जमम् । नगरं वा । टापि कृते बाहुलाद्भस्वे च । उमा । विशिष्टा स्त्री वा । सीव्यति तन्तून् संतनोतीति स्यूमः । रश्मिर्वा । सिनोति बध्नातीति सिमः । सर्वनामसंज्ञः सर्वपर्यायः । शुष्यति निस्सारं करोतीति शुष्मम् । अग्निर्वायुर्वा ॥

(१४५) य इच्छति य इष्यते स इष्मः । कामो वसन्त ऋतुर्वा । युध्यते यो येन वा स युष्मः । बाणो वा । य इन्धे दीप्यते वा येनेन्धे स इष्मः । समिहः । दस्य-लुपचयति दुःखयति वा स दक्षः । यजमानो वा । श्यायति गच्छति प्राप्नोति वा स

युजिर्वाचतिजां कुञ्च ॥ १४६ ॥ युग्मम् । रुक्मम् । तिग्मम् ।

हन्तेर्हि च ॥ १४७ ॥ हिमम् ॥ १४७ ॥

भियः षुग् वा ॥ १४८ ॥ भीमः । भीष्मः ॥ १४८ ॥

वर्मग्रीष्मौ ॥ १४९ ॥

प्रधेः प्रिवन्प्रवन्ध्वनः संप्रसारणं च ॥ १५० ॥ पृथिवी । पृथ्वी ।
पृथ्वी ॥ १५० ॥

अश्वप्रुषिलटिकाणिखटिविशिष्यः क्वन् ॥ १५१ ॥ अश्वः । प्रुध्वः ।
लङ्गा । कखम् । खङ्गा । विश्वः ॥ १५१ ॥

श्यामः । हरितः कृष्णो वा । अप्रसृता स्त्री श्यामा लतीषधी वा । इत्यादि धूनोति
कम्पयतीति धूमः । अग्निसम्भवो वा । सूते जनयति प्राणिगर्भं विमुञ्चतीति सूमो-
ऽन्तरिचं वा । बाहुलकात् । ईर्से गच्छति कम्पते वा तदीर्मम् । व्रणं वा । चीति
शब्दयति सा जमा । अतसो वा । जजन्ति जायते स जन्मः । उत्पत्तिर्वा ॥

(१४६) मक् । युज्यते तद्युग्मम् । द्वयोरैककर्मणि संबन्धः । रोचते प्रदीप्तवर्णो
भवति स रुक्मो वर्णभेदो वा । तद्वर्णयोगाद्रुक्मं सुवर्णम् । रुक्मो वर्णोऽस्यास्तीति
रुक्मिषी स्त्री । तेजते छिनत्तीति तिग्मम् । तीक्ष्णम् । विशेष्यलिङ्गोऽयं शब्दः तिग्मा-
धीः । तिग्मस्त्रीब्रो वा ॥

(१४७) मक् । हन्तुलुष्णं दुर्गन्धिं वा तद्धिमम् । हिमन्त ऋतुसुषारश्चन्दनं वा ।
महत् हिमं हिमानी । डीष् आनुक् ॥

(१४८) विभेति विभ्यति वा यस्मात् यस्या वा स भीमः । भीमा वा । भीष्मः ।
भीष्मा वा । भीमो भयानकः । पाण्डुपुत्रो वा । भीमा भयानका सेना यस्य स भीम-
सेनः । एवं भीष्मसेनो वा ॥

(१४९) मक् प्रत्ययान्तौ निपात्यते जिघर्त्ति रचति नश्यति दीप्यते वा प्राणिनो
जगद्वा येन स घर्मः । यच्च आतपो ग्रीष्म ऋतुः स्वेदकं वा । यसते ग्रीतं रसादिकं वा
स ग्रीष्मः । अत्युष्णकालो वा । यसधातोर्ग्रीभावः । पुगागमश्च निपातनात् ॥

(१५०) प्रयते विस्तीर्णा भवतीति पृथिवी । पृथ्वी । पृथ्वी । इत्येकार्वाख्ययः ।
सूमिरन्तरिचं वा ॥

(१५१) अश्वनुते व्याप्रीतीत्यश्वः । तुरङ्गो वह्निर्वा । अजादिपाठात् स्त्रिया
मश्या । यः प्रुणाति सिद्धयति सिञ्चति पूरयति वा स प्रुध्वः । ऋतुः सूर्यो वा ।

दृग्शीभ्यां वन् ॥ १५२ ॥ एवः । शिवः ॥ १५२ ॥

सर्वनिघृण्वरिष्वलष्वशिवपट्प्रह्वे ष्वा अतन्त्रे ॥ १५३ ॥

शिवायह्वजिह्वाग्रीवाऽप्वामीवाः ॥ १५४ ॥

कृष्टृष्टृभ्यो वः ॥ १५५ ॥ कर्वः । गर्वः । शर्वः । दर्वः ॥ १५५ ॥

लटति बाल इव भवति सा लट्वा । नियतस्त्रीलिंगः । करञ्जभेदः । फलं वाद्यं पत्ति-
भेदो वा । कणति निमीलति च्छेत्तेऽसौ कण्वः । कण्वं पापं कण्वो मुनिर्वा । येनादा-
वध्यापिता कारावी शाखेति प्रसिद्धा वा । खद्यते काङ्क्ष्यते या सा खट्वा । शय्यादि-
वा । विग्रति सर्वत्र स विश्वः । विश्वं जगत् । विश्वाऽतिविषया वा । सर्वादि-
पाठात्सर्वनामसंज्ञश्च ॥

(१५२) एति प्राप्नोतीत्येवः । बाहुलकात् एवेत्यवधारणेऽध्ययम् । शितेऽसौ शिवः ।
सुखं मेदं वा ॥

(१५३) सर्वादयो वन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । सरतीति सर्वः । संपूर्णवाची
सर्वनामसंज्ञो विशेषणम् । नितरां वर्षति पिनष्टीति निघृष्णः । गुणाभावः । खुरं
वा । रेषति हिनस्तीति रेष्वा हिंसको । लषति कामयतेऽसौ लष्वः । नर्त्तको वा ।
शितेऽसौ शिवः । धातोर्ङ्गत्वम् । शिव ईश्वरः शिवं भद्रं सुखमुदकं च । शिवा
हरीतको पद्यन्ते गच्छन्त्यत्रेति पङ्कः । भूलोको वा । प्रजह्वाति त्यजति स प्रह्वः ।
नस्त्री वा । अकारलोपो निपातनम् । ईषते हिनस्त्यज्ञानमिति, ईष्वः । आचार्यो
वा । अतन्त्र इति किम् सत्ता, सारक इत्यादिस्त्रेषु पठिताः सर्वादिशब्दा यौगिका
माभूवन् । बाहुलकात् । ऋसति शब्दयति ऋस्वः । वामन एकमात्रो वर्णो वा ॥

(१५४) शिवादयो वन्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शितेऽसौ शिवा । लिङ्गाकृतिर्वा ।
यजतीति यज्वः । यजमानो वा । जकारस्य हकारः जयति यया सा जिह्वा । इन्द्रियं
वा । धातोर्ङ्गत्वम् । निगलति यया सा ग्रीवा । शरीराङ्गं वा । धातोर्ग्रिभावः ।
आप्नोति यया सा अप्वा । कण्ठस्थानं वा । मीनाति हिनस्तीति मीवः । उदर-
कृमिर्वा ॥

(१५५) किरति विक्षिपति चित्तमिति कर्वः । कामो वा । गिरतीति गर्वः ।
अहङ्कारो वा । शणाति दुःखमिति शर्वः परमेश्वरः सुखं वा । दृणाति विदारयति
प्राणिन इति दर्वः हिंसको जनो वा ॥

कनिन् युवृषितक्षिरानिधन्विद्युप्रतिदिवः ॥ १५६ ॥ युवा ।
वृषा । तक्षा । राजा धन्वा । द्युवा । प्रतिदिवा ॥ १५६ ॥

सप्यशूभ्यां तुट् च ॥ १५७ ॥ सप्त । अष्ट ॥ १५७ ॥

नञि जहातेः ॥ १५८ ॥ अहः ॥ १५८ ॥

श्वनुक्षन्पूषन्क्षीहन्क्लेदन्स्नेहन्मज्जन्यमन्विश्वप्सन्परि-
ज्वन्मातरिश्वन्मधवन्निति ॥ १५९ ॥ श्वा । उक्षा । पूषा । क्षीहा ।
क्लेदा । स्नेहा । मूर्द्धा । मज्जा । अर्यमा । विश्वप्सा । परिज्वा ।
मातरिश्वा । मधवा ॥ १५९ ॥

इत्युणादिषु प्रथमः पादः ॥ १ ॥

(१५६) यौति मिश्रयत्यमिश्रयति वा स युवा मध्यावस्थस्तरुणो जनो वा ।
वर्षतीति वृषा सूर्यो वा । तक्षति तनूकरोति स तक्षा वर्धकिर्वा । राजते प्राप्नो
भवतीति राजा भूपतिश्चन्द्रमा वा । धन्वति गच्छतीति धन्वा । बाणक्षेपणं वा ।
द्योत्यभिगच्छतीति द्युवा । सूर्यो वा । प्रतिदीव्यन्ति यस्मिन् स प्रतिदिवा । दिवसो
वा बहुलवचनात् केवलादपि दिवधातोः कनिन् तेन । दिवा दिवानौ । इत्याद्यपि
सिद्धम् । दशतीति दशन् । संख्याविशेषो वा । नौतीति नवन् संख्या वा । बाहुल-
काद् गुणः ॥

(१५७) सपति समवेतीति सप्तन् संख्याभेदो वा । अशनुते व्याप्नोतीत्यष्टन् ।
संख्या वा बाहुलकात् पञ्चति व्यक्तीकरोतीति पञ्चन् संख्यावाचको वा ॥

(१५८) जहाति त्यजति पृथक्करोत्यन्धकारमित्यहः दिनम् ।

(१५९) श्वनादयस्त्रयोदश शब्दाः कनिन्ता निपात्यन्ते । श्वयति गच्छति
वर्धतेऽसौ श्वा । कुकुरो वा । स्त्रियां ङीष् । शनो । उक्षति सिञ्चतीति, उक्षा वलीवर्दो
वा । पूषति वर्धतेऽनौ पूषा । सूर्यो वायुर्वा । प्लिह्यते प्राप्यतेऽन्तरिति प्लीहा । कुक्षि
व्याधिर्वा । धातोरुपधादौर्धत्वम् । क्लिद्यत्यार्द्राभवतीति क्लेदा चन्द्रमा वा । धातोर्गुणः ।
स्निहयति प्रीतिं करोतीति स्नेहा । व्याधिर्वा । धातोर्गुणः । मूर्ध्वति वर्धनातिं स
मूर्द्धा शिरो वा । उकारस्य दीर्घो वकारस्य धकारश्च । मज्जति शुन्यतीति मज्जा
अस्थिसारो वा । अर्यं स्वामिनं मिमीते मन्यतेजानातीति, अर्यमा । आदिभ्यो वा ।
आकारलोपः । विश्वं पसाति भक्षयतीति विश्वप्सा अग्निर्वा । परितो जवति

कृद्भ्यामेणुः ॥ १ करेणुः । हरेणुः ॥ १ ॥

हनिकुषिनौरमिकाशिभ्यः क्थन् ॥ २ ॥ हाथः । कुष्ठः ।
नीथः । रथः । काष्ठम् ॥ २ ॥

अवे भृञः ॥ ३ ॥ अवभृथः ॥ ३ ॥

उषिकुषिगार्त्तिभ्यस्त्वन् ॥ ४ ॥ ओष्ठः । कोष्ठः । गाथा । अर्थः ॥ ४ ॥

वेगवान् भवतीति परिज्वा । चन्द्रमाः । जु इति सौत्रो धातुस्तस्य यणादेशः मातरि
अन्तरिक्षे श्रयति गच्छति वर्द्धते वा, अथ वा मातरि श्रसिति जीवयति शेते वा,
स मातरिश्वा बायुर्वा । मह्यते पूज्यतेऽसौ मघवा सूर्यो वा । महधातोर्हकारस्य
घत्वमबुगागमश्च । मघवदिति तकारान्तोऽप्ययं शब्दो दृश्यते । तच्च 'मघ' धनमस्या-
स्तीति मघवान् मघवन्ती । मघवन्तः । इति मतुवन्तः । कनिनन्तसु । मघवा ।
मघवानौ । मघवानः । मघवन् । मघवानम् । मघवानौ । मघोनः । अस्मिन् सूत्रे
इति शब्दः प्रकारार्थः । एवंविधा अन्येऽपि कनिनन्ता शब्दा यथाप्रयोगं साध्याः ।
पादसमाप्तार्थो वेति शब्दः ॥

इत्युणादित्याख्यायां वैदिकलौकिककोषे प्रथमः पादः ॥ १ ॥

—:—

(१) करोतीति करेणुः हस्ती हस्तिनी वा । हरति स हरेणुः । गन्धद्रव्यं
कलापो वा । मटर इति प्रसिद्धः ॥

(२) यो हन्यते येन वा स हथः । दुःखितः शस्त्रविशेषो वा । कुणाति निरन्तरं
कर्षतीति कुष्ठम् । व्याधिभेदः । कूट इत्याख्यौषधिर्वा । नीयते स नीथः । नयनं वा
शोभनो नीथोऽस्यास्तीति सुनीथी धर्मशीलः । रमते यस्मिन् येन वा स रथः । यानं
शरीरं पादो वेतसो वा । काशते दीप्यते तत्काष्ठम् । इन्धनं स्थानं कालमानं वा ।
काष्ठा दिक्, दारु हरिद्रा वा ॥

(३) क्थन् । अव विभर्त्तीति, अवभृथः । पक्षिरेदो यज्ञान्तस्नानं वा ।

(४) ओषति यो दहति येन वा स ओष्ठः । सुखावयवो वा । कुणाति निर-
न्तरं कर्षति स कोष्ठः । कोष्ठं कुचिः कुशूलमन्तर्गृहं वा । गीयते या सा गाथा
वाग्भेदः श्लोको वा । अर्थते प्राप्यतेऽसावर्थः । शब्दानां वाच्यो धनं कारणं वस्तु प्रयो-
जनं निवृत्तिर्विषयो वा । बाहुलकात् श्यति तनूकरोतीति शोथः । रोगविशेषो
वा । शोथनूकरण इत्यस्यात्वनिषेधः ॥

सर्त्तेर्णित् ॥ ५ ॥ सार्थः ॥ ५ ॥

जृष्टज्भ्यामूथन् ॥ ६ ॥ जरुथम् । वरुथः ॥ ६ ॥

पातृतुदिवचिरिचिसिचिभ्यस्यक् ॥ ७ ॥ पीथः । तीर्थम् ।
तुथः । उक्थम् । रिक्थम् । सिक्थम् ॥ ७ ॥

अर्त्तेर्निरि ॥ ८ ॥ निर्ऋथः ॥ ८ ॥

निशीथगोपीथावगथाः ॥ ९ ॥

गञ्जोदि ॥ १० ॥ उङ्गीथः ॥ १० ॥

समीणः ॥ ११ ॥ समिथः ॥ ११ ॥

(५) सरति गच्छति स सार्थः समूही वा थन्प्रत्ययस्य णित्वाद् वृद्धिः ॥

(६) जीर्यति वयोहीनो भवति स जरुथः मांसं वा । वृणोति येन स्वीकरोति
स वरुथः । लोहेन रथावरणं वा ॥

(७) यः पिबति यं वा स पीथः । सूर्यो घृतं वा । तरन्ति येन यत्र वा तत्तीर्थम् ।
गुरुयज्ञः पुरुषार्थो मंत्री जलाशयो वा । यो येन वा तुदति व्यर्था प्राप्नोति स तुत्यः ।
अग्निरञ्जनं तुत्या नीली ओषधिर्गोवृडवा वा । सूक्ष्मैला वा । छोटी इलाची इति
प्रसिद्धा । उच्यते परितो भाष्यते यत्तदुक्थम् । सामवेदो वा । य उक्थमधीते वेत्ति
वा स औक्थिकः । रिणक्ति पृथक् करोतीति यत्तद् रिक्थम् । दायाद्धनं सुवर्णं वा ।
बाहुलकात् । ऋचस्तुतावित्यस्मादपि थक् । ऋचति यदर्थं स्तौतीति ऋक्थम् ।
धनं वा । सिञ्चति प्रसादयति तत्सिक्थम् । मधूच्छिष्टम् । मीम इति प्रसिद्धम् ।
ओदनान्निसृतं मण्डं वा ॥

(८) निरन्तरमृच्छन्ति गच्छन्ति यस्मिन्नसौनिर्ऋथः । सामवेदो वा ॥

(९) नितरां शितेऽस्मिन् स निशीथः । अर्द्धरात्रः । सर्वरात्रो वा । गां वाणीं
पृथिवीं वा पातौति गोपीथः । पण्डितो राजा वा गावः पिबन्त्युदकमस्मिन् स
नद्याजलाशयो वा । अवगतेऽवगच्छते जानीतेऽसाववगाथः । प्राप्तःस्नानं वा ॥

(१०) उदुपपदाद्वाधातोस्यक् । य उङ्गीयत उच्चैः शब्दात्ते स उङ्गीथः । साम-
ध्वनिः प्रणवो वा ॥

(११) समेति सम्यक् प्राप्नोति पदार्थानिति समिथः । अग्निर्वा ॥

तिथ्यष्टगूथयूथप्रोथाः ॥ १२ ॥

स्फायितञ्चिवञ्चिशक्तिक्षिपिचुदिसृपिटपिटपिवन्दुन्दिप्रिव-
तिवृथ्यगिनीपदिसदिमुदिखिदिछिदिभिदिसन्दिचन्दिदहिदसि-
दक्षिवसिवाशिशीङ्हसिसिधिशुभिभ्यो रक् ॥ १३ ॥ स्फारम् ।
तक्रम् । वक्रः । शक्रः । क्षिप्रम् । चुद्रः । रुद्रः । तृप्रः । दृप्रः । वन्द्रः ।
उद्रः । श्वत्सम् । वृचः । वीरः । नौरम् । पद्रः । मद्रः । मुद्रा ।
खिद्रः । छिद्रम् । भिद्रम् । मन्द्रः । चन्द्रः । दक्रः । दस्रः । दभ्रः ।
वल्गः । वाय्रः । शौरः । ह्रस्वः । सिधः । शुभ्रम् ॥ १३ ॥

(१२) तिथादथस्थक्प्रत्ययान्ता निपाताः । तेजते सञ्जतेऽसौ तिथः । अग्निः
कामो वा । पर्षति सिञ्चति यो येन वा तत्पृष्ठम् । शरीरस्य पञ्चाङ्गागः स्तोत्रं वा ।
यो येन वा गवतेऽव्यक्तयन्त्रं करोति तन्नूथम् । अपानमार्गः पुरीषं वा । यौति
मिथयत्यभिन्वयति वा स यूथः । समुदायो वा । यः प्रवर्तते गच्छति येन वा स प्रोथः ।
तुरङ्गनासिका । प्रस्थितः पुरुषो हवभेदः प्रियमुदकमन्त्रं स्तोत्रमन्त्रं । प्रोथ उच्यते ॥

(१३) यः स्फायते वर्धतेऽसौ स्फारः । सुवर्णादेर्विकारो बुद्बुदो वा । वलि रेफे
यलोपः । तनक्ति संकीचयतीति तक्रम् । मथितं दधि वा । वञ्चति प्रलभ्यते स वक्रः ।
कुटिलः । क्रूरो वा । शक्नोति यः स शक्रः । समर्थः कुटजो वृक्षविशेषो वा । क्षिप्यते
प्रेर्यते तत् क्षिप्रम् । शीघ्रं वा । जुनन्ति संपिनष्टि यः स चुद्रः । अधमः क्रूरः
क्षपणो वा । अल्पे वाच्यलिङ्गः । चुद्रा वेश्या । कण्ट कारिका (भटकटाई) तथा
मधुमक्षिका च । सर्पति गच्छतीति सृप्रः । चन्द्रमा वा यस्तृप्यति येन वा स तृप्रः ।
पुरोडाशो वा । दृप्यति हृष्यति मुह्यति वा स दृप्रः । बलवान् वा । दन्दतेऽभिवदति
स्तौति वा स वन्द्रः सत्कर्त्ता वा । उनन्ति क्षिप्यति स उद्रः । जलचरो वा । सम्य-
गुनन्तीति समुद्रः । अनदितामिति नत्रोपः । श्वेतते वर्णविशिष्टो भवतीति श्वत्सम् ।
कुठभेदो वा दर्शते सदेवाऽसौ हवः । मेघः । शत्रुसमः । पर्वतश्चक्रं वा । अजति
गच्छति शत्रून् वा प्रक्षिपति स वीरः । सुभटः श्रेष्ठश्चतुष्पथं वा । वीरा क्षीरका-
कालो, पतिपुत्रवती स्त्री मदिरा मधुपर्णिकौषधिर्वा नयति शरीरमिति नौरम् ।
जलम् वा । पचन्ति गच्छन्त्यस्मिन् वा स पद्रः । ग्रामः संवेगः स्थानं वा । मायतीति
मद्रः । हर्षो देवभेदो वा । मोहन्ते हृष्यन्ति यथा सा मुद्रा यन्त्रिता सुवर्णादिधातु-
मया वा । यः खिद्यते येन वा दीनो भवतीति स खिद्रः । रोगो दारिद्र्यो वा ।
छिद्यते यस्तच्छिद्रम् । विवरं वा । भिनन्ति येन तदभिद्रम् । वज्रो वा । मन्दते

चक्रिरस्योरुञ्चोपधायाः ॥ १४ ॥ चुक्रम् । रुञ्चः । १४ ॥

वौ कसीः ॥ १५ ॥ विकसः । १५ ॥

अमितस्योर्दोर्धश्च ॥ १६ ॥ आम्नम् । ताम्नम् । १६ ॥

निन्देर्नलोपश्च ॥ १७ ॥ निद्रा । १७ ॥

अर्देर्दोर्धश्च ॥ १८ ॥ आर्द्रम् । १८ ॥

शुचेर्दश्च ॥ १९ ॥ शूद्रः । १९ ॥

स्त्रीतीति मन्द्रः गभीरध्वनिर्वा । चन्दति हर्षयति दीपयति वा स चन्द्रः कर्पूर-
रश्मन्द्रमा वा दहति भस्मीकरोतीति दहः दावाग्निर्वा । दस्यति रोगानुपचयतीति
दस्रः । वैद्यद्यौरो वा यो दम्नोति दम्नं करोति स दम्नः । जुदो जनः समुद्रो वा ।
वसतीति, उस्रः । रश्मिर्वा । उखा गौः । वाश्यते शब्दयतीति वाश्रम् । पुरीषं
दिवसो मन्दिरं चतुष्पथं वा । शिरेऽसौ शीरः । महासर्पो वा । हसतीति
हस्रः । मूर्खो वा । मेधति गच्छति सिध्यति वा स सिद्धः । साधुर्वचजातिर्वा ।
कुत्सिताः सिद्धा वृक्षाः सिद्धकास्तासां वनं सिद्धकावणम् । वनं पुरगामिथकासि-
धकेतिसूत्रेण एत्वम् शोभते दीप्यते तत् शुभ्रम् रुचिरं शुक्लं पाण्डुरं वा । बाहुलकान्
मेशति शब्दयतीति मिश्रः संयोगो वा । पुण्डति खण्डयतीति पुण्ड्रः । दुष्टो वा ।
सिनोति बध्नाति मांसरुधिरादिकमिति सिरा । नाडी वा । मुस्यति खण्डयतीति
मुखम् । नेत्रोदकं वा । अश्रयतीति, अश्रम् । रुधिरम् वा । अश्रम् पिवतीति,
अश्रपो दंशः ॥

(१४) चकते तृप्यति प्रतिहन्यते वा । स चुक्रः । अश्रमस्तवेतसमित्वादि ।
रमन्तेऽस्मिन् स रुञ्चः । अरुणः शोभनी वा ॥

(१५) विकसति विशेषतया गच्छतीति विकुस्रः । चन्द्रमा वा कस धातोरुप-
धाया उत्त्वम् ॥

(१६) अभ्यते सम्भज्यते मेव्यते तदस्त्रम् । चूतो वा । ताम्यति क्राङ्ग्यतीति ।
ताम्नम् । धातुभेदो रक्तवर्णी वा ॥

(१७) या निन्दति यया वा सा निद्रा शयनं वा ॥

(१८) आर्दति गच्छति याचते वा तत्, आर्द्रम् । सरसद्रव्यमार्दानक्षत्रं वा ॥

(१९) दोर्धश्चानुवर्त्तते । शोचतीति शूद्रः सेवको वा । पुंयोगे शूद्रस्य स्त्री शूद्री
शूद्रा तज्जातिर्वा ॥

दुरीणो लोपश्च ॥ २० ॥ दूरम् । २० ॥

कृतेष्छः क्रू च ॥ २१ ॥ कृच्छ्रम् । क्रूरः । २१ ॥

रोदेर्णिलुक् च ॥ २२ ॥ रुद्रः । २२ ॥

जोरी च ॥ २३ ॥ जीरः । २३ ॥

सुसूधाज्गृधिम्यः क्रान् ॥ २४ ॥ सुरः । सूरः । धीरः । गृध्रः ॥ २४ ॥

शुसिचिमौनां दीर्घश्च ॥ २५ ॥ शूरः । सौरः । चीरम् । मीरः ॥ २५ ॥

(२०) दुरूपपदादिण्धातोर्क् धातोश्च लोपः दुःखेनेयते प्राप्यते तद्दूरम् । विप्रकृष्टं वा ॥

(२१) कृतधातोर्न्यस्य छः सर्वस्य च क्रू इत्येतावादेशौ रक् च । कृन्तति छिन-
त्तीति कृच्छ्रं क्रूरश्च कठिनं दुःखं खलोवा ॥

(२२) पापिनो रोदयतीति रुद्रः । ईश्वरः प्राणादिदश रुद्रा जीवो वा । बाहु-
लकादन्यत्रापि धात्वन्तरे सञ्जाकृन्दसोः सामान्यप्रत्ययादौ च णेलुक् पाशं बन्धनं
धारयतीति पाशधरः । शूलधरः । चक्रधरः । वज्रधरः । शक्तिधरो वा कुमारः ।
उदकधरो मेघः । दण्डधरो राजा । अत्र सर्वत्राचि प्रत्यये धृधातोः परस्य णेलुक् ।
पर्णानि शोषयति मोचयति रोहयति वा स पर्णशृट् । पर्णमुट् । पर्णरुट् । इति
ख्यन्तात् शुषधातोः क्तिप् णेलुक् । जशत्वकुत्वादिकार्यम् । वान्ति पर्णशुषो वाता
वान्ति पर्णमुचोऽपरे । ततः पर्णरुहो वान्ति ततो देवः प्रवर्षति ॥ १ ॥

(२३) जुधातोर्कि प्रत्यय ईकारादेशः । जवति सूक्ष्मो भवतीति जीरः । अणुः
खड्गो वणिग्द्रव्यं वा । महाभाष्यकारसंमत्या, रकि ज्यः सम्प्रसारणम् । भा० १।१।४।
उयावयोहानावित्यस्य रकि प्रत्यये सम्प्रसारणम् । जिनात्यवस्थां जहातीति जीरः ।
तथा महाभाष्यकारसंमत्या जीवधातोर्दानुक् । जीवति प्राणान् धारयतीति
जीरदानुः । वैदिकं रूपमेतत् । अत्र च जीवधातोर्धलि वलोपः । जठ्निबन्धश्च बाहु-
लकादेव । इत्यादि ॥

(२४) सुनोति सवति उत्पादयत्यैश्वर्यवान् वा भवतीति सुरः । देवसंज्ञो
विद्वान् स्त्रियां सुरा मयं वा । सूयते वा सुवति प्राणिनः समर्थयतीति सूरः । सूर्यो
वा दधाति सर्वान् पोषयति वा स धीरः पण्डितो वा । गृध्र इत्यभिधाङ्चतीति
गृध्रः । पक्षिविशेषो वा ॥

(२५) शु इति सौत्रो धातुः । श्रवति गच्छतीति शूरः । विक्रमणशीलः पुरुषो
वा । मिनोति वधातीति सौरः । हलं वा । चिनोतीति चीरम् । वल्कलं वा । मि-
नोति प्रक्षिपतीति मीरः । समुद्रो वा ॥

वा विन्धेः ॥ २६ ॥ वीधम् ॥ २६ ॥

वृधिवपिभ्यां रन् ॥ २७ ॥ वर्धम् । वप्रः ॥ २७ ॥

ऋज्जेन्द्राग्रवज्रविप्रकुवचुवचुरखुरभद्रोग्रभेरभेलशुक्रशुक्तगौ-
रवनरेरामालाः ॥ २८ ॥

समि कस उकन् ॥ २९ ॥ संकसुकः ॥ २९ ॥

(२६) विशेषेण्यधते प्रदीप्यते तद्वीधम् । स्वभावशुद्धः ॥

(२७) वर्धते तद्वर्धम् । चर्म वा । वपति बीजं क्षिनप्ति वा स वप्रः । पिता
केदारः प्राकारो रोधो वा ॥

(२८) ऋज्जाद्येकोनविंशतिः शब्दा निपात्यन्ते । अर्जति गच्छति तिष्ठति वा
स ऋज्जः । नायको वा । गुणाभावः । इन्दति परमेश्वर्यवान् भवतीति इन्द्रः । सम-
र्थोऽन्तराऽऽत्मादित्यो योगो वा । अङ्गति गच्छतीति अग्रम् । प्रधानमुपरिभागे
वा । वजति प्राप्नोति प्राप्यते वा स वज्रः । हीरकं शास्त्रं वा वपति धर्ममिति विप्रः ।
मेधावी वा । कुम्बत्याच्छादयतीति कुम्भम् । अरण्यं वा । लुम्बति यो येन वा
तच्चुम्भम् । मुखं वा । अन्नोभयतेदितोऽपि नलोपः । यः चरति विलिखति येन
वा । क्षिनप्तीति स चुरः । छेदनद्रव्यं कोकिलान्नं गोचुरो लोमच्छेदकं नापितशस्त्रं
वा । खुरति क्षिनप्ति यो येन वा स खुरः शफं वा । अन्नोभयत्र रकि रेफलोपो
गुणाऽभावश्च । भन्दते कल्याणं करोतीति भद्रम् कल्याणम् । नकारलोपः । उच्यति
समवैतीति, उग्रः । महेश्वर उल्काटः चक्रं वा । विभेत्यस्मात् भेरः । भेरी दुग्दुभिर्वा
गौरादित्वान् ङीष् । पक्षे भेरशब्दस्य लत्वम् । भेलो जलतरणद्रव्यं हृदकायः कातरो
वा । शुच्यते पवित्रोभवतीति शुक्लम् । ब्रह्माग्निराषाढः प्राणिबीजं नेत्ररोगो वा ।
अस्यैव व्यवस्थितविभाषया पक्षे लत्वम् शुक्लः श्वेतं रजतं वा । गवतेऽव्यक्तं शब्दय-
तीति गौरः । श्वेतो रक्तवर्णो वा । गौरी स्त्री । ङीष् । वनति सम्भजतीति वनः
विभागी । एति गच्छति यथा सा इरा । उदकं मद्यं वा । इरावान् समुद्रः ऐरावती
नदी । इरया मद्येन माद्यतीति, इरस्मदः । माति मानहेतुर्भवतीति माला ।
पुष्पादिस्त्रक् । मालं चेत्रम् । मालो जनः । बाहुलकात् । तितिक्षते येन तत्क्षीव्रम् ।
तीक्ष्णं वा । जस्य वो दीर्घत्वं च धातोः ॥

(२९) सम्यक् कसति गच्छतीति सङ्कसुकः संशयमापन्नश्चलो दुर्जनो वा ।

पचिनशोर्णुकन्कलुसौ च ॥ ३० ॥ पाकुक्कः । नंशुकः ॥ ३० ॥

भियः क्कुक्कन् ॥ ३१ ॥ भौरुकः ॥ ३१ ॥

कुन् शिल्पिसंज्ञयोरपूर्वस्यापि ॥ ३२ ॥ रजकः । इक्षुकुट्टकः ।
तत्तकः । ध्रुवकः । अभ्रकम् । चरकः । चषकः । शुनकः । भषकः ॥ ३२ ॥

रमेरश्च लो वा ॥ ३३ ॥ रमकः । लमकः । ३३ ॥

जहातेह च ॥ ३४ ॥ जहकः । ३४ ॥

धमो धम च ॥ ३५ ॥ धमकः । ३५ ॥

(३०) पचनशधातुभ्यां णुकन् प्रत्ययः पचधातोश्चस्य कः । नशधातोर्नुम् च पचतीति पाकुक्कः सूपकारो वा । नश्यतीति नंशुकः । अणुवाचको वा ॥

(३१) यो विभेति यस्माद्वा स भौरुकः कातरो वा ॥

(३२) शिल्पिनि संज्ञायां च गम्यमानायां सीपपदादनुपपदाद्वा सामान्याद्वातोः कुन् भवति । रजतीति रजकः । वस्त्रशोधको वा । इक्षून् कुट्टयतीति, इक्षुकुट्टकः गौडिकस्येयं संज्ञा । तत्तति तनूकरोतीति तत्तको वर्धकः शिल्पी । ध्रुवको गर्भमोचको जनः संज्ञा वा । अभ्रति गच्छति येन तदभ्रकमौषधं संज्ञा वा । चरतीति चरको वैद्यकशास्त्रं गन्ता वा । चषति भक्षयत्यस्मिन्निति चषकं पानपात्रं शालं वा मत्स्यभेदः प्राकारो वा । शालान् भक्षन्ति यस्यां सा शालभक्षिका क्रीडा । काष्ठं पुचयति यस्यां सा काष्ठपुचिका क्रीडा । पुष्पैः प्रचायन्ते पूजयन्ति यस्यां सा पुष्पप्रचायिका क्रीडा वा । शुनति गच्छतीति शुनकः श्वा । भषति भक्षयतीति भषकः श्वा वा । आमलते समन्ताद्धारयतीत्यामलको वृक्षभेदः । गौरादित्वान् ङीष् । आमलकी । कलामंशं पाति रक्षतीति कलापकश्चन्द्रमा वा । मल्लते गन्धं धरतीति मल्लिका पुष्पजातिर्वा । कन्यते दीप्यते काम्यतेऽभीष्टस्यते वा तत्कनकं सुवर्णं वा । कट्याहणोत्पङ्गमिति कटकमामूषणं वा । कडा इति प्रसिद्धं । शिखरं राजधानो नितम्बश्च । लटति बाल इव भवतीति लटको दुर्जनो वा । इत्यादिषु शिल्पिसंज्ञयोः कुन् बोध्यः ॥

(३३) रमतेऽसौ रमकः । रमणशीलो वा । लमकोऽपि स एव ॥

(३४) जहाति त्यजति हानिं करोतीति जहकः त्यागी कालो वा ॥

(३५) धमति शब्दं करोति अग्निं वा संयुनक्ति स धमकः कर्मकारो वा ॥

हनो बध च ॥ ३६ ॥ बधकः । ३६ ॥

बहुलमन्यत्रापि ॥ ३७ ॥ कुहकः । कृतकम् । भिदकः । छिद-
कम् । रुचकम् । लङ्गकः । उज्झकः । ३७ ॥

कषेवृ द्विशोदीचाम् ॥ ३८ ॥ कार्षकः । कृषकः । ३८ ॥

उदकञ्च ॥ ३९ ॥

वृश्चिकृषोः किकन् ॥ ४० ॥ वृश्चिकः । कृषिकः । ४० ॥

प्राडि पणिकषः ॥ ४१ ॥ प्रापणिका । प्राकषिकः । ४१ ॥

मुषेदीर्घश्च ॥ ४२ ॥ मूषिकः । ४२ ॥

स्यमेः सम्प्रसारणं च ॥ ४३ ॥ सौमिकः । ४३ ॥

क्रिय इकन् ॥ ४४ ॥ क्रयिकः । ४४ ॥

(३६) हन्तीति बधको हिंसकः ॥

(३७) बहुलवचनादन्यत्रापि कुन् । कोहयति विस्मयं कारयतीति कुहकः ।
दाम्भिको नीहारी वा कन्तति छिनत्तीति कृतकं मिथ्या वा भिनत्ति येन स भिदकः
खड्गो वा । छिनत्ति येन तच्छिदकं वज्रो वा । रोचतेऽनेन तद्रुचकं मातुलुङ्गकं
वा । विजोरा मौवू इति प्रसिद्धं वा । लङ्गति गच्छतीति लङ्गकः । प्रियो वा ।
उज्झत्युत्तृजतीति, उज्झकः । योगी मेघो वा ॥

(३८) कषतीति कार्षकः कृषको वा कृषीवलः ॥

(३९) उनत्ति क्लेदयतीत्युदकं जलं वा ॥

(४०) वृश्चति छिनत्तीति वृश्चिकः विषी जीवविशेषः शूककीटो वा । केचुप्रा
इति प्रसिद्धः । कृषति येन स कृषकः फाली वा ॥

(४१) प्रकर्षेण समन्तात्प्रणायत्यसौ प्रापणिकः । पण्यविक्रयी वा प्राकषति
छिनत्तीति प्राकषिकः पारदारिको वा ॥

(४२) मुष्णाति पदार्थानिति मूषिकः । आखुर्वा स्त्रियां मूषिका । अजादित्वाष्टाप् ॥

(४३) स्यमति शब्दयतीति सौमिकः । वृक्षभेदो वा ॥

(४४) क्रीणाति द्रव्येण पदार्थान्तरं ददाति गृह्णाति वा स क्रयिकः क्रेता ।
विक्रयिको विक्रेता ॥

आङि पणिपनिपतिखनिभ्यः ॥ ४५ ॥ आपणिकः । आप-
निकः । आपतिकः । आखनिकः । ४५ ॥

श्यास्याह्रजविभ्य इनच् ॥ ४६ ॥ स्थेनः । स्थेनः । हरिणः ।
अविनः ॥ ४६ ॥

वृजेः किच्च ॥ ४७ ॥ वृजिनम् ॥ ४७ ॥

अजैरज च ॥ ४८ ॥ अजिनम् ॥ ४८ ॥

बहुलमन्यत्रापि ॥ ४९ ॥

द्रुदक्षिभ्यामिनन् ॥ ५० ॥ द्रविणम् । दक्षिणः । दक्षिणा ॥

(४५) समन्तात्पणायति व्यवहरति स आपणिकः । वैश्यो वा । आपणेन व्यवहरतीति तद्धिते ठकि सिद्धे नित्स्वराद्यं वचनम् । आपनायतीति, आपनिकः । म्लेच्छजातिर्वा । समन्तात् पततीत्यापतिकः । स्थेनो वा समन्तात् खनतीत्याखनिकः । मूषिको वराहो वा ॥

(४६) श्यायति गच्छतीति स्थेनः । पक्षिभेदो वा स्थायति शब्दयति संघातयतीति स स्थेनः । चैरो वा । हरतीति हरिणः । मृगः पाण्डुवर्णो वा । स्त्रियां हरिणी सुन्दरी कन्दोभेदो हरितवर्णा वा । अवति रक्षणादिकं करोतीति, अविनः । अध्वर्युर्वा ॥

(४७) इनच् कित् । वृक्तेवर्जयतीति वृजिनः केशः पापं वक्रो या ॥

(४८) अजति गच्छति क्षिपति वा तत् अजिनम् । चर्म वा । अजादेशो वीभाषनिवृत्त्यर्थः

(४९) कठति कृच्छ्रेण जीवतीति कठिनम् । कठोरं वा । कुण्डते दहतीति कुण्डिनः । ऋषिर्वा । यस्यापलं कौण्डिन्यः वर्धते प्रधानो भवतीति बर्हिणः । मयूरो वा । फलति विशीर्णो भवतीति फलिनः । फलवान् वृक्षो वा । नलति गन्धयुक्तो भवतीति नलिनम् । कमलं वा । मस्यति परिणमतीति मसिनम् । सुपिष्टं वा । मलते धरतीति मलिनः । मलयुक्तो वा । द्रुहयति जिघांसतीति द्रुहिणः । वृद्धा वा । अन्धकारं दाल्यवखण्डयतीति दिनम् । दिवसं वा । इनचः कित्वादाकारलोपः ॥

(५०) दवति गच्छति द्रूयते प्राप्यते वा तद् द्रव्यं सुवर्णं पराक्रमो वा । दक्षते वर्धते शीघ्रकारौ भवति वा स दक्षिणः सरलो वामभागः परतंतोऽनुवर्त्तनं च स्त्रियां दक्षिणादानं प्रतिष्ठा वा ॥

अर्त्तः किदिच्च ॥ ५१ ॥ इरिणम् ॥ ५१ ॥

वेपितुह्योर्ऋस्वश्च ॥ ५२ ॥ विपिनम् । तुहिनम् ॥ ५२ ॥

तलिपुलिभ्यां च ॥ ५३ ॥ तलिनम् । पुलिनम् ॥ ५३ ॥

गर्वैरत उच्च ॥ ५४ ॥ गुर्विणी ॥ ५४ ॥

रुहेश्च ॥ ५५ ॥ रोहिणः ॥ ५५ ॥

महेरिनण् च ॥ ५६ ॥ माहिनम् । महिनम् ॥ ५६ ॥

क्विप् वचिप्रच्छिश्चिषुद्रुप्रुच्वां दीर्घोऽसंप्रसारणं च ॥ ५७ ॥

वाक् । प्राट् । श्रौः । स्रूः । द्रूः । कटप्रूः । जूः ॥ ५७ ॥

आप्नोतेर्ऋस्वश्च ॥ ५८ ॥ आपः ॥ ५८ ॥

(५१) ऋच्छन्ति गच्छन्ति यत्र यस्माद्वा जनास्तत्, इरिणम् । शून्यमूषरभूमिर्वा

(५२) यो वेपते कम्पते यत्र वा तद्विपिनम् । गहनं वा । तोहति गच्छति याचते वा । तप्तुहिनं । हिमं वा । गुणे कृते ह्रस्वः ॥

(५३) तालयति प्रतितिष्ठतीति तलिनम् । विरलं पृथग्भूतं स्वरूपं स्वच्छं वा । पोलयति महान् भवतीति पुलिनम् । जलसामीप्यं वा ॥

(५४) गर्वति प्राप्नोति गर्वयति मुंचति वा सा गुर्विणी । गर्भिणी वा ॥

(५५) रोहति वीजेन जायते स रोहिणः । चन्दनवृक्षो वा । जातिवाचकात् स्त्रियां ङीष् रोहिणी गौर्वा । प्रज्ञादित्वादण् रोहिणः ॥

(५६) महति मद्ध्यते पूज्यते वा तन्महिनम् । राज्यं वा । चादिनजनुवर्त्तते ॥

(५७) वक्ति शब्दानुच्चारयति यथा सा वाक् । पृच्छतीति प्राट् शब्दं पृच्छतीति शब्दप्राट् शिथो वा । शब्दप्राशौ । शब्दप्राशः । क्वोः शूडनुनासिके चेति कस्य शः । श्रयति श्रीयते वा सा श्रौः । ईश्वररचना शोभा वा । या स्वयति यस्या वा सा स्रूः यज्ञसाधनं वा । द्रूयते प्राप्यते दुःखमनया सा द्रूः । हिरण्यं वा । कटेन कटिभागेन प्रवर्ते गच्छतीति कटप्रूः । कामुको जनः कीटो वा । जवति शीघ्रं गच्छतीति जूः शशोऽश्वो वृषभ आकाशं विद्या वा । बाहुलकात् । प्रवर्षन्ति मेघा यस्यां सा प्राहट् । ऋतुः । हारयति संहणोति यथा सा हाः । हारौ । उदकेन श्रयति वर्धन्ते तत् उद-
श्वित् । तक्रं वा । ऋचन्ति सुवन्ति यथा सा ऋक् ॥

(५८) आप्रवन्ति शरीरमित्यापः । अस्य नित्यं बहुवचनत्वं स्त्रीत्वं च । अपः । अग्निः । अदुग्धः । इत्यादि ॥

परौ ब्रजेः षष्ठ्य पदान्ते ॥ ५६ ॥ परित्राट् ॥ ५६ ॥

जुवः श्लुवञ्च ॥ ६० ॥ जुहः ॥ ६० ॥

स्रुव कः ॥ ६१ ॥ स्रुवः ॥ ६१ ॥

चिक् च ॥ ६२ ॥ स्रुक् ॥ ६२ ॥

तनोतिरनश्च वः ॥ ६३ ॥ त्वक् ॥ ६३ ॥

ग्लान्नुदिभ्यां डौः ॥ ६४ ॥ ग्लौः । नौः ॥ ६४ ॥

चिरव्ययम् ॥ ६५ ॥

रातेडैः ॥ ६६ ॥ राः ॥

गमेडौः ॥ ६७ ॥ गौः ॥ ६७ ॥

(५६) क्षिप् । परितः सर्वतो ब्रजति स परित्राट् । परित्राजौ । परित्राजः संन्यासी वा ॥

(६०) जुहोति ददात्यन्ति वा यया सा जुहः । सुग्भेदो वा ॥

(६१) स्रवति घृतमस्मात् स स्रुवः । यज्ञसाधनं वा । बहुलवचनात् । ध्रुवति स्थिरं भवतीति ध्रुवम् । निश्चलं वा ॥

(६२) स्रु धातोश्चिक् प्रत्ययोऽपि भवति । घृतमस्याः स्रवति सा स्रुक् । यज्ञोचितद्रव्यं वा ॥

(६३) तनोति विस्तृता भवतीति त्वक् । त्वचौ । त्वचः । शरीरावरणं चर्मवस्त्रकलं वा ॥

(६४) ग्लायति हर्षचयं करोतीति ग्लौः । चन्द्रमाः वा । नुदति प्रेरयतीति नौः । जलतरणसाधनं वा ॥

(६५) अत्रस्थ एजन्तप्रत्ययान्तश्च्यन्त एवाव्ययसंज्ञो भवति । एतेन नियमेनोणादीनां व्युत्पन्नपक्षे क्त्वेजन्त इत्यनेनाच्यन्तानामव्ययसंज्ञा न भवति । अग्लौ ग्लौः संपद्यत इति ग्लौ करोति । ग्लौ भवति । ग्लौ स्यात् । नौ करोति । इत्यादि । ग्लौः । नौः । अत्र केवलानामव्ययसंज्ञाऽभावाद्भिभक्तिलुङ् न भवति ॥

(६६) राति ददाति रायते दीयते वा सा राः । रायौ । रायः । धनं सुवर्णं वा । च्विप्रत्यये रैकरोति । इत्यादि ॥

(६७) गच्छति यो यत्र यया वा सा गौः । पशुरिन्द्रियं सुखं किरणो वज्रं चन्द्रमा भूमिर्वाणी जलं वा । गौरिवाऽयोगमनं प्राप्तिर्वाऽस्येति गवयो गोसदृशो वनपशुविशेषः । स्त्री गवयी । गौरादित्वान् डौष् । च्विप्रत्यये गौ करोतीत्यादि । द्योतन्ते लोका अस्यां वा यया द्योतते सा द्यौः । अन्तरिक्षं वा । द्यावी । द्यावः । इत्यादि ॥

भ्रमेश्च डूः ॥ ६८ ॥ भ्रूः । अग्रेगूः ॥ ६८ ॥

दमेर्डोसिः ॥ ६९ ॥ दोः ॥ ६९ ॥

पणेः रिज्यादेश्च वः ॥ ७० ॥ वणिक् ॥ ७० ॥

वशः कित् ॥ ७१ ॥ उशिक् ॥ ७१ ॥

भूञ्ज उञ्ज ॥ ७२ ॥ भुरिक् ॥ ७२ ॥

जसिसंहोकरिन् ॥ ७३ ॥ जसुरिः । सहुरिः ॥ ७३ ॥

सुयुस्वृजो युच् ॥ ७४ ॥ सवनः । यवनः । रवणः । वरणः ॥ ७४ ॥

अशेरश्च् ॥ ७५ ॥ रशना ॥ ७५ ॥

उन्देर्नलोपश्च ॥ ७६ ॥ ओदनः ॥ ७६ ॥

गमेर्गश्च ॥ ७७ ॥ गगनम् ॥ ७७ ॥

(६८) चादृगमधातोर्डः । भ्रमति चलतीति भ्रूः । नेत्रयोरुपरि रेखा वा ।
अग्रे गच्छतीत्यग्रेगूः । सेवको वा ॥

(६९) दास्यत्युपशास्यति यो येन वा स दोः । दोषी । दोषः । बाहुर्वा ॥

(७०) पणायति व्यवहरतीति वणिक् । वणिजौ । वणिजः । वैश्यो वा । प्रज्ञा-
दित्वात् स्वार्थे ऽण् वाणिजः ॥

(७१) षष्टि यं कामयते यत्काम्यते वा स उशिक् । उशिजौ । उशिजः । अग्नि-
धृतं वा ॥

(७२) इजिः कित् । भरति सर्वं धरतीति भुरिक् । भूमिर्वा । भुरिजौ । भुरिजः ॥

(७३) जस्यति मुञ्चति जासयति हिनस्ति वेति जसुरिः । वज्रं वा । सहते
भारमिति सहुरिः । सूर्यो भूमिर्वा ॥

(७४) सवत्युत्पादयति सुनोति निस्सारयति रसान् वा स सवनः । चन्द्रमा
वा । यीति मिश्रयत्यमिश्रयति वा स यवनः । स्नेच्छमेदो वा । रीति शब्दयतीति
रवणः । कोकिलः पक्षी वा । वृणोति स्वीकरोतीति वरणः । उदकं हृच्छमेदो वा ॥

(७५) युच् धातोरशदेशश्च । अशनुते व्याप्नोतीति रशना । स्त्रियाः कटिभूषणं
वा । दन्त्यसकारवांसु रसना शब्दो नन्यादित्वाल्त्युप्रत्ययान्तः । रसयत्यास्त्रादयति
यया सा रसना जिह्वा । कल्ल्युटो बहुलमिति करणे ल्युः ॥

(७६) उनत्यार्द्राभवतीत्योदनः । भक्तं वा ॥

(७७) मस्य गः गच्छन्त्यस्मिन्निति गगनम् । आकाशं वा ॥

बहुलमन्यत्रापि ॥ ७८ ॥

रञ्जः क्युन् ॥ ७९ ॥ रजनम् ॥ ७९ ॥

भूधूध्वज्जिभ्यश्छन्दसि ॥ ८० ॥ भुवनम् । सुवनम् । निधुव-
नम् । भृज्जनम् ॥ ८० ॥

लृपृवृजिमन्दिनिधाजः क्युः ॥ ८१ ॥ किरणः । पुरणः । वृज-
नम् । मन्दनम् । निधनम् ॥ ८१ ॥

धृषेर्धिषच् संज्ञायाम् ॥ ८२ ॥ धिषणा ॥ ८२ ॥

(७८) अन्यधातुभ्योपि बहुलं युच् प्रत्ययो भवति । द्योततेऽसौ द्योतनः प्रदीपो
वा । स्यन्दते प्रस्रवति गच्छतीति स्यन्दनः । रथो वा । नयते प्राप्नोति रूपं येन
तद्रथनम् । नेत्रं वा । चन्दत्याह्लादयतीति चन्दनम् । सुगन्धिर्वृक्षो वा । रोचतेऽसौ
रोचना । गोरोचनमौषधं वा । अस्यति प्रक्षिपतीति, असनः । पीतवर्णः शालवृक्षो
वा । राजानमततीति, राजातनः । पुष्पं वा । शृणोत्यनया सा श्रवणा नक्षत्रं वा ।
एवमन्येऽपि यथाप्रयोग युच्प्रत्ययान्ताः शब्दाः साध्याः ॥

(७९) रजति वस्त्राण्यनेन तद्रजनम् । कुसुम्भं वा । स्त्रियां ङीष् । रजनी
हरिद्रा । ल्युट्प्रत्यये सति रञ्जनमित्येव स्वरभेदश्च भवति । बाहुलकात् । कल्प-
तेऽसौ कृपणः । लोभयुक्तो वा ॥

(८०) क्युन् । भवतीति भुवनम् । लोको वा । बहुलवचनाद् भाषायामपि
प्रयुज्यते । सूते सूयते वा स सुवनः । ईश्वरः सूर्यो वा । धूनीति कम्पयतीति
धुवनः । अग्निर्वा । निधुवनम् । रतिक्रीडा वा यद् यस्मिन् वा भृज्जति परिपक्वं
भवतीति भृज्जनम् । अन्नभर्जनकपालं वा ॥

(८१) किरति विक्षिपत्यन्धकारमिति किरणः । पिपर्सि पालयति पूरयति
वा स पुरणः । जलैः पूर्णो भवतीति समुद्रो वा । वृक्षे वर्जयतीति वृजनम् । अन्त-
रिक्षं बलं वा । यो येन वा मन्दते स्तौति स्वपिति कामयते वा तन् मन्दनम् ।
स्तोत्रं वा । नितरां दधाति यस्तन्निधनम् । मरणं वा । बाहुलकात् केवलादपि धनम् ॥

(८२) धृषोति प्रागल्भ्यं ददाति स धिषणः गुरुः । धिषणा बुद्धिर्वा । अत्र
संज्ञाग्रहणेन ज्ञायते । उणादयः सामान्यार्थं यौगिका भवन्तीति । संज्ञायास्तस्मिन्नर्थे
रूढत्वात् । यदि च प्रकृतिप्रत्ययविभागेन उणादिभ्यो यौगिकोऽर्थो न निस्सरेत्
तर्हि सर्व उणादिस्थाः शब्दाः संज्ञावाचका एव स्युः । पुनः संज्ञाग्रहणमनर्थकं स्यात्

हन्तेर्धुरच् ॥ ८३ ॥ घुरणः ॥ ८३ ॥

वर्त्तमाने षष्ठ् बृहन्महज्जगच्छटवच्च ॥ ८४ ॥

संश्चत्तृपदे हत् ॥ ८५ ॥

छन्दस्यसानच्शुजृभ्याम् ॥ ८६ ॥ शवसानः । जरसानः ॥ ८६ ॥

ऋञ्जिबृधिमन्दिसहिभ्यः कित् ॥ ८७ ॥ ऋञ्जसानः । बृध-
सानः । मन्दसानः । सहसानः ॥ ८७ ॥

(८३) हन्ति हननेन वा प्रादुर्भवति स घुरणः । शब्दो वा ॥

(८४) पृषदादयो वर्त्तमानार्थवाचका अतिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । शतृवच्चेषां
कार्यं भवतीति । पर्षति सिञ्चति हिनस्ति वा तत् पृषत् । मृगविशेषो विन्दुर्वा ।
पृषती । पृषन्ति । स्त्रियां पृषती । वर्हति वर्धतेऽसौ बृहत् । महत्यर्थं त्रिलिङ्गः ।
स्त्रियां बृहती छन्दोभेदो वा । महति पूजयति पूज्यते वा तन्महत् । महान् । महती
भावो महिमा । स्त्रियां ङीप् । महती । नारदस्य सप्ततंत्री वीणा वा । गच्छतीति
जगत् । धातोर्जगादेशः । संसारे नपुंसकं वायुर्वा जगत् पुंसि । जङ्गमवाचिनि
त्रिलिङ्गः । स्त्रियां जगती छन्दोभेदो जनी वा ॥

(८५) एतेऽप्यतिप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । संश्चयतेऽसौ संश्चत् कुहको वा ।
प्रत्ययस्य सुट् धातोरिकारलोपश्च । संश्चदिवाचरति संश्चायते धूमः । भृशादित्वात्-
क्यङ् । तृप्नोति प्रीणयतीति तृपत् । कृतं वा । विशेषेण हन्तीति वेहत् । विहन्ति
गर्भमिति गर्भोपघातिनी गौर्वा । वेरुपसर्गस्यैकारादेशो धातोश्च टिलोपः । पूर्वसू-
त्रात् पृथक् करणं शतृवद्भावनिवृत्त्यर्थम् । तेन वेहती । वेहतः । संश्चती । इत्यादि-
सिद्धम् ॥

(८६) शवन्ति गच्छन्त्यस्मिन् स शवसानः । मार्गो वा । जीर्यति वयसा हीनो
भवतीति जरसानः । वृद्धो जनो वा । बाहुलकाद् दृणाति तमो विदारयतीति दर-
सानः । प्रकाशो वा । तरयति येन स तरसानः । नौका वा । दृणोताति वरसानः ।
कृतदारो वा ॥

(८७) ऋञ्जत्योषध्यादिकं पाचयतीति, ऋञ्जसानः । मेघो वा । वर्धतेऽसौ
वृधसानः । पुरुषो वा । मन्दते सुत्यादिकं करोतीति मन्दसानः । जीवोऽग्निर्वा ।
सहतेऽसौ सहसानः । मयूरो यज्ञो वा ॥

अर्त्तेर्गुणः शुट् च ॥ ८८ ॥ अर्शसानः ॥ ८८ ॥

सम्यानच् स्तुवः ॥ ८९ ॥ संस्तवानः ॥ ८९ ॥

युधिवुधिवृशः किञ्च ॥ ९० ॥ युधानः । बुधानः । दृशानः ॥ ९० ॥

हुर्च्छः सनो लुक् क्लोपञ्च ॥ ९१ ॥ जुहुराणः ॥ ९१ ॥

श्वितेर्दश्च ॥ ९२ ॥ शिश्विदानः ॥ ९२ ॥

मुचियुधिभ्यां सन्वच्च ॥ ९३ ॥ मुमुचानः । युयुधानः ॥ ९३ ॥

तन्तृचौ शंसिञ्चदादिभ्यः संज्ञायां चानिटौ ॥ ९४ ॥ शंस्ता ।

शंस्तारौ । क्षत्ता । क्षत्तारौ ॥ ९४ ॥

नमृनेष्टृत्त्वं होतृपोतृभ्रातृजामातृमातृदुहितृ ॥ ९५ ॥

(८८) यं ऋच्छति प्राप्नोति सर्वान् स, अर्शसानः । अग्निर्वा । धातोर्गुणः प्रत्ययस्य शुङागमश्च ॥

(८९) सम्यक् स्तौतीति संस्तवानः । वाग्मी वा ॥

(९०) युध्यतेऽसौ युधानः । शत्रुर्वा । बुध्यते स बुधानः । आचार्यो वा । पश्यतीति दृशानः । लोकपालः सूर्यो वा । बाहुलकात् कल्पते समर्थो भवतीति कृपाणः खड्गो वा ॥ पाप्रयति स्थूलो भवतीति पाप्राणः । णित्वाद्दृष्टिः ॥

(९१) हुर्च्छति कुटिलो भवतीति जुहुराणः । चन्द्रमा वा ॥

(९२) सनो लुक् तकारस्य दकारः किदित्यनुवृत्तेर्गुणनिषेधः । श्वेततेऽसौ शिश्विदानः । पापकर्मा वा ॥

(९३) मुञ्चत्यसौ मुमुचानो मोचकः । युध्यतेऽसौ युयुधानो योद्धा ॥

(९४) शंस्यादिभ्यः क्षदादिभ्यश्च यथाक्रमं तन्तृचौ तौ चानिटौ । शंसति स्तौतीति शंस्ता स्तौता । नमृनेष्टजिति सूत्रे नमृप्रभृतेः पृथक् पांठादीणादिकयोस्तन्तृचोर्ग्रहणं न भवति । तेन शंस्तारौ । शंस्तरः इत्यादिषु दीर्घो न भवति शस्ति शिञ्चते धर्मादिकसिति शस्ता । पण्डितो वा । प्रशस्ता राजा । प्रशस्तारौ । प्रशस्तारः । परिगणनादीर्घः । क्षद संहताविति सौत्रोधातुः । क्षदति संहतोतीति क्षत्ता । सारथिर्हारपालो वैश्यायां शूद्राज्जातो वा । क्षुनक्ति संपिनष्टि येन स क्षोत्ता मुसलो वा । उन्नयति कार्याणीत्युन्नेता । ऋत्विम्वा । मन्यते जानात्यसौ मन्ता । विद्वान् । हन्तीति हन्ता चोरो वा । धाता । ईश्वरो वा । उपदेष्टा गुरुः । इत्यादि ॥

सावसेर्कृन् ॥ ६६ ॥ स्वसा ॥ ६६ ॥

यतेर्वृद्धिश्च ॥ ६७ ॥ याता ॥ ६७ ॥

नञि च नन्देः ॥ ६८ ॥ ननन्दा । ननान्दा ॥ ६८ ॥

दिवेर्क् ॥ ६९ ॥ देवा ॥ ६९ ॥

नयतेर्ङिच्च १०० ॥ ना ॥ १०० ॥

सव्येस्यश्छन्दसि ॥ १०१ ॥ सव्येष्ठा ॥ १०१ ॥

अत्तिसृधृधस्यस्यश्रवितृभ्योऽनिः ॥ १०२ ॥ अरणिः । सरणिः

धरणिः । धमनिः । अमनिः । अशनिः । अवनिः । तरणिः ॥ १०२ ॥

(६५) नप्त्रादयो दश लन्तजन्तानिपात्यन्ते । नपतीति नप्ता । पौत्री दीहित्री वा । नप्तुः पुत्रः प्रनप्ता स्यात् । नप्त्री पौत्री । नजः प्रकृतिभावः । नयतेः षुक् । नयतीति नेष्टा । ऋत्विग्वा । दीप्यतेऽसौ त्वष्टा । सूर्यो वा इकारस्याकारः । जु-
हीतीति होता यजमानो वा । व्यापकत्वेन सर्वं पुनातीति पोता विष्णुरीश्वरः ।
भ्राजते दीप्यतेऽसौ भ्राता । सोदर्यो वा । जकार लोपः । जायां कन्या माति मि-
नीति मिमीते मार्जयति वा । स जामाता दुहितुः पतिः । सृजधातोः सति रेफज-
कारलोपः । मानयति सत्करोतीति माता । उत्पादिका वा । स्वस्त्रादित्वाट्पनिषेधः
पाति रक्षतीति पिता । जनको वा । दोग्धि कार्याणि प्रपूरयतीति दुहिता पुत्री
वा । दुहितुरपत्यं दीहित्रः ॥

(६६) सुष्ठुस्यतीति स्वसा भगिनी वा ॥

(६७) यततेऽसौ याता । भ्रातृणां भार्याः परस्परं यातारो भवन्ति ॥

(६८) न नन्दति तुष्यतीति ननान्दा बाहुलकाद् हृदयभावे ननन्दा ।
पत्युर्भगिनी वा ॥

(६९) दीव्यति क्रीडादिकं करोतीति देवा । पत्युः कनीयान् भ्राता वा ॥

(१००) ऋप्रत्ययस्य डित्वाडिलोपः । कार्याणि नयतीति ना । नरो । नरः ।
वद्वक्त्रेण वधूर्वा ॥

(१०१) डित्वादालोपः । सव्ये वामभागे तिष्ठतीति सव्येष्ठा । सारथिर्वा
सप्तम्या अलुक् ॥

(१०२) ऋच्छति प्राप्नोति येन सं, अरणिः । अग्न्युत्पत्तये मधनी द्वे दासणी
वा । सरन्ति गच्छन्त्यस्मिन् स सरणिः । मार्गो वा । ख्यन्तात्सृधातीरनिः सारणिः

आङि शुषे सनश्छन्दसि ॥ १०३ ॥ आशुशुक्षणिः ॥ १०३ ॥

क्षपेरादेश्च धः ॥ १०४ ॥ धर्षणिः ॥ १०४ ॥

अदेर्मुट् च ॥ १०५ ॥ अदमनिः ॥ १०५ ॥

वृतेश्च ॥ १०६ ॥ वर्त्तनिः ॥ १०६ ॥

क्षिपेः किञ्च ॥ १०७ ॥ क्षिपणिः ॥ १०७ ॥

अर्चिश्चिहुसृपिष्ठादिच्छर्दिभ्य इति ॥ १०८ ॥ अर्चिः शोचिः ।

हविः । सर्पिः । छदिः । छर्दिः ॥ १०८ ॥

वृंहर्नलोश्च ॥ १०९ ॥ वर्हिः ॥ १०९ ॥

स्त्रियां सारणी । बाहुलकात् । शृणाति हिनस्तीति शरणिः धरति सवमिति धरणिः पृथिवी वा । धमिः सौत्रो धातुः धमति प्रापयति रसादिकमिति धमनिः नाडी वा अमतीत्यमनिः । गतिर्वा । येनाश्रनाति योऽश्रुते व्याप्नोति वा । स, अशनिः । वज्रं वा । अवति रक्षणादिकं करोतीत्यवनिः । भूमिर्वा । तरति येन यया वा । स सा वा तरणिः । सूर्यः कुमारी नौकौषधिभेदो वा । बाहुलकात् रजतीति रजनिः रात्रिर्वा । नलोपः । स्त्रियां रजनी द्राक्षा हरिद्रा वा ।

(१०३) सन्नन्तादाङ्पूर्वादिभिः प्रत्ययः । समन्तात् शुष्यन्ति पदार्था येन स आशुशुक्षणिः । अग्निर्वा ॥

(१०४) क्षपतीति धर्षणिः । पुंश्चली स्त्री वा क्षीप् धर्षणी ॥

(१०५) असीत्यश्निः । अग्निर्वा ॥

(१०६) वर्तते यस्मिन्निति वर्तनिः । मार्ग एकपदी वा ॥

(१०७) क्षिपत्यनेन शत्रून् स क्षिपणिः । आयुधं वा ॥

(१०८) अर्चति येन तदर्चिः । दीप्तिर्वा । शोचति शोचयतीति शोचिः । प्रकाशो वा । हयते यत्तद्विः । होमयोग्यं वस्तु वा । यो येन वा सर्पति तत् सर्पिः । घृतं वा । छादयति येन तच्छर्दिः । छादनं तृणादिकादनसाधनं वा । इस्मन् वनिति ऋसादेशः । छर्दति यत्तच्छर्दिः । वमनं व्याधिर्वा । बाहुलकात् अन्तादवतीति, आविः । प्राक्क्यम् । अव्ययशब्दायम् ॥

(१०९) वृंहति वर्हते तद्वर्हिः । दर्भो वा ॥

द्युतेरिसिन्हादेश्च जः ॥ ११० ॥ ज्योतिः ॥ ११० ॥

वसौ रुचेः संज्ञायाम् ॥ १११ ॥ वसुरोचिः ॥ १११ ॥

भुवः कित् ॥ ११२ ॥ भुविः ॥ ११२ ॥

सहो धश्च ॥ ११३ ॥ सधिः ॥ ११३ ॥

पिबतेस्थुक् ॥ ११४ ॥ पाधिः ॥ ११४ ॥

जनेरुसिः ॥ ११५ ॥ जनुः ॥ ११५ ॥

मनेर्धश्छन्दसि ॥ ११६ ॥ मधुः ॥ ११६ ॥

अर्त्तिपूवपियजितनिधनितपिभ्यो नित् ॥ ११७ ॥ अरुः । परुः ।

वपुः । यजुः । तनुः । धनुः । तपुः ॥ ११७ ॥

एतेर्णिच्च ॥ ११८ ॥ आयुः ॥ ११८ ॥

चक्षेः शिच्च ॥ ११९ ॥ चक्षुः ॥ ११९ ॥

(११०) द्योतते प्रकाशते तज्ज्योतिः । अग्निः सूर्यादिकं वा । ज्योतिरधिकृत्य कृतो ग्रंथो ज्योतिषम् । संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वाद् द्विनिषेधः ॥

(१११) वसूनग्न्यादीन् रोचतेऽसौ वसुरोचिः । यज्ञो वा । बाहुलकात् केवलादपि रोचिः ज्वाला वा ॥

(११२) इस्मिन् कित् । यो भवति यस्मिन् वा स भुविः समुद्री वा ॥

(११३) इस्मिन् । सहते भारमिति सधिः । अनड्वान् वा ॥

(११४) पिबति यो येन वा तत् पाधिः चक्षुः समुद्री वा ॥

(११५) जायते यत्तज्जनुः । जनुषी । जननं वा । बाहुलकान्ननधातीरपि मन्यते जानातीति मनुः । मनुषी ॥

(११६) मन्यते बुध्यते यो येन वा तन् मधुः पवित्रद्रव्यं वा ॥

(११७) ऋच्छति प्राप्नोतीत्यरुः । आदित्यो व्रणो वा । पिपत्ति येन तत् परुः । ग्रंथिर्वा । वपति बीजादिकमस्मात्तद्वपुः शरीरं वा । यजति येन तद्यजुः । वेदविशेषो वा । तनोति कार्याण्यनेन तत्तनुः शरीरं वा । दिधन्ति धनादिकं प्राप्नोति येन तद्वनुः वाणक्षेपणं वा । तपति दुःखयतीति तपुः सूर्योऽग्निः शत्रुर्वा ॥

(११८) ईयते प्राप्यते यस्तदायुः । जीवनं वा जटापूर्वाज्जटायुः । पक्षिराजः ॥

(११९) चक्षते रूपमनुभवन्त्यनेन तच्चक्षुः । नेत्रं वा । चक्षुषा गृह्यत इति चानुषं रूपम् ।

मुहेः किञ्च ॥ १२० ॥ मुहुः ॥ १२० ॥

कृष्टृष्टृञ्चतिभ्यः ष्वरच् ॥ १२१ ॥ कर्वरः । गर्वरः । शर्वरी
वर्वरः । चत्वरम् ॥ १२१ ॥

नौ षदेः ॥ १२२ ॥ निषहरः ॥ १२२ ॥

इत्युणादिषु द्वितीयः पादः ॥

छित्तरक्तवरधीवरपीवर्मीवरचीवरतीवरनीवरगह्वरकट्टरस्य
यद्वराः ॥ १ ॥

(१२०) मुह्यति भ्रान्तो भवतीति मुहुः । पौनः पुन्येऽर्थेऽव्ययं वा ॥

(१२१) किरति विचिपतीति कर्वरः । व्याघ्रो दुष्टो वा । कर्वरी रात्रिर्व्याघ्रं
दुष्टा वा । गिरति निगरतीति गर्वरोऽहंकारः । अङ्गकारयोगाङ्गर्वरो नायकः
शृणाति हिनस्ति प्रकाशमिति शर्वरी रात्रिर्वा । वृणातीति वर्वरः । प्राकृतजन
वा । चतते याचते स्वीक्रियते यत्तत् चत्वरम् । अङ्गनं वा ॥

(१२२) निषीदति यो यत्र वा स निषहरः । पङ्को निषहरी रात्रिर्वा ॥

इत्युणादिव्याख्यायां वैदिकलौकिककोषे द्वितीयः पादः ॥

(१) छित्तरादय एकादश शब्दाः ष्वरच् प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । छिनत्तीति
छित्तरः धूर्तः । शत्रुश्छेदनद्रव्यं वा । कृदन्तेऽपवारयतीति कृत्वरः । गृहं सताच्छ्र
दितं स्थानं वा । अत्रोभयत्र धातुदकारस्य तकारः । दुधाज्, पा पाने, मा माने
एषामीत्वमन्त्यस्य । दधातीति धीवरः । नौवाहको वा । पिबति दुग्धादिकमिति
पीवरः स्थूलो वा । माति मीनाति हिनस्ति वा स मीवरः । हिंसको वा । चिनोति
वृणादिना चीयते वा स चीवरः । चीवरं वस्त्रं मुनिस्थानं वा । धातोर्दीर्घादेशः
तीरयति कर्मसमाप्तिं करोतीति तीवरो जातिविशेषो वा । रिफलोपो गुणाभावश्च
नयतीति नीवरः । गुणनिषेधः । परित्राट् वा । गाहते विलोडयतीति गह्वरम्
गहनं वा । ङ्गस्त्रादेशः । कटति वर्षत्याहणोति वा तत् कट्टरम् । भोज्यं व्यञ्जनं वा ।
संयच्छतीति संयहरः । नृपो वा । मकारस्य दकारः । बाहुलकात् । उपजुहोतीत्यु-
पहरः । रथो वा । ष्वरच् प्रत्ययस्य षित्वात् स्त्रियां छित्वरी । इत्यादि सर्वत्र ङीष् ॥

इण्सिञ् जिदीडुष्यविभ्यो नक् ॥ २ ॥ इनः । सिनः । जिनः
दीनः । उष्णः । जनः ॥ २ ॥

फेनमीनौ ॥ ३ ॥

कषेर्वर्ण ॥ ४ ॥ कृष्णः ॥ ४ ॥

बन्धेर्वधिवुधौ च ॥ ५ ॥ ब्रध्नः । बुध्नः ॥ ५ ॥

धापृवस्यज्यतिभ्यो नः ॥ ६ ॥ धानाः । पर्णम् । वस्रः । वेनः
अतः ॥ ६ ॥

लक्षेरट्मुट् च ॥ ७ ॥ लक्षणम् । लक्ष्णम् ॥ ७ ॥

वनेरिञ्चोपधायाः ॥ ८ ॥ वेन्ना ॥ ८ ॥

(२) एतीति इनः । ईश्वरो राजा प्रभुः सूर्यो वा । इनेन स्वामिना सह वर्त्तते
इति सेना । सिनोति वध्नातीति सिनः । काणो वा । जयतीति जिनः । अतिवृद्धं
जयशीलो नास्तिकभेदो वा । दीयते क्षीणो भवतीति दीनः । दुःखी वा । ओषति
दहतीत्युष्णम् । ईषस्तप्तं वा । वाचलिङ्गः । अवति रक्षादिकं करोतीत्यूनः
असंपूर्णं वा ॥

(३) स्फायते वर्द्धते स फेनः । हिण्डीरः । समुद्रफेन इतिप्रसिद्धः । जलविकारं
वा । फेनायते नदी । मीनातिं हिनस्तीति मीनः । राश्यन्तरो मत्स्यो वा ॥

(४) कृषतीति कृष्णो नीलवर्णो वा । कृष्णा पिप्पली वा । बाहुलकात् । जिघ्रिषि
क्षरति चित्तं यया सा घृणा दीर्घमन्त्रं वा ॥

(५) बध्नातीति ब्रध्नः । बुध्नो वा । ब्रध्नो महान् सूर्यो वा । बुध्नो मेघो वा
मूलमन्तरिक्षं वा ॥

(६) दधातीति धानाः । अग्निपक्ता यवा वा । नित्यं स्त्रीलिङ्गो बहुवचनश्च
पिपस्तिं पालयति पूरयति वा तत् पर्णम् । पत्रं वा । वसति येन स वस्रः । मूलं
वेतनं वा । अजति गच्छति प्राप्नोति वा स वेनः । कमनीयः प्रजापतिरीश्वरो वा
अतति निरन्तरं गच्छतीति अतनः । सूर्यो वा । बाहुलकात् शृणोतीति श्रोणः । पङ्गुर्वा ।

(७) लक्षयतीति लक्षणः । लक्ष्णम् । चिह्नं नाम वा । रामभाता लक्ष्णम्
वा । हंसस्त्री लक्षणा सारसी वा ॥

(८) वन्यते सम्मन्यते या सा वेन्ना । नदी वा ॥

सिवेष्टेर्य च ॥ ६ ॥ स्थोनः ॥ ६ ॥

छवृजसिद्धपन्थनिस्त्रपिस्थो नित् ॥ १० ॥ कर्णः । वर्णः । जर्णः
सेना । द्रोणः । पन्नः । अन्नम् । खन्नः । १० ॥

धेट इच्च ॥ ११ ॥ धेनः । धेना । ११ ॥

तृप्तिशुषिरसिन्धुः कित् ॥१२॥ तृष्णा । शुष्णः । रसम् । १२

सुजो दीर्घश्च ॥ १३ ॥ सूना । १३ ॥

रमेस्तुच ॥ १४ ॥ रत्नम् । १४ ॥

राज्ञाखाज्ञास्थूणावीणाः ॥ १५ ॥

(६) सीव्यति तन्तून्सन्तनोतीति स्थूः । आदित्यो वा । टिभागस्य यू इत्य-
देशः । बाहुलकात् केवलोऽपि न प्रत्ययस्तेन जठादेशे कृते स्थोनः सुखी स्थोनं सुख-
मित्यपि सिद्धं भवति ॥

(१०) नो नित् । किरति विक्षिपतीति कर्णः । ओत्रं क्षत्रियविशेषो वा
 वृणोति व्रियते वा स वर्णः । ब्रह्मणादिः शुक्लादिः स्तुतिर्यशोरूपमक्षरं स्वीकारश्च
 जीर्यतीति जर्णः । चन्द्रमा वृद्धो वा । सिनोति बध्नाति शत्रून्ति सेना । इने
 सह वर्त्तत इति पूर्वसुक्तम् । द्रवति गच्छतीति द्रोणः । कृष्णकाको मानविशेषोऽ
 नगुरुर्वा । द्रोणी जलसेचनी वा । पनायति स्तौतीति पन्नः । सर्पो वा । अनि
 जीवयतीत्यन्नमोदनादिकं वा । यः स्वपिति यत् सुप्यते वा स स्वप्नः । निदा वा ।

(११) धयन्ति पिबन्ति यस्मात् धेनः समुद्रो धेना नदी वा । आत्वनिवृत्त्य
इकारादेशः ॥

(१२) तृष्यति काङ्क्षति पिपासति वा यया सा तृष्णा । लिप्सा पिपासा वा
शुष्यति रसादिकमिति शुष्णः । सूर्योऽग्निर्वा । रसति शब्दयतीति रस्रम् । द्रव्यं वा

(१३) यः सुनोति यत्र वेति सूना । जन्तुबधस्थानं वा ॥

(१४) ख्यन्ताद्रुमेर्न प्रत्ययो मस्य तथादेशः । रमयति हर्षयतीति रत्नम् । जातं जातीयं यदुत्कृष्टं तद्धि रत्नं प्रचक्षते । अश्वरत्नम् । गजरत्नम् । मणिरत्नम् । स्त्रीरत्नम् इत्यादि ॥

(१५) रसति शब्दयतीति रास्त्रा । गन्धद्रव्यं वा । सस्ति स्वपिति यथा स
सास्त्रा । गवादीनां कण्ठाऽधोभागश्चर्मं वा । तिष्ठति छादनादिकमनया सा स्थ
गृहस्तम्भो वा । आकारस्य ऊ आदेशः । वेति व्याप्नोति शब्दोऽस्याः सा वीणा वाद
विशेषी वा । निपातनाश्वत्वम् ॥

गाढाभ्यामिष्णुच् ॥ १६ ॥ गेष्णुः । देष्णुः । १६ ॥

कृत्यशूभ्यां क्स्रः ॥ १७ ॥ कृत्स्नम् । अक्ष्णम् ॥ १७ ॥

तिजेर्दीर्घश्च ॥ १८ ॥ तीक्ष्णम् । १८ ॥

श्लिषेरच्चोपधायाः ॥ १९ ॥ श्लक्ष्णम् । १९ ॥

यजिमनिशुन्विदसिजनिभ्यो युच् ॥ २० ॥ यज्युः । मन्युः ।
शुन्ध्युः । दस्युः । जग्युः ॥ २० ॥

भुजिमृड्भ्यां युक्त्युक् ॥ २१ ॥ भुज्युः । मृज्युः । २१ ॥

सरतेरयुः ॥ २२ ॥ सरयुः । २२ ॥

पानीविषिभ्यः प्रः ॥ २३ ॥ पापम् । नीपः । वेष्पः । २३ ॥

च्युवः किञ्च ॥ २४ ॥ च्युपः ॥ २४ ॥

(१६) गायति शब्दं करोतीति गेष्णुः । गायको वा । ददातीति देष्णुः ।
दानशीलो वा ॥

(१७) कृन्तति स्रल्यमिति कृत्स्नम् । संपूर्णं वा । अश्रुते व्याप्नोतीत्यक्ष्णम् ।
अखण्डं वा ॥

(१८) तितिक्षते तत् तीक्ष्णम् । तीव्रम् । वाच्यलिङ्गोऽयं शब्दः । तीक्ष्णा बुद्धिः ।
तीक्ष्णः पुरुषः । तीक्ष्णं घृतम् ॥

(१९) क्स्रः । श्लिष्यतीति श्लक्ष्णम् । सुकुमारं त्रिलिङ्गेषु वा ॥

(२०) यजतीति यज्युः । अध्वयुर्वा । मन्यतेऽसौ मन्युः । शोकः क्रोधो वा ।
शुन्वतीति शुन्ध्युः । अग्निर्वा । दस्यति नाशयति परपदार्थानिति दस्युः । तंस्कारी
वा । जायते प्रादुर्भवतीति जग्युः । शरीरो वा । बाहुलकादनादेशाभावः ॥

(२१) यो भुनक्ति यत्र वा स भुज्युः । पात्रं वा । स्त्रियत इति ऋलुः । शरीर-
विद्योगो वा स्त्रीलिंगः पुंलिंगश्च ॥

(२२) यः सरति यत्र जलानि वा सरन्ति स सरयुः । नदी वा । अयूप्रत्यय
इति पाठान्तरम् । सरयुः ॥

(२३) पान्ति रक्षन्त्यात्मानमस्मादिति पापमधर्मे वा । तद्योगात्पापः पुरुषः ।
नयतीति नेपः । पुरोहितो वा । वेवेष्टि व्याप्नोतीति वेष्पः । पेयमुदकं वा ॥

(२४) च्यवते प्राप्नोति वदति वा येन स च्युपः । सुखं वा ॥

स्तुवो दीर्घश्च ॥ २५ ॥ स्तूपः ॥ २५ ॥

सुशृभ्यां निच्च ॥ २६ ॥ सूपः । शूर्पम् ॥ २६ ॥

कुयुभ्यां च ॥ २७ ॥ कूपः । यूपः ॥ २७ ॥

खष्पशिल्पशष्पवाष्परूपपर्यतल्याः ॥ २८ ॥

स्तनिहृषिपुषिगदिमदिभ्यो णेरित्नुच् ॥ २९ ॥ स्तनयित्नुः ।

हर्षयित्नुः । पोषयित्नुः । गदयित्नुः । मदयित्नुः ॥ २९ ॥

कृहनिभ्यां कृत्नुः ॥ ३० ॥ कृत्नुः । हृत्नुः ॥ ३० ॥

गमे सन्वच्च ॥ ३१ ॥ जिगत्नुः ॥ ३१ ॥

(२५) स्तौतीति स्तूपः । भूमिसमुच्छ्रायो यज्ञवेदिर्वा ॥

(२६) किट् दीर्घश्च । सुनीति सृयते पच्यते वा स सूपः । पक्वं द्विदलान्नं वा शृणाति हिनस्तीति शूर्पं मानभेदोऽन्नशोधकं पात्रं वा ॥

(२७) कित् दीर्घश्च । कौति शब्दयतीति कूपः । यौति मिश्रयतीति यूपः । यज्ञशाला स्तम्भो वा ॥

(२८) खष्पादयः पप्रत्ययान्ता निपाताः । खनतीति खष्पः । क्रोधी बलाकारो वा । नकारस्य षत्वम् । यत् शीलति समादधाति तत् शिल्पम् कौशलं वा । ह्रस्वादेशः । शयते हन्यते तच्छष्पम् । बालढणं कान्तिचयो वा । षत्वम् । बाधते दुःखयतीति बाष्पम् । नेत्रजलमूष्मा वा । धकारस्य सत्वम् । रौति शब्दयतीति रूपम् । आकृतिः स्वभावः सौन्दर्यं वा । दीर्घादेशः । पिपर्सीति पर्यम् । गृहं बालढणं वा । तलयति प्रतिष्ठां करीतीति तल्पम् । शय्या स्त्रियो वा । बाहुलकात् । चमति भक्षयतीति चम्पा । नगरौ वा । पाति रक्षतीति पम्पा । नदी वा । ह्रस्वत्वं मुडागमश्च ॥

(२९) स्तनयति शब्दयतीति स्तनयित्नुः । मेघो विद्युद्वा । हर्षयतीति हर्षयित्नुः । हर्षयिता । सुवर्णं वा । पोषयतीति पोषयित्नुः । पोषयिता । गादयतीति गदयित्नुः । वावटूको वा । मादयतीति मदयित्नुः । मदिरा वा । अत्र सर्वत्र । अयामन्तात्वायित्नु० इतिसूत्रेण णेरयादेशः ॥

(३०) करोतीति कृत्नुः । शिल्पी वा यो हन्ति येन वा स हृत्नुः । व्याधिः शास्त्रं वा ॥

(३१) गमयति शरीराणीति जिगत्नुः प्राणो वा ॥

दाभाभ्यां नुः ॥ ३२ ॥ दानुः । भानुः ॥ ३२ ॥

वचेर्गञ्च ॥ ३३ ॥ वग्नः ॥ ३३ ॥

घेष्ट इच्च ॥ ३४ ॥ घेनुः ॥ ३४ ॥

सुवः कित् ॥ ३५ ॥ सूनः ॥ ३५ ॥

जहातेर्ह्यङ्ग्यलोपश्च ॥ ३६ ॥ जङ्हुः ॥ ३६ ॥

स्थो णुः ॥ ३७ ॥ स्थाणुः ॥ ३७ ॥

अजिवृदीभ्यो निच्च ॥ ३८ ॥ वेणुः । वणुः । रेणुः ॥ ३८ ॥

विषेः किच्च ॥ ३९ ॥ विष्णुः ॥ ३९ ॥

कृदाधारार्चिकलिभ्यः कः ॥ ४० ॥ कर्कः । दाकः । धाकः ।

राका । अर्कः । कल्कः ॥ ४० ॥

(३२) ददातीति दानुः । दानशीलो बुद्ध्यादिविचक्षणो वा । भाति दीप्यतेऽसौ भानुः सूर्यः प्रकाशः किरणा वा । स्वर्भानुराहुः । चित्रभानुः सूर्योऽग्निर्वा । बृहद्भानुरग्निः ॥

(३३) अक्षीति वग्नः । वाचालो वा ॥

(३४) धयन्ति पिवन्ति यस्याः सा घेनुः । नवप्रसूता गीर्वा । कनि सति घेनुका हस्तिनी वा ॥

(३५) सूयत उत्पद्यतेऽसौ सूनः । अनुजः पुत्रः सूर्यो वा ॥

(३६) जहाति दोषानिति जङ्हुः । कश्चिद्राजर्षिर्वा ॥

(३७) तिष्ठतीति स्थाणुः शुष्कवृक्षो निष्ठलो वा ॥

(३८) अजति गच्छति प्रक्षिपति वा स वेणुः । वंशो राजविशेषो वा । त्रियते सम्भजतीति वणुः । गदो देशभेदो वा । रिणाति गच्छति हिनस्ति हन्यते वा स रेणुः । धलिः । सुरेणुः सुवर्णरजः । असुरेणुः सुरेणुर्वा ॥

(३९) वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगदिति विष्णुर्जगदीश्वरः ॥

(४०) बहुलवचनाद् ककारस्येकज्ञा । करोतीति कर्कः । अग्निः शुक्लाग्नौ दर्पणी घटो वा । ददातीति दाकः । यजमानो वा । दधातीति धाकः । आधारोऽनङ्गान् वा । राति ददातीति राका । यौर्णमासी नदीभेदो वा । अर्चयतीत्यर्कः । अर्कपणं स्फटिकं सूर्यो वा । कलते शब्दयतीति कल्कम् । दम्भः किल्विषं वा । बाहुलकात् । रमतेऽसौ रङ्गकः कृपणो मन्दो वा । कपिलकादित्वात्स्वत्वे कृते । लङ्का दुष्टनगरी हवशाखा पञ्चली वा ॥

सृवृभूशुषिमुषिभ्यः कक् ॥ ४१ ॥ सृकः । वृकः । भूकम् ।
शुष्कः । सुष्कः ॥ ४१ ॥

शुकवल्कोल्काः ॥ ४२ ॥

इण्भौकापाशल्यतिमर्चिभ्यः कन् ॥ ४३ ॥ एकः । भेकः ।
काकः । पाकः । शल्कम् । अत्कः । मर्कः ॥ ४३ ॥

नौ हः ॥ ४४ ॥ निहाका ॥ ४४ ॥

नौ सदेर्दिञ्च ॥ ४५ ॥ निष्कः ॥ ४५ ॥

स्यमेरीट् च ॥ ४६ ॥ स्यमीकः । स्यमिकः ॥ ४६ ॥

अजियुधुनीभ्यो दीर्घश्च ॥ ४७ ॥ वीकः । यूका । धूकः । नौकः ॥ ४७ ॥

(४१) सरतीति सृकः । वाणो वज्रं वायुरत्यलं वा । वृणोतीति वृकः । काकः
श्वापदो वा । वृक एव वार्कण्यः । भवतीति भूकम् । छिद्रं कालो वा । शुष्यतीति
शुष्कः । नीरसो वा । सुष्यत आव्रियत इति सुष्कः । अण्डकोषः सङ्घातो वा । सुष्को
ऽस्यास्तीति सुष्करः । बाहुलकादवति रक्षणहेतुर्भवतीत्येकः । राशिः स्थानं वा ।
मूर्च्यते वध्यतेऽसौ मूकः । वचनवर्जितो वा । रेफवकारयोर्लोपः ॥

(४२) शुकादयः कप्रत्ययान्ता निपाताः । शोभतेऽसौ शुकः । पक्षिजातिर्यास-
पुत्रो वा । वलते संहृणोति येन तत् वल्कलं वा । ओषति दहतीति, उल्का । विद्यु-
दग्नेर्ज्वाला वा । षकारस्य लत्वम् ॥

(४३) एति प्राप्नोतीत्येकः । मुख्योऽन्यः केवलो वा । यो विभेति यस्माद्वा स
भेकः । मण्डूको मेघो वा । कायति शब्दयतीति काकः । वायसो वा । पिबत्यसा-
विति पाकः । शिशुर्बुडो वा । शल्यति गच्छति शल्यते वा तत् शल्कम् वल्कलं वा ।
अतति निरन्तरं गच्छतीत्यत्कः । पथिकः शरीरावयवो वा । मर्च इति सौत्रो धातुः
मर्चति चेष्टतेऽसौ मर्कः । शरीरवायुर्वा । बाहुलकात् । श्यतीति शाकम् । स्यतीति
साकं वा ॥

(४४) नितरां जहाति त्यजतीति निहाका । गोधिका वा ॥

(४५) निषीदतीति निष्कः । परिमाणभेदो वा ॥

(४६) स्यमति शब्दयतीति स्यमीकः । वल्मीको वृक्षभेदो वा । चकारादिडाग-
मे स्यमिकः ॥

(४७) अजति गच्छतीति वीकः । वायुः पक्षी वा । यीतीति यूका । शिरः
केशजन्तुर्वा धूनीति कम्पयतीति धूकः । वायुर्वा । नयतीति नौकः । वृक्षविशेषो वा ॥

ह्रियो रश्च लो वा ॥ ४८ ॥ ह्रीका । ह्लीका ॥ ४८ ॥

शकैरुनोन्तोन्त्युनयः ॥ ४९ ॥ शकुनः । शकुन्तः । शकुन्तिः ।

शकुनिः ॥ ४९ ॥

भुवो भिच् ॥ ५० ॥ भवन्तिः ॥ ५० ॥

कन्यच् क्षिपेश्च ॥ ५१ ॥ क्षिपण्युः । भुवन्युः ॥ ५१ ॥

अनुङ् नदेश्च ॥ ५२ ॥ नदनुः । क्षिपणुः ॥ ५२ ॥

कृवृदारिभ्य उनन् ॥ ५३ ॥ करुणा । वरुणः । दारुणम् ॥ ५३ ॥

त्रो रश्च लो वा ॥ ५४ ॥ तरुणः । तलुनः ॥ ५४ ॥

क्षुधिपिशिमिथिभ्यः कित् ॥ ५५ ॥ क्षुधुनः । पिशुनः ।

मिथुनम् । ५५ ॥

(४८) जिह्वेति लज्जां करोतीति ह्रीका ह्लीका लज्जा वा ॥

(४९) उन, उन्त, उन्ति, उनि, इत्येते प्रत्यया भवन्ति । शक्नोतीति शकुनः । शकुन्तः । शकुन्तिः । शकुनिः । पञ्चिनामानि वा ॥

(५०) भवन्ति पदार्था यस्मिन् स भवन्तिः । वर्त्तमानकालो वा । कामयतेऽसौ कुन्तिः । स्त्रियां कुन्ती । धातोः कुरादेशः प्रत्ययादिलोपश्च । अवतीति, अवन्तिः । राजा वा । वदतीति वदन्तिः । कोलाहलो वा । किंवदन्ती जनश्रुतिः । कुन्त्यादयो बाहुलकादेव भवन्ति ॥

(५१) चाङ्गुवः । क्षिप्यति प्रेरयतीति क्षिपण्युः । वसन्त ऋतुर्वा । भवतीति भुवन्युः । स्वामी सूर्यो वा ॥

(५२) चात् क्षिपेः । नदत्यव्यक्तं शब्दं करोतीति नदनुः मेघो वा क्षिप्यतीति क्षिपणुः वायुर्वा ॥

(५३) किरति विक्षिपति दुर्गुणमिति करुणः । वृक्षभेदो वा । करुणा कृपा वा । करुणा शीलमस्येति कारुणिकः । वृणोति व्रियते वाऽसौ वरुणः । उत्तमं जलं वृक्षभेदो वा । दारयति यो येन वा तद्दारुणं भौषणं वा ॥

(५४) उनन् । तरतीति तरुणः तलुनः । युवा वृक्षभेदो वा । स्त्रियां गौरादित्वान् ङीष् तरुणी तलुनी वा युवती ॥

(५५) क्षुध्यति भोक्षुमिच्छतीति क्षुधुनः । स्नेच्छजातिर्वा । पिशत्यवयवं करोतीति पिशुनः । खलः सूचको वा । मेथति जानाति ज्ञायते हिनस्ति वा तन् मिथुनम् । द्वयोः संयोगो राशिर्वा ॥

फलैर्गुक् च ॥ ५६ ॥ फल्गुनः । ५६ ॥

अर्जैर्गुक् च ॥ ५७ ॥ लशुनम् ॥ ५७ ॥

अर्जैर्गुक् च ॥ ५८ ॥ अर्जुनः । ५८ ॥

हृणाख्यायां चित् ॥ ५९ ॥ अर्जुनम् । ५९ ॥

अर्जैश्च ॥ ६० ॥ अरुणः । ६० ॥

अजियसिशीङ्ग्श्च ॥ ६१ ॥ वयुनम् । यमुना । शयुनः । ६१ ॥

वृत्तवदिवचिवसिह्निकमिकषिभ्यः सः ॥ ६२ ॥ वर्षम् । तर्षः ।

वत्सः । वज्रः । वत्सम् । हंसः । कंसः । कक्षम् । ६२ ॥

सुपेरद्धोपधायाः ॥ ६३ ॥ लक्षः । ६३ ॥

सनेदीर्घश्च ॥ ६४ ॥ मांसम् । ६४ ॥

(५६) फलति निष्पन्नो भवतीति फल्गुनः शुक्लो वा ॥

(५७) उन्नन् । अश्नते भुज्यते यत्तल्लशुनम् । औषधरूपः कन्दो वा ॥

(५८) उन्नन् अर्जयतीत्यर्जुनः । शुक्लो मयूरो वृक्षभेदो वा । अर्जुनी । सौरभेयी ॥

(५९) अर्जयति यत्तद्वर्जुनं तृणम् । चित्करणमन्तोदात्तार्थम् ॥

(६०) ऋच्छति प्राप्नोतीत्यरुणः सूर्यः कुष्ठं रक्तं वा ॥

(६१) वीयते गम्यतेऽत्रेति वयुनम् । मन्दिरं वा । यच्छतीति यमुना । नदीभेदो वा । शितेऽसौ शयुनः । अजगरो वा ॥

(६२) वृणोति स्वीकरोतीति वर्षम् । संवत्सरो वृष्टिरार्यावर्त्तो भेषो वा । स्त्रियां बहुवचनान्तो वर्षाः प्रावृषि ऋतौ । तरति येन यत्र वा स तर्षः । समुद्रो वा । वदतीति वत्सः । वालो वज्रः स्थलं वा । हन्तीति हंसः । निर्लोभः सूर्यः पक्षिभेदो श्वभेदः शरीरस्थो वायुर्षा । कामयते परपदार्थानिति कंसः । तैजसद्रव्यं पात्रं तस्करो वा । कषति हिनस्तीति कक्षः तृणं लता वनसमीपं बाहुमूलं वा । बाहुलकात् । राजते दीप्यते सा राक्षो लाक्षा । कपिलकादित्वाल्लत्वम् । यीतीति योषा स्त्री वा ॥

(६३) श्लोषति दहतीति लक्षः । पिप्पलं पर्कटी वा । पाकरि इति प्रसिद्धा । वीपभेदो गृहस्य द्वारद्वारं वा ॥

(६४) मच्यते जायतेऽनेन तन्मांसम् । शरीरोपचयो वा ॥

अग्नेर्देवने ॥ ६५ ॥ अक्षः । ६५ ॥

स्नुवप्रिचकुसृषिभ्यः कित् ॥ ६६ ॥ स्नुषा । वृक्षः । कृत्यम् ।
कृक्षम् । ६६ ॥

कृषेर्जातौ ॥ ६७ ॥ कृक्षः । ६७ ॥

उन्दिगृ धिकृषिभ्यश्च ॥ ६८ ॥ उत्सः । गुत्सः । कुक्षः । ६८ ॥

गृधिपण्योर्दकौ च ॥ ६९ ॥ गृत्सः । पक्षः ॥ ६९ ॥

अग्नेः सरन् ॥ ७० ॥ अक्षरम् ॥ ७० ॥

वसेश्च ॥ ७१ ॥ वत्सरः ॥ ७१ ॥

संपूर्वाच्चित् ॥ ७२ ॥ संवत्सरः ॥ ७२ ॥

(६५) अश्रुते व्याप्नोतीत्यक्षः । अक्षणीन्द्रियाणि तुषं चक्रं शकटं व्यवहारो वा ॥

(६६) स्नोति प्रस्रवतीति स्नुषा । यवीयसो भ्रातृभार्या वा । वृक्ष्यते क्लियतेऽसौ
वृक्षः । वृक्ष वरण इत्यस्मादपीगुपधात् के प्रत्यये वृक्ष इति सिध्यति । अर्थभेदायात्र-
वृक्षग्रहणं तेन क्लियत्वात् कार्यं जगदपि वृक्ष उच्यते । क्लन्तति क्लिनतीति क्लृप्तमुदकम् ।
कृषति गच्छतीति कृक्षम् । नक्षत्रसामान्यं वा । बाहुलकात् । समन्तान्नेषति
हिनस्तीत्यामिक्षा । क्षीरविकारो वा । लिश्यतेऽल्पा भवतीति लिक्षा । शिरःक्षेपज-
न्तुर्वा । रोहति बीजाज्जायतेऽसौ रुक्षः । वृक्षजातिः प्रीतिहीनो वा ॥

(६७) कृषति गच्छतीति कृक्षः । मृगजातिभेदो भक्षूकः । पूर्वसूत्रेण सिद्धे
जातिनियमाद्यौगिके कृषधातोः षः प्रत्ययो वा ॥

(६८) उन्दिगृ क्लियतीत्युत्सः । जलस्त्रवणस्थानमृषिर्वा । गुह्नाति रोषं करोतीति
गुत्सः । हारभेदः पुष्पगुम्फो वा । कुणाति निष्कर्षतीति कुक्षः । जठरस्थानं वा ॥

(६९) चित् गृध्यति अभिकाङ्क्षतीति गृत्सः । कामो वा । गकारस्य भष् भा-
वनिवृत्त्यर्थी । दकारादेशः । पणायति स्तीति व्यवहरति वा येन यत्र वा स पक्षः ।
मासार्धः पार्श्वभागः साध्यविरोधः समूहो बलं मित्रसहायो वा ॥

(७०) अश्रुते व्याप्नोतीत्यक्षरम् । वृक्षे वर्षा मोक्ष उद वा ॥

(७१) वसन्त्यस्मिन्निति वत्सरः । वर्षो वा ॥

(७२) चित्वादन्तोदात्तस्वरः । सम्यग्वसन्त्यत्र स संवत्सरः ॥

कृधूसदिभ्यः कित् ॥ ७३ ॥ कसरः । धूसरः । मत्सरः ॥ ७३ ॥
 पतेरश्च लः ॥ ७४ ॥ पत्सलः ॥ ७४ ॥
 तन्यृषिभ्यां क्सरन् ॥ ७५ ॥ तसरः । ऋक्षरः ॥ ७५ ॥
 पीयूषाणिभ्यां कालन् ऋक्षं संप्रसारणञ्च ॥ ७६ ॥ पियालः ।
 कुणालः ॥ ७६ ॥
 कठिकृषिभ्यां काकुः ॥ ७७ ॥ कठाकुः । कषाकुः ॥ ७७ ॥
 सत्तेर्दुक् च ॥ ७८ ॥ सृदाकुः ॥ ७८ ॥
 वृतेर्द्विश्च ॥ ७९ ॥ वार्त्ताकुः । वार्त्ताकम् ॥ ७९ ॥
 पर्देर्नित्संप्रसारणमलोपश्च ॥ ८० ॥ पृदाकुः ॥ ८० ॥
 स्युवचिभ्योऽन्युजागूजक्नुचः ॥ ८१ ॥ सरण्युः । यवागूः ।
 वचक्नुः ॥ ८१ ॥

(७३) यः करोति क्रियते वा स कसरः । तिलौदनं मिश्रं वा । धूनीतीति धूसरः । ईषत्याण्डुरो वा । माद्यतीति मत्सरः । असह्यपरसंपत्तिर्जनः कपणः क्रुद्धो वा मत्सरा मचिका वा ॥

(७४) पतन्ति गच्छन्ति यत्र स पत्सलः । पन्था वा ॥

(७५) तनीतीति तसरः । सूत्रवेष्टनो वा । ऋषति प्राप्नोति वा स ऋक्षरः । ऋत्विग्वा ॥

(७६) पीयुः सौत्रो धातुः पीयति तर्पयतीति पियालः । वृक्षभेदो वा । चिरींजी इति प्रसिद्धा । कणति शब्दं करोतीति कुणालः । देशभेदो वा । बाहुलकात् । भजतीति भगालम् । नरमस्तकं वा । कुत्वं च ॥

(७७) कठतीति कठाकुः । पक्षी वा । कषति हिनस्तीति कषाकुः । अग्निः सूर्यो वा ॥

(७८) सरतीति सृदाकुः । वायुर्वा । सरन्त्यापोऽस्यामिति सृदाकुर्नदी ॥

(७९) वर्त्ततेऽसौ वार्त्ताकुः । हिंगुली । वृन्ताक इति प्रसिद्धम् । बाहुलकादुकारस्य अ, ई भवतः । वार्त्ताकं । वार्त्ताकी वा ॥

(८०) पर्दते कुक्षितं शब्दं करोतीति पृदाकुः । व्याघ्रः सर्पो वा ॥

(८१) सरतीति सरण्युः । मेघो वायुर्वा । यीति मिश्रयतीति यवागूः । दुग्धे पक्वयवचूर्णं वा । वक्तीति वचक्नुः वाचालः प्राज्ञो वा ॥

आनकः शीङ्भियः ॥ ८२ ॥ शयानकः । भयानकः ॥ ८२ ॥

आणको लूधूशिङ्घिधाञ्भ्यः ॥ ८३ ॥ लवाणकः । धवाणकः ।

शिङ्घाणकः । धाणकः ॥ ८३ ॥

उल्मुकदर्विहोमिनः ॥ ८४ ॥

क्रियः कुक्कश्च लो वा ॥ ८५ ॥ क्रीकः । ह्रीकः ॥ ८५ ॥

हसिमृगिण्वामिदमिलूपधूर्विभ्यस्तन् ॥ ८६ ॥ हस्तः । मर्त्तः ।

गर्त्तः । एतः । वातः । अन्तः । दन्तः । लोतः । प्रोतः । धूर्त्तः ॥ ८६ ॥

नञ्याप इट् च ॥ ८७ ॥ नापितः ॥ ८७ ॥

(८२) श्येत्सौ शयानकः । अजगरो वा । बिभेत्यस्मादिति भयानको भयप्रदः ॥

(८३) लुनाति येन तत्त्वलाणकम् । दात्रं वा । धूनीतीति धवाणकः । वायुर्वा शिङ्घति समन्ताज्जिघ्रतीति शिङ्घाणकः । श्लेष्मा वा । बाहुलकात् ककारलोपे शिङ्घाणम् । काचपात्रं लोहनासिकयोर्मलं वा । दधाति धीयते वा स धाणकः । व्यवहारयोग्यद्रव्यभागो वा ॥

(८४) ओषति दहती शुल्मुकम् । उवलदङ्गारो वा । मुकप्रत्ययो धातोः षकारस्य लत्वम् । दृणाति विदारयति येन स दर्विः । परिवेषणपात्रं वा । विन् प्रत्ययः जुहोतीति होमी । यजमानो वा । अत्र मिन् प्रत्ययः ॥

(८५) जिह्नेति लज्जां करोतीति क्रीकुर्लज्जावान् । ह्रीकुः । जतु त्रपुणी लाक्षादिर्वा ॥

(८६) हसतीति हस्तः । नचत्रं करो वा । हस्तोऽस्यास्तौति हस्तौ । म्रियतेऽसौ मर्त्तः । मनुष्यो वा । मर्त्त एव मर्त्यः स्वार्थे यत् । गिरति निगलति स गर्त्तः । अवटः पतनस्थानं वा । एति प्राप्नोति यं स एतः । विचित्रवर्णो वा । स्त्रियां, एनौ एता । वातीति वातः । वायुर्वाधिर्वा अमति गच्छतीति, अन्तः । नाशः समीपं तत्त्वस्वरूपं मनोहरं वा । दाम्यत्युपशमयति यो येन वा स दन्तः । दशनो वा । शोभना दन्ता यस्याः सा सुदती युवतिः । दन्तावलो दन्तुरो वा हस्तौ । लुनातीति लोतः । अशुश्चिन्हं वा । पुनातीति प्रोतः । बालो वहित्री वा । धूर्वतीति धूर्त्तः । शठो लवणं धसूरं वा । बाहुलकात् । तीसति शब्दयतीति तूस्तम् । पापं जटा वा । तूस्तं करोति तूस्तयति । ह्यति छिनत्तीति छातः । दुर्बलो वा । अभितो म्लायतीति, अभिम्लातः । हर्षक्षीणो वा ॥

(८७) नाप्नोति सत्कर्मणीति नापितः । केशच्छेदको वा ॥

तनिमृड्भ्यां किञ्च ॥ ८८ ॥ ततम् । मृतम् ॥ ८८ ॥

अञ्चिघृसिभ्यः क्तः ॥ ८९ ॥ अक्तम् । घृतम् । सितम् ॥ ८९ ॥

दुतनिभ्यां दीर्घश्च ॥ ९० ॥ दूतः । तातः ॥ ९० ॥

जैर्मूट् चोदात्तः ॥ ९१ ॥ जीमूतः ॥ ९१ ॥

लोष्टपलितौ ॥ ९२ ॥

हृश्याभ्यामितन् ॥ ९३ ॥ हरितः । श्येतः ॥ ९३ ॥

रुहेरश्च लो वा ॥ ९४ ॥ रोहितः । लोहितम् ॥ ९४ ॥

पिशिः किञ्च ॥ ९५ ॥ पिशितम् ॥ ९५ ॥

(८८) तनोतीति ततम् । वीणादिकं वाद्यं वा । म्रियते येन तन्मृतम् । याचितं भैक्ष्यं वा ॥

(८९) यदनक्ति प्रकटीकरोति तदक्तम् । व्याघ्रः परिमितं वा । जिघृक्षि संचलति दीप्यते वा तत्, घृतम् । उदकं सर्पिः प्रदीप्तं वा । सिनोति बध्नातीति सितम् । शुक्लं वा । बहुलवचनात् । हृच्छति कुटिलं भवतीति मुहूर्त्तम् । घटिका-
द्वयकालो वा । धातोर्मुंडागमो रास्लोप इति कुलोपः । ऋच्छत्यात्मानं प्राप्नोतीति ऋतम् । यथार्थं वा । वसति यत्रेति वस्तम् । स्थानं वा ॥

(९०) दवति गच्छति दुनोलुपंतपति वा स दूतः । बहुकासाधको राजभृत्यो वा । स्त्रियां दूतो । तनोति कार्याणीति तातः । पिता वा । बाहुलकात् । स्यति कर्मसमाप्तिं करोतीति सीता चेवे हलेन कृता रेखा स्त्रीविशेषा वा ॥

(९१) धातोर्दीर्घः प्रत्ययस्य मूडुदात्तत्वं च । यो जयति येन वा । स जीमूतः । मेघः पर्वतो वा ॥

(९२) लोष्टे सङ्घातो भवतीति लोष्टम् । मृत्पिण्डो वा । पल्यते प्राप्यते तत् पलितम् । हृद्वावस्थया केशादीनां शुक्लत्वं वा ॥

(९३) हरतीति हरितः । वर्णभेदो वा । श्यायति गच्छतीति श्येतः । श्याम-
वर्णो वा । स्त्रियां हरिणी । हरिता । श्येनी श्येता ॥

(९४) रोहति प्रादुर्भवतीति रोहितः । मृगमत्स्ययोर्भेदो रोहितं रुधिरं वा । लोहितोऽङ्गारको रुधिरम् रक्तवर्णो वा ॥

(९५) पिश्यते ऽवयवरूपं क्रियते तत् पिशितं मांसं वा ॥

श्रुदक्षिस्पृहृहृहृथ्य आथ्यः ॥ ९६ ॥ अवाथ्यः । दक्षाथ्यः ।
 स्पृहयाथ्यः । गृहयाथ्यः ॥ ९६ ॥
 दधातेर्द्वित्वभित्त्वं षुक् च ॥ ९७ ॥ दधिषाथ्यः ॥ ९७ ॥
 वृज एण्यः ॥ ९८ ॥ वरेण्यः ॥ ९८ ॥
 स्तुवः केय्यश्छन्दसि ॥ ९९ ॥ स्तुवेय्यम् ॥ ९९ ॥
 राजेरन्यः ॥ १०० ॥ राजन्यः ॥ १०० ॥
 शूरम्योश्च ॥ १०१ ॥ शरण्यम् । रमण्यम् ॥ १०१ ॥
 अर्त्तेर्निच्च ॥ १०२ ॥ अरण्यम् ॥ १०२ ॥
 पर्जन्यः ॥ १०३ ॥
 वदेरान्यः ॥ १०४ ॥ वदान्यः ॥ १०४ ॥
 अमिनक्षियजिबधिपतिभ्योऽत्रन् ॥ १०५ ॥ अमत्रम् । नक्ष-
 त्रम् । यजत्रम् । वधत्रम् । पतत्रम् ॥ १०५ ॥

(९६) आवयतीति अवाथ्यः । दानपशुर्वा । दक्षयति वर्द्धतेऽसौ दक्षाथ्यः ।
 गृध्रो वा । स्पृहयतीति स्पृहयाथ्यः । अभीप्सुर्नचत्रं वा । गर्हयति पदार्थान्
 गृह्णातीति गृहयाथ्यः । गृहस्वामी वा । आथ्यप्रत्यये णेरयादेशः ॥

(९७) दधिस्यति समापयतीति दधिषाथ्यो घृतम् । निपातनात् षत्वम् ॥

(९८) व्रियते स्वीक्रियतेऽसौ वरेण्यः । अष्टो वा ॥

(९९) स्तूयतेऽसौ स्तुवेय्यः पुरन्दरो वा । क्सेय्य इति पाठान्तरं तदा स्तुपेय्यः ॥

(१००) राजते दीप्यतेऽसौ राजन्यः । अग्निर्वा । क्षत्रियजातौ तु राज्ञोऽपत्यं
 राजन्यः । तत्रान्त्यस्वरितः ॥

(१०१) श्रुणाति हिनस्तीति शरण्यम् । अज्ञानं वा । रमतेऽस्मिंस्तद्रमण्यम् । गृहं वा

(१०२) ऋच्छन्ति गृहाद् गच्छन्ति यत्र तदरण्यम् । वनं वा । महदरण्यमरण्यानी

(१०३) पर्षति सिञ्चतीति पर्जन्यः । मेघः । समर्थो वा निपातनात् षकारस्य जकारः

(१०४) उद्यते वदतीति वा स वदान्यः । वाग्मी त्यागी वा ॥

(१०५) अमति प्राप्नोति यत्र तत् अमत्रम् । पात्रं वा । नक्षति गच्छतीति
 नक्षत्रम् । तारका वा । इज्यते यजति वा तद् यजत्रम् । अग्निहोत्रं हीता वा ।
 वधीति हनः स्थाने वधादेशो निपात्यते । हन्ति येन तद् वधत्रम् । आयुधं वा । पतति
 गच्छति येन तत्पतत्रम् । वाहनं लोमानि वा ॥

गडेराम् कः ॥ १०६ ॥ कडचम् । कलचम् ॥ १०६ ॥

वृजश्चित् ॥ १०७ ॥ वरत्रा ॥ १०७ ॥

सुविदेः कवनम् ॥ १०८ ॥ सुविद्वत् ॥ १०८ ॥

कुतेर्नुम् च ॥ १०९ ॥ कृन्तवम् ॥ १०९ ॥

भृमृदृशियजिपर्विपच्यमितमिनमिहृथ्यिभ्योऽतच् ॥ ११० ॥

भरतः । सरतः । दर्शतः । यजतः । पर्वतः । पचतः । अमतः । तमतः ।
नमतः । ह्यृतः ॥ ११० ॥

पृषिरञ्जिभ्यां कित् ॥ १११ ॥ पृषतः । रजतम् ॥ १११ ॥

खलतिः ॥ ११२ ॥

(१०६) गडति सिञ्चतीति कडचम् । बाहुलकाडस्य लः । कलचम् । कटि-
भागो भार्या वा ॥

(१०७) वृणोत्युदकादिकं यया या वा सा वरत्रा चर्मरज्जुर्वा ॥

(१०८) सुष्ठु विद्यते तत् सुविद्वत् कुटुम्बं वा ॥

(१०९) कृन्तति छिनत्ति येन तत्कृन्तवम् । लाङ्गलं वा ॥

(११०) भरति पुष्पातीति भरतः । राजभेदो नटो रामानुजो वा । स्त्रियतेऽ
सौ सरतः नृत्युर्वा । पश्यन्ति येन स दर्शतः । चन्द्रः सूर्यो वा । यजतीति यजतः ।
ऋत्विग्वा । पर्वति पूर्णो भवतीति पर्वतः । पर्व विद्यतेऽस्मिन्निति मत्वर्यीयस्तकार
प्रत्ययो वा । गिरिर्वा । पचति येन स पचतः । अग्निर्वा । अमति गच्छतीति,
अमतः । रेणुर्वा । ताम्यति काङ्क्षतीति तमतः । दृष्ट्वापरो वा । नमतीति नमतः
नम्रो वा । ह्यृत्यति गच्छतीति ह्यृतः । अश्वो वा । बाहुलकात् । मलति स्वरूपं धरतीति
मालती । उपधादीर्घो गौरादित्वान् ङीष् ॥

(१११) पृषति सिञ्चतीति पृषतः । विन्दुर्मृगो वा । रजति प्रियं भवतीति
रजतम् । रूप्यं शुक्लं वा ॥

(११२) खलति संचलतीति खलतिः । निष्केशशिराः पुरुषो वा । धातोः
सलोपः प्रत्ययान्तस्येत्वं निपातः ॥

शीङ्शपिरुगमिवञ्चिजीविप्राणिभ्योऽधः ॥ ११३ ॥ शयथः ।
शपथः । रवथः । गमथः । वञ्चथः । जीवथः । प्राणथः । दरथः ।
शमथः । दमथः ॥ ११३ ॥

भृजश्चित् ॥ ११४ ॥ भरथः ॥ ११४ ॥

रुविदिभ्यां डित् ॥ ११५ ॥ रुवथः । विदथः ॥ ११५ ॥

उपसर्गो वसेः ॥ ११६ ॥ आवसथः । संवसथः ॥ ११६ ॥

अत्यविचमितमिनमिरभिलभिनभितपिपतिपनिपणिमहि
भ्योऽसच् ॥ ११७ ॥ अतसः । अवसः । चमसः । तमसः । नमसः ।
रभसः । लभसः । नभसः । तपसः । पतसः । पनसः । पणसः । महसम् ॥

(११३) शीतेऽसौ शयथः । अजगरो वा । शयत आकुशयत इति शपथः । निश्चय
करणं वा रीतीति रवथः । कोकिलो वा । गच्छतीति गमथः । पथिको वा । वञ्चति
प्रलभ्यतीति वञ्चथो धूर्तः । अस्य स्थाने वन्दीति पाठान्तरे वन्दथः स्तीता सुत्यं
वा । जीवतीति जीवथ आयुष्मान् । प्राणितीति प्राणथः । बलवान् वा । बाहुलकात् ।
दृणातीति दरथः । दिक्षु प्रसरणं गर्तो वा । शाम्यतीति शमथः । शान्तिः । दाम्य-
तीति दमथः । दमो वा ॥

(११४) विभर्त्तीति भरथः । लोकपालो राजा वा ॥

(११५) रीतीति रवथः । रवा वा । वेत्तीति विदथः । योगो वा ॥

(११६) समन्ताद्वसति यत्र स आवसथः । गृहं वा । सम्यग्वसन्ति यत्र स सं-
वसथः । ग्रामी वा ॥

(११७) अतति निरन्तरं गच्छतीत्यतसः । वायुर्वा । स्त्रियामतसौ । अवति
रक्षादिकं करोतीत्यवसः । राजा वा । चमति भक्षयति येन स चमसः । गौरादित्वाच्च
मसौ । ताम्यति काङ्क्षतीति तमसः । ध्वान्तं वा । नमतीति नमसः । अनुकूलं वा ।
रभतेऽसौ रभसः । वेगो हर्षो वा । लभतेऽसौ लभसः । अश्ववन्धनं वा । नभते हिनस्तीति
नभसः । आकाशं वा । तपति तापहेतुर्भवतीति तपसः । चन्द्रमा वा । पततीति पतसः ।
पक्षी वा । पनायति स्तीतीति पनसः । कण्टकिफलं वा । महतीति महसम् । ज्ञानं वा ।
बाहुलकात् । अम्यति प्राप्यते तत्तामरसम् । कमलं वा । प्रत्ययस्य णित्वाद्दृढिर्धातोश्च तुट्
स्यति कर्म समापयतीति साध्वसम् । पश्चाद् ज्ञानं वा । धातोर्धुक् । कंकते चञ्चलं ।
भवतीति कीकसम् । अस्थि वा । धातोः कीकादेशः । तरतीति तरसम् । मांसं वा ॥

वेजस्तुट् च ॥ ११८ ॥ वेतसः ॥ ११८ ॥

वहियुभ्यां णित् ॥ ११९ ॥ वाहसः । यावसः ॥ ११९ ॥

वयश्च ॥ १२० ॥ वायसः ॥ १२० ॥

दिवः कित् ॥ १२१ ॥ दिवसम् ॥ १२१ ॥

कृशृशलिकलिगर्दिभ्योऽभच् ॥ १२२ ॥ करभः । शरभः । शलभः ।
गर्दभः ॥ १२२ ॥

ऋषिवृषिभ्यां कित् ॥ १२३ ॥ ऋषभः वृषभः ॥ १२३ ॥

रुषेर्निष्णुप् च ॥ १२४ ॥ लुषभः ॥ १२४ ॥

रासिबल्लिभ्यां च ॥ १२५ ॥ रासभः । बल्लभः ॥ १२५ ॥

जृविशिभ्यां भृच् ॥ १२६ ॥ जरन्तः । वेशन्तः ॥ १२६ ॥

(११८) वयति तल्लून् संतनीतीति वेतसः । वृचभेदो वा ॥

(११९) वहतीति वाहसः । अजगरो वा । यीति मिश्रयत्यमिश्रयति वा स
यावसः । ढणसन्ततिर्वा ॥

(१२०) वयते गच्छतीति वायसः काको वा ॥

(१२१) दीव्यति प्रकाशते सूर्यो यत्र तद्विवसम् । दिवसो वा । अर्द्धादिपाठाद्द्विलिङ्गः ॥

(१२२) किरति विलिपतीति करभः । हस्तस्य बहिर्भागो बालो वा । शृणा-
तीति शरभः । आरण्यानां मध्ये हिंसकविशेषपशुजातिः । शलते गच्छतीति शलभः ।
पतङ्गो वा । कलते संख्यां करोति स कलभः । करिशावको वा । गर्दयति शब्दं
करोतीति गर्दभः । खरो वा ॥

(१२३) ऋषति गच्छतीति ऋषभः । वर्षतीति वृषभः । अष्टपर्यायौ बलीवर्दी वा ॥

(१२४) रोषति हिनस्तीति लुषभः । मत्तहस्ती वा ॥

(१२५) रासति शब्दयतीति रासभः । खरो वा । बल्लते संवृणोतीति बल्लभः प्रियो वा

(१२६) प्रत्ययादिभकारस्य भोऽन्त इत्यन्तादेशः । जीर्यति स जरन्तः । महिषो
वा । विशति प्रवेशं करोतीति वेशन्तः अल्पजलाशयो वा । बाहुलकात् । अर्हति
पूज्यो भवतीति, अर्हन्तः ॥

रुहिनन्दिजौविप्राणिभ्यः प्रिदाशिषि ॥ १२७ ॥ रोहन्तः ।
नन्दन्तः । जीवन्तः । प्राणन्तः । रोहन्ती ॥ १२७ ॥

टृभ्वहिवसिभासिसाधिगडिमंडिजिनन्दिभ्यश्च ॥ १२८ ॥ त
रन्तः । भवन्तः । वहन्तः । वसन्तः । भासन्तः । साधन्तः । गण्डयन्तः ।
मण्डयन्तः । जयन्तः । नन्दयन्तः ॥ १२८ ॥

हन्तेसुट् हि च ॥ १२९ ॥ हेमन्तः । १२९ ॥

भन्देर्नलोपश्च ॥ १३० ॥ भदन्तः । १३० ॥

ऋच्छेररः ॥ १३१ ॥ ऋच्छरः । १३१ ॥

(१२७) रोहतीति रोहन्तः । वृक्षभेदो वा । नन्दति समृद्धियुक्तो भवतीति
नन्दन्तः । पुत्रो वा । यो जीवति स जीवन्तः । औषधं वा । प्राणिति श्वासप्रश्वासान्
प्रवर्त्तयति स प्राणन्तः । वायुर्वा । पित्वात् स्त्रियां ङीष् । प्राणन्ती । रोहन्ती ।
नन्दन्ती । जीवन्ती ॥

(१२८) भृच् । यस्तरति येन यत्र वा । स तरन्तः समुद्रस्तरन्ती नौका वा ।
यो भवतीति यत्र वा स भवन्तः । कालो वा । वहति कार्याणि प्रापयतीति वहन्तः
वायुर्वा । यो वसति यत्र वा स वसन्तः ऋतुभेदो वा । भासयते दीप्यतेऽसौ भासन्तः ।
सूर्यो वा । साध्नाति कार्याणीति साधन्तः । भिक्षुको वा । गण्डयति सेचयतीति
गण्डयन्तः । मेघो वा । मण्डयति शोभितं करोतीति मण्डयन्तः । भूषणं वा । जय-
तीति जयन्तो जयशीलः ।

स्त्रियां जयन्ती पुष्पभेदो वा । विजयन्तः कश्चिद्राजविशेषस्तस्य प्रासादो वैजयन्तः ।
वैजयन्ती पताका । नन्दन्ति येन स नन्दन्तः । आनन्दकरो वा । अतः पूर्वसूत्रेऽपि
नन्दिः पठितः । अत्र पुनर्ग्रहणमनाशिष्यपि यथा स्यात् ॥

(१२९) यो हन्ति शीतेन स हेमन्तः । ऋतुभेदो वा ॥

(१३०) भन्दते कल्याणं करोतीति भदन्तः प्रव्रजितो वा ॥

(१३१) ऋच्छति गच्छति स ऋच्छरः । ऋच्छरा वेश्या वा । बाहुलकात् वद-
तीति वदरम् । वदर्याः फलं वा कन्दति वैकल्यं करोतीति कदरः श्वेतखदिरो वा ।
कपिलकादित्वाह्वे गौरादित्वान् ङीष् कदली । कदरी । वदरी । मन्दरकन्दर-
शीकरकोटरशवरसमरवर्वरवर्करकर्परपिञ्जराम्बराहम्बरजर्जरकर्करनखरतोमरप्रभृ-
तयोऽपि-अरप्रत्ययान्ता बहुलवचनादेव साधनीयाः ॥

अर्त्तिकलिश्चसिचसिदेविवासिभ्यश्चित् ॥ १३२ ॥ अररः ।
कसरः । असरः । चसरः । देवरः वासरः । १३२ ॥

कुवः करन् ॥ १३३ ॥ कुररः । १३३ ॥

अङ्गिमदिमन्दिभ्य आरन् ॥ १३४ ॥ अङ्गारः । मदारः ।
मन्दारः ॥ १३४ ॥

गडेः कड च ॥ १३५ ॥ कडारः । १३५ ॥

शृङ्गारभृङ्गारौ ॥ १३६ ॥

कञ्जिमृजिभ्यां चित् ॥ १३७ ॥ कञ्जारः । मार्जारः । १३७ ॥

कसेः किदुच्चोपधायाः ॥ १३८ ॥ कुमारः ॥ १३८ ॥

(१३२) ऋच्छति गच्छति यतः स, अररः । कपाटो वा । कामयतेऽसौ कसरः ।
कामुको वा । आभ्यतीति असरः षट्पदः । कामुको वा । चमति भक्षयतीति चसरः ।
मृगभेदो वा । गौरादित्वात् स्त्रियां डीष् । चमरी सुरा गौः । चमर्या अयं चामरी
वालसमूहः । दौव्यति क्रीडादिकं करोतीति देवरः । विधवाया द्वितीयः पतिः पत्युः
कनिष्ठभ्राता । वासयतीति वासरः मङ्गलादिवारो वा ॥

(१३३) कौति शब्दयतीति कुररः । पक्षिभेदो वा ॥

(१३४) अङ्गति गच्छति स अङ्गारः । निर्धूमोऽग्निर्मूिमिविकारो वा । माद्यति
मत्तो भवतीति मदारः । वराहो वा । मन्दते स्तौतीति मन्दारः । निम्बतरुर्कद्वचो
वा । बाहुलकान्मन्धातोराहप्रत्ययोऽपि भवति । मन्दतेऽसौ मन्दारः । निम्बाकौ वा ॥

(१३५) गडति सिञ्चतीति कडारः । पीतवर्णो वा ॥

(१३६) शृणाति हिनस्तीति शृङ्गारः । हस्तिशोभा नाट्यरसो दम्पत्योर-
न्योऽन्यं सम्भोगस्पृहा वा । अत्र धातोर्नुमृङ्गस्वादेशश्च । विभर्त्ति पुष्यतीति भृङ्गारः ।
सुवर्णपातविशेषो वा । स्त्रियां भृङ्गारी कौटजातिभेदो वा । भींगर इति प्रसिद्धः ॥

(१३७) कञ्जति रीतीति कञ्जारः । मयूरो व्यञ्जनं वा । मार्ष्टि शन्यतीति
मार्जारः । विडालो वा । स्त्रियां मार्जारी ॥

(१३८) चिदनुवर्त्तते । कामयते भोगानिति कुमारः । शिशुर्युवराजो वा ।
कुमारक्रीडावामित्यस्मादपि पञ्चाद्यचि कृते कुमारशब्दो व्युत्पद्यते तदुपायान्तर-
मर्थभेदश्च ॥

तुषाराद्यश्च ॥ १३६ ॥ तुषारः । कासारः । सहारः ॥ १३६ ॥

दौडो नुट् च ॥ १४० ॥ दौनारः ॥ १४० ॥

सर्चोरपः षुक् च ॥ १४१ ॥ सर्षपः ॥ १४१ ॥

उषिकुटिदलिकचिखजिभ्यः कपन् ॥ १४२ ॥ उषपः । कुटपः ।
दलपः । कचपम् । खजपम् ॥ १४२ ॥

कणोः संप्रसारणं च ॥ १४३ ॥ कुणपम् ॥ १४३ ॥

कपश्चाक्रवर्मणस्य ॥ १४४ ॥

विटपविष्टपविशिपोलपाः ॥ १४५ ॥

वृतेस्तिकन् ॥ १४६ ॥ वर्त्तिका ॥ १४६ ॥

(१३६) यस्युच्यति येन वा तत्तुषारम् । हिमं वा । कासते शब्दयति निन्दति
वा स कासारः । सरसौ वा । सहतीति सहारः । आत्मभेदो वा । तर्कयति भाषते
ऽसौ तर्कारः । स्त्रियां गौरादित्वात् तर्कारी । जयन्ती विशेषलता वा ॥

(१४०) दीयते चयति येन वा स दौनारः । सुवर्णाभरणं वा ॥

(१४१) सरति गच्छति स सर्षपः । कटुस्नेहवान् वा ॥

(१४२) ओषति दहति स उषपः । अग्निः सूर्यो वा । कुटतीति कुटपः ।
मानभांडं वा । दालयति विदारयतीति दलपः । प्रहारो वा । कचते बध्नातीति
कचपम् । शाकपात्रं वा । खजति मथ्नाति मथ्यत इति खजपम् । घृतं वा ॥

(१४३) कणति शब्दं करोतीति कुणपः । शवो मृद्भेदो वा ॥

(१४४) चाक्रवर्मणस्य मते कपे सति प्रत्ययस्यादिरुदात्तः । अन्यमते सङ्घा-
तस्याद्युदात्तत्वम् ॥

(१४५) कपप्रत्ययान्ता निपाताः वेटति शब्दयति वायुनेति विटपः । शाखा-
विस्तारो वा । विशन्ति यत्रेति विष्टपम् । भुषणं वा । त्रिविष्टपः । सुखविशिषभोगो
वा । धातोर्विकारस्य पत्वम् । प्रत्ययस्य तुट् च । त्रिविष्टप इति वा । विशन्ति यत्रेति
विशिषम् । मन्दिरं वा । प्रत्ययादेरित्वम् । बलते संवृणीतीत्युलपम् । कोमलदणं
वा । धात्वादेः संप्रसारणम् ॥

(१४६) वर्त्ततेऽसौ वर्त्तिका पश्चिभेदो वा । यस्य हत धातोर्बुल् प्रत्यये वर्त्तिका
शब्दस्तत्र वर्त्तिकेनेत्वंनिषेधाद्वर्त्तिका इत्येव । तत्रोणादीनामव्युत्पन्नत्वाद्वर्त्तिकाव्युत्पन्न
इति भेदः ॥

कृतिभिदिलतिभ्यः कित् ॥ १४७ ॥ कृत्तिका । भित्तिका ।
लत्तिका ॥ १४७ ॥

इष्यशिभ्यां तकन् ॥ १४८ ॥ इष्टका । अष्टका ॥ १४८ ॥

इणस्तशन्तशसुनौ ॥ १४९ ॥ एतशः । एतशाः ॥ १४९ ॥

विपतिभ्यां तनन् ॥ १५० ॥ वेतनम् । पत्तनम् ॥ १५० ॥

ददलिभ्यां भः ॥ १५१ ॥ दर्भः । दल्भः ॥ १५१ ॥

अर्त्तिगृभ्यां भनन् ॥ १५२ ॥ अर्भः । गर्भः ॥ १५२ ॥

इणः कित् ॥ १५३ ॥ इभः ॥ १५३ ॥

असिसञ्जिभ्यां क्थिन् ॥ १५४ ॥ अस्थि । सक्थि ॥ १५३ ॥

(१४७) कृन्ततीति कृत्तिका । नक्षत्रं वा । भिनत्तीति भित्तिका भित्तिर्वा ।
लततीति लत्तिका गोधा वा ॥

(१४८) इष्यतेऽसाविष्टका ॥ अश्नुते सा अष्टका । वैदिककर्मविशेषो वा ।
वाहुलकात् मस्यति परिणमतीति मस्तकम् । शिरो वा । दधातीति धातकम् ।
स्त्रियां धातकौ पुष्पभेदः ॥

(१४९) एति प्राप्नोतीति एतशः । एतशाः । एतशौ । अश्वो ब्राह्मणो वा ।
एकोऽदन्तोऽपरः सान्तः ॥

(१५०) वेत्ति प्राप्नोति खादति वा तद्वेतनम् । भृतिर्वा । वेतनेन जीवति
वैतनिकः कर्मकरः । पतति गच्छतीति पत्तनम् । नगरं वा ॥

(१५१) दृणाति विदारयतीति दर्भः । कुशो वा । दलते विशीर्णो भवतीति
दल्भः । ऋषिचक्रं वा ॥

(१५२) इयर्त्ति गच्छतीत्यर्भः । शिशुर्वा । अल्पोऽर्भोऽर्भकः । गिरति गृणाल्यु-
पदिशतीति गर्भः । जठरं तत्रस्थो वा । गर्भादप्राणिनीति तारकादित्वादितच् ।
गर्भिताः शालयः । प्राणिनि तु गर्भिणी ॥

(१५३) एतीति इभः । हस्ती वा ॥

(१५४) अस्यति प्रक्षिपति येन तत् अस्थि । कीकसं शरीरान्तरवयवो वा ।
सजतीति सक्थि । ऊरुदेशो वा ॥

सुषिकुषिशुषिभ्यः क्सिः ॥ १५५ ॥ सुक्षिः । कुक्षिः । शुक्षिः ॥ १५५ ॥

अशेर्नित् ॥ १५६ ॥ अक्षिः ॥ १५६ ॥

इषेः क्सुः ॥ १५७ ॥ इक्षुः १५७ ॥

अवितृस्तृतन्त्रिभ्य ईः ॥ १५८ ॥ अवीः । तरौः । स्तरी ।
तन्त्रीः ॥ १५८ ॥

यापोः किट् द्वे च ॥ १५९ ॥ ययीः । पपीः ॥ १५९ ॥

लक्षेमुट् च ॥ १६० ॥ लक्ष्मीः ॥ १६० ॥

इत्युणादिषु तृतीयः पादः ॥

(१५५) श्लोषति दहतीति सुक्षिः । अग्निर्वा । कुष्णाति निष्कृषतीति कुक्षिः ।
जठरं गर्भाशयो वा । शोषयतीति शुक्षिः । वायुर्वा । अत्रान्तर्गतौ णिच् तस्य च
पर्यशुङ्वत् णिलुक् ॥

(१५६) अश्नुते व्याप्नोति विषयान्, येन तदक्षि । नेत्रं वा ॥

(१५७) इष्यते स इक्षुः । मधु दणं वा ॥

(१५८) अवतीति अवीः । रजस्वला स्त्री वा । तरति यया सा तरौः । नौका
वस्त्रादिरक्षकं भाण्डं वा । स्तणोत्याच्छादयतीति स्तरीः । धूमो वा । तन्त्रयति
कुटुवं धरतीति तन्त्रीः । वीणा वा । णिलोपः ॥

(१५९) याति प्रापयति स ययीः । अश्वो वा । पिवति पाति रक्षतीति वा स
पपीः । सूर्यश्चन्द्रो वा ॥

(१६०) लक्षयति पश्यत्यङ्कयति वा सा लक्ष्मीः । विभूतिर्वा । लक्ष्मीरस्या-
स्तीति लक्ष्मणः । लक्ष्म्या अक्षेति पामादिपाठान्त्वर्थीयो नः ॥

इत्युणादिव्याख्यायां वैदिकलौकिककोषे तृतीयः पादः ॥

वातप्रमौः ॥ १ ॥

ऋतन्यञ्जिवन्यञ्ज्यर्पिसद्यत्यङ्गिकुयुक्कशिभ्यः कलिच्यतु-
जलिजिष्णु निष्ठजिसन्स्यनिथिन्नुल्यसासानुकः ॥ २ ॥ रत्निः ।
तन्यतुः । अञ्जलिः । वनिष्णुः । अञ्जिष्ठः । अर्पिसः । मत्स्यः ।
अतिथिः । अङ्गुलिः । कवसः । यवासः । कशानुः ॥ २ ॥

श्वः करन् ॥ ३ ॥ शर्करा ॥ ३ ॥

पुषः कित् ॥ ४ ॥ पुष्करम् ॥ ४ ॥

कलंश्च ॥ ५ ॥ पुष्कलम् ॥ ५ ॥

(१) वात इव प्रमिषोति प्रक्षिपतीति वातप्रमौः । अतिशीघ्रगामी हरिण-
विशेषो वा । पुंल्लिङ्ग एवायं शब्दः । वातप्रमीन् ऋगान् । ङी तु वातप्रमी । अमि
वातप्रमीम् । ब्राह्मलकात् । वष्टि कामयतेऽसौ उशी वाञ्छा तत्कुशलानरा अस्मिन्
सन्तीति उशीनरो देशः अत्र बहुलवचनादेव सम्प्रसारणम् ॥

(२) एभ्यो द्वादशधातुभ्यः कलिजादयो द्वादश प्रत्यया यथासंख्यं भवन्ति ।
ऋच्छति गच्छतीति रत्निः । वडमुष्टिहस्तो वा । प्रच्छताङ्गुलिररत्निः तनु-यतुच् ।
तनोति विस्त्रणोतीति तन्यतुः । वायूरातिर्वा । अञ्जू-अलिच् । अनक्ति व्यक्तं
करोतीति, अञ्जलिः । संयुतो करो वा । वनु-इष्णुच् । वनोति याचतेऽसौ वनिष्णुः ।
अपानवायुर्वा । अञ्जू-इष्ठच् । अनक्ति प्रकटयति पदार्थानिति, अञ्जिष्ठः ।
सूर्यो वा । अर्पि-इसन् । अर्पयतीति, अर्पिसः । अग्रमांसं वा । माद्यति हृथतीति
मत्स्यः । मीनो वा । अत-इथिन् । अतति निरन्तरं गच्छति भ्रमतीत्यतिथिः ।
अकस्मादागतः सज्जनो वा । न विद्यते निवृत्तातिथिरस्येति व्युत्पत्यन्तरम् ।
स्त्रियां कृदिकारादक्तिन इति ङीष् अतिथी स्त्री । अङ्गि-उलि । अङ्गति
चेष्टतेऽनेन सोऽङ्गुलिः । करशाखा वा । कु-अस । कौति वा कवत इति कवसः ।
कण्टकजातिर्वा । अच इति पाठान्तरम् । तदा कषत इति कवचम् । यीति
मित्रयतीति यवासः । कण्टकवृक्षभेदो वा । कषति तनूकरोतीति कशानुः । अग्निर्वा ॥

(३) शृणातीति शर्करा । खण्डविकारो मृद्विकारो वा ॥

(४) पुष्पातीति पुष्करम् । अन्तरिक्षं कमलमुदकं वा ॥

(५) पुष धातोः कलनपि । पुष्यतीति पुष्कलम् पूर्णं वा ॥

गमेरिनिः ॥ ६ ॥ गमी ॥ ६ ॥

आडि णित् ॥ ७ ॥ आगामी ॥ ७ ॥

भुवश्च ॥ ८ ॥ भावी ॥ ८ ॥

प्रे स्थः ॥ ९ ॥ प्रस्थायी ॥ ९ ॥

परमे कित् ॥ १० ॥ परमेष्ठी ॥ १० ॥

मन्यः ॥ ११ ॥ मन्याः । मन्यानी ॥ ११ ॥

पतः स्थ च ॥ १२ ॥ पन्थाः ॥ १२ ॥

खजेराकः ॥ १३ ॥ खजाकः ॥ १३ ॥

वलाकादयश्च ॥ १४ ॥ वलाका । शलाका । पताका ॥ १४ ॥

(६) गमिष्यतीति गमी पथिको वा । भविष्यति गम्यादय इति कालनियमः ॥

(७) णित्वाद् वृद्धिः । आगमिष्यतीत्यागामी ॥

(८) इनिः णित् । भविष्यतीति भावी ॥

(९) इनिः णित् । णित्वाद्युक् । प्रस्थातुमिच्छतीति प्रस्थायी गन्तुमनाः ॥

(१०) परमे उत्तमे व्यवहारे तिष्ठतीति परमेष्ठी । सर्वेषां पितामह ईश्वरो वा । सप्तम्या अलुक् षट्वं च ॥

(११) इनिः कित् कित्त्वान्नलोपः । मन्ययति विलोडयतीति मन्याः । मथिन् शब्दस्य सर्वनामस्थान आत्वम् । मन्यानी । मन्यानः । दद्यादिमन्यनदण्डो वज्रोवायुर्वा ॥

(१२) पतन्ति गच्छन्ति यत्र स पन्था मार्गः । पन्थानी । पूर्ववदात्वम् । पथेगतावित्यस्माद्धातोः पचाद्यचि कृते पथः । पथी । पथाः । इत्यदन्तोऽपि दृश्यते ॥

(१३) खजति मथ्नातीति खजाकः पत्तिः । खजाकादर्विर्वा । बहुलवचना न्मन्यन्तेस्तूयन्ते तानि मन्दाकानि स्त्रोतांसि वा । तान्यस्याः सन्तीति मन्दाकिनी । नदीभेदः ॥

(१४) वलते संवृणोत्यसौ वलाका । वकपंक्तिः कामिनी वलाको वकपची वा । मन्यते जानाति सा मनाका । हस्तिनी वा । पुनातीति पवाका । दां शलन्ति गच्छन्तीति शलाका । अञ्जनयष्टिका वा । पटति गच्छतीति पटाकः । पची वा । पत्यते ज्ञायतेऽसौ पताका ध्वजा वा ॥

पिनाकाद्यश्च ॥ १५ ॥ पिनाकः । तडाकः ॥ १५ ॥

कषिदूषिभ्यामीकन् ॥ १६ ॥ कषीका । दूषीका ॥ १६ ॥

अनिदूषिभ्यां किञ्च ॥ १७ ॥ अनीकम् । दूषीकम् ॥ १७ ॥

चङ्कणः कङ्कण च ॥ १८ ॥ कङ्कणीका ॥ १८ ॥

शृपृष्टजां द्वे रुक् चाम्भ्यासस्य ॥ १९ ॥ शर्शरीकः ॥ पर्परौकः ।

वर्वरीकः । १९ ॥

फर्फरीकाद्यश्च ॥ २० ॥ फर्फरीकम् । दर्दरीकम् । तित्ति-
डीकः । चञ्चरीकः । मर्मरीकः । कर्करीकम् । पुण्डरीकः ॥ २० ॥

(१५) पाति रक्षयतीति पिनाकः । त्रिशूलं धातुर्वा । ताडयत्याहन्तीति तडाका-
प्रभा वा । बहुलवचनात् । आगप्रत्यये सति तडागः । इत्यपिसिद्धं भवति । भन्दतेऽसौ
भदाकः । कल्याणम् । श्यायति प्राप्नोतीति श्यामाकः । ब्रीहिभेदो वा । समा इति प्रसिद्धः ।
सुगागमो निपातनम् । न भाति प्रकाशत इति नभाकम् । मेघयुतमाकाशं वा ।
पिनष्टि सम्यक्चूर्णयति स पिण्याकः । तिलकलको वा । धातोः षकारस्य धत्वं युगाग-
मश्च । वर्तते येन स वार्त्ताकी वार्त्ताकौ वा । वनभण्टा इति प्रसिद्धः । धातोर्द्विद्धिः ।
गुवति पुरीषमुत्सृजतीति गुवाकः । पूगीफलं वा । कुटादित्वादु गुणाभावः ॥

(१६) कषति हिनस्तीति कषीका । पक्षिजातिर्वा । दूषयतीति दूषीका । नेत्रमलं वा ।

(१७) अनिति जीवयतीत्यनीकम् । विरुद्धं सैन्यं वा । हृथति तुष्टो भवतीति
येन तत् हूषीकम् । ज्ञानेन्द्रियं वा ॥

(१८) यङ्लुगन्तात्कणधातोरीकन् कंकणादेशश्च । पुनः पुनः कणति शब्दयतीति
कङ्कणीका । वाद्यसाधनविशेषो वा । घरियार इति प्रसिद्धः । किङ्किणीका
चुद्रघण्टिका । बहुलवचनात् सिद्धम् ॥

(१९) शृणाति हिनस्तीति शर्शरीको हिंसकः । पिपत्तिं पालयतीति पर्परौकः
सूर्यो वा । हृणोति स्त्रीकरोतीति वर्वरीकः । कुटिलकेशो जनो वा ॥

(२०) स्फुरति चेतनो भवतीति फर्फरीकम् । पत्रादिसहितः शाखायन्थिर्वा
ईकन्प्रत्यये धातोः फर्फरादेशः । दृणातीति दर्दरीकम् । वादित्रं वा । करोति
कार्याणि येन तत् कर्करीकम् । शरीरं वा । कर्करीका गलन्तिका । कलशी इति
प्रसिद्धा । अत्रोभयत्र धातोर्द्वित्वमभ्यासस्य रुक् च । तिम्यत्यार्द्रीकरोतीति तित्ति-
डीकः । वृक्षजातिर्वा । मकारस्य डकारोऽभ्यासस्य नुट् च । चरति गच्छति भक्षयति
वा स चञ्चरीकः । भ्रमरो वा । अभ्यासस्य नुम् । म्रियतेऽसौ मर्मरीकः । हीनजनो
वा । पुणति शुभकर्माचरतीति पुण्डरीकम् । श्वेताम्भोजं सितपत्रं भेषजं व्याघ्रोऽग्निर्वा ॥

ईषेः किङ् धस्वश्च ॥ २१ ॥ इषीका । २१ ॥

ऋजेश्च ॥ २२ ॥ ऋजीकः । २२ ॥

सर्त्तेर्नुम् च ॥ २३ ॥ सृणीका । २३ ॥

मृडः कीकच् कङ्कणौ ॥ २४ ॥ मृडीकः । मृडङ्कणः । २४ ॥

अलीकादयश्च ॥ २५ ॥ अलीकम् । व्यलीकम् । वलीकम् । २५ ॥

कृट्टभ्यामीषन् ॥ २६ ॥ करीषः । तरौषः ॥ २६ ॥

शृपृभ्यां किञ्च ॥ २७ ॥ शिरीषः । पुरीषम् ॥ २७ ॥

अर्जैर्ज च ॥ २८ ॥ ऋजीषम् ॥ २८ ॥

अम्बरीषः ॥ २९ ॥

(२१) कित्वाद् गुणाभावः । ईषते गच्छतीति इषीका । मुञ्जादिशलाका वा ॥

(२२) कित् । अर्जति गच्छतीति ऋजीकः । उपहतो वा कित्वाद्गुणनिषेधः ॥

(२३) सरति प्राप्नोतीति सृणीका । लाला वा । ष्ठीवनभेदः । लार इतिप्रसिद्धम् ॥

(२४) मृडति सुखयतीति मृडीकः । सुखदाता । मृडङ्कणः । वाली वा । बहुलवचनात् कायति शब्दयतीति कङ्कणः । करभूषणं वा ॥

(२५) कीकन् प्रत्ययान्ता अमी निपात्यन्ते । अलति वारयतीत्यलीकम् । मिथ्या वा । विपूर्वाद् व्यलीकमप्रियं खेदो वा । वलते संवृणोत्यनेन तत् वलीकम् । मृहच्छादनसामग्री वा । अन्येपि वलते संवृतो भवतीति वलीकम् । छिद्रमृषिभेदो वा । तस्यापत्यं वाल्मीकिः । मुडागमः । वहतीति वाहीकः । गौरश्चो वा । धातोर्हृदिः । सुष्ठु प्रेतीति सुप्रतीकः । अग्निर्वा । धातोस्तुट् च ॥

(२६) कीर्यते विचिष्यते स करीषः । शुङ्कगोमयं वा । तरति येन स तरौषः । नौका वा ॥

(२७) शृणाति हिनस्तीति शिरीषः । ह्वनभेदो वा । पिपत्तिं तत् पुरीषम् । शकटा ॥

(२८) अर्जति सञ्चितो भवति यस्मात्तत्, ऋजीषम् । पिष्टपचनं वा । तदा इतिप्रसिद्धम् ॥

(२९) अम्बते शब्दयतीति, अम्बरीषः । आकाशः स्वेदनी वा । भाङ् इति प्रसिद्धम् ॥

कृष्णपृष्ठपटिशौटिभ्य ईरन् ॥ ३० ॥ करीरः । शरीरम् । परी-
रम् । कटीरः । पटीरः । शौटीरः ॥ ३० ॥

वशेः किञ्च ॥ ३१ ॥ उशीरम् ॥ ३१ ॥

कशेर्मुट् च ॥ ३२ ॥ कश्मीरः ॥ ३२ ॥

कृञ् उच्च ॥ ३३ ॥ कुरीरम् ॥ ३३ ॥

वसेः किञ्च ॥ ३४ ॥ क्षीरम् ॥ ३४ ॥

गभीरगम्भीरौ ॥ ३५ ॥

विषाविहा ॥ ३६ ॥

पच एलिमच् ॥ ३७ ॥ पचेलिमः ॥ ३७ ॥

(३०) किरतीति करीरः । वृक्षभेदो वंशाङ्कुरो वा । शीर्यते हिंस्यत इति
शरीरम् । प्राणिकायो वा । पूर्यतेऽनेनेति परीरम् । फलं वा । कव्यत आव्रियतेऽसौ
कटीरः । कुटी जघनदेशो वा । पटति गच्छतीति पटीरः । कन्दुकः कामखन्दन-
वृक्षो वा । शौटति गर्वं करोतीति शौटीरः । त्यागो वीरो वा । ब्राह्मणादित्वात्
यञ् शौटीर्यम् । वैराग्यम् । बहुलवचनात् । हिण्डत इतस्ततो गच्छतीति हिंडीरः ।
समुद्रफेनो दाडिमो वा । किर्मीरं तूणीरजम्बीरकुम्भीरकुटीरादयोऽपीरन् प्रत्ययान्ता
वाहुलकादेव बोद्धव्याः ॥

(३१) उश्यते काम्यते तदुशीरम् । वीरणमूलं वा । खस २ इति प्रसिद्धम् ॥

(३२) ईरनित्येव । कष्टे गच्छति शास्ति वाऽसौ कश्मीरः । देशभेदो वा ॥

(३३) क्रियते तत् कुरीरम् । मैथुनं वा । कपिलकादित्वात्तत्वे कुलीरः ।
जलजन्तुभेदो वा ॥

(३४) अद्यते भक्ष्यते यत्तत् क्षीरम् दुग्धं वा ॥

(३५) गमधातोर्मकारस्य भकार एकस्मिन् पचे नुमागमश्च । गम्यते प्राप्यते
ज्ञायते वा स गभीरः शान्तो महाशयो वा । विशिष्यलिङ्गावितौ शब्दौ ॥

(३६) विशिषेण स्यति कर्मान्तं करोतीति विषा । बुद्धिर्वा । विशिषेण जहाति
त्यजति दुःखमिति विहा सुखलोको वा । स्वभावादनयोरव्ययत्वम् ॥

(३७) पचति पदार्थानिति पचेलिमः । अग्निः सूर्यो वा । यस्तु पचधातोः
सामान्य वार्त्तिकेन कृत्यार्थे केलिमञ् विधीयते स भावे कर्मणि कर्मकर्त्तरिवेतिभेदः ॥

शौडो धुक्लक्वलज्वालनः ॥ ३८ ॥ शौधु । शीलम् । शै-
वलः । शेवालम् । शेपालः ॥ ३८ ॥

मृकणिभ्यामूकणौ ॥ ३९ ॥ मरुकः । काणूकः ॥ ३९ ॥

वलरुकः ॥ ४० ॥ वलूकः ॥ ४० ॥

उलूकादयश्च ॥ ४१ ॥ उलूकः । वावदूकः । भलूकः । शम्बूकः ॥ ४१ ॥

शलिमण्डभ्यामूकण ॥ ४२ ॥ शालूकम् मण्डूकः । ४२ ॥

नियो मिः ॥ ४३ ॥ नेमिः । ४३ ॥

अर्त्तरुच्च ॥ ४४ ॥ जर्मिः । ४४ ॥

भुवः कित् ॥ ४५ ॥ भूमिः । ४५ ॥

अश्रुतेरश्च ॥ ४६ ॥ रश्मिः । ४६ ॥

(३८) शेते येन तत् शौधु । मयं वा । शीलं स्वभावः । शैवलम् । शेवालम् ।
वाहुलकात् प्रत्ययवकारस्य प्रकारः । शेपालम् । जलनील्यानामान्येतानि । उदके
लता रूपमुत्पन्नं सेवार इति प्रसिद्धम् ॥

(३९) म्रियतेऽसौ मरुकः । मृगो वा । कणति शब्दयतीति काणूकः काको वा ॥

(४०) वलते संवृणोतीति वलूकः । पक्षी कमलमूलं वा ॥

(४१) ऊक प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते । वलतेऽसावलूकः । पक्षिभेदो वा । धातोः
संप्रसारणम् । भृशं वतीति वावदूको वक्ता । यङ्लुगन्तादूकः । जलशक्तिर्वा । धातो-
र्बुक् । बाहुलकादुक्तप्रत्यये शम्बुक इत्यपि सिद्धम् । भल्लते परितो भाषतेऽसौ भल्लूकः ।
ऋचो वा । बाहुलकाद् ऋस्वे भल्लूक इत्यपि । तथा भल्लतेऽसौ भालूकः स एव ।
महतीति मधूकः । वृक्षभेदो वा । तथा । एलूकजम्बूकवन्तूकवास्तूकादयोऽप्यत्रैव
द्रष्टव्याः ॥

(४२) शल्यते प्राप्यते यस्तत्, शालूकम् । मूलद्रव्यं वा । मण्डति शोभते ऽसौ
मण्डूकः । भेको जलजन्तुर्वा ॥

(४३) नयतीति नेमिः । चक्रावयवो वा बाहुलकात् । याति कार्याणि प्रापय-
तीति यामिः । आदेर्जत्वं जामिः । खसा कुलस्त्री वा ॥

(४४) ऋच्छति गच्छतीत्यूर्मिः । जलतरङ्गो वा ॥

(४५) भवन्ति पदार्था अस्यामिति भूमिः । उत्पत्तिस्थानम् । अस्या भूमिर्भू-
मिका । कृदिकारादिति ङीष् भूमी ॥

(४६) अश्रुते व्याप्नोतीति रश्मिः । किरणा रज्जुर्वा ।

दलितः ॥ ४७ ॥

वीज्याज्वरिभ्यो निः ॥ ४८ ॥ वेणिः । ज्यानिः । जूर्णिः ॥ ४८ ॥

सृष्टिभ्यां कित् ॥ ४९ ॥ सृणिः । वृष्टिः । ४९ ॥

अङ्गेर्नलोपश्च ॥ ५० ॥ अग्निः । ५० ॥

वह्निश्चिश्चुयद्गुलाहात्वरिभ्यो नित् ॥ ५१ ॥ वह्निः । अग्निः ।
श्रोणिः । योनिः । द्रोणिः । ग्लानिः । हानिः । तूर्णिः । ५१ ॥

घृणिष्टग्निपाणिर्चूर्णिभूर्णयः ॥ ५२ ॥

वृष्ट्यां विन् ॥ ५३ ॥ वर्विः । दर्विः । ५३ ॥

(४७) दलति येन विट्णातीति दलितः । सूर्यकिरण उत्तमायुधं वा ॥

(४८) वीयते क्षिप्यते स वेणिः । केशविन्यासो वा । निपातनासत्वम् । जिनाति
वयोहीनो भवतीति ज्यानिः । क्षतिर्वा । ज्वरति रोगी भवतीति जूर्णिः । स्त्रीरोगो
वा । बाहुलकात् क्षीति शब्दयतीति क्षोणिः । क्षीप् क्षीणौ । भूमिर्वा । क्षीणातीति
क्रोणिः । क्रोणी ॥

(४९) सरति गच्छतीति सृणिः । अङ्कुशं वा । वर्षतीति वृष्टिः । क्षत्रियो वैश्य वा ॥

(५०) अङ्गति गच्छति प्राप्नोति जानाति वा सोऽग्निः । वह्निः । प्रसिद्धो वा ॥

(५१) वहतीति वह्निः । अग्निर्वा । अयति सेवतेऽसौ अग्निः । पङ्क्तिर्वा ।
निपूर्वान्निश्रेणी । अधिरोहणी वा । शृणोतीति श्रोणिः । कटिप्रदेशो वा । यीति
संयोजयति पृथक्करोति वा स योनिः । कारणमुपस्थेन्द्रियं वा । द्रवन्ति गच्छन्ति
यत्र स द्रोणिः । सेवनी देशविशेषो वा । ग्लायति यस्मिन् स ग्लानिः । दीर्घत्व्यं
दीर्घनस्यं वा । हीयते जहाति वा स हानिः । अपचयो वा । प्रहाणिः परिहाणिः ।
कृत्यश्च इति णत्वम् । त्वरति सम्यग्भ्रमतीति तूर्णिः । मनो वा । बाहुलवचनात् ।
श्रोतेऽसौ श्रिनिः । क्षत्रियो वा । धातोर्ङ्गस्त्वञ् च । स्नायतीति ग्लानिः । आनन्दक्षयो वा ॥

(५२) जिघर्षि क्षरति दीप्यते वा स घृणिः । किरणो वा । स्पृशति संयुक्तो
भवतीति घृष्टिः । अस्पृशरीरो वा । धातोः सलोपः पर्वति सिञ्चतीति पाणिः ।
पादतलं वा । धातोर्हृदिः । चरति गच्छति भक्षयति चूर्णयति प्रेरयतीति वा चूर्णिः ।
विवरणं वा । विभर्त्ति धरति सर्वमिति भूर्णिः । पृथिवी वा । बाहुलकात् । धुरति
शब्दयतीति घूर्णिः ॥

(५३) वृणोतीति वर्विः । भक्षको वा । वृणाति यथा सा दर्विः । सूपचालनपात्रं
वा । क्षीप् । दर्वी ॥

जृष्टृस्तृजागृभ्यः किन् ॥ ५४ ॥ जीर्विः । शीर्विः । स्तीर्विः ।
जागृविः ॥ ५४ ॥

दिवो द्वे दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥ ५५ ॥ दीदिविः । ५५ ॥

कृविघृष्विक्कृविस्थविकिकीदिवि ॥ ५६ ॥

पातेर्डतिः ॥ ५७ ॥ पतिः । ५७ ॥

शक्तेर्ऋतिन् ॥ ५८ ॥ शकृत् ॥ ५८ ॥

अमेरतिः ॥ ५९ ॥ अमतिः ॥ ५९ ॥

वहिवस्यर्त्तिभ्यश्चित् ॥ ६० ॥ वहतिः । वसतिः । अरतिः ॥ ६० ॥

अञ्चेः कौ वा ॥ ६१ ॥ अङ्कतिः । अञ्चतिः ॥ ६१ ॥

(५४) जीर्यतीति जीर्विः । पशुर्वा । शृणातीति शीर्विः । स्तृणीत्याच्छादयतीति स्तीर्विः । अध्वर्युर्वा । जागर्त्तीति जागृविः नृपतिर्वा ॥

(५५) दीव्यतीति दीदिविः । सुखमन्नं वा । कन्प्रत्ययस्य बाहुलकादेवेत्सञ्ज्ञा लोपी न भवतः ॥

(५६) करोति येन स कृविः । तन्तुवायद्रव्यं वा । वर्षति सिञ्चतीति घृष्विः । वराहो वा । व्यति सूक्ष्मं करोतीति कृविः । दीप्तिर्वा । धातोर्ऋस्वत्वं च । तिष्ठतीति स्थविः । तन्तुवायो वा । अत्रापि ह्रस्वः । किकिना शब्देन दीव्यतीति किकिदीविः । चाषो वा । नीलकण्ठ इति प्रसिद्धः । किकीदिविः । किकिदिविः । किकिदीविः । किकिदिवः । किकीदीविः । इति पञ्चभेदा बहुलवचनादेव मन्तव्याः ॥

(५७) पाति रक्षतीति पतिः । स्वामी वा ।

(५८) शक्नोतीति शकृत् । बाहुलकात् । यजतीति यकृत् । कालखण्डं वा । धातोर्जकारस्य ककारः ॥

(५९) अमति गच्छतीति, अमतिः कालो वा । बाहुलकात् व्रतमाचरतीति व्रततिः । विस्तरो व्रतती लता वा । मालयति गन्धं धारयतीति मालती मालतिः । पुमना वा । चमेली इति प्रसिद्धा । स्थापयति धर्ममिति स्थपतिः । वाग्मी यज्ञ-कर्त्ता वा । स्थन्तस्य स्थाधातोः पुकि सति ऋस्वत्वम् ॥

(६०) वहति प्रापयति पदार्थान् प्राप्नोति वेति वहतिः । पवनो वा । वसन्ति अत्रेति वसतिर्वसती वा गृहं रात्रिर्वा । ऋच्छति गच्छतीति, अरतिः क्रोधो वा । बाहुलकात् । अलति भूषयति समर्थो वा भवति । स, अलतिः । गीतमात्रिका वा ॥

(६१) अञ्चति गच्छति पूजयति वा स, अङ्कतिः । अञ्चतिः । वायुर्वा ॥

हन्तेरंह च ॥ ६२ ॥ अंहतिः ॥ ६२ ॥

रमेर्नित् ॥ ६३ ॥ रमतिः ॥ ६३ ॥

सूडः क्रिः ॥ ६४ ॥ सूरिः ॥ ६४ ॥

अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन् ॥ ६५ ॥ अद्रिः । शद्रिः । भूरिः ।
शुभिः ॥ ६५ ॥

वड्क्प्रादयश्च ॥ ६६ ॥ वड्क्क्रिः । वप्रिः । अंक्रिः । तन्द्रिः ।
भेरिः ॥ ६६ ॥

राशदिभ्यां त्रिप् ॥ ६७ ॥ रात्रिः । शत्रिः ॥ ६७ ॥

अदेस्त्रिनिश्च ॥ ६८ ॥ अत्री । अत्रिः ॥ ६८ ॥

पतेरत्रिन् ॥ ६९ ॥ पतत्रिः ॥ ६९ ॥

मुकणिभ्यामौचिः ॥ ७० ॥ मरौचिः । कणौचिः ॥ ७० ॥

(६२) अतिः । हन्त्यनेनेति, अंहतिः । दानं वा ॥

(६३) रमन्तेऽस्मिन् स रमतिः कालः कामो वा ॥

(६४) सूते प्राणिनः प्रसवति समर्थयतीति, सूरिः । पण्डितो वा । स्त्रियां सूरी ॥

(६५) योऽस्ति, अदन्ति यत्रेति वा स, अद्रिः । पर्वतो मेघो वृक्षः सूर्यो वा ।
श्रीयते शातयतीति शद्रिः । शर्करा वा । भवतीति भूरिबहु सुवर्णं वा । भूरिप्रयोज-
नमस्य स भौरिकः । कनकाध्यक्षो वा । शोभतेऽसौ शुभिः । चतुर्वेदविद्वद्ब्रह्मा वा ॥

(६६) वड्क्तेऽसौ वड्क्क्रिः । वाघभेदो गृहदारु वा । वपन्ति यस्मिन् स वप्रिः
क्षेत्रं वा । सम्प्रसारणाभावो बाहुलकात् । अंहयति भाषतेऽसावंहिः । पादो वा ।
तन्द्रिः सौत्रो धातुः । तन्दति क्षिप्नतीति तन्द्रिः मोहो वा । स्त्रियां तन्द्री । विभेति
येन स भेरिः । वायविशेषो वा । भेरी वा ॥

(६७) राति सुखं ददातीति रात्रिः । प्रसिद्धा वा । श्रीयते क्षिप्नतीति शत्रिः
हस्ती वा ॥

(६८) चात् त्रिप् । अस्ति भक्षयतीति, अत्री, । अत्रिणौ । पापं वा । अत्रिः ।
मुनिभेदो वा । तस्यापत्यमात्रेयः ॥

(६९) पततीति पतत्रिः । पक्षी वा । पतत्रयः । पक्षवाचकात्पतत्रशब्दान्मत्वर्थ-
इनिः । पतत्री । पतत्रिणौ ॥

(७०) द्वियतेऽसौ मरौचिः । दीप्तिर्महर्षिर्वा । कणति शब्दयतीति कणौचिः ।
पत्रादियुक्ता शाखा शब्दो वा ॥

श्वयतेषिचत् ॥ ७१ ॥ श्वयीचिः ॥ ७१ ॥

वेजो डिच्च ॥ ७२ ॥ वीचिः ॥ ७२ ॥

ऋहनिभ्यामूषन् ॥ ७३ ॥ अरूषः । हनूषः ॥ ७३ ॥

पुरः कुषन् ॥ ७४ ॥ पुरुषः । पूरुषः ॥ ७४ ॥

पृहनिक्लिभ्य उषच् ॥ ७५ ॥ परुषः । नहुषः । कलुषम् ॥ ७५ ॥

पौयेरूषन् ॥ ७६ ॥ पौयूषम् । पेयूषम् ॥ ७६ ॥

मस्जेनुं च ॥ ७७ ॥ मज्जूषा ॥ ७७ ॥

गण्डेश्च ॥ ७८ ॥ गण्डूषः ॥ ७८ ॥

अर्त्तरुः ॥ ७९ ॥ अररुः ॥ ७९ ॥

कुटः किञ्च ॥ ८० ॥ कुटरुः ॥ ८० ॥

शकादिभ्योऽटन् ॥ ८१ ॥ शकटः । कङ्कटः । देवटः । करटः ॥ ८१ ॥

(७१) श्वयति गच्छति वर्धते वा स श्वयीचिः । व्याधिर्वा ॥

(७२) वयति तन्तून् सन्तनोतीति वीचिः । डित्वाटिलोपः । तरङ्गो वा ॥

(७३) ऋच्छति गच्छतीति, अरूषः । सूर्यो वा । हन्तीति हनूषो दस्युः ॥

(७४) पुरत्यग्रं गच्छतीति पुरुषः पुमान् । अन्येषामपि दृश्यत इति दीर्घपूरुषो वा

(७५) पिपर्त्तीति परुषम् । निष्ठुरं वचो वा । नह्यति बध्नातीति नहुषः ।

राजर्षिः सर्पविशेषो वा । कलते शब्दयतीति कलुषम् । पापम् ॥

(७६) पौयति पौयते वा तत् पौयूषम् । पेयूषम् । नूतनं पयोऽमृतं वा । सप्त-

रात्रप्रसूतायाः क्षीरम् । बहुलवचनात् । अङ्कवते लक्षयतीति अङ्कूषः । नकुलो वा ॥

(७७) धातुर्नुम् । स चाचोऽन्यात्परः । जश्त्वसुत्वे । मज्जति शक्नो भवतीति

मज्जूषा । काष्ठमयं द्रव्यं वा ॥

(७८) गण्डति वदनावयवं दिशतीति गण्डूषः । अलादिना पूर्णं मुखम् कुक्षौ

इति प्रसिद्धम् ॥

(७९) ऋच्छति प्राप्नोति येन तत् । अररुः । आयुधं वा ॥

(८०) कुटतीति कुटरुः । वस्त्रगृहं वा ॥

(८१) शक्नोतीति शकटः । शकटं यानविशेष ऋषिर्वा यस्यापत्यं शकटायनः ।

वृणोतीति वरटः । कीटभेदो वरटा हंसयोषिडा । कङ्कते गच्छतीति कङ्कटः । कवचो

वा । सरति प्रसरतीति सरटः । कृकलासो वा । गिरगट इति प्रसिद्धः । देवते

लकटिकडिकाटिभ्योऽम्बच् ॥ ८२ ॥ करम्बम् । कदम्बः । कडम्बः । कटम्बः ॥ ८२ ॥

कदेर्णित पक्षिणि ॥ ८३ ॥ कादम्बः । ८३ ॥

कलिकर्दोरिमः ॥ ८४ ॥ कलमः । कर्दमः । ८४ ॥

कुणिपुल्योः किन्दच् ॥ ८५ ॥ कुणिन्दः । पुलिन्दः । ८५ ॥

कुपेर्वा वश्च ॥ ८६ ॥ कुबिन्दः । कुपिन्दः । ८६ ॥

नौ षञ्जेर्घथिन् ॥ ८७ ॥ निषङ्गथिः । ८७ ॥

उदृत्तेश्चित् ॥ ८८ ॥ उदरथिः । ८८ ॥

व्यवहरतीति देवटः । शिल्पी वा । कम्पते येन स कपटः । माया वा । धातोर्नलोपः । कर्मकर्मकर्पाः सौत्रा धातवः । कर्कतीति कर्कटः । जलजन्तुभेदो वा । मर्कतीति मर्कटः । वानरो वा । स्त्रियां गौरादित्वान् ङीष् । मर्कटो । कर्पतीति कर्पटः । छिन्नं पुराणं वस्त्रं वा । पर्पति गच्छतीति पपटः । ज्वरभूमिर्वा । कखति हसतीति कखटम् । कठिनं वा । कुगागमः । चपति सान्त्वयतीति येन स चपेटः । चर्पटो वा । प्रसृताङ्गुलिर्हस्तो वा । एकत्र प्रत्ययादेरेत्वमपरत्र रेफागमश्च । मयते प्राप्नोति यं स मयटः । प्रासादो वा । किरति विविप्रतीति करटः । काको वा । एवमन्येऽपि शब्दा अटन्प्रत्ययान्ता यथाप्रयोगं सध्याः ॥

(८२) करोतीति करम्बम् । व्यामिश्रम् कदतीति कदम्बः । वृक्षभेदो वा । कडल्यावृणोतीति कडम्बः । अग्रभागो वा । कटतीति कटम्बो वादित्रं वा ॥

(८३) कदति विकलो भवतीति कादम्बः पक्षिभेदो वा वक इति प्रसिद्धः ॥

(८४) कलते संख्यातीति कलमः । शालिभेदो वा । कर्दति कुक्षितं शब्दयतीति कर्दमः पापं वा ॥

(८५) कुण्यते शब्दयतेऽसौ कुणिन्दः । शब्दो वा । पोलति महान् भवतीति पुलिन्दः । शवरश्चाण्डालभेदो वा । बाहुलकात् । अलति भूषयतीति, अलिन्दः । गृहे कदेरो वा । प्रजादित्वाद्गणि आलिन्द इत्यपि सिद्धम् ॥

(८६) कुप्यति क्रुद्धो भवति स कुबिन्दः । कुपिन्दः । तन्तुवायो वा ॥

(८७) नितरां सजति सङ्गं करोतीति निषङ्गथिः । आलिङ्गको वा । वित्वात् कुत्वम् ॥

(८८) उदृच्छन्त्यूर्ध्वं गच्छन्त्यापोऽस्मिन् स उदरथिः । समुद्रो वा ॥

सर्त्तेशिञ्च ॥ ८६ ॥ सारथिः । ८६ ॥

खर्जिपिञ्जादिभ्य ऊरूलचौ ॥ ८७ ॥ खर्जूरः । कर्पूरः ।

धुस्तूरः । वल्लूरम् । पिञ्जूलम् । लाङ्गूलम् । ८७ ॥

कुवञ्चट् दीर्घञ्च ॥ ८८ ॥ कूचौ ॥ ८८ ॥

समीणः ॥ ८९ ॥ समीचः । समीचौ ॥ ८९ ॥

सिवेष्टेरू च ॥ ९० ॥ सूचः । सूचौ ॥ ९० ॥

शमेर्वन् ॥ ९१ ॥ शम्बः ॥ ९१ ॥

उल्वादयश्च ॥ ९२ ॥ उल्वम् । विल्वम् ॥ ९२ ॥

(८६) सारयतीति नियमेन चालयतीति सारथिः । नियन्ता वा । अत्र णेल्लो-
पो णित्वाद् वृद्धिः ॥

(८७) खर्ज्यादिभ्यः ऊरः । खर्जति मार्जयतीति खर्जूरः । वृक्षभेदो रजतं वा ॥
स्त्रियां गौरादित्वान् ङीष् । खर्जूरौ । कल्पते समर्थो भवतीति कर्पूरः । सुगन्धि-
द्रव्यं वा । बाहुलकादत्र लत्वाभावः । धुनोति कम्पयतीति धुस्तूरः । कनकाद्वयः ।
धतूरा इति प्रसिद्धः । वल्लते संहणोतीति वल्लूरम् । शुष्कमांसं वा । शालयति गम-
यतीति शालूरः । मण्डूको वा । मल्लते धरतीति मल्लूरः । कस्ते गच्छति प्राप्नोति
शास्ति वा स कस्तूरः । स्त्रियां कस्तूरी प्रसिद्धा । सुगन्धिभेदः । पिञ्जादिभ्य
ऊलः । पिङ्क्ते वणयतीति पिञ्जूलम् । कुशवर्तिर्वा । कञ्चते दीप्यतेऽसौ कञ्चूलः ।
स्त्रीगात्राभरणं वा । लाङ्गति गच्छतीति लाङ्गूलम् । पुच्छं वा । धातोर्वृद्धिः ।
ताम्यति काङ्क्षति यस्तत् ताम्बूलमिति प्रसिद्धम् । धातोर्बुक् । धातोर्बुक् दीर्घत्वं
च । शृणाति हिनस्तीति शार्दूलः । व्याघ्रो वा । धातोर्बुक् वृद्धिश्च । दुनोत्युपता
पयतीति दुकूलम् । स्त्रियां अधोवस्त्रम् । धातोः कुक् । कुस्यति स्निध्यतीति कुमूलः ।
धान्यपात्रं वा ॥

(८८) कूचि शब्दयतीति कूचः । स्तनं हस्ती वा । स्त्रियां कूची चित्रलेखनी ॥

(८९) सम्यगेति गच्छतीति समीचः । समुद्रो वा । समीचौ हरणी ॥

(९०) इवभागस्य टेरू आदेशः । सीञ्चति येन स सूचः । दर्भाङ्कुरो वा ।
स्त्रियां सूचौति प्रसिद्धा ॥

(९१) शामयतीति शम्बः । मुसलस्य लोहमुखं वा । शामी इति प्रसिद्धा ॥

(९२) वन् प्रत्ययान्ता निपाताः । उच्यति समवेतीति उल्वः । गर्भो वा ।
वकारस्य लत्वं गुणाभावश्च । शोचतीति शुल्वम् । ताम्रं वा । पूर्ववत्सर्वम् । नयति
गपयतीति शुभगुणानिति निम्बः । वृक्षभेदो वा । वीयते काम्यते तत् विम्बम् ।

स्वः स्तोऽस्वजवकौ ॥ ६६ ॥ स्तम्बः । स्तवकः ॥ ६६ ॥

शाशपिभ्यां ददनौ ॥ ६७ ॥ शादः । शब्दः ॥ ६७ ॥

अद्वादयश्च ॥ ६८ ॥ अद्दः । कुन्दः ॥ ६८ ॥

वलिमलितनिभ्यः कयन् ॥ ६९ ॥ वलयम् । मलयः । तनयम् ॥ ६९ ॥

वृद्धोः पुग्दुको च ॥ १०० ॥ वृषयः । हृदयम् ॥ १०० ॥

मीपीभ्यां रुः ॥ १०१ ॥ मेरुः । पेरुः ॥ १०१ ॥

जत्वादयश्च ॥ १०२ ॥

मण्डलमोषधिविशेषो वा । अत्रोभयत्र नी वी धातोर्नुमागमो क्लृप्तत्वं च । स्त्रियां गौरादित्वात् । विम्बो । विम्बफलमिवोष्ठी यस्य सा विम्बोष्ठी । कन्या । दिधन्ति धान्य-
हेतुर्भवतीति धन्वम् । धनुर्वा । तद्योगादन्वी जनः । जमति भक्षयतीति जम्बः । पङ्को वा ॥

(६६) अम्बच् अवक् इत्येतौ प्रत्ययौ तिष्ठतीति स्तम्बः । शाखाशून्यो व्रीह्या-
देर्गुच्छो वा । स्तवकः । पुष्पगुच्छो वा ॥

(६७) श्यति सूक्ष्मं करोतीति शादः । कर्दमो बालदणं वा । शय्यत आह्वयते
ऽनेन स शब्दो नादः । पश्य वः ॥

(६८) ददन् प्रत्ययान्ता निपाताः । अवति रक्षणादिकं करोतीति अद्दः ।
सम्बत्सरोऽवसरो मेघो वा । कौति शब्दयतीति कुन्दः । पुष्पजातिर्वा । धातोर्नुम्
वृणोतीति वृन्दं समूहो वा । नुम् गुणाभावश्च । कनति दीप्यतेऽसौ कन्दः । सस्य
मूलं सूकरो वा । तुदति व्यथतीति तुन्दः । स्थूलमुदरं वा । तुन्दी स्थूलोदरी धातोर्नुम् ॥

(६९) वलते संवृणोतीति वलयः । करभूषणं वा । मलते धरतीति मलयः ।
पर्वतो वा । तनोति सुखमिति तनयः । पुत्रो वा बाहुलकात् । आमयति पीडयतीति
आमयः रोगो वा ॥

(१००) वृणोतीति वृषयः । आश्रयो वा । बुक् । हरति विषयानिति हृदयम् ।
मनो वा । दुक् ॥

(१०१) मिनोति प्रक्षिपतीति मेरुः । सुमेरुः पर्वतो वा । पीयते पिबतीति वा
पेरुः । आदित्यो वा । बाहुलकात् । पिबतीति पारुः । स एव ॥

(१०२) जायते तत् जन् । स्तम्बसम्बिर्वा । नस्य तः जन्तुणो । जलणि । श्वेतेऽसौ
श्वियुः । शोभाञ्जनस्तम्बः । सहिंजना इति प्रसिद्धः । शाकं वा । मनुष्यविशेषो वा ।
तत्र श्विग्रोरपत्यं श्वैरवः । विशेषेण तनोतीति वितद्गुः । नदी वा । नकारस्य दः ।
कवतेऽसौ कट्टः । वर्णभेदो वा । वस्य दः । अस्यति प्रक्षिपति जलमिति असुः ।
बाहुल्यवचनात् । शकारभेदे । अशुः । नेत्रजलं वा ॥

रुशातिभ्यां क्रुन् ॥ १०३ ॥ रुकः । शत्रुः ॥ १०३ ॥

जनिदाच्यसूवृमदिषमिनमिभृज्भ्य इत्वनृत्वनृत्नण्किन्शक्-
स्यठढाटचः ॥ १०४ ॥ जनित्वः । दात्वः । च्यौत्वः । सृणिः । वृशः ।
मत्स्यः । षण्डः । नटः भरटः ॥ १०४ ॥

अन्येऽपि दृश्यन्ते ॥ १०५ ॥ पेल्वम् ॥ १०५ ॥

कुसेरुम्भोमेदेताः ॥ १०६ ॥ कुसुम्भम् । कुसुमम् । कुसीदम् ।
कुसितः ॥ १०६ ॥

सानसिबर्णसिपर्णसितण्डुलाङ्कुशचषालेल्बलपल्बलधिण्य-
शल्याः ॥ १०७ ॥

(१०३) रीति शब्दं करोतीति रुकः । मृगभेदो वा । श्रीयते शातयतीति शत्रुः ।
प्रज्ञादित्वाद्दण् । शत्रवः । वैरी ॥

(१०४) जायते जनयति वा । स जनित्वः । मातापितरौ वा । यो ददाति यत्र
वा स दात्वः । यज्ञकर्म वा । च्यवते गच्छतीति च्यौत्वम् । बलं वा । सरतीति सृणिः
चन्द्रोऽङ्गुशो वा । वृणोतीति वृशः । ओषधिर्वा । माद्यतीति मत्स्यः । मौनो वा स्त्रियां
मत्स्यो । मत्स्या । शास्यतीति शण्डः । अकृतदारो वा । नमतीति नटः । वंशावरोही-
ति प्रसिद्धः । डित्वाङ्गिलोपः । विभर्त्तीति भरटः । कुलालो वा ॥

(१०५) इत्वनृदय इति शेषः । प्रीयते यत् पेल्वम् । अमृतं वा । कच्यते वध्य-
तेऽसौ कच्छः । शाकमूलं वा । सरतीति सरटः । वायुर्वा । ध्यायते तद् ध्यात्वम् ।
चिन्ता वा जुहोतीति ह्यौत्वः । यजमानो वा । लूयतेऽसौ लूतिः । व्रीहिर्वा इत्यादि ॥

(१०६) कुस्यति श्लिथतीति कुसुम्भम् । महारजनं वा । कुसुमम् । पुष्पं वा ।
कुसीदम् । वृद्धिजीविका वा । कुसितः । देशो वा ॥

(१०७) सनोति ददाति सन्यते वा स सानसिः । हिरण्यं वा । असिप्रत्यय उपधा-
वृद्धिश्च । वृणोतीति बर्णसिः । जलं वा । धातुर्गुक् । पिपर्त्तीति पर्णसिः । जलगृहं
वा । पूर्ववत्सर्वम् । तण्डति ताडयति ताडयति वा । स तण्डुलः । उलच् । तुषरहितो
व्रीहिर्वा । अङ्गते लक्षयति येन स, अङ्गुशः । शस्त्रभेदो वा । उशच् । चषति भक्षय-
तीति चषालः । शूषकङ्कणं वा । इलति स्वपितीति, इल्बलः । नक्षत्रविशेषो वा ।
पलति गच्छतीति पल्बलम् । अल्पसरो वा । अत्रोभयत्र बलच् गुणाभावश्च । घृणोति
प्रगल्भो भवतीति धिण्यः । स्थानमुच्चोऽग्निरालयो वा । ऋकारस्येकारोऽप्यप्रत्ययश्च ।
शलति गच्छतीति शल्यम् । शस्त्रविशेषो वाणाग्रभागो वा ॥

मूशक्य विद्वः क्तः ॥ १०८ ॥ मूलम् । शक्तः । अंवलः । अमलः ॥ १०८ ॥
 माकाशस्त्रिभ्यो यः ॥ १०९ ॥ माया । छाया । सस्यम् ॥ १०९ ॥
 सनोतेः ॥ ११० ॥ सव्यम् ॥ ११० ॥
 जनैर्यक् ॥ १११ ॥ जन्यम् । जाया ॥ १११ ॥
 अघ्न्यादयश्च ॥ ११२ ॥ अघ्न्या । कन्या । बन्ध्या ॥ ११२ ॥
 स्नामदिपद्यर्त्तिपृशकिभ्यो वनिप् ॥ ११३ ॥ स्नावा । मद्वा ।
 मद्वा । अर्वा । पर्वा । शक्वा । शक्वरी ॥ ११३ ॥

(१०८) मनते बध्नातीति मूलमिति प्रसिद्धम् । शक्नोतीति शक्तः । प्रियम्बदो वा ।
 मन्वते शब्दं करोतीत्यम्बूलः । बाहुलकात् । अमति गच्छतीति, अमलः । रसविशेषो वा ॥
 (१०९) मात्यन्तर्भवतीति माया । कलं मिथ्याजालो वा । क्यति प्रकाशमिति
 छाया । प्रकाशावरणमुक्तीचक प्रतिविम्बो वा । शस्यते यत्तत् सस्यम् । क्षेत्रपक्षमन्त्रं
 वा । बाहुलकात् अनिति जीवयतीत्यन्यः । इतरो वा ॥

(११०) सुनोत्यभिषवतीति सव्यम् । वामभागो वा ॥

(१११) या जायते यस्यां वा सा जाया पत्नी । ये विभाषेति व्यवस्थितविभाषया
 तन्यां जाया नित्यमात्ममन्यत्र जन्यम् । निर्वादो युद्धं वा ॥

(११२) यगन्ता निपाताः । यो न हन्यते न हन्तीति वा स, अघ्न्या । प्रजा-
 तालको वा । धातोरुपधालोपो हस्य वत्त्वं च । अघ्न्या गौर्वा । सन्दधाति यस्यां
 तलायां सा सन्ध्या । आतो लोपः । सायंकालः प्रतिज्ञा वा । सम्यग्ध्यायन्ति परं
 ब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या । इति तु स्त्रियां क्तिन्नित्यधिकारः, आतश्चोपसर्ग इत्यङ् ।
 कन्यते दीप्यते काम्यते गच्छति वा सा कन्या । कुमारी वा । बधयतेऽसौ बन्ध्या
 प्रप्रसूता वा । कीति शब्दयतीति कुडाम् । भित्तिर्वा । धातोर्दुक् । मन्यते येन
 तन्मध्यम् । ह्योरन्तरालं वा । नस्य धः । उहयते यत्तद् बह्वम् । मनुष्यविशेषो
 वा । अहति व्याप्रीतीत्यहत्या । रात्रिर्वा । अहर्लीयतेऽस्यामिति व्युत्पत्यन्तरम् ।
 पूर्वत्र धातोरनुगगमः । ऋषति गच्छतीति ऋष्यः मृगभेदो वा । कष्टे गच्छति
 यास्ति वा स कश्यः । मयं वा । इत्यादि ॥

(११३) स्नाति शुचयतीति स्नावा । रसिको वा । स्नावानी । स्नावानः मायतीति
 मद्वा । कल्याणदातेश्चरो वा । पद्यन्ते यत्र स पद्वा । पन्था वा । ऋच्छतीत्यर्वा ।
 अग्नी निन्द्यो वा । पिपर्त्तीति पर्वा । ग्रन्थिर्वा । शक्नोतीति शक्वा । हस्ती वा । स्त्रियां
 छीमे फी । शक्वरी । नदीकुन्दो भेदो वा ॥

श्रीङ्कुशिरुहजिह्वसृधृभ्यः कनिप् ॥ ११४ ॥ श्रीवा । क्रुश्वा ।
रुह्वा । जित्वा । जित्वा । सृत्वा । धृत्वा ॥ ११४ ॥

ध्यायोः संप्रसारणं च ॥ ११५ ॥ धीवा । पौवा ॥ ११५ ॥

अदेर्ध च ॥ ११६ ॥ अध्वा ॥ ११६ ॥

प्र ईरशदोस्तु च ॥ ११७ ॥ प्रेर्त्वा । प्रशत्त्वा । प्रेर्त्वरौ ।
प्रशत्त्वरौ ॥ ११७ ॥

सर्वधातुभ्य इन् ॥ ११८ ॥ पचिः । तुण्डिः । बलिः । बटिः ।
मणिः । वल्लिः । यजिः । गण्डिः । तडिः । धाडिः । काशिः । वाशिः ।
घटिः । घटी । यतिः । केलिः । मसिः । कोटिः । जटिः । कटिः ।
हलिः । हेलिः । पस्यिः । कलिः ॥ ११८ ॥

(११४) श्रेतेऽसौ श्रीवा । अजगरो वा । क्रोशतीति क्रुश्वा । शृगालो वा ।
रोहति बीजादुत्पद्यत इति रुह्वा । वृक्षो वा । जयतीति जित्वा । जयश्रीलः ।
क्षयति नाशयति क्षिपति निवसति गच्छति वा स चित्वा । वायुर्वा । सरतीति
सृत्वा । प्रजापतिर्वा । धारयतीति धृत्वा । व्यापको जगदीश्वरो वा । स्त्रियां जित्वरौ
यादि बोध्यम् ॥

(११५) ध्यायतीति धीवा । कर्मकारो वा । स्त्रियां धीवरौ । मत्स्याधानं पात्रम् ।
यायते वर्धतेऽसौ पौवा । स्थूलो वा । पौवरौ तरुणी ॥

(११६) अग्निं भक्षयतीति, अध्वा । मार्गो वा ॥

(११७) प्रेतेऽसौ प्रेर्त्वा । सागरो वा । प्रेर्त्वरौ । प्रशीयतेऽसौ प्रशत्त्वा समुद्रो
वा । प्रशत्त्वरौ नदी ॥

(११८) पचति येन स पचिः । अग्निर्वा । तुण्डति छिनत्तीति तुण्डिः । वलते
तण्डणीतीति बलिः । महाराजो वा । बाटयति ग्रथ्नाति स बटिः । विभाजको वा
मणति शब्दयतीति मणिः । बहुमूल्यः पाषाणो वा । प्रगंसितो मणिर्मणिकः । तदेव
माणिक्यम् । बरुहते प्रधानो भवतीति बरिहः । बरिहका नाम क्षत्रिया जनप्रदो
वा । यजतीति यजिः । संगन्ता होता वा । गण्डति स गण्डिः । वदनेकदेशो वा ।
ताडयतीति तडिः । पीडकः । धाडते विशेषेण हिनस्तीति धाडिः । पुष्पचयो वा
काश्यते दीप्यतेऽसौ काशिः । देशभेदो वा । तद्देशान्तर्गत्वाहाराणसौ नगरो काशिः ।
काशी । तस्य देशस्य राजा काश्यः । वाश्यते शब्दयतीति वाशिः । कण्ठभेदिनी वा ।
घटतेऽसौ घटिः । घटी । यततेऽसौ यतिः । नियमधारी संन्यासी वा । केलति चलति

हृपिपिरुहिवृतिविदिच्छिदिकीर्त्तिभ्यश्च ॥ ११६ ॥ हरिः ।
पेपिः । रोहिः । वर्त्तिः । वेदिः । छेदिः । कीर्त्तिः ॥ ११६ ॥

इगुपधात् कित् ॥ १२० ॥ कृषिः । ऋषिः । रुचिः । शुचिः ।
लिपिः ॥ १२० ॥

भ्रमेः संप्रसारणं च ॥ १२१ ॥ भृमिः । भ्रमिः ॥ १२१ ॥

क्रामितमिशतिस्तम्भामत इच्च ॥ १२२ ॥ क्रिमिः । कृमिः ।
तिमिः । शतिः । स्तिभिः ॥ १२२ ॥

यस्यां सा कलिः । क्रीडा वा । मस्यति परिणमते स मसिः । मसी । पावाज्जनं
वा । कुटतीति कोटिः । संख्यावरणमग्रभागो वा । बाहुलकाद् गुणः । जटति
संघातं करोतीति जटिः । जटाधारी वा । कटतीति कटिः । कटी । शरीरमध्यं वा ।
हलति येन विलिखतीति हलिः । कृषीवलः । कृषिसाधनं वा । हेलति विह्वं
बहु भाषत इति हेलिः । प्रहेलिः । यः पणायति व्यवहरति स पणिः । विपणिः ।
वणिजां वीथी वा । कलन्ते स्पृष्टमाना भाषन्ते यत्र स कलिः । कलहो विग्रहो वा ।
नन्दति यत्रेति नन्दिः । वृद्धिर्वा । इत्यादीन्यनेकान्युदाहरणानि सन्ति ॥

(११६) हरतीति हरिः । सर्पो मण्डूकोऽश्वः सिंहः सूर्यो वा । इगुपधात्
किदिति वक्ष्यते तद्वाधनार्थं पिष्टादीनां ग्रहणम् । तत्र हि कित्वाद् गुणनिषेधः
प्राप्तः स न स्यात् । पिनष्टि येन स पेपिः । वज्रो वा । रोहतीति रोहिः । व्रती वा ।
वर्त्तते सा वर्त्तिः । दीपोपकरणं वा । विद्यते या सा वेदिः । यज्ञभूमिर्वा छिनत्तीति छेदिः ।
वर्धकिश्छेत्ता वा । कीर्त्यते संश्रव्यते सा कीर्त्तिः । पुण्यं यशो वा ॥

(१२०) कृष्यते विलेख्यते या सा कृषिः । खेतीति प्रसिद्धा । ऋषति गच्छति
प्राप्नोति जानाति वा स ऋषिः । मंत्रार्थद्रष्टा वा । रुच्यते सा रुचिः । दीप्तिर्वा ।
शुच्यतीति शुचिः । शुद्धिर्वा । लिप्यतीति लिपिः । लेखो वा बाहुलकात् । वत्वे लिपिः ।
इत्यपि लिपिं करोतीति लिपिकरः । लिप्यर्थे एव । तूलते निष्कर्षतीति तूलिः ।
तूली । कूर्चिका दध्यादिना सह पक्वः क्षीरबिकारो वा । इत्यादि ॥

(१२१) भ्राम्यतीति भृमिः । वायुर्वा । बाहुलकात् । भ्रमिरित्यपि सिद्धम् ॥

(१२२) क्राम्यति पादान् विक्षिपतीति क्रिमिः । जुद्धजन्तुर्वा । संप्रसारणानुवृत्तेः
कृमिरित्यपि । ताम्यत्याकाङ्क्षतीति तिमिः । मतस्यभेदो वा । शतिस्तम्भौ सौत्री
धातू । गितिः कृष्णः । शुक्लो वा । स्तम्भनातीति स्तिभिः । समुद्रो वा ॥

मनेरुच्च ॥ १२३ ॥ मुनिः । १२३ ॥

वर्णैर्वलिश्चाहिरण्ये ॥ १२४ ॥ बलिः । १२४ ॥

वसिर्वापियजिराजिब्रजिसदिहनिवाशिवादिवारिभ्य इज् ॥ १२५ ॥
वासिः । वापिः । याजिः । राजिः । ब्राजिः । सादिः । निघातिः ।
वाशिः । वादिः । वारिः । १२५ ॥

नहो भक्ष ॥ १२६ ॥ नाभिः । १२६ ॥

कर्षेष्टद्विष्टन्दसि ॥ १२७ ॥ कार्षिः । १२७ ॥

श्रः शकुनौ ॥ १२८ ॥ शारिः । शारिका । १२८ ॥

कृञ् उदीचां कारुषु ॥ १२९ ॥ कारिः । १२९ ॥

(१२३) किदित्येव । मन्यते जानातीति मुनिः । मननशीलः । मुनिरियं ब्राह्मणी ।
ब्रह्मादित्वान् मुनी । मुनेर्भावः कर्म वा मौनम् ॥

(१२४) वर्णः सौत्रो धातुः वर्णयति स बलिः । राजकरः सत्कारसामग्री
शरीराङ्गं वा । हिरण्ये तु वर्णः सुवर्णम् ॥

(१२५) वसत आच्छादयति वसति वा स वासिः । छेदनवस्तु वा । वपन्ति
यत्रेति वापिर्वापी वा । जलाशयभेदी वा । यजतीति याजिः । यष्टा वा । राजते
दौप्यतेऽसौ राजिः । राजौ । पंक्तिर्वा । राजीवं पद्मम् । व्रजतीति ब्राजिः । वायुसमूहो
वा । सौदतीति सादिः । सारथिर्वा । हन्ति यथा सा घातिः । निघातिर्लोहघाता
धारा । वाश्यते शब्दयतीति वाशिः । अग्निर्वा । वादयति व्यक्तमुच्चारयति स वादिः ।
विहान् वा । वारयति निवारयतीति वारिः । गजबन्धनी शृङ्खला वा । जले
नपुंसकम् । वारि । बाहुलकात् । हरतीति हारिः । पथिकसंसतिर्वा । संप्रहारिः ।
योद्धा । खटति काञ्चतीति खाटिः । शुष्कत्रणस्थानं वा ॥

(१२६) नहति दुष्टं नाडोर्वा बध्नातीति नाभिः । चक्षियः प्राण्यङ्गं वा । नाभौ डोष् ॥

(१२७) कर्षत्याकर्षतीति कार्षिः । अग्निर्वा । लोके तु कृषिः ॥

(१२८) शृणाति हिनस्तीति शारिः पक्षी । स्त्री शारिका । शुकशारिकमिति
पक्ष एकवद्भावः । शारीन् हन्तीति शारिका वा । शकुनेरन्यत्र शरिर्हिंस्रः । कपिलका-
दित्वात्त्वम् । शलिः । अपिशलिर्मुनिविशेषस्तस्यापत्यमापिशलिः । बाह्वादित्वादिज् ॥

(१२९) करोतीति कारिः । शिल्पी । शिल्पिनोऽन्यत्र करिः ॥

जनिषसिभ्यासिग् ॥ १३० ॥ जनिः । घासिः ॥ १३० ॥

अज्यतिभ्यां च ॥ १३१ ॥ आजिः । आतिः । १३१ ॥

पादे च ॥ १३२ ॥ पदाजिः । पदातिः । १३२ ॥

अशिपणायोरुडायलुकौ च ॥ १३३ ॥ राशिः । पाणिः । १३३ ॥

वातेर्डिच्च ॥ १३४ ॥ विः । १३४ ॥

प्रे हरतेः कूपे ॥ १३५ ॥ ग्रहिः । १३५ ॥

नौ व्यो यलोपः पूर्वस्य च दीर्घः ॥ १३६ ॥ नौविः । १३६ ॥

समाने ख्यः स चोदात्तः ॥ १३७ ॥ सखा । १३७ ॥

आङि अिहनिभ्यां ऋस्वश्च ॥ १३८ ॥ अग्निः । अहिः ॥ १३८ ॥

(१३०) जायतेऽसौ जानिः । जननं वा । घसति भक्षयतीति घासिः । अग्निर्वा । बाहुलकात् शल्यते प्राप्यतेऽसौ शालिः । ब्रीहयो वा । पलति गच्छतीति पालिः । खड्गादेरग्रभागो वा । प्रत्ययान्तरकरणं स्वरार्थम् ॥

(१३१) अजन्ति क्षिपन्ति शस्त्रादिकं यत्र स आजिः । संग्रामो वा । अतति निरन्तरं गच्छतीति, आतिः । तित्तरिभेदो वा । शोभनः—आतो स्वातो नक्षत्रम् ॥

(१३२) पदभ्यामज्यतति वा स पदाजिः । पदातिः । पदगः । पादस्य पदाज्याति० सूत्रेण पदादेशः ॥

(१३३) अशेरुट् पणायते रायलुक् । अश्रुते व्याप्नोतीति राशिः । समूहो वा । पणायति व्यवहरति येन स पाणिः । हस्तो वा ॥

(१३४) वाति वायुवद्गच्छतीति विः । पक्षी वा । डित्वादाकारलोपः । अटन्ति वयोऽस्यामित्यटविर्नगरी । पदस्य विः । पदवी ॥

(१३५) इण्—डित् । प्रहरति जलमस्मात् स ग्रहिः । कूपो वा । कूपादन्यत्र हरिः ॥

(१३६) पूर्वस्योपसर्गस्य दीर्घः । निवीयते संविद्यते सा नौविः । नौवी । मूलधनं दुकूलवन्धनं वा ॥

(१३७) समानं ख्यातीति सखा । सखायौ । सखायः । मित्रं सहायो वा ॥

(१३८) आश्रयति तत्रेति, अग्निः । कोणो वा । आहन्तीति, अहिः । मेघः सर्पो वा । अत्राहुपसर्गस्यैव ऋस्वत्वम् ॥

अच इः ॥ १३६ ॥ रविः । कविः । पविः । अरिः । अलिः ॥ १३६ ॥

खनिकष्यज्यसिवसिर्वानसनिध्वनिग्रन्थिचरिभ्यश्च ॥ १४० ॥

खनिः । कषिः । अजिः । असिः । वसिः । वनिः । सनिः । ध्वनिः ।

ग्रन्थिः । चरिः ॥ १४० ॥

वृतेऽक्षुन्दसि ॥ १४१ ॥ वर्त्तिः । ॥ १४१ ॥

भुजेः क्तिञ्च ॥ १४२ ॥ भुजिः ॥ १४२ ॥

कुट्टृशृपृकुटिभिदिच्छिदिभ्यश्च ॥ १४३ ॥ किरिः । गिरिः । शिरिः

पुरिः । कुटिः । भिदिः । छिदिः ॥ १४३ ॥

(१३६) अजन्ताद्वातोरिः प्रत्ययः । लुनाति छिनसीति लविः । छिदको लोहो वा । पुनातीति पविः । वज्रं छीरकं वा । तरति येन स तरिः । वस्त्रादिस्थापनभाण्डं वा । स्त्रियां तरौ । रीतीति रविः । सूर्यो वा । कौति शब्दयत्युपदिशति स कविः । मेधावी विद्वान् क्रान्तदर्शनो द्रा । स्त्रियां कवो । ऋच्छति प्राप्नोति परपदार्थानित्यरिः । शत्रुर्वा । कपिलकादित्वाङ्गत्वे । अलिः । भ्रमरो वा । नखेनातिक्रामतीति नखयति तस्मात् । नखिः । सूचयतीति सूचिः ॥ इत्यादि ॥

(१४०) खनति येन खन्यते यत्रेति वा स खनिः । धनस्थानं वा । बाहुलकाद्दीर्घत्वे खानिरित्यपि । कषति हिनस्तीति कषिः । हिंसको वा अनक्ति व्यनक्ति कार्यमित्यञ्जिः । प्रेषणकर्त्ता । ङीष् । अञ्जी मङ्गलार्थः । अस्यति क्षिपत्यनेनेत्यसिः खङ्गो वा । वस्तु आचक्षादयत्यनेनेति वसिः । वस्तं वा । वनति संभजतीति वनिः । अग्निर्वा । धान्यवनिर्धान्यराशिः वन्यते याच्यत इति वनिः । तं वनिं याचनमिच्छतीति वनीयति तदन्ताण्युल् । वनीयकः । प्रार्थकः । सनोति ददातीति सनिः । अध्येषणं वा । ध्वन्यत उच्चार्यते स ध्वनिः । शब्दो वा । यं ग्रन्थाति समुदेति स ग्रन्थिः पर्व । चरतीति चरिः । पशुर्वा ॥

(१४१) वर्त्तते तत्र येन वा स वर्त्तिः । योगक्रिया साधनद्रव्यं मार्गो वा ॥

(१४२) भुनक्ति पालयति भक्षयति वा स भुजिः । अग्निर्वा ॥

(१४३) क्तिदिति वर्त्तते । किरतीति किरिः । वराहो वा । गिरति गृणाति वा स गिरिः । गोत्रमक्षिरोगः पर्वतो मेघो वा शृणातीति शिरिर्हन्ता । पिपत्तीति पुरिः नगरं नदी वा । कुटतीति कुटिः कुटी । शाला वा । भिनस्ति येन स भिदिः । वज्रं वा । छिनत्त्यनेन स छिदिः । परशुर्वा बहुलवचनात् । तरति प्लवतेऽसौ तिप्तिरिः । पक्षिभेदो वा । तृधातोरिः प्रत्ययः स च कित् सन्वत्कार्यमभ्यासस्य तुगागमश्च ॥

कुण्डिकम्प्योर्नलोपश्च ॥ १४४ ॥ कुठिः । कपिः ॥ १४४ ॥
 सर्वधातुभ्यो सनिन् ॥ १४५ ॥ कर्म । चर्म । भस्म । जन्म ।
 शर्म । हेम । श्लेष्मा । तर्म । स्याम । दाम । छद्म । सुत्रामा ॥ १४५ ॥
 वृंहेनोऽच्च ॥ १४६ ॥ ब्रह्म ॥ १४६ ॥
 अशिशकिभ्यां छन्दसि ॥ १४७ ॥ अश्मा । शक्मा । १४७ ॥
 ह्रमुधृष्टुशृभ्य इमनिच् ॥ १४८ ॥ हरिमा । भरिमा । धरिमा ।
 सरिमा । स्तरिमा । शरिमा । १४८ ॥
 जनिमृङ्भ्यामिमनिन् ॥ १४९ ॥ जनिमा । मरिमा । १४९ ॥

(१४४) कुण्डति गतिं प्रतिहन्तीति कुठिः । पर्वतो वृक्षो वा । कम्पतेऽसौ
 कपिः वानरो वर्णभेदो वा । कपिवर्णमस्यास्तीति कपिशः । कपिलवर्णः । लोमादि-
 पाठादत्र मत्वर्थीयः शप्रत्ययः ॥

(१४५) क्रियते तत् कर्म क्रिया वा । अर्द्धर्चादित्वादुभयलिङ्गः कर्मशब्दः ।
 कर्माणं कुरुते शुभम् । चरति गच्छति येन तच्चर्म । प्रसिद्धम् । भसितं दीपितमिति
 यत्तदभस्म । जायते यत्र तज्जन्म । उत्पत्तिः । शृणातीति शर्म । सुखं गृहं वा ।
 हिनीति वर्धते येन तत् हेम । सुवर्णं वा । स्निध्यतीति श्लेष्मा । कफोद्भायो वा ।
 श्लेष्माऽस्यास्तीति पामादित्वान्मत्वर्थे नः प्रत्ययः । श्लेष्मणः । सिध्मादित्वात् । श्लेष्मलः
 तरतीति तर्म यूपाग्रं वा । तर्मणी । तर्माणि । तिष्ठति येन तत् स्याम । वलं वा ।
 स्यामनो । ददातीति दाम । स्वग्वा । छादयतीति छद्म । माया वा । इत्सन्निति
 ऋस्वत्वम् । सुष्ठु त्रायत इति सुत्रामा । ओषति दहतीति, जष्मा । अन्येषामपीति
 दीर्घे । जष्मा । ग्रौष्मर्तुर्वाष्पो वा ॥

(१४६) वृंहति वर्धते तद् ब्रह्म । ईश्वरो वेदस्तत्वं तपो वा ॥

(१४७) अश्नात्यश्नुते व्याप्नोति वा स, अश्मा । मेघः पाषाणो वा । भाषायामपि
 दृश्यते । अश्मानं दृषदं मन्ये । शक्नोतीति शक्मा सूर्यो वा ॥

(१४८) छन्दसीति वर्त्तते । हरति सह्रिमा । कालो वा । भर्तुं योग्यो भरिमा ।
 कुटुम्बं वा । ध्रियत इति धरिमा । रूपं वा । सरतीति सरिमा । वायुर्वा । स्तीर्यत
 आच्छाद्यत इति स्तरिमा । तल्पं वा । शृणातीति शरिमा । प्रसवो वा ॥

(१४९) छन्दसीत्यनुवर्त्तते । जायत इति जनिमा जन्म । म्रियत इति मरिमा
 मृत्युः ॥

वेजः सर्वत्र ॥ १५० ॥ वेमा । १५० ॥

नामन्सौमन्व्योमन्रोमन्लोमन्पाप्मन्ध्यामन् ॥ १५१ ॥

मिथुने मनिः ॥ १५२ ॥ सुशर्मा । सुधर्मा । १५२ ॥

सातिभ्यां मनिन्मनिणौ ॥ १५३ ॥ साम । आत्मा । १५३ ॥

हनिमशिभ्यां सिकन् ॥ १५४ ॥ हंसिका । मक्षिका । १५४ ॥

कोररन् ॥ १५५ ॥ कवरः । १५५ ॥

गिर उडच् ॥ १५६ ॥ गरुडः । १५६ ॥

इन्देः कमिन्नलोपश्च ॥ १५७ ॥ इदम् । १५७ ॥

कायतेर्डिमिः ॥ १५८ ॥ किम् । १५८ ॥

(१५०) वयति वस्त्राणि येन स वेमा । तन्तुवायदण्डः । वस्त्रनिर्माणसामग्री वा । सर्वत्र वचनाच्छन्दसौति निवृत्तम् ॥

(१५१) सप्तमी मनिनन्ता निपात्यन्ते । म्नायतेऽभ्यस्यते येन तत् नाम संज्ञा । स्वार्थे वार्त्तिकेन धेयट् । नामैव नामधेयम् । सिनोति वध्नातीति सौमा । अवधिर्वा । व्ययति संवृणोतीति व्योम । अन्तरिक्षं वा । रौति शब्दयतीति रोम । लूयते क्षियते तल्लोम । गात्रकेशा वा । पिबतीति पाप्मा । किल्बिषं वा धातोः पुक् । ध्यायते स ध्यामा परिमाणं तेजो वा । बाहुलकात् । यच्चयति पूजयतीति यक्ष्मा । राजरोगो वा । सुवति प्रेरयतीति सोमा । चन्द्रो वा । हूयतेऽसौ होमा । आहुतिर्वा । दधाति यद्यत्र वेति धाम स्यात् तेजो वा ॥

(१५२) यत्रोपसर्गो धातुक्रियया सम्बद्धस्तन्किथुनम् । तस्मिन् सत्युक्तेभ्यो वक्ष्यमाणेभ्यश्च धातुभ्यो मनिः प्रत्ययः स्यान्नतु मनिन् स्वरभेदार्थो नियमः । सुष्ठु गृणातीति सुशर्मा । राजविशेषो वा । सुधरतीति सुधर्मा । इत्यादि ॥

(१५३) स्यति कर्माणि समापयतीति साम वेदभेदो वा । अतति निरन्तरं कर्मफलानि प्राप्नोति व्याप्नोति वा स आत्मा । आत्मने हितमात्मनीनम् ॥

(१५४) हन्तीति हंसिका । हंसस्त्री वा । मशति शब्दयति रोषं करोति वा सा मक्षिका । प्रसिद्धा जातिर्वा ॥

(१५५) कौत्युपदिशतीति कवरः । पाठको वा । केशविन्यासः कवरी । अन्यत्र कंवरा कन्या पाठिकेत्यर्थः ॥

(१५६) गिरति निगलतीति गरुडः । पक्षिभेदो वा ॥

(१५७) इन्दति परमैश्वर्यहेतुर्भवतीति, इदम् । प्रत्यक्षविषयबोधकः सर्वनाम-संज्ञको वा ॥

सर्वधातुभ्यः ङ् ॥ १५६ ॥ वस्त्रम् । अस्त्रम् । कृत्रम् । १५६ ॥
 भस्त्रिगमिनमिहनिविश्यशां वृद्धिश्च ॥ १६० ॥ भ्राष्ट्रः ।
 गान्त्रम् । नान्त्रम् । हान्त्रम् । वेष्ट्रम् । आष्ट्रम् । १६० ॥
 दिवेद्युञ्च ॥ १६१ ॥ द्यौत्रम् ॥ १६१ ॥
 उषिखनिभ्यां कित् १६२ ॥ उष्ट्रः । खात्रम् ॥ १६२ ॥
 सिषिसुच्योष्टेरु च ॥ १६३ ॥ सूत्रम् । मूत्रम् ॥ १६३ ॥
 अमिचिमिशसिभ्यः क्राः ॥ १६४ ॥ अन्त्रम् । चित्रम् । मित्रम् ।
 शस्त्रम् ॥ १६४ ॥
 पुत्रो ऋस्वश्च ॥ १६५ ॥ पुत्रः ॥

(१५८) कायति शब्दयतीति किम् । प्रज्ञायर्थे वा ॥

(१५८) वस्त आच्छाद्यत इति वस्त्रम् । अस्यति चिपतीति, अस्त्रम् । क्वादयति धर्मादिकमपवारयतीति कृतमिति प्रसिद्धम् । इस्मन्त्रन्नितिसूत्रेण ऋस्वादेशः । पतति यो गच्छति येन वा तत्पक्षम् । वाहनं वा । राजतेऽसौ राष्ट्रः राष्ट्रं राज्यं देशो वा । जातिविशेषो वा । अन्येपि गच्छत्यनया सा गन्त्री । महच्छकटं वा । पिबत्यनेन तत् पात्रम् । पाति रक्षतीति पात्रः सज्जनो वा । दशति यया सा दंष्ट्रा दन्तो वा । इत्यादि ॥

(१६०) भृञ्जति यत्रेति भ्राष्ट्रः । अम्बरीषो वा । गच्छति येन तद्गान्त्रम् । शकटं वा । नमति येन तन्नान्त्रम् । स्तोत्रं वा । हन्यते तत् हान्त्रम् । मरणं वा । विगन्ति यत्रेति वेष्ट्रम् । लोको वा । अश्नुते व्याप्नोतीति आष्ट्रम् । आकाशो वा ॥

(१६१) वृद्धिरित्यनुवर्तते । दीव्यति द्योतते प्रकाशते तद् द्यौत्रम् ॥

(१६२) ओषति दहत्युष्ट्रः । पशुजातिभेदो वा । खन्यते तत् खात्रम् । खनित्रम् । जलाधारविशेषो वा । जनसनखनामित्यात्वम् ॥

(१६३) सौव्यति येन यदर्थं वध्नाति वा तत् सूत्रम् । तन्तुः शास्त्रैकादेशो वा । सुच्यते यस्तत् मूत्रम् । प्रस्त्रावो वा ॥

(१६४) अमति जानाति प्राप्नोति येन तत् अन्त्रम् । उदरनाडी वा । चौयते तत् चित्रम् । चित्रा नक्षत्रं वा । चैत्रो मासः । मिनोति मान्यं करोतीति मित्रम् । सुहृदा । नित्यं नपुंसकम् । क्वचित् पुंल्लिङ्गो वा । शत्रो मित्र इत्यादिषु । अयं मित्रम् । इयं मित्रम् । शोभनानि मित्राण्यस्याः सन्तीति सुमित्रा तस्या अपत्यं सौमित्रिः । बाह्यादित्वादित् । शंसति हिनस्तीति येन तत् शस्त्रम् । आयुधं वा ॥

(१६५) पुनाति पवित्रं करोतीति पुत्रः । आत्मजो वा ॥

स्त्यायतेर्ङट् ॥ १६६ ॥ स्त्री ॥ १६६ ॥

गुधृवीपचिवचियमिसदिक्षदिभ्यः स्त्रः ॥ १६७ ॥ गोत्रम् । गोत्रम् । गोत्रा । धर्वम् । वेत्रम् । पक्त्रम् । वक्त्रम् । यन्त्रम् । सत्रम् । क्षत्रम् ॥ १६७ ॥

ह्रयानाश्रुभसिभ्य स्त्रन् ॥ १६८ ॥ होत्रम् । यात्रा । मात्रा । श्रोत्रम् । भस्त्रा ॥ १६८ ॥

गमेरा च ॥ १६९ ॥ गात्रम् ॥ १६९ ॥

दादिभ्यश्छन्दसि ॥ १७० ॥ दात्रम् । पात्रम् ॥ १७० ॥

भूवादिगृभ्यो णित्रम् ॥ १७१ ॥ भावित्रम् । वादित्रम् । गारित्रम् ॥ १७१ ॥

(१६६) स्त्यायति शब्दयति गुणान् गृह्णाति वा सा स्त्री । प्रसिद्धा भार्या वा ॥

(१६७) गवते शब्दयत इति गोत्रम् । नामवंशो वा । गोत्रा पृथिवी । धरतीति धर्वम् । गृहं वा । वेति गच्छतीति वेत्रम् । लताविशेषो वा । पचति येन यत्र वा तत् पक्त्रम् । गार्हपत्यं वा । वक्ति येन तद् वक्त्रम् । मुखं वा । यच्छति उपरमति येन तद्यन्त्रम् । कलाविशेषो वा । सीदन्ति यत्रेति सत्रम् । यज्ञो वा । सतः सत्पुरुषान् त्रायते तत् सत्रमिति व्युत्पत्यन्तरम् । क्षद सौत्री धातुः । क्षदति रक्षतीति क्षत्रम् । वर्णभेदो वा । क्षताक्षायत इत्यपि ॥

(१६८) ह्रयत इति होत्रं होमः । यायत इति यात्रा गमनं वा । मातीति मात्रा । मानं भूषणं वा । श्रूयतेऽनेन तत् श्रोत्रम् । कर्णं वा । विभस्ति दीप्यते यया सा भस्त्रा । अग्निज्वलनी वा ॥

(१६९) गच्छति चेष्टतेऽनेनेति गात्रम् । अवयवः शरीरं वा ॥

(१७०) दाति क्षुणाति तत् दात्रम् । धान्यादिकेदनसाधनं वा । पिबत्यनेनेति पात्रम् । योग्यो भाजनं वा । पूर्वत्रापि पात्रमिति साधितम् । तत्र प्रत्ययस्य पित्वात्पात्री । ब्राह्मणीत्यपि साधितम् । क्षयति नश्यति निवासहेतुर्भवतीति क्षेत्रम् । केदारः कलत्रं वा । एवमन्येपि शब्दा द्रष्टव्याः ॥

(१७१) भवतीति भावित्रम् । लोकत्रयी वा । वाद्यते तद्वादित्रम् । तूर्यादिर्वा । गीर्यते भक्ष्यते तद् गारित्रम् । ओदनो वा ॥

चरेवृते ॥ १७२ ॥ चारित्रम् ॥ १७२ ॥

अशित्वादिभ्य इत्वौ ॥ १७३ ॥ अशितम् । वहितम् ।
धरित्वौ । त्वेत् ॥ वरुत् ॥ १७३ ॥

अमेर्हिषति चित् ॥ १७४ ॥ अमितः ॥ १७४ ॥

आः समिग्निकषिभ्याम् ॥ १७५ ॥ समया । निकषा ॥ १७५ ॥

चितेः कणः कश्च ॥ १७६ ॥ चिक्कणम् ॥ १७६ ॥

सूचेः स्रन् ॥ १७७ ॥ सूक्ष्मम् ॥ १७७ ॥

पातेर्डुम्सुन् ॥ १७८ ॥ पुमान् ॥ १७८ ॥

रुचिभजिभ्यां किष्यन् ॥ १७९ ॥ रुचिष्यम् । भुजिष्यः ॥ १७९ ॥

(१७२) चरतीति चारित्रम् । वृत्तान्तं समाचारो वा । इत्त्वप्रत्यये चरितं
सुशीलम् ॥

(१७३) अश्यादिभ्यः इत्तः अशनुते व्याप्नोतीति अशितम् । चरुर्वा । कटतीति
कटितम् । कवचभेदो वा । वहति येन तद्वहितम् । वाहनं वा । बध्नातीति बधि-
तम् । कामो वा । धरतीति धरित्वौ । पृथिवौ वा । त्वादिभ्य उत्रः । त्रायतेयेन
तत् त्वेत् ॥ प्रहारो वा । लुनाति क्षिनति येन तत्त्वोत्तम् । चीरचिह्नं वा । वृणो-
तीति वरुत् ॥ प्रावरणं वा ॥

(१७४) शत्रौ वाचेऽमेरित् । अमति गच्छतीति अमितः । शत्रुः ॥

(१७५) समेत्यतीति समया । निकषति हिनस्तीति निकषा । समीपवाचकौ वा ।
स्वरादिपाठादनयोरव्ययत्वम् । बाहुलकाद्दीव्यतीति दिवा । दिनं वा । दुष्यतीति
दोषा । रात्रिर्वा । अनयोरपि तत्रैव पाठादव्ययत्वम् । स्वदत्ते स्वादुक्रियये या सा
स्वधा । न्यायेनैख्यक्रियां तृमिर्वा । धातोर्दस्य धः ॥

(१७६) चेतति जानाति येन तत् चिक्कणम् । स्निग्धं वा ॥

(१७७) सूचयति पेशुन्यं करोतीति सूक्ष्मम् । अत्यल्पं वा ॥

(१७८) पाति रचतीति । पुमान् । पुमांसौ । पुमांसः । असुडादिकार्यम् ।
योभनः पुमान् यस्याः सा सुपुंसौ । असुड उगित्वान् ङीप् ॥

(१७९) रोचते तत्, रुचिष्यम् । इष्टं वा । भुनक्तीति भुजिष्यः । दासो वा ॥

वसेस्तिः ॥ १८० ॥ वस्तिः ॥ १८० ॥

सावसेः ॥ १८१ ॥ स्वस्ति ॥ १८१ ॥

वौ तस्तेः ॥ १८२ ॥ वितस्तिः ॥ १८२ ॥

पदिप्रधिभ्यां नित् ॥ १८३ ॥ पत्तिः । प्रथितिः ॥ १८३ ॥

दृणातेर्ङ्गस्त्रः ॥ १८४ ॥ दृतिः ॥ १८४ ॥

कृतृकृपिभ्यः कौटन् ॥ १८५ ॥ किरौटम् । तिरौटम् ।

कृपौटम् ॥ १८५ ॥

रुचिवचिकुचिकुटिभ्यः कितच् ॥ १८६ ॥ रुचितम् । उचि-
तम् । कुचितम् । कुटितम् ॥ १८६ ॥

(१८०) वस्त आच्छादयति सा वस्तिः । वसनस्य दशा कोणो नाभेरधीभागी
वा । बाहुलकात् । शास्ति शिञ्जत इति शास्तिः । राजदण्डो वा । यजतीति यष्टिः
यष्टी वा । काष्ठदण्डो वा । अस्यते क्षिप्यते या सा, अस्तिः । अगं वृक्षमस्यत्युत्पाटयति
स, अगस्तिः । मुनिर्वा । तस्यापत्यमागस्त्यः । शकन्धादित्वादत्र पररूपम् । पुलं
महत्त्वमसते गच्छति प्राप्नोतीति पुलस्तिः । ऋषिर्वा । तस्यापत्यं पौलस्त्यः । गभ-
मन्धकारमस्यतीति गभस्तिः किरणो वा । दूयते परितापयतीति दूतिः । दूती वा ।
इतस्ततः समाचारज्ञापिका स्त्री वा ॥

(१८१) सुष्ठु, अस्ति वर्त्तत इति स्वाती कल्याणं वा । बहुलवचनाद् भूभा-
वनिषेधः । स्वरादित्वादव्ययत्वं च ॥

(१८२) विशेषेण तस्यत्युपचिपति वा सा वितस्तिः । द्वादशाङ्गुलं
परिमाणं वा ॥

(१८३) पद्यते गच्छत्यसौ पत्तिः । पदातिः पुरुषो वा । प्रथ्यते या सा प्रथितिः ।
प्रख्यातिर्वा । तितुवेति सूत्रेऽग्रहादीनामिति वार्त्तिकेनेट् ॥

(१८४) दौर्घ्यतेऽसौ दृतिः चर्ममयं पात्रं वा ॥

(१८५) किरति विक्षिपतीति किरौटम् मुकुटं शिरोवेष्टनं वा । तरतीति
तिरौटम् । शिरोवेष्टनं लोधो वा कल्पतेऽसौ कृपौटम् । कुचिरुदकं वा । बाहुलका-
दत्र लत्वाभावः ॥

(१८६) रोचतेतत्, रुचिरम् । मिष्टं वा । वक्तुं योग्यमुचितम् । योग्यं वा । कीचति
शब्दतारं करोतीति कुचितम्, परिमितम् वा । कुटतीति कुटितम् कुटिलं वा ॥

कुटिकुषिभ्यां कुम्भलम् ॥ १८७ ॥ कुट्मलम् । कुम्भलम् ॥ १८७ ॥
 कुषेर्लघ्वच ॥ १८८ ॥ कुल्मलम् ॥ १८८ ॥
 सर्वधातुभ्योऽसुन् ॥ १८९ ॥ चेतः । सरः । सदः ॥ १८९ ॥
 रपेरत एच्च ॥ १९० ॥ रेपः ॥ १९० ॥
 अशेदेवने युट् च ॥ १९१ ॥ यशः ॥

(१८७) कुटतीति कुम्भलम् सुकुलम् (फूलती हुई कली) इतिप्रसिद्धम् ।
 कुष्णाति निष्कर्षतीति कुम्भलम् । पर्णं वा ॥

(१८८) कुस्नातीति कुल्मलम् । पापं वा ॥

(१८९) वर्चते दीप्यतेऽसौ वर्चः । तेजः पुरीषं वा । रक्षतीति रक्षः । पालको
 दुष्टो वा । प्रज्ञादित्वाद्णि स एव राक्षसः । रुणद्धि येन स रोधः । तटो वा । चेतति
 जानाति येन तत्, चेतः । चित्सं वा । सरन्ति गच्छन्त्यापी यत्र तत् सरः । तडागो
 वा । स्त्रीत्वविवक्षायां गौरादित्वात्सरसी महासरो वा । सरस्वान् समुद्रः । सरोवि-
 ज्ञानमुदकं वा विद्यतेऽस्यां सा सरस्वती वाक् नदी वा । रोदतीति रोदः । गौरादि-
 त्वादोदसी व्यावापृष्टिभ्यो वा । वेति गच्छतीति वयः कालकृताऽवस्था वा । अथवा
 वेति खादतीति वयो वय एव वायसः काकः । प्रज्ञादित्वाद्णि । सीदन्यत्रेति सदः
 सभा वा । एति प्राप्नोतीति, अयः । लोहं वा । अयः कामयतेऽसावयस्तान्तश्चुम्बक
 मणिः । अनिति जीवति येनेति, अनः । ओदनं पक्वान्नं वा । अनो महत्सम्ययते
 यत्र तन्महासनम् । पाकस्थानम् । समासान्तष्टच् । ताभ्यति काङ्क्षति येन तत्
 तमः । गुणः क्षीरोरात्रिरन्धकारो वा । तमश्चोऽचप्रत्ययान्तोऽदन्तोऽपि दृश्यते ।
 महति पूजयति पूज्यो भवति वेति महः । महद्वा । महसी । महंसि । अच् प्रत्यये
 ऽकारान्तोऽपि । सङ्गते यत्रेति सहः । बलं मार्गशीर्षो वा । सहसा बलेन सह प्रवर्तते
 स साहसिको दस्युर्दुष्टकर्मा वा । सहो बलं विद्यते यत्रेति सहस्यः पौषो मासः ।
 तपति दुःखी भवति तप्यते समर्थो वा भवति येन तत् तपः । धर्मसेवनं साधमासो
 वा । तपसि साधुस्तपस्यः फागुनो मासः । ग्रीष्मेऽकारान्तस्तपश्च । मिमीते
 येन समाः । मासो वा । इत्यादि ॥

(१९०) रप्यत उच्यत इति रेपः । अवद्यं वचो वा । बहुलवचनादन्यत्रापि ।
 पीयते तत् पयः । उदकं दुग्धं वा । पयोऽस्या अस्तीति पयस्विनी गौः । पयस्वी
 तडागः । विनिः । धातोरित्वम् । पुनर्गुणेत्यथादेशः ॥

(१९१) अश्यते दीप्यते क्रीडादि क्रियते येन तत्, यशः । कीर्तिर्वा ॥

उब्जेर्बले बलोपप्रच ॥ १८२ ॥ ओजः ॥ १८२ ॥

श्वेः सम्प्रसारणं च ॥ १८३ ॥ शवः ॥ १८३ ॥

अयतेः स्वाङ्गे शिरः किञ्च ॥ १८४ ॥ शिरः ॥ १८४ ॥

अर्त्तश्च ॥ १८५ ॥ उरः ॥ १८५ ॥

व्याधौ शुट् च ॥ १८६ ॥ अर्गः ॥ १८६ ॥

उदके नुट् च ॥ १८७ ॥ अर्णः ॥ १८७ ॥

इण आगसि ॥ १८८ ॥ एनः ॥ १८८ ॥

रिचेर्धने धिञ्च ॥ १८९ ॥ रेक्णः ॥ १८९ ॥

चायतेरन्ते ऋस्त्रश्च ॥ २०० ॥ चनः ॥ २०० ॥

वृड्शीड्भ्यां रूपस्वाङ्गयोः पुट् च ॥ २०१ ॥ वर्पः ॥ २०१ ॥

(१८२) उजति कोमलो भवतीति, ओजः । पराक्रमो वा । ओजसा वर्त्तते, ओजसिकः । ठक् ॥

(१८३) श्वयति गच्छतीति श्वः । मृतकशरीरं वा । बाहुलकात् । वहति यत इति जधः । गवादेर्दुग्धस्थानं वा । धातोः सम्प्रसारणे कृते दीर्घत्वं धकारश्चान्तादेशः घट इवोधो यस्याः सा घटोधनी कुण्डोधनी । गौर्महिषी वा ॥

(१८४) श्रीयत आश्रीयते तत् शिरः । मस्तकम् । शिरसी । शिरांसि ॥

(१८५) स्वाङ्ग इत्यनुवर्त्तते । ऋच्छति प्राप्नोति येन तत्, उरः । हृदयस्थानं वा । पिच्छादित्वादिलच् । बहूरीऽस्यास्तीत्युरसिलः ॥

(१८६) ऋच्छति प्राप्नोति दुःखं येन तत्, अर्गः । गुदरोगो वा । अर्गोऽस्यास्तीत्यर्गसः पुमान् । अर्ग आदित्वादच् ॥

(१८७) अर्त्तरित्येव । ऋच्छति गच्छतीत्यर्णो जलम् अर्णोऽस्मिन्नस्तीत्यर्णवः समुद्रः । वप्रत्यये सलोपः ॥

(१८८) ईयते प्राप्यते दुःखमनेन तदेनः पापं वा ॥

(१८९) रिणक्ति व्ययं करोति यत् तत् रेक्णः । सुवर्णं वा । घित्वाक्कुत्वम् ॥

(२००) चायते पूज्यतेऽनेन तत् चनो भक्तम् प्रत्ययस्य मुडागमे सति यस्मिन्पो ह्रस्वश्च

(२०१) विर्यते स्त्रीक्रियते तत् वर्पो रूपम् । शीते येन तत् शेषः । लिङ्गिन्द्रियं वा । अकारान्तोऽपि सेट्वाची शेषशब्दो दृश्यते । शुन इव शेषोऽस्य स शुनः शेषो मुनिः । षष्ठ्या अलुक् । बाहुलकात् । वर्णव्यत्यये वर्फः शेष इत्यपि सिद्धम् ॥

स्रुरीश्यां तुट् च ॥ २०२ स्त्रोतः । रेतः ॥ २०२ ॥
 पातेर्वले जुट् च ॥ २०३ ॥ पाजः ॥ २०३ ॥
 उदके घुट् च ॥ २०४ ॥ पाथः ॥ २०४ ॥
 अन्ने च ॥ २०५ ॥ पाथः ॥ २०५ ॥
 अदेर्नुम्धौ च ॥ २०६ ॥ अन्धः ॥ २०६ ॥
 स्कन्देश्च स्वाङ्गे ॥ २०७ ॥ स्कन्धः ॥ २०७ ॥
 आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा ॥ २०८ ॥ अभः । अपः ।
 आपः ॥ २०८ ॥
 रूपे जुट् च ॥ २०९ ॥ अब्जः ॥ २०९ ॥
 उदके नुम्भौ च ॥ २१० ॥ अम्भः ॥ २१० ॥
 नहेर्दिवि भश्च ॥ २११ ॥ नभः ॥ २११ ॥

(२०२) स्रवति चलतीति स्त्रोतः । स्त्रोतो जलचरणं वा । रीयते स्रवतीति रेतः । वीर्यं वा ॥

(२०३) पाति रक्षतीति पाजः बलं वा ॥

(२०४) पातेरेव । पातीति पाथो जलम् ॥

(२०५) घुट् । पाति रक्षतीति पाथो भक्तम् ॥

(२०६) अन्न इत्यनुवर्त्तते । अद्यते भक्ष्यते तदन्धोऽन्नमोदनो वा ॥

(२०७) स्कन्दते गच्छति चेष्टते श्रुयति वा येन तत् स्कन्धो बाहुमूलं हृत्वावयवो वा । अकाराऽन्तोप्ययम् ॥

(२०८) आप्यते सुखं येन तत्, अभः । अपः । अपत्यं सुकर्म वा ह्रस्वस्यापि विकल्पे । आप इत्यपि भवति आपोभिर्मार्जनमित्यादि सत्प्रयोगदर्शनात् ॥

(२०९) आप इत्येव । आप्यते यत्, तद् अब्जो रूपम् । अद्भ्यो जात इति निर्वचने अब्जः कमलं वा ॥

(२१०) आप इत्येव । आप्यते तत्, अभः । उदकम् । अभसा वर्तत इत्याभ-सिको मत्स्यः ॥

(२११) नहति घर्मं वह्नातीति नभो मेघधूत्यादियुक्त आकाशः आवणमासी वा । नभोऽस्मिन् शुद्धमस्तीति नभस्यो भाद्रो मासः ॥

इण आगोऽपराधे च ॥ २१२ ॥ आगः ॥ २१२ ॥

अमेहुक् च ॥ २१३ ॥ अंहः ॥ २१३ ॥

रमेष् ॥ २१४ ॥ रंहः ॥ २१४ ॥

देशे ह च ॥ २१५ ॥ रहः ॥ २१५ ॥

अञ्चगञ्जियुजिभूजिभ्यः कुश्च ॥ २१६ ॥ अङ्कः । अङ्कः । योगः ।

भर्गः ॥ २१६ ॥

भूरञ्जिभ्यां कित् ॥ २१७ ॥ भुवः । रजः ॥ २१७ ॥

वसेर्णित् ॥ २१८ ॥ वासः ॥ २१८ ॥

चन्देरादेश्च छः ॥ २१९ ॥ छन्दः ॥ २१९ ॥

(२१२) ईयते प्राप्यते ज्ञायते वा तत्, आगोपराधो दण्डी वा ॥

(२१३) अमन्ति प्राप्नुवन्ति दुःखं येन तत्, अंहः । पापं वा ॥

(२१४) चात्-हुक् । रमते येन तत् रंहः । वेगो वा ॥

(२१५) चाद्रमेरसुन् । रमन्तेऽस्मिन्निति रहः । एकान्तो विश्वासदेशो वा ।

रह एकान्ते भवं रहस्यं वेदान्तं वा । देशादन्यत्र रहोऽव्ययं शब्दान्तरं वास्ति । रहो मैथुनसमयस्तत्र भवं रहस्यं मैथुनम् । दिगादित्वाद्यत् ॥

(२१६) अञ्चति गच्छति येन तत् अङ्कः । संख्याद्योतकं चिह्नं वा । अनक्ति व्यक्तीकरोतीति अङ्गः । पक्षी वा । अवयवेऽङ्गशब्दोऽदन्तः । युज्यते स योगः । समाधिः कालो वा । भर्जति पक्वं भवतीति भर्गः । प्रजापतिः तेजो वा । बाहुलकात् उच्यते यत्र तत् ओकः । स्थानं वा । न्यङ्कादित्वात् कुत्वम् ॥

(२१७) भजन्ति यस्मिन्निति भुवः । अन्तरिक्षं वा । रजति तत् रजः । लोकः । सूक्ष्मधूलिः । स्त्रीपुष्पं गुणो वा । आकारान्तश्च ॥

(२१८) वस्त आच्छादयति शरीरादिकमनेन तत् । वासो वस्त्रं वा । असुनो णिहृद्भावाहृदिः ॥

(२१९) चन्दति हृथति येन दीप्यते वा तत् छन्दः । गायत्र्यादि कण्ठमिच्छा-
भिप्रायो वशो वा । छन्दानुवृत्तिः । इत्यादि प्रयोग दर्शनादकारान्तोऽप्ययं शब्द इति
मन्तव्यम् ॥

पचिवचिभ्यां सुट् च ॥ २२० ॥ पक्षः । वक्षः ॥ २२० ॥

वहिहाधाज्भ्यश्छन्दसि ॥ २२१ ॥ वक्षाः । हासाः । धासाः ॥ २२१ ॥

दृणश्चासिः ॥ २२२ ॥ अयाः ॥ २२२ ॥

मिधुनेऽसिः ॥ २२३ ॥ सुपयाः । सुयशाः ॥ २२३ ॥

नञि हन एह च ॥ २२४ ॥ अनेहाः ॥ २२४ ॥

विधाजो वेध च ॥ २२५ ॥ वेधाः ॥ २२५ ॥

नुवो धुट् च ॥ २२६ ॥ नोधाः ॥ २२६ ॥

गतिकारकयोः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च ॥ २२७ ॥ सुतपाः ।

जातवेदाः ॥ २२७ ॥

(२२०) पचतीति पक्षः । पूर्वोत्तरपक्षौ वा । वक्ति येन तद्वक्षः । हृदयं वा ॥

(२२१) सुट् । वहति भारमिति वक्षाः । अनड्वान् वा । हीयते हीनो भवतीति हासाः । चन्द्रमा वा । दधातीति धासाः । पर्वतो वा ॥

(२२२) एति प्राप्नोति अयाः । अग्निर्वा । स्वरादिपाठादव्ययम् । अत एव दीर्घादिरासिः प्रत्ययः ॥

(२२३) यत्रोपसर्गो धातुक्रियया संयुक्तस्तस्मिन् धुनम् । तत्र सति येभ्यो धातुभ्योऽसुन् विधीयते तेभ्यः सर्वेभ्योऽसिरेव स्यात् । स्वरभेदार्थं सूत्रमिदम् । सुपयाः । सुतपाः । सुपेशाः । न्योजाः । सुजवाः । सुस्रोताः । इत्यादयो द्रष्टव्याः ॥

(२२४) न हन्यते विच्छिन्नो न भवतीत्यनेहाः । कालो वा । अनेहसौ । अनेहसः ॥

(२२५) विशेषेण दधातीति वेधाः । वेधसौ । वेधसः । वेधसम् । विद्वान् विधाता जगदीश्वरो वा ॥

(२२६) नोति स्तौति नूयते स्तूयते वा स नोधाः । ऋषिर्वा ॥

(२२७) गतिकारकोपपदाद्वातीरसिः प्रत्ययो भवति तस्मिन् सति गतिकारकयोः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् । उत्तरपदप्रकृतिस्वरस्यापवादः । सुतपाः । सुतेजाः । सुवक्षाः । कारके । उपतेजाः । हिरण्यरेताः । जातवेदाः । सर्ववेदाः । विश्ववेदाः । वृद्धेभ्यः शृणोतीति वृद्धयवाः । विष्टर आसने शृणोतीति विष्टरयवाः । इत्यादि ॥

चन्द्रे सो ङित् ॥ २२८ ॥ चन्द्रमाः ॥ २२८ ॥

वयसि धाञः ॥ २२९ ॥ वयोधाः ॥ २२९ ॥

पयसि च ॥ २३० ॥ पयोधाः ॥ २३० ॥

पुरसि च ॥ २३१ ॥ पुरोधाः ॥ २३१ ॥

पुरुखाः ॥ २३२ ॥

चक्षेर्वहलं सिञ्च ॥ २३३ ॥ नृचक्षाः ॥ २३३ ॥

उषः किञ्च ॥ २३४ ॥ उषः ॥ २३४ ॥

दमेरुनसिः ॥ २३५ ॥ दमुनाः ॥ २३५ ॥

अङ्गेरसिः ॥ २३६ ॥ अङ्गिराः ॥ २३६ ॥

(२२८) चन्द्रमानन्दं मिमीतेऽसौ चन्द्रमाः । सोमो वा । चन्द्रमसौ । चन्द्रमसः ॥

(२२९) वयो दधातीति वयोधाः । तरुणो वा ॥

(२३०) धाञ इत्येव । पयो दधातीति पयोधाः । समुद्रो वा । मेघविशेषः स्तनो वा ॥

(२३१) धाञ इत्येव । पुरोऽग्रे यजमानं दधातीति पुरोधाः । पुरोहितो वा ॥

(२३२) पुरु बहु रौल्युपदिशति ब्रवीति वा स पुरुखाः । राजर्षिर्वा ॥

(२३३) विशेषेण चष्टेऽसौ विचक्षाः । उपाध्यायो वा नृन् चष्टे पश्यति ख्याति वा स नृचक्षाः । ईश्वरो दुष्टो वा । शित्वाभावपत्ने । आचष्टेऽसौ । आख्याः । प्रख्याः प्रजापतिर्वा ॥

(२३४) असिः । ओषति । दहतीति, उषः ॥ कर्णकिट्टं पर्वतभेदः । स्त्रियां सूर्योदयात्प्राक् प्रभातप्रकाश उषा वा । उषः काले बुध्यत इत्युपबुधः । अग्निर्बालः संयमी वा । कप्रत्ययान्ताद्यापि कृते । उषा रात्रिरित्यपि भवति ॥

(२३५) दाम्यत्युपग्रमयतीति दमुनाः । अग्निर्वा ॥

(२३६) अङ्गतिः प्राप्नोति जानाति वा स, अङ्गिराः । ईश्वरोऽग्निर्हविर्भेदो वा । तस्यापत्यमाङ्गिरसः । असिप्रत्यस्य ऋडागमः ॥

अप्सराः ॥ २३७ ॥

विदिभुजिभ्यां विश्वेऽसिः ॥ २३८ ॥ विश्ववेदाः । विश्वभोजाः ।

वशेः कनसिः ॥ २३९ ॥ उशनाः । २४० ॥

इत्युणादिषु चतुर्थः पादः ॥

अदिभुवो दुतच् ॥ १ ॥ अद्भुतम् । १ ॥

गुधेरूमः ॥ २ ॥ गोधूमः । २ ॥

मसेरूरन् ॥ ३ ॥ मसूरा । ३ ॥

स्यः किञ्च ॥ ४ ॥ स्थूरः । ४ ॥

पातेरतिः ॥ ५ ॥ पातिः । ५ ॥

(२३७) अप्सरति विकृष्टं गच्छतीत्यप्सराः । उपसर्गान्त्यलोपः । अथवाऽसुप-
जलेषु प्राणेषु वा सरन्तीत्यप्सरसः । किरणा वा । अथवा नप्सान्ति भक्षयन्ति रक्षां
कुर्वन्तीत्यप्सरसः । प्रत्ययस्य रुट् । नित्यबहुवचनान्तः स्त्रीलिङ्गश्च ॥

(२३८) विश्वं सर्वं वेत्ति जानातीति विश्ववेदाः जगदीश्वरो वा । विश्वे विद्यते
विश्वं वा विन्दति स विश्ववेदाः । अग्निर्वा । विश्वं भुनक्ति प्रलयसमये कारणरूपेण
स्वात्मनि स्थापयति वा विश्वं पालयतीति विश्वभोजाः । ईश्वरो राजा वा ॥

(२३९) वष्टि कामयते स उशनाः । शुक्रवारो वा । संप्रसारणादिकार्यम् ॥

इत्युणादिव्याख्यायां वैदिकलौकिककोषे चतुर्थः पादः ॥

(१) अदित्यव्ययं कदाचिदर्धे । अद् भवतीत्यद्भुतम् । आश्चर्यम् । अद्भुतम-
धीति । अद्भुताध्यापकः ॥

(२) गुध्मति वेष्टयतीति गोधूमः । अन्नविशेषो वा । गोधूमस्य विकारो गोधूममयः ।

(३) मस्यति परिणमतेऽस्ती मसूरा । बीजभेदो वेश्या वा ॥

(४) तिष्ठतीति स्थूरः । मनुष्यो वा । तस्यापत्यं स्थौर्यः ॥

(५) पाति रक्षतीति पातिः स्वामी । सम्पातिः पक्षिराजो वा ॥

वातेर्निन्त् ॥ ६ ॥ वातिः । ६ ॥

अर्त्तेश्च ॥ ७ ॥ अरतिः । ७ ॥

टहः को हलोपश्च ॥ ८ ॥ टणम् । ८ ॥

टञ्ज लुठितमिताडिभ्य उलच् तण्डश्च ॥ ९ ॥ तण्डुलाः ॥ ९ ॥

दंसेष्टनौ न आ च ॥ १० ॥ दासः । १० ॥

दाशेश्च ॥ ११ ॥ दाशः । ११ ॥

उदि चेडैसिः ॥ १२ ॥ उच्चैः । १२ ॥

नौ दीर्घश्च ॥ १३ ॥ नीचैः । १३ ॥

सौ रमे क्तो दमे पूर्वपदस्य च दीर्घः ॥ १४ ॥ सूरतः ॥ १४ ॥

पूजो यण् गुग्गुल्वश्च ॥ १५ ॥ पुण्यम् ॥ १५ ॥

(६) वाति गच्छतीति वातिः सूर्यश्चन्द्रो वा ॥

(७) अर्थते गरयते सा अरतिः । उडिगो वा ॥

(८) टहयते हन्यते तत्, टणम् । प्रसिद्धमेव ॥

(९) त्रियन्ते लुप्यन्ते तन्यन्ते ताड्यन्ते वा ते तण्डुलाः प्रसिद्धा वा वृजादीनां स्थाने तण्डादेशः ॥

(१०) दंसयन्ति दशति पश्यति वा स दासः । सेवकः शूद्रो वा । टिप्पान् डौप् । दासो । नकारस्याकारः । नित्करणं पञ्च आद्युदात्तार्थम् ॥

(११) टटनौ नकारस्य चालम् । दशति मत्स्यादिकमिति दाशो धीवर-
स्त्रियां दाशी । धीवरी ॥

(१२) उच्चीयते वर्धतेऽसावुच्चैः । महान् वा । खरादित्वादव्ययम् ॥

(१३) चेरिथेव । निचोयत इति नीचैः । अधोऽधमो वा । अस्यापि खरादित्वा-
देवाव्ययत्वम् ॥

(१४) सुष्ठु रमत इति सूरतः । उपशान्तः कृपांलुर्वा । दमार्थादन्यत्र सूरतः ।
क्रीडायुक्तः ॥

(१५) पवते पवित्रो भवति येन तत् पुण्यम् । सुकृतो धर्मो वा ॥

स्वंसिः शिः कुट् किञ्च ॥ १६ ॥ शिक्वम् ॥ १६ ॥

अन्तः क्युज्ज्व ॥ १७ ॥ उरणः ॥ १७ ॥

हिंसिरीरन्नीरचौ ॥ १८ ॥ हिंसौरः ॥ १८ ॥

उदि दृष्टातेरजलचौ पूर्वपदान्त्यलोपश्च ॥ १९ ॥ उदरम् ॥

डित्खनेर्मुट् चोदात्तः ॥ २० ॥ मुखम् ॥ २० ॥

अमेः सन् ॥ २१ ॥ अंसः ॥ २१ ॥

मुहेः खो मूर्च ॥ २२ ॥ मूर्खः ॥ २२ ॥

नहेर्हलोपश्च ॥ २३ ॥ नखम् ॥ २३ ॥

शीङो ऋस्वञ्च ॥ २४ ॥ शिखा ॥ २४ ॥

(१६) स्वंसते गच्छतीति शिक्वम् । काचः छीका इति प्रसिद्धः । तत्र धृतं यस्तु शिक्वम् ॥

(१७) कृच्छति गच्छतीति उरणः । मेघो वा ॥

(१८) हिनस्तीति हिंसौरः । व्याघ्रो दुष्टो वा । प्रत्ययद्वयं स्वरभेदार्थम् ॥

(१९) उद् दृष्टाति येनान्नमिति, उदरम् । कुक्षिस्थानम् । प्रत्ययभेदोऽत्रापि स्वरभेदार्थः ॥

(२०) खनेरलचौ । तयोर्द्वित्वं धातोर्मुडागमश्च । तस्योदात्तत्वम् । खनत्वा-
दिकमनेनेति मुखमास्यम् । मुखे भवो मुख्यो रोगः । शरीरावयवाद्यत् । मुखमिवोत्तमं
मुख्यम् । शाखादित्वादिवार्थं यः ॥

(२१) अमति गच्छति प्राप्नोति येन स, अंसः । स्कन्धो विभागो वा । अंसोऽ-
स्यास्तीत्यंसलः ॥

(२२) मुह्यति विचिह्न इव भवतीति मूर्खः । मूर्खस्य भावो मौर्ख्यं मूर्खिमा
वा । बाहुलकात् खस्येनादेशाभावः ॥

(२३) नहति वध्नाति रुधिरादिकमिति नखः प्राण्यङ्गं वा ॥

(२४) खः । शिखी शिखा । चूडा केशभदो ज्वाला या ऋस्वविधानसामर्थ्याद्
गुण्यभावात् ॥

माड ऊखो मय च ॥ २५ ॥ मयूखः ॥ २५ ॥

कलिंगलिभ्यां फगस्योच्च ॥ २६ ॥ कुल्फः । गुल्फः ॥ २६ ॥

स्पृष्टः श्वण्शुनौ ष्ट च ॥ २७ ॥ पार्श्वः । पशुः ॥ २७ ॥

श्मनि श्रयतेर्दुन् ॥ २८ ॥ श्मश्रु ॥ २८ ॥

अप्रवादयश्च ॥ २९ ॥ अश्रु ॥ २९ ॥

जनेष्टन् नलोश्च ॥ ३० ॥ जटा ॥ ३० ॥

अच् तस्य जङ्घ च ॥ ३१ ॥ जङ्घा ॥ ३१ ॥

हन्तेः शरीरावयवे द्वे च ॥ ३२ ॥ जघनम् ॥ ३२ ॥

क्लिश्येरन्लो लोपश्च ॥ ३३ ॥ केशः ॥ ३३ ॥

फलेरितजादेश्च पः ॥ ३४ ॥ पलितम् ॥ ३४ ॥

(२५) मिमीते मान्यहेतुर्भवतीति मयूखः । किरणः कान्तिः करो ज्वाला वा ॥

(२६) कलति संख्यातीति कुल्फः । शरीरावयवो रोगो वा । गलति भक्षय-
तीति गुल्फः । पादग्रंथिर्वा ॥

(२७) स्पृष्टति येन स पार्श्वः । कक्षयोरधोभागो वा । पशुः । आयुधं वा ॥

(२८) श्मनि मुखे श्रयतीति, श्मश्रु । श्मश्रुणी । श्मश्रूणि । पुरुषमुखरोमाणि वा ॥

(२९) अश्रुते व्याप्नोतीति, अश्रु नेत्रजलं वा । दुन् प्रत्ययो रुडागमश्च । एव-
मन्येऽपि यथायोग्यं द्रष्टव्याः ॥

(३०) जायतेऽसौ जटा । दीर्घाः केशा वा । जटा अस्य सन्तीति जटालः ।
सिखादित्वाल्लच् । जटिलः । पिच्छादित्वादिलच् ॥

(३१) तस्य जनेः । जायतेऽसौ जङ्घा । जानोरधोभागो वा ॥

(३२) हन्ति येन यो वा हन्यते तज्जघनम् । जानोरुपरिभागो वा । इदार्थे
शाखादित्वाद्यः । जघनमिव जघन्यं नीचम् ॥

(३३) क्लिश्यति येन स केशः । शिरलोमानि वा । केशा अस्य सन्तीति केशवः
केशिकः । केशी ॥

(३४) फलति निष्पन्नं पक्कमिव भवतीति पलितम् । केशप्रचेत्यं वा । फस्य पः ॥

लजादिभ्यः संज्ञायाम् ॥ ३५ ॥ करकः । कटकः । नरकः ।
कोरकः ॥ ३५ ॥

चीकयतेराद्यन्तविपर्ययश्च ॥ ३६ ॥ कौचकः । ३६ ॥

पचिमच्योरिच्चोपधायाः ॥ ३७ ॥ पेचकः । मेचकः । ३७ ॥

जनेररठ च ॥ ३८ ॥ जठरम् । ३८ ॥

वचिसनिभ्यां चिच्च ॥ ३९ ॥ वठरः । मठरः । ३९ ॥

जर्जिहणातेरलचौ ॥ ४० ॥ जर्दरः । ४० ॥

कृदरादयश्च ॥ ४१ ॥ कृदरः । मृदरः । सृदरः । ४१ ॥

हन्तेर्युन्नाद्यन्तयोर्धत्वतत्वे ॥ ४२ ॥ घतनः । ४२ ॥

(३५) करोतीति करकः करका । वृष्टिपापाणो वा । करको दाडिमः कमण्ड-
लुर्वा । कटति वर्षत्यावृणोति वा स कटकः । बाहुभूषणं शिखरो वा । नृणाति
नयतीति नरकम् । पापभागो वा । सरति गच्छतीति सरकम् । गसनं वा । अलति
भूषितो भवतीत्यलकम् । शीतादिकं वा । अलति वारयति येन तेऽलकाः । कुटिलाः
केशा वा । कुरति शब्दयतीति
कोरकः । कलिका (कली) इति प्रसिद्धा ॥

(३६) चीकयते सहतेऽसौ कौचकः । वंशभेदो वा ॥

(३७) पचतीति पेचकः । उलूकपची वा । मचते शब्दयतीति मेचकः । कृष्ण-
वर्णो मयूरपक्षिः वा ॥

(३८) जायतेऽस्मादिति जठरम् । उदरं कठिनं वा ॥

(३९) अन्यस्य ठः वक्तीति वठरः । मूर्खो वा । मन्यतेऽसौ मठरः । मुनिभेदो
मत्तो वा । तस्यापत्यं माठरः । माठर्यः ॥

(४०) जर्कं पराक्रमं रसं वा दृणातीति, जर्दरः । शूरी दुष्टो वा । स्वरभेदार्थं
प्रत्ययद्वयम् ॥

(४१) कृत्स्नं दृणातीति कृदरः । कुशलो वा । मृदं दृणातीति मृदरः व्याधि-
र्विलं वा । सृष्टिं दृणातीति सृदरः सर्पः ॥

(४२) हन्तीति घतनः । मारको वा ॥

क्रामिगमिचमिभ्यस्तुन् वृद्धिश्च ॥ ४३ ॥ क्रान्तुः । गान्तुः ।
चान्तुः । ४३ ॥

हर्यतेः कन्यन् हिरच् ॥ ४४ ॥ हिरण्यम् ॥ ४४ ॥

कृजः पासः ॥ ४५ ॥ कर्पासः । ४५ ॥

जनेस्तुरश्च ॥ ४६ ॥ जर्तुः ॥ ४६ ॥

जर्णोतेर्डः ॥ ४७ ॥ जर्णा । ४७ ॥

दधाते र्यन्नुट् च ॥ ४८ ॥ धान्यम् । ४८ ॥

जीर्यतेः क्रिन् रश्च वः ॥ ४९ ॥ जित्रिः । ४९ ॥

मव्यतेर्यलोपो मश्चायतुट्चालः ॥ ५० ॥ ममायतालः ॥ ५० ॥

ऋजेः कीकच् ॥ ५१ ॥ ऋजीकः । ५१ ॥

(४३) क्रामति प्रादान् विक्षिपतीति क्रान्तुः । पक्षी वा । गच्छतीति गान्तुः ।
पथिको वा । आगान्तुरभ्यागतः । क्षमतेऽसौ चान्तुः । सहनशीलो वा ॥

(४४) हर्यते काम्यते तत्, हिरण्यम् । सुवर्णं वा ॥

(४५) क्रियत उत्पाद्यतेऽसौ कर्पासः सस्य भेदो वा । कर्पासस्यविकारः कार्पासं
वस्त्रम् । विल्वादित्वादण् ॥

(४६) जायते यत इति जर्तुः । उपस्थेन्द्रियं हस्ती वा ॥

(४७) जर्णोत्याच्छादयति यथा सा, जर्णा । अविमेषयो रोमाणि वा । जर्णा
याति प्राप्नोतीत्यूर्णायुः । मेषो मेषोर्णा कम्बलो वा । जर्णा इव नाभिरस्य स जर्ण-
नाभः । समासान्तोऽच् जर्णनाभिरिति वा समासान्तस्य विधेरनित्यत्वात् । लूताहिर्वा ॥

(४८) दधाति पुष्पाति लोकानिति धान्यम् । ब्रीहिर्वा । धाने पोषणे साधु
धान्यमित्यपि ॥

(४९) यो जीर्यति येन वा स जित्रिः । कालः पक्षी वा । हलिचेति बाहुल-
काद्दीर्घाभावः ॥

(५०) मव्यति बध्नातीति ममायतालः । बन्धनहेतुर्विषयो वा ॥

(५१) ऋजति गच्छतीति, ऋजीकः । सूर्यो धूमो वा ॥

तनोतेर्डः सन्वच्च ॥ ५२ ॥ तितउ ॥ ५२ ॥

अर्भकपृथुकपाका वयसि ॥ ५३ ॥

अवद्यावमाधमावरेफाः कुत्सिते ॥ ५४ ॥

लीरीङोर्ऋः पुट् च तरौ श्लेषणकुत्सनयोः ॥ ५५ ॥ लिप्तम् ।
रिप्तम् ॥ ५५ ॥

क्लिशेरौच्चोपधायाः कन् लोपश्चलो नाम् च ॥ ५६ ॥ क्लीनाशः ।

अप्रनोतेराशुकर्मणि वरट् च ॥ ५७ ॥ ईश्वरः ॥ ५७ ॥

चतेरन् ॥ ५८ ॥ चत्वारः ॥ ५८ ॥

प्रातेरन् ॥ ५९ ॥ प्रातः ॥ ५९ ॥

(५२) तनोति विस्वृणोति येन तत् तितउ । चालनी पेषणशोधकपात्रम् ॥

(५३) ऋध्यति वर्धतेऽसावर्भकः ऋधुधातोर्बुन् धस्य भः । प्रयते वर्धते स
पृथुकः । कुकन् प्रययः सम्प्रसारणं च पिवतीति पाकः । कन् प्रत्ययः । अर्भकपृथुक
पाका बालकपर्यायाः ॥

(५४) वदितुमयोग्यमवयम् । नञ्पूर्वाद्दधातीर्यत् । अवतीत्यवमः । अमः
प्रत्ययः । तत्रैव वस्य धः । अधमम् । ऋच्छति गच्छतीत्यर्वा । वन् । अश्नो वा । रिफति
निन्दतीति रेफः । कुत्सितपर्याया इमे ॥

(५५) लीयते श्लिष्यत इति लिप्तम् । श्लिष्टम् । रीयते तत्, रिप्त् कुत्सितम् ।
तरौ प्रत्ययौ पुडागमः ॥

(५६) क्लिश्नातीति क्लीनाशः । क्लीवलो न्यायाधीशो वा । धातोरुपधाया
इत्वं लकारलोपः कन् प्रत्ययो नामागमश्चान्त्यादयः परः ॥

(५७) अश्नुते, आशु शीघ्रं करोति जगद्रचयति स, ईश्वरः । स्वामी वा ।
टित्वादीश्वरी । वरच् प्रत्यये । ईश्वरा ॥

(५८) चतते याचतेऽसौ चतुः । संख्यावाची वा । चत्वारः । चतस्रः ॥

(५९) प्रकृष्टमतति गच्छतीति प्रातः । प्रभातकाली वा । स्वरादित्वादव्ययम् ॥

अमेस्तुट् च ॥ ६० ॥ अन्तः ॥ ६० ॥

दहेर्गोहलोपो दश्च नः ॥ ६१ ॥ नगः ॥ ६१ ॥

सिचिः संज्ञायां हनुमौ कश्च ॥ ६२ ॥ सिंहः ॥ ६२ ॥

व्याडि घ्रातेश्च जातौ ॥ ६३ ॥ व्याघ्रः ॥ ६३ ॥

हन्तेरच् घुर च ॥ ६४ ॥ घोरम् ॥ ६४ ॥

क्षमेरुपथालोपश्च ॥ ६५ ॥ क्ष्मा ॥ ६५ ॥

तरतेड्विः ॥ ६६ ॥ त्रयः ॥ ६६ ॥

ग्रहेरनिः ॥ ६७ ॥ ग्रहणिः ॥ ६७ ॥

प्रथेरमच् ॥ ६८ ॥ प्रथमः ॥ ६८ ॥

चरेश्च ॥ ६९ ॥ चरमः ॥ ६९ ॥

(६०) अमति गच्छतीति यत्नेति, अन्तः । मध्यं वा । पूर्ववदव्ययम् ॥

(६१) दहति दह्यते वा स नगः । पर्वतो वृक्षो वा । बाहुलकान्नकारस्य नाकारी नागः सर्पभेदो वा ॥

(६२) सिञ्चतीति सिंहः । प्रसिद्धो वा । हकारप्रत्ययो नुमागमः । चस्य कः । ककारस्य च लोपः हिनस्तीति सिंहः इति पृषोदरादित्वादप्याद्यन्तविपर्ययः ॥

(६३) विशेषेण समन्तात् जिघ्रतीति व्याघ्रः हस्ती वा ॥

(६४) हन्तीति घोरम् । भयानकं वा ॥

(६५) क्षमते सहते सर्वमिति क्ष्मा पृथिवी वा ॥

(६६) तरतीति त्रिः । संख्यावाची वा । त्रयः । त्रीन् । त्रिभ्यः ॥

(६७) गृह्णातीति ग्रहणिः । कृदिकारादिति डीष् । ग्रहणी संग्रहणी व्याधिभेदो वा ॥

(६८) प्रथते प्रस्थातो भवतीति प्रथमः । आद्य उत्तमो नूतनो वा ॥

(६९) चरति गच्छति भक्षयति वा स चरमः । अन्त्यः पश्चिमो वा ॥

मङ्गेरलच् ॥ ७० ॥ मङ्गलम् ॥ ७० ॥

इत्युणादिषु पञ्चमः पादः समाप्तः ॥

मन्वानंविशदंविधायबहुलंव्युत्पन्नपक्षेनवा

ऽव्युत्पन्नेनदलेनयेनविधिवद्वाग्वारिधिर्मन्यतः ।

व्यक्ताव्यक्ततराण्यत्रवचसांरत्नान्यदीप्यन्तवै

भूयात्सोयमुखादिरुत्तमगणोध्येतुर्यशोऽद्वये ॥ १ ॥

(७०) मङ्गति प्राप्नोति सुखं येन तन्मङ्गलम् । प्रशस्तम् मङ्गलो वारभेदो वा ।
मङ्गलस्य भावो माङ्गल्यम् ॥

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतौणादिव्याख्यायां

वैदिकलौकिककोषे पञ्चमः पादः समाप्तः ॥

समाप्तञ्चायं ग्रन्थः

अथोणादिशब्दसूचीपत्रम् ॥

—३*६—

शब्दाः	पृ	स	शब्दाः	पृ	स	शब्दाः	पृ	स
अ			अन्तः	५	६०	अर्कः	३	४०
अक्षम्	३	८८	अन्वम्	४	१६४	अर्णः	४	१८७
अक्षरम्	३	७०	अन्धः	४	२०६	अरणिः	२	१०२
अक्षः	३	६५	अन्नम्	३	१०	अरण्यम्	३	१०२
अक्षाम्	३	१७	अनलः	१	१०६	अरतिः	४	६०
अग्रम्	२	२८	अन्यः	४	१०८	अरतिः	५	७
अगस्तिः	४	१८०	अपः	४	२०८	अर्थः	२	४
अग्रन्यः	४	११२	अप्रः	४	२०८	अर्मः	३	१५२
अङ्गः	४	२१६	अप्सराः	४	२३७	अर्मकः	५	५३
अङ्कतिः	४	६१	अपठुः	१	२५	अर्मः	१	१४०
अङ्गः	४	२१६	अलः	४	२०८	अर्ममः	१	१५८
अञ्चतिः	४	६१	अष्टः	४	८८	अररः	३	१३२
अञ्जलिः	४	२	अश्वकम्	२	३२	अररुः	४	७८
अटविः	४	१३४	अमतः	३	११०	अर्वः	५	५४
अण्डः	१	११४	अमत्रम्	३	१०५	अर्शः	४	१८६
अणवः	१	८	अमतिः	४	५८	अर्शसानः	२	८८
अर्कः	३	४३	अमनिः	२	१०२	अर्हन्तः	३	१२६
अक्षः	३	६	अम्बरम्	३	१३१	अलकम्	५	३५
अतसः	३	११७	अम्बरीषः	४	२८	अलकाः	५	३५
अक्षः	१	१२३	अम्बुः	४	१०८	अलतिः	४	६०
अदमनिः	२	१०५	अम्भः	४	२१०	अवगथः	२	८
अधमः	५	५४	अम्भः	४	१०८	अवद्यम्	५	५४
अध्वयुः	१	३७	अयः	४	१८८	अवनिः	२	१०२
अनः	४	१८८	अयस्कास्तः	४	१८८	अवभथः	२	३
अन्तः	३	८६						

शब्दाः	ॐ	ॐ	शब्दाः	ॐ	ॐ	शब्दाः	ॐ	ॐ
अवमम्	५	५४	अज्जिष्ठः	४	२	अणुः	१	८
अव्यधिषः	१	४८	अतिथिः	४	२	अङ्गुतम्	५	१
अवसः	३	११०	अत्रिः	४	६८	अन्तुः	१	२७
अग्निः	२	१०२	अद्रिः	४	६५	असुः	१	७५
अश्वः	१	१५१	अनिलः	१	५४	अम्बु	१	२७
अष्ट	१	१५७	अपिशलिः	४	२२८	अरुः	२	११०
अष्टका	३	१४८	अभिस्तातः	३	८६	अर्जुनः	३	५८
अंसः	५	२१	अमित्रः	४	१७४	अर्जुनम्	३	५८
अस्तम्	४	१५८	अरिः	४	१३८	अरुणः	३	६०
असनः	२	७८	अर्चिः	२	१०८	अशुः	५	२८
असद्	१	१३८	अर्पिसः	४	२	असुः	१	१०
अस्त्रम्	२	१३	अलिः	४	१३८	अस्तुः	४	१०२
अहः	१	१५८	अविनः	२	४६	असुरः	१	४२
अंहः	४	२१३	अविषः	१	४५	अङ्कूषः	४	७६
अंहतिः	४	६२	अग्निः	४	१३८	अन्दूः	१	८३
अहल्या	४	११२	अग्नित्रम्	४	१७३	अरुषः	४	७३
अङ्गारः	३	१३४	अग्निरः	१	५२	अयेगुः	२	६८
अघ्ना	४	११६	असिः	४	१४०	अनेहाः	४	२२४
अपूवा	१	१५४	अस्तिः	४	१८०	आ		
अपाः	४	२२२	अस्थिः	३	१५४	आखनिकः	२	४५
अर्वा	४	११३	अहिः	४	१३८	आगः	४	२१२
अलावूः	१	८७	अङ्किः	४	६६	आडम्बरः	३	१३१
अशमा	४	४७	अत्री	४	६८	आपः	२	५८
अक्षि	३	१५६	अनीकम्	४	१७	आपः	४	२०८
अग्निः	४	५०	अवीः	३	१५८	आपाणिकः	२	४५
अङ्गिराः	४	२३६	अलीकम्	४	२५	आपतिकः	२	४५
अजिः	४	१४०	अङ्कुशः	४	१०७	आपनिकः	२	४५
अजिनम्	२	४८	अङ्कुरः	१	३८	आमयः	४	८८
अजिरः	१	५३	अङ्गुलिः	४	२	आम्रम्	२	१६

शब्दाः	पं	सं	शब्दाः	पं	सं	शब्दाः	पं	सं
जमम्	१	१४४	एतः	३	८६	कटम्बः	४	८२
जर्गनाभः	५	४७	एतशः	३	१४८	कट्वरम्	३	१
जर्गनाभिः	५	४७	एतशाः	३	१४८	कटिः	४	११८
जर्दरः	५	४०	एधतुः	१	७७	कटित्रम्	४	१७३
जर्ग	५	४७	एनः	४	१८८	कटोरः	४	३०
जर्गायुः	५	४७	एवः	१	१५२	कटुः	१	८
जम्मा	४	१४५	एलूकः	४	४१	कटोलः	१	६६
जर्मिः	४	४४	ओ			कठाकुः	३	७७
जवः	१	३०	ओकः	३	४१	कठिनम्	२	४८
कट			ओकः	४	२१६	कठेरः	१	५८
कटक्	२	५७	ओजः	४	१८२	कठोरः	१	६४
कटक्षम्	२	७	ओदनः	२	७६	कडत्रम्	३	१०६
कटजम्	३	६६	ओम्	१	१४२	कडम्बः	४	८२
कटचः	३	६७	ओष्ठः	२	४	कडारः	३	१३५
कटच्छरः	३	७५	ओतुः	१	६८	कणीचिः	४	७०
कटच्छरः	३	१३१	क			कण्डः	१	१०३
कटजूः	२	२८	ककखटम्	४	८१	कण्वम्	१	१५१
कटज्ञानः	२	८७	कक्षम्	३	६२	कण्डोलः	१	६६
कटतम्	३	८८	कङ्कटः	४	८१	कदम्बः	४	८२
कटधभः	३	१२३	कङ्कणः	४	२४	कदरः	३	१३१
कटप्यः	४	११२	कङ्कणीका	४	१८	कटुः	४	१०२
कटपिः	४	१२०	कच्छः	४	१०५	कदली	१	१०१
कटजीकः	४	२२	कच्छूः	१	८४	कदली	३	१३१
कटजीकः	५	५१	कक्षपम्	३	१४२	कनकम्	२	३२
कटजीषम्	४	२८	कखूलः	४	८	कन्तुः	१	२७
कटजूः	१	२७	कङ्गारः	३	१३७	कन्तुः	१	७३
कटतुः	१	७२	कटकम्	२	३२	कन्दः	४	८८
ए			कटकः	५	३५	कन्दरः	३	१३१
एकः	३	४३	कटप्रः	२	५७	कन्दुः	१	१४
एतम्	१	१३३						

शब्दाः	प	प	शब्दाः	प	प	शब्दाः	प	प
कन्या	४	११२	क्रतुः	१	७६	कश्यः	४	११२
कपटम्	४	८१	कर्दमः	४	८४	कशेरुः	१	८८
कपालम्	१	११८	कर्पटः	४	८१	कशेरुः	१	८८
कपिः	४	१४४	कर्परः	३	१३१	कषिः	४	१४०
कपिलः	१	५५	कर्पासः	५	४५	कषाकुः	३	७७
कपोतः	१	६२	कर्पूरः	४	८०	कषीका	४	१६
कपोलः	१	६६	कबुरः	१	४१	चत्रम्	४	१६७
कफेलूः	१	८३	करभः	३	१२२	चत्ता	२	८४
कबरः	४	१५५	कर्म	४	१४५	कंसः	३	६२
कमठः	१	१००	करम्बम्	४	८२	कस्तूरः	४	८०
कम्बलः	१	१०७	क्रयिकः	२	४४	कस्तूरी	४	८०
कम्बूः	१	८३	करीरः	४	३०	काकः	३	४३
कमरः	३	१३३	कर्कः	१	१५५	काकुः	१	१
कमलम्	१	१०४	कर्करः	२	१२१	काणूकः	४	३८
कमलः	१	१०४	करीषः	४	२६	काण्डम्	१	११५
करिः	४	१२८	कर्षूः	१	८०	कादम्बः	४	८३
कर्कः	३	४०	कलिः	४	११८	कारिः	४	१२८
करकः	५	३५	कल्कः	३	४०	कारुः	१	१
कर्कटः	४	८१	कलत्रम्	३	१०६	क्रान्तुः	५	४३
कर्कण्डूः	१	८३	कलापकम्	२	३२	कारिः	४	१२७
कर्करः	३	१३१	कलभः	३	१२२	कार्षिकः	२	३८
कर्करीकम्	४	२०	कलमः	४	८४	काशिः	४	११८
कर्करेटुः	१	३७	कलिलम्	१	५४	काशूः	१	८५
करटः	४	८१	कलुषम्	४	७५	काष्टम्	२	२
करेटुः	१	३७	कविः	४	१३८	काष्ठपुत्रिका	२	३२
कर्णः	३	१०	कवलः	१	१०६	चान्तुः	५	४३
करण्डः	१	१२८	कवसः	४	२	क्ष्मा	५	६५
कवणा	३	५३	कश्मलम्	१	१०८	कासारः	३	१३८
करणुः	२	१	कश्मीरः	४	३२			

शब्दाः	पं	श	शब्दाः	पं	श	शब्दाः	पं	श
किकीदिविः	४	५६	कुटितम्	४	१८६	कुरुरः	३	१३३
किङ्कणीका	३	१८	कुटपः	४	१४२	कुरीरम्	४	३३
किम्	४	१५८	कुट्मलम्	४	१०८	कुखा	४	११४
किरिः	४	१४३	कुट्मलः	१	१०८	कुरवः	१	२४
किरीटम्	४	१८५	कुटरः	४	८०	कुल्फः	२	२६
किरणः	२	८१	कुटीरः	४	३०	कुल्मलम्	४	१८८
क्रिमिः	४	१२२	कुटिलम्	४	१८६	कुलीरः	४	३३
किर्मीरः	४	३०	कुटिलः	१	५४	कुलालः	१	११८
किरीरः	४	३०	कुठिः	४	१४४	कुमलः	१	१०६
किल्बिषम्	१	५०	कुठेरः	१	५८	कुष्ठम्	२	२
किंवदन्ती	३	५०	कुड्मलः	१	१०८	कुद्रः	२	१३
किंशारः	१	४	कुडम्	४	११२	कुधुनः	३	५५
किशोरः	१	६५	कुण्डम्	१	११५	कुम्भलम्	४	१८०
चित्वा	४	११४	कुण्डिनः	२	४८	कुमा	१	१४५
क्षिपणिः	२	१०७	कुण्डलम्	१	१०४	कुुरः	२	२८
क्षिपणुः	३	५२	कुणिन्दः	४	८५	कुसितः	४	१०६
क्षिपण्युः	३	५१	कुणपः	३	१४३	कुसीदम्	४	१०६
क्षिप्रम्	२	१३	कुणालः	३	७६	कुसुभम्	४	१०६
कीकसम्	३	११७	कुत्तम्	३	६६	कुसुमम्	४	१०६
कीचकः	५	३६	कुन्तिः	३	५०	कुसूलः	४	८०
कीनाशः	५	५६	कुन्दः	४	८८	कुडुः	१	३७
कीर्त्तिः	४	११८	कुपिन्दः	४	८६	कुडकः	२	३७
कीरम्	४	३४	कुविन्दः	४	८६	कुची	४	८१
कुक्कुरः	१	४१	कुवः	३	२८	कूपः	३	२७
कुकुरः	१	४१	कुवेरः	१	५८	कूरः	२	२१
कुचः	३	६८	कुम्भीरः	४	३०	कृक्वाकुः	१	६
कुक्षिः	३	१५५	कुमारः	३	१३८	कृच्छम्	२	२१
कुक्षितम्	४	१८६	कुमारयुः	१	३७	कृतकम्	३	३७
कुटिः	४	१४३	कुरङ्गः	१	१२१	कृतिका	३	१४०

शब्दाः	पृ	श	शब्दाः	पृ	श	शब्दाः	पृ	श
कलुः	३	३०	कीमलम्	१	१०८	ग		
कलम्	३	६६	कीरजः	५	३५	गगनम्	२	७७
कलम्	३	१७	क्रोष्टुः	१	६८	गङ्गा	१	१२३
कदरः	५	४१	कोशलः	१	१०६	गडेरः	१	५८
कलत्रम्	३	१०८	कोष्ठः	२	४	गडोलः	१	६६
कपीटम्	४	१८५	कोणिः	४	४८	गण्डः	१	११४
कपणः	२	७८	कोत्ता	२	८४	गण्डयन्तः	३	१२८
कपाणः	२	८०	कीमम्	१	१४०	गण्डिः	४	११८
कमिः	४	११२	ख			गण्डुः	१	७
कविः	४	५६	खजपम्	३	१४२	गण्डूषः	४	७८
कशानुः	४	२	खजाकः	४	१३	गण्डोलः	१	६६
कषिः	४	१२०	खट्वा	१	१५१	गतिला	१	५७
कषिः	४	१२७	खड्गः	१	१२४	गदयितुः	३	२८
कषकः	२	३८	खडूः	१	८२	गन्वी	४	१५८
कषिकः	२	४०	खड्डूः	१	८२	मन्तुः	१	६८
कषाः	३	४	खण्डः	१	११४	गभीरः	४	३५
कसरः	३	७३	खदिरः	१	५३	गभस्तिः	४	१८०
केतुः	१	७४	खनिः	४	१४०	गमथः	३	११३
क्रेणिः	४	४८	खनित्रम्	४	१६२	गमी	४	६
कीदा	१	१५८	खरुः	१	३६	गभीरः	४	३५
कीदुः	१	१०	खर्जः	१	८०	गर्गः	१	१२८
केलिः	४	११८	खर्जूरः	४	८०	गरुडः	४	४६
केवलः	१	१०६	खलतिः	३	११२	गरुत्	१	८४
केशः	५	३३	खष्पः	३	२८	गर्तः	३	८६
क्षेत्रम्	४	१७०	खाटिः	४	१२५	गर्दभः	३	११२
क्षेमम्	१	१४०	खातम्	४	१६२	ग्रन्थिः	४	१४०
कोकिलः	१	५४	खिद्रः	२	१३	गर्भः	३	१५२
कोटरः	३	१३१	खिदिरः	१	५१	गर्भुत्	१	८५
कोटिः	४	११८	खुरः	२	२८	गर्वः	१	१५५

शब्दाः	अ. पं.	सं. ६	शब्दाः	अ. पं.	सं. ६	शब्दाः	अ. पं.	सं. ६
गर्वरः	२	१२१	गधुः	१	२३	चक्षुः	२	११८
ग्रहणिः	५	६७	ग्रहयाप्यः	३	२६	चक्षोरः	१	६४
गवयः	२	६८	गेषुः	३	१६	चङ्कुरः	१	३८
गह्वरः	३	१	गोत्रम्	४	१६७	चक्षुरीकः	४	२०
गातुः	१	७३	गोत्रा	४	१६७	चटुलः	१	८६
गात्रम्	४	१६८	गोधूमः	५	२	चण्डः	१	११४
गाथा	२	४	गोपीधः	२	८	चण्डालः	१	११७
गान्धम्	४	६०	गोरोचनम्	२	७८	चण्डिला	१	५७
गान्तुः	५	४३	गौरः	१	६५	चतुरः	१	३८
ग्रामः	१	१४३	गौरः	२	२८	चत्वरम्	१	१२१
गारित्रम्	४	१७१	गौः	२	६८	चत्वारः	५	५८
ग्लानिः	४	५१	ग्लीः	२	६४	चनः	४	२००
गिरिः	४	१४३	घ			चन्द्रनम्	२	७८
ग्रीवा	१	१५४	घटिः	४	११८	चन्द्रः	२	१३
ग्रीष्मः	१	१४८	घतनः	५	४२	चन्द्रमाः	४	२२८
गुडः	१	११५	घर्मः	१	१४८	चन्द्रिरम्	१	५१
गुडेरः	१	५८	घासिः	४	१३०	चपटः	४	८१
गुल्फः	३	६८	घुण्डः	१	११५	चपेटः	४	८१
गुधिरः	१	६१	घुरणः	२	८३	चपलम्	१	१११
गुपिलः	१	५६	घूर्णिः	४	५२	चम्पा	३	२८
गुरुः	१	२४	घृणा	३	४	चमूः	१	८०
गुर्विणी	२	५४	घृणिः	४	५२	चमरः	३	१३२
गुल्फः	५	२६	घृतम्	३	८८	चमसः	३	११७
गुवाकः	४	१५	घृष्टिः	४	५६	चरिः	४	१४०
गुहिरः	१	६१	घोरम्	५	६४	चरुः	१	७
गुहिलः	१	५६	च			चरकः	२	३२
गूयः	२	१२	चक्रधरः	२	२२	चरितम्	४	१७२
गृत्तः	३	६८	चक्रः	१	२२	चर्पटः	४	८१
गृध्रः	२	२४				चर्म	४	१४५

शब्दाः	पं	क्र	शब्दाः	पं	क्र	शब्दाः	पं	क्र
चरमः	५	६८	कविः	४	५६	जन्यम्	४	११
चर्षकः	२	३२	कागः	१	१२४	जन्युः	३	२
चषालः	४	१०७	कातः	३	८६	जङ्गुः	३	३
चाटु	१	३	काया	४	१०८	जम्भलः	१	१०
चात्वालः	१	११६	कित्तरम्	३	१	जम्बः	४	८
चारित्रम्	४	१७२	कित्दकम्	२	३७	जम्बीरः	४	३
चाब	१	३	कित्द्रम्	२	१३	जम्बूः	१	८
चिकणम्	४	१७६	किदिः	४	१४३	जम्बूकः	४	१
चिकुराः	१	४१	किदिरः	१	५१	जयन्तः	३	१२
चित्रभानुः	३	३२	किदिः	४	११८	जर्जरः	३	१
चित्रम्	४	१६४	किमण्डः	१	१२८	जरठः	१	१
चित्रा	४	१६४	ज			जर्णः	३	
चीरम्	२	२५	जगत्	२	८४	जर्तुः	५	
चीवरम्	३	१	जघनम्	५	३२	जरुयम्	२	
चुक्रम	२	१४	जङ्घा	५	३१	जरन्तः	३	
चुवः	२	२८	जघ्नुः	१	२२	जरायुः	१	
च्युपः	३	२४	जटा	५	३०	जरसानः	२	
चूर्णिः	४	५२	जटायुः	२	११८	जसुरिः	२	
चेतः	४	१८८	जटिः	४	११८	जहकः	२	
च्यौनः	४	१०४	जठरम्	५	३८	जागृविः	४	
क			जतुः	१	१८	जातवेदाः	४	
कगलः	१	११३	जतु	४	१०२	जानु	१	
कित्तरम्	३	१	जन्म	४	१४५	जामाता	२	
कितम्	४	१५८	जन्मः	१	१४५	जामिः	४	
कदिः	२	१०८	जनितः	४	१०४	जाया	४	
कद्म	४	१४५	जनिः	४	१३०	ज्यानिः	४	
कन्दः	४	२१८	जनिमा	४	१४८	जायुः	१	
कदिः	२	१०८	जनुः	२	११५	जिगलुः	३	
कलम्	१	१०४	जन्तुः	१	७३	जित्वा	४	

शब्दाः	प्रा	पु	शब्दाः	प्रा	पु	शब्दाः	प्रा	पु
जिनः	३	२	तद्	१	१३२	त्रयः	१	१०
जिनिः	५	४८	तन्त्रीः	३	१५८	तर्म	४	१४५
जिह्वाः	१	१४१	तन्तुः	१	६८	त्रयः	५	६६
जिह्वाः	१	१५४	तन्दिः	४	६६	तरलः	१	१०६
जीमूतः	३	८१	तनयम्	४	८८	तर्षः	३	६२
जीरः	२	२३	तन्यतुः	४	२	तरसम्	३	११७
जीरदानुः	२	२३	तनुः	१	७	त्रसरिणुः	३	३८
जीर्विः	४	५४	तनुः	२	११७	तरसानः	२	८६
जीवातुः	१	७८	तनूः	१	८०	तलिनम्	२	५३
जीवधः	३	११३	तपः	४	१८८	तलुनः	३	५४
जीवन्तः	३	१२७	तपुः	२	११७	तल्पम्	३	२८
जुहुराणः	२	८१	तपसः	३	११७	त्वक्	२	६३
जुहूः	२	६०	तमः	४	१८८	त्वष्टा	२	८५
जूः	२	५७	तमतः	३	११७	तविषी	१	४८
जूर्णिः	४	४८	तमालः	१	११८	तसरः	३	७५
जैवाढकः	१	७८	त्यद्	१	१३२	स्मरुः	१	७
ज्योतिः	२	११०	तर्कारः	३	१३८	तातः	३	८०
त			तर्कारी	३	१३८	ताम्रम्	२	१६
तक्रम्	२	१३	तर्कुः	१	१६	तामरसम्	३	११७
तकिला	१	५७	तरङ्गः	१	१२०	ताम्बूलम्	४	८०
तक्षकः	२	३२	तरण्डः	१	१२८	तालु	१	५
तक्षा	१	१५६	तरणिः	२	१०२	ताविषी	१	४८
तडाका	४	१५	तरिः	४	१३८	तिग्मम्	१	१४६
तडागः	४	१५	तरीः	३	१५८	तिजिलः	१	५६
तडिः	४	११८	तरीषः	४	२६	तितउ	५	५२
तडित्	१	८८	तरुः	१	७	तित्तिरिः	४	१४३
तण्डुलः	४	१०७	तरुणः	३	५४	तिथः	२	१२
तण्डुलाः	५	८	तदूः	१	८८	तित्तिडीकः	४	२०
ततम्	३	८८	तरन्तः	३	१२८	तिमिः	४	१२३

शब्दाः	प	स	शब्दाः	प	स	शब्दाः	प	स
तिमिरम्	१	५१	द			दशन	१	१५६
तिरीटम्	४	१७५	दक्षिणः	२	५०	दशेरः	१	५८
त्रिफला	१	१०४	दक्षिणा	२	५०	दंष्ट्रा	४	१५८
त्रिविष्टपम्	३	१४५	दक्षाप्यः	३	८६	दस्त्रः	१	१४५
त्रिविष्टपः	३	१४५	दण्डः	१	११४	दस्युः	३	२०
तीक्ष्णम्	३	१८	दण्डधरः	२	२२	दस्त्रः	२	१३
तीव्रम्	२	२८	दद्रुः	१	८०	दक्रः	२	१३
तीर्थम्	२	७	दद्रुः	१	८०	दाकः	३	४०
तीवरः	३	१	दधिषायः	३	८७	दात्रम्	४	१७०
तुण्डिः	४	११	दन्तः	३	८६	दात्वः	४	१०४
तुण्डिलः	१	५४	दमुनाः	४	२३५	दातुः	३	३२
तुत्यः	२	७	दभ्रम्	२	१३	दाम	४	१४५
तुन्दः	४	८८	दमथः	३	११३	दाक्ष	१	३
तुषारः	३	१३८	दरत्	१	१३०	दाक्षणम्	३	५३
तुहिनम्	२	५२	दरथः	३	११३	दाः	२	५७
तूणीरः	४	३०	दर्दरीकम्	४	२०	दाशः	५	११
तूर्णिः	४	५१	दर्भः	३	१५१	दासः	५	१०
तून्तिः	४	१२०	ददुरः	१	४०	दिधिषूः	१	८३
तूस्तम्	३	८६	दद्रूः	१	८०	दिनम्	२	४८
तृणम्	५	८	दर्बः	१	१५५	दिवसम्	३	१२१
तृपत्	२	८५	दर्विः	३	८४	दिवा	१	१५६
तृप्रः	२	१३	दर्विः	४	५३	दिवा	४	१७५
तृपला	१	१०४	द्रविणम्	२	५०	दीदिविः	४	५५
तृफला	१	१०४	दर्शतः	३	११०	दीनः	३	२
तृणा	३	१२	दरसानः	२	८६	दीनारः	३	१४०
तोत्रम्	४	१७३	दलपः	३	१४२	दुकूलम्	४	८०
तोमरः	३	१३१	दल्भः	३	१५१	द्युवा	१	१५६
			दल्लिः	४	४७	द्रुः	१	३५
						द्रुमः	१	३५

शब्दाः	पं	सं०	शब्दाः	पं	सं०	शब्दाः	पं	सं०
दुहिणः	२	४८	ध			धासाः	४	२२१
दुष्टु	१	२५	धनम्	२	८१	धिषसा	२	८२
दुहिता	२	८५	धनुः	१	७	धिष्णम्	४	१०७
दूतः	३	८०	धनुः	२	११७	धीरः	२	२४
दूतिः	४	१८०	धनूः	१	८०	धीवरः	३	१
दूः	२	५७	धन्वम्	४	८५	धीवरो	४	११५
दूरम्	२	२०	धन्वा	१	१५६	धीवा	४	११५
दूषीका	४	१६	धमकः	२	३५	ध्रुवम्	२	६१
दृतिः	४	१८४	धमनिः	२	१०२	ध्रुवकः	२	३२
दृपः	२	१३	धरणिः	२	१०२	धुस्तरः	४	८०
दृम्फूः	१	८३	धत्रम्	४	१६७	धूकः	३	४७
दृशानः	२	८०	धरितो	४	१७३	धूमः	१	१४५
दृशः	१	२३	धर्मः	१	१४०	धूमकेतुः	१	७४
दृषत्	१	१३१	धरिमा	४	१४८	धूर्तः	३	८६
देवटः	४	८१	धर्षणिः	२	१०४	धूसरः	३	७३
देवयुः	१	३७	धवाणकः	३	८३	धृत्वा	४	११४
देवरः	३	१३२	ध्वनिः	४	१४०	धृषुः	१	२३
देवलः	१	१०६	धवलः	१	१०६	धिनः	३	११
देविलः	१	५६	धाकः	३	४०	धेनुः	३	३४
देवा	२	८८	धाणकः	३	८३	न		
देणुः	३	१६	धातकी	३	१४८	नचत्रम्	३	१०५
दोः	२	६८	धाता	२	८४	नखम्	५	२३
द्योतनः	२	७८	धातुः	१	६८	नखरः	३	१३१
दोणः	३	१०	धानाः	३	६	नखिः	४	१३८
दोषिः	४	५१	धान्यम्	५	४८	नगः	५	६१
दोषा	४	१७५	धाम	४	१५१	नटः	४	१०४
द्यौः	२	६८	ध्यात्वम्	४	१०५	नदनुः	३	५२
द्यौवम्	४	१६१	ध्यामा	४	१५१	नदन्तः	३	१२७
			धाडिः	४	११८	नदयन्तः	३	१२८

शब्दाः	पं	सं	शब्दाः	पं	सं	शब्दाः	पं	सं
नन्दिः	४	११८	निद्रा	२	१७	पक्षः	४	२२०
ननन्दा	२	८८	निधनम्	२	८१	पङ्गुः	१	३६
ननान्दा	२	८८	निधुवनम्	२	८०	पतङ्गः	१	११८
नसा	२	८५	निम्बः	४	८५	पचैतः	३	११०
नभः	४	२११	निर्ऋथः	२	८	पचिः	४	११८
नभसः	३	११७	निशीथः	२	८	पचेलिमः	४	३७
नभस्यः	४	२११	निष्कः	३	४५	पञ्चन्	१	१५७
नमतः	३	११०	निषङ्गथिः	४	८७	पञ्चालः	१	११८
नभाकम्	४	१५	निषहरः	२	१२२	पटाकः	४	१४
नमसः	३	११७	निहाका	३	४४	पटीरः	४	३०
न्यङ्कुः	१	१७	नीकः	३	४७	पटलः	१	१०४
नयनम्	२	७८	नीचैः	५	१३	पटुः	१	१८
नरकम्	५	३५	नीथः	२	२	पटोलः	१	६६
नलिनम्	२	४८	नीपः	३	२३	पटुः	१	१५३
नवन्	१	१५६	नौरम्	२	१३	पण्डः	१	११४
नंशुकः	२	३०	नीलङ्गुः	१	३६	पण्डा	१	११४
नहुषः	४	७५	नीविः	४	१३६	पणसः	३	११७
ना	२	१००	नीवरम्	३	१	पणिः	४	११८
नाकुः	१	१८	नृचक्षाः	४	२३३	पताका	४	१४
नांगः	५	६१	नृतुः	१	८१	पत्तिः	४	१८३
नान्दम्	४	१६०	नेमः	१	१४०	पतिः	४	५७
नापितः	३	८७	नेमिः	४	४३	पत्तनम्	३	१५०
नाभिः	४	१२६	नेष्टा	२	८५	पतत्रम्	३	१०५
नाम	४	१५१	नोधाः	४	२२६	पतत्रम्	४	१५८
नारङ्गः	१	१२३	न्योजाः	४	२२३	पतत्रिः	४	६४
निकषा	४	१७५	नौः	२	६४	पतेरः	१	५८
निषण्टुः	१	३७	प			पतसः	३	११७
निघातिः	४	१२५	पकूत्रम्	४	१६६	पत्तलः	३	७४
निघृष्वः	१	१५३	पक्षः	३	६८	पथः	४	१२

शब्दाः	पं	सं	शब्दाः	पं	सं	शब्दाः	पं	सं
पयिलः	१	५७	परौरम्	४	३०	पशुः	१	२७
पदाजिः	४	१३२	परपरीकः	४	१६	पाकः	३	४३
पदातिः	४	१३२	परिवाट्	२	५६	पाकः	५	५३
पद्मम्	१	१४०	पर्वतः	३	११०	पाकुक्	२	३०
पद्मः	२	१३	पर्वा	४	११३	पाजः	४	२०३
पद्म	४	११३	प्रगत्वा	४	११७	पाण्डुः	१	३७
पविः	४	१३६	प्रगत्वरी	४	११७	पाणिः	४	१३३
पन्थाः	४	१२	प्रगास्ता	२	६५	पातालम्	१	११७
पन्नः	३	१०	पशुः	१	३३	पातिः	५	५
पनसः	३	११७	पशुः	५	२७	पात्रम्	४	१५६
पपीः	३	१५६	परशुः	१	३३	पात्रम्	४	१७०
पपुः	१	२२	पर्षत्	१	१३०	पाथः	४	२०४
पम्मा	३	२८	प्रस्थायी	४	६	पाथः	४	२०५
पथः	४	१६०	परुः	२	११७	पाथिः	२	११४
पथोधाः	४	२३०	परुषः	४	७५	पादूः	१	८५
प्रख्याः	४	२३३	प्रहाणिः	४	५१	पापम्	३	२३
पर्जन्यः	३	१०३	परिहाणिः	४	५१	पापमा	४	१५१
परिज्वा	१	१५६	प्रहिः	४	१३५	पायुः	१	१
पर्णम्	३	६	प्रहेलिः	४	११८	पारुः	४	१०१
पर्णसुट्	२	२२	प्रह्वः	१	१५३	पारक्	१	१३६
पर्णरुट्	२	२२	प्लवः	३	६३	प्राक्षिकः	२	४१
पर्णशुट्	२	२२	पलाण्डुः	१	३७	प्राट्	२	५७
पर्णसिः	४	१०७	पलितम्	५	३४	प्राणथः	३	११३
प्रतिदिवा	१	१५६	पलितः	३	६२	प्राणन्तः	३	१२७
प्रयितिः	४	१८३	पललम्	१	१०६	प्रातः	५	५६
प्रधमः	५	६८	पलालम्	१	११८	प्रापणिका	२	४१
पर्पः	३	२८	पल्लवः	४	१०७	प्राष्ट्र	२	५७
पर्पटः	४	८१	पवाका	४	१४	प्राश्वम्	५	२७
परमेष्ठी	४	१०	पविः	४	१३६	पाणिः	४	५२

शब्दाः	पृ	श	शब्दाः	पृ	श	शब्दाः	पृ	श
प्रातिः	४	१३०	पुरिः	४	१४३	पिचकः	५	३७
पाशधरः	२	२२	पुरीषम्	४	२७	पित्तम्	४	१०५
पाषाणः	२	८	पुरुः	१	२३	पेयूषम्	४	७६
पांसुः	१	२७	पुरुषः	४	७४	पेहः	४	१०१
पिङ्गलः	१	१०८	पुष्पः	१	१५१	प्रेतर्वरी	४	११७
पिञ्जरः	३	१३१	पुरुषवाः	४	२३२	प्रेत्वा	४	११७
पिञ्जूलम्	४	८०	पुरोधः	४	२३१	पेशलः	१	१०६
पिण्याकः	४	१५	पुत्रिः	३	१५५	पेषिः	४	११८
पिण्डिलः	१	५४	पुलिनम्	२	५३	पोतः	३	८६
पिता	२	८५	पुलिन्दः	४	८५	पोता	२	८५
पिनाकः	४	१५	पुलस्तिः	४	१८०	पोथः	२	१२
पियालः	३	७६	पुष्करम्	४	४	पोषयितुः	३	२८
पिशितम्	३	८५	पुष्कलम्	४	५	फ		
पिशुनः	३	५५	पुष्पप्रचायिका	२	३२	फण्डः	१	११४
पीतुः	१	७१	पूगः	१	१२४	फर्फरीकम्	४	२०
पीथः	२	७	पूजिलः	१	५६	फलगुः	१	१८
पीयुः	१	३६	पूषः	४	७४	फलगुनः	३	५६
पीयूषम्	४	७६	पूषा	१	१५८	फलिनः	२	४८
पालुः	१	३७	पृथक्	१	१३७	फेनः	३	३
प्रीहा	१	१५८	पृथुः	१	२८	व		
पीवरः	३	१	पृथुकः	५	५३	वञ्चथः	३	११३
पीवरी	४	११५	पृथ्वी	१	१५०	वटिः	४	११८
पीवा	४	११५	पृथिवी	१	१५०	वणिक	२	७०
पुण्ड्रः	२	१३	पृथ्वी	१	१५०	वधत्रम्	३	१०५
पुण्डरीकम्	४	२०	पृदाकुः	३	८०	वधित्रम्	४	१०३
पुख्यम्	५	१५	पृष्ठम्	२	१२	वदरम्	३	१३१
पुत्रः	४	१६५	पृषत्	२	८४	वधकः	२	३६
पुमान्	४	१७८	पृषतः	३	१११	वधिरः	१	५१
पुरणः	२	८१	पृश्निः	४	५२	वधूः	१	८३

शब्दाः	पं०	सं०	शब्दाः	पं०	सं०	शब्दाः	पं०	सं०
वन्धुः	१	१०	वृहत्	२	८४	भातुः	१	७३
वन्धुरः	१	४१	वृहद्भानुः	३	३२	भातुः	३	३२
वन्धूकः	४	४१	भ			भामः	१	१४०
वन्ध्या	४	११२	भगालम्	३	७६	भाता	२	८५
वन्धूरः	१	४१	भडिलः	१	५४	भाष्टम्	४	१६०
वभुः	१	२२	भण्डिलः	१	५४	भालुः	१	५
वकरः	३	१३१	भदाकः	४	१५	भालूकः	४	४१
वधूनः	३	५	भद्रम्	२	२८	भावित्रम्	४	१७१
वर्वरः	३	१३१	भदन्तः	३	१३०	भावौ	४	८
वर्वरः	२	१२१	भयानकः	३	८२	भासन्तः	३	१२८
वृह	४	१४६	भर्गः	४	२१६	भित्तिका	३	१४७
वर्हिः	२	१०८	भरटः	४	१०४	भिदकः	२	३७
वर्हिणः	२	४८	भरण्डः	१	१२८	भिद्रम्	२	१३
वल्लभः	३	१२५	भरतः	३	११०	भिदिः	४	१४३
वलिः	४	११८	भरथः	३	११४	भिदिरम्	१	५१
वलिः	४	१२४	भ्रमरः	३	१३२	भिदुः	१	२३
वलीकम्	४	२५	भ्रमिः	४	१२१	भिषक्	१	१३८
वलिहः	४	११८	भरिमा	४	१४८	भीमः	१	१४८
वहुः	१	२८	भक्तः	१	७	भीरुकः	२	३१
वाढ्यः	३	२८	भल्लुकः	४	४१	भीष्मः	१	१४८
वाहुः	१	२७	भल्लूकः	४	४१	भुजिः	४	१४२
विन्दुः	१	१०	भवन्तः	३	१२८	भुजिण्यः	४	१७८
विम्बम्	४	८५	भवन्तिः	३	५०	भुज्युः	३	२१
वुध्नः	३	५	भवान्	१	६३	भुरिक्	२	७२
वुधानः	२	८०	भविलः	१	५४	भुवः	४	२१७
वन्दः	४	८८	भषकः	२	३२	भुवनम्	२	८०
वृणिः	४	४८	भसत्	१	१३०	भुवन्धः	३	५१
वृषभः	३	१२१	भस्त्रा	४	१६८	भुविः	२	११२
वृषलः	१	१०६	भस्त्र	४	१४५	भूकम्	३	४१

शब्दाः	पृ०	सं०	शब्दाः	पृ०	सं०	शब्दाः	पृ०	सं०
भूमिः	४	४५	मत्स्यः	४	१०४	मन्युः	३	२०
भूः	२	६८	मत्सरः	३	७३	ममायतालः	५	५०
भूणिः	४	५२	मथुरा	१	३८	मयटः	४	८१
भूरिः	४	६५	मद्गुः	१	७	मयुः	१	७
भृगुः	४	२८	मद्गुरः	१	४१	मयूखः	५	२५
भृङ्गः	१	१२५	मदयितुः	३	२८	मयूरः	१	६७
भृङ्गारः	३	१३६	मद्रः	२	१३	मर्काः	३	४३
भृञ्जनम्	२	८०	मदारः	३	१३४	मरुकाः	४	३८
भूमिः	४	१२१	मदिरा	१	५१	मर्काटः	४	८१
भेकाः	३	४३	महा	४	११३	मरिचिः	४	७०
भेरः	२	२८	मध्यम्	४	११२	मर्जूः	१	८१
भेरिः	४	६६	मधुः	१	१८	मर्त्तः	३	८६
भेलः	२	२८	मधुः	२	११६	मरतः	३	११०
भेषजम्	१	१३८	मजूकः	४	४१	मरुत्	१	८४
म			मनाका	४	१४	मर्दलः	१	१०६
मक्षिका	४	१५४	मन्ता	२	८४	मरिमा	४	१४८
मकुरः	१	४०	मन्तुः	१	७३	मर्मरीकः	४	२०
मघवा	१	१५८	मन्थाः	४	११	मलम्	१	११०
मृङ्गलम्	५	७०	मन्दाकम्	४	१३	मलयः	४	८८
मज्जा	१	१५८	मन्दनम्	२	८१	मलिनः	२	४८
मज्जुः	१	३७	मन्द्रः	२	१३	मल्लिका	२	३२
मज्जुषा	४	७७	मन्दिरः	३	१३१	मल्लूरः	४	८१
मठरः	५	३८	मन्दारः	३	१३४	मस्तकम्	३	१४८
मण्डः	१	११४	मन्दारुः	३	१३४	मस्तुः	१	६८
मण्डयन्तः	३	१२८	मन्दिरम्	१	५१	मसिः	४	११८
मण्डलः	१	१०४	मन्दुरा	१	३८	मसिनम्	२	४८
मणिः	४	११८	मन्दसानः	२	८७	मसुरा	१	४३
मण्डूकाः	४	४२	मनुः	१	१०	मसूरा	५	३
मत्स्यः	४	२	मनुः	२	११५	महः	४	१८८

शब्दाः	पं	पङ्	शब्दाः	पं	पङ्	शब्दाः	पं	पङ्
महत्	२	८४	मीवः	१	१५४	मृडीकः	४	२४
महानसम्	४	१८८	मीवरः	३	१	मृणालम्	१	११८
महिनम्	२	५६	मुकुरः	१	४०	मृतम्	३	८८
महिलः	१	५४	मुखम्	५	२०	मृत्युः	३	२१
महसम्	३	११७	मुचिरः	१	५१	मृदङ्गः	१	१२१
महिषः	१	४५	मुहः	१	१२८	मृदरः	५	४१
माः	४	१८८	मुहलः	१	१२८	मृदुः	१	२८
माता	२	८५	मुद्रा	२	१३	मेघकः	५	३७
मात्रा	४	१६८	मुदिरः	१	५१	मेरुः	४	१०१
मातरिश्वा	१	१५८	मुनिः	४	१२३	मीनम्	४	१२३
माया	४	१०८	मुमुक्षानः	२	८३	य		
मायुः	१	१	मुथलः	१	१०६	यत्तुमः	१	१४०
मार्जारः	३	१३७	मुष्कः	३	४१	यत्तुमा	४	१५१
मार्जालीयः	१	११६	मुषलः	१	१०६	यक्तत्	४	५८
माला	२	२८	मुसम्	२	१३	यजतः	३	११०
मालती	३	११०	मुसलः	१	१०६	यजत्रम्	३	१०५
मालती	४	५८	मुहिरः	१	५१	यजिः	४	११८
म्लानिः	४	५१	मुहुः	२	१२०	यजुः	२	११७
मांसम्	३	६४	मुहूर्तम्	३	८८	यज्युः	३	२०
माहिनम्	२	५६	मुहेरः	१	६१	यतिः	४	११८
मितद्रुः	१	३४	मूकः	३	४१	यद्	१	१३२
मित्रम्	४	१६४	मूत्रम्	४	१६३	यन्त्रम्	४	१६७
मित्रयुः	१	३७	मूर्खः	५	२२	यमुना	३	६१
मिथिला	१	५७	मूर्धा	१	१५८	ययीः	३	१५८
मिथुनम्	३	५५	मूलम्	४	१०८	ययुः	१	२१
मित्रम्	२	१३	मूलैरः	१	६१	यवागूः	३	८१
मिहिरः	१	५१	मूषिकः	२	४२	यवनः	२	७४
मीनः	३	३	मृगयुः	१	३७	यवासः	४	२
मीरः	२	२५	मृदङ्गणः	४	२४			

शब्दाः	पृ	सू	शब्दाः	पृ	सू	शब्दाः	पृ	सू
यशः	४	१८१	रञ्जुः	१	१५	राजिः	४	२५
यष्टिः	४	१८०	रञ्जतम्	३	१११	रात्रिः	४	६७
यद्धः	१	१५४	रजनम्	२	७८	रासभः	३	१२५
याजिः	४	१२५	रजनिः	२	१०२	रामठम्	१	१०१
याता	२	८७	रजनी	२	७८	राशिः	४	१३३
यात्रा	४	१६८	रण्डा	१	११४	रास्त्रा	३	१५
यातुः	१	७३	रतूः	१	८२	राहुः	१	३
यामः	१	१४०	रत्रम्	३	१४	रिक्थम्	२	७
यामिः	४	४३	रत्निः	४	२	रिप्रम्	५	५५
यावसः	३	११८	रथः	२	२	रिपुः	१	२६
युग्मम्	१	१४६	रभसः	३	११७	रिष्वः	१	१५३
युधानः	२	८०	रमकः	२	३३	रुक्चः	३	६६
युध्मः	१	१४५	रमण्यम्	३	१०१	रुक्मम्	१	१४६
युयुधानः	२	८३	रमतिः	४	६३	रुचकम्	२	३७
युवाः	१	१५६	रवणः	२	७४	रुचिः	४	१२०
युष्मद्	१	१३८	रवथः	३	११३	रुचितम्	४	१८६
यूका	३	४७	रविः	४	१३८	रुचिरम्	१	५१
यूधः	२	१२	रथना	२	७५	रुचिष्यम्	४	१६८
यूपः	३	२७	रश्मिः	४	४६	रुद्रः	२	२२
योगः	४	२१६	रस्त्रम्	३	१२	रुधिरम्	१	५१
योनिः	४	५१	रसना	२	७५	रुम्नः	२	१४
योषित्	१	८७	रहः	४	२१५	रुहः	४	१०३
योषा	३	६२	रंहः	४	२१४	रुवथः	३	११५
र			राः	२	६६	रुह्या	४	११४
रक्षः	४	१८८	राका	३	४०	रूपम्	३	२८
रक्षुः	१	२८	रास्त्रा	३	६२	रेक्थः	४	१८८
रङ्गः	३	४०	राजा	१	१५६	रेणुः	३	३८
रजः	४	२१७	राजातनः	२	७८	रेतः	४	२०२
रजकः	२	३२	राजन्यः	३	१००	रेपः	४	१८०

शब्दाः	पृ	श	शब्दाः	पृ	श	शब्दाः	पृ	श
रेफः	५	५४	लवाणकः	३	८३	वचक्रुः	३	८१
रोचना	२	७८	लविः	४	१३८	वज्रः	२	२८
रोचिः	२	१११	लशुनम्	३	५७	वज्रधरः	२	२२
रोदः	४	१८८	लम्बः	१	१५३	वटुः	१	८
रोदसी	४	१८८	लाक्षा	३	६२	वण्डः	१	११४
रोधः	४	१८८	लाङ्गूलम्	१	१०८	वतण्डः	१	१२८
रोम	४	१५१	लाङ्गूलम्	४	८०	वत्सम्	३	६२
रोहन्तः	३	१२७	लिचा	३	६६	वक्तः	३	६२
रोहन्ती	३	१२७	लिगुः	१	३६	वत्सरः	३	७१
रोहिः	४	११८	लिसम्	५	५५	वदन्तिः	३	५०
रोहिणः	२	५५	लिपिः	४	१२०	वदान्यः	३	१०४
रोहित्	१	८७	लिविः	४	१२०	वन्दः	२	१३
रोहितः	३	८४	लुपभः	३	१२४	वनः	२	२८
रोहिषम्	१	४७	लूनिः	४	१०५	वनिः	४	१४०
ल			लोतः	३	८६	वनिष्ठाः	४	२
लक्षणम्	३	७	लोत्रम्	४	१७३	वप्रः	२	२७
लक्ष्मणम्	३	७	लोम	४	१५१	वप्रिः	४	६६
लक्ष्मीः	३	१६०	लोष्ठः	३	८२	वपुः	२	११७
लघट	१	१३५	लोहितम्	३	८४	वयः	४	१८८
लघुः	१	२८	व			वयुनम्	३	६१
लङ्का	३	४०	वक्तम्	४	१६७	वयोधाः	४	२२८
लङ्ककः	२	३७	वक्तः	२	१३	व्यलीकम्	४	२५
लटकः	२	३२	वकुलः	१	४१	वर्चः	४	१८८
लट्टा	१	१५१	वचः	३	६२	वरटः	४	८१
लत्तिका	३	१४७	वचः	४	२२०	वठरः	५	३८
लभसः	३	११७	वचाः	४	२२१	वर्णः	३	१०
लभकः	२	३३	वगनुः	३	३३	वरणः	२	७४
लवङ्गः	१	१२०	वङ्क्रिः	४	६६	वर्णसिः	४	१०७
						वर्णिः	४	१२४

शब्दाः	पृ	सू	शब्दाः	पृ	सू	शब्दाः	पृ	सू
वर्णः	३	३८	वस्तिः	४	१८०	वार्त्ताकम्	३	७८
वरुणः	३	५३	वस्तु	१	७०	वार्त्ताकः	४	१५
वरेण्यः	३	८८	वस्तुः	३	६	वार्त्ताकुः	३	७८
व्रततिः	४	५८	वसन्तः	३	१२८	वारि	४	१२५
वरत्रा	३	१०७	वसिः	४	१४०	वावदूकः	४	४१
वरुचम्	४	१७३	वसुः	१	१०	वायः	२	१३
वर्त्तनिः	२	१०६	वस्त्रः	२	११३	वाग्निः	४	११८
वर्त्तिः	४	११८	वसुरोचिः	२	१११	वाग्निः	४	१२५
वर्त्तिः	४	१४१	वहतिः	४	१६०	वाशुरा	१	३८
वर्त्तिका	३	१४६	वह्निचम्	४	१७३	वासः	४	२१८
वरुथः	२	६	वहतुः	१	७७	वासरः	३	१३२
वर्द्धम्	२	२७	वहन्तः	३	१२८	वासिः	४	१२५
वर्षः	४	२०१	वन्धिः	४	५१	वासुः	१	१
दर्पः	४	२०१	वक्षम्	४	११२	वासु	१	७०
वरण्डः	१	१२८	वाक्	२	५७	वास्तूकः	४	४१
वर्वरीकः	४	१८	वागुरा	१	४१	वाहसः	३	११८
वर्विः	४	५३	वातः	३	८६	वाहीकः	४	२५
वर्वम्	३	६२	वातप्रमौः	४	११	विः	४	१३४
वरसानः	२	८६	वातिः	५	१६	विक्रयिकः	२	४४
वल्कः	३	४२	वादिः	४	१२५	विकुस्रः	२	१५
वलाका	४	११४	वादिचम्	४	१७१	विचचाः	४	२३३
वल्लूकः	४	४०	वापिः	४	१२५	विजयन्तः	३	१२८
वल्लुगः	१	१८	वामः	१	१४०	विटपः	३	१४५
वल्मीकम्	४	२५	वायसः	३	१२०	विडङ्गः	१	१२१
वलयम्	४	८८	वायसः	४	१८८	विडालः	१	११८
वल्लूरम्	४	८०	वायुः	१	१	वितद्गुः	४	१०२
वस्तम्	३	८८	व्याघ्रः	५	६३	वितस्तिः	४	१८२
वस्त्रम्	४	१५८	वारङ्गः	१	१२२	विशुः	१	३८
वसतिः	४	६०	व्राजिः	४	१२५	विदथः	३	११५

शब्दाः	पङ्	लृ	शब्दाः	पङ्	लृ	शब्दाः	पङ्	लृ
विधुः	१	२३	वृशः	४	१०४	शक्रः	२	१३
विधुरः	१	३६	वृश्चिकः	२	४०	शकलम्	१	११२
विपणिः	४	११८	वृषपः	४	१००	शकुलः	१	४१
विपिनम्	२	५२	वृषा	१	१५६	शक्ता	४	११३
विप्रः	२	२८	वेणिः	४	४८	शक्ती	४	११३
वित्त्वम्	४	६५	वेणुः	३	३८	शङ्कुः	१	३६
विशिपः	३	१४५	वेतनम्	३	१५०	शङ्खः	१	१०२
विशालः	१	११८	वेत्रम्	४	१६७	शरहः	४	१०४
विश्वम्	१	१५१	वेतसः	३	११८	शण्डिलः	१	५४
विश्वस्मन्	१	१५६	वेदिः	४	११६	शरहः	१	६६
विश्वभोजाः	४	२३८	वेधाः	४	२२५	शतद्रुः	१	३५
विश्ववेदाः	४	२३८	वेनः	३	६	शतिः	४	१२२
विषा	४	३६	वेत्ता	३	८	शविः	४	६७
विष्टपः	३	१४५	वेमा	४	१५०	शत्रुः	४	१०३
विष्टरश्वाः	४	२२७	वेशन्तः	३	१२६	शतेरः	१	६०
विष्णुः	३	३६	वेष्टम्	४	१६०	शदिः	४	६५
विज्ञा	४	३६	वेष्टपः	३	२३	शपथः	३	११३
वीकः	३	४७	वेहत्	२	८५	शब्दः	४	६७
वीचिः	४	७२	वैजयन्तः	३	१२८	शबलः	१	१०५
वीणा	३	१५	व्योम	४	१५१	शमठः	१	१००
वीधम्	२	२६	श			शमथः	३	११३
वीरः	२	१३	शकटः	४	८१	शम्बः	४	६४
वृकः	३	४१	शक्तिधरः	२	२२	शम्बुकः	४	४१
वृक्षः	३	६६	शक्तत्	४	५८	शम्बूकः	४	४१
वृजनम्	२	८१	शकुनः	३	४६	शमलम्	१	११२
वृजिनम्	२	४७	शकुनिः	३	४६	शमश्रुः	५	२८
वृषः	२	१३	शकुन्तः	३	४६	शयणः	१	१२६
वृष्यवाः	४	२२७	शकुन्तिः	३	४६	शयथः	३	११३
वृधसानः	२	८७	शक्ता	४	१४७	शयानकः	३	८२

शब्दाः	पङ्क्तिः	श्लोकः	शब्दाः	पङ्क्तिः	श्लोकः	शब्दाः	पङ्क्तिः	श्लोकः
शयुः	१	७	शय्यः	३	२८	शिरौषः	४	२०
शयुनः	३	६१	शस्त्रम्	४	१६४	श्लिक्तुः	१	३२
शरिः	४	१२८	शंस्ता	२	८४	शिल्पम्	३	२८
शरुः	१	१०	शाकम्	३	४३	शिवम्	२	१३
शर्करा	४	३	शादः	४	८७	शिवः	१	१५३
शरण्यम्	३	१०१	श्यामः	१	१४६	शिखिदानः	२	८२
शरणिः	२	१०२	श्यामाकः	४	१५	शिविरम्	१	५३
शरत्	१	१३०	शारिका	४	१२८	शिशिरः	१	५३
शरभः	३	१२२	शारिः	४	१२८	शिशुः	१	२०
शर्म	४	१४५	शार्ङ्गः	१	१२७	शीकरः	३	१३१
शरिमा	४	१४८	शार्दूलः	४	८०	शीघ्रः	४	३८
शरीरम्	४	३०	शालभञ्जिका	२	३२	श्रीः	२	५७
शर्वः	१	१५५	शालिः	४	१३०	शीरः	२	१३
श्रवणा	२	७८	शालुः	१	५	शीर्विः	४	५४
श्रवायः	३	८६	शालूकम्	४	४२	शीलम्	४	३८
शर्वरी	२	१२१	शालूरः	४	८०	शीवा	४	११४
शर्शरीकः	४	१८	श्व	१	१५८	शुकः	३	४२
शल्कम्	३	४३	शास्ता	२	८४	शुचिः	३	१५५
शल्कः	४	१०८	शास्तिः	४	१८०	शुक्रः	२	२८
श्लक्ष्णम्	३	१८	शिक्यम्	५	१६	शुक्लम्	२	२८
शलाका	४	१४	शिखा	५	२४	शुचिः	४	१२०
शलभः	३	१२२	शिशुः	४	१०२	शुनकः	२	३२
शल्यम्	४	१०७	शिङ्घाणकः	३	८३	शुन्धुः	३	२०
शलिः	४	१२८	शिङ्घाणम्	३	८३	शुभ्रम्	२	१३
शवः	४	१८३	शितिः	४	१२२	शुम्भिः	४	६५
श्वयीचिः	४	७१	शियिलः	१	५३	शुल्वम्	४	८५
शवरः	३	१३१	शितिः	४	५१	शुष्कः	३	४१
शवसानः	२	८६	शिरः	४	१८४	शुष्णः	३	१२
श्वसुरः	१	४४	शिरिः	४	१४३	शुष्मम्	१	१४४

शब्दाः	पं०	लि०	शब्दाः	पं०	लि०	शब्दाः	पं०	लि०
शुपिरम्	१	५१	स			स्यन्दनः	२	७८
शुपिलः	१	५६	सक्तुः	१	६८	स्यमिकः	३	४६
शूद्रः	२	१८	सक्थि	३	१५४	स्यमीकः	३	४६
शूरः	२	२५	स्क्न्धः	४	२०७	सरः	४	१८८
शूर्पम्	३	२६	संकसुकः	२	२८	सरकम्	५	३५
शूलधरः	२	२२	सखा	४	१३७	सर्जः	१	८०
शृङ्गः	१	१२६	संग्रहणी	५	६७	सरट्	१	१३४
शृङ्गारः	३	१३६	स्तनयितुः	३	२८	सरटः	४	८१
शृधूः	१	८१	स्तवकः	४	८६	सरटः	४	१०५
श्रेपः	४	२०१	स्तम्बः	४	८६	सरण्डः	१	१२८
श्रेपालः	४	३८	सत्रम्	४	१६७	सरणिः	२	१०२
श्रेफः	४	२०१	स्तरिमा	४	१४८	सरण्युः	३	८१
श्रेतः	३	८३	स्तरीः	३	१५८	सरित्	१	८७
श्रेनः	२	४६	स्थपतिः	४	५८	सर्पिः	२	१०८
श्रेणिः	४	५१	स्थविः	४	५६	सर्मः	१	१४०
श्रेष्मा	४	१४५	स्थविरः	१	५३	सरिमा	४	१४८
श्रेवः	१	१५२	सद्दः	४	१८८	सरयुः	३	२२
श्रेवा	४	१५४	सधिः	२	११३	सरयूः	३	२२
श्रेवालः	४	३८	सन्ध्या	४	११२	सरलः	१	१०६
श्रेवलः	४	३८	सनिः	४	१४०	सर्वः	१	१५३
शोचिः	२	१०८	सप्त	१	१५७	सर्वविदाः	४	२२७
शोधः	२	४	संपातिः	५	५	सर्षपः	३	१४१
शोणः	३	६	समीचः	४	८२	सलिलम्	१	५४
शोणिः	४	५१	समीची	४	८२	संवत्सरः	३	७२
शोतम्	४	१६८	समिधः	२	११	स्वधा	४	१०५
श्रीटीरः	४	३०	सम्प्रहाणिः	४	१२५	सवनः	२	७४
प			समया	४	१०५	स्वप्नः	३	१०
पण्डः	१	११४	समरः	३	१३१	सव्यम्	४	११०
पिङ्गः	१	१२४	संयदरः	३	१	सव्येष्ठा	२	१०१

शब्दाः	पं	पं	शब्दाः	पं	पं	शब्दाः	पं	पं
स्वरुः	१	१०	सार्थः	२	५	सुधर्मा	४	१५२
स्वर्भानुः	३	३२	सारथिः	४	८८	सुषा	३	६६
स्वसा	२	८६	स्वाती	४	१३१	सुपयाः	४	२२३
स्वस्ति	४	१८१	खादुः	१	१	सुप्रतीकः	४	२५
संवसथः	३	११६	साक्षा	३	१५	सुयशाः	४	२२३
संश्वत्	२	८५	सिक्थम्	२	७	सुमेरुः	४	१०१
संस्तवानः	२	८८	सितम्	३	८८	सुरः	२	२४
सस्यम्	४	१०८	स्तिभिः	४	१२२	सुक्	२	६२
सहः	४	१८८	स्थिरः	१	५३	सुरेणुः	३	३८
सहसानः	२	८७	सिन्दूरम्	१	६८	सुरतः	५	१४
सहारः	३	१३८	सिन्धुः	१	११	सुवः	२	६१
सहुरिः	२	७३	सिध्रः	२	१३	सुवजाः	४	२२७
सहोरः	१	६५	सिनः	३	२	सुविद्वजम्	३	१०८
साकम्	३	४३	स्फिरः	१	५३	सुवनम्	२	८०
स्थाणुः	३	३७	सिमः	१	१४४	सुशर्मा	४	१५२
स्थाम	४	१४५	सिरा	२	१३	सुष्टु	१	२५
स्थालम्	१	११६	सिंहः	५	६२	सुस्रोतः	४	२२३
सादिः	४	१२५	सौता	३	८०	सुलम्	४	१७७
साधन्तः	३	१२८	स्त्री	४	१६६	सुवः	४	८३
साध्वसम्	३	११७	स्त्रीर्विः	४	५४	सूचिः	४	१३८
साधुः	१	१	सीमा	४	१५१	सूची	४	८३
सानु	१	३	सीमिकः	२	४३	स्तूपः	३	२५
सायुः	१	१	सीरः	२	२५	सूत्रम्	४	१६३
सावा	४	११३	सुजवाः	४	२२३	स्थूणा	३	१५
सानसिः	४	१०७	सुतपाः	४	२२७	स्थूरः	५	४
स्फारम्	२	१३	सुतेजाः	४	२२७	सूनुः	३	३५
साम	४	१५३	सुत्रामा	४	१४५	सूना	३	१३
सारङ्गः	१	१२२	सुवेप्यम्	३	८८	सपः	३	२६
सारणिः	२	१०२	सुवेप्यम्	३	८८	सूमेः	१	१४५

शब्दाः	पं	सं०	शब्दाः	पं	सं०	शब्दाः	पं	सं०
सूनः	३	८	ह			हालुः	१	१
सूमः	१	१४४	हनुः	३	३०	हासाः	४	२२१
सूः	२	५७	हयः	२	२	हिङ्गुः	१	३६
सूरः	२	२४	हन्ता	२	८४	हिण्डौरः	४	३०
सूरतः	५	१४	हनुः	१	१०	हिमम्	१	१४७
सूरिः	४	६४	हनूपः	४	७३	हिरण्यम्	५	४४
सुकः	३	४१	हरिः	४	११८	हिरण्यरेताः	४	२२७
सुणिः	४	१०४	हरिणः	२	४६	हिंसीरः	५	१८
सुषिः	४	४८	हरेणुः	२	१	ह्रीका	३	४८
सुषीका	४	२३	हरित्	१	८७	ह्रीकुः	३	८५
सत्वा	४	११४	हरितः	३	८३	ह्रीका	३	४८
सदाकुः	३	७८	हरिद्रुः	१	३४	ह्रीकुः	३	८५
सृदरः	५	४१	हरिमा	४	१४८	हृदयम्	४	१००
सृप्रः	२	१३	हर्यतः	३	११०	हृषीकम्	४	१७
स्पृहयायः	३	८६	हर्षयिन्नुः	३	२८	हृषुः	१	२३
सेतुः	१	६८	हर्षुलः	१	८६	हेतुः	१	७३
स्तेनः	२	४६	क्रसः	१	१५३	हेम	४	१४५
सेना	३	१०	हलिः	४	११८	हेमन्तः	३	१२८
सेहा	१	१५८	हविः	२	१०८	हेलिः	४	११८
सेहुः	१	१०	हंसः	३	६२	होता	२	८५
सोमः	१	१४०	हंसिका	४	१५४	होत्रम्	४	१६८
सोमः	१	१४०	हस्तः	३	८६	होमः	१	१४०
सोमः	४	१५१	हस्तः	२	१३	होमा	४	१५१
स्योनः	३	८	हान्म	४	१६०	होमी	३	८४
स्रोतः	४	२०२	हानिः	४	५१	होन्नः	४	१०५
			हारिः	४	१२५			

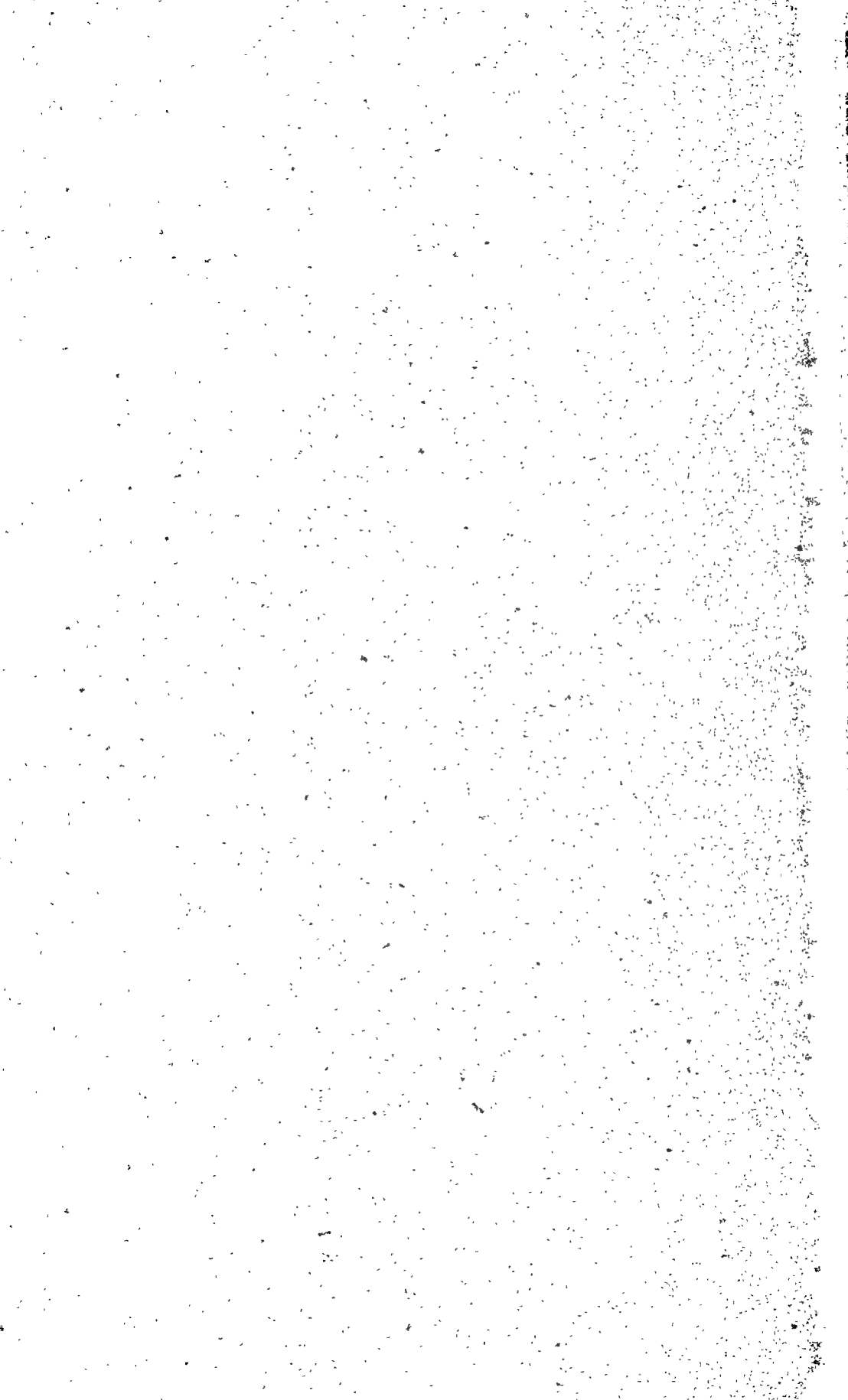
शुद्धिपत्रम् ॥

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
६	०	अ०१ पा०१	पा० १
६	८	अग्रते	शृणाति
८	०	अ०१ पा०१	पा० १
१०	१०	कात्तिः	कौत्तिम्
१४	३०	वुक्	वुक्
१५	५	कपिल	कपिलः
१८	१३	आमुष्मान्	आयुष्मान्
१८	१६	तनूः	धनूः
२२	२८	ज्ञान्ती	ज्ञाती
२३	२८	पन्था	पन्था
२४	८	ढः	ढः
२७	२४	भैषज	भैषज
३२	२	हाथः	हथः
३५	२३	दम्भम्	दाम्भम्
३६	२१	संकत्या	संमत्या
४०	३	स्थेनः	स्थेनः
४०	१७	या	वा
४०	२७	दवति	द्रवति
४२	२१	व्युत्पन्न	व्युत्पन्न
४७	२३	०	नारी
५१	२६	लक्षणा	लक्षणा
५५	२७	रञ्जकः	रञ्जः
५७	२६	युवती	युवतिः

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
८५	२८	वाणय	वाणाग्र
८६	८	मनते	मवते
८३	१८	किथुनम्	मिथुनम्
८४	१	१५८	१५८
८४	२२	कादेशीवा	कदेशीवा
८६	१७	अमितः	अमित्रः
८६	२०	क्रियये	क्रियते
८८	२४	फागुनो	फाल्गुनो
११२	०	पा० ४	पा० ५
११४	२३	४७	१४७
११४	८३	आपाणिक	आपणिकः
११६	५५	८	८०
११६	८१	१०१	१०८
११८	३२	४	१
१२०	८	६०	१६०
१२०	३१	२६	८६
१२४	५८	धिषसा	धिषणा
१२५	८३	६४	६८
१२७	१८	पालुः	पीलुः
१२८	६८	मरिचिः	मरीचिः
१३१	१५	युवाः	युवा
१३१	५८	२५	१२५

इति

Year	Month	Day	Time	Location	Remarks
1941	Jan	1	10:00	San Francisco	Arrived from Los Angeles
1941	Jan	2	10:00	San Francisco	Left for Los Angeles
1941	Jan	3	10:00	San Francisco	Arrived from Los Angeles
1941	Jan	4	10:00	San Francisco	Left for Los Angeles
1941	Jan	5	10:00	San Francisco	Arrived from Los Angeles
1941	Jan	6	10:00	San Francisco	Left for Los Angeles
1941	Jan	7	10:00	San Francisco	Arrived from Los Angeles
1941	Jan	8	10:00	San Francisco	Left for Los Angeles
1941	Jan	9	10:00	San Francisco	Arrived from Los Angeles
1941	Jan	10	10:00	San Francisco	Left for Los Angeles
1941	Jan	11	10:00	San Francisco	Arrived from Los Angeles
1941	Jan	12	10:00	San Francisco	Left for Los Angeles
1941	Jan	13	10:00	San Francisco	Arrived from Los Angeles
1941	Jan	14	10:00	San Francisco	Left for Los Angeles
1941	Jan	15	10:00	San Francisco	Arrived from Los Angeles
1941	Jan	16	10:00	San Francisco	Left for Los Angeles
1941	Jan	17	10:00	San Francisco	Arrived from Los Angeles
1941	Jan	18	10:00	San Francisco	Left for Los Angeles
1941	Jan	19	10:00	San Francisco	Arrived from Los Angeles
1941	Jan	20	10:00	San Francisco	Left for Los Angeles
1941	Jan	21	10:00	San Francisco	Arrived from Los Angeles
1941	Jan	22	10:00	San Francisco	Left for Los Angeles
1941	Jan	23	10:00	San Francisco	Arrived from Los Angeles
1941	Jan	24	10:00	San Francisco	Left for Los Angeles
1941	Jan	25	10:00	San Francisco	Arrived from Los Angeles
1941	Jan	26	10:00	San Francisco	Left for Los Angeles
1941	Jan	27	10:00	San Francisco	Arrived from Los Angeles
1941	Jan	28	10:00	San Francisco	Left for Los Angeles
1941	Jan	29	10:00	San Francisco	Arrived from Los Angeles
1941	Jan	30	10:00	San Francisco	Left for Los Angeles
1941	Jan	31	10:00	San Francisco	Arrived from Los Angeles



॥ अथ वेदाङ्गप्रकाशः ॥

तत्रत्यः ।

षोडशो भागः ॥

निघण्टुः

यास्कमुनिनिर्मितो वैदिककोषः

श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीकृतशब्दानुक्रमणिकया
सहितः ।

पण्डितज्वालादत्तशर्मणा संशोधितः

पठनपाठनव्यवस्थायां षोडशं पुस्तकम् ।

मुम्बयी समर्थदान के प्रबन्ध से

वैदिकयन्त्रालयप्रयाग में मुद्रित हुआ ।

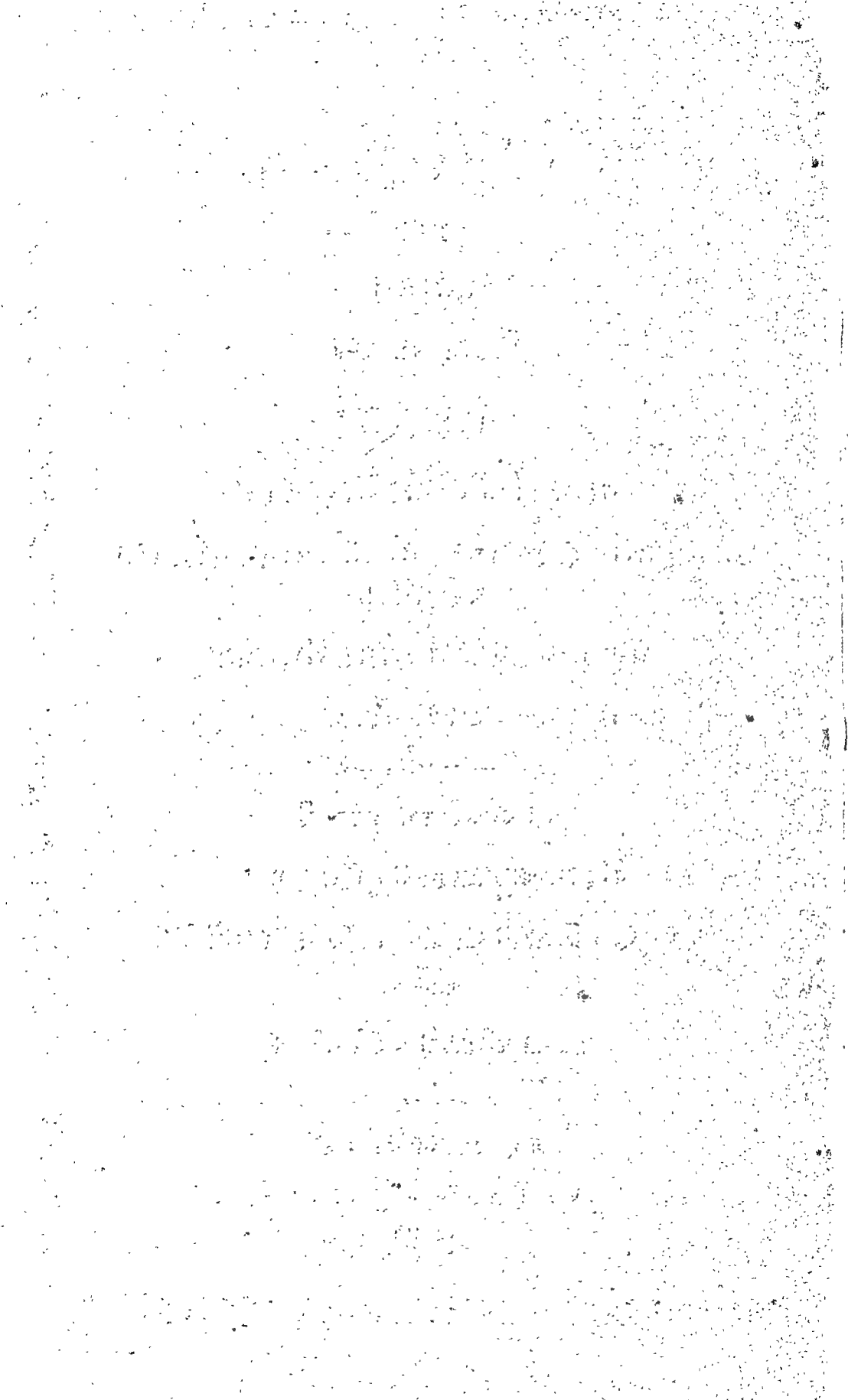
इस पुस्तक के छापने का अधिकार किसी को नहीं है ।

क्योंकि

इस को रजिस्टरी कराई गई है ।

संवत् १९४० आश्विनकृष्ण ३

पहली बार १००० पुस्तक छपे
मूल्य ॥)



विषयसूचीपत्रम् ॥

विषयाः	पृ०	पं०	खण्डे विषयाः	पृ०	पं०
भूमिका	१	१	५ अङ्गुलिनाम	११	१
प्रथमाऽध्याये			६ कान्तिकर्मा	११	६
खण्डे			७ अन्ननाम	११	१०
१ पृथिवीनाम	५	१	८ अस्तिकर्मा	११	१५
२ हिरण्यनाम	५	७	९ बलनाम	१२	१
३ अन्तरिक्षनाम	५	१०	१० धननाम	१२	६
४ साधारणनाम	५	१३	११ गोनाम	१२	११
५ रश्मिनाम	५	१५	१२ कुध्यतिकर्मा	१२	१३
६ दिशो नाम	६	१	१३ क्रोधनाम	१२	१६
७ रात्रिनाम	६	३	१४ गतिकर्मा	१२	१८
८ उषसो नाम	६	८	१५ क्षिप्रनाम	१४	८
९ अहर्नाम	६	१२	१६ अन्तिकनाम	१५	३
१० मेघनाम	६	१५	१७ संग्रामनाम	१५	६
११ बाह्नाम	७	३	१८ व्याप्तिकर्मा	१५	१४
१२ उदकनाम	७	१३	१९ बधकर्मा	१६	१
१३ नदीनाम	८	१४	२० वज्रनाम	१६	८
१४ अश्वनाम	८	५	२१ ऐश्वर्यकर्मा	१६	११
१५ आदिष्टोपयोजनानि	८	१०	२२ ईश्वरनाम	१६	१३
१६ ज्वलतिकर्मा	८	१४			
१७ ज्वलतीनाम	८	१७	तृतीयाध्याये		
द्वितीयाध्याये			१ बहुनाम	१७	१
कर्मनाम	१०	१	२ ऋक्षनाम	१७	४
अपत्यनाम	१०	६	३ महन्नाम	१७	७
मनुष्यनाम	१०	८	४ गृहनाम	१७	१२
बाहुनाम	१०	१४	५ परिचर्यकर्मा	१८	१
			६ सुखनाम	१८	४

खण्डे विषयाः	पृ०	पं०	खण्डे विषयाः	पृ०	पं०
७ रूपनाम	१८	८	२५ अन्तर्हितनाम	२१	१३
८ प्रगस्यनाम	१८	११	२६ दूरनाम	२१	१५
९ प्रज्ञानाम	१८	१४	२७ पुराणनाम	२२	१
१० सत्त्वनाम	१८	१६	२८ नवीननाम	२२	३
११ पश्यतिकर्मा	१८	१८	२९ उत्तरपदनाम	२२	५
१२ सर्वपदसमान्नायः	१८	१	३० द्यावापृथिवीनाम	२२	१०
१३ उपमानाम	१८	४	चतुर्थीध्याये		
१४ अर्चतिकर्मा	१८	८			
१५ मेधाविनाम	२०	१			
१६ स्तोत्रनाम	२०	६			
१७ यज्ञनाम	२०	८	१ पदनाम	२३	१
१८ ऋत्विङ्नाम	२०	१२	२ पदनाम	२३	११
१९ बाह्याकर्मा	२०	१४	३ पदनाम	२४	७
२० दानकर्मा	२१	१	पञ्चमाध्याये		
२१ अध्येषणाकर्मा	२१	४			
२२ स्वपितिकर्मा	२१	६			
२३ कूपनाम	२१	७			
२४ स्निहनाम	२१	१०	१ पदनाम	२५	१३
			२ पदनाम	२५	१४
			३ पदनाम	२५	१७
			४ पदनाम	२६	४
			५ पदनाम	२६	८
			६ पदनाम	२६	१५

इति

श्री३म् ।

निघण्टुवैदिककोशः ।

अथास्य भूमिका ।

यह ग्रन्थ ऋग्वेदी लोगों के पठितय दश ग्रन्थों में है । विशेष कर वेद और सामान्य से लौकिक ग्रन्थों से भी संबन्ध रखता है । यह मूल और इस का भाष्य निरुक्त यह दोनों ग्रन्थ यास्क मुनि जी के बनाये हैं । सदा से चले आने से प्राचीन हैं । इस को बहुत पुस्तकों से मिला कर जो २ पुस्तकान्तरों में विशेष शब्द पाये वे नोट में धर दिये हैं । अकारादि शब्द क्रम से इसकी शब्दानुक्रमणिका भी बना कर छपवाई है कि जिस से जिस शब्द का देखना चाहै झटिति देख सकता है इस में पांच अध्याय हैं । उस के प्रथम अध्याय में १७ खण्ड द्वितीयाध्याय में २२ तृतीयाध्याय में ३० चतुर्थाध्याय ३ और पंचमाध्याय में ६ खण्ड हैं । इसकी शब्दानुक्रमणिका में प्रथम अङ्क से अध्याय और द्वितीय से खण्ड समझना । तृतीय कोष्ठ में अकारादि शब्द और चतुर्थ में जिस का नाम है लिखा है । परन्तु यह सब शब्द वेद में यौगिक और योगरूढि आते हैं केवल रूढि नहीं । इस में जो पदनाम हैं वे पद धातु के गत्यर्थ अर्थात् ज्ञान गमन प्राप्त्यर्थके वाचक हो कर योगिक हो जाते हैं । यह ग्रन्थ सर्वत्र उपलब्ध नहीं था अब छपने से प्राप्त होने लगा है इस से बड़ा उपकार यह होगा । कि जो पुराण वालों ने अर्थ का अनर्थ किया है । सो इन आर्ष ग्रन्थों से निवृत्त हो कर सब के आत्मा में सत्य का प्रकाश होगा । निदर्शन जैसे पुराणी लोगों ने वृत्र शम्बर और

असुर शब्द से दैत्य निघंटु में मेष । पु० अहि शब्द से सर्प नि० मेष । पु० अद्रि गिरि तथा पर्वत से केवल पहाड़ नि० मेष । पु० अश्मा, ग्रावा; शब्दों से पाषाण और नि० मेष । पु० वराह से सुअर नि० मेष । पु० धारा से जल का प्रवाह नि० वाणी । पु० गौरी से महादेव की स्त्री नि० वाणी पु० कर्मकाण्डी स्वाहा शब्द से अग्नि की स्त्री और स्वधा शब्द से पितृ की स्त्री नि० स्वाहा वाणी और स्वधा से अन्न । पु० शची शब्द से इन्द्र की स्त्री नि० में वाणी कर्म और प्रज्ञा का नाम है । पुराणों में शचीपति शब्द से देवों का राजा इन्द्र और वेद में वाणी कर्म और प्रज्ञा का पालन करने वाला स्वामी लिया जाता है । पु० गय शब्द से एक मृतकों के अर्घ्य पितृदण्डानार्थ स्थान विशेष और निघं० अपत्य, धन और गृह का नाम है । पु० घृताची शब्द से देवलोक की वैश्या विशेष स्त्री और नि० में रात्रि का नाम है । आज कल के लोग विप्र शब्द से केवल ब्राह्मण और निघंटु में बुद्धिमान् का नाम है । पु० अद्वा से प्रीति और आड से मृतकों को दत्ति मानते हैं और नि० में अत् शब्द से सत्य और जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण हो वह अद्वा और जो इस से धर्मयुक्त कर्म किया जाय सो आहु कहाता है अब कहां तक लिखें मनुष्य लोग जब इस कोश को पढ़ेंगे तभी नवीन पुराणादि ग्रन्थों का सिद्धापन और वेदों का सत्यत्व तथा वेदों के अर्थ करने में प्रवृत्ति अपने आप हो जायगी तब तक वेदार्थ में प्रवृत्ति नहीं होती और व्याकरणादि का पढ़ना निष्फल है । यद्यपि जहां तहां ग्रंथालयों में निघंटु छपा है तथापि इस के छापने का मुख्य प्रयोजन यही है कि अकारादिशब्द क्रम से इस के साथ शब्दानुक्रमणिका ठिकाने के सहित छपवा दी है कि जिस शब्द को निकालना चाहें उस को शब्दानुक्रमणिका के अनुकूल देख के शीघ्र निका ज लेवेंगे इस से जिस को

कांठस्थ ग्रन्थ न होगा वह भी शब्दानुक्रमिका से लाभ ले सकेगा
अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वयेषु ॥

इतिभूमिका समाप्ता ॥

निधि (६) रामा (३) क्लृ (६) चन्द्रे (१) द्वे मार्गशीर्षसिते दले ॥
चतुर्थ्यां गुप्तवारेयं निघंटुः शोधितो नवाः ॥ १ ॥

श्रीमन्महामहिमविक्रमभूपतेरेकीनचत्वारिंशदुत्तर
एकीनविंशतितमे संवत्सरे यन्त्रणाय मुनिवर

यास्कमुनिनिर्मितः सशब्दानुक्रमणिको
निघंटुः प्रेषितः ॥

स्यान महाराणा जी का }
उदयपुर

{ दयानन्दसरस्वती

॥ अथ निघण्टुः ॥

प्रथमोऽध्यायः ॥

गौः । रसा । उमा । क्ष्मा । ज्ञा । क्षमा (१) । क्षोणिः (२) ।
क्षितिः । अवनिः । उर्वी । पृथ्वी । मही । रिपः (३) । अदितिः ।
दूष्ण । निर्वृतिः । भूः । भूमिः । पूषा । गातुः । गोत्रेत्येकविंशतिः
पृथिवीनामधेयानि ॥ १ ॥

हेम (४) । चन्द्रम् । रुक्मम् । अयः । हिरण्यम् । पेशः ।
कशनम् । लोहम् । कनकम् । काञ्चनम् । भस्म । अमृतम् । मरु
त् । दत्तम् । जातरूपमिति पञ्चदश हिरण्यनामानि ॥ २ ॥
अम्बरम् । वियत् । व्यास । बर्हिः । धन्व । अन्तरिक्षम् । आका-
शम् । आपः । पृथिवी । भूः । स्वयम्भूः । अर्घ्वा । पुष्करम् । सगरः
(५) । ससुद्रः । अध्वरमिति षोडशान्तरिक्षनामानि ॥ ३ ॥

स्वः । पृश्निः । नाकः (६) । गौः । विष्टपम् । नभ इति षट्
साधारणानि ॥ ४ ॥

खेदयः । किरणाः । गावः । रश्मयः (७) । अभीशवः । दी-
धितयः (८) । गभस्तयः । वनम् । उस्त्राः । वसवः । मरूचिपाः ।
मयूखाः । सप्तजृषयः । साध्याः । सुपर्णाः । इति पञ्चदश रश्मि-
नामानि ॥ ५ ॥

(१) इत्यस्यस्थाने । क्षमः । क्षामा । क्षामः । क्षाम । इति चत्वारः शब्दाः पुस्तकान्तरेषु
क्वचित् २ दृश्यन्ते ॥ (२) कृदिकारादक्तिन इति डीषि सति क्षोणी । इत्यपि
भवति ॥ (३) स्वरभेदेन रिपः, इत्यपि पु० २ दृश्यते ॥ (४) हेमाः, इत्यपि पु० २ ॥
(५) सगरम् । इति लिङ्गभेदेन पुस्तकान्तरपाठः ॥ (६) नाकाः । इति बहु-
वचनान्तः क्वचित् ॥ (७) रश्म्यः । इति डीषि सति पु० २ ॥ (८) दिधौतयः ।
इत्यपि पुस्तकान्तरपाठः ॥

आताः । आशाः । उपराः । आषाः । काष्ठाः । व्योम ।
ककुभः । हरितः । इत्यष्टौ दिङ्नामानि ॥ ६ ॥

श्यावी । क्षपा । शर्वरी । अक्तुः । जर्म्या । रम्या (१) । यम्या ।
नम्या । दोषा । नक्ता । तमः । रजः । असिक्ती । पयस्वती । तम-
स्वती । घृताची । शिरिणा (२) । मोकी । शोकी । जधः
(३) । परः । हिमा (४) । वस्त्री (५) । इति त्रयोविंशतौ
रात्रिनामानि ॥ ७ ॥

विभावरी । सुनरी । भास्वती । ओदती । चित्राम्बा ।
अर्जुनी । वाजिनी । वाजिनीवती (६) । सुम्नावरी । अहना ।
द्योतना । श्वेत्या । अरुषी (७) । सूनृता । सूनृतावती ।
सूनृतावरौ । इति षोडशोषोनामानि ॥ ८ ॥

वस्तोः । द्युः (८) । भानुः । वासरम् । स्वसराणि । प्रंसः ।
धर्मः । घृणः (९) । दिनम् । दिवा । दिवेदिवे । द्यविद्यवि ।
इति द्वादशाहर्नामानि ॥ ९ ॥

अद्रिः । ग्रावा । गोत्रः । बलः । अन्नः । पुरुभोजाः ।
बलिशानः (१०) । अश्मा । पर्वतः । गिरिः । ब्रजः । चरुः ।
वराहः । शम्बरः । रौहिण्यः । रैवतः । फलिगः । उपरः । उपलः ।
चमसः । अहिः । अश्वम् (११) । वलाहकः । मेघः । दत्तिः (१२) ।

(१) रम्या इति पाठः ॥ (२) श्रीणा इत्यपि पु० २ (३) उषा । इत्यपि
पु० २ ॥ (४) हिम इत्यपि पु० २ ॥ (५) वसु । वस्त्रा । वसी । इत्यपि पु० २ ॥
(६) वाजिनिवती । इत्यपि पु० ॥ (७) अरुषी इत्यपि पु० ॥ (८) द्यौ
इति पा० ॥ (९) घृणिः इत्यपि पु० ॥ (१०) पश्यानि । पश्यानि । इमावपि
कचित् ॥ (११) अश्वम् इत्यपि पु० ॥ (१२) दत्तिः इति च पु० ।

ओदनः (१) । वृषन्विः (२) । वृचः । असुरः । कोशः । इति
विंशन्मेघनामानि ॥ १० ॥

श्लोकः । धारा । इळा । गौः । गौरौ । गान्धर्वी । गभीरा ।
गम्भीरा । मन्द्रा । मन्द्राजनौ । वाशी । वाष्ठी । वाष्ठीची ।
गणः । पविः । भारती । धमनिः । नाळीः (३) । मेळिः । मेना ।
हूर्या । सरस्वती । निवित् । स्वाहा । वग्नः (४) । उपब्धिः । मायुः ।
काकुत् (५) । जिह्वा । वोषः । स्वरः । शब्दः । स्वनः । ऋक् ।
होवा । गौः । गाधा । गुणः (६) । घेना । ग्नाः । विपा (७) ।
तुना । कशा । धिषणा । नौः । अजरम् । मही । अदितिः ।
यची । वाक् । असुष्टुप् । घेनुः । वल्लुः (८) । गल्दा (९) । सरः ।
१०) । सुपर्णी (११) । वेकुरा (१२) । इति सप्तपञ्चाशद्
शब्दनामानि ॥ ११ ॥

अर्णीः । जोदः । जझ (१३) । नभः । अन्धः । कवन्धम् (१४) ।
तल्लिलम् । वाः । वनम् । घृतम् । मधु । पुरीषम् । पिप्पलम् ।
जीरम् । विषम् । रेतः । कशः (१५) । जम्भ (१६) । बुबुकम् ।
सम् । तुग्र्या । बुबुरम् (१७) । सुज्जेम (१८) । धरुणम् ।

(१) ओदनम् । इति ननुसकम् पु० ॥ (२) विषन्विः । इत्यपि पु० ॥
(३) नालिः । नीलिः । इमौ कश्चित् ॥ (४) गग्नः । इति क्वचित् ॥
(५) काकुप् इति पु० ॥ (६) गुणः । इति पु० (७) ग्ना, इति पु० ॥ (८) वग्नः ।
ति पु० ॥ (९) गल्दः । गल्दः । इमौ पु० ॥ (१०) रसः । रासः । इमौच पु० ॥
(११) सुपर्णी, इतिच पु० ॥ (१२) वेकुरा, इति पु० ॥ (१३) जझा । जझः । जम्भ । इमे
यः पु० ॥ (१४) कवन्धम् । इति वकारभेदेन कचिद् दृश्यते ॥ (१५) शुकम् । पु० ॥
(१६) जम्भ । जम्भ । इमावस्यैव स्थाने पु० दृश्यते ॥ (१७) बुबुरम् । बुबुरः । इमौच
वैषत् ॥ (१८) सुज्जेमा । सुज्जेम । एतौच ॥

सिरा (१) । अरु रिन्दानि (२) । धृक्कन्वत् । जामि (३) । आयु-
धानि । क्षपः । अहिः । अक्षरम् (४) । स्त्रोतः । तृप्तिः । रसः ।
उदकम् (५) । प्रयः । सरः । भेषजम् । सहः । शवः । यहः ।
ओजः । सुखम् । क्षत्वम् । आवयाः । शुभम् । यादुः (६) । भूतम् ।
भुवनम् । भविष्यत् । महत् । आपः । व्योम । यशः । सहः । सर्णी-
कम् (७) । स्वृतीकम् (८) । सतीनम् (९) । गहनम् । गभीरम्
(१०) । गम्भीरम् (११) । ईम् (१२) । अन्नम् । हविः । सद्यः ।
सदनम् । ऋतम् । योनिः । ऋतस्य योनिः । सत्यम् । नीरम् । रयिः ।
सत् । पूर्णम् । सर्वम् । अक्षितम् । वर्हिः । नाम । सर्पिः । अपः ।
पवित्रम् । अमृतम् । इन्दुः । हेम (१३) । स्वः । सर्गः । शम्बरम् ।
अश्वम् । वपुः । अश्वु (१४) । तोयम् । तूयम् । कृपीटम्
(१५) । शुक्रम् । तेजः । स्वधा । वारि । जलम् । जलापम् । इदम् ।
इत्येकशतमुदकनासानि ॥ १२ ॥

अवनयः । यव्याः (१६) । खाः । सीराः । स्त्रोत्याः । एन्यः ।
धुनयः । रुजानाः । वक्षणाः । खादो अर्णाः । रोधचक्राः । हरितः ।
सरितः । अग्रवः । नभन्वाः (१७) । वध्वः । हिरण्यवर्णाः । रोहितः ।

(१) सुरा । सुरा । इति पु० ॥ (२) अरु रिन्दानि । इति पु० ॥ (३) जामिः ।
जामिवत् । इति पु० ॥ (४) अक्षरः । अक्षराः । इति पाठान्तरम् ॥ (५) प्रयः ।
इत्यपि पु० ॥ (६) यादुः इति क्वचित् पु० ॥ (७) स्वर्णीकम् । इति पु० ॥
(८) सतीकम् । स्मृतीकम् । इति पु० ॥ (९) सतिनम् । पु० ॥ (१०)
गम्भीरम् । इति पु० ॥ (११) गम्भीरम् । इति पु० ॥ (१२) कम् । इत्यधिकं
क्वचित् पु० ॥ (१३) हेमा इति पु० ॥ (१४) अश्वुः, इति लिङ्गभेदेन क्वचित् ॥
(१५) कृपीटम् । कृपीटम् । इति पुस्तकान्तरपाठः ॥ (१६) यव्याः । इति पु० ॥
(१७) नभन्वाः, इति मात्राभेदेन पु० ॥

सस्रुतः । अर्णाः । सिन्धवः । कुल्याः । वर्यः (१) । उर्यः । इरा-
वत्यः । पार्वत्यः (२) । स्ववत्यः (३) । जर्जस्वत्यः । पयस्वत्यः ।
सरस्वत्यः । तरस्वत्यः । हरस्वत्यः । रोधस्वत्यः । भास्वत्यः । अजिराः
मातरः । नद्यः । इति सप्तविंशन्नदीनामानि ॥ १३ ॥

अत्यः । हयः । अर्वाः । वाजौ । सप्तिः । वन्हिः । दधिकाः ।
दधिकावा । एतम्बः (४) । एतशः । पैदः । दौर्गहः । औच्चैः अवसः
(५) । ताल्यः । आशुः । बध्नः । अरुषः । माञ्चत्वः (६) । अव्य-
थयः (७) । श्येनासः । सुपर्णाः । पतङ्गाः । नरः । ह्यार्याणाम् (८) ।
हंसासः । अशनाः । इति षड्विंशतिरश्वनामानि ॥ १४ ॥

हरौ इन्द्रस्य । रोहितोऽग्नेः । हरित आदित्यस्य । रासभाव-
श्विनोः । अजाः पूषाः । पृषत्यो मरुताम् । अरुणयोगाव उष-
साम् । श्यावाः सवितुः । विश्वरूपा बृहस्पतेः । नियुतो वायोः ।
इति दशाऽऽदिष्टोपयोजनानि ॥ १५ ॥

भाजते । भाशते (९) । भाश्यति । दीदयति । शोचति ।
मन्दते । भन्दते । रोचते । द्योतते । ज्योतते । दुमत् । इत्येका-
दश उवलतिकर्माणि ॥ १६ ॥

जमत् । कल्मलौकिनम् । जज्जणाभवन् । मल्मलाभवन् ।
अर्चिः । शोचिः । तपः । तेजः (१०) । हरः । घृणिः (११) । शृङ्गाणि ।
इत्येकादश उवलतो नामधेयानि ॥ १७ ॥

गौर्हमास्वरं ख १ : खेदय आताः श्यावी विभावरीवस्तोरद्रिः
लोकोऽर्णोऽवनयोऽत्यो हरौ इन्द्रस्य भाजते जमदिति सप्तदश ॥
इति निघण्टौ प्रथमाध्यायः समाप्तः ॥

(१) ऋतावर्यः । इति पु० ॥ (२) वार्वत्यः । अवत्यः । इमोप० ॥ (३) रेवत्यः ।
इति पु० ॥ (४) एतम्बा इति पु० ॥ (५) औच्चैः अवसः । इति पु० ॥ (६) मञ्चतो । मञ्चतुः ।
इति पा० ॥ (७) व्यथयः । इति पा० ॥ (८) वार्याणाम् । इति पाठान्तरम् ॥
(९) भ्लाश्यति । भ्लाशते । भ्लाश्यते । इमे पुस्तकान्तरेषु दृश्यन्ते ॥ (१०) पयः ।
इति पु० ॥ (११) हृणिः । हृणिः । इति पाठभेदः ॥

अथ द्वितीयाध्यायारम्भः ।

अपः । अप्नः । दंसः । वेषः । वेपः (१) । विष्टी । व्रतम् ।
कर्वरम् । शक्म् (२) । क्रतुः । कृणाम् (३) । करणानि । करांसि ।
करन्ती (४) । करिक्रत् । चक्रत् (५) । कर्त्तव्यम् (६) । कर्त्ताः ।
कर्त्तुवै । कृत्वौ । धौः । शचौ । शमौ । शिमौ । शक्तिः । शिल्पमिति
षड्विंशतिः कर्मनामानि ॥ १ ॥

तुक् । तोकम् । तनयः (७) । तोकम् । तक्म् । शेषः । अप्नः ।
गयः । जाः । अपत्यम् । यहुः । स्तूनुः । नपात् । प्रजा । वीजम् ।
इति पञ्चदशापत्यनामानि ॥

मनुष्याः । नरः (८) । ध्रुवाः । जन्तवः । विशः । क्षितयः ।
कृष्टयः । चषण्ययः । नहुषः (९) । हरयः । मर्याः । मर्त्याः ।
मर्त्ताः । वाताः । तुर्वशाः । द्रुह्यवः । आयवः (१०) । यदवः ।
अनवः । पूरवः । जगतः । तस्थुषः । पञ्चजनाः । विवस्वन्तः ।
पृतनाः । इति पञ्चविंशतिर्मनुष्यनामानि ॥ ३ ॥

आयती । चवाना । अभौशु । अप्नवाना । विनङ्गुसौ ।
गभस्ती । कुरस्नौ । बाहू । भुरिजौ । क्षिपस्ती (११) । शक्करो ।
भरिवे । इति द्वादश बाहुनामानि ॥ ४ ॥

(१) वेगः । विष्टी । इति पुस्तकान्तरम् ॥ (२) शक्म् । शक्वम् । अस्यैव भेदः पु० ॥ (३)
करणम् । इति पु० ॥ (४) करन्ति । इति पु० ॥ (५) चक्रतुः । इति पु० ॥ (६) कर्त्तुम् ।
इति पाठभेदपु० ॥ (७) तनयम् । इति लिङ्गभेदेन क्वचित् पु० ॥ (८) नराः ।
इति पुस्तकान्तरेषु ॥ (९) नहुषाः । इति वचन भेदेन क्वचित् पाठः ॥ (१०)
ययवः । इति पु० ॥ (११) क्षिपती । क्षिपन्ती । इति पु० ॥

अग्रुवः । अण्यः (१) । विशः (२) । क्षिपः । शर्याः ।
रशनाः । धीतयः । अथर्यः (३) । विपः । कृत्त्याः । अवनयः ।
हरितः (४) । स्वसारः । जामयः । सनाभयः । योक्ताग्निः ।
योजनानि । धुरः । शाखाः । अभीशवः । दौधितयः । गभस्तयः
(५) । इति द्वाविंशतिरङ्गुलिनामानि ॥ ५ ॥

वृश्मि । उश्मसि (६) । वेति । वेनति । वेसति (७) ।
वाञ्छति । वष्टि (८) । वनोति । जुषते । हर्यति (९) । आचके ।
उशिक् । मन्यते । कृन्तसत् (१०) । चाकनत् । चकमानः । कनति ।
कानिषत् । इत्यष्टादश कान्तिकर्माणि ॥ ६ ॥

अन्धः (११) । वाजः । प्रयः । प्रयः (१२) । पृक्षः । पितुः । वयः ।
सुतः (१३) । सिनम् (१४) । अवः । क्षु (१५) । धासिः । इरा । इळा ।
इषम् । जर्क । रसः । स्वधा । अर्कः । क्षद्म (१६) । नेमः । ससम् ।
नमः । आयुः । सूनृता । बह्वः । वर्चः । कौलालम् । यशः । इत्य-
ष्टाविंशतिरन्तनामानि ॥ ७ ॥

आवयति । भर्वति । बभस्ति । वेति । वेवेष्टि । अविष्यन् ।
वप्सति । भसधः । बब्धाम् । ह्वरति (१७) । इति दशात्तिकर्माणि ॥ ८ ॥

(१) विभ्राः, इत्यधिकं कचित् पु० ॥ (२) वृशः । इति पाठान्तरम् ॥ (३) अथर्यवः ।
अथर्याः इति पाठान्तरम् ॥ (४) रोहितः, इति कचित् पाठः ॥ (५) सुहस्यः । ससुतः ।
अस्यैव स्थाने इमौ लभ्येते पु० ॥ (६) इतोऽग्रे, अववेति, इत्यधिकं पुस्तकान्तरेषु ॥
(७) विसति । वेति । इति पुस्तकान्तरपाठः ॥ (८) वेष्टि, इति कचित् पु० ॥
(९) हर्यति । उशत् । इमावधिकौ पुस्तकान्तरेषु ॥ (१०) शंसनत् । इति पु० ॥
(११) पाजः । इत्यधिकं कचित् पु० ॥ (१२) अवः, इति कचित् पु० ॥ (१३)
सुतम् इति लिङ्गभेदेन दृश्यते पु० ॥ (१४) सीनमिति पु० ॥ (१५) क्षुमत् ॥
क्षुत् । इत्येते क्षु, इत्यस्यैव स्थाने दृश्येते पुस्तकान्तरेषु ॥ (१६) क्षद्मः । इति पु० ।
(१७) ह्वयति, इति पु० ॥

ओजः (१) । पाजः । शवः । तरः । तवः । त्वक्षः । शङ्खः (२) ।
 वाधः । नृष्णम् । तविषी । शुष्मम् । शुष्णम् । शुषम् । दक्षः ।
 वीजु । च्यौत्रम् । सहः । यहः । बधः । वर्गः । वृजनम् । वृक् (३) ।
 मज्जना । पौस्यानि । धर्णसिः (४) । द्रविणम् । स्यन्द्रासः ।
 शम्बरम् । इत्यष्टाविंशतिर्वैलनामानि ॥ ६ ॥

मधम् । रेक्णाः । रिक्थम् । वेदः । वरिवः । श्वातम् । रत्नम् ।
 रयिः । क्षत्रम् । भगः । मीढुम् (५) । गयः । नृम्णम् । द्युम्नम् ।
 तना । बन्धुः । इन्द्रियम् । वसु । रायः । राधः । भोजनम् । मिधा ।
 यशः । ब्रह्म । द्रविणम् (६) । श्वः । वृत्तम् (७) । वृतम् । इ-
 त्यष्टाविंशतिरेव धननामानि ॥ १० ॥

अध्व्या । उस्त्रा । उस्त्रिया । अही । मही । अदितिः (८) ।
 इका । जगती शकरी । इति नव गोनामानि ॥ ११ ॥

रेकते । हेकते । भामते । भूणीयते (९) । भूणीति ।
 भेषति । दोधति । वृष्यति । कम्पते । भोजते । इति दश क्रुध्य-
 तिकर्माणि ॥ १२ ॥

हेकः । हरः । हृणिः (१०) । त्यजः । भामः । एहः । ह्वरः (११) ।
 तपुषी । जूर्णिः । सन्युः । व्यथिः । इत्येकादश क्रोधनामानि ॥ १२ ॥
 वर्त्तते । अयते । लोटते । लोठते । स्यन्दते (१२) । कसति ।

(१) वाजः इत्यधिकं क्वचित् पुस्तके ॥ (२) त्वक्षः, इति पु० ॥ (३) विट्, इति पाठा-
 न्तरम् ॥ (४) धर्णसि, इति प्रधानं पाठः ॥ (५) मील्लम्, इति क्वचित् पु० ॥ (६) शवः ।
 इत्यधिकं क्वचित् ॥ (७) कृतम् । वृत्तम् । इति पु० ॥ (८) अदितिः । इति पुस्तका-
 न्तरपाठः ॥ (९) अस्यैव स्थाने हूणीयते, इति क्वचित् पु० ॥ (१०) घृणिः, इति च पु० ॥
 (११) यरः, इति तस्यैव स्थाने पुस्त० । (१२) स्यन्दति । इति पु० ॥

सर्पति । स्थमति । स्खति (१) । संसति । अवति । श्रोतति ।
 ध्वंसति । वेनति । माष्टि । भुरण्यति । शवति । कालयति । प्रे-
 लयति । कण्टति । पिस्यति । बिस्यति । मिस्यति । प्रवते । पुव-
 ते । च्यवते । कवते । गवते । नवते (२) । क्षोदति । नक्षति ।
 सक्षति । म्यक्षति (३) । सचति (४) । ऋच्छति । तुरीयति ।
 चतति । अतति । गाति । इयक्षति । सञ्चति । त्वरति । रंहति ।
 यतते । भ्रमति । भ्रजति । रजति । लजति । क्षियति । धमति ।
 मिनाति (५) । ऋण्वति (६) । ऋणोति । स्वरति । सिसर्त्ति ।
 विषिष्टि (७) । योषिष्टि (८) । रिणाति (९) । रीयते ।
 रेजति । दधति (१०) । दम्नोति (११) । युध्यति (१२) ।
 धन्वति । अरुषति (१३) । आर्यति (१४) । सीयते (१५) ।
 तकति (१६) । दीयति । ईषति । फणाति (१७) । हनति (१८) ।
 अर्दति । मर्दति । सृष्टे । नसते । हर्यति । इयर्त्ति । ईत्ते । ईङ्-
 खते । ज्वयति । श्वावति । गन्ति । आगनौगन्ति । जगन्ति (१९) ।

(१) संसते । इति पाठश्च । (२) अवते । इत्यपि कचित् पु० ॥ (३) मियक्षति । इत्यपि
 पु० ॥ (४) अचति । इत्यपि ० ॥ (५) । मिनाति । क्षिणोति । इति पु० ॥ (६) रिण्वति ।
 इत्यपि पु० ॥ (७) विषिष्टि । विषिष्टि । इति कचित् पु० ॥ (८) योषिष्टि । इति च
 पु० ॥ (९) ऋणाति । ऋणर्त्ति । ऋणर्त्ति । इति भेदः पुस्तकान्तरे ॥ (१०)
 दधयति । इति भेदः । नख्यति । इत्यधिकं पु० ॥ (११) दम्नोति । इति पु० ॥ (१२)
 युध्यते । इति कचित् पाठः ॥ (१३) अरुषति । अरुषति । इति पा० ॥ (१४) अलर्य-
 ति । अलर्षति । इति पाठान्तरम् ॥ (१५) डीयते । इति बहुमतः पाठः ॥ (१६)
 दीयते । इत्यपि कचित् पा० ॥ (१७) अत्र कणति । इत्यपि कचित् पा० ॥ (१८) सञ्चति ।
 सिस्रति । धवति । धावति । हम्नति । हम्नति । हर्यति इत्येतेऽधिकाः पुस्तका-
 न्तरे ॥ (१९) जङ्गन्ति इत्यपि पु० ॥

जिन्वति (१) । जसति । गमति । ध्रति । ध्राति । धपति (२) ।
 वहते (३) । रघ्यति । जेहते (४) । ध्वःकति (५) । क्षुम्पति
 (६) । प्साति । वाति । याति । द्रुषति (७) । द्राति (८) । द्रूष्ति ।
 एजति । जमति । जवति । वञ्चति अनिति । पवते (९) । हन्ति ।
 सेधति । अगन् । अजगन् । जिगाति । पतति । द्रुवति । द्रमति
 (१०) । द्रवति (११) । वेति । ह्यन्तात् (१२) । एति । जगायात् ।
 अयधुः (१३) ॥ इति द्वाविंशशतं गतिकर्माणि ॥ १४ ॥

नु । स्रु । द्रुवत् । ओषम् । जीराः (१४) । जूर्णिः (१५) ।
 शूर्त्ताः । शुघनासः (१६) । शौभम् । तृषु (१७) । तूयम् (१८) ।
 तूर्णिः (१९) । अजिरम् (२०) । भुरण्युः । शु (२१) । आशु । प्राशुः
 (२२) । तूतुजिः (२३) । तूतुजानः (२४) । तुज्यमानासः ।

(१) जगाति । जगति । इत्यपि क्वचित् पु० ॥ (२) ध्रुवति इति पाठान्तरम् ॥
 (३) । वरुग्यति । अघ्यति । इत्यधिकं क्वचित् पु० ॥ (४) जेहति, इतिभेदः ।
 वहति । राति । रुहति इत्यधिकं क्वचित् पुस्तकान्तरपाठः ॥ (५) ध्वःकति ।
 ध्वकति इति पु० ॥ (६) क्षुम्पति । इति पु० ॥ (७) । जायति इत्यधिकं क्वचित्
 पु० ॥ (८) पतयति इत्यप्यधिकं क्वचित् पु० ॥ (९) म्रवति इति पु० ॥ (१०) म्रजति
 इत्यधिकं क्वचित् पु० ॥ (११) द्रुवति । द्रुमति । इति पाठान्तरम् ॥ (१२)
 यकाराभावे । हन्तात् । इति पु० ॥ (१३) अयधुः । अयधुः । इति तस्यैव भेदेन
 पाठः (१४) । जिरा इति पु० ॥ (१५) जूर्णिः । इति ङीष्भेदेन दीर्घान्तः पु० ॥
 (१६) शुघनासः । शुधनाः । शुघनाशः । इति तस्यैव भेदेन पाठान्तरम् ॥ (१७)
 तृषु । इति पु० (१८) । तूयम् । इति पा० (१९) । तूर्णिः इति लिङ्भेदेन पा० ॥
 (२०) अजिरम् । इत्याद्युदात्तस्वरभेदेन क्वचित् पाठः ॥ (२१) शूः । आशुः । इति
 पूर्वापरयोर्भेदः पु० ॥ (२२) प्राशुचित् । प्राशुवित् । इति पाठान्तः ॥ (२३) । तूतुजित्
 इति पाठान्तरम् ॥ (२४) तूतुजानासः । इति पा० ॥

अज्जाः (१) साचिवित् । (२) युगत् (३) । ताजत्
तरणिः । वातरंहाः । इति षड्विंशतिः क्षिप्रनामानि ॥ १५ ॥

तुलित् (४) । आसात् (५) । अस्वरम् । तुर्वशे (६)
अस्मौके । आके । उपाके । अर्वाके (७) । अन्तमानाम्
अवमे । उपमे । इत्येकादशान्तिकनामानि ॥ १६ ॥

रणः । विवाक् । विखादः । नदतुः । भरे । आक्रन्दे । आह्व
आजौ । पृतनाज्यम् । अभीके । समीके । समसत्यम् । नेमधि
ता (८) सङ्काः । समितिः । समनम् । मौद्वे । पृतनाः
सृधः । मृधः । पृतसु । समत्यु । समये । समरणे । समोहे । (९) समीधे
(१०) सङ्ख्ये । सङ्गे । सङ्गुगे (११) । सङ्गवे । सङ्गमे
वृत्तये । पृत्ते । आणौ (१२) शरसातौ । वाजसातौ । समनीके
खले । खजे । पौस्ये । महाधने । वाजे । अजम् । सद्म् (१३)
संयत् । सम्बतः (१४) इति षट्चत्वारिंशत्संग्रामनामानि ॥ १७

इन्वति । नक्षति । (१५) आक्षाणः । आनट् । आष्ट
(१६) अपानः । अशत् । नशत् । आनशे । अशनुते । इवि द
व्याप्तिकर्माणः ॥ १८ ॥

(१) अजराः इति पा० ॥ (२) साचीवित् । साचीवत् इति पुस्तकान्तः ॥ (३) युगत्
इति पु० ॥ (४) तुलित् इति पा० ॥ (५) आसा । इति तकाराभावे तस्यैव भेदः
(६) तुर्वशः । इति पा० ॥ (७) अर्वाकः । इति पु० ॥ (८) नेमधितिः । इति पा०
(९) सम्मोहे इति पु० ॥ (१०) समिधे । सङ्खे इति पूर्वापरयोर्भेदेन पाठः
(११) इत्यस्मात् पूर्वं संयत् । इत्यधिकं क्वचित् पुस्तके ॥ (१२) पृधने । इत्यधि
क्वचित् पु० ॥ (१३) अगमन् । सगमन् । स्पगमन् । इत्येते ऽधिकाः पु० ॥ (१४)
संवतम् । इति पाठान्तरम् ॥ (१५) ननवे इति पा० ॥ (१६) आष्ट । आष्ट
आष्टः । इति तस्यैव भेदः ॥

द॒भ्नाति (१) । श्नयति । ध्वरति । धूर्वति । वृणक्ति ।
 वृश्चति । कृण्वति (२) । कृन्तति । श्वसिति (३) । नभते (४) ।
 अदयति । स्तृणाति । स्नेहयति (५) । यातयति (६) । स्फुरति
 स्फुलति । निवपन्तु । अवतिरति । वियातः । आतिरत् । तव्वत्
 आखण्डल । द्रूणाति । रम्णाति । शुणाति । शम्नाति । तृणोठि ।
 तार्ढि । नितोशते (७) । निवहयति (८) । मिनाति । मिना-
 ति । धमति (९) । इति त्रयस्त्रिंशद्वधकर्माणि ॥ १६ ॥

दिद्युत् । निमिः । हेतिः । नमः । प्रविः । सुकः । टुकः । वधः
 वज्रः । अकैः (१०) । कुत्सः । कुलिशः । तुजः । तिग्मम् (११) ।
 मेनिः । स्वधितिः । सायकः । परशुः । इत्यष्टादश वज्रनामानि ॥ २० ॥
 इरज्याति । पत्यते । क्षयति (१२) । राजति । इति चत्वार
 ऐश्वर्यकर्माणि ॥ २१ ॥

राष्ट्री । अयः । नियुत्वान् । इनइनः । इति चत्वारोऽश्वरना-
 मानि ॥ २२ ॥

अपस्तुङ् । मनुष्या । अपत्यगुवो । वश्यन्ध्र । ओव । यत्यो । जोम । घमघ्न्य । रिक्
 ते हेङ्गे वर्त्तते । नुत । विद्रुण । इन्वति । दभ्नोति । दिघु । दिरज्याति । राष्ट्री । तिहा
 विंशतिः ॥

॥ इति निघण्टौ द्वितीयाध्यायः समाप्तः ॥

(१) श्नयति इत्यधिकं क्वचित् पु० । अयति । इति परस्य पाठान्तरम् ॥ (२)
 कृणस्ति । कृणस्ति । इति पु० ॥ (३) श्वसति । इति पा० ॥ (४) नभति इति पु० ॥
 (५) स्नेहति इति पूर्वस्थैव भेदपाठः । अर्दति । मर्दति । इत्यधिकं क्वचित् ॥ (६)
 यार्चति । यावति । इति पुस्तकान्तरपाठः ॥ (७) नितोशते । नितोशयति इति
 भेदेन क्वचित् पाठः ॥ (८) निवहयति पु० ॥ (९) जूवति । इत्यधिकं क्वचित् ॥ (१०) अकैः
 इति पु० ॥ (११) तुजः । तिग्मः । इति पाठान्तरम् ॥ (१२) क्षयति । इति क्वचित् पाठः ।

अथ तृतीयाध्यायारम्भः ।

उरु । तुवि । पुरु । भूरि । शम्भत् । विश्वम् । परीणसा । व्या न-
शिः । शतम् । सहस्रम् । सलिलम् (१) । कुवित् । इति द्वादश
बहुनामानि ॥ १ ॥

ऋहन् (२) ऋस्यः । निघृष्वः । (३) मायुकः । प्रतिष्ठा । कृधु (४) ।
वम्भकः । दम्भम् (५) । अम्भकः । क्षुल्लुकः । अल्पः (६) । इत्येकादश
ह्रस्वनामानि ॥ २ ॥

महत् (७) । ब्रध्नः । ऋष्वः । बृहत् (८) । उक्षितः । तवसः ।
लविषः । महिषः । अभ्वः । ऋभुक्षाः । उक्षाः । विहायाः । यक्षः ।
ववक्षिथः । ववक्षसे । अम्भृणः । माहिनः । गभीरः । ककुहः (९) ।
रभसः । ब्राधन् (१०) । विरप्शी । अद्भुतम् (११) । बर्हिष्ठः (१२) ।
बर्हिषत् (१३) । इति पञ्चविंशतिर्महन्नामानि ॥ ३ ॥

गयः । कदरः । गर्तः । हर्म्यम् । अस्तम् । पस्त्यम् । दुर्गणे ।
नीळम् । दुय्याः । स्वसराणि । अमा । दमे । कृत्तिः । योनिः ।
सद्यः । शरणम् । वरूथम् । कृदिः । कृदिः । कृया । शर्म । अजम
(१४) । इति द्वाविंशतिर्गृहनामानि ॥ ४ ॥

(१) सुरिरम् । इति पुस्तकान्तरपाठः ॥ (२) रिहम् । ऋहम् । ऋहत् । इति
पा० ॥ (३) ळषमः । त्रिषमः । इत्यधिकौ पु० ॥ (४) कृधुकः । ऋधुकः । इति
पुस्तकान्तरपाठः ॥ (५) दम्भकः । देहकः । इमावधिकौ पु० ॥ (६) अल्पकम् ।
इति पा० ॥ (७) महः । इति पु० ॥ (८) तुक्षः । इत्यधिकः पु० ॥ (९) ककुह-
स्तिना । इति पाठभेदः ॥ (१०) ब्राधम् । ब्राधत् । इति पु० ॥ (११) अद्भुतः ।
इति लिंगभेदः ॥ (१२) बर्हिष्ठः । इति पु० ॥ (१३) बर्हिषि । इति पु० ॥ (१४)
वर्म । इति पु० ॥

दृश्यति^१ (१) । विधिम् । सपर्यति^१ । नमस्यति^१ । दुवस्यति^१ ।
 ऋणोति^१ । ऋणहि । ऋच्छति^१ । सपति (२) । विवासति ।
 इति दश परिचरणकर्माणि ॥ ५ ॥

शिखाता^१ । शतरा^१ । शातपन्ता । शर्म (३) । स्युमकम् ।
 रोधम् । सयः । सुगम्यम् । सुदिनम् । शुषम् । शुनम् । शुग्मम् । (४)
 पेपजम् । जलापम् । स्योनम् । सुग्नम् । शिवम् । शिवम् । शम् ।
 तम् । इति विंशतिः सुखनामानि । ६ ॥

निर्लिक् । वत्रिः । वर्षः । वपुः (५) । अमतिः । अमः (६) ।
 सुः । अमः । पिष्टम् । पेशः । कर्शनम् । मरुत् । (७) अर्जुनम् ।
 नाक्मम् । अरुपम् । शिल्पम् (८) । इति षोडश रूपनामानि ॥ ७ ॥

अस्त्रे मा । अने मा । अने द्यः । (९) अनवद्यः । अनभिश्चिः ।
 १०) । उक्थ्यः । सुनीयः । पाकः । वामः । वयुनम् । इति दश
 प्रशस्यनामानि ॥ ८ ॥

केतः । केतुः । (११) चेतः । चित्तम् । क्रतुः । असुः । धीः ।
 शची । माया । वयुनम् । अभिख्या । इत्येकादशप्रज्ञानामानि ॥ ९ ॥
 वट् । अत् । सुत्रा । अडा । इत्या । ऋतम् । इति षट्
 सत्यनामानि ॥ १० ॥

चिक्यत् (१२) । चाकनत् (१३) । आचक्ष्म (१४) । चष्टे । विचष्टे ।
 विचर्षणिः । विश्वचर्षणिः । अवचाकशत् । इत्यष्टौ प्रश्रुतिकर्माणि ॥ ११ ॥

(१) दृश्यति । इतिपा० ॥ (२) शर्वति । इतिपा० ॥ (३) शिल्पुः । इति
 बहुमतः पा० ॥ (४) शुग्मम् । इतिपा० ॥ (५) अपुः । इत्यधिकं कचित् ॥ (६)
 वर्षः । इतिपा० ॥ (७) पसरः । इतिपा० ॥ (८) शध्यम् । शिध्यम् । इति
 पा० ॥ (९) अनित्यः । इत्यधिकं पु० ॥ (१०) अनभिश्चिः । इति सम्यतः
 पाठः ॥ (११) क्रतुः । इतिपु० । (१२) चिक्यम् । पा० । (१३) चुना । इतिपा० ॥
 (१४) चाक्ष्म । अचक्ष्म । इतितस्यैव भेदः ॥

हिकम् । नुकम् । सुकम् । आहिकम् । आकौम् । (१)
नकिः । माकिः । नकौम् । आकृतम् । इति नवोत्तराणि पदानि
सर्वपदसमाप्तायः ॥ १२ ॥

इदमिव । इदंयथा । अग्निर्नये । चतुरश्विचहदमानात् ।
ब्राह्मणाव्रतचारिणः । वृक्षस्पृशते पुरुहूतवयाः । जारआभगम् ।
मेषोभूतो ३ भियन्तयः । तद्रूपः । तद्वर्णः । तद्वत् । तथा ।
इत्यपमाः ॥ १३ ॥

अर्चति । गायति । रेभति । स्तोभति । गूढयति गृणाति ।
जरते (२) । ह्वयते (३) । नदति । पृच्छति । रिहति । धमति ।
कृपायति (४) । कृपयति । पनस्यति (५) । पनायते । वल्गू
यति । मन्दते । भन्दति । कन्दति । कुदयते (६) । शशमानः
रञ्जयति । रजयति । शंसति । स्तौति । यौति । रौति । नौति ।
भनति (७) । पणायति (८) । पणते । सपति (९) । पृष्ट्वाः (१०)
महयति । वाजयति । पूजयति । मन्यते (११) । मदति । रसति ।
स्वरति । वेनति । मन्द्रयते (१२) । जल्पति (१३) । इतिचतु-
श्चत्वारिंशदर्चतिकर्माणि ॥ १४ ॥

(१) आकिम् । इति पाठान्तर्गमम् ॥ (२) जरति । इति पु० ॥ (३) ह्वयति ।
पा० ॥ (४) कृपा । इति पा० ॥ (५) पणस्यति । पणायते । इति पूर्वापरयो-
र्भेदः ॥ (६) कुदयति । इति पा० ॥ (७) भणति । इति णत्वभेदः ॥ (८)
भणायते । इति भेदः ॥ (९) स्वपति । इति पा० ॥ (१०) पिष्ट्वाः । इति
पा० ॥ (११) स्वदति । इत्यधिकं पु० ॥ (१२) कल्पते । इत्यधिकं पु० ॥ (१३)
मन्त्रयते । वन्दते । इमावधिकौ पुस्तकान्तरे ॥

विप्रः । विग्रः । गृत्सः । धीरः । वेनः । वेधाः (१) । कखः ।
 ऋभुः । नवेदाः । कविः । मनीषी । मन्वाता । विधाता । विपः ।
 सनश्चित् । विप्रश्चित् । विप्रन्यवः । (२) । आकेनिपः (३) ।
 उग्निजः । कीस्तासः । अङ्घ्रातयः । मतयः । मतुथाः (४) । वाघतः
 (५) । इति चतुर्विंशति संधाविनामानि ॥ १५ ॥

रेभः । जरिता । कारुः । नदः । स्तामुः (६) । कीरिः । गौः ।
 सूरिः । नादः । छन्दः । स्तुप् (७) । रुद्रः । छपण्युः । इति
 त्रयोदशस्तोतनामानि ॥ १६ ॥

यज्ञः । वेनः । अर्ध्वरः । मेधः । विदथः । नार्यः । सर्वनम् (८) ।
 होत्रा । इष्टिः । देवताता । मुखः । विष्णुः । इन्दुः । प्रजापतिः ।
 धर्मः । इति पञ्चदशयज्ञनामानि ॥ १७ ॥

भरताः (९) । कुरवः । वाघतः । वृक्तवर्हिषः । यतस्तुचः ।
 मरुतः । स्रवाधः । देवयवः । इत्यष्टाष्टत्विङ्नामानि ॥ १८ ॥

ईमहे । यामि । मन्महे । दृडि । शुग्निध (१०) । पूडि । रिरि-
 द्दटि । मिमिद्वटि । मिमीहि । रिरौहि । पीपरत् । युन्तारः ।
 यन्धि (११) । इषुधति । मदेमहि । मनामहे । मायते । इति
 सप्तदश याज्वाक्यर्णाः ॥ १९ ॥

(१) मेधः । इत्यधिकः पु० ॥ (२) विप्रन्युः । इति पु० ॥ (३) केनिपः ।
 अयमधिकः पु० ॥ (४) मनुथाः ॥ (५) मेधाविनः । इत्यधिकं पु० ॥ (६)
 तानुः । इति पाठान्तरम् ॥ (७) स्तु इति पाठान्तरम् ॥ (८) नारी । अयमधिकः
 पु० ॥ (९) भारताः । इति पाठभेदः ॥ (१०) दृग्धि । इति पा० ॥ (११)
 यन्ति । इति पाठान्तरम् ॥

निघण्टुः । अ० ३ । खं० २०-२६ ॥

दाति । दाशति । दासति । राति । रासति । पृणति
पृणाति (२) । शिञ्जति । तुञ्जति । मंहते । इति द
र्माणाः ॥ २० ॥

परिखव (३) । पवस्व । अभ्यर्ष । आशिषः । इति
ऽध्येषणाकर्माणाः ॥ २१ ॥

स्वपिति । सस्ति (४) । इति द्वौ स्वपितिकर्माणां

कूपः । कातुः । कर्त्तः । वव्रः । काटः । खातः (५)
क्रिविः (६) । सूदः । उत्सः । ऋश्यदात् । कारोतर
कुशयः । केवटः । इति चतुर्दशकूपनामानि ॥ २३ ॥

तृपुः (८) । तक्का (९) । रिक्का (१०) । रिपु
रिहायः । तायुः । तस्करः । वनर्गुः । हरश्चित् । सुषीवान्
चः । अद्यशंसः । वृकः । इति चतुर्दशैव स्तेननामानि ।

निण्यम् । सखः । सनुतः । हिरक् । प्रतीच्यम्
अपीच्यम् । इति षण् निर्णीतान्तर्हितनामधेयानि ॥

आकि । पराकि । पराचै । आरे । परावतः । इति
नामानि ॥ २६ ॥

(१) पृणक्ति । इति पा० ॥ (२) हञ्जति । इत्यधिकं पु० ॥ (३)
इति शकारभेदेन पाठः ॥ (४) स्वस्ति । इति पा० ॥ (५)
अयमधिकः पुस्तकान्तरे ॥ (६) क्विः । इति पाठः ॥ (७)
इति पाठः ॥ (८) त्रिपुः । इति पाठः ॥ (९) रितक्का । नि
इति पुस्तकान्तरपाठः ॥ (१०) रिक्का । इति पाठान्तरम् ॥ (११)
इति पा० ॥

प्र॒त्नम् । प्र॒दिवः । प्र॒वयाः । सने॑मि । पू॒र्यम् (१) । अ॒ज्ञाय ।
इति षट् पुराणनामानि ॥ २७ ॥

नव॑म् । नू॒तनम् । नू॒तनम् । नव्य॑म् । इ॒दा । इ॒दानीम् । इति
षडेव नवनामानि ॥ २८ ॥

प्र॒पि॒त्वे ! अ॒भीके॑ । द॒भम् । अ॒र्भ॒कम् । ति॒रः । सु॒तः । त्वः ।
नेमः । ऋ॒क्षाः । स्त॒भिः । व॒भ्री॑भिः । उ॒पजि॑ह्विका । ऊ॒र्द॑रम् ।
कृ॒द॑रम् । र॒न्धः । पि॒ना॒कम् । मि॒ना । ग्नाः । शि॒पः । वै॒त॒सः । अ॒या ।
ए॒ना । सि॒षे॒क्तु (२) । स॒च॒ते । म्य॒स॒ते (३) । रे॒ज॒ते । इति षड्-
विंशतिर्द्विंश उत्तराणि नामानि ॥ २९ ॥

स्व॒धे (४) । पु॒र॒न्धी । धि॒षणे॑ । रो॒द॒सी (५) । ज्यो॒णी । अ-
न्म॑सी । न॒म॑सी । र॒ज॑सी । स॒द॑सी । स॒न्न॑नी । घृ॒त॒व॒ती । ब॒हु॒ले ।
ग॒भी॒रे । ग॒न्म॑री । ओ॒ण्यौ । च॒म्बौ (६) । प्रा॒श्वौ (७) । म॒ही ।
उ॒र्वी । पृ॒थ्वी (८) । अ॒दि॒ती । अ॒ही । दू॒रे॒अ॒न्ते । अ॒पा॒रे॒अ॒पा॒
रे । इति चतुर्विंशतिर्द्यावापृथिवीनामधेयानि ॥ ३० ॥

उ॒र्व्यु॑ः । ह॒न्म॒ह॒द्भ्य॒द॒र॒ज्य॒ति॒शि॒खा॒ता॒नि॒र्णि॒ग॒स्ते॒मा॒के॒तु॒र्वट्॒चि-
क्व॒द्वि॒क॒मि॒द॒मि॒वा॒र्च॒ति॒वि॒प्रो॒रे॒भो॒य॒ज्ञो॒भ॒र॒ता॒ई॒म॒हे॒दा॒ति॒परि॒स्र॒व-
स्व॒पि॒ति॒कूप॒स्त॒पु॒र्नि॒ण्य॒मा॒के॒प्र॒त्न॒न्व॒म् । प्र॒पि॒त्वे॒स्व॒धे॒विं॒शत् ॥

इति निघण्टौ तृतीयाऽध्यायः समाप्तः ॥

(१) पूर्वा । इति पा० ॥ (२) सिषक्ति । इति पा० ॥ (३) नंसते । इत्य-
धिकं पु० ॥ (४) सधे । इति पु० ॥ (५) रोधसी । इति वर्णभेदेनाधिकं वा पु० ॥
(६) अतः पूर्वं नप्त्री । इत्यधिकं क्वचित् । अतोऽग्रे च चम्बौ । इति भेदपाठः ॥
(७) प्राश्व्यौ । इति पा० ॥ (८) बृहती । इत्यधिकमत्र पुस्तकान्तरे ॥

अथ चतुर्थाऽध्यायारम्भः ॥

—*—

ज॒हा । नि॒धा । शि॒ता॒म । मे॒ह॒ना । द॒मू॒नाः । मू॒षः (१) ।
 इ॒षि॒रे॒ण । कु॒रु॒त॒न । ज॒ठ॒रे । ति॒त॒उ । शि॒प्रे । म॒ध्या । म॒न्दू ।
 ई॒र्मा॒न्ता॒सः । का॒य॒मा॒नः । लो॒ध॒म् । शी॒र॒म् । वि॒द्र॒घे । द्रु॒प॒दे ।
 तु॒ख॒नि । न॒स॒न्ते । न॒स॒तः (२) । आ॒ह॒न॒सः । अ॒द॒म॒स॒त् । इ॒ष्मि॒-
 णः । वा॒हः । प॒रि॒त॒क्म॒या । सु॒वि॒ते । द॒य॒ते । नू॒चित् । नू॒च ।
 दा॒व॒ने । अ॒कू॒पा॒र॒स्य । शि॒शी॒ते । सु॒तु॒कः । सु॒प्रा॒य॒णाः । अ॒प्रा॒यु॒वः ।
 च॒य॒व॒नः । र॒जः । ह॒रः । जु॒हु॒रे । व्य॒न्तः । क्रा॒णाः । वा॒शी । वि॒षु॒णः ।
 जा॒मिः । पि॒ता । श॒योः । अ॒दि॒तिः । ए॒रि॒रे । ज॒सु॒रिः । ज॒र॒ते ।
 म॒न्दि॒ने । गौः । गा॒तुः । दं॒स॒यः । त॒ता॒व । च॒य॒से । वि॒यु॒ते ।
 क॒व॒ध॒क् । अ॒स्याः । अ॒स्य । इति द्विषष्टिः पदानि ॥ १ ॥

स॒स्मि॒म् । वा॒हि॒ष्ठः । दू॒तः । वा॒व॒श॒नः । वा॒र्य॑म् । अ॒न्धः । अ॒स-
 च॒न्ती । व॒नु॒ष्य॒ति । त॒रु॒ष्य॒ति । भ॒न्द॒नाः । आ॒ह॒नः । न॒दः । सो॒मो
 अ॒क्षाः । श्वा॒व॒म् । ज॒तिः । हा॒स॒मा॒ने । प॒ङ्भिः । स॒स॒म् । हि॒ता ।
 वाः । व॒रा॒हः । ख॒स॒रा॒णि । श॒र्याः । अ॒र्कः । प॒विः । व॒क्षः । ध॒न्व ।
 सि॒न॒म् । इ॒त्या । स॒चा । चि॒त् । आ । द्यु॒म॒न॒म् । प॒वि॒त्र॒म् । तो॒दः ।
 ख॒ञ्जाः । शि॒पि॒वि॒ष्टः । वि॒ष्णुः । आ॒घृ॒णिः । प्र॒यु॒ज्ज॒याः । अ॒ध्व॒र्यु॒म् ।
 का॒णु॒का । अ॒ग्नि॒गुः । आ॒ङ्गु॒षः । आ॒पा॒न्त॒म॒न्युः । श॒शा । उ॒र्व॒शी ।

(१) इ॒षि॒रः । इत्यधिकं ० ॥ (२) न॒स॒न्तः । इत्यप्यधिकं क्वचित् ॥

वयुनम् । वाजपस्थम् । वाजगन्धम् । गन्धम् (१) । गंधिता ।
 कौरयाणः । तौरयाणः । अक्रयाणः (२) । आरितः । वन्द्यः । निष्प्रपी ।
 तूर्णीशम् । चुम्पम् । निचुम्पुणः । पदिम् । पादुः । वृकः । जोषवा-
 कम् । कृत्तिः । श्वघ्नी । समस्य । कुटस्य । चर्षिण्यः । शम्बः । केपयः ।
 तूतुमाकषोअसत्तम् । काकुदम् । वीरिटे । अच्छ । परि । ईम् । सीम् ।
 एनम् । एनाम् । हृणिः । इति चतुरत्तरमशीतिः पदानि ॥ २ ॥

आशुशुक्षणिः । आशाभ्यः । काशिः । कुणारम् । अलाहणः ।
 सललूकम् । कत्ययम् । विस्तुहः । वीरुधः । नक्षदाभम् । अस्कधोयुः ।
 शृम्भाः । वृवदुक्ष्यम् । ऋदरः । ऋदूपा । पुलुकामः । असिन्वती । कपना ।
 भाक्तजोकः । रुजानाः । जूर्णिः । ओमना । उपलप्रक्षिणी ।
 उपसि । प्रकलवित् । अभ्यर्धयज्वा । ईक्षे । क्षोणस्य । अस्मे ।
 पाथः । सवीमनि । सप्रथाः । विदधानि । आयन्तः । आशीः ।
 अनीगः । अमूरः । शशमानः । देवोदेवाच्याहपा । विजामा-
 तुः । ओमासः । सोमानम् । अनत्रायम् । किमीदिने (१) । अमवान् ।
 अमीवा । दुरितम् । अप्वा । अमतिः । शुष्टौ । पुरन्धिः । रुश-
 त् । रिशाशादसः । सुदवः । सुविदवः । आनुषक् । तुर्वणिः ।
 गिर्वणसे । असूत्तं सूत्तं । अम्यक् । यादृश्मिन् । जारयायि ।
 अग्रिया । चनः । प्रचता । शुरुधः । अमिनः । जज्भती । अग्र-
 तिष्कुतः । शाशदानः । हृप्रः । सुशिप्रः । शिप्रे । रंसु । द्विवर्ही ।
 अक्रः । उराणः । स्तियानाम् । स्तिपाः । जवारु । जरुधम् ।

(१) गन्धयति । इत्यधिकमत्र पुस्तकान्तरे ॥ (२) हरयाणः । इति पुस्तकान्तरपाठः ॥

(३) अग्रः । अमः । इत्यधिकौ कचित् पुस्तकान्तरे ॥

कुलिशः । तुञ्जः । बर्हिणा । ततनुष्टिम् । इलीविशः । क्रियेधाः ।
भूमिः । विष्पितः । तुरीपम् । रास्पिनः । ऋज्जतिः । ऋजुनीती ।
प्रतदस्त्र । हिनोत चोष्कूयमाणः । चोष्कूयते । सुसत् । दिविष्टिषु
दूतः । जिन्वति । अमत्रः । ऋचौषमः । अनर्शरातिम् । अनर्वा ।
असाप्ति । गलदया जलहवः । बकुरः । बेकनाटान् । अभिधेतन ।
अंहुरः । वतः । वातायम् । चाकन् । रथर्यति । असक्राम् ।
आधवः । अनवव्रवः । सदान्वे । शिरिम्बिठः । पराशरः । क्रिविर्दती ।
करुळती । दनः । शरासः । इदं युः । कौकटेषु । बुन्दः । वृन्दम् । किः ।
उत्तम् । ऋबौसमवौसमिति पञ्चविंशच्छतं पदानि ॥ ३ ॥

जहाससि माशुशुक्षणिस्त्रीणि ॥ ३ ॥

॥ इति नैघण्टुके चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ पञ्चमाध्यायारम्भः ॥

—*—

अग्निः । जातवेदाः । वैश्वानरः । इति त्रीणि पदानि ॥ १ ॥
द्रविणोदाः । इध्मः । तनूनपात् । नराशंसः । इळः । बर्हिः ।
हारः । उषासानक्ता । दैव्याहोतारा । तिस्रो देवीः । त्वष्टा ।
वनस्पतिः । स्वाहाकृतय इति त्रयोदश पदानि ॥ २ ॥

अश्वः । शकुनिः । मण्डूकाः । अक्षाः । ग्रावाणः । नाराशंसः (१) ।
रथः । दुन्दुभिः । इषुधिः । हस्तत्रः । अभीशवः । धनुः । ज्या । इषुः । अश्व
जनी । उलूखलम् । वृषभः । द्रुघणः । पितुः । नद्यः । आपः । ओषधयः ।

(१) नराशंसः । इति पुस्तकान्तर पाठः ॥

रात्रिः । अरुण्यानी । अद्वा । पृथिवी । अम्बा । अम्नायी । उलूखल
सुसले । हविर्धाने । द्यावापृथिवी । विपाटकुतुद्री । आनी । शुना
सीरौ । देवीजोष्ट्री । देवीजर्जा हुतीति षट्त्रिंशत्पदानि ॥ ३ ॥

वायुः । वरुणः । रुद्रः । इन्द्रः । पर्जन्यः । बृहस्पतिः । ब्रह्मणस्पतिः ।
क्षेत्रस्थपतिः । वास्तोष्पतिः । वाचस्पतिः । अपानपात् । यमः । मित्रः ।
काः । सरस्वान् । विश्वकर्मा । तार्क्ष्यः । मन्युः । दधिक्षाः । सविता ।
त्वष्टा । वातः । अग्निः । वेनः । असुनीतिः । ऋतः । इन्द्रुः । प्रजापतिः ।
अहिः । अहिर्बुध्नः । सुपर्णः । पुरुखा । इति हात्रिंशत्पदानि ॥ ४ ॥

श्येनः । सोमः । चन्द्रमाः । मृत्युः । विश्वानरः । धाता ।
विधाता । मरुतः । रुद्राः । ऋभवः । अङ्गिरसः । पितरः । अश्व-
र्वाणः । भृगवः । (१) आप्त्याः । अदितिः । सरमा । सरस्वती ।
वाक् । अलुमतिः । राका । सिनीवाली । कुहूः । यमी । उर्वशी ।
पृथिवी । इन्द्राणी । गौरौ । गौः । धेनुः । अघ्न्या । पथ्या । स्वस्तिः ।
उषाः । इक्का । रोदसी । इति षट्त्रिंशत्पदानि ॥ ५ ॥

अश्विनौ । उषाः । सूर्या । वृषाकपायी । सरण्युः । त्वष्टा । सविता ।
भगः । सूर्यः । पूषा । विष्णुः । विश्वानरः । वरुणः । केशी । केशिनः ।
वृषाकपिः । यमः । अनङ्कपात् । पृथिवी । समुद्रः । अथर्वा । मनुः ।
दध्यङ् । आदित्याः । सप्तऋषयः । देवाः । विश्वेदेवाः । साध्याः ।
वसवः । वाजिनः । देवपत्न्यो देवपत्न्य इत्येकत्रिंशत्पदानि ॥ ६ ॥

अग्निर्द्रविणोदा अश्वो वायुः श्येनोऽश्विनौ षट् ॥ ६ ॥

इति नैषण्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ नैषण्टकं समाप्तम् ॥

॥ अथ निघण्टोः शब्दानुक्रमणिका ॥

— * —

पृष्ठादि	श्रु	अकारादयः	विषयः	श्रु	श्रु	अकारादयः	विषयः
४	३	अक्राः	पदनाम	४	२	अथर्युम्	पदनाम
१	११	अक्षरम्	वाङ्नाम	५	६	अथर्वाः	"
१	१२	अक्षरः	उदकनाम	५	५	अथर्वाणः	"
१	१२	अक्षरा	"	४	१	अझ सत्	"
२	१४	अगन्	गतिकर्मा	१	३	अध्वरम्	अन्तरिक्षनाम
२	१७	अगमन्	संग्रामनाम	३	१७	अध्वरः	यज्ञनाम
२	२४	अघशंसः	स्तेननाम	४	२	अन्धः	पदनाम
४	२	अच्छ	पदनाम	२	७	अन्धः	अज्ञनाम
२	१४	अचति	गतिकर्मा	२	१६	अन्तमानाम्	अन्तिकनाम
३	११	अचक्ष्म	पश्यतिकर्मा	१	१२	अन्नम्	उदकनाम
५	६	अजएकपात्	पदनाम	१	३	अन्तरिक्षम्	अन्तरिक्षनाम
२	१४	अजगमन्	गतिकर्मा	२	३	अनवः	मनुष्यनाम
२	१७	अज्म	संग्रामनाम	३	८	अनभिश्स्ताः	प्रशस्यनाम
३	४	अज्म	गृहनाम	३	८	अनभिश्क्तिः	"
२	१५	अजराः	क्षिप्रनाम	३	८	अनवद्यः	"
२	५	अण्व्यः	अङ्गुलिनाम	४	३	अनर्वा	पदनाम
२	२०	अत्कः	वज्रनाम	४	३	अनवायम्	"
२	१४	अतति	गतिकर्मा	४	३	अनवव्रवः	"
२	१६	अतमौके	अन्तिकनाम	४	३	अनर्शरातिम्	"
१	१४	अत्यः	अश्वनाम	१	१२	अपः	उदकनाम
२	५	अथयः	अङ्गुलिनाम	२	१	अपः	कर्मनाम
२	१४	अथर्यति	गतिकर्मा	२	२	अपत्यम्	अपत्यनाम
२	५	अथर्याः	अङ्गुलिनाम	४	३	अप्रतिस्कृतः	पदनाम
२	५	अथर्यवः	"	२	१	अप्रः	कर्मनाम

श्रुति	पु	कारादयः	विषयः	श्रुति	पु	कारादयः	विषयः
३	७	अप्रः	रूपनाम	१	१२	अर्थः	उदकनाम
४	३	अप्रः	पदनाम	५	३	अरस्थानि	पदनाम
२	२	अप्रः	अपत्यनाम	२	१४	अर्हति	गतिकर्मा
२	४	अप्रधाना	वाङ्मनाम	२	१८	अर्हति	वधकर्मा
३	७	अप्रः	रूपनाम	२	१८	अर्हयति	"
१	१०	अभ्रम्	मेघनाम	३	२	अर्भकः	कृष्यनाम
३	३	अभवः	महन्नाम	३	२८	अर्भकम्	उत्तराणिपदानि
१	१२	अभवम्	उदकनाम	२	२२	अर्थः	ईश्वरनाम
१	१०	अभवम्	मेघनाम	१	१२	अररिदानि	उदकनाम
४	३	अभ्यर्हयज्वा	पदनाम	१	१२	अररिन्दानि	"
३	२१	अभ्यर्ष	अध्यषणाकर्मा	२	१४	अरर्षति	गतिकर्मा
४	३	अमः	पदनाम	३	२	अल्पम्	कृष्यनाम
३	७	अमतिः	रूपनाम	३	२	अल्पः	"
४	३	अमतिः	पदनाम	२	१४	अलर्षति	गतिकर्मा
१	१२	अम्भः	उदकनाम	२	१४	अलर्षति	"
४	३	अमत्रः	पदनाम	२	७	अवः	अन्ननाम
१	३	अम्बरम्	अन्तरिक्षनाम	३	११	अवचाकशत्	पश्यतिकर्मा
२	१६	अम्बरम्	अन्तिकनाम	३	२३	अवटः	कूपनाम
४	३	अम्यक्	पदनाम	३	२३	अवतः	"
४	३	अमवान्	"	२	१४	अवति	गतिकर्मा
३	३०	अम्भसी	द्यावापृथिवी	२	१८	अवतिरति	वधकर्मा
१	२	अयः	हिरण्यनाम	२	१४	अवते	गतिकर्मा
२	१४	अयते	गतिकर्मा	१	१३	अवत्यः	नदीनाम
२	१४	अयधुः	"	१	१३	अवनयः	"
२	३	अयवः	मनुष्यनाम	२	५	अवनयः	अङ्गुलिनाम
२	७	अर्कः	अन्ननाम	१	१	अवनिः	पृथिवीनाम
२	२०	अर्कः	वज्रनाम	१	१४	अव्यथयः	अश्वनाम
४	३	अर्कः	पदनाम	२	१६	अवमे	अन्तिकनाम
३	१४	अर्चति	अर्चतिकर्मा	२	६	अववेति	कान्तिकर्मा

प्रथमः	सं	अकारादयः	विषयः	प्रथमः	सं	अकारादयः	विषयः
२	१८	अशत्	व्याप्तिकर्मा	१	१२	अर्णाः	उदकनाम
१	१०	अशनः	मेघनाम	१	१३	अर्णाः	नदीनाम
१	१०	अश्वः	"	१	१४	अर्वा	अश्वनाम
५	३	अश्वः	पदनाम	२	१६	अर्वाके	अन्तिकनाम
४	३	असक्राम्	"	२	१६	अर्वाकः	"
३	४	अस्तम्	गृहनाम	४	३	अलाट्णः	पदनाम
४	२	अंसत्वम्	पदनाम	१	१०	अशना	मेघनाम
४	१	अस्य	"	१	१४	अश्वाः	अश्वनाम
४	२	असञ्चत्ती	"	५	३	अश्वाजनी	पदनाम
१	८	अहना	उषोनाम	४	१	अस्थाः	,
४	२	अहयाणः	पदनाम	४	३	असामि	"
५	३	अक्षाः	"	३	२०	अक्ताय	पुराणनाम
५	३	अम्नायी	"	१	१२	अचित्तम्	उदकनाम
२	११	अघ्या	गोनाम	५	१	अग्निः	पदनाम
५	५	अघ्या	पदनाम	५	४	अग्निः	"
१	१५	अजाः पूणः	आदिष्टोपयी	३	१३	अग्निर्नद्ये	उपसा
			जनानि	४	३	अग्रिया	पदनाम
२	१५	अजाः	क्षिप्रनाम	५	५	अङ्गिरसः	"
३	१०	अक्षा	सत्यनाम	२	१५	अजिरम्	क्षिप्रनाम
३	१५	अक्षातयः	मेधाविनाम	१	१३	अजिरा	नदीनाम
१	३	अध्वा	अन्तरिक्षनाम	२	११	अदितिः	गोनाम
५	४	अपान्नपात्	पदनाम	१	१	अदितिः	पृथिवीनाम
४	१	अप्रायुवः	"	१	११	अदितिः	वाङ्नाम
३	३०	अपारे अपारे	द्यावापृथिवी-	२	११	अदितिः	गोनाम
५	३	अप्वा	पदनाम	४	१	अदितिः	पदनाम
३	४	अमा	गृहनाम	५	५	अदितिः	"
३	२८	अथा	उत्तराणि प०	१	१०	अद्रिः	मेघनाम
४	३	अस्वा	पदनाम	३	३०	अदिती	द्यावापृथिवी

सं. क्र.	सं. क्र.	अकारादयः	विषयः	सं. क्र.	सं. क्र.	अकारादयः	विषयः
४	२	अधिगुः	पदनाम	१	७	अक्तुः	रात्रिनाम
२	१४	अनिति	गतिकर्मा	१	१३	अग्रुवः	नदीनाम
३	८	अनिन्द्यः	प्रशस्यनाम	२	५	अग्रुवः	अङ्गुलिनाम
३	८	अभिख्या	प्रज्ञानाम	३	३	अद्भुतम्	महन्नाम
४	३	अभिधेतन	पदनाम	३	३	अद्भुतः	"
४	३	अमिनः	"	१	११	अनुष्टुप्	वाङ्नाम
३	३	अम्भृणः	महन्नाम	५	५	अनुमतिः	पदनाम
१	१७	अर्चिः	ज्वलतोनाम	३	७	अपुः	रूपनाम
२	८	अविष्यन्	अतिकर्मा	३	७	अप्सुः	"
५	६	अश्विनौ	पदनाम	१	१२	अम्बु	उदकनाम
१	७	असिक्ती	रात्रिनाम	१	१२	अम्बुः	"
४	३	असिन्वती	पदनाम	२	१४	अयुधुः	गतिकर्मा
१	१०	अहिः	मेघनाम	२	१४	अयुधुः	"
१	१२	अहिः	उदकनाम	३	७	अर्जुनम्	रूपनाम
५	४	अहिः	पदनाम	१	८	अर्जुनी	उधोनाम
५	४	अहिर्बुध्नः	"	१	१५	अरुण्योगा	आदिष्टोपयो-
४	३	अजीगः	"			व उषसाम्	जनानि
३	२५	अपोच्यम्	निर्णोऽतान्त- हितनाम	३	७	अरुषम्	रूपनाम
२	१७	अभीके	संशामनाम	१	१४	अरुषः	अश्वनाम
३	२८	अभीके	उत्तराणिप०	२	१४	अरुषति	गतिकर्मा
१	५	अभीशवः	रश्मिनाम	१	८	अरुषति	"
२	५	अभीशवः	अङ्गुलिनाम	२	१८	अरुषी	उधोनाम
५	३	अभीशवः	पदनाम	३	८	अश्रुते	व्याप्तिकर्मा
२	४	अभीशू	वाङ्नाम	५	४	असुः	प्रज्ञानाम
४	३	अमीवा	पदनाम	१	१०	असुनीतिः	पदनाम
२	११	अही	गोनाम	४	३	असुरः	मेघनाम
३	३०	अही	द्यावापृथिवी	४	१	अंहुरः	पदनाम
						अकूपारस्य	"

अक्षरार्थः	खण्डः	आकारादयः	विषयः	अक्षरार्थः	खण्डः	आकारादयः	विषयः
ॐ	३	अमूरः	"	२	१८	आष्टः	"
१	८	अरुषी	उषीनाम	२	१८	आष्ठ	"
४	३	असूँसूँ	पदनाम	२	१८	आष्ठः	"
१	२	असृतम्	हिरण्यनाम	४	१	आहनसः	पदनाम
१	१२	असृतम्	उदकनाम	४	२	आहनः	"
४	३	अस्तुधोयुः	पदनाम	२	१७	आहवे	संग्रामनाम
३	८	अनेद्यः	प्रशस्यनाम	१	३	आकाशम्	अन्तरिक्षनाम
३	८	अनेमा	"	२	१८	आचाणः	व्याप्तिकर्मा
४	३	अस्ते	पदनाम	१	६	आताः	दिङ्नाम
३	८	अस्तिमा	प्रशस्यनाम	५	५	आत्थाः	पदनाम
		आ		२	१८	आपानः	व्याप्तिकर्मा
४	२	आ	पदनाम	४	२	आपान्तमन्युः	पदनाम
२	१७	आकन्दे	संग्रामनाम	१	६	आशाः	दिङ्नाम
२	१८	आखण्डल	बधकर्मा	४	३	आशाभ्यः	पदनाम
२	१४	आगनीगन्ति	गतिकर्मा	१	६	आष्ठाः	दिङ्नाम
३	११	आचक्ष्म	पश्यतिकर्मा	२	१६	आसा	अन्तिकनाम
२	६	आचके	कान्तिकर्मा	२	१६	आसात्	"
४	३	आधवः	पदनाम	३	१२	आकिम्	सर्वपदसमान्ता
२	१८	आनट्	व्याप्तिकर्मा	२	१८	आतिरत्	बधकर्मा
२	१८	आनशे	"	५	६	आदित्याः	पदनाम
१	३	आपः	अन्तरिक्षनाम	४	२	आरितः	"
१	१२	आपः	उदकनाम	३	२१	आशिषः	अष्ट्येषणाकर्मा
५	३	आपः	पदनाम	३	१२	आहिकम्	सर्वपदसमा०
२	४	आयती	बाहुनाम	३	१२	आकीम्	"
२	३	आयवः	मनुष्यनाम	५	३	आर्त्ता	पदनाम
२	१४	आर्पति	गतिकर्मा	४	३	आशीः	"
१	१२	आवयाः	उदकनाम	४	३	आनुषक्	"
२	८	आवयति	अन्तिकर्मा	४	३	आयुः	अन्ननाम
२	१८	आष्ट	व्याप्तिकर्मा	२	७		

अक्षरं	सं.	आकारादयः	विषयः	अक्षरं	सं.	इकारादयः	विषयः
१	१२	आयुधानि	उदकनाम	२	१४	इयति	गतिकर्मा
१	१४	आयुः	अश्वनाम	२	१४	इषति	"
२	१५	आशु	क्षिप्रनाम	२	७	इषम्	अन्ननाम
२	१५	आशुः	"	१	१	इष्ठा	पृथिवीनाम
४	३	आशुशुचिणिः	पदनाम	१	११	इष्ठा	वाङ्नाम
४	२	आङ्गूषः	"	२	७	इष्ठा	अन्ननाम
३	१२	आक्षतम्	सर्वपदसमाज्ञायः	२	११	इष्ठा	गोनाम
४	२	आवृष्टिः	"	५	५	इष्ठा	पदनाम
२	१६	आके	अन्तिकनाम	३	१०	इत्या	सत्यनाम
३	२६	आके	दूरनाम	४	२	इत्या	पदनाम
३	१५	आकेनियः	मेधाविनाम	३	२८	इदा	नवीननाम
३	२६	आरे	दूरनाम	३	२८	इदानीम्	"
२	१७	आजी	संग्रामनाम	५	५	इन्द्राणी	पदनाम
२	१७	आणी	"	२	७	इरा	अन्ननाम
५	२	इकः	पदनाम	१	१३	इरावत्यः	नदीनाम
१	१२	इदम्	उदकनाम	२	१०	इन्द्रियम्	धननाम
३	१३	इदमिव	उपमा	३	१७	इष्टिः	यज्ञनाम
३	१३	इदंयथा	"	४	१	इष्मिणः	पदनाम
४	३	इदंयुः	पदनाम	४	१	इषिरः	"
५	२	इधमः	"	४	१	इषिरेण	"
२	२२	इनइनः	ईश्वरनाम	४	३	इलीविशः	"
५	४	इन्द्रः	पदनाम	१	१२	इन्दुः	उदकनाम
२	१४	इन्वति	गतिकर्मा	३	१७	इन्दुः	यज्ञनाम
२	१८	इन्वति	व्याप्तिकर्मा	५	४	इन्दुः	पदनाम
२	१४	इयचति	गतिकर्मा	५	३	इषुः	"
३	५	इरज्यति	परिचरणकर्मा	५	३	इषुधिः	"
२	२१	इरज्यति	प्रेष्यकर्मा	३	१८	इषुध्यति	याच्ञाकर्मा
३	१५	इरध्यति	परिचरणकर्मा	२	१४	ईङ्खते	गतिकर्मा
				१	१२	ईम्	उदकनाम

अध्यायः	श्रुतिः	इकारादयः	विषयः	अध्यायः	श्रुतिः	उकारादयः	विषयः
४	२	ईम्	पदनाम	४	३	उराणः	पदनाम
३	१८	ईमहे	याच्चाकर्मा	२	११	उस्वा	गोनाम
२	६	ईयति	कान्तिकर्मा	१	५	उस्वाः	रश्मिनाम
२	१४	ईषति	गतिकर्मा	५	५	उषाः	पदनाम
४	१	ईर्मान्तासः	पदनाम	५	६	उषाः	"
४	३	ईजे	"	५	२	उषासानक्ता	"
२	१४	ईर्ते	गतिकर्मा	३	३	उक्षितः	महन्नाम
		उ		२	११	उस्त्रिया	गोनाम
३	८	उक्थः	प्रशस्यनाम	२	६	उश्निक्	कान्तिकर्मा
३	२३	उत्सः	कूपनाम	३	१५	उश्निजः	मेधाविनाम
१	१२	उदकम्	उदकनाम	१	१	उर्वी	पृथिवीनाम
३	२८	उपजिह्विका	उत्तराणिपदानि	३	३०	उर्वी	द्यावापृथिवी
१	११	उपष्टिः	वाङ्नाम	३	१	उरु	बहुनाम
२	१६	उपमे	अन्तिकनाम	५	३	उलूखलम्	पदनाम
१	१०	उपरः	मेघनाम	५	३	उलूखलमुसले	"
१	६	उपराः	दिङ्नाम	१	१४	उच्चैःश्रवसः	पश्वनाम
१	१०	उपलः	मेघनाम			ज	
४	३	उपलप्रक्षिणी	पदनाम	१	७	जधः	रात्रिनाम
४	३	उपसि	"	२	७	जक्	अन्ननाम
१	१३	उर्व्यः	नदीनाम	१	१३	जर्जखत्यः	नदीनाम
४	२	उर्वशी	पदनाम	३	२८	जर्दरम्	उत्तराणिपदानि
५	५	उर्वशी	"	१	८	जर्म्यः	उषीनाम
४	३	उत्त्वम्	"	१	७	जर्म्या	रात्रिनाम
२	६	उशत्	कान्तिकर्मा	४	२	जतिः	पदनाम
२	६	उश्मसि	"			कृ	
३	३	उचाः	महन्नाम	१	११	कृक्	वाङ्नाम
१	७	उधा	रात्रिनाम	२	१४	कृच्छति	गतिकर्मा
२	१६	उपाके	अन्तिकनाम	३	५	कृच्छति	परिवरणकर्मा

पृष्ठ	श्लो	आकारादयः	विषयः	पृष्ठ	श्लो	एकारादयः	विषयः
४	३	ऋञ्जतिः	पदनाम	४	३	ऋदूप्ते	"
२	१४	ऋणक्ति	गतिकर्मा	२	१४	ऋणोति	गतिकर्मा
२	१६	ऋणक्ति	वधकर्मा	३	५	ऋधोति	परिचरणकर्मा
२	१४	ऋणक्ति	गतिकर्मा			ए	
२	१४	ऋणक्ति	"	२	१४	एजति	गतिकर्मा
३	५	ऋणद्धि	परिचरणकर्मा	१	१४	एतग्वः	अश्वनाम
१	१२	ऋतम्	उदकनाम	१	१४	एतग्वः	"
२	१०	ऋतम्	धननाम	४	३	एतहसू	पदनाम
३	१०	ऋतम्	सत्यनाम	१	१४	एतशः	अश्वनाम
५	४	ऋतः	पदनाम	४	२	एनम्	पदनाम
१	१२	ऋतस्ययोनिः	उदकनाम	१	१३	एन्यः	नदीनाम
४	१	ऋधक्	पदनाम	२	१३	एहः	क्रोधनाम
५	५	ऋभवः	"	३	२६	एना	उत्तराणिपदानि
३	२३	ऋश्यदात्	कूपनाम	४	२	एनाम्	पदनाम
५	६	ऋपयः	पदनाम	२	१४	एति	गतिकर्मा
३	३	ऋष्वः	महन्नाम	४	१	एरिरे	पदनाम
३	२	ऋहत्	ऋस्वनाम			ओ	
३	२	ऋहन्	"	१	१२	ओजः	उदकनाम
३	२	ऋहम्	"	२	६	ओजः	बलनाम
३	२६	ऋचाः	उत्तराणिपदानि	१	८	ओदती	उषोनाम
२	१४	ऋणाति	गतिकर्मा	१	१०	ओदनम्	मेघनाम
१	१३	ऋतावर्यः	नदीनाम	१	१०	ओदनः	"
४	३	ऋवीषमः	पदनाम	४	३	ओमना	पदनाम
४	३	ऋवीसम्	"	५	३	ओषधयः	"
४	३	ऋजुनीती	"	२	१५	ओषम्	क्षिप्रनाम
३	२	ऋधुकः	ऋस्वनाम	४	३	ओमासः	पदनाम
३	१५	ऋभुः	मेधाविनाम	३	२०	ओख्यौ	द्यावापृथिवी
३	३	ऋभुचाः	महन्नाम			औ	
४	३	ऋदूदरः	पदनाम	१	१४	औचैः यवसः	अश्वनाम

अध्यायः	खण्डः	क कारादयः	विषयः	अध्यायः	खण्डः	क कारादयः	विषयः
		क		२	१	कर्बुरम्	"
५	४	कः	पदनाम	२	४	करस्नौ	वाङ्नाम
१	६	ककुभः	दिङ्नाम	२	१	करांसि	कर्मनाम
२	५	कच्याः	अङ्गुलिनाम	२	१	करिकृत्	"
३	३	ककुष्ठः	महन्नाम	४	३	करुव्सी	पदनाम
३	३	ककुहस्तिना	"	३	१४	कल्पते	अर्चतिकर्मा
२	१४	कटति	गतिकर्मा	१	१७	कल्मलीकिन	ज्वलतोनाम
२	१४	कणति	"	२	१४	कवते	गतिकर्मा
३	१५	कण्वः	मेधाविनाम	१	१२	कवन्धम्	उदकनाम
२	१८	कण्वति	बधकर्मा	३	१५	कविः	मेधाविनाम
४	३	कलयम्	पदनाम	१	१२	कशः	उदकनाम
१	२	कनकम्	हिरण्यनाम	१	११	कशा	वाङ्नाम
२	६	कनति	कान्तिकर्मा	१	१२	क्षत्रम्	उदकनाम
४	३	कपना	पदनाम	२	१०	क्षत्रम्	धननाम
१	१२	कवन्धम्	उदकनाम	१	१२	क्षत्र	उदकनाम
१	१२	कम्	"	२	७	क्षत्र	अन्ननाम
३	६	कम्	सुखनाम	२	७	क्षत्रः	"
२	१२	कम्पते	क्रुध्यतिकर्मा	१	१२	क्षपः	उदकनाम
२	१	करणम्	कर्मनाम	२	२१	क्षपति	ऐश्वर्यकर्मा
२	१	करणानि	"	१	७	क्षपा	रात्रिनाम
३	२३	कर्त्तः	कूपनाम	१	१	क्षमः	पृथिवीनाम
२	१	क्रतुः	कर्मनाम	१	१	क्षमा	"
३	८	क्रतुः	प्रज्ञानाम	१	१२	क्षमन्	उदकनाम
२	१	करन्ति	कर्मनाम	२	१४	कसति	गतिकर्मा
२	१	करन्ती	"	१	११	काकुत्	वाङ्नाम
२	१	कर्त्तव्ये	"	४	२	काकुदम्	पदनाम
२	१	कर्त्तुम्	"	१	११	काकुप्	वाङ्नाम
२	१	कर्त्तव्यम्	"	१	२	काञ्चनम्	हिरण्यनाम

अक्षरः	सं.	ककारादयः	विषयः	अक्षरः	सं.	ककारादयः	विषयः
३	२३	काटः	कूपनाम	२	१४	क्षिपन्ति	गतिकर्मा
४	२	काण्डुका	पदनाम	२	४	क्षिपन्ती	बाहुनाम
४	२	काणुका	"	२	४	क्षिपस्तौ	"
२	२३	कातुः	कूपनाम	२	१४	क्षिम्पति	गतिकर्मा
२	६	कानिपत्	कान्तिकर्मा	२	१४	क्षिपति	"
४	१	कायमानः	पदनाम	२	२१	क्षिपति	ऐश्वर्यकर्मा
४	१	क्राणः	"	४	३	कीकटेषु	पदनाम
३	१६	कारुः	स्तोत्रनाम	३	१६	कीरिः	स्तोत्रनाम
३	२३	कारोतरः	कूपनाम	२	७	कीलालम्	अन्ननाम
३	२३	कारोतरात्	"	१	१२	चौरम्	उदकनाम
२	१४	कालयति	गतिकर्मा	३	१५	कीस्तासः	मेधाविनाम
४	३	काशिः	पदनाम	४	२	कुटस्य	पदनाम
१	१	चा	पृथिवीनाम	४	३	कुणारम्	"
१	६	काठाः	दिशोनाम	३	८	कुतुः	प्रज्ञानाम
१	१	क्ष्मा	पृथिवीनाम	२	२०	कुत्सः	वज्रनाम
१	१	चाम	"	३	१८	कुरवः	ऋत्विङनाम
१	१	चामः	"	४	१	कुरुतन	पदनाम
१	१	चामा	"	१	१३	कुल्याः	नदीनाम
४	३	किः	पदनाम	२	२०	कुलिशः	वज्रनाम
४	३	किमीदिने	"	४	३	कुलिशः	पदनाम
४	३	किवेधाः	"	३	२३	कुशयः	कूपनाम
१	५	किरणाः	रश्मिनाम	३	१	कुवित्	बाहुनाम
३	२३	क्रिविः	कूपनाम	२	७	क्षु	अन्ननाम
४	३	क्रिविर्दती	पदनाम	२	७	क्षुत्	"
२	१४	क्षिणीति	गतिकर्मा	२	७	क्षुमत्	"
१	१	क्षितिः	पृथिवीनाम	४	२	क्षुम्पम्	पदनाम
२	३	क्षितयः	मनुष्यनाम	२	१४	क्षुम्पति	गतिकर्मा
२	५	क्षिपः	अङ्गुलिनाम	३	२	क्षुल्लकः	ह्रस्वनाम
२	४	क्षिपती	बाहुनाम	५	५	क्षुल्लूः	पदनाम

वि. संख्या	पृ. संख्या	ककारादयः	विषयः	वि. संख्या	पृ. संख्या	ककारादयः	विषयः
३	२३	कूपः	कूपनाम	१	१०	कीशः	मेषनाम
२	१८	कृण्वत्ति	बधकर्मा	४	३	क्षीणस्य	पदनाम
२	१८	कृण्वत्ति	"	१	१	क्षीणिः	पृथिवीनाम
३	४	कृत्तिः	गृहनाम	१	१	क्षीणी	"
४	२	कृत्तिः	पदनाम	३	३०	क्षीणी	द्यावापृथिवी
२	१	कृत्वी	कर्मनाम	१	१२	क्षोदः	उदकनाम
३	४	कृदरः	गृहनाम	२	१४	क्षोदति	गतिकर्मा
३	२८	कृदरम्	उत्तरपदनाम	४	२	क्षीरपाणः	पदनाम
३	२	कृधुः	ह्रस्वनाम			ख	
३	२	कृधुकः	"	१	१७	खजे	संग्रामनाम
२	१८	कृन्तति	बधकर्मा	१	१७	खले	"
३	१४	कृपयति	अर्चतिकर्मा	१	१३	खाः	नदीनाम
३	१६	कृपयुः	स्तोत्रनाम	३	२३	खातः	कूपनाम
३	१४	कृपा	अर्चतिकर्मा	१	१३	खादोअर्णाः	नदीनाम
३	१४	कृपायति	"	१	५	खेदयः	रश्मिनाम
१	१२	कृपीटम्	उदकनाम			ग	
३	२३	कृविः	कूपनाम	१	११	गङ्गुः	वाङ्नाम
१	२	कृशनम्	हिरण्यनाम	१	११	गणः	"
३	७	कृशनम्	रूपनाम	१	११	गणा	"
२	३	कृष्टयः	मनुष्यनाम	४	२	गध्यम्	पदनाम
३	८	केतः	प्रज्ञानाम	४	२	गध्यति	"
३	८	केतुः	"	४	२	गधिता	"
३	१५	केनिपः	मेधाविनाम	२	१४	गन्ति	गतिकर्मा
४	२	केपयः	पदनाम	१	५	गभस्तयः	रश्मिनाम
३	२३	केवटः	कूपनाम	२	५	गभस्तयः	अङ्गुलिनाम
५	६	केशी	पदनाम	२	४	गभस्ती	वाङ्नाम
५	६	केशिनः	"	१	१२	गभीरम्	उदकनाम
५	४	क्षेत्रस्यपतिः	"	३	३	गभीरः	महन्नाम

पञ्चादि	पाठः	गकारादयः	विषयः	पञ्चादि	पाठः	गकारादयः	विषयः
१	११	गभीरा	वाङ्नाम	१	५	गावः	रश्मिनाम
३	३०	गभीरे	द्यावापृथिवी	१	१०	गिरिः	मेघनाम
२	१४	गमति	गतिकर्मा	४	३	गिर्वणसे	पदनाम
१	१२	गम्भरम्	उदकनाम	१	११	गौः	वाङ्नाम
१	१२	गम्भीरम्	"	३	१४	गूर्द्धयति	अर्चतिकर्मा
१	११	गम्भीरा	वाङ्नाम	३	१४	गृणाति	"
३	३०	गम्भीरे	द्यावापृथिवी	३	१५	गृत्तः	मेधाविनाम
२	२	गयः	अपत्यनाम	१	१०	गोत्रः	मेघनाम
२	१०	गयः	धननाम	१	१	गोत्रा	पृथिवीनाम
३	४	गयः	गृहनाम	१	१	गौः	"
३	४	गर्त्तः	"	१	४	गौः	साधारणनाम
१	११	गल्दः	वाङ्नाम	१	११	गौः	वाङ्नाम
१	११	गल्दः	"	३	१६	गौः	स्तोत्रनाम
१	११	गल्दा	"	४	१	गौः	पदनाम
४	३	गल्दया	पदनाम	५	५	गौः	"
२	१४	गवते	गतिकर्मा	१	११	गौरी	वाङ्नाम
१	१२	गङ्गरम्	उदकनाम	५	५	गौरी	पदनाम
१	१२	गङ्गनम्	"			घ	
२	१४	गाति	गतिकर्मा	१	६	घर्मः	अहर्नाम
१	१	गातुः	पृथिवीनाम	३	१७	घर्म	यज्ञनाम
४	१	गातुः	पदनाम	१	६	घ्रंसः	अहर्नाम
१	११	गाथा	वाङ्नाम	१	६	घृणः	"
१	११	गान्धर्वी	"	१	६	घृणिः	"
१	११	गना	"	१	१७	घृणिः	ज्वलतीनाम
३	२६	गनाः	उत्तरपदनाम	२	१३	घृणिः	क्रोधनाम
१	१	गमा	पृथिवीनाम	१	१२	घृतम्	उदकनाम
३	१४	गायति	अर्चतिकर्मा	३	३०	घृतवती	द्यावापृथिवी
१	१०	ग्रावा	मेघनाम	१	७	घृताक्षी	रात्रिनाम
५	३	ग्रावाणः	पदनाम	१	११	घोषः	वाङ्नाम

क्रमादि	खण्ड	चकारादयः	विषयः	क्रमादि	खण्ड	चकारादयः	विषयः
		च					
२	६	चकमानः	कान्तिकर्मा	४	२	चित्	पदनाम
२	१	चक्रत्	कर्मनाम	३	८	चित्तम्	प्रज्ञानाम
३	११	चक्ष्म	पश्यतिकर्मा	१	८	चित्रामघा	उषोनाम
२	१	चक्रतुः	कर्मनाम	३	८	चेतः	प्रज्ञानाम
२	१४	चतति	गतिकर्मा	४	३	चोष्कूयते	पदनाम
३	१३	चतुरस्रिदद नात् }	उपमानाम	४	३	चोष्कूयमानः	"
१	२	चन्द्रम्	हिरण्यनाम	२	८	चौलम्	बलनाम
५	५	चन्द्रमाः	पदनाम			छ	
४	३	चनः	"	३	१४	छदयति	अचतिकर्मा
३	११	चना	पश्यतिकर्मा	३	१४	छदयते	"
३	३०	चम्बौ	द्यावापृथिवी	३	१४	छन्दति	"
१	१०	चमसः	मेघनाम	२	६	छन्तसत्	कान्तिकर्मा
४	१	चयसे	पदनाम	३	१६	छन्दः	स्तोत्रनाम
४	१	चयनः	"	३	४	छदिः	गृहनाम
२	४	चयाना	बाहुनाम	३	४	छर्दिः	"
२	१४	चयते	गतिकर्मा	३	४	छाया	"
४	२	चर्षणिः	पदनाम			ज	
२	३	चर्षणयः	मनुष्यनाम	२	३	जगतः	मनुष्यनाम
१	१०	चरुः	मेघनाम	२	१४	जगति	गतिकर्मा
३	११	चष्टे	पश्यतिकर्मा	२	११	जगती	गोनाम
४	३	चाकन्	पदनाम	२	१४	जगन्ति	गतिकर्मा
२	६	चाकनत्	कान्तिकर्मा	२	१४	जङ्गन्ति	"
३	११	चाकनत्	पश्यतिकर्मा	२	१४	जगाति	"
३	११	चाक्ष्म	"	२	१४	जगायात्	"
३	११	चिक्यत्	"	१	१७	जञ्जणाभवन्	ज्वलतोनाम
३	११	चिक्यम्	"	४	३	जञ्जतीः	पदनाम
				४	१	जठरे	"
				२	३	जन्तवः	मनुष्यनाम

अक्षरः	सं.	अकारादयः	विषयः	अक्षरः	सं.	अकारादयः	विषयः
१	१२	जन्म	उदकनाम	४	१	जामि	पदनाम
१	१७	जनत्	ज्वलतीनाम	५	३	ज्या	"
२	१४	जमति	गतिकर्मा	२	१४	जायति	गतिकर्मा
२	१४	जयति	"	३	१३	जारभ्राभ-	उपमानाम
३	१४	जरति	अर्चतिकर्मा	गोमेषोभू- तोऽभियन्त्रय		गोमेषोभू-	
३	१४	जरते	"			तोऽभियन्त्रय	
४	१	जरते	पदनाम	४	३	जार यायि	पदनाम
३	१६	जरिता	स्त्रीटनाम	२	१४	जिगाति	गतिकर्मा
४	३	जरुथम्	पदनाम	२	१४	जिन्वति	"
२	१४	जयति	गतिकर्मा	४	३	जिन्वति	पदनाम
३	१४	जल्पति	अर्चतिकर्मा	२	१६	जिरा	अन्तिकनाम
१	१२	जलम्	उदकनाम	१	११	जिह्वा	बाह्नाम
१	१२	जलापम्	"	२	१५	जीराः	क्षिप्रनाम
३	६	जलाषम्	सुखनाम	२	६	जुषते	कान्तिकर्मा
४	३	जरुहवः	पदनाम	४	१	जुहुरे	पदनाम
२	१४	जवति	गतिकर्मा	२	१३	जूर्णिः	क्रोधनाम
४	३	जवारु	पदनाम	२	१५	जूर्णिः	क्षिप्रनाम
१	१२	जह्म	उदकनाम	४	३	जूर्णिः	पदनाम
४	१	जहा	पदनाम	२	१५	जूर्णीः	क्षिप्रनाम
२	१४	जसति	गतिकर्मा	२	१८	जूर्वति	बधकर्मा
४	१	जसुरिः	पदनाम	२	१४	जेहते	गतिकर्मा
२	२	जाः	अपत्यनाम	१	१६	ज्योतते	ज्वलतिकर्मा
१	२	जातरूपम्	हिरण्यनाम	४	२	जोषवाकम्	पदनाम
५	१	जातवेदाः	पदनाम	ड डौयते		ड	गतिकर्मा
१	१	उमा	पृथिवीनाम	२	१४	डौयते	
२	५	जामयः	अङ्गुलिनाम	त तकति		त	गतिकर्मा
१	१२	जामि	उदकनाम	२	१४	तकति	
१	१२	जामिः	"	२	२	तक्म	अपत्यनाम
१	१२	जामिवत्	"	३	२४	तक्का	स्तेननाम

अध्यायः	श्लो	तकारादयः	विषयः	अध्यायः	श्लो	तकारादयः	विषयः
२	१८	तवित्	बधकर्मा	२	८	तविषी	बलनाम
४	३	ततनुष्ठिम्	पदनाम	२	२४	तस्करः	स्तेननाम
२	१४	तत्सरति	गतिकर्मा	२	३	तस्थुषः	मनुष्यनाम
३	१३	तथा	उपमा	२	१५	ताजत्	क्षिप्रनाम
३	१३	तद्गुपः	"	२	१८	ताडि	बधकर्मा
३	१३	तद्वर्णः	"	३	२४	तापुः	स्तेननाम
३	१३	तद्वत्	"	३	७	ताम्रम्	रूपनाम
२	२	तनयम्	अपत्यनाम	३	१६	तामुः	स्तोत्रनाम
२	२	तनयः	"	१	१४	ताह्यः	प्रश्ननाम
२	१०	तना	धननाम	५	४	ताह्यः	पदनाम
५	२	तनूनपात्	पदनाम	२	२०	तिग्मम्	वज्रनाम
१	१७	तपः	ज्वलतीनाम	२	२०	तिग्मः	"
२	१३	तपुषी	क्रोधनाम	४	१	तितव	पदनाम
१	७	तमः	रात्रिनाम	३	२८	तिरः	उत्तरपदनाम
१	७	तमस्वती	"	३	२४	तिक्ता	स्तेननाम
२	१३	त्यजः	क्रोधनाम	३	२४	त्रिपुः	"
२	८	तरः	बलनाम	२	१५	त्रिषु	क्षिप्रनाम
२	१५	तरणिः	क्षिप्रकर्मा	३	२	त्रिषमः	दृक्नाम
१	१३	तरस्त्रयः	नदीनाम	५	२	तिस्रोदेवीः	पदनाम
४	२	तरुष्यति	पदनाम	२	२	तुक्	अपत्यनाम
२	१६	तलित्	अन्तिकनाम	३	३	तुच्चः	महद्नाम
२	८	तवः	बलनाम	१	१२	तुग्या	उदकनाम
३	२८	त्वः	उत्तरपदनाम	४	१	तुग्वनि	पदनाम
२	८	त्वचः	बलनाम	२	२०	तुजः	वज्रनाम
३	३	तवसः	महद्नाम	२	१५	तुज्यमानासः	क्षिप्रनाम
५	२	त्वष्टा	पदनाम	२	२०	तुञ्जः	वज्रनाम
५	४	त्वष्टा	"	४	३	तुञ्जः	पदनाम
५	६	त्वष्टा	"	३	२०	तुञ्जति	दानकर्मा
३	३	तविषः	महद्नाम	२	१४	तुरीयति	गतिकर्मा

अध्यायः	पङ्क्तिः	तकारादयः	विषयः	अध्यायः	पङ्क्तिः	तकारादयः	विषयः
४	३	तुरीयम्	पदनाम	४	२	तीदः	पदनाम
४	३	तुर्वणिः	"	१	१२	तीयम्	उदकनाम
२	१६	तुर्वशः	अन्तिकनाम	२	१५	तीयम्	क्षिप्रनाम
२	३	तुर्वशाः	मनुष्यनाम	४	२	तौरयाणः	पदनाम
३	१६	तुर्वशे	अन्तिकनाम			द	
३	१	तुवि	बहुनाम	२	८	दक्षः	बलनाम
४	१	तूताव	पदनाम	२	१४	दग्धि	याज्चाकर्मा
२	१५	तूतुजानः	क्षिप्रनाम	३	१८	दध्यति	गतिकर्मा
२	१५	तूतुजानासः	"	२	१४	दध्नोति	"
२	१५	तूतुजिः	"	१	१०	दक्षिः	मेघनाम
२	१५	तूतुजित्	"	१	२	दक्षम्	हिरण्यनाम
४	२	तूतुमाक्षपे	पदनाम	३	१८	दक्षि	याज्चाकर्मा
१	१२	तूयम्	उदकनाम	५	६	दध्यङ्	पदनाम
२	१५	तूयम्	क्षिप्रनाम	२	१४	दध्यति	गतिकर्मा
२	१५	तूर्णिः	"	१	१४	दधिका	अश्वनाम
२	१५	तूर्णि	"	१	१४	दधिकावा	"
४	२	तूर्णाशम्	पदनाम	५	४	दधिकाः	पदनाम
३	२४	तृका	स्तेननाम	४	३	दनः	"
२	८	तृक्षः	बलनाम	२	१४	दध्नोति	गतिकर्मा
२	१८	तृषेढि	बधकर्मा	२	१८	दध्नोति	बधकर्मा
१	१२	तृपीटम्	उदकनाम	३	२	दध्मम्	ऋष्यनाम
१	१२	तृप्तिः	"	३	२८	दध्मम्	उत्तरपदनाम
३	२४	तृपुः	स्तेननाम	४	१	दमूनाः	पदनाम
२	१५	तृषु	क्षिप्रनाम	३	४	दमे	गृहनाम
३	२	तृषमः	ऋष्यनाम	४	१	दयते	पदनाम
१	१२	तेजः	उदकनाम	१	८	द्विविद्यवि	अहर्नाम
१	१७	तेजः	उवलतोनाम	२	१४	द्रमति	गतिकर्मा
२	२	तोक्म	अपत्यनाम	२	१५	द्रवत्	क्षिप्रनाम
२	२	तोक्म	"	२	१४	द्रवति	गतिकर्मा

क्रमादि	शु	दकारादयः	विषयः	क्रमादि	शु	दकारादयः	विषयः
२	८	द्रविणम्	बलनाम	१	१६	द्युमत्	ज्वलतिकर्मा
२	१०	द्रविणम्	धननाम	२	१०	द्युमम्	धननाम
५	२	द्रविणोदाः	पदनाम	४	२	द्युमम्	पदनाम
२	१	दंसः	कर्मनाम	५	३	द्रुघणः	"
४	१	दंसयः	पदनाम	२	१८	द्रुणाति	वधकर्मा
३	२	दहरकः	कर्मनाम	३	४	दुरोणे	गृहनाम
३	२०	दाति	दानकर्मा	४	३	दुरितम्	पदनाम
५	३	द्यावापृथिवी	पदनाम	४	१	द्रुपदे	"
२	१४	द्राति	गतिकर्मा	२	१४	द्रुमति	गतिकर्मा
४	१	दावने	पदनाम	३	४	दुर्ग्या	गृहनाम
५	२	द्वारः	"	२	३	दुह्यवः	मनुष्यनाम
३	२०	दाशति	दानकर्मा	३	५	दुवस्यति	परिचरणकर्मा
३	२०	दासति	"	४	२	दूतः	पदनाम
२	२०	द्विद्युत्	वज्रनाम	४	३	दूतः	"
१	५	दिधीतयः	रश्मिनाम	३	३०	दूरेअन्ते	द्यावापृथिवी
२	५	दिधीतयः	अङ्गुलिनाम	२	१४	दूकति	गतिकर्मा
१	८	दिनम्	अहर्नाम	२	१४	दूणाति	"
४	२	दिता	पदनाम	२	१४	दूवति	"
४	३	द्विर्हार्हाः	"	१	१०	दृतिः	मेघनाम
१	६	दिवा	अहर्नाम	३	१८	देवताता	यज्ञनाम
४	३	द्विष्टिषु	"	५	६	देवपत्न्यः	पदनाम
१	८	द्विवेद्वे	"	३	१८	देवयवः	ऋत्विङनाम
१	१६	दीदयति	ज्वलतिकर्मा	५	६	देवाः	पदनाम
१	५	दीधितयः	अङ्गुलिनाम	५	३	देवीजर्जाडती	"
२	१४	दीयति	गतिकर्मा	५	३	देवीजोष्टी	"
२	१४	दीयते	"	४	३	देवोदेवो	"
५	३	दुन्दुभिः	पदनाम			द्याकपा	"
१	८	द्युः	अहर्नाम	३	२	देहरकः	ऋक्षनाम
२	१५	द्युगतं	क्षिप्रनाम	५	२	देव्याहीतारः	पदनाम

पृष्ठा- नं.	पं.	दकारादयः	विषयः	पृष्ठा- नं.	पं.	घकारादयः	विषयः
२	१२	दोधति	क्रुध्यतिकर्मा	२	१४	धावति	"
१	८	द्योतना	उषोनाम	२	७	धासिः	अन्ननाम
१	१६	द्योतते	उवलतिकर्मा	१	११	धिषणा	वाङ्नाम
१	७	दोषा	रात्रिनाम	३	३०	धिषणे	व्याषाष्टयिषी
१	६	द्यौः	अहर्नाम	२	१	धीः	कर्मनाम
१	१४	दौर्गहः ध	अश्वनाम	३	६	धीः	प्रज्ञानाम
५	३	धनुः	पदनाम	२	५	धीतयः	अङ्गुलिनाम
१	३	धन्व	अन्तरिक्षनाम	३	१५	धीरः	मेधाविनाम
४	२	धन्व	पदनाम	१	१३	धुनयः	नदीनाम
२	१४	धन्वति	गतिकर्मा	२	५	धुरः	अङ्गुलिनाम
२	१४	धमति	"	२	१४	ध्रुवति	गतिकर्मा
२	१६	धमति	वधकर्मा	२	१६	ध्रुवति	वधकर्मा
३	१४	धमति	अर्चतिकर्मा	२	१६	धूर्वति	"
१	११	धमनिः	वाङ्नाम	२	१४	धृजति	गतिकर्मा
२	१४	ध्रजति	गतिकर्मा	१	११	धेना	वाङ्नाम
२	६	धर्णसि	वलनाम	१	११	धेनुः	"
२	६	धर्णसिः	"	५	५	धेनुः	पदनाम
१	१२	धरणम्	उदकनाम			न	
२	१४	ध्रति	गतिकर्मा	१	७	नक्ता	रात्रिनाम
२	१४	ध्रयति	"	२	१४	नक्षति	गतिकर्मा
२	१४	धवति	"	२	१८	नक्षति	व्याप्तिकर्मा
२	३	धवाः	मनुष्यनाम	४	३	नक्षद्दाभम्	पदनाम
२	१६	ध्वरति	वधकर्मा	३	१२	नकिः	सर्वपदसमाम्
१	१२	ध्वस्सन्वत्	उदकनाम	३	१२	नकौम्	नायः
२	१४	ध्वंसति	गतिकर्मा	२	१४	नख्यति	गतिकर्मा
५	५	धाता	पदनाम	१	११	नग्ना	वाङ्नाम
१	११	धारा	वाङ्नाम	३	१६	नदः	स्तोत्रनाम
२	१४	धाति	गतिकर्मा	४	२	नदः	पदनाम
				३	१४	नदति	अर्चतिकर्मा

अक्षरं	सङ्केतः	नकारादयः	विषयः	अक्षरं	सङ्केतः	नकारादयः	विषयः
२	१७	नदनुः	सङ्ग्रामनाम	४	१	नसतः	पदनाम
१	१३	नद्यः	नदीनाम	२	१४	नसते	गतिकर्मा
५	३	नद्यः	पदनाम	४	१	नसन्तः	पदनाम
२	१८	ननत्ते	व्याप्तिकर्मा	३	२८	नंसते	उत्तरपदनाम
१	११	नना	वाङ्नाम	४	१	नंसन्ते	पदनाम
२	२	नपात्	अपत्यनाम	२	३	नहुषः	मनुष्यनाम
३	३०	नप्यौ	द्यावापृथिवी	२	३	नहुषाः	"
१	४	नभः	साधारणनाम	१	४	नाकः	साधारणनाम
१	१२	नभः	उदकनाम	१	४	नाका	"
१	१३	नभन्वः	नदीनाम	१	११	नाक्कीः	वाङ्नाम
१	१३	नभन्वाः	"	३	१६	नादः	स्त्रीत्वनाम
२	१८	नभति	बधकर्मा	१	१२	नाम	उदकनाम
२	१८	नभते	"	३	१७	नार्यः	यज्ञनाम
३	३०	नभसी	द्यावापृथिवी	५	३	नाराशंसः	पदनाम
२	७	नमः	अन्ननाम	३	१७	नारी	यज्ञनाम
२	२०	नमः	वज्रनाम	१	११	नालिः	वाङ्नाम
१	७	नम्या	रात्रिनाम	३	२	निघृष्वः	ऋष्यनाम
३	५	नमस्यति	परिचरणकर्मा	४	२	निचुम्पुणः	पदनाम
१	१४	नरः	अश्वनाम	३	२५	निण्यम्	{ निषिंतान्त- हिंतानाम
२	३	नरः	मनुष्यनाम	४	१	निधा	पदनाम
२	३	नराः	"	२	१८	नितोशयति	बधकर्मा
५	२	नराशंसः	पदनाम	२	१८	नितोशते	"
५	३	नराशंसः	"	२	१८	नितोषते	"
३	२८	नवम्	नवनाम	२	१८	निवर्हयति	"
२	१४	नवते	गतिकर्मा	१	१५	नियुतो	{ आदिष्टोप- योजनानि
३	२८	नव्यम्	नवनाम	२	२१	नियुत्वान्	ईश्वरनाम
३	१५	नवेदाः	मेधाविनाम	१	१	निर्गतिः	पृथिवीनाम
२	१८	नशत्	व्याप्तिकर्मा	१	१		

पञ्चादि	सप्त	नकारादयः	विषयः	पञ्चादि	सप्त	पकारादयः	विषयः
३	७	निर्णिक्	रूपनाम	३	१४	पणते	अर्चतिकर्मा
१	११	निवित्	वाङ्नाम	३	१४	पणायति	"
२	१८	निवपन्तु	बधकर्मा	३	१४	पणायते	"
४	३	निचृन्माः	पदनाम	३	१४	पणस्यति	"
४	२	निष्पपी	"	१	१४	पतङ्गाः	अश्वनाम
३	४	नौळम्	गृहनाम	२	१४	पतति	गतिकर्मा
१	१२	नीरम्	उदकनाम	२	१४	पतयति	"
१	११	नीलिः	वाङ्नाम	२	२१	पत्यते	ऐश्वर्यकर्मा
२	१५	नु	क्षिप्रनाम	५	५	पथा	पदनाम
३	१२	नुकम्	सर्वपदसमाम्नायः	४	२	पदिम्	"
४	१	नूच	पदनाम	३	१४	पनस्यति	अर्चतिकर्मा
४	१	नूचित्	"	३	१४	पनायते	"
३	२८	नूत्रम्	नवनाम	३	१४	पपृक्षाः	"
३	२८	नूतनम्	"	१	७	पयः	रात्रिनाम
१	१२	नृपीटम्	उदकनाम	१	१२	पयः	उदकनाम
२	८	नृम्णम्	बलनाम	१	१७	पयः	उवलतीनाम
२	१०	नृम्णम्	धननाम	२	७	पयः	अन्ननाम
२	२०	नेभिः	वज्रनाम	१	१३	पयस्वत्यः	नदीनाम
२	७	नेमः	अन्ननाम	१	७	पयस्वती	रात्रिनाम
३	२८	नेमः	उत्तरपदनाम	४	३	प्रकलवित्	पदनाम
२	१७	नेमधिता	संग्रामनाम	३	२६	पराके	दूरनाम
२	१७	नेमधितिः	"	३	२६	पराचै	"
२	१४	नेहति	गतिकर्मा	५	४	पर्जन्यः	पदनाम
१	११	नौः	वाङ्नाम	२	२	प्रजा	अपत्यनाम
३	१४	नौति	अर्चतिकर्मा	३	१७	प्रजापतिः	यज्ञनाम
		प		५	४	प्रजापतिः	पदनाम
४	३	पञ्चता	पदनाम	१	१०	पर्णानः	मेघनाम
२	३	पञ्चजनः	अपत्यनाम	३	१	परीणसा	बहुनाम
४	२	पङ्भिः	पदनाम	४	३	प्रतदसु	पदनाम

अध्यायः	श्लो	पकारादयः	विषयः	अध्यायः	श्लो	पकारादयः	विषयः
३	२७	प्रज्ञम्	पुराणनाम	४	२	पवित्रम्	पदनाम
३	२५	प्रतीच्यम्	{ निर्णीतान्त- हितनाम	३	४	पस्थम्	गृहनाम
३	२	प्रतिष्ठा	ह्रस्वनाम	३	७	पसरः	रूपनाम
३	२५	प्रतीच्यम्	निर्णीतान्तर्हि०	३	८	पाकः	प्रशस्यनाम
४	२	परि	पदनाम	३	७	पाजः	अन्ननाम
४	१	परितक्ता	"	४	८	पाजः	बलनाम
३	२७	प्रदिवः	पुराणनाम	४	२	पादुः	"
२	१७	प्रधने	संग्रामनाम	१	१३	पार्वत्यः	नदीनाम
३	२८	प्रपित्वे	उत्तरपदनाम	२	१५	प्राशुः	क्षिप्रनाम
१	१२	प्रयः	उदकनाम	२	१५	प्राशुवित्	"
२	७	प्रयः	अन्ननाम	३	३०	पाश्वौ	द्यावापृथिवी
१	१०	पर्वतः	मेघनाम	३	३०	पाश्व्यौ	"
२	१४	प्रवते	गतिकर्मा	२	१५	प्राशुचित्	क्षिप्रकर्मा
३	२७	प्रवयाः	पुराणनाम	२	१४	प्साति	गतिकर्मा
३	२६	परावतः	दूरनाम	४	१	पिता	पदनाम
१	१०	पर्शानः	मेघनाम	२	७	पितः	अन्ननाम
४	३	पराशरः	पदनाम	५	५	पितरः	पदनाम
३	२१	परिश्रव	अध्येषणाकर्मा	५	३	पितुः	"
२	२०	परशुः	वज्रनाम	३	२८	पिनाकम्	उत्तरपदनाम
३	२१	परिस्त्रव	अध्येषणाकर्मा	३	१४	पिपृक्षाः	अर्चतिकर्मा
२	१४	प्लवति	गतिकर्मा	१	१२	पिप्पलम्	उदकनाम
२	१४	प्लवते	"	२	१४	पिस्यति	गतिकर्मा
२	१४	पवते	"	३	७	पिष्टम्	रूपनाम
३	२१	पवस्त्र	अध्येषणाकर्मा	३	१८	पीपरत्	याज्ञाकर्मा
१	११	पविः	वाङ्नाम	४	३	पुरन्धिः	पदनाम
४	२	पविः	पदनाम	३	३०	पुरन्धि	द्यावापृथिवी
२	२०	पविः	वज्रनाम	१	१२	पुरीषम्	उदकनाम
१	१२	पवित्रम्	उदकनाम	३	१	पुरु	बहुनाम

पञ्चांशः	सं.	पकारादयः	विषयः	पञ्चांशः	सं.	पकारादयः	विषयः
१	१०	पुरुभोजाः	मेघनाम	४	२	पृथुञ्जयाः	पदनाम
५	४	पुरुखाः	पदनाम	१	४	पृथिः	साधारणनाम
४	३	पुलुकाः	"	१	१५	पृथ्वीम	आदिष्टोपयो-
१	३	पुष्करम्	अन्तरिक्षनाम			ताम्	जनानि
३	७	पुः	रूपनाम	२	१४	पेलयति	गतिकर्मा
३	१४	पूजयति	अर्चतिकर्मा	१	२	पेशः	हिरण्यनाम
१	१२	पूर्णम्	उदकनाम	३	७	पेशः	रूपनाम
३	१८	पूर्द्धि	याज्ञाकर्मा	१	१४	पैहः	अश्वनाम
३	२७	पूर्वम्	पुराणनाम	२	८	पौस्यानि	बलनाम
२	३	पूरवः	मनुष्यनाम	२	१७	पौस्ये	संग्रामनाम
३	२७	पूर्वा	पुराणनाम			फ	
१	१	पूपा	पृथिवीनाम	२	१४	फणति	गतिकर्मा
५	६	पूषा	पदनाम	१	१०	फलिगः	मेघनाम
२	७	पृक्षः	अन्ननाम			व	
२	१७	पृचे	संग्रामनाम	४	३	बकुरः	पदनाम
३	१४	पृच्छति	अर्चतिकर्मा	३	१०	बट्	सत्यनाम
३	२०	पृणक्षि	दानकर्मा	४	३	बतः	पदनाम
३	२०	पृणक्ति	"	२	८	बधः	बलनाम
३	२०	पृणाति	"	२	१०	बन्धुः	धननाम
२	१७	पृतना	संग्रामनाम	३	७	बप्सः	रूपनाम
२	३	पृतनाः	मनुष्यनाम	२	८	बप्सति	अस्तिकर्मा
२	१७	पृतनाज्यम्	संग्रामनाम	२	८	बभस्ति	"
२	१७	पृतु	"	२	८	बब्वाम्	"
१	३	पृथिवी	अन्तरिक्षनाम	१	१०	ब्रजः	मेघनाम
५	३	पृथिवी	पदनाम	१	१४	ब्रध्नः	अश्वनाम
५	५	पृथिवी	"	३	३	ब्रध्नः	महन्नाम
५	६	पृथिवी	"	१	१२	बवुर्म्	उदकनाम
१	१	पृथ्वी	पृथिवीनाम	१	१२	ब्रह्म	"
३	३०	पृथ्वी	यावापृथिवी	२	७	ब्रह्म	अन्ननाम

अक्षर	उ	वकारादयः	विषयः	अक्षर	उ	भकारादयः	विषयः
२	१०	ब्रह्म	धननाम	५	४	बृहस्पतिः	पदनाम
५	४	ब्रह्मणस्पतिः	पदनाम	४	३	बेकनाटान्	"
४	३	बर्हणा	"	१	११	बेकुः	वाङ्नाम
२	१८	बर्हयति	बधकर्मा	१	११	बेकुरा	"
१	३	बर्हिः	अन्तरिक्षनाम			भ	
१	१२	बर्हिः	उदकनाम	२	१०	भगः	धननाम
५	२	बर्हिः	पदनाम	५	६	भगः	पदनाम
३	३	बर्हिषत्	महन्नाम	३	१४	भणति	अर्चतिकर्मा
३	३	बर्हिष्ठः	"	३	१४	भणायते	"
३	३	बर्हिषि	"	४	२	भन्दनाः	पदनाम
१	१०	बलाहकः	मेघनाम	१	१६	भन्दते	ज्वलतिकर्मा
३	३	बर्हिष्ठः	महन्नाम	३	१४	भन्दति	अर्चतिकर्मा
३	३०	बहुले	द्यावापृथिवी	३	१४	भनति	"
२	८	बाधः	बलनाम	३	२८	भ्यसते	उत्तरपदनाम
३	१३	ब्राह्मणाव्रत- चारिणः	उपमानाम	२	१७	भरे	संग्रामनाम
२	४	बाहू	बाहुनाम	३	१८	भरताः	ऋत्विङ्नाम
२	१४	बिस्पति	गतिकर्मा	२	४	भरित्रे	बाहुनाम
४	३	बिष्पितः	पदनाम	१	२	भर्म	हिरण्यनाम
२	२	बीजम्	अपत्यनाम	२	१४	भ्रमति	गतिकर्मा
४	२	बीरिटे	पदनाम	२	८	भर्वति	अस्तिकर्मा
४	३	बुन्दः	"	१	१२	भविष्यन्	उदकनाम
१	१२	बुबुरः	उदकनाम	२	८	भसथः	अस्तिकर्मा
१	१२	बुबुरम्	"	४	३	भाऋजीकः	पदनाम
१	१२	बुसम्	"	१	८	भातुः	अहर्नाम
४	३	ब्रवदुक्थम्	पदनाम	२	१३	भामः	क्रोधनाम
१	१२	ब्रवूकम्	उदकनाम	२	१२	भामते	क्रुध्यतिकर्मा
३	३	बृहत्	महन्नाम	१	१६	भाजते	ज्वलतिकर्मा
३	३०	बृहती	द्यावापृथिवी	३	१८	भारताः	ऋत्विङ्नाम
				१	११	भारती	वाङ्नाम

पञ्चमः	विषयः	भकारादयः	विषयः	पञ्चमः	विषयः	भकारादयः	विषयः
१	१६	भ्राशते	ज्वलतिकर्मा	२	८	मउमना	बलनाम
१	१६	भ्राश्यति	"	५	३	मण्डूकाः	पदनाम
१	१६	भ्लाशते	"	३	१५	मतयः	मेधाविनाम
१	१६	भ्लाश्यति	"	३	१५	मतुधाः	"
१	१६	भ्लाश्यते	"	३	१४	मदति	अर्चतिकर्मा
१	१३	भास्वत्यः	नदीनाम	३	१८	मदेमहि	याच्ञाकर्मा
१	८	भास्वती	उपोनाम	४	१	मध्या	पदनाम
२	१२	भ्रीणाति	क्रुध्यतिकर्मा	१	१२	मधु	उदकनाम
२	४	भुरिजौ	बाहुनाम	५	६	मनुः	पदनाम
२	१४	भुरण्यति	गतिकर्मा	३	१४	मन्त्रयते	अर्चतिकर्मा
२	१५	भुरण्युः	क्षिप्रनाम	१	१६	मन्दते	ज्वलतिकर्मा
१	१२	भुवनम्	उदकनाम	३	१४	मन्दते	अर्चतिकर्मा
१	१	भूः	पृथिवीनाम	३	१४	मन्त्रयते	"
१	३	भूः	अन्तरिक्षनाम	१	११	मन्द्रा	वाङ्नाम
१	१२	भूतम्	उदकनाम	१	११	मन्द्राजनी	"
१	१	भूमिः	पृथिवीनाम	४	१	मन्दिने	पदनाम
३	१	भूरि	बहुनाम	४	१	मन्दू	"
५	५	भृगवः	पदनाम	३	१५	मन्वाता	मेधाविनाम
२	१२	भृणोयते	क्रुध्यतिकर्मा	३	१८	मन्महे	याच्ञाकर्मा
४	३	भूमिः	पदनाम	३	१८	मनामहे	"
२	१२	भ्रैषति	क्रुध्यतिकर्मा	२	६	मन्यते	कान्तिकर्मा
१	१२	भेषजम्	उदकनाम	१	४	मन्यते	अर्चतिकर्मा
३	६	भेषजम्	सुखनाम	२	१३	मन्युः	क्रोधनाम
२	१२	भोजते	क्रुध्यतिकर्मा	५	४	मन्युः	पदनाम
२	१०	भोजनम्	धननाम	३	१५	मनश्चित्	मेधाविनाम
		म		३	१५	मनोषी	"
२	१५	मनु	क्षिप्रनाम	२	३	मनुधाः	मनुष्यनाम
३	१०	मन्त्रः	यज्ञनाम	३	१५	मनुथाः	मेधाविनाम
३	१०	मन्त्रम्	धननाम	२	१०	ममसत्यम्	संग्रामनाम

अध्यायः	सूत्रः	मकारादयः	विषयः	वि	सू	मकारादयः	विषयः
३	६	मयः	सुखनाम	३	१२	माकिः	(सर्वपदसमा- (स्नायः
२	१४	म्यक्षति	गतिकर्मा	३	१२	मातरः	नदीनाम
१	५	मयूखाः	रश्मिनाम	१	१३	मायते	याचूजाकर्मा
२	१४	मर्दति	गतिकर्मा	३	१६	माया	प्रज्ञानाम
२	१६	मर्दति	बधकर्मा	३	६	मायुः	वाङ्नाम
२	३	मर्त्ताः	मनुष्यनाम	१	११	मायुकः	क्रस्वनाम
२	३	मर्त्याः	"	३	२	माष्टि	गतिकर्मा
२	३	मर्त्याः	"	२	१४	मांश्चत्वः	अश्वनाम
१	५	मरीचिपाः	रश्मिनाम	१	१४	माहिनः	महन्नाम
१	२	मरुत्	हिरण्यनाम	२	१४	मित्रः	पदनाम
३	७	मरुत्	रूपनाम	५	४	मिनाति	गतिकर्मा
३	१८	मरुतः	ऋत्विङ्नाम	२	१४	मिनाति	बधकर्मा
५	५	मरुतः	पदनाम	२	१६	मिनाति	गतिकर्मा
१	१७	मलमलाभवन	ज्वलतोनाम	२	१४	मिनाति	बधकर्मा
३	२४	मलिन्नुचः	स्तेननाम	२	१६	मिमिड्ढि	याचूजाकर्मा
१	१४	मंश्चतुः	अश्वनाम	३	१६	मिमोहि	"
१	१४	मंश्चतो	"	३	१६	मियक्षति	गतिकर्मा
१	१२	महः	उदकनाम	२	१४	मिष्यति	"
३	३	महः	महन्नाम	२	१४	मीढुम्	धननाम
१	१२	महत्	उदकनाम	२	१०	मीढ्वे	संग्रामनाम
३	३	महत्	महन्नाम	२	१७	मीह्मम्	धननाम
३	२०	मंहते	दानकर्मा	२	१०	मुषीषान्	स्तेननाम
३	१४	महयति	अर्चतिकर्मा	३	२४	मूषः	पदनाम
२	१७	महाधने	संग्रामनाम	४	१	मृत्युः	"
३	३	महिषः	महन्नाम	५	५	मृधः	संग्रामनाम
१	१	मही	पृथिवीनाम	२	१७	मेष्ठिः	वाङ्नाम
१	११	मही	वाङ्नाम	१	११	मेघः	मेघनाम
२	११	मही	गोनाम	१	१०	मेघः	मेघाविनाम
३	३०	मही	द्यावापृथिवी	३	१५		

संख्या	पृष्ठ	नकारादयः	विषयः	संख्या	पृष्ठ	यकारादयः	विषयः
३	१७	मेधः	यज्ञनाम	२	१८	याचति	बधकर्मा
२	१०	मेधा	धननाम	२	१४	याति	गतिकर्मा
३	१५	मेधाविनः	मेधाविनाम	२	१८	यातयति	धवकर्मा
१	११	मेना	वाङ्नाम	१	१२	यादः	उदकनाम
३	२८	मेना	उत्तरपदनाम	१	१२	यादुः	"
२	२०	मेनिः	वज्रनाम	४	३	यादृश्मिन्	पदनाम
४	१	मेहना	पदनाम	३	१८	यामि	याच्ञाकर्मा
१	७	मांकी	रात्रिनाम	२	१८	यावति	बधकर्मा
		य		२	१५	युगत्	क्षिप्रनाम
३	१७	यज्ञः	यज्ञनाम	२	१४	युध्यति	गतिकर्मा
२	१४	यतते	गतिकर्मा	२	१४	युध्यते	"
३	१८	यतस्त्रुचः	ऋत्विङ्नाम	२	५	योक्ताणि	अङ्गुलिनाम
२	३	यदवः	मनुष्यनाम	२	५	योजनानि	"
३	१८	यन्तारः	याच्ञाकर्मा	१	१२	योनिः	उदकनाम
३	१८	यन्ति	"	३	४	योनिः	गृहनाम
३	१८	यन्धि	"	२	१४	योषिष्टि	गतिकर्मा
५	४	यमः	पदनाम	२	१४	योषिष्टि	"
५	६	यमः	"	३	१४	यौति	अर्चतिकर्मा
१	७	यस्या	रात्रिनाम			र	
५	५	यमी	पदनाम	१	७	रजः	रात्रिनाम
१	१३	यय्याः	नदीनाम	४	१	रजः	पदनाम
३	३	यद्यः	महन्नाम	२	१४	रजति	गतिकर्मा
१	१२	यशः	उदकनाम	३	१४	रजयति	अर्चतिकर्मा
२	७	यशः	अन्ननाम	३	१४	रज्जयति	"
२	१०	यशः	धननाम	३	३०	रजसी	द्यावापृथिवी
१	१२	यहः	उदकनाम	२	१७	रणः	संग्रामनाम
२	८	यहः	वलनाम	२	१०	रत्नम्	धननाम
२	२	यहुः	अपत्यनाम	५	३	रथः	पदनाम
१	१३	यद्यः	नदीनाम	२	१४	रथयति	गतिकर्मा

अध्याये	शु	रेफादयः	विषयः	अध्याये	शु	रेफादयः	विषयः
४	३	रथयति	पदनाम	२	२२	राष्ट्री	ईश्वरनाम
२	१८	रम्भाति	बधकर्मा	२	१०	रिक्थम्	धननाम
३	३	रभसः	महन्नाम	३	२४	रिका	स्तेननाम
३	२८	रभः	उत्तरपदनाम	२	१४	रिखति	गतिकर्मा
१	७	रम्या	रात्रिनाम	२	१४	रिणाति	"
१	१२	रयिः	उदकनाम	३	२४	रितका	स्तेननाम
२	१०	रयिः	धननाम	१	१	रिपः	पृथिवीनाम
२	५	रशनाः	अङ्गुलिनाम	३	२४	रिपुः	स्तेननाम
१	५	रश्मयः	रश्मिनाम	३	२४	रिम्वा	"
१	५	रश्म्यः	"	३	२४	रिद्धा	"
१	११	रसः	वाङ्नाम	३	१८	रिरिद्धि	याज्ञाकर्मा
१	१२	रसः	उदकनाम	४	३	रिशदशः	पदनाम
२	७	रसः	अन्ननाम	३	१८	रिरीहि	याज्ञाकर्मा
३	१४	रसति	अर्चतिकर्मा	३	२	रिहम्	ह्रस्वनाम
४	३	रंसु	पदनाम	३	१४	रिहति	अर्चतिकर्मा
२	१४	रंहति	गतिकर्मा	३	२४	रिहायाः	स्तेननाम
५	५	राका	पदनाम	३	२४	रिद्धा	"
३	१४	राजति	अर्चतिकर्मा	२	१४	रीयते	गतिकर्मा
२	२१	राजति	ऐश्वर्यकर्मा	१	२	रुक्मम्	हिरण्यनाम
२	१४	राति	गतिकर्मा	१	१३	रुजानाः	नदीनाम
३	२०	राति	दानकर्मा	४	३	रुजानाः	पदनाम
५	३	रात्रिः	पदनाम	३	१६	रुद्रः	स्तोत्रनाम
२	१०	राधः	धननाम	५	४	रुद्रः	पदनाम
१	७	राग्याः	रात्रिनाम	५	५	रुद्राः	"
२	१०	रायः	धननाम	४	३	रुशत्	"
१	११	रासः	वाङ्नाम	२	१४	रुहति	गतिकर्मा
३	२०	रासति	दानकर्मा	२	१०	रेक्णः	धननाम
४	३	रास्त्रिनः	पदनाम [नानि	२	१४	रेजति	गतिकर्मा
१	१५	रासभावस्त्रिनाः	आदिष्टोपयोज-	२	१४	रेजते	"

पृष्ठ	श्लोक	रेफादयः	विषयः	पृष्ठ	श्लोक	वकारादयः	विषयः
३	२८	रेजते	उत्तरपदनाम	१	११	वग्नः	वाङ्नाम
२	१२	रेवते	क्रुध्यतिकर्मा	२	२०	वज्रः	वज्रनाम
१	१२	रेतः	उदकनाम	२	१४	वञ्चति	गतिकर्मा
३	१६	रेभः	स्तोत्रनाम	२	२०	वधः	वज्रनाम
३	१४	रेभति	अर्चतिकर्मा	२	८	वधः	वलनाम
१	१३	रेवत्यः	नदीनाम	१	१३	वध्वः	नदीनाम
१	१०	रेवतः	मेघनाम	३	१४	वन्दते	अर्चतिकर्मा
१	१६	रोचते	ज्वलतिकर्मा	१	५	वनम्	रश्मिनाम
५	५	रोदसी	पदनाम	१	१२	वनम्	उदकनाम
३	३०	रोदसी	द्यावापृथिवी	३	२४	वनगुः	स्तेननाम
१	१३	रोधचक्राः	नदीनाम	५	२	वनस्पतिः	पदनाम
३	३०	रोधसी	द्यावापृथिवी	४	२	वनुथति	"
१	१३	रोधस्रत्यः	नदीनाम	२	१२	वनुथति	क्रुध्यतिकर्मा
१	१३	रोहितः	"	२	६	वनेति	कान्तिकर्मा
२	५	रोहितः	अङ्गुलिनाम	३	७	वपुः	रूपनाम
१	१५	रोहितीऽग्नेः	{ आदिष्टोपयो- { जनानि	३	२	वभ्रकः	झञ्जनाम
३	१४	रौति	अर्चतिकर्मा	२	७	वयः	अन्ननाम
१	१०	रौहिणः	मेघनाम	२	१३	व्यधिः	क्रोधनाम
		ल		१	१४	व्यथ्ययः	अश्वनाम
२	१४	लज्जति	गतिकर्मा	४	१	व्यन्तः	पदनाम
२	१४	लोठते	"	३	८	वयुनम्	प्रणस्यनाम
२	१४	लोठते	"	३	८	वयुनम्	प्रज्ञानाम
४	१	लोधम्	पदनाम	४	२	वयुनम्	पदनाम
१	२	लोहम्	हिरण्यनाम	२	१३	वरः	क्रोधनाम
		व		२	८	वर्गः	वलनाम
४	२	वचः	पदनाम	२	७	वर्चः	अन्ननाम
१	१३	वदणाः	नदीनाम	१	१०	वृजः	मेघनाम
				२	१४	वृजति	गतिकर्मा

शब्दानुक्रमणिका ॥

अक्षरार्थः	संख्या	वकारादयः	विषयः	अक्षरार्थः	संख्या	वकारादयः	विषयः
५	४	वरुणः	पदनाम	२	१४	वञ्चति	गतिकर्मा
५	६	वरुणः	"	२	१४	वहते	"
२	१	व्रतम्	कर्मनाम	१	१४	वह्निः	अश्वनाम
२	१४	वर्षति	गतिकर्मा	१	१२	वाः	उदकनाम
३	४	वरुथम्	गृहनाम	१	११	वाक्	वाङ्नाम
४	२	वृन्दी	पदनाम	५	५	वाक्	पदनाम
३	७	वर्षः	रूपनाम	३	१५	वाघतः	मेघाविनाम
३	४	वर्म	गृहनाम	३	१८	वाघतः	ऋत्विङ्नाम
१	१३	वर्यः	नदीनाम	५	४	वाचस्पतिः	पदनाम
२	१०	वरिवः	धननाम	२	७	वाजः	अन्ननाम
१	१०	वराहः	मेघनाम	२	८	वाजः	बलनाम
४	२	वराहः	पदनाम	१	१४	वाजो	अश्वनाम
१	१०	वलः	मेघनाम	२	१७	वाजे	संग्रामनाम
१	१०	वलिशानः	"	४	२	वाजगन्धम्	पदनाम
१	११	वल्गुः	वाङ्नाम	५	६	वाजिनः	"
२	१४	वल्गूयति	गतिकर्मा	१	८	वाजिनिवती	उषोनाम
३	१४	वल्गूयति	अर्चतिकर्मा	१	८	वाजिनी	"
३	२३	वन्नः	कूपनाम	१	८	वाजिनोवती	"
३	७	वन्निः	रूपनाम	४	२	वाजपस्त्यम्	पदनाम
२	६	वश्मि	कान्तिकर्मा	३	१४	वाजयति	अर्चतिकर्मा
२	६	वष्टि	"	२	१७	वाजसातो	संग्रामनाम
१	७	वसो	रात्रिनाम	२	१६	वाञ्छति	कान्तिकर्मा
१	७	वसु	"	१	११	वाणः	वाङ्नाम
२	१०	वसु	धननाम	१	११	वाणो	"
१	५	वसवः	रश्मिनाम	१	११	वाणोची	"
५	६	वसवः	पदनाम	५	४	वाताः	पदनाम
१	७	वस्त्रा	रात्रिनाम	२	१४	वाति	गतिकर्मा
१	७	वस्त्रो	"	४	३	वताप्यम्	पदनाम
१	८	वस्तो	अहर्नाम	२	१५	वातरंजाः	क्षिप्रनाम

पञ्चांग	सं.	वकारादयः	विषयः	पञ्चांग	सं.	वकारादयः	विषयः
३	८	वामः	प्रशस्यनाम	३	१५	विधाता	मेधाविनाम
५	४	वायुः	पदनाम	५	५	विधाता	पदनाम
३	१	व्यानसिः	बहुनाम	३	५	विधेम	परिचरणकर्मा
४	२	व्राः	पदनाम	२	४	विनङ्ग्यसी	बाहुनाम
१	१२	वारि	उदकनाम	२	५	विपः	अङ्गुलिनाम
२	३	व्राताः	मनुष्यनाम	३	१५	विपः	मेधाविनाम
३	३	व्राधत्	महन्नाम	३	१५	विपन्युः	"
३	३	व्राधन्	"	३	१५	विपन्यवः	"
३	३	व्राधम्	"	३	१५	विप्रः	"
४	२	वार्थम्	पदनाम	३	१५	विपश्चित्	"
१	१४	वार्थाणाम्	अश्वनाम	१	११	विपा	वाङ्नाम
१	१३	वार्वात्यः	नदीनाम	५	३	विपाट्कुतुद्री	पदनाम
४	२	वावशानः	पदनाम	१	१२	विपुः	उदकनाम
१	११	वाशी	वाङ्नाम	२	५	विभ्राः	अङ्गुलिनाम
४	१	वाशी	पदनाम	१	८	विभावरी	उषोनाम
५	४	वास्तोष्पतिः	"	१	३	वियत्	अन्तरिक्षनाम
१	८	वासरम्	अहर्नाम	२	१८	वियातः	बधकर्मा
४	१	वाहः	पदनाम	४	१	वियुते	पदनाम
४	२	वाहिष्ठः	"	३	३	विरण्शी	महन्नाम
२	१७	विखादः	संग्रामनाम	२	५	विशः	अङ्गुलिनाम
३	१५	विग्रः	मेधाविनाम	२	१७	विवाक्	संग्रामनाम
३	११	विचर्षणिः	पश्यतिकर्मा	३	३	विवक्षसे	महन्नाम
३	११	विचष्टे	"	३	३	विवक्षिथः	"
४	३	विनामातुः	पदनाम	२	३	विवस्वन्तः	मनुष्यनाम
२	८	विट्	बलनाम	३	५	विवासति	परिचरणकर्मा
२	१०	विशम्	धननाम	२	३	विशः	मनुष्यनाम
३	१०	विदथः	यज्ञनाम	३	१	विश्वम्	बहुनाम
४	३	विदथानि	पदनाम	५	४	विश्वकर्मा	पदनाम
४	१	विद्वधे	"	३	११	विश्ववर्षणिः	पश्यतिकर्मा

वि क्र सं	सं	वकारादयः	विषयः	वि क्र सं	सं	वकारादयः	विषयः
५	६	विश्वदेवाः	पदनाम	२	८	वृजनम्	बलनाम
५	५	विश्वानरः	"	२	१८	वृणक्ति	बधकर्मा
५	६	विश्वानरः	"	२	१०	वृतम्	धननाम
१	१५	विश्वरूपा वृ- हस्पतिः }	आदिष्टोपयो- जनानि	२	१०	वृत्रम्	"
१	१२	विषम्	उदकनाम	१	१०	वृत्रः	मेघनाम
१	४	विष्टपम्	साधारणनाम	२	१७	वृत्रतूर्ये	संग्रामनाम
२	१	विष्टी	कर्मनाम	४	३	वृन्दम्	पदनाम
२	१	विष्टी	"	२	५	वृशः	अङ्गुलीनाम
३	१७	विष्णुः	यज्ञनाम	२	१८	वृश्चति	बधकर्मा
४	२	विष्णुः	पदनाम	३	२०	वृश्चति	दानकर्मा
५	६	विष्णुः	"	५	६	वृषाकपिः	पदनाम
४	१	विष्णुः	"	५	६	वृषाकपायी	"
१	१०	विषन्धिः	मेघनाम	१	१०	वृषन्धिः	मेघनाम
२	१४	विषिष्टि	गतिकर्मा	५	३	वृषभः	पदनाम
१	४	विष्टपम्	साधारणनाम	२	६	वेति	कान्तिकर्मा
२	६	विचति	कान्तिकर्मा	२	८	वेति	अस्तिकर्मा
४	३	विस्तुहः	पदनाम	२	१४	वेति	गतिकर्मा
३	३	विहायाः	मङ्गनाम	२	१०	वेदः	धननाम
२	२	वीजम्	अपत्यनाम	२	१४	वेदति	गतिकर्मा
२	८	वीवृ	बलनाम	३	१५	वेधाः	मेधाविनाम
४	२	वीरिटे	पदनाम	३	१५	वेनः	"
४	३	वीरुधः	"	३	१७	वेनः	यज्ञनाम
२	८	वृक्	बलनाम	५	४	वेनः	पदनाम
२	२०	वृकः	वृजनाम	२	६	वेनति	कान्तिकर्मा
३	२४	वृकः	स्तेननाम	२	१४	वेनति	गतिकर्मा
४	२	वृकः	पदनाम	३	१४	वेनति	अर्चतिकर्मा
३	१८	वृत्तवर्हिषः [वयाः	ऋत्विङ्नाम	२	१	वेपः	कर्मनाम
३	१३	वृक्षस्यनुतेपुरुहूत	उपमानां	२	८	वेवेष्टि	अस्तिकर्मा
				२	१	वेशः	कर्मनाम

शब्दः	पं.	वकारादयः	विषयः	शब्दः	पं.	शकारादयः	विषयः
२	६	वेगति	कान्तिकर्मा	२	१८	शनथयति	बधकर्मा
२	१४	वेगिष्टि	गतिकर्मा	१	११	शब्दः	बाङ्नाम
२	१	वेपः	कर्मनाम	३	६	शम	सुखनाम
२	६	वेष्टि	कान्तिकर्मा	२	१	शमौ	कर्मनाम
२	१४	वेपिष्टि	गतिकर्मा	२	१८	शम्नाति	बधकर्मा
२	६	वेसति	कान्तिकर्मा	४	२	शम्बः	पदनाम
३	२८	वैतसः	उत्तरपदनाम	१	१०	शम्बरः	मेघनाम
५	१	वैज्ञानरः	पदनाम	१	१२	शम्बरम्	उदकनाम
१	३	व्योम	अतरिचनाम	२	८	शम्बरम्	बलनाम
१	१२	व्यंम	उदकनाम	४	२	शम्या	पदनाम
१	६	व्योमा	दिङ्नाम	४	१	शंघो	"
		श		३	४	शरणम्	गृहनाम
१	१२	शकम्	उदकनाम	३	१०	शत्	सत्यनाम
२	१	शक्तिः	कर्मनाम	२	१८	शथति	बधकर्मा
५	३	शकुनिः	पदनाम	२	८	शर्द्धः	बलनाम
२	१	शक्म	कर्मनाम	५	३	शद्धा	पदनाम
२	१	शक्मम्	"	३	४	शर्मा	गृहनाम
२	४	शक्करो	बाहुनाम	३	६	शर्म	सुखनाम
२	११	शक्करो	गोनाम	५	५	शर्मा	पदनाम
३	१८	शग्धि	वाञ्जाकर्म	२	५	शर्या	अङ्गुलिनाम
२	१	शग्म	कर्मनाम	४	२	शर्या	पदनाम
३	६	शग्मम्	सुखनाम	४	३	शराकः	"
३	६	शग्न्यम्	"	२	७	शवः	अन्ननाम
१	११	शची	बाङ्नाम	२	१०	शवः	धननाम
२	१	शची	कर्मनाम	१	७	शर्वरी	रात्रिनाम
३	८	शची	प्रज्ञानाम	२	१८	शयति	बधकर्मा
३	१	शतम्	बहुनाम	२	८	शत्रः	बलनाम
३	६	शतरा	सुखनाम	२	१०	शवः	धननाम
				४	२	श्वघ्नो	पदनाम

क्रमांकः	शुद्धः	शकारादयः	विषयः	क्रमांकः	शुद्धः	शकारादयः	विषयः
२	१४	शवति	गतिकर्मा	३	७	शिल्पम्	रूपनाम
३	५	शवति	परिचरणकर्मा	३	६	शिवम्	सुखनाम
२	१८	श्वसति	बधकर्मा	३	६	शिवाता	"
२	१८	श्वसिति	"	४	१	शिशीते	पदनाम
३	१४	शशमानः	अर्चतिकर्मा	३	७	शिष्यम्	रूपनाम
४	३	शशमानः	पदनाम	२	१५	शीभम्	क्षिप्रनाम
३	१	शश्वत्	बहुनाम	४	१	शीरम्	पदनाम
३	७	शष्यम्	रूपनाम	१	७	शीशा	रात्रिनाम
३	१४	शंसति	अर्चतिकर्मा	२	१५	शु	क्षिप्रनाम
२	६	शंसनत्	कान्तिकर्मा	१	१२	शुक्रम्	उदकनाम
२	५	शाखाः	अङ्गुलिनाम	२	१५	शुवनसाः	क्षिप्रनाम
३	६	शातयन्ता	सुखनाम	३	६	शुनम्	सुखनाम
१	१५	श्यावाःसवितुः	आदिष्टोपयोज-	५	३	सुनासीरौ	पदनाम
४	३	श्यायन्तः	पदनाम [नानि	१	१२	शुभम्	उदकनाम
२	१०	श्वात्रम्	धननाम	३	१५	सुरण्युः	क्षिप्रनाम
४	२	श्वात्रम्	पदनाम	४	३	सुरुधः	पदनाम
२	१४	श्यात्रति	गतिकर्मा	४	३	शुष्टो	"
१	७	श्वावी	रात्रिनाम	२	८	शुणाम्	बलनाम
४	३	शाशदानः	पदनाम	२	८	शुष्मम्	"
३	२०	शिक्षति	दानकर्मा	२	१५	शूः	क्षिप्रनाम
४	१	शिताम	पदनाम	२	१५	शूचनाः	क्षिप्रनाम
४	१	शिप्रे	"	२	१५	शूचनाशः	"
४	३	शिप्रे	"	२	१५	शूचनासः	"
२	१	शिमौ	कर्मनाम	२	१५	शूर्त्ताः	"
४	२	शिपिविष्टः	"	२	१७	शूरसातौ	संग्रामनाम
१	७	शिरिणा	रात्रिनाम	२	८	शूषम्	बलनाम
४	३	शिरिखिठः	पदनाम	३	६	शूषम्	सुखनाम
३	६	शिल्लुः	सुखनाम	१	१७	शृङ्गानि	ज्वलतीनाम
२	१	शिल्पम्	कर्मनाम	२	१८	शृङ्गाति	बधकर्मा

पृष्ठः	सूत्रः	प्रकारादयः	विषयः	पृष्ठः	सूत्रः	प्रकारादयः	विषयः
४	३	गृभाः	पदनाम	२	१४	सचति	गतिकर्मा
३	२८	शेषः	उत्तरपदनाम	३	२८	सचते	उत्तरपदनाम
५	५	श्वेनः	पदनाम	४	२	सचा	पदनाम
१	१४	श्वेनासः	अश्वनाम	२	६	संक्षत्	कान्तिकर्मा
३	६	श्वेयम्	सुखनाम	१	१२	सत्	उदकनाम
१	८	श्वेत्या	उपोनाम	३	२८	सतः	उत्तरपदनाम
३	६	श्वेयधम्	सुखनाम	३	१०	सत्वा	सत्यनाम
२	२	शेषः	अपत्यनाम	१	१२	सतिनम्	उदकनाम
१	७	शोकी	रात्रिनाम	१	१२	सतीकम्	"
२	१४	श्रोतति	गतिकर्मा	१	१२	सतीनम्	"
१	१६	श्रोचति	ज्वलतिकर्मा	१	१२	सत्यम्	"
१	१७	श्रोचिः	ज्वलतीनाम	१	१२	सदनम्	"
१	११	श्लोकः	वाङ्नाम	१	१२	सद्म	"
		ष		२	१७	सद्म	संग्रामनाम
२	१४	षःकति	गतिकर्मा	३	४	सद्म	गृहनाम
२	१४	ष्वःकति	"	३	३०	सद्मनौ	द्यावापृथिवी
२	१४	ष्वःकति	"	३	३०	सदसो	"
		स		४	३	सदान्वे	पदनाम
२	१४	सचति	गतिकर्मा	३	३०	सधे	द्यावापृथिवी
२	१७	सगमन्	संग्रामनाम	२	५	सनाभयः	अंगुलिनाम
३	१८	सन्धि	याज्ञाकर्मा	३	२५	सनुतः	{ निर्णीतान्त- हितनाम
१	३	सगमम्	अन्तरिक्षनाम				
१	३	सगरः	"	३	२७	सनेमि	पुराणनाम
२	१७	सङ्खे	संग्रामनाम	१	१७	स्यामन्	संग्रामनाम
२	१७	सङ्ख्ये	"	१	५	सप्तऋषयः	रश्मिनाम
२	१७	संयुगे	"	५	६	सप्तऋषयः	पदनाम
२	१७	सङ्गधे	"	१	१४	सप्तिः	अश्वनाम
२	१७	सङ्गमे	"	३	५	सपति	परिचरणकर्मा
२	१७	सङ्गाः	"	३	१४	सपति	अर्चतिकर्मा

अक्षरं	संख्या	सकारादयः	विषयः	अक्षरं	संख्या	सकारादयः	विषयः
२	८	स्यन्द्रासः	बलनाम	२	१४	सर्पति	गतिकर्मा
४	३	सप्रथाः	पदनाम	१	१२	सर्पिः	उदकनाम
३	५	सपर्यति	परिचरणकर्मा	५	५	सरमा	पदनाम
३	१८	सबाधः	ऋत्विङ्नाम	३	१	सरिरम्	बहुनाम
२	१७	समत्सु	संग्रामनाम	१	१२	सर्वम्	उदकनाम
२	१७	समनम्	"	२	१४	स्रवति	गतिकर्मा
२	१७	समनीके	"	१	१३	स्रवत्यः	नदीनाम
२	१७	समरणे	"	१	१३	सरस्वत्यः	"
२	१७	समर्थे	"	१	११	सरस्वती	वाङ्नाम
४	२	समस्य	पदनाम	५	५	सरस्वती	पदनाम
२	१७	समितिः	संग्रामनाम	५	४	सरस्वान्	"
२	१७	समिधे	"	२	१४	स्रंसति	गतिकर्मा
२	१७	समीके	"	२	१४	स्रंसते	"
२	१७	समीधे	"	२	१४	ससृते	"
१	३	समुद्रः	शन्तरिघनाम	१	१२	सलिलम्	उदकनाम
५	६	समुद्रः	पदनाम	३	१	सलिलम्	बहुनाम
२	१७	समोहे	संग्रामनाम	४	३	सललूकम्	पदनाम
२	१७	सम्प्राप्ते	"	१	४	स्वः	साधारणनाम
२	१७	संयत्	"	१	१२	स्वः	उदकनाम
२	१७	संयुगे	"	४	२	स्वप्ताः	पदनाम
२	१४	स्यन्दते	गतिकर्मा	२	१७	संवतम्	संग्रामनाम
२	१४	स्यन्दयति	"	२	१७	संवतः	"
२	१४	स्यमति	"	५	४	सविता	पदनाम
१	११	सरः	वाङ्नाम	५	६	सविता	"
१	१२	सरः	उदकनाम	३	१४	स्वदति	अर्चतिकर्मा
१	१२	सर्गाः	"	१	१२	स्वधा	उदकनाम
१	१२	सर्णिकम्	"	२	७	स्वधा	शत्रुनाम
५	६	सरस्यः	पदनाम	१	२०	स्वधितिः	वज्रनाम
१	१३	सरितः	नदीनाम	३	३०	स्वधे	द्यावापृथिवी

अ.सं.	प.सं.	सकारादयः	विषयः	अ.सं.	प.सं.	सकारादयः	विषयः
१	११	स्वनः	वाङ्नाम	२	१५	साचिवित्	चिप्रनाम
३	१७	सवीनम्	यञ्जनाम	२	१५	साचीवित्	"
३	१४	स्वपिति	अर्चतिकर्मा	२	१५	साचीवत्	"
३	२२	स्वपिति	स्वपतिकर्मा	३	१६	स्तामुः	स्तोत्रनाम
१	३	स्वयम्भूः	अन्तरिक्षनाम	१	५	साध्याः	रश्मिनाम
४	३	सवीमनि	पदनाम	५	६	साध्याः	पदनाम
१	१२	स्वर्णीकम्	उदकनाम	२	२०	सायकः	वज्रनाम
१	११	स्वरः	वाङ्नाम	१	११	खाडा	वाङ्नाम
२	१४	स्वरति	गतिकर्मा	५	२	खाडाकृतयः	पदनाम
३	१४	स्वरति	अर्चतिकर्मा	१	१३	सिन्धवः	नदीनाम
३	२२	स्वस्ति	स्वपितिकर्मा	४	३	स्तिपाः	पदनाम
५	५	स्वस्तिः	पदनाम	४	३	स्तिपानाम्	"
१	८	स्वसराणि	अहर्नाम	२	७	सिनम्	अन्ननाम
३	४	स्वसराणि	गृहनाम	४	२	सिनम्	पदनाम
४	४	स्वसराणि	पदनाम	५	५	सिनीवाक्त्रौ	"
२	५	स्वसारः	अंगुलिनाम	१	१२	सिरा	उदकनाम
२	१४	सञ्चति	गतिकर्मा	३	२८	सिषक्लि	उत्तरपदनाम
२	७	ससम्	अन्ननाम	३	२८	सिषक्तु	"
४	२	ससम्	पदनाम	२	१४	सिस्त्रति	गतिकर्मा
३	२२	सस्ति	स्वपितिकर्मा	२	१४	सिसर्ति	"
४	२	सस्त्रिम्	पदनाम	२	७	सौनम्	अन्ननाम
२	१४	सस्त्रति	गतिकर्मा	४	२	सौम्	पदनाम
२	१४	संस्त्रति	"	२	१४	सीयते	गतिकर्मा
१	१३	सस्रुतः	नदीनाम	१	१३	सीराः	नदीनाम
३	२५	सस्त्रः	{ निर्णीतान्त- हितानाम	३	१२	सुकम्	{ सर्वपदसमा- न्नायः
१	१२	सहः	उदकनाम	१	१२	सुचेम	उदकनाम
२	८	सहः	वल्गनाम	१	१२	सुखम्	"
३	१	सहस्रम्	वहुनाम	३	६	सुगम्यम्	सुखनाम

क्र.सं.	सं.	सकारादयः	विषयः	क्र.सं.	सं.	सकारादयः	विषयः
३	१६	सुत्	स्तीतनाम	१	८	सूनृतावती	"
२	७	सुतः	अन्ननाम	३	६	स्यूमकम्	सुखनाम
२	७	सुतम्	"	१	१२	सूरा	उदकनाम
४	१	सुतुकः	पदनाम	३	१६	सूरिः	स्तीतनाम
३	१६	स्तुप्	स्तीतृनाम	५	६	सूर्यः	पदनाम
४	३	सुदत्तः	पदनाम	१	११	सूर्या	वाङ्नाम
३	६	सुदिनम्	सुखनाम	५	६	सूर्या	पदनाम
३	८	सुनीयः	प्रशस्यनाम	२	२०	सृकः	वज्रनाम
५	४	सुपर्णः	पदनाम	४	२	सृणिः	पदनाम
१	११	सुपर्णा	वाङ्नाम	२	१८	सृष्ट्याति	बधकर्मा
१	५	सुपर्णाः	रश्मिनाम	३	२८	सृष्टिभिः	उत्तरपदनाम
१	१४	सुपर्णाः	अश्वनाम	२	१७	सृष्टः	संशामनाम
४	१	सुप्रायणाः	पदनाम	४	३	सृष्टः	पदनाम
१	११	सुपर्णी	वाङ्नाम	१	१२	सृष्टीकम्	उदकनाम
२	१८	स्फुरति	बधकर्मा	२	१४	स्रेधति	गतिकर्मा
२	१८	स्फुलति	"	२	१८	स्रेहति	बधकर्मा
४	३	सुमत्	पदनाम	२	१८	स्रेहयति	"
३	६	सुम्नम्	सुखनाम	१	५	स्नेदयः	रश्मिनाम
१	८	सुम्नावरी	उषीनाम	३	१४	स्तीभति	अर्चतिकर्मा
१	१२	सुरा	उदकनाम	५	५	सीमः	पदनाम
४	१	सुविते	पदनाम	४	३	सीमानम्	"
४	३	सुविद्वः	"	४	२	सीमोअच्छाः	"
४	३	सुशिप्रः	"	३	६	सीनम्	सुखनाम
२	५	सुहस्यः	अङ्गुलिनाम	१	१२	स्रोतः	उदकनाम
३	२३	सूदः	कूपनाम	१	१३	स्रोत्याः	नदीनाम
२	२	सूनुः	अपत्यनाम	३	१४	स्तौति	अर्चतिकर्मा
१	८	सूनरी	उषीनाम			हृ	
१	८	सूनृता	"	१	१७	हृणिः	ज्वलतीनाम
२	७	सूनृता	अन्ननाम	२	१४	हनति	गतिकर्मा
१	८	सूनृतावरी	उषीनाम	२	१४	हन्तात्	"

वि. सं.	अ. सं.	हकारादयः	विषयः	वि. सं.	अ. सं.	हकारादयः	विषयः
२	१४	हन्ति	गतिकर्मा	५	३	हविः	पदनाम
२	१४	हन्मति	"	५	३	हविर्धाने	"
२	१४	हस्यति	"	५	३	हस्तघ्नः	"
१	१४	हयः	अश्वनाम	१	१४	हंसासः	अश्वनाम
२	१४	हयति	"	१	१४	ह्वार्याणाम्	"
२	१४	हयन्तात्	गतिकर्मा	४	२	हासमाने	पदनाम
१	१७	हरः	ज्वलतीनाम	३	१२	हिकम्	{ सर्वपदसमा- न्नायः
२	१३	हरः	क्रोधनाम	४	३	हिनीत	पदनाम
४	१	हरः	पदनाम	१	७	हिम	रात्रिनाम
३	४	हर्म्यम्	गृहनाम	१	७	हिमा	"
२	३	हरयः	मनुष्यनाम	१	२	हिरण्यम्	हिरण्यनाम
४	२	हरयाणः	पदनाम	१	१३	हिरण्यवर्णाः	नदीनाम
२	६	हर्षति	कान्तिकर्मा	३	१५	हिरक्	{ निर्णीतान्त- हितनाम
२	१४	हर्षति	गतिकर्मा	३	२४	हुरश्चित्	स्तेननाम
२	१४	हर्षन्ताम्	"	१	१७	हृणिः	ज्वलतीनाम
३	२	ह्रस्वः	ह्रस्वनाम	२	१३	हृणिः	क्रोधनाम
१	१३	हरस्त्रत्यः	नदीनाम	२	१२	हृणीयते	क्रुध्यतिकर्मा
१	६	हरितः	दिङ्नाम	२	१३	हेवः	क्रोधनाम
१	१३	हरितः	नदीनाम	२	१२	हेक्ते	क्रुध्यतिकर्मा
२	५	हरितः	अङ्गुलनाम	२	२०	हेतिः	वज्रनाम
१	१५	हरितआ- दित्यस्य }	आदिष्टोप- योजनानि	१	२	हेम	हिरण्यनाम
१	१५	हरी इन्द्रस्य	"	१	१२	हेम	उदकनाम
२	८	ह्वयति	अस्तिकर्मा	१	२	हेमा	हिरण्यनाम
३	१४	ह्वयति	अर्चतिकर्मा	१	१२	हेमा	उदकनाम
३	१४	ह्वयते	"	१	११	होत्रा	वाङ्नाम
२	१३	ह्वरः	क्रोधनाम	३	१७	होत्रा	यज्ञनाम
२	८	ह्वरति	अस्तिकर्मा			इति	
१	१२	हविः	उदकनाम				

अथ निघण्टोः शुद्धिपत्रम् ॥

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	१३ ०		में
१	१८	योगिक	यौगिक
८	८	सर्वम्	सर्वम्
८	१०	पवित्रम्	पवित्रम्
८	१	सस्त्रुतः	सस्त्रुतः
८	८	द्वार्याणाम्	द्वार्याणाम्
८	१	ऋतावर्थः	ऋतावर्थः (नोट)
१०	१५	अभीशू	अभीशू
१०	२	कर्तुम्	कर्तुम् (नोट)
११	० अ० १	अ० २	अ० २
११	३	जामयः	जामयः
११	२	सस्त्रुतः	सस्त्रुतः (नोट)
११	७	सुतम्	सुतम् (नोट)
१२	० अ० १	अ० २	अ० २
१२	५	बैलि	बैल
१२	८	इन्द्रियम्	इन्द्रियम्
१२	१७ १२		१३
१२		।यते	हृणीयते (नोट)
१३		ति	दघ्नोति (नोट)
१५		मीके	अतमीके
१५			पृत्सु

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१७	८	विवक्षे	विवक्षे
१७	१२	दुरीणे	दुरीणे
१८	५	भगम्	भगो
१८	११	भन्दति	भन्दते
२०	१२	बर्हिषः	बर्हिषः
२०	२	मनुष्याः	मनुष्याः (न)
२१	१२	अव	अव
२१	१	वृश्चति	वृश्चति (न)
२२	१	सिषक्ति	सिषक्ति (न)
२३	३	मध्या	मध्या
२४	८	शृम्भाः	निशृम्भाः
२४	८	ऋदरः	ऋदूदरः
२४	१६	रिशाशदसः	रिशादसः
२४	७	सूते	सूते
२६	२	अश्व	अश्व
२७	७	२ २४	३ २४
२८	२८	४ ३	४ २
२८	४१	अल्पम्	अल्पकम्
३२	०	क्रमिका	क्रमयिक
३८	७	इदनात्	इदमाना
४०	७	नान	नाम

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्	पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
४०	३५	त्रय	त्रयः	४७	२७	पुरन्धि	पुरन्धौ
४१	११	क्षिप्रकर्मा	क्षिप्रनाम	४८	१८	पृणाति	पृणाति
४२	३६	२।१४	२।१८	५८	४२	शुनासीरी	शुनासीरी
४२	२७	२।१८दध्यति	२।१४दध्यति	५८	४४	शुरन्धुः	शुरन्धुः
४३	२०	१।६	१।८	५८	४५	शुब्धः	शुब्धः
४३	२१	„	पदनाम	६०	५२	स्यामन्	स्यामन्
४५	१८	निर्णी	निर्णी	६४	२०	अङ्गुल	अङ्गुलि

इति

